सत् शास्त्र-प्रकाशन

महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास-प्रणीत—

श्रीमद्भागवत-महापुराण

दशम स्कन्ध

(पूर्वार्ध)

[पदच्छेद्, अन्वय, हिन्दी शब्दार्थ टीका सहित]

❖

सम्पादक :
सुदर्शनसिंह 'चक्र'

❖

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान, मथुरा

श्री हित हरिवंश

वृन्दावन के परम पूज्य संत श्री प्रेमानंद जी के प्रवचन से प्रेरणा पाकर हमने मूल संस्कृत की श्रीमद्भागवत का पाठ स्वयं करने का निश्चय किया. अंग्रेजी भाषा में शिक्षा ग्रहण करने और संस्कृत भाषा का अधिक ज्ञान न होने के कारण हमारे लिए मूल श्लोक को पढ़ना थोड़ा कठिन है | इसीलिए हमारे गुरु श्री के. एन. राव जी ने हमें श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ गीता प्रेस से प्रकाशित पदच्छेद, अन्वय और टीका वाली पुस्तक संख्या 17 से कराया है | पदच्छेद से संस्कृत श्लोक का अध्ययन सुगम हो गया और कुछ समय बाद मूल श्लोक भी सहजता से पढ़ा गया। इसी उद्देश्य से हमने भागवत की एक ऐसी प्रति को खोजना प्रारम्भ किया जिसमें मूल श्लोक, पदच्छेद और साथ ही हिंदी टीका हो | इंटरनेट पर खोजने से ऐसी कई प्रति मिलीं किन्तु श्री सुदर्शन सिंह चक्र जी द्वारा किया अन्वय उन सभी में सबसे सहज और सुगम है। किन्तु ग्रन्थ के अब प्रकाशित न होने के कारण उपलब्ध नहीं है। इस अमूल्य ग्रन्थ को दोबारा साधकों तक लाने के लिए इसके सभी खंडों को स्कैन करके उपलब्ध कराने का यह हमारा छोटा सा प्रयास है।

श्री जी की कृपा से इस यात्रा में पद पद पर हमें वृन्दावन के संतों और धर्मप्रेमी मित्रों का सहयोग मिलता रहा जिसके बिना इस कार्य को पूर्ण करना असंभव था | सभी संतो और मित्रों का आभार प्रकट किये बिना इस ग्रन्थ को पुनः जन जन तक पहुँचाना संभव ही नहीं है | सबसे पहले इस ग्रन्थ की खोज में हमारे मार्गदर्शक आगरा के स्वपनिल जी बने और हमारा परिचय प्रभात जी से कराया | तत्पश्चात पूज्य राजमाता सौभाग्य कुँवर राणावत जी और पूज्य डॉ. बालचंद्रिका पाठक जी (मुन्नी जीजी) के मार्गदर्शन में हमने वृन्दावन के आश्रमों में इसकी खोज प्रारम्भ की | अन्ततः इस ग्रन्थ के सभी खंड हमें अखंडानंद आश्रम लाइब्रेरी से श्री सेवानंद जी और मलूक पीठ ग्रंथालय से श्री श्यामसुंदर जी के आशीर्वाद से प्राप्त हुए | पहला खंड अत्यधिक पुराना होने के कारण बहुत ही जीर्ण अवस्था में था और खंड के बहुत से पृष्ठ गुम हो चुके थे | तभी हमारी इस यात्रा को पूर्ण करने में सहयोगी बने बक्सर वाले मामाजी के बक्सर आश्रम से श्याम जी जिन्होंने कोसी आश्रम के नवल जी से परिचय करवाया। और नवल जी ने प्रथम खंड की बहुत ही सहज कर रखी गयी प्रति स्कैन करने के लिए उपलब्ध करवाई |

श्री जी के आशीर्वाद, संतों के मार्गदर्शन और धर्मप्रेमी मित्रों के सहयोग के बिना यह यात्रा असफल ही होती | हम आशा करेंगे कि इस नए प्रिंट से सभी भागवत प्रेमी और विद्यार्थी लाभ उठा सकेंगे | इस पूरे ग्रन्थ का पीडीऍफ़ ऑनलाइन भी अपलोड किया गया है | नीचे दिए लिंक से सभी खंडों का पीडीऍफ़ डाउनलोड किया जा सकता है |

https://archive.org/details/shrimad-bhagvat-anvaya-teeka

मकर संक्रांति, जनवरी 15, 2024 राधे राधे ...

क्षमा याचना

श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र' का विचार था कि सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत महापुराण मूल श्लोक, पदच्छेद, अन्वय और हिन्दी शब्दार्थ श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'श्रीकृष्ण-सन्देश' में धारावाहिक रूपसे छपे। जब स्कन्ध पूरा हो जाय तो पाठक स्वयं भागवतके अंश को निकाल कर बँधाई करवा कर पुस्तकका रूप दे दें। 'श्रीकृष्ण-सन्देश' में धारावाहिक 'नवम स्कन्ध' तक छप गया। आगे कुछ ऐसी लाचारी और विवशता आ गई कि 'श्रीकृष्ण-सन्देश' को बन्द करनेका निर्णय लेना पड़ गया।

'श्रीकृष्ण-सन्देश' के बन्द होनेसे 'भागवत' के अनुरागी पाठकोंको आघात लगा। भागवतका दशम-स्कन्ध हृदय स्थल है, और जिसकी सभी पाठक आतुरतासे प्रतीक्षा कर रहे थे, उनका दुखी होना स्वाभाविक था। हमें अनेक ऐसे पत्र मिलने लगे, जिनमें आग्रह था कि किसी भी रूप में हम भागवतको पदच्छेद, अन्वय और शब्दार्थ सहित छापें। उन पत्रों को गम्भीरतासे लेते हुए श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थानके प्रशासनिक अधिकारियोंने निर्णय लिया कि भागवतके शेषांशको पुस्तकाकार छापा जाय। उसी निर्णयका प्रथम प्रतिफल है भागवतके दशम स्कन्धका पूर्वार्ध।

हम चाहते थे कि दशम स्कन्धका पूर्वार्ध जितना शीघ्र हो सके उपलब्ध कराया जाय। किन्तु प्रेसने हमें जो आश्वासन दिया था उस निर्धारित समयपर मुद्रण पूरा नहीं हो सका। कम्पोजीटरका अन्यत्र चला जाना, बिजली-व्यवस्थामें व्यवधान आदि कई कारण इसके साथ जुड़े हैं। उत्सुक पाठकों के पत्र बराबर हमें मिलते रहे और प्रेसको शीघ्र पुस्तक उपलब्ध करानेका हम लगातार निवेदन करते रहे।

विलम्ब होनेका एक कारण है पुस्तकमें पृष्ठ संख्या अधिक होना। इसके अतिरिक्त प्रूफ देखने में भी कुछ समय लगता रहा। हालांकि इसे

पूर्णतः निर्दोष नहीं कहा जायगा, क्योंकि इसके प्रत्येक प्रूफको केवल एक बार ही और एक व्यक्तिके द्वारा देखा गया है।

कागज, छपाई और बँधाईका शुल्क बढ़ जानेसे मूल्य कुछ अधिक हो गया, किन्तु यह हमारी लाचारी है। मूल्य हम लगभग वही रखते हैं जो खर्च आता है, यही कारण है कि छूटकी राशि हम अधिक नहीं दे पाते हैं।

'भागवत' के भक्तों, प्रेमियों और पाठकोंकी इच्छा-शक्तिसे और भगवान श्रीकृष्णकी प्रेरणासे दशम स्कन्धका पूर्वार्ध प्रकाशित हो गया है। हम प्रयत्नशील हैं कि इसका उत्तरार्ध भी शीघ्र छप जाय। इसके मुद्रणमें और उपलब्ध होने में जो लम्बी प्रतीक्षा करनी पड़ी इसके लिए हम क्षमा चाहते हैं।

प्रकाशक

श्रीमद्भागवत महापुराण से सम्बद्ध अन्य ग्रंथ जो हमारे पास उपलब्ध हैं

१. श्रीमद्भागवत पादानुक्रमणिका (राज.)	१५०-००
(साधारण)	१२५-००
२. भागवत-परिचय	१००-००
३. श्रीरामचरित मानस तथा श्रीमद्भागवत— संरचना एवं लक्ष्यका तुलनात्मक अध्ययन	६०-००
४. भगवल्लीला चिन्तामणि (भागवतके प्रथम श्लोककी ८७ व्याख्या)	१५-००
५. श्रीमद्भागवतके स्तोत्रोंके आधारः शास्त्रीय अनुशीलन	३५-००
६. भागवतके गीतोंका शास्त्रीय अनुशीलन	२०-००
७. भागवत मकरन्द	२१-००

दशम स्कन्ध

(पूर्वार्ध)

विषय सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१.	भगवानका पृथ्वीको आश्वासन, वसुदेव-देवकी-विवाह, देवकीके छः पुत्रोंका कंसके द्वारा हत्या	१
२.	भगवानका गर्भ-प्रवेश और देवताओं द्वारा गर्भस्तुति	३०
३.	भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य	५१
४.	योगमायाका कंसके हाथमे छूटना और भविष्यवाणी	७६
५.	गोकुलमें भगवानका जन्मोत्सव	९४
६.	पूतना-उद्धार	१०७
७.	शकट-भंजन और तृणावर्त-उद्धार	१२६
८.	नामकरण-संस्कार और बाललीला	१४२
९.	श्रीकृष्णका ऊखलसे बाँधा जाना	१६४
१०.	यमलार्जुन-उद्धार	१७६
११.	गोकुलसे वृन्दावन जाना, वत्सासुर और बकासुर-उद्धार	१९३
१२.	अघासुर-उद्धार	२१६
१३.	ब्रह्माजीका मोह और उसका नाश	२३८
१४.	ब्रह्माजीके द्वारा भगवानकी स्तुति	२६६
१५.	धेनुकासुर-उद्धार और ग्वालबालोंकी कालिय-विषसे रक्षा	२९८
१६.	कालियपर कृपा	३२१
१७.	कालियके दह-आगमनकी कथा, व्रजवासियोंकी दावानलसे रक्षा	३५२
१८.	प्रलम्बासुर-उद्धार	३६२
१९.	गौओं और गोपोंको दावानलसे बचाना	३७६
२०.	वर्षा और शरद्-ऋतुका वर्णन	३८३
२१.	वेणुगीत	४०२
२२.	चीर-हरण	४१४
२३.	यज्ञपत्नियोंपर कृपा	४३०
२४.	इन्द्रयज्ञ-निवारण	४५२

अध्याय	विषय	पृष्ठ
२५.	गोवर्धनधारण	४६७
२६.	नन्दबाबासे गोपोंकी श्रीकृष्णके प्रभावकी चर्चा	४८०
२७.	श्रीकृष्णका अभिषेक	४९१
२८.	वरुणलोकसे नन्दजीको छुड़ाना	५०४
२९.	रासलीलाका आरम्भ	५११
३०.	श्रीकृष्णके विरहमें गोपियोंकी दशा	५५०
३१.	गोपिकागीत	५८५
३२.	भगवानका प्रकट होकर गोपियोंको सान्त्वना देना	६०३
३३.	महारास	६१९
३४.	सुदर्शन और शंखचूड़का उद्धार	६४७
३५.	युगलगीत	६६०
३६.	अरिष्टासुर-उद्धार, कंसका श्रीअक्रूरको व्रज भेजना	६७४
३७.	केशी और व्योमासुर-उद्धार, नारद द्वारा स्तुति	६९०
३८.	अक्रूरकी व्रजयात्रा	७०५
३९.	श्रीकृष्ण-बलरामका मथुरागमन	७२६
४०.	अक्रूरके द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति	७५१
४१.	श्रीकृष्णका मथुरामें प्रवेश	७६४
४२.	कुब्जापर कृपा, धनुष-भंग और कंसकी व्याकुलता	७८६
४३.	कुवलयापीड़का उद्धार और अखाड़ेमें प्रवेश	८०२
४४.	चाणूर, मुष्टिक आदि पहलवानों और कंस-वध	८१८
४५.	श्रीकृष्ण-बलरामका यज्ञोपवीत और गुरुकुल-प्रवेश	८४०
४६.	उद्धवजीकी व्रजयात्रा	८६२
४७.	उद्धव-गोपी-संवाद, भ्रमरगीत	८८४
४८.	भगवानका कुब्जा और अक्रूरके घर जाना	९१७
४९.	अक्रूरका हस्तिनापुर जाना	९३४

॥ दशमः स्कन्धः ॥

(पूर्वार्धः)

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

दशमः स्कन्धः

(पूर्वार्धः)

अथ प्रथमोऽध्यायः

राजोवाच

कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः ।
राज्ञां चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम् ॥१॥

कथितः वंश विस्तारः भवता सोम सूर्ययोः राज्ञां च उभय वंश्यानां चरितं परम अद्भुतम् ॥१॥

भवता	आपने	**राज्ञां**	राजाओंका
सूर्य	सूर्य और	**परम अद्भुतं**	अत्यन्त आश्चर्य-जनक
सोमयोः	चन्द्रमाके	**चरितं**	चरित
वंश विस्तारः	वंश विस्तारका	**कथितः**	वर्णन किया ॥१॥
च उभय	तथा दोनों		
वंश्यानां	वंशोंमें हुए		

यदोश्च धर्मशीलस्य नितरां मुनिसत्तम ।
तत्रांशेनावतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणि शंस नः ॥२॥

यदोः च धर्मशीलस्य नितरां मुनि सत्तम तत्र अंशेन अवतीर्णस्य विष्णोः वीर्याणि शंस नः ॥२॥

मुनि सत्तम	मुनि श्रेष्ठ !	**तत्र अंशेन**	उसमें अंश सहित
नितरां	अत्यन्त	**अवतीर्णस्य**	अवतार लिये
धर्मशीलस्य	धर्मपरायण	**विष्णोः**	भगवान् विष्णुके
यदोः च	यदुका भी (वंश सुनाया)	**वीर्याणि**	पराक्रम
		नः शंस	मुझे सुनाइये ॥२॥

अवतीर्य यदोर्वंशे भगवान् भूतभावनः ।
कृतवान् यानि विश्वात्मा तानि नो वद विस्तरात् ॥३॥

अवतीर्य यदोः वंशे भगवान् भूतभावनः कृतवान् यानि विश्वात्मा तानि नः वद विस्तरात् ॥३॥

भूतभावनः	प्राणियोंके पालक	यानि कृतवान्	जो (लीलाएँ) कीं
विश्वात्मा	विश्वात्मा	तानि नः	उन्हें मुझे
भगवान्	भगवान्ने	विस्तरात्	विस्तारसे
यदोः वंशे	यदुवंशमें	वद	बतलाइये ॥३॥
अवतीर्य	अवतार लेकर		

निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्
भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात् ।
क उत्तमश्लोकगुणानुवादात्
पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात् ॥४॥

निवृत्त तर्षैः उपगीयमानात् भव औषधात् श्रोत्रमनः अभिरामात् क उत्तम श्लोक गुण अनुवादात् पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात् ॥४॥

निवृत्त तर्षैः	तृष्णाहीनों (महापुरुषों) द्वारा	उत्तम श्लोक	पवित्र कीर्ति भगवानके
उपगीयमानात्	गायी जानेवाली	गुण अनुवादात्	गुण-वर्णनसे
भव	संसार-रोगकी	पशुघ्नात्	पशुघाती (या आत्मघाती) को
औषधात्	औषधिरूप	विना क	छोड़कर कौन
श्रोत्रमनः	श्रवण और मनको	पुमान्	पुरुष
अभिरामात्	प्रिय लगनेवाली	विरज्येत	विरक्त होगा ॥४॥

पितामहा मे समरेऽमरञ्जयै-
र्देवव्रताद्यातिरथैस्तिमिङ्गिलैः ।
दुरत्ययं कौरवसैन्यसागरं
कृत्वातरन् वत्सपदं स्म यत्प्लवाः ॥५॥

पितामहा मे समरे अमरञ्जयैः देवव्रत आद्या अतिरथैः तिमिङ्गिलैः दुरत्ययं कौरवसैन्य सागरं कृत्वा तरन् वत्सपदं स्म यत्प्लवाः ॥५॥

समरे	युद्धमें	सागरं	समुद्रको
अमरञ्जयैः	देवताओंको भी जीतनेवाले	यत्प्लवाः	जिनको नौका बनाकर
देवव्रत आद्या	भीष्मादि	मे पितामहा	मेरे पितामहोंने
अतिरथैः	अतिरथी रूप	वत्सपदं	गोवत्स-पदके
तिमिंगिलैः	तिमिङ्गिल (महा-मत्स्यों) वाले	कृत्वा	समान करके
दुरत्ययं	दुष्पार	तरन्	(सुगमतासे) पार
कौरवसैन्य	कौरवोंकी सेनारूप	स्म	हो गये ॥५॥

द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदं मदङ्गं
सन्तानबीजं कुरुपाण्डवानाम् ।
जुगोप कुक्षिं गत आत्तचक्रो
मातुश्च मे यः शरणं गतायाः ॥६॥

द्रौणि अस्त्र विप्लुष्टं इदं मत् अंगं सन्तानबीजं कुरु पाण्डवानां जुगोप कुक्षिं गत आत्तचक्रः मातुः च मे यः शरणं गतायाः ॥६॥

द्रौणि अस्त्र	अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे	शरणं गतायाः	शरणमें गयी हुई
विप्लुष्टं	नष्ट होते हुए	मे मातुः	मेरी माताके
कुरु पाण्डवानां	कौरव-पाण्डवोंके	आत्तचक्रः	चक्र लेकर
सन्तानबीजं	वंश-बीज रूप	कुक्षिं च गत	उदरमें भी जाकर
इदं मत् अंगं	इस मेरे शरीरको	यः जुगोप	जिन्होंने रक्षा की ॥६॥

वीर्याणि तस्याखिलदेहभाजा-
मन्तर्बहिः पूरुषकालरूपैः ।

प्रयच्छतो मृत्युमुतामृतं च
मायामनुष्यस्य वदस्व विद्वन् ॥७॥

वीर्याणि तस्य अखिल देहभाजां अन्तः बहिः पूरुष कालरूपैः प्रयच्छतः मृत्युं उत अमृतं च माया मनुष्यस्य वदस्व विद्वन् ॥७॥

विद्वन्	विद्वन् !	पूरुष	पुरुष रूपसे
अखिल	सम्पूर्ण	अमृतं च	अमृतत्व भी
देहभाजां	देहधारियोंके	प्रयच्छतः	प्रदान करते हुए
बहिः	बाहर	तस्य माया	उन मायासे
कालरूपैः	कालरूपसे	मनुष्यस्य	मनुष्य बनेके
मृत्युं उत	मृत्यु तथा	वीर्याणि	पराक्रमोंका
अन्तः	भीतर अन्तर्यामी	वदस्व	वर्णन कीजिए ॥७॥

रोहिण्यास्तनयः प्रोक्तो रामः संकर्षणस्त्वया ।
देवक्या गर्भसम्बन्धः कुतो देहान्तरं विना ॥८॥

रोहिण्याः तनयः प्रोक्तः रामः सङ्कर्षणः त्वया देवक्या गर्भ सम्बन्धः कुतः देहान्तरं विना ॥८॥

त्वया	आपने	देहान्तरं	दूसरा शरीर धारण किये
रामः	बलरामजीको	विना	बिना
रोहिण्याः	रोहिणीजीका	गर्भ	(उनका देवकीके) गर्भसे
तनयः	पुत्र और	सम्बन्धः	सम्बन्ध
सङ्कर्षणः	(उन्ही) सङ्कर्षणको	कुतः	कैसे हो गये ॥८॥
देवक्याः प्रोक्तः	देवकीका कहा है,		

कस्मान्मुकुन्दो भगवान् पितुर्गेहाद् व्रजं गतः ।
क्व वासं ज्ञातिभिः सार्धं कृतवान् सात्वतांपतिः ॥९॥

कस्मात् मुकुन्दः भगवान् पितुः गेहात् व्रजं गतः क्व वासं ज्ञातिभिः सार्धं कृतवान् सात्वतां पतिः ॥९॥

भगवान्	भगवान्	सात्वतां	उन सात्वत वंशीयोंके
मुकुन्दः	मुकुन्द	पतिः	स्वामीने
पितुः गेहात्	पिताके घरसे	ज्ञातिभिः सार्धं	जाति-भाइयोंके साथ
कस्मात्	किस कारणसे	क्व वासं	कहां निवास
व्रजं गतः	व्रज गये,	कृतवान्	किया ॥९॥

व्रजे वसन् किमकरोन्मधुपुर्यां च केशवः ।
भ्रातरं चावधीत् कंसं मातुरद्धातदर्हणम् ॥१०॥

व्रजे वसन् किं अकरोत् मधुपुर्यां च केशवः भ्रातरं च अवधीत् कंसं मातुः अद्धा अतदर्हणम् ॥१०॥

केशवः	उन केशवने	भ्रातरं	भाई (मामा)
व्रजे च	व्रजमें तथा	कंसं	कंसको
मधुपुर्यां	मथुरामें	अवधीत्	मारा
वसन्	रहते हुए	अद्धा	उनके द्वारा
किं अकरोत्	क्या-क्या किया,	अतदर्हणं	यह तो उचित नहीं
मातुः	माताके		लगता ॥१०॥

देहं मानुषमाश्रित्य कति वर्षाणि वृष्णिभिः ।
यदुपुर्यां सहावात्सीत् पत्न्यः कत्यभवन् प्रभोः ॥११॥

देहं मानुषं आश्रित्य कति वर्षाणि वृष्णिभिः यदुपुर्यां सह अवात्सीत् पत्न्यः कति अभवन् प्रभोः ॥११॥

मानुषं देहं	मनुष्य शरीर	यदुपुर्यां	यदुपुरीमें
आश्रित्य	धारण करके	अवात्सीत्	रहे
वृष्णिभिः	वृष्णिवंशियोंके	प्रभोः	उन प्रभुकी
सह	साथ	पत्न्यः	पत्नियां
कति वर्षाणि	कितने वर्ष	कति अभवन्	कितनी हुईं ॥११॥

एतदन्यच्च सर्वं मे मुने कृष्णविचेष्टितम् ।
वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ श्रद्दधानाय विस्तृतम् ॥१२॥

एतत् अन्यत् च सर्वं मे मुने कृष्ण विचेष्टितं वक्तुं अर्हसि सर्वज्ञ श्रद्दधानाय विस्तृतम् ॥१२॥

सर्वज्ञ मुने	सर्वज्ञ मुनिवर !	सर्वं विस्तृतं	सब विस्तारपूर्वक
एतत च	ये और	मे	मुझ
अन्यत्	दूसरी भी	श्रद्दधानाय	श्रद्धालुसे
कृष्ण	श्रीकृष्णकी	वक्तुं अर्हसि	आपको
विचेष्टितं	लीलाएँ		कहना चाहिए ॥१२॥

नैषातिदुःसहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते ।
पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम् ॥१३॥

न एषा अति दुःसहा क्षुत् मां त्यक्त उदं अपि बाधते पिबन्तं त्वत् मुख अम्भोजच्युतं हरिकथा अमृतम् ॥१३॥

त्वत् मुख	आपके मुखरूपी	अपि त्यक्त	छोड़ देनेपर
अम्भोजच्युतं	चन्द्रसे झरते	अति दुःसहा	अत्यन्त दुःसह
हरिकथा	हरि-कथा रूपी	एषा क्षुत्	यह क्षुधा
अमृतं	अमृतको	बाधते	बाधा
पिबन्तं मां	पीते हुए मुझे	न	नहीं दे रही है ॥१३॥
उदं	जल भी		

सूत उवाच

एवं निशम्य भृगुनन्दन साधुवादं
वैयासकिः स भगवानथ विष्णुरातम् ।
प्रत्यर्च्य कृष्णचरितं कलिकल्मषघ्नं
व्याहर्तुमारभत भागवतप्रधानः ॥१४॥

एवं निशम्य भृगुनन्दन साधुवादं वैयासकिः स भगवान् अथ विष्णु-रातं प्रात्यर्च्य कृष्ण चरितं कलि कल्मषघ्नं व्याहतुं आरभत भागवत प्रधानः ॥१४॥

भृगुनन्दन	शौनकजी !	विष्णुरातं	परीक्षितकी
अथ एवं	फिर इस प्रकारका	प्रत्यर्च्य	प्रशंसा करके
साधुवादं	उत्तम प्रश्न	कलि	कलि-
निशम्य	सुनकर	कल्मषघ्नं	पापहारी
स प्रधानः	उन प्रधान	कृष्ण	श्रीकृष्ण
भागवत	भगवद्	चरितं	चरितको
	भक्त	व्याहतुं	कहना
भगवान्	भगवान	आरभत	प्रारम्भ किया ॥१४॥
वैयासकिः	व्यासनन्दनने		

श्रीशुक उवाच

सम्यग्व्यवसिता बुद्धिस्तव राजर्षिसत्तम ।
वासुदेवकथायां ते यज्जाता नैष्ठिकी रतिः ॥१५॥

सम्यक् व्यवसिता बुद्धिः तव राजर्षि सत्तम वासुदेव कथायां ते यत् जाता नैष्ठिकी रतिः ॥१५॥

राजर्षि सत्तम	राजर्षि श्रेष्ठ !	कथायां	कथामें
तव बुद्धिः	तुम्हारी बुद्धिका	ते	तुम्हारी
सम्यक्	निश्चय	नैष्ठिकी	निष्ठायुक्त
व्यवसिता	बहुत पूर्ण है	रतिः	प्रीति
यत्	क्योंकि	जाता	हो गयी है ॥१५॥
वासुदेव	भगवान वासुदेवकी		

वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन् पुनाति हि ।
वक्तारं पृच्छकं श्रोतुंस्तत्पादसलिलं यथा ॥१६॥

वासुदेव कथा प्रश्नः पुरुषान् त्रीन् पुनाति हि वक्तारं पृच्छकं श्रोतॄन् तत् पाद सलिलं यथा ॥१६॥

यथा तत्	जैसे उनका	वक्तारं	वक्ता
पाद सलिलं	चरणोदक (गंगा तीनों लोकोंको पवित्र करती हैं)	पृच्छकं	प्रश्नकर्ता तथा
		श्रोतॄन्	श्रोताओं
		त्रीन् पुरुषान्	तीनों पुरुषोंको
वासुदेव	भगवान् वासुदेवकी	हि	निश्चय
कथा	कथा सम्बन्धी	पुनाति	पवित्र करता है
प्रश्नः	प्रश्न		॥१६॥

भूमिर्दृप्तनृपव्याजदैत्यानीकशतायुतैः ।
आक्रान्ता भूरिभारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥१७॥

भूमिः दृप्त नृप व्याज दैत्य अनीक शत अयुतैः आक्रान्ता भूरि भारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥१७॥

दृप्त नृप	उन्मत्त राजाओंके	भूरि	बहुत अधिक
व्याज	बहाने	भारेण	भारसे
दैत्य	दैत्योंकी	आक्रान्ता	आक्रान्त होकर
शत अयुतैः	सैकड़ों-हजारों	भूमिः ब्रह्माणं	पृथ्वी ब्रह्माजीकी
अनीक	सेनाओंके	शरणं ययौ	शरणमें गयी ॥१७॥

गौर्भूत्वाश्रुमुखी खिन्ना क्रन्दन्ती करुणं विभोः ।
उपस्थितान्तिके तस्मै व्यसनं स्वमवोचत ॥१८॥

गौः भूत्वा अश्रुमुखी खिन्ना क्रन्दन्ती करुणं विभोः उपस्थिता अन्तिके तस्मै व्यसनं स्वं अवोचत ॥१८॥

गौः भूत्वा	गाय बनकर	अन्तिके	समीप
अश्रुमुखी	मुखपर आंसू बहाती,	उपस्थिता	पहुँचकर
खिन्ना	उदास	तस्मै	उनसे
करुणं	दीन-स्वरसे	स्वं व्यसनं	अपना कष्ट
क्रन्दन्ती	डकराती	अवोचत	सुनाया ॥१८॥
विभोः	उन समर्थके		

ब्रह्मा तदुपधार्याथ सह देवैस्तया सह ।
जगाम सत्रिनयनस्तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥१६॥

ब्रह्मा तत् उपधार्य अथ सह देवैः तया सह जगाम स त्रिनयनं तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥१६॥

तत् उपधार्य	उसे सुनकर	देवैः सह	देवताओंके संग
अथ ब्रह्मा	फिर ब्रह्माजी	क्षीरपयोनिधेः	क्षीरसागरके
स त्रिनयनं	शंकरजीके साथ	तीरं जगाम	किनारे गये ॥१६॥
तया	उस पृथ्वी और		

तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम् ।
पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहितः ॥२०॥

तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिं पुरुषं पुरुष सूक्तेन उपतस्थे समाहितः ॥२०॥

तत्र गत्वा	वहां जाकर	देवदेवं	देवाधिदेव
समाहितः	एकाग्र चित्तसे	वृषाकपिं	वरदाय नारायण
पुरुष-	पुरुष-	पुरुषं	परम पुरुषकी
सूक्तेन	सूक्त द्वारा	उपतस्थे	स्तुति की ॥२०॥
जगन्नाथं	जगत्पति		

गिरं समाधौ गगने समीरितां
निशम्य वेधास्त्रिदशानुवाच ह ।

गिरं समाधौ गगने समीरितां निशम्य वेधाः त्रिदशान् उवाच ह

समाधौ	समाधिके	वेधाः	विधाताने
गगने	चिदाकाशमें	त्रिदशान्	देवताओंसे
समीरितां	स्पष्ट कही गयी	ह उवाच	निश्चय पूर्वक कहा-
गिरं निशम्य	वाणी सुनकर		

ब्रह्मोवाच*

गां पौरुषीं मे शृणुतामराः पुन-
विधीयतामाशु तथैव मा चिरम् ॥२१॥

गां पौरुषीं मे शृणुत अमराः पुनः विधीयतां आशु तथा एव मा चिरम् ॥२१॥

अमराः	'देवताओ !	पुनः आशु	फिर शीघ्र
मे	मुझसे	विधीयतां	व्यवस्था करो
पौरुषीं	परम पुरुषकी	चिरं मा	देर मत करो'
गां शृणुत	वाणी सुनो !		॥२१॥
तथा एव	वैसा ही		

पुरैव पुंसावधृतो धराज्वरो
भवद्भिरंशैर्यदुषूपजन्यताम् ।
स यावदुर्व्या भरमीश्वरेश्वरः
स्वकालशक्त्या क्षपयंश्चरेद् भुवि ॥२२॥

पुरा एव पुंसाः अवधृतः धरा ज्वरः भवद्भिः अंशैः यदुषु उपजन्यतां स यावत् उर्व्या भरं ईश्वरेश्वरः स्व कालशक्त्या क्षपयन् चरेत् भुवि ॥२२॥

धरा ज्वरः	पृथ्वीकी जलनकी		परमेश्वर
पुंसाः	परम पुरुषको	स्व	अपनी
पुरा एव	पहिलेसे ही	कालशत्या	काल-शक्तिसे
अवधृत	पता है, अतः	उर्व्या भरं	पृथ्वीका भार
स ईश्वरेश्वरः	वे समर्थोंके भी	क्षपयन्	नष्ट करते हुए

* यह उवाच किसी प्रतिमें नहीं है; किन्तु श्लोक २५ के बाद श्रीशुक उवाच इसे आवश्यक बनाता है ।

स यावत्	वे जब तक	अंशैः	अपने अंशोंसे
भुवि	पृथ्वीपर	यदुषु	यदुवंशियोंमें
चरेत्	विचरण करते हैं	उपजन्यतां	उत्पन्न हो जाओ
भवद्भिः	तुम लोग भी		॥२२॥

वसुदेवगृहे साक्षाद् भगवान् पुरुषः परः ।
जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः ॥२३॥

वसुदेवगृहे साक्षात् भगवान् पुरुषः परः जनिष्यते तत् प्रिय अर्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः ॥२३॥

वसुदेव-	वसुदेवजी की	जनिष्यते	उत्पन्न होंगे
गृहे	पत्नीसे	तत् प्रिय	उनकी प्रसन्नताके
साक्षात्	साक्षात्	अर्थं	उद्देश्यसे
भगवान्	भगवान्	सुरस्त्रियः	देवाङ्गनाएँ भी
परः पुरुषः	परम पुरुष	सम्भवन्तु	जन्म लें ॥२३॥

वासुदेवकलानन्तः सहस्रवदनः स्वराट् ।
अग्रतो भविता देवो हरेः प्रियचिकीर्षया ॥२४॥

वासुदेव कला अनन्तः सहस्रवदनः स्वराट् अग्रतः भविता देवः हरेः प्रिय चिकीर्षया ॥२४॥

वासुदेव	भगवान् वासुदेवके	हरेः प्रिय	श्रीहरिका प्रिय
कला	कला रूप	चिकीर्षया	करनेकी इच्छासे
सहस्रवदनः	सहस्र मुख	अग्रतः	उनसे आगे
स्वराट् देवः	स्वयं प्रकाश देव	भविता	अवतीर्ण होंगे ॥२४॥
अनन्तः	अनन्त (शेष)		

विष्णोर्माया भगवती यया सम्मोहितं जगत् ।
आदिष्टा प्रभुणांशेन कार्यार्थे सम्भविष्यति ॥२५॥

विष्णोः माया भगवती यया सम्मोहितं जगत् आदिष्टा प्रभुणा अंशेन कार्य अर्थे सम्भविष्यति ॥२५॥

यया	जिन्होंने	**प्रभुणा**	अपने स्वामी द्वारा
जगत्	पूरे जगतको	**आदिष्टा**	आदेश पाकर
सम्मोहितं	मोहित कर रखा है वे	**कार्यं**	उनका कार्य
		अर्थे	करनेके लिए
भगवती	भगवती	**अंशेन**	अपने अंशसे
विष्णो. माया	विष्णु-माया	**सम्भविष्यति**	उत्पन्न होंगी ॥२५॥

श्रीशुक उवाच

इत्यादिश्यामरगणान् प्रजापतिपतिर्विभुः ।
आश्वास्य च महीं गीर्भिः स्वधाम परमं ययौ ॥२६॥

इति आदिश्य अमरगणान् प्रजापति पतिः विभुः आश्वास्य च महीं गीर्भिः स्व धाम परमं ययौ ॥२६॥

प्रजापति	प्रजापतियोंके	**गीर्भिः**	वाणीसे
पतिः विभुः	स्वामी ब्रह्माजी	**आश्वास्य**	आश्वासन देकर
अमरगणान्	देवताओंको	**स्व परमं धाम**	अपने परम धाम
इति आदिश्य	यह आदेश देकर	**ययौ**	चले गये ॥२६॥
च महीं	तथा पृथ्वीको		

शूरसेनो यदुपतिर्मथुरामावसन् पुरीम् ।
माथुराञ्छूरसेनांश्च विषयान् बुभुजे पुरा ॥२७॥

शूरसेनः यदुपतिः मथुरां आवसन् पुरीं माथुरान् शूरसेनान् च विषयान् बुभुजे पुरा ॥२७॥

पुरा	पहिले	**माथुरान्**	माथुर
यदुपतिः	यादवराज (सहस्रार्जुन पुत्र)	**च शूरसेनान्**	तथा शूरसेन
		विषयान्	प्रदेशोंका
शूरसेनः	शूरसेनने	**बुभुजे**	उपभोग (शासन)
मथुरां पुरीं	मथुरापुरीमें		किया था ॥२७॥
आवसन्	रहते हुए		

राजधानी ततः साभूत् सर्वयादवभूभुजाम् ।
मथुरा भगवान् यत्र नित्यं संनिहितो हरिः ॥२८॥

राजधानी ततः सा अभूत् सर्वयादव भूभुजां मथुरा भगवान् यत्र नित्यं संनिहितः हरिः ॥२८॥

यत्र हरिः	जिसमें श्रीहरि	**सर्वयादव**	सभी यदुवंशी
सदा	सदा	**भूभुजां**	राजाओंकी
सन्निहितः	विराजमान रहते हैं	**राजधानी**	राजधानी
सा मथुरा	वह मथुरा	**अभूत्**	हो गयी ॥२८॥
ततः	तबसे		

तस्यां तु कर्हिचिच्छौरिर्वसुदेवः कृतोद्वहः ।
देवक्या सूर्यया सार्धं प्रयाणे रथमारुहत् ॥२९॥

तस्यां तु कर्हिचित् शौरिः वसुदेवः कृत उद्वहः देवक्या सूर्यया सार्धं प्रयाणे रथं आरुहत् ॥२९॥

तस्यां तु	उस (मथुरा) में तो	**कृत उद्वहः**	विवाह करके
कर्हिचित्	किसी समय	**सूर्यया देवक्या**	नवोढ़ा देवकीके
शौरिः	शूरनन्दन	**सार्धं प्रयाणे**	साथ जानेके लिए
वसुदेवः	वसुदेवजी	**रथं आरुहत्**	रथपर चढ़े ॥२९॥

उग्रसेनसुतः कंसः स्वसुः प्रियचिकीर्षया ।
रश्मीन् हयानां जग्राह रौक्मै रथशतैर्वृतः ॥३०॥

उग्रसेनसुतः कंसः स्वसुः प्रिय चिकीर्षया रश्मीन् हयानां जग्राह रौक्मै रथशतैः वृतः ॥३०॥

उग्रसेनसुतः	उग्रसेनका पुत्र	**रथशतैः**	सैकड़ों रथोंसे
कंसः	कंसने	**वृतः**	घिरे हुए (उस रथके)
स्वसुः प्रिय	बहिनको प्रसन्न	**हयानां**	घोड़ोंकी
चिकीर्षया	करनेकी इच्छासे	**रश्मीन्**	लगाम
रौक्मै	स्वर्ण मण्डित	**जग्राह**	पकड़ी ॥३०॥

चतुःशतं पारिबर्हं गजानां हेममालिनाम् ।
अश्वानामयुतं सार्धं रथानां च त्रिषट्शतम् ॥३१॥

चतुः शतं पारिबर्हं गजानां हेममालिनां अश्वानां अयुतं स अर्धं रथानां च त्रिषट् शतम् ॥३१॥

पारिबर्हं	दहेजके रूपमें	स अर्धं अयुत	पन्द्रह सहस्र
हेममालिनां	स्वर्ण मालाधारी	अश्वानां	घोड़े
चतुः शतं	चार सौ	च त्रिषट् शतं	तथा अठारह सौ
गजानां	हाथी	रथानां	रथ ॥३१॥

दासीनां सुकुमारीणां द्वे शते समलंकृते ।
दुहित्रे देवकः प्रादाद् याने दुहितृवत्सलः ॥३२॥

दासीनां सुकुमारीणां द्वे शते सम अलङ्कृते दुहित्रे देवकः प्रादात् याने दुहितृ वत्सलः ॥३२॥

द्वे शते	दो सौ	वत्सलः	स्नेह करनेवाले
सम अलंकृते	पूर्णतः कलंकृत	देवकः	देवकजीने
सुकुमारीणां	सुकुमारी	दुहित्रे याने	पुत्रीके जाते समय
दासीनां	दासियां	प्रादात्	उसे प्रदान कीं ॥३२॥
दुहितृ	पुत्रीसे		

शङ्खतूर्यमृदङ्गाश्च नेदुर्दुन्दुभयः समम् ।
प्रयाणप्रक्रमे तावद् वरवध्वोः सुमंगलम् ॥३३॥

शंख तूर्य मृदंगाः च नेदुः दुन्दुभयः समं प्रयाण प्रक्रमे तावत् वर वध्वोः सुमंगलम् ॥३३॥

वर वध्वोः	वर-वधूके	शंख तूर्य	शंख, तुरही,
प्रयाण	विदा होनेके	च मृदंगाः	तथा मृदंग
प्रक्रमे	उपक्रमके	दुन्दुभयः	दुन्दुभियां
तावत्	समय	समं नेदुः	साथ ही बजने लगी ॥३३॥
सुमंगलं	मंगलमय		

पथि प्रग्रहिणं कंसमाभाष्याहाशरीरवाक् ।
अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता यां वहसेऽबुध ॥३४॥

पथि प्रग्रहिणं कंसं आभाष्य आह अशरीरवाक् अस्याः त्वां अष्टमः गर्भः हन्ता यां वहसे अबुध ॥३४॥

पथि	मार्गमें	वहसे	लिये जा रहा है
प्रग्रहिणं कंसं	सारथि बने कंसको	त्वां अस्याः	तुझे इसके
आभाष्य	सम्बोधित करके	अष्टमः	आठवें
अशरीरवाक्	अशरीरी वाणीने	गर्भः	गर्भसे (उत्पन्न)
आह	कहा–	हन्ता	मारनेवाला होगा'
अबुध	'मूर्ख !		॥३४॥
यां	जिसे तू		

इत्युक्तः स खलः पापो भोजानां कुलपांसनः ।
भगिनीं हन्तुमारब्धः खंगपाणिः कचेऽग्रहीत् ॥३५॥

इति उक्तः स खलः पापः भोजानां कुलपांसनः भगिनीं हन्तुं आरब्धः खंगपाणिः कचे अग्रहीत् ॥३५॥

इति	इस प्रकार	खंगपाणिः	हाथमें तलवार
उक्तः	कहे जानेपर		उठाकर
स खलः पापः	उस दुष्ट पापी	कचे	उसका केश
भोजानां	भोजवंशियोंके	अग्रहीत्	पकड़कर
कुलपांसनः	कुलकलंकने	हन्तुं	मारनेको
भगिनीं	बहिनको	आरब्धः	उद्यत हो गया
			॥३५॥

तं जुगुप्सितकर्माणं नृशंसं निरपत्रपम् ।
वसुदेवो महाभाग उवाच परिसान्त्वयन् ॥३६॥

तं जुगुप्सित कर्माणं नृशंसं निरपत्रपं वसुदेवः महाभाग उवाच परिसान्त्वयन् ॥३६॥

तं निरपत्रपं	उस निर्लज्ज,	परिसान्त्वयन्	भली प्रकार समझाते हुए
नृशंसं	महाक्रूर		
जुगुप्सित	निन्द्य-	महाभाग	महाभाग
कर्माणं	कर्माको	वसुदेवः	वसुदेवजी
		उवाच	बोले ॥३६॥

वसुदेव उवाच

श्लाघनीयगुणः शूरैर्भवान् भोजयशस्करः ।
स कथं भगिनीं हन्यात् स्त्रियमुद्वाहपर्वणि ॥३७॥

श्लाघनीय गुणः शूरैः भवान् भोज यशस्करः स कथं भगिनीं हन्यात् स्त्रियं उद्वाह पर्वणि ॥३७॥

भवान् शूरैः	आप शूर-वीरों द्वारा	भगिनीं	अपनी बहिनको
श्लाघनीय	प्रशंसनीय	उद्वाह पर्वणि	उसके विवाहोत्सवके समय
गुणः	गुणों वाले हैं,		
भोज	भोजवंशको	कथं हन्यात्	कैसे मार रहे हैं ॥३७॥
यशस्करः	यश देनेवाले हैं,		
स स्त्रियं	ऐसे आप स्त्रीको,		

मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते ।
अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः ॥३८॥

मृत्युः जन्मवतां वीर देहेन सह जायते अद्य वा अब्द शतान्ते वा मृत्युः वै प्राणिनां ध्रुवः ॥३८॥

वीर	वीर !	वा	अथवा
जन्मवतां	जन्म लेनेवालोंकी	अब्द शतान्ते	सौ वर्षके बाद हो
मृत्युः	मृत्यु	प्राणिनां	प्राणियोंकी
देहेन सह	शरीरके साथ ही	मृत्युः वै	मृत्यु तो
जायते	उत्पन्न हो जाती है,	ध्रुवः	निश्चित होती ही है ॥३८॥
अद्य वा	आज हो		

देहे पञ्चत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः ।
देहान्तरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः ॥३९॥

देहे पञ्चत्वं आपन्ने देही कर्म अनुगः अवशः देहान्तरं अनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः ॥३९॥

देहे	शरीरके	**देहान्तरं**	दूसरा शरीर
पञ्चत्वं	पञ्च-तत्त्वोंमें	**अनुप्राप्य**	पाकर
आपन्ने	मिल जानेपर	**प्राक्तनं**	पहिला (सूक्ष्म)
देही अवशः	जीव विवश होकर	**वपुः त्यजते**	शरीर छोड़ता है ॥३९॥
कर्म अनुगः	अपने कर्मोंके पीछे चलता		

व्रजंस्तिष्ठन् पदैकेन यथैवैकेन गच्छति ।
यथा तृणजलूकैवं देही कर्मगतिं गतः ॥४०॥

व्रजन् तिष्ठन् पदा एकेन यथा एव एकेन गच्छति यथा तृणजलूका एवं देही कर्मगतिं गतः ॥४०॥

यथा व्रजन्	जैसे चलते समय	**एवं देही**	इसी प्रकार जीव
एकेन तिष्ठन्	एकसे खड़े रहकर	**कर्मगतिं**	कर्मानुसार
एकेन पदा	एक पैरसे	**गतः**	(एकसे दूसरे देहमें) जाता है ॥४०॥
गच्छति	आगे जाता है		
यथा	जैसे		
तृणजलूका	तृणाजलूका (तृणपर रेंगनेवाला कीड़ा एक पत्ती पकड़कर तब पिछली पत्ती छोड़ता है)		

स्वप्ने यथा पश्यति देहमीदृशं
मनोरथेनाभिनिविष्टचेतनः ।

दृष्टश्रुताभ्यां मनसानुचिन्तयन्
प्रपद्यते तत् किमपि ह्यपस्मृतिः ॥४१॥

स्वप्ने यथा पश्यति देहं ईदृशं मनोरथेन अभिनिविष्ट चेतनः दृष्ट श्रुताभ्यां मनसा अनुचिन्तयन् प्रपद्यते तत् किमपि हि अपस्मृतिः ॥४१॥

दृष्ट श्रुताभ्यां	देखी या सुनी बातों-को	अभिनिविष्ट	लगे हुए
मनसा	मनसे बार-बार	चेतनः	चित्तवाला
अनुचिन्तयन्	सोचता हुआ	हि	क्योंकि
यथा स्वप्ने	जैसे स्वप्नमें	अपस्मृतिः	उसकी पूर्व स्मृति भूल जाती है
ईदृशं देहं	इसी प्रकारका शरीर	तत् किमपि	उसीमें-से कोई (जन्म)
पश्यति	देखता है (ऐसे ही)	प्रपद्यते	पाता है ॥४१॥
मनोरथेन	कामनाओंमें		

यतो यतो धावति दैवचोदितं
मनो विकारात्मकमाप पञ्चसु ।
गुणेषु मायारचितेषु देह्यसौ
प्रपद्यमानः सह तेन जायते ॥४२॥

यतः यतः धावति दैव चोदितं मनः विकार आत्मकं आप पञ्चसु गुणेषु माया रचितेषु देही असौ प्रपद्यमानः सह तेन जायते ॥४२॥

दैव	प्रारब्धकी	यतः यतः	जिन-जिन
चोदितं	प्रेरणासे	धावति	रूपोंमें जाता है,
विकार आत्मकं	विकारवान्	असौ देही	यह जीव
मनः	मन	प्रपद्यमानः	उन्हींको प्राप्त करके
माया गुणेषु	मायाके गुणोंसे	तेन	उसी (शरीर) के
रचितेषु	निर्मित	सह	साथ
पञ्चसु	पञ्चभूत	जायते	उत्पन्न होता है ॥४२॥
आत्मकं आप	स्वरूप प्राप्त करके		

ज्योतिर्यथैवोदकपार्थिवेष्वदः
समीरवेगानुगतं विभाव्यते ।
एवं स्वमायारचितेष्वसौ पुमान्
गुणेषु रागानुगतो विमुह्यति ॥४३॥

ज्योतिः यथा उदक पार्थिवेषु अदः समीर वेग अनुगतं विभाव्यते एवं स्वमाया रचितेषु असौ पुमान् गुणेषु राग अनुगतः विमुह्यति ॥४३॥

उदक्	जलके	विभाव्यते	जान पड़ता है
पार्थिवेषु	स्थानोंके (सरोवरादि)	एवं	इसी प्रकार
		स्वमाया	अपनी मायासे
अदः	जलमें	रचितेषु	निर्मित
यथा	जैसे (सूर्य-चन्द्रिका) प्रतिबिम्ब रूप	गुणेषु	(सत्वादि) गुणोंमें
		असौ पुमान्	यह चेतन पुरुष
ज्योतिः	ज्योति	राग	अपनी
समीर वेग	वायुवेगसे	अनुगतः	आसक्तिके पीछे
अनुगतः	हिलते (जल) के समान	विमुह्यति	मोहित हो जाता है ॥४३॥

तस्मान्न कस्यचिद् द्रोहमाचरेत् स तथाविधः ।
आत्मनः क्षेममन्विच्छन् द्रोग्धुर्वै परतो भयम् ॥४४॥

तस्मात् न कस्यचित् द्रोहं आचरेत् स तथा विधः आत्मनः क्षेमं अन्विच्छन् द्रोग्धुः वै परतः भयम् ॥४४॥

तस्मात्	इसलिए	स तथा	वह भी वैसा ही
आत्मनः क्षेमं	अपना कल्याण	विधः	करेगा
अन्विच्छन्	चाहते हुए	वै	निश्चय
कस्यचित्	किसीसे भी	द्रोग्धुः	करनेवाले को
द्रोहं न	शत्रुता न	परतः भयं	दूसरेसे भय होता है ॥४४॥
आचरेत्	करे,		

एषा तवानुजा बाला कृपणा पुत्रिकोपमा ।
हन्तुं नार्हसि कल्याणीमिमां त्वं दीनवत्सलः ॥४५॥

एषा तव अनुजा बाला कृपणा पुत्रिका उपमा हन्तुं न अर्हसि कल्याणीं इमां त्वं दीनवत्सलः ॥४५॥

एषा तव	यह आपकी	**त्वं दीन-**	आप दीनोंपर
अनुजा बाला	छोटी बहिन बच्ची है,	**वत्सलः**	स्नेह करनेवाले हैं
		इमां कल्याणीं	इस कल्याणीको
कृपणा	दीना और	**हन्तुं न**	(आपको) मरना नहीं
पुत्रिका	(आपकी) पुत्रीके	**अर्हसि**	चाहिए ॥४५॥
उपमा	समान है,		

श्रीशुक उवाच

एवं स सामभिर्भेदैर्बोध्यमानोऽपि दारुणः ।
न न्यवर्तत कौरव्य पुरुषादाननुव्रतः ॥४६॥

एवं स सामभिः देवैः बोध्यमानः अपि दारुणः न न्यवर्तत कौरव्य पुरुषाद अननुव्रतः ॥४६॥

कौरव्य	कुरुश्रेष्ठ !	**पुरुषाद**	राक्षसोंका
एवं	इस प्रकार	**अननुव्रतः**	अनुवर्तन करनेवाला
देवैः	वसुदेवजी द्वारा	**स दारुणः**	वह क्रूर (कंस)
सामभिः	सामनीति द्वारा	**न्यवर्तत न**	निवृत्त नहीं हुआ ॥४६॥
बोध्यमानः	समझाये जानेपर		
अपि	भी		

निर्बन्धं तस्य तं ज्ञात्वा विचिन्त्यानकदुन्दुभिः ।
प्राप्तं कालं प्रतिव्योढुमिदं तत्रान्वपद्यत ॥४७॥

निर्बन्धं तस्य तं ज्ञात्वा विचिन्त्य आनकदुन्दुभिः प्राप्तं कालं प्रतिव्योढुं इदं तत्र अन्वपद्यत ॥४७॥

तस्य तं	उस (कंस) का वह	विचिन्त्य	सोचकर
निर्बन्धं ज्ञात्वा	हठ जानकर	तत्र	उस विषयमें
आनकदुन्दुभिः	वसुदेवजी	इदं	इस
प्राप्तं कालं	उपस्थित कालको	अन्वपद्यत	निश्चयपर पहुँचे
प्रतिव्योढुं	ढाल देनेके लिए		॥४७॥

मृत्युर्बुद्धिमतापोह्यो यावद्बुद्धिबलोदयम् ।
यद्यसौ न निवर्तेत नापराधोऽस्ति देहिनः ॥४८॥

मृत्युः बुद्धिमता अपोह्यः यावत् बुद्धि बल उदयं यदि असौ न निवर्तेत न अपराधः अस्ति देहिनः ॥४८॥

बुद्धिमता	बुद्धिमानको	यदि असौ	यदि (फिर भी) यह
यावत् बुद्धि	जितनी बुद्धि	निवर्तेत न	निवृत्त न हो तो
बल उदयं	और बलका मद	देहिनः	शरीरधारीका
मृत्युः	मृत्युको	अपराधः	(कोई) अपराध
अपोह्यः	हटाना चाहिए	न अस्ति	नहीं है ॥४८॥

प्रदाय मृत्यवे पुत्रान् मोचये कृपणामिमाम् ।
सुता मे यदि जायेरन् मृत्युर्वा न म्रियेत चेत् ॥४९॥

प्रदाय मृत्यवे पुत्रान् मोचये कृपणां इमां सुता मे यदि जायेरन् मृत्युः वा न म्रियेत चेत् ॥४९॥

मृत्यवे	मृत्यु रूप (कंस) को	यदि जायेरन्	यदि उत्पन्न होंगे
पुत्रान् प्रदाय	पुत्रोंको देकर	चेत् मृत्युः	यदि मृत्युरूप (कंस)
इमां कृपणां	इस दीनाको	वा न	तब तक नहीं
मोचये	बचाऊँ,	म्रियेत	मरेगा ॥४९॥
मे सुता	मेरे पुत्र		

विपर्ययो वा किं न स्याद् गतिर्धातुर्दुरत्यया ।
उपस्थितो निवर्तेत निवृत्तः पुनरापतेत् ॥५०॥

विपर्ययः वा किं न स्यात् गतिः धातुः दुरत्यया उपस्थितः निवर्तेत निवृत्तः पुनः आपतेत् ॥५०॥

वा विपर्ययः	अथवा इससे उलटा	निवर्तेत	निवृत्त हो जाती है,
किं न स्यात्	क्यों नहीं हो सकता	निवृत्तः	निवृत्त हुई
धातुः गतिः	विधाताकी गति	पुनः आपतेत्	फिर आ जाती है
दुरत्यया	दुर्गम है,		॥५०॥
उपस्थितः	उपस्थित (मृत्यु)		

अग्नेर्यथा दारुवियोगयोगयो
रदृष्टतोऽन्यन्न निमित्तमस्ति ।
एवं हि जन्तोरपि दुर्विभाव्यः
शरीरसंयोगवियोगहेतुः ॥५१॥

अग्नेः यथा दारु वियोग योगयोः अदृष्टतः अन्यत् न निमित्तं अस्ति एवं हि जन्तोः अपि दुर्विभाव्यः शरीर संयोग वियोग हेतुः ॥५१॥

यथा	जैसे (दावाग्नि लगनेपर)	न अस्ति	नहीं है
अग्नेः	अग्निका	हि जन्तोः	क्योंकि प्राणीके
दारु	(किसी) काष्ठसे	शरीर संयोग	शरीर मिलने और
वियोग	न मिलना	वियोग	उसके वियोगका
योगयोः	या संयोग होना	हेतुः	कारण
अदृष्टतः	अदृष्टसे	अपि दुर्विभाव्यः	भी अचिन्त्य है
अन्यत् निमित्तं	भिन्न कारण		॥५१॥

एवं विमृश्य तं पापं यावदात्मनिदर्शनम् ।
पूजयामास वै शौरिर्बहुमानपुरः सरम् ॥५२॥

वं विमृश्य तं पापं यावत् आत्मनिदर्शनं पूजयामास वै शौरिः बहुमान पुरःसरम् ॥५२॥

यावत्	जितनी	एवं	इस प्रकार
आत्मनिदर्शनं	अपनी बुद्धि थी (उसके अनुसार)	विमृश्य	विचार करके
		शौरिः	शूरनन्दन वसुदेवजीने

वै तं	निश्चय उस	पुरः सरम्	सहित
पापं	पापी कंसका	पूजयामास	सत्कार किया ॥५२॥
बहुमान	बहुत आदर		

प्रसन्नवदनाम्भोजो नृशंसं निरपत्रपम् ।
मनसा दूयमानेन विहसन्निदमब्रवीत् ॥५३॥

प्रसन्न वदन अम्भोजः नृशंसं निरपत्रपं मनसा दूयमानेन विहसन् इदं अब्रवीत् ॥५३॥

मनसा	मनसे	विहसन्	खुलकर हँसते हुए
दूयमानेन	दुःखी होते हुए भी	निरपत्रपं	निर्लज्ज
प्रसन्नवदन	खिले मुख	नृशंसं	क्रूर (कंस) से
अम्भोजः	कमलसे	इदं अब्रवीत्	यह बोले ॥५३॥

वसुदेव उवाच

न ह्यस्यास्ते भयं सौम्य यद् वागाहाशरीरिणी ।
पुत्रान् समर्पयिष्येऽस्या यतस्ते भयमुत्थितम् ॥५४॥

न हि अस्याः ते भयं सौम्य यत् वाक् आह अशरीरिणी पुत्रान् समर्पयिष्ये अस्या यतः ते भयं उत्थितम् ॥५४॥

अशरीरिणी वाक्	अशरीरी वाणीने	भयं न	भय नहीं है,
यत् आह	जो कहा है,	यतः ते भयं	जिनसे तुम्हें भय
सौम्य	सौम्य ! (उसके अनुसार)	उत्थितं	उत्पन्न हुआ है (उन)
हि ते अस्याः	क्योंकि तुम्हें इससे	अस्या पुत्रान्	इसके पुत्रोंको
		समर्पयिष्ये	(तुम्हें) समर्पित करू दूंगा ॥५४॥

श्रीशुक उवाच

स्वसुर्वधान्निववृते कंसस्तद्वाक्यसारवित् ।
वसुदेवोऽपि तं प्रीतः प्रशस्य प्राविशद् गृहम् ॥५५॥

स्वसुः वधात् निवृत्ते कंसः तत् वाक्य सारवित् वसुदेवः अपि तं प्रीतः प्रशस्य प्राविशत् गृहम् ॥५५॥

तत् वाक्य	उनकी बातके	वसुदेवः अपि	वसुदेवजी भी
सारवित्	महत्वको जाननेवाला	प्रीतः	प्रसन्न होकर
		तं प्रशस्य	उसकी प्रशंसा करके
कंसः	कंस	गृहं	अपने घरमें
स्वसुः वधात्	बहिनके वधसे	प्राविशत्	प्रविष्ट हुए ॥५५॥
निवृत्ते	निवृत्त हो गया		

अथ काल उपावृत्ते देवकी सर्वदेवता ।
पुत्रान् प्रसुषुवे चाष्टौ कन्यां चैवानुवत्सरम् ॥५६॥

अथ काल उपावृत्ते देवकी सर्वदेवता पुत्रान् प्रसुषुवे च अष्टौ कन्यां च एव अनुवत्सरम् ॥५६॥

अथ काल	फिर समय	अष्टौ पुत्रान्	आठ पुत्रों
उपावृत्ते	आनेपर	च कन्यां	तथा एक कन्याको
सर्वदेवता	सर्वदेवतामयी	एव	भी
देवकी	देवकीजीने	प्रसुषुवे	जन्म दिया ॥५६॥
अनुवत्सरं	प्रत्येक वर्षमें एक-एक करके		

कीर्तिमन्तं प्रथमजं कंसायानकदुन्दुभिः ।
अर्पयामास कृच्छ्रेण सोऽनृतादतिविह्वलः ॥५७॥

कीर्तिमन्तं प्रथमजं कंसाय आनकदुन्दुभिः अर्पयामास कृच्छ्रेण सः अनृतात् अति विह्वलः ॥५७॥

प्रथमजं	पहिले उत्पन्न हुए	विह्वलः	व्याकुल होकर
कीर्तिमन्तं	कीर्तिमानको	कृच्छ्रेण	बड़े कष्टसे
सः	उन	कंसाय	कंसको
आनकदुन्दुभिः	वसुदेवजीने	अर्पयामास	अर्पित कर दिया ॥५७॥
अनृतात्	झूठसे		
अति	अत्यन्त		

किं दुःसहं नु साधूनां विदुषां किमपेक्षितम् ।
किमकार्यं कदर्याणां दुस्त्यजं किं धृतात्मनाम् ॥५८॥

किं दुःसहं नु साधूनां विदुषां किं अपेक्षितं किं अकार्यं कदर्याणां दुस्त्यजं किं धृत आत्मनाम् ॥५८॥

नु	अहो,	किं	क्या (कुकर्म)
साधूनां	सत्पुरुषोंके लिए	अकार्यं	नहीं करने योग्य है,
किं दुःसहं	क्या असह्य है	धृत आत्मनां	जितेन्द्रिय पुरुष
विदुषां	विद्वानोंको	किं	कौन-सा त्याग
किं	किस बातकी	दुस्त्यजं	नहीं कर सकते
अपेक्षितं	अपेक्षा हो सकती है,		॥५८॥
कदर्याणां	नीचोंके लिए		

दृष्ट्वा समत्वं तच्छौरेः सत्ये चैव व्यवस्थितिम् ।
कंसस्तुष्टमना राजन् प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥५९॥

दृष्ट्वा समत्वं तत् शौरेः सत्ये च एव व्यवस्थितिम् कंसः तुष्टमना राजन् प्रहसन् इदं अब्रवीत् ॥५९॥

राजन्	राजन् !	व्यवस्थितिम्	स्थिर रहना
शौरेः	शूरनन्दन वसुदेवजी-	दृष्ट्वा	देखकर
	की	तुष्टमना	सन्तुष्ट चित्त
तत् समत्वं	वह समता	कंसः प्रहसन्	कंस हँसता हुआ
च सत्ये एव	तथा सत्यपर ही	इदं अब्रवीत्	यह बोला ॥५९॥

प्रतियातु कुमारोऽयं न ह्यस्मादस्ति मे भयम् ।
अष्टमाद् युवयोर्गर्भान्मृत्युर्मे विहितः किल ॥६०॥

प्रतियातु कुमारः अयं न हि अस्मात् अस्ति मे भयं अष्टमात् युवयोः गर्भात् मृत्युः मे विहितः किल ॥६०॥

अयं कुमारः	यह कुमार	युवयोः	दोनोंके
प्रतियातु	लौट जाय	अष्टमात्	आठवें
हि अस्मात्	क्योंकि इससे	गर्भात्	गर्भ (के बालक) से
मे भयं	मुझे (कोई) डर	मे मृत्युः	मेरी मृत्यु
न अस्ति	नहीं है,	विहितः	बदी है ॥६०॥
किल	अरे, आप		

तथेति सुतमादाय ययावानकदुन्दुभिः
नाभ्यनन्दत तद्वाक्यमसतोऽविजितात्मनः ॥६१॥

तथा इति सुतं आदाय ययाः आनकदुन्दुभिः न अभ्यनन्दत तत् वाक्यं असतः अविजित आत्मनः ॥६१॥

तथा	'अच्छा'	अविजित आत्मनः	अजितेन्द्रियकी
इति	ऐसा कहकर	वाक्यं	बातका
आनकदुन्दुभिः	वसुदेवजी	अभ्यनन्दत	अभिनन्दन
सुतं आदाय	पुत्रको लेकर	न	नहीं किया ॥६१॥
ययाः	चले आये; किन्तु		
तत् असतः	उस दुष्ट		

नन्दाद्या ये व्रजे गोपा याश्चामीषां च योषितः ।
वृष्णयो वसुदेवाद्या देवक्याद्या यदुस्त्रियः ॥६२॥

नन्द आद्या ये व्रजे गोपा याः च अमीषां च योषितः वृष्णयः वसुदेव आद्या देवकि आद्या यदुः स्त्रियः ॥६२॥

व्रजे ये	व्रजमें जो	वृष्णयः	वृष्णिवंशी
नन्द आद्या	नन्दादि	च देवकि	तथा देवकी
गोपा	गोप हैं	आद्या	आदि
च अमीषां	तथा इनकी	यदुः	यदुवंशियोंकी
योषितः	पत्नियां	स्त्रियः	स्त्रियां ॥६२॥
वसुदेव आद्या	वसुदेव आदि		

सर्वे वै देवताप्राया उभयोरपि भारत ।
ज्ञातयो बन्धुसुहृदो ये च कंसमनुव्रताः ॥६३॥

सर्वे वै देवताप्राया उभयोः अपि भारत ज्ञातयः बन्धु सुहृदः ये च कंसं अनुव्रताः ॥६३॥

भारत	परीक्षितः	सुहृदः	सुहृत
ये च कंसं	जो भी कंसके	उभयोः अपि	दोनों ही ओर हैं,
अनुव्रताः	अनुयायी	वै सर्वे	निश्चय वे सब
ज्ञातयः	जातिवाले	देवताप्राया	प्रायः देवता हैं
बन्धु	बन्ध-बान्धव,		॥६३॥

एतत् कंसाय भगवाञ्छशंसाभ्येत्य नारदः ।
भूमेर्भारायमाणानां दैत्यानां च वधोद्यमम् ॥६४॥

एतत् कंसाय भगवान् शशंस अभि एत्य नारदः भूमेः भाराय माणानां दैत्यानां च वध उद्यमम् ॥६४॥

भगवान्	भगवान	दैत्यानां	दैत्योंके
नारदः	नारदने	वध उद्यमं च	वधोद्योगको भी
अभि एत्य	पास आकर	कंसाय	कंसको
एतत् भूमेः	यह पृथ्वीके	शशंस	बतलाया ॥६४॥
भारायमाणानां	भारभूत बने		

ऋषेर्विनिर्गमे कंसो यदून् मत्वा सुरानिति ।
देवक्या गर्भसम्भूतं विष्णुं च स्ववधं प्रति ॥६५॥

ऋषेः विनिर्गमे कंसः यदून् मत्वा सुरान् इति देवक्या गर्भ सम्भूतं विष्णुं च स्ववधं प्रति ॥६५॥

ऋषेः इति	ऋषिके यह कहकर	देवक्या गर्भ	देवकीके गर्भसे
विनिर्गमे	निकल जानेपर	स्ववधं प्रति	अपने वधके लिए
कंसः	कंसने	विष्णुं	विष्णुको
यदून्	यदुवंशियोंको	सम्भूतं	उत्पन्न (मानकर)
सुरान् मत्वा	देवता मानकर		॥६५॥
च	तथा		

देवकीं वसुदेवं च निगृह्य निगडैर्गृहे ।
जातं जातमहन् पुत्रं तयोरजनशंकया ॥६६॥

देवकीं वसुदेवं च निगृह्य निगडैः गृहे जातं जातं अहन् पुत्रं तयोः अजन शङ्कया ॥६६॥

देवकीं च	देवकी और	शङ्कया	आशंकासे
वसुदेवं	वसुदेवको	जातं जातं	उत्पन्न होनेवाले प्रत्येक
निगडै.	बेड़ीसे (जड़कर)		
गृहे निगृह्य	एक घरमें बन्द करके	पुत्रं	पुत्रको
तयोः अजन	उन अजन्मा विष्णु-की	अहन्	मारता गया ॥६६॥

मातरं पितरं भ्रातृन् सर्वांश्च सुहृदस्तथा ।
घ्नन्ति ह्यसुतृपो लुब्धा राजानः प्रायशो भुवि ॥६७॥

मातरं पितरं भ्रातृन् सर्वान् च सुहृदः तथा घ्नन्ति हि असुतृपः लुब्धा राजानः प्रायशः भुवि ॥६७॥

हि	क्योंकि	मातरं पितरं	माता-पिता,
असुतृपः	अपने ही प्राणोंको तृप्त करनेवाले	भ्रातृन्	भाई
		च सुहृदः	एवं सुहृदोंको
लुब्धा राजानः	लोभी राजा लोग	तथा	इसी प्रकार
भुवि प्रायशः	पृथ्वीपर प्रायः	घ्नन्ति	मार देते हैं ॥६७॥

आत्मानमिह संजातं जानन् प्राग् विष्णुना हतम् ।
महासुरं कालनेमिं यदुभिः स व्यरुध्यत ॥६८॥

आत्मानं इह सञ्जातं जानन् प्राक् विष्णुना हतं महासुरं कालनेमिं यदुभिः स व्यरुध्यत ॥६८॥

प्राक्	पहिले जन्ममें	कालनेमिं	कालनेमि
विष्णुना	विष्णु द्वारा	इह	यहां (मथुरामें)
हतं	मारा गया	सञ्जातं	उत्पन्न
महासुरं	महा असुर	आत्मानं	अपनेको

जानन्	जानकर	व्यरुध्यत	विरोध कर लिया
स यदुभिः	उसने यदुवंशियोंसे		॥६८॥

उग्रसेनं च पितरं यदुभोजान्धकाधिपम् ।
स्वयं निगृह्य बुभुजे शूरसेनान् महाबलः ॥६९॥

उग्रसेनं च पितरं यदु भोज अन्धक अधिपं स्वयं निगृह्य बुभुजे शूरसेनान् महाबलः ॥६९॥

यदु भोज	यादव, भोज,	महाबलः	अत्यन्त बलवान कंस
अन्धक	अन्धक वंशियोंके	शूरसेनान्	शूरसेन देशका (राज्य)
अधिपं	स्वामी	स्वयं	स्वयं
पितरं	अपने पिता	बुभुजे	भोगने लगा ॥६९॥
उग्रसेनं च	उग्रसेनको भी		
निगृह्य	बन्दी बनाकर		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे
श्रीकृष्णावतारोपक्रमे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

प्रलम्बबकचाणूरतृणावर्तमहाशनैः ।

मुष्टिकारिष्टद्विविदपूतनाकेशिधेनुकैः ॥१॥

प्रलम्ब, बक चाणूर, तृणावर्त, महा अशनैः (अघासुर) मुष्टिक, अरिष्ट, द्विविद, पूतना, केशि, धेनुकं, (धेनुक) ॥१॥*

अन्यैश्चासुरभूपालैर्बाणभौमादिभिर्युतः ।

यदूनां कदनं चक्रे बली मागधसंश्रयः ॥२॥

अन्यैः च असुर भूपालैः बाण भौम आदिभिः युतः यदूनां कदनं चक्रे बली मागध संश्रयः ॥२॥

बली	बलवान कंस	संश्रयः	आश्रय लेकर
च अन्यैः	तथा दूसरे	यदूनां	यदुवंशियोंका
असुर भूपालैः	असुर नरेश	कदनं चक्रे	दमनकरने लगा ॥२॥
बाण भौम	बाणासुर, भौमासुर		
आदिभिः युतः	आदिसे मिलकर		
मागध	मगधराज जरासंधका		

ते पीडिता निविविशुः कुरुपञ्चालकेकयान् ।

शाल्वान् विदर्भान् निषधान् विदेहान् कोसलानपि ॥३॥

ते पीडिता निविविशुः कुरु पञ्चाल केकयान् शाल्वान् विदर्भान् निषधान् विदेहान् कोसलान् अपि ॥३॥

---

* सब केवल नाम हैं ।

ते पीडिता	वे पीड़ित होकर	निषधान्	निषध,
कुरु	कुरु,	विदेहान्	मैथिल
पञ्चाल	पञ्चाल,	कोसलान्	और कोसल
केकयान	केकय,		(राज्यों) में
शाल्वान्	शाल्व,	अपि	भी
विदर्भान्	विदर्भ,	निविविशुः	जा बसे । ३॥

एके तमनुरुन्धाना ज्ञातयः पर्युपासते ।
हतेसु षट्सु बालेषु देवक्या औग्रसेनिना ॥४॥

एके तं अनुरुन्धाना ज्ञातयः पर्युपासते हतेसु षट्सु बालेषु देवक्या औग्रसेनिना ॥४॥

एके	कोई	औग्रसेनिना	उग्रसेन पुत्र कंस
ज्ञातयः	जातिवाले (यादव)		द्वारा
तं	उसकी	देवक्या	देवकीके
अनुरुन्धाना	अनुकूलता रखकर	षट्सु बालेषु	छः बालकोंके
पर्युपासते	(उसकी) भली	हतेसु	मार दिये जाने
	प्रकार सेवा करते, थे		पर ॥४॥

सप्तमो वैष्णवं धाम यमनन्तं प्रचक्षते ।
गर्भो बभूव देवक्या हर्षशोकविवर्धनः ॥५॥

सप्तमः वैष्णवं धाम यं अनन्तं प्रचक्षते गर्भः बभूव देवक्या हर्ष शोक विवर्धनः ॥५॥

यं अनन्तं	जिन्हें अनन्त	हर्ष शोक	हर्ष और शोकको
प्रचक्षते	कहा जाता है	विवर्धनः	बढ़ानेवाले
वैष्णवं	भगवान विष्णुके	सप्तमः	सातवें
धाम	वे अंश	गर्भः	गर्भके रूपमें
देवक्या	देवकीके	बभूव	स्थित हुए ॥५॥

भगवानपि विश्वात्मा विदित्वा कंसजं भयम् ।
यदूनां निजनाथानां योगमायां समादिशत् ॥६॥

भगवान् अपि विश्वात्मा विदित्वा कंसजं भयं यदूनां निज नाथानां योगमायां सम आदिशत् ॥६॥

निज नाथानां	अपने ही आश्रित	भगवान् अपि	भगवान्ने भी
यदूनां	यदुवंशियोंके लिए	योगमायां	योगमायाको
कंसजं भयं	कंससे होनेवाला भय	सम	समझाकर
विदित्वा	जानकर	आदिशत्	आदेश दिया ॥६॥
विश्वात्मा	विश्वात्मा		

गच्छ देवि व्रजं भद्रे गोपगोभिरलङ्कृतम् ।
रोहिणी वसुदेवस्य भार्याऽऽस्ते नन्दगोकुले ।
अन्याश्च कंससंविग्ना विवरेषु वसन्ति हि ॥७॥

गच्छ देवि व्रजं भद्रे गोप गोभिः अलङ्कृतं रोहिणी वसुदेवस्य भार्या आस्ते नन्द गोकुले अन्याः च कंस संविग्ना विवरेषु वसन्ति हि ॥७॥

भद्रे देवि	कल्याणी देवि !	हि	क्योंकि
गोप गोभिः	गोपों और गायोंसे	अन्याः	दूसरी (उनकी
अलङ्कृतं	सुभूषित		पत्नियां)
व्रजं गच्छ	व्रजमें जाओ !	च	भी
नन्द	वहां नन्दजीके	कंस	कंससे
गोकुले	गोकुलमें	संविग्ना	उद्विग्न होकर
वसुदेवस्य	वसुदेवजीकी	विवरेषु	गुफाओंमें
भार्या रोहिणी	पत्नी रोहिणी	वसन्ति	रहती हैं ॥७॥
आस्ते	हैं		

देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम् ।
तत् संनिकृष्य रोहिण्या उदरे संनिवेशय ॥८॥

देवक्या जठरे गर्भं शेष आख्यं धाम मामकं तत् संनिकृष्य रोहिण्या उदरे संनिवेशय ॥८॥

देवक्या उदरे	देवकीके पेटमें	आख्यं	नामक
मामकं शेष	मेरा शेष	धाम गर्भं	अंश गर्भ रूपमें हैं

तत्	उसे	संनिवेशय	ठीक रीतिसे प्रविष्ट
संनिकृष्य	(वहांसे) खींचकर		कर दो ॥८॥
रोहिण्या उदरे	रोहिणीके पेटमें		

अथाहमंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे ।
प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नन्दपत्न्यां भविष्यसि ॥९॥

अथ अहं अंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नन्दपत्न्यां भविष्यसि ॥९॥

अथ अहं	फिर मैं	शुभे त्वं	और शुभे ! तुम
अंशभागेन	अंशोंके सहित	नन्दपत्न्यां	नन्दकी पत्नी
देवक्याः पुत्रतां	देवकीके पुत्र बनकर	यशोदायां	यशोदासे
प्राप्स्यामि	पहुँचूँगा,	भविष्यसि	उत्पन्न होंगी ॥९॥

अर्चिष्यन्ति मनुष्यास्त्वां सर्वकामवरेश्वरीम् ।
धूपोपहारबलिभिः सर्वकामवरप्रदाम् ॥१०॥

अर्चिष्यन्ति मनुष्याः त्वां सर्वकाम वर ईश्वरीं धूप उपहार बलिभिः सर्वकाम वरप्रदाम् ॥१०॥

सर्वकाम	सब कामनाओं और	धूप उपहार	धूप, उपहार तथा
वर ईश्वरीं	वरदानोंकी स्वामिनी	बलिभिः	मनौतियों द्वारा
त्वां मनुष्याः	तुम्हारी मनुष्य लोग	अर्चिष्यन्ति	पूजन किया करेंगे
सर्वकाम	सब कामनाओंकी		॥१०॥
वरप्रदां	वरदायिनी समझकर		

नामधेयानि कुर्वन्ति स्थानानि च नरा भुवि ।
दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च ॥११॥

नामधेयानि कुर्वन्ति स्थानानि च नरा भुवि दुर्गा इति भद्रकाली इति विजया वैष्णवी इति च ॥११॥

भुवि नरा च	पृथ्वीपर मनुष्य भी	वैष्णवी	वैष्णवी
दुर्गा इति	दुर्गा यह,	इति	इस प्रकार
भद्रकाली इति	भद्रकाली यह,	नामधेयानि	पुकारनेके नाम
विजया च	विजया और	कुर्वन्ति	रखेंगे ॥११॥

कुमुदा चण्डिका कृष्णा माधवी कन्यकेति च ।
माया नारायणीशानी शारदेत्यम्बिकेति च ॥१२॥

कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्यका, इति च (यह भी) माया, नारायणी, ईशानी, शारदा, अम्बिका, इति च ॥१२॥*

गर्भसंकर्षणात् तं वै प्राहुः संकर्षणं भुवि ।
रामेति लोकरमणाद् बलं बलवदुच्छ्रयात् ॥१३॥

गर्भ सङ्कर्षणात् तं वै प्राहुः सङ्कर्षणं भुवि राम इति लोक रमणात् बलं बलवत् उच्छ्रयात् ॥१३॥

तं भुवि	उसे पृथ्वीपर	राम	राम
गर्भ	गर्भका	बलवत्	बलवानोंमें
सङ्कर्षणात्	आकर्षण होनेसे	उच्छ्रयात्	श्रेष्ठ होनेसे
सङ्कर्षणं	सङ्कर्षण,	बलं प्राहुः	बलभद्र कहेंगे ॥१३॥
लोक रमणात्	लोक-रञ्जन करनेसे		

सन्दिष्टैवं भगवता तथेत्योमिति तद्वचः ।
प्रतिगृह्य परिक्रम्य गां गता तत् तथाकरोत् ॥१४॥

सन्दिष्टा एवं भगवता तथा इति ओम् इति तत् वचः प्रतिगृह्य परिक्रम्य गां गता तत् तथा अकरोत् ॥१४॥

एवं	इस प्रकार	सन्दिष्टा	आदेश दिये जानेपर
भगवता	भगवान द्वारा	तथा इति	'अच्छा' इस प्रकार,

---

* ये सब नाम हैं ।

ओम्	'जो आज्ञा'	परिक्रम्य	(उनकी) परिक्रमा
इति	इस प्रकार		करके
तत् वचः	उनकी बात	गां गता	पृथ्वीपर आकर
प्रतिगृह्य	स्वीकार करके	तत् तथा	उसे वैसा ही
		अकरोत्	किया ॥१४॥

गर्भे प्रणीते देवक्या रोहिणीं योगनिद्रया ।
अहो विस्रंसितो गर्भ इति पौरा विचुक्रुशुः ॥१५॥

गर्भे प्रणीते देवक्या रोहिणीं योगनिद्रया अहो विस्रंसितः गर्भ इति पौरा विचुक्रुशुः ॥१५॥

योगनिद्रया	योगनिद्रा द्वारा	गर्भ	गर्भ
देवक्या गर्भे	देवकीका गर्भ	विस्रंसितः	नष्ट हो गया,
रोहिणीं	रोहिणीमें	इति	इस प्रकार
प्रणीते	ले जानेपर	विचुक्रुशुः	आक्रोश करने लगे
पौरा	नगरवासी गण		॥१५॥
अहो	'हाय ! (देवकीका)		

भगवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयंकरः ।
आविवेशांशभागेन मन आनकदुन्दुभेः ॥१६॥

भगवान् अपि विश्वात्मा भक्तानां अभयङ्करः आविवेश अंश भागेन मन आनकदुन्दुभेः ॥१६॥

भक्तानां	भक्तोंको	अंश भागेन	अपने सम्पूर्ण अंशों
अभयङ्करः	अभय देनेवाले		सहित
विश्वात्मा	विश्वात्मा	आनकदुन्दुभेः	वसुदेवजीके
भगवान् अपि	भगवान भी	मन आविवेश	मनमें आविष्ट हुए
			॥१६॥

स बिभ्रत् पौरुषंधाम भ्राजमानो यथा रविः ।
दुरासदोऽतिदुर्धर्षो भूतानां सम्बभूव ह ॥१७॥

स बिभ्रत् पौरुषं धाम भ्राजमानः यथा रविः दुरासदः अति दुर्धर्षः भूतानां सम्बभूव ह ॥१७॥

पौरुषं धाम	परम पुरुषका तेज	भूतानां	प्राणियोंके लिए
बिभ्रत्	धारण करनेके कारण	ह दुरासद	निश्चय असह्य
स	वे	अति दुर्धर्ष	तथा अत्यन्त अदम्य
यथा रविः	जैसे सूर्य हों	सम्बभूव	हो गये ॥१७॥
भ्राजमानः	तेजोमय होकर		

ततो जगन्मङ्गलमच्युतांशं
समाहितं शूरसुतेन देवी ।
दधार सर्वात्मकमात्मभूतं
काष्ठा यथाऽऽनन्दकरं मनस्तः ॥१८॥

ततः जगत् मंगलं अच्युत अंशं समाहितं शूरसुतेन देवी दधार सर्वात्मकं आत्मभूतं काष्ठा यथा आनन्दकरं मनस्तः ॥१८॥

ततः	फिर	यथा	जैसे
जगत् मंगलं	विश्वके मंगलकारी,	आनन्दकरं	आनन्ददायी
आत्मभूतं	आत्म स्वरूप	काष्ठा	पराकाष्ठा हो
सर्वात्मकं	सर्वात्मा	समाहितं	एकाग्र
अच्युत अंशं	श्रीअच्युतके तेजको	मनस्तः	मनसे
शूरसुतेन	शूरनन्दन वसुदेवजी द्वारा	देवी दधार	देवकीजीने धारण किया ॥१८॥

सा देवकी सर्वजगन्निवास-
निवासभूता नितरां न रेजे ।
भोजेन्द्रगेहेऽग्निशिखेव रुद्धा
सरस्वती ज्ञानखले यथा सती ॥१९॥

सा देवकी सर्वजगत् निवास निवासभूता नितरां न रेजे भोजेन्द्र गेहे अग्निशिखा इव रुद्धा सरस्वती ज्ञानखले यथा सती ॥१९॥

सर्वजगत	सम्पूर्ण जगत्के	ज्ञानखले	ज्ञान वञ्चकमें
निवास	आश्रय भगवानकी	सती सरस्वती	सद्विद्या हो
निवासभूता	आश्रय होकर भी	भोजेन्द्र गेहे	कंसके कारागारमें
अग्नि-	(दीपादि) अग्नि	रुद्धा सा देवकी	बन्दी वे देवकी
शिखा इव	शिखाके समान	नितरां रेजे	सर्वथा सुशोभित
यथा	अथवा जैसे	न	नहीं हुई ॥१९॥

तां वीक्ष्य कंसः प्रभयाजितान्तरां
विरोचयन्तीं भवनं शुचिस्मिताम् ।
आहैष मे प्राणहरो हरिर्गुहां
ध्रुवं श्रितो यन्न पुरेयमीदृशी ॥२०॥

तां वीक्ष्य कंसः प्रभया अजित अन्तरां विरोचयन्तीं भवनं शुचिस्मितां आह एष मे प्राणहरः हरिः गुहां ध्रुवं श्रितः यत् न पुरा इयं ईदृशी ॥२०॥

अजित	भगवान अजितको	मे प्राणहरः	'मेरा प्राण-हरण
अन्तरां	भीतर रखनेवाली,		करनेवाला
प्रभया	अपनी कान्तिसे	ध्रुवं	निश्चय इसकी
भवनं	भवनको	गुहां श्रितः	गर्भ गुफामें आ गया
विरोचयन्तीं	आलोकित करती	यत् पुरा	क्योंकि पहिले
शुचिस्मितां	पवित्र मुसकानवाली	इयं ईदृशी न	यह ऐसी नहीं थी
तां वीक्ष्य	उनको देखकर		॥२०॥
कंसः आह	कंस बोला		

किमद्य तस्मिन् करणीयमाशु मे
यदर्थतन्त्रो न विहन्ति विक्रमम् ।
स्त्रियाः स्वसुर्गुरुमत्या वधोऽयं
यशः श्रियं हन्त्यनुकालमायुः ॥२१॥

किं अद्य तस्मिन् करणीयं आशु मे यत् अर्थ तन्त्रः न विहन्ति विक्रमं स्त्रियाः स्वसुः गुरुमत्या वधः अयं यशः श्रियं हन्ति अनुकालं आयुः ॥२१॥

तस्मिन्	उस (हरि) के विषयमें
आशु अद्य	शीघ्र आज
मे किं	मेरा क्या
करणीयं	कर्तव्य है ?
यत् मे	जिससे मेरा
अर्थ तन्त्रः	प्रयोजन पूरा हो और
विक्रमं	पराक्रमको
न विहन्ति	नष्ट न होना पड़े,
स्त्रियाः स्वसुः	(इस) स्त्री, बहिन,
गुरुमत्या	गर्भवतीका
अयं वधः	यह मारा जाना तो
यशः श्रियं	यश, लक्ष्मी तथा
अनुकालं	तत्काल
आयुं हन्ति	आयुका नाश कर देता है ॥२१॥

स एष जीवन् खलु सम्परेतो
वर्तेत योऽत्यन्तनृशंसितेन ।
देहे मृते तं मनुजाः शपन्ति
गन्ता तमोऽन्धं तनुमानिनो ध्रुवम् ॥२२॥

स एष जीवन् खलु सम्परेतः वर्तेत यः अत्यन्त नृशंसितेन देहे मृते तं मनुजाः शपन्ति गन्ता तमः अन्धं तनुमानिनः ध्रुवम् ॥२२॥

स एष	वह यह
जीवन्	पुरुष तो जीते हुए
खलु	अरे मरे हुएके
सम्परेतः	समान है
यः अत्यन्त	जो अत्यन्त
नृशंसितेन	क्रूरतापूर्वक
वर्तेत	व्यवहार करता है,
देहे	उसके शरीरके
मृते	मर जानेपर
मनुजाः	मनुष्य
तं शपन्ति	उसे गाली देते हैं और
ध्रुवं	निश्चय
तनुमानिनः	देहाभिमानियोंके
अन्धं तमः	घोर तमोमय लोक
गन्ता	जाता है ॥२२॥

इति घोरतमाद् भावात् संनिवृत्तः स्वयं प्रभुः ।
आस्ते प्रतीक्षंस्तज्जन्म हरेर्वैरानुबन्धकृत् ॥२३॥

इति घोरतमात् भावात् सन्निवृत्तः स्वयं प्रभुः आस्ते प्रतीक्षन् तत् जन्म हरेः वैर अनुबन्धकृत् ॥२३॥

इति	ऐसा सोचकर	हरेः	श्रीहरिसे
प्रभुः	समर्थ होनेपर भी	वैर	बैर
घोरतमात्	(वधरूप) अत्यन्त भयंकर	अनुबन्धकृत्	बांधकर
भावात्	विचारसे	तत् जन्म	उनके जन्मकी
स्वयं	स्वयं	प्रतीक्षन् आस्ते	प्रतीक्षा करने लगा ॥२३॥
सन्निवृत्तः	निवृत्त हो गया,		

आसीनः संविशंस्तिष्ठन् भुञ्जानः पर्यटन् महीम् ।
चिन्तयानो हृषीकेशमपश्यत् तन्मयं जगत् ॥२४॥

आसीनः संविशन् तिष्ठन् भुञ्जानः पर्यटन् महीं चिन्तयानः हृषीकेशं अपश्यत् तत् मयं जगत् ॥२४॥

असीनः	बैठे,	हृषीकेशं	भगवान् हृषीकेशका
संविशन्	उठते,	चिन्तयानः	चिन्तन करते हुए
तिष्ठन्	खड़े,	जगत्	संसारको
भुञ्जानः	भोजन करते,	तत् मयं	उनका रूप
महीं पर्यटन्	पृथ्वीपर घूमते,	अपश्यत्	देखने लगा ॥२४॥

ब्रह्मा भवश्च तत्रैत्य मुनिभिर्नारदादिभिः ।
देवैः सानुचरैः साकं गोभिर्वृषणमैडयन् ॥२५॥

ब्रह्मा भवः च तत्र एत्य मुनिभिः नारद आदिभिः देवैः स अनुचरैः साकं गीः भिः वृषणं ऐडयन् ॥२५॥

ब्रह्मा च भवः	ब्रह्मा और शिव	देवैः साकं	देवताओंके साथ
नारद	नारद	तत्र एत्य	वहां आकर
आदिभिः	आदि	गीः भिः	वाणी (स्तुति) द्वारा
मुनिभिः	मुनियों तथा	वृषणं	वरदाता प्रभुकी
स अनुचरैः	अपने अनुचरोंके सहित	ऐडयन्	स्तुति करने लगे ॥२५॥

ब्रह्मोवाच*

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥२६॥

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये सत्यस्य सत्यं ऋत सत्यनेत्रं सत्य आत्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥२६॥

सत्यव्रतं	सत्य संकल्प,	ऋत	ऋत (मधुर वाणी)
सत्यपरं	सत्यसे मिलनेवाले		तथा
त्रिसत्यं	तीनों कालोंमें सत्य,	सत्यनेत्रं	सत्य (समदर्शन)
सत्यस्य योनिं	सत्य (दीखनेवाले		रूपी नेत्रवाले
	जगत) के कारण,	च सत्य	तथा सत्य
सत्ये निहितं	सत्यमें ही स्थिति	आत्मकं	स्वरूप
सत्यस्य	सत्य (जगत) के भी	त्वां शरणं	आप शरण दाताकी
सत्यं	परम सत्य,	प्रपन्नाः	हम शरण हैं ॥२६॥

एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूल-
श्चतूरसः पञ्चविधः षडात्मा ।
सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो
दशच्छदो द्विखगो ह्यादिवृक्षः ॥२७॥

एक अयनः असौ द्विफलः त्रिमूलः चतूरसः पञ्चविधः षट् आत्मा सप्त त्वक् अष्टविटपः नव अक्षः दशच्छदी द्विखगः हि आदिवृक्षः ॥२७॥

असौ	यह (विश्वरूप)	एक	एक (प्रकृति) के
आदिवृक्ष	सनातन वृक्ष	अयनः	आश्रयवाला,

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

द्विफलः	दो (सुख-दुःख) फल वाला,	सप्तत्वक्	सात (धातु* रूप) त्वचाका
त्रिमूलः	तीन (गुणों रूप) तनोंका,	अष्टविटपः	आठ शाखाओं (पांच कर्मेन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार) का,
चतूरसः	चार (पुरुषार्थ रूप) रसवाला,	नव अक्षः	नव (इन्द्रिय) छिद्र वाला
पञ्चविधः	पांच साधन (ज्ञानेन्द्रियों) से युक्त	दशच्छदी	दस पत्ते (प्राण) वाला॰
षट् आत्मा	छः स्वभाव (शोक-मोह, जरा-मृत्यु, भूख-प्यास) वाला,	हि	क्योंकि (इसपर)
		द्विखगः	दो (जीव-परमात्मा) पक्षी रहते हैं ॥२७॥

त्वमेक एवास्य सतः प्रसूति-
स्त्वं संनिधानं त्वमनुग्रहश्च ।
त्वन्मायया संवृतचेतसस्त्वां
पश्यन्ति नाना न विपश्चितो ये ॥२८॥

त्वं एक एव अस्य सतः प्रसूतिः त्वं सन्निधानं त्वं अनुग्रहः च त्वत् मायया संवृत चेतसः त्वां पश्यन्ति नाना न विपश्चितः ये ॥२८॥

अस्य सतः	इस सत्य दीखनेवाले (जगत) के	त्वत् मायया	आपकी मायासे
		संवृत चेतसः	आच्छन्न चित्त लोग
एक एव त्वं	अकेले आप ही	त्वां नाना	आपको अनेक रूप
प्रसूतिः	उत्पत्ति स्थान हैं,	पश्यन्ति	देखते हैं
त्वं	आप ही	ये विपश्चितः	जो तत्वज्ञानी है
सन्निधानं	(इसके) अधिष्ठान हैं		वे (अनेक रस
च त्वं	तथा आप ही	न	न हीं देखते) ॥२८॥
अनुग्रहः	पालन करनेवाले हैं,		

* १-चर्म २-रक्त ३-माँस ४-मेद ५-मज्जा ६-अस्थि ७-वीर्य

॰ १-प्राण २-अपान ३-उदान ४-व्यान ५-समान ६-नाग ७-कूर्म ८-कृकल ९-देवदत्त १०-धनञ्जय । इनमें पिछले ५ योगके सहायक हैं ।

बिभर्षि रूपाण्यवबोध आत्मा
क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य ।
सत्त्वोपपन्नानि सुखावहानि
सतामभद्राणि मुहुः खलानाम् ॥२९॥

बिभर्षि रूपाणि अवबोध आत्मा क्षेमाय लोकस्य चर अचरस्य सत्त्व उपपन्नानि सुख आवहानि सतां अभद्राणि मुहुः खलानाम् ॥२९॥

अवबोध आत्मा	ज्ञान स्वरूप (आप)	खलानां	दुष्टोंके लिए
चर अचरस्य	चराचर	अभद्राणि	अमंगल करनेवाले
लोकस्य	जगतके	सत्त्व उपपन्नानि	सत्त्वमय
क्षेमाय	कल्याणके लिए	रूपाणि	रूपोंको
सतां	सत् पुरुषोंको	मुहुः	बार-बार
सुख	सुख	बिभर्षि	धारण करते हैं
आवहानि	देनेवाले तथा		॥२९॥

त्वय्यम्बुजाक्षाखिलसत्त्वधाम्नि
समाधिनाऽऽवेशितचेतसैके ।
त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन
कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाब्धिम् ॥३०॥

त्वयि अम्बुजाक्ष अखिल सत्त्वधाम्नि समाधिना आवेशित चेतसि एके त्वत् पादपोतेन महत् कृतेन कुर्वन्ति गोवत्स पदं भव अब्धिम् ॥३०॥

अम्बुजाक्ष	कमल-नयन !	आवेशित	आविष्ट करके
अखिल	अखिल	महत्	महापुरुषों द्वारा
सत्त्वधाम्नि	सत्त्वस्वरूप	कृतेन	बनाये
त्वयि एके	आपमें कोई-कोई	त्वत्	आपके
समाधिना	एकाग्रतामें	पादपोतेन	चरण रूपी जहाजसे
चेतसि	चित्तको	भव अब्धिं	संसार-सागरको

गोवत्स पदं	बछड़ेके खुरसे बने गड्ढेके समान	**कुर्वन्ति**	(सरलतासे पार होनेवाला) बना देते हैं ॥३०॥

स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन्
भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः ।
भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र ते
निधाय याताः सदनुग्रहो भवान् ॥३१॥

स्वयं सम उत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन् भव अर्णवं भीम अदभ्र सौहृदाः भवत् पद अम्भोरुह नावं अत्र ते निधाय याताः सत् अनुग्रहः भवान् ॥३१॥

द्युमन्	ज्योतिर्मय प्रभो !	**अर्णवं**	सागरको
भवान्	आप	**स्वयं सम**	स्वयं भली प्रकार
सत्	सत्पुरुषोंपर	**उत्तीर्य**	पार करके
अनुग्रहः	कृपा करनेवाले हैं,	**भवत्**	आपकी
अदभ्र	निर्मल	**पद अम्भोरुह**	चरण-कमल रूपी
सौहृदाः	सौहार्द्रवाले (आपके भक्त)	**नावं अत्र**	नौकाको यहीं (संसार) में
सुदुस्तरं	अत्यन्त दुष्पार	**निधाय याताः**	रखकर गये हैं ॥३१॥
भीमं भव	भयानक संसार-		

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन-
स्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः
पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः ॥३२॥

ये अन्ये अरविन्दाक्ष विमुक्त मानिनः त्वयि अस्त भावात् अविशुद्ध बुद्धयः आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्ति अधः न आदृत युष्मत् अङ्घ्रयः ॥३२॥

अरविन्दाक्ष	कमल-लोचन !	अङ्घ्रयः	श्रीचरणोंका
विमुक्त	अपनेको मुक्त	आहत न	आदर न करनेके
मानिनः	माननेवाले		कारण
ये अन्ये	जो दूसरे	कृच्छ्रेण	बड़े कष्टसे
त्वयि	आपमें	परं पदं	परं पदपर
अस्त भावात्	भक्ति न करनेसे	आरुह्य	आरोहण करके भी
अविशुद्ध	अशुद्ध		(उससे)
बुद्धयः	बुद्धि वाले हैं	अधः पतन्ति	नीचे गिर जाते हैं
युष्मत्	आपके		॥३२॥

तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद्
भ्रश्यन्ति मार्गात्त्वयि बद्धसौहृदाः ।
त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया
विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो ॥३३॥

तथा न ते माधव तावकाः क्वचित् भ्रश्यन्ति मार्गात् त्वयि बद्ध सौहृदाः त्वया अभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया विनायक अनीकप मूर्धसु प्रभो ॥३३॥

माधव प्रभो	प्रभु माधव !	ते त्वया	वे तुम्हारे द्वारा
तथा	उस प्रकार	अभिगुप्ता	रक्षित होकर
तावकाः	तुम्हारे भक्त	विनायक	विघ्न समूहोंके
मार्गात्	मार्गसे	अनीकप	सेनापतियोंके
क्वचित्	कभी	मूर्धसु	मस्तकपर
न भ्रश्यन्ति	नहीं भ्रष्ट होते,	निर्भया	भयरहित
त्वयि बद्ध	तुममें बँधे	विचरन्ति	विचरण करते हैं
सौहृदाः	सौहार्द्र वाले		॥३३॥

सत्वं विशुद्धं श्रयते भवान् स्थितौ
शरीरिणां श्रेयउपायनं वपुः ।

वेदक्रियायोगतपः समाधिभि-
स्तवार्हणं येन जनः समीहते ॥३४॥

सत्त्वं विशुद्धं श्रयते भवान् स्थितौ शरीरिणां श्रेय उपायनं वपुः वेद क्रिया योग तपः समाधिभिः तव अर्हणं येन जनः समीहते ॥३४॥

भवान्	आप (संसारकी)	**येन जनः**	जिसके द्वारा भक्तजन
स्थितौ	स्थितिके लिये	**वेद**	वैदिक (यज्ञादि)
विशुद्धं सत्त्वं	विशुद्ध सत्त्वगुणसे	**क्रिया**	कर्म,
शरीरिणां	शरीरधारियोंके लिए	**योग तपः**	योग, तपस्या,
श्रेय	कल्याणका	**समाधिभिः**	तथा समाधि द्वारा
उपायनं	उपहार देनेवाले	**तव अर्हणं**	आपकी पूजा
वपुः श्रयते	शरीर धारण करते हैं,	**समीहते**	भजी-भांति करते हैं ॥३४॥

सत्वं न चेद्धातरिदं निजं भवेद्
विज्ञानमज्ञानभिदापमार्जनम् ।
गुणप्रकाशैरनुमीयते भवान्
प्रकाशते यस्य च येन वा गुणः ॥३५॥

सत्त्वं न चेत् धातः इदं निजं भदेत् विज्ञानं अज्ञान भिदा अपमार्जनं गुण प्रकाशैः अनुमीयते भवान् प्रकाशते यस्य च येन वा गुणः ॥३५॥

धातः	विधाता !	**विज्ञानं**	(आपका) अपरोक्ष ज्ञान
चेत् इदं	यदि यह		
निजं	आपका	**न भवेत्**	नहीं होगा
सत्त्वं	सत्त्वमय रस न हो तो	**येन च**	जिसके द्वारा
		वा	अथवा
अज्ञान भिदा	अज्ञान जन्य भेदको	**यस्य गुणः**	जिसके ये गुण हैं
अपमार्जनं	नष्ट करनेवाला	**गुण प्रकाशैः**	इस प्रकार

	गुणोंके द्वारा	अनुमीयते	अनुमान (परोक्ष
भवान्	आपका		ज्ञान) ही होता है ॥३५॥

न नामरूपे गुणजन्मकर्मभि-
र्निरूपितव्ये तव तस्य साक्षिणः ।
मनोवचोभ्यामनुमेयवर्त्मनो
देव क्रियायां प्रतियन्त्यथापि हि ॥३६॥

न नाम रूपे गुण जन्म कर्मभिः निरूपितव्ये तव तस्य साक्षिणः मनः वचः भ्यां अनुमेय वर्त्मनः देव क्रियायां प्रतियन्ति अथ अपि हि ॥३६॥

नाम रूपे	नाम, रूप,	वचः भ्यां	वेदवाणीसे
गुण जन्म	गुण, जन्म	अनुमेय	अनुमान द्वारा
कर्मभिः	कर्मोंके द्वारा	वर्त्मनः	जानेवाले
तव	आपका	अथ अपि	फिर भी
निरूपितव्ये न	निरूपण नहीं हो सकता	देव	हे देव, भक्त आदि
		क्रियायां	क्रियासे
हि तस्य	क्योंकि आप उसके	प्रतियन्ति	(भक्तजन) प्रत्यक्ष
साक्षिणः	साक्षी (द्रष्टा) हैं।		कर लेते हैं ॥३६॥
मनः	मन तथा		

शृण्वन् गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन्
नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते ।
क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयो-
राविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥३७॥

शृण्वन् गुणान् संस्मरयन् च चिन्तयन् नामानि रूपाणि च मंगलानि ते क्रियासु यः त्वत् चरण अरविन्दयोः आविष्ट चेता न भवाय कल्पते ॥३७॥

क्रियासु	(उस भक्त आदि) क्रियामें	च चिन्तयन्	तथा चिन्तन करते
ते मंगलानि	आपके मंगलमय	त्वत्	आपके
नामानि	आपके नामों	चरण	चरण-
च रूपाणि	तथा रूपोंको	अरविन्दयोः	कमलोंमें
शृण्वन् गृणन्	सुनते, कहते,	यः आविष्ट	जो आवेशित
संस्मरयन्	बार-बार स्मरण करते	चेता	चित्त हैं वे
		भवाय	संसारमें
		न कल्पते	नहीं आते ॥३७॥

दिष्ट्या हरेऽस्या भवतः पदो भुवो
भारोऽपनीतस्तव जन्मनेशितुः ।
दिष्ट्यांकितां त्वत्पदकैः सुशोभनै-
र्द्रक्ष्याम गां द्यां च तवानुकम्पिताम् ॥३८॥

दिष्ट्या हरे अस्या भवतः पदो भुवः भारः अपनीतः तव जन्मना ईशितुः दिष्ट्या अङ्कितां त्वत् पदकैः सुशोभनैः द्रक्ष्याम गां द्यां च तव अनुकम्पिताम् ॥३८॥

दिष्ट्या तव	सौभाग्यवश आप	पदकैः	नन्हें चरणोंसे
ईशितुः	सर्वेश्वरके	अङ्कितां गां	चिह्नित पृथ्वीको
जन्मना	अवतारसे	च तव	तथा आपके
भवतः पदो	आपकी चरणरूपा	अनुकम्पितां	अनुग्रह भाजन बने
अस्या भुवः	इस पृथ्वीका	द्यां च	स्वर्गको भी
भारः अपनीतः	भार दूर हो गया,	दिष्ट्या	सौभाग्यवश
त्वत् सुशोभनैः	आपके अत्यन्त सुन्दर	द्रक्ष्याम	हम देखेंगे ॥३८॥

न तेऽभवस्येश भवस्य कारणं
विना विनोदं बत तर्कयामहे ।
भवो निरोधः स्थितिरप्यविद्यया
कृता यतस्त्वय्यभयाश्रयात्मनि ॥३९॥

न ते अभवस्य ईश भवस्य कारणं विना विनोदं बत यर्कयामहे भवः निरोधः स्थितिः अपि अविद्यया कृता यतः त्वयि अभय आश्रय आत्मनि ॥३६॥

यतः त्वयि	क्योंकि आप	ईश	स्वामी !
अभय आश्रय	अभय स्वरूप	विनोदं विना	विनोदको छोड़कर
आत्मनि	आत्मामें	ते भवस्य	आपके अवतारका
भवः	(संसारकी) उत्पत्ति,	कारणं	कारण
निरोधः	प्रलय	बत न	अहो कुछ नहीं
स्थितिः अपि	और स्थिति भी	तर्कयामहे	हम सोच पाते
अविद्यया कृता	अविद्या निर्मित है		॥३६॥
अभवस्य	(अतः) मोक्षके		

मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंस-
राजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः ।
त्वं पासि नस्त्रिभुवनं च यथाधुनेश
भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते ॥४०॥

मत्स्य अश्व कच्छप वराह नृसिंह हंस राजन्य विप्र विबुधेषु कृत अवतारः त्वं पासि नः त्रिभुवनं च यथा अधुना ईश भारं भुवः हर यदु उत्तम वन्दनं ते ॥४०॥

मत्स्य अश्व	मत्स्य, हयग्रीव,	पासि	रक्षा करते हैं
कच्छप वराह	कूर्म, वाराह,	ईश अधुना	स्वामी इस समय
नृसिंह हंस	नृसिंह, हंस,		भी
राजन्य	महाराज श्रीराम,	भुवः	पृथ्वीका
विप्र	परशुराम,	भारं हर	भारदूर कीजिये
विबुधेषु	और देवताओंमें	यदु उत्तम	यदुश्रेष्ठ !
	(वामन)	ते	हम आपकी
अवतारः कृत	अवतार लेकर	वन्दनं	वन्दना करते हैं
यथा नः	जैसे हमारी		॥४०॥
च त्रिभुवनं	तथा तीनों लोकोंकी		

दिष्ट्याम्ब ते कुक्षिगतः परः पुमा-
नंशेन साक्षाद् भगवान् भवाय नः ।
मा भूद् भयं भोजपतेर्मुमूर्षो-
र्गोप्ता यदूनां भविता तवात्मजः ॥४१॥

दिष्ट्या अम्ब ते कुक्षिगतः परः पुमान् अंशेन साक्षात् भगवान् भवाय नः मा भूत् भयं भोजपतेः मुमूर्षोः गोप्ता यदूनां भविता तव आत्मजः ॥४१॥

अम्ब	माँ !	भगवान्	भगवान हैं
दिष्ट्या	सौभाग्य वश	मुमूर्षोः	मरने ही वाले
ते	आपकी	भोजपतेः	भोजराज कंससे
कुक्षिगतः	कोखमें आया	भयं	(आपको) भय
नः	हमारे	मा भूत्	मत हो,
भवाय	अभ्युदयके लिए	तव	आपका
परः	परम	आत्मजः	पुत्र
पुमान्	पुरुष	यदूनां	यदुवंशियोंका
अंशेन	अंशों सहित	गोप्ता	रक्षक होगा ॥४१॥
साक्षात्	साक्षात्		

श्रीशुक उवाच

इत्यभिष्टूय पुरुषं यद्रूपमनिदं यथा ।
ब्रह्मेशानौ पुरोधाय देवाः प्रतिययुर्दिवम् ॥४२॥

इति अभिष्टूय पुरुषं यत् रूपं अनिदं यथा ब्रह्मा ईशानौ पुरः आधाय देवाः प्रतिययुः दिवम् ॥४२॥

यत्	जिसका	अनिदं यथा	इस दृश्य जगसे
रूपं	रूप		भिन्न जैसा है

पुरुषं	उस परम पुरुषकी	पुरः	आगे
इति	इस प्रकार	आधाय	करके
अभिष्टूय	स्तुति करके	देवाः	देवता
ब्रह्मा	ब्रह्मा और	दिवं	स्वर्ग
ईशानौ	शिवको	प्रतिययुः	को चले गये ॥४२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे
गर्भगतविष्णोर्ब्रह्मादिकृतस्तुतिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः ।
यर्ह्यजनजन्मर्क्षं शान्तर्क्षग्रहतारकम् ॥१॥

अथ सर्वगुण उपेतः कालः परमशोभनः यर्हि अजन जन्म अर्क्षं शान्त अर्क्ष ग्रह तारकम् ॥१॥

अथ	तदनन्तर	शान्त अर्क्ष	शान्त नक्षत्र,
यर्हि	जब	ग्रह तारकं	ग्रह, तारोंवाला
अजन	अजन (ब्रह्मा) का	परमशोभनः	अत्यन्त सुहावना
जन्म अर्क्षं	जन्म नक्षत्र (रोहिणी) आया	सर्वगुण उपेतः	सर्वगुण सम्पन्न
		कालः	समय हो गया ॥१॥

दिशः प्रसेदुर्गगनं निर्मलोडुगणोदयम् ।
मही मंगलभूयिष्ठपुरग्रामव्रजाकरा ॥२॥

दिशः प्रसेदुः गगनं निर्मल उडुगण उदयं मही मंगल भूयिष्ठ पुर ग्राम व्रज आकरा ॥२॥

दिशः	दिशाएँ	पुर ग्राम	नगर, ग्राम,
प्रसेदुः	निर्मल हो गयीं,	व्रज आकरा	गोष्ठों और खदानोंमें
निर्मल गगनं	स्वच्छ आकाशमें	मंगल	बहुत मङ्गल
उडुगण उदयं	तारा गुण उदय हो, गये,	भूयिष्ठ	होने लगे ॥२॥
मही	पृथ्वीपर		

नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदा जलरुहश्रियः ।
द्विजालिकुलसंनादस्तबका वनराजयः ॥३॥

नद्यः प्रसन्न सलिला ह्रदा जलरुह श्रियः द्विज अलिकुल संनाद स्तबका वनराजयः ॥३॥

नद्यः	नदियां	द्विज	पक्षियों एवं
प्रसन्न सलिला	निर्मल जलवाली,	अलिकुल	भ्रमरोंकी
ह्रदा	सरोवर	संनाद	गुञ्जार युक्त
जलरुह	कमलोंसे शोभा	स्तबका	तथा पुष्प गुच्छ युक्त
श्रियः	सम्पन्न,		हो गये ॥३॥*
वनराजयः	वनोंकी श्रेणियां		

ववौ वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः ।
अग्नयश्च द्विजातीनां शान्तास्तत्र समिन्धत ॥४॥

ववौ वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः अग्नयः च द्विजातीनां शान्ताः तत्र समिन्धत ॥४॥

पुण्यगन्धवहः	सुगन्धवाहक	शान्ताः	शान्त हो गयी
शुचिः	पवित्र	अग्नयः	(सञ्चित) अग्नियां
सुखस्पर्शः	सुखद स्पर्शवाला	तत्र	उस समय
वायुः ववौ	वायु चलने लगा	समिन्धत	स्वयं जलने लगीं
च द्विजातीनां	तथा द्विजोंकी		॥४॥

मनांस्यासन् प्रसन्नानि साधूनामसुरद्रुहाम् ।
जायमानेऽजने तस्मिन् नेदुर्दुन्दुभयो दिवि ॥५॥

मनांसि आसन् प्रसन्नानि साधूनां असुर द्रुहां जायमाने अजने तस्मिन् नेदुः दुन्दुभयः दिवि ॥५॥

असुर	असुर जिनसे	साधूनां	उन सत्पुरुषोंके
द्रुहां	शत्रुता करते हैं	मनांसि	मन

---

* यह सब भगवद वतारका दिव्य-प्रभाव वर्णन है, अन्यथा भाद्रपदमें अर्ध रात्रिको इसमें से कुछ नहीं रहता नदियोंमें बाढ़ होती है ।

प्रसन्नानि	प्रसन्न	दिवि	आकाश
आसन्	हो गये,	दुन्दुभयः	दुन्दुभियां
तस्मिन अजने	उन अजन्माके	नेदुः	बजने लगीं ॥५॥
जायमाने	जन्म लेते समय		

जगुः किन्नरगन्धर्वास्तुष्टुवुः सिद्धचारणाः ।
विद्याधर्यश्च ननृतुरप्सरोभिः समं तदा ॥६॥

जगुः किन्नर गन्धर्वाः तुष्टुवुः सिद्ध चारणाः विद्याधर्यः च ननृतुः अप्सरोभिः समं तदा ॥६॥

तदा	उस समय	तुष्टवुः	स्तुति करने लगे,
किन्नर	किन्नर	च विद्याधर्यः	और विद्याधरियां
गन्धर्वाः	और गन्धर्व	अप्सरोभिः	अप्सराओंके
जगुः	गाने लगे,	समं	साथ
सिद्ध	सिद्ध तथा	ननृतुः	नाचने लगीं ॥६॥
चारणाः	चारण लोग		

मुमुचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विताः ।
मन्दं मन्दं जलधरा जगर्जुरनुसागरम् ॥७॥

मुमुचुः मुनयः देवाः सुमनांसि मुद अन्विताः मन्दं मन्दं जलधरा जगर्जुः अनुसागरम् ॥७॥

मुद अन्विताः	प्रसन्न होकर	अनुसागरं	समुद्रके समीप
मुनयः देवाः	मुनि और देवगण	जलधरा	मेघ
सुमनांसि	पुष्प	मन्दं मन्दं	धीरे-धीरे
मुमुचुः	वर्षा करने लगे,	जगर्जुः	गरजने लगे ॥७॥

निशीथे तमउद्भूते जायमाने जनार्दने ।
देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः ।
आविरासीद् यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः ॥८॥

निशीथे तमउद्भूते जायमाने जनार्दने देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्व गुहाशयः आविः आसीत् यथा प्राच्यां दिशि इन्दुः इव पुष्कलः ॥८॥

जनार्दने	उन जनार्दनेके	विष्णुः	श्रीहरि
जायमाने	उत्पन्न होते समय	यथा	जैसे
तमउद्भूते	अन्धकार छायी	प्राच्यां दिशि	पूर्व दिशामें
निशीथे	अर्ध रात्रिमें	पुष्कलः इन्दुः	पूर्ण चन्द्रके
देवरूपिण्यां	देवता स्वरूपिणी	इव	समान
देवक्यां	देवकीसे	आविः	प्रकट
सर्व	सर्व	आसीत्	हो गये ॥८॥
गुहाशयः	अन्तर्यामी		

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं
चतुर्भुजं शङ्खगदार्युदायुधम् ।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं
पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम् ॥९॥

तं अद्भुतं बालकं अम्बुज ईक्षणं चतुर्भुजं शंख गदा अरि, उद्, आयुधं श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभि कौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोद सौभगम् ॥९॥

अम्बुज	कमलके समान	गलशोभि	कण्ठमें सुशोभित
ईक्षणं	नेत्रवाले,	कौस्तुभं	कौस्तुभमणिधारी,
चतुर्भुजं	चतुर्भुज	पीताम्बरं	पीताम्बर पहिने
शंख गदा	शंख, गदा,	सान्द्रपयोद	सजल जलद
अरि उद्	चक्र, जलज (कमल)	सौभगं	सुन्दर,
आयुधं	शस्त्रवाले,	तं अद्भुतं	उस अद्भुत
श्रीवत्सलक्ष्मं	श्रीवत्स चिह्न युक्त,	बालकं	बालकको ॥९॥

महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डल-
त्विषा परिष्वक्तसहस्रकुन्तलम् ।

उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभि-
विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ॥१०॥

महा अर्हवैदूर्य किरीट कुण्डल त्विषा परिष्वक्त सहस्रकुन्तलं उद्दाम काञ्चि अंगद कंकण आदिभिः विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ॥१०॥

महा	बहु मूल्य	**उद्दाम काञ्ची**	अत्यन्त बहुमूल्य करधनी,
अर्हवैदूर्य	वैदूर्य मणिके		
किरीट	मुकुट और	**अंगद**	बाजूबन्द,
कुण्डल	कुण्डलोंकी	**कङ्कण**	कंकण
त्विषा	कान्तिसे	**आदिभिः**	आदिसे
सहस्रकुन्तलं	सहस्रों केश राशि	**विरोचमानं**	शोभायमान होते
परिष्वक्त	जगमगाती हुई	**वसुदेव**	वसुदेवजीने
		ऐक्षत	देखा ॥१०॥

स विस्मयोत्फुल्लविलोचनो हरिं
सुतं विलोक्यानकदुन्दुभिस्तदा ।
कृष्णावतारोत्सवसम्भ्रमोऽस्पृशन्-
मुदा द्विजेभ्योऽयुतमाप्लुतो गवाम् ॥११॥

स विस्मय उत्फुल्ल विलोचनः हरिं सुतं विलोक्य आनकदुन्दुभिः तदा कृष्ण अवतार उत्सव सम्भ्रमः अस्पृशन् मुदा द्विजेभ्यः अयुतं आप्लुतः गवाम् ॥११॥

तदा स	उस समय उन	**विलोचनः**	नेत्र
आनकदुन्दुभिः	वसुदेवजीने	**मुदा आप्लुतः**	हर्षमें भरकर
हरिं	श्रीहरिको अपना	**कृष्ण**	श्रीकृष्णके
सुतं विलोक्य	पुत्र देखकर	**अवतार**	अवतार
विस्मय	आश्चर्यसे	**उत्सव**	महोत्सव मनानेकी
उत्फुल्ल	खिले	**सम्भ्रमः**	उतावलीमें

द्विजेभ्यः	ब्राह्मणोंको	गवां	गोदानका
अयुतं	दस सहस्र	अस्पृशन्	संकल्प किया ॥११॥

अथैनमस्तौदवधार्य पूरुषं
परं नतांगः कृतधीः कृताञ्जलिः ।
स्वरोचिषा भारत सूतिकागृहं
विरोचयन्तं गतभीः प्रभाववित् ॥१२॥

अथ एनं अस्तौत् अवधार्य पूरुषं परं नत अंगः कृतधीः कृत अञ्जलिः स्वरोचिषा भारत सूतिकागृहं विरोचयन्तं गतभीः प्रभाववित् ॥१२॥

भारत	परीक्षित !	प्रभाववित्	(उनका) भाव जाननेवाले होनेसे
अथ	फिर	गतभीः	भय रहित हुए
स्वरोचिष	कान्तिसे अपनी	कृतधीः	बुद्धिमान (वसुदेवजी)
सूतिकागृहं	उस प्रसूति कक्षको	नत अंगः	नतमस्तक
विरोचयन्तं	प्रकाशित करते हुए	कृत अञ्जलिः	हाथ जोड़कर
एनं परं	इनको परम	अस्तौत्	स्तुति करने लगे ॥१२॥
पूरुषं	पुरुष		
अवधार्य	समझकर		

वसुदेव उवाच

विदितोऽसि भवान् साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः ।
केवलानुभवानन्दस्वरूपः सर्वबुद्धिदृक् ॥१३॥

विदितः असि भवान् साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः केवल अनुभव आनन्द स्वरूपः सर्वबुद्धिदृक् ॥१३॥

विदितः	(आप) जान लिए गये कि	आनन्द	आनन्द
प्रकृतेः परः	प्रकृतसे परे	स्वरूपः	स्वरूप
सर्वबुद्धिदृक्	सबकी बुद्धियोंके साक्षी	साक्षात्	साक्षात्
केवल अनुभव	केवल ज्ञान,	पुरुषः	परम पुरुष
		भवान् असि	आप हैं ॥१३॥

स एव स्वप्रकृत्येदं सृष्ट्वाग्रे त्रिगुणात्मकम् ।
तदनु त्वं ह्यप्रविष्टः प्रविष्ट इव भाव्यसे ॥१४॥

स एव स्वप्रकृति इदं सृष्ट्वा अग्रे त्रिगुणात्मकं तत् अनु त्वं हि अप्रविष्टः प्रविष्ट इव भाव्यसे ॥१४॥

स एव त्वं	वही आप	हि तत् अनु	क्योंकि उसमें पीछे
अग्रे	सर्वप्रथम	अप्रविष्टः	प्रवेश न करनेपर भी
स्वप्रकृति	अपनी माया द्वारा	प्रविष्ट	प्रवेश किये की
त्रिगुणात्मकं	त्रिगुणमय	इव	भांति
इदं	इस संसारको	भाव्यसे	प्रतीत होते हैं ॥१४
अग्रे सृष्ट्वा	पहिले सृष्टि करके		

यथेमेऽविकृता भावास्तथा ते विकृतैः सह ।
नानावीर्याः पृथग्भूता विराजं जनयन्ति हि ॥१५॥

यथा इमे अविकृता भावाः तथा ते विकृतैः सह नाना वीर्याः पृथक् भूता विराजं जनयन्ति हि ॥१५॥

यथा इमे	जैसे ये	सह	साथ मिलकर
अविकृता	विकार हीन (महत्त्वादि)	विकृतैः	विकारीसे होकर
		विराजं	विराट्को
भावाः	भाव	जनयन्ति	उत्पन्न करते हैं
नाना	अनेक प्रकारकी	हि ते तथा	क्योंकि आपका स्वरूप भी ऐसा ही (निर्विकार रहते सर्व कारण) है ॥१५॥
वीर्याः	शक्तिवाले		
पृथक् भूता	अलग रहते हुए भी		

सन्निपत्य समुत्पाद्य दृश्यन्तेऽनुगता इव ।
प्रागेव विद्यमानत्वान्न तेषामिह सम्भवः ॥१६॥

सन्निपत्य समुत्पाद्य दृश्यन्ते अनुगता इव प्राक् एव विद्यमानत्वात् न तेषां इह सम्भवः ॥१६॥

सन्निपत्य	(वे महत्तत्त्वादि) परस्पर मिलकर	प्राक् इव	पहिलेसे ही
		विद्यमानत्वात्	विद्यमान रहनेसे
समुत्पाद्य	(इस विराट्को) उत्पन्न करके	तेषां इह	उनकी इस (विराट्) में
अनुगता	इसमें पीछे आयेकी	सम्भवः न	उत्पत्ति नहीं होती ॥१६॥
इव	भांति		
दृश्यन्ते	दीखते हैं; किन्तु		

एवं भवान् बुद्ध्यनुमेयलक्षणै-
र्ग्राह्यैर्गुणैः सन्नपि तद्गुणाग्रहः ।
अनावृतत्वाद् बहिरन्तरं न ते
सर्वस्य सर्वात्मन आत्मवस्तुनः ॥१७॥

एवं भवान् बुद्धि अनुमेय लक्षणैः ग्राह्यैः गुणैः सत् अपि तत् गुणग्रहः अनावृतत्वात् बहिः अन्तरं न ते सर्वस्य सर्व आत्मन आत्मवस्तुनः ॥१७॥

बुद्धि अनुमेय लक्षणैः	बुद्धिसे अनुमानित होनेवाले लक्षण युक्त	एवं भवान्	इस प्रकार आप (गृहीत नहीं होते)
गुणैः ग्राह्यैः	इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किये जानेवाले गुणों	सर्व आत्मन सर्वस्य	सर्वात्मा सबके
सत्	(पदार्थों) में होते हुए	आत्मवस्तुनः	आत्मस्वरूप
अपि	भी	ते	आपमें
तत्	उन	अनावृतत्वात्	आवरण हीन होनेसे
गुणग्रहः	गुणोंके ग्रहणसे	बहिः अन्तरं न	बाहर-भीतरका भेद नहीं है ॥१७॥

य आत्मनो दृश्यगुणेषु सन्निति
व्यवस्यते स्वव्यतिरेकतोऽबुधः ।
विनानुवादं न च तन्मनीषितं
सम्यग् यतस्यक्तमुपाददत् पुमान् ॥१८॥

य आत्मनः दृश्य गुणेषु सत् इति व्यवस्यते स्व व्यतिरेकतः अबुधः अनुवादं न च तत् मनीषितं सम्यक् यतः त्यक्तं उप आददत् पुमान् ॥०८॥

यः पुमान्	जो पुरुष	तत्	वह
दृश्य	दीखनेवाले	मनीषितं	विचारपूर्वक
गुणेषु	गुणों (देहादि) में	सम्यक् त्यक्तं	भली प्रकार छोड़े (बाध हुए)
आत्मनः	अपनेसे	यतः	क्योंकि (सत्य) को
स्व	स्वयंको	उप आददत्	ग्रहण कर रहा है
व्यतिरेकतः	पृथक मानकर	न च	वह (बुद्धिमान) नह ही है ॥१८॥
सत् इति	'ये सत्य है' ऐसा		
व्यवस्यते	समझता है		
अबुधः	वह अज्ञानी है,		
अनुवादं	वाग्विलासको		

त्वत्तोऽस्य जन्मस्थितिसंयमान् विभो
वदन्त्यनीहादगुणादविक्रियात् ।
त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुध्यते
त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते गुणैः ॥१९॥

त्वत्तः अस्य जन्मस्थिति संयमान् विभो वदन्ति अनीहात् अगुणात् अविक्रियात् त्वयि ईश्वरे ब्रह्मणि नो विरुध्यते त्वत् आश्रयत्वात् उपचर्यते गुणैः ॥१९॥

विभो	प्रभो !	वदन्ति	(शास्त्र) बतलाते हैं,
अनीहात्	चेष्टाहीन	त्वयि ईश्वरे	आप सर्वसमर्थ
अगुणात्	निर्गुण,	ब्रह्मणि	परमब्रह्ममें
अविक्रियात्	निर्विकार	नो विरुध्यते	यह विरुद्ध बात नहीं होती
त्वत्तः	आपसे		
अस्य	इस (जगत्) की	त्वत्	क्योंकि आपके ही
जन्मस्थिति	उत्पत्ति, स्थिति,	आश्रयत्वात्	आश्रय होनेसे
संयमान्	प्रलय		

गुणैः	गुणोंके द्वारा (आपमें यह)	उपचर्यते	आरोप होता है ॥१६॥

स त्वं त्रिलोकस्थितये स्वमायया
बिभर्षि शुक्लं खलु वर्णमात्मनः ।
सर्गाय रक्तं रजसोपबृंहितं
कृष्णं च वर्णं तमसा जनात्यये ॥२०॥

स त्वं त्रिलोक स्थितये स्वमायया बिभर्षि शुक्लं खलु वर्ण आत्मनः सर्गाय रक्तं रजसा उपबृंहितं कृष्णं च वर्णं तमसा जन अत्यये ॥२०॥

स त्वं	वही आप	उपबृंहितं	प्रधान
त्रिलोक	त्रिलोकी की	रक्तं च	रक्त वर्ण और
स्थितये	स्थितिके लिए	जन	लोगोंके
स्वमायया	अपनी माया द्वारा	अत्यये	संहारके लिए
खलु	अहो सात्विक	तमसा	तमोमय
शुक्लं वर्णं	शुक्ल वर्ण,	कृष्णं	कृष्ण वर्ण
सर्गाय	(इसकी) सृष्टिके लिए	बिभर्षि	धारण करते हैं ॥२०॥
रजसा	रजोगुण		

त्वमस्य लोकस्य विभो रिरक्षिषु-
र्गृहेऽवतीर्णोऽसि ममाखिलेश्वर ।
राजन्यसंज्ञासुरकोटियूथपै-
र्निर्व्यूह्यमाना निहनिष्यसे चमूः ॥२१॥

त्वं अस्य लोकस्य विभो रिरक्षिषुः गृहे अवतीर्णः असि मम अखिल ईश्वर राजन्य संज्ञान् असुर कोटि यूथपैः निर्व्यूह्यमाना निहनिष्यसे चमूः ॥२१॥

अखिल ईश्वर	सर्वेश्वर	अस्य लोकस्य	इस लोककी
विभो त्वं	प्रभो ! आपने	रिरक्षिषुः	रक्षा करनेके लिए

मम गृहे	मेरे घरमें	कोटि	करोड़ों
अवतीर्णः	अवतार	यूथपैः	सेनापतियों द्वारा
असि	लिया है,	निर्व्यूह्यमाना	सञ्चालित
राजन्य	राजा	चमूः	सेनाका
संज्ञान्	कहलाने वाले	निहनिष्यते	संहार करेंगे ॥२१॥
असुर	असुरोंके		

अयं त्वसभ्यस्तव जन्म नौ गृहे
श्रुत्वाग्रजांस्ते न्यवधीत् सुरेश्वर ।
स तेऽवतारं पुरुषैः समर्पितं
श्रुत्वाधुनैवाभिसरत्युदायुधः ॥२२॥

अयं तु असभ्यः तव जन्म नः गृहे श्रुत्वा अग्रजान् ते न्यवधीत् सुरेश्वर स ते अवतारं पुरुषैः समर्पितं श्रुत्वा अधुना एव अभिसरति उदायुधः ॥२२॥

सुरेश्वर	देवदेवेश्वर !	स	वह अपने
नः गृहे	हमारे घर	पुरुषैः	सेवकों द्वारा
तव जन्म	आपका जन्म होगा	समर्पितं	दिया गया
श्रुत्वा	यह सुनकर	ते अवतारं	आपके अवतार
असभ्यः	दुष्ट		(का समाचार),
अयं तु	इस (कंस) ने तो	श्रुत्वा	सुनकर
ते अग्रजान्	आपके बड़े भाइयों-	अधुना एव	इसी समय
	को	उदायुधः	शस्त्र उठाकर
न्यवधीत्	मार दिया,	अभिसरति	दौड़ा आवेगा ॥२२॥

श्रीशुक उवाच

अथैनमात्मजं वीक्ष्य महापुरुषलक्षणम् ।
देवकी तमुपाधावत् कंसाद् भीता शुचिस्मिता ॥२३॥

अथ एनं आत्मजं वीक्ष्य महापुरुष लक्षणं देवकी तं उपाधावत् कंसात् भीता शुचिस्मिता ॥२३॥

अथ एनं	फिर इस	शुचिस्मिता	पवित्र मुस्कानवाली
आत्मजं	पुत्रको	कंसात् भीता	कंससे डरकर
महापुरुष	परमपुरुष (नारायण) के	देवकी	देवकी
		तं	उनकी
लक्षणं	लक्षणोंवाला	उपाधावत्	स्तुति करने लगी
वीक्ष्य	देखकर		॥२३॥

देवक्युवाच

रूपं यत् तत् प्राहुरव्यक्तमाद्यं
ब्रह्म ज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम् ।
सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं
स त्वं साक्षाद् विष्णुरध्यात्मदीपः ॥२४॥

रूपं यत् तत् प्राहुः अव्यक्तं आद्यं ब्रह्म ज्योतिः निर्गुणं निर्विकारं सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं स त्वं साक्षात् विष्णुः अध्यात्मदीपः ॥२४॥

यत् रूपं	जो स्वरूप	निरीहं	निरीह
अव्यक्तं	अव्यक्त	प्राहुः	कहा गया है,
आद्यं	सनातन,	तत्	वह
ब्रह्म ज्योतिः	ब्रह्म, ज्योतिर्मय,	अध्यात्मदीपः	(बुद्धि आदि) अन्तःकरणके प्रकाशक
निर्गुणं	निर्गुण,		
निर्विकारं	निर्विकार,	त्वं स	तुम वह
सत्तामात्रं	सत्तामात्र,	साक्षात्	साक्षात्
निर्विशेषं	निर्विशेष,	विष्णुः	विष्णु हो ॥२४॥

नष्टे लोके द्विपरार्धावसाने
महाभूतेष्वादिभूतं गतेषु ।
व्यक्तेऽव्यक्तं कालवेगेन याते
भवानेकः शिष्यते शेषसंज्ञः ॥२५॥

नष्टे लोके द्विपरार्ध अवसाने महाभूतेषु आदि भूतं गतेषु व्यक्ते अव्यक्तं कालवेगेन याते भवान् एकः शिष्यते शेष संज्ञः ॥२५॥

द्वि परार्ध	दो परार्ध (ब्रह्माकी आयु)	व्यक्ते	व्यक्त जगतके
अवसाने	बीत जाने पर,	अव्यक्तं	प्रकृतिमें
लोके	सब लोकोंके	याते	पहुँच जानेपर
नष्टे	नष्ट हो जानेपर,	एकः भवान्	एक तुम्हीं
महाभूतेषु	महाभूतोंके	शेष	शेष नामसे
आदि-	अपने कारण	संज्ञः	(शेष नामक
भूतं गतेषु	(अहंकार) में लीन हो जानेपर		शय्यापर)
कालवेगेन	कालके वेगसे	शिष्यते	बच रहते (सोते हो) ॥२५॥

योऽयं कालस्तस्य तेऽव्यक्तबन्धो
चेष्टामाहुश्चेष्टते येन विश्वम् ।
निमेषादिर्वत्सरान्तो महीयां-
स्तं त्वेशानं क्षेमधाम प्रपद्ये ॥२६॥

यः अयं कालः तस्य ते अव्यक्तबन्धो चेष्टां आहुः चेष्टते येन विश्वं निमेषादिः वत्सर अन्तः महीयान् तं तु ईशानं क्षेमधाम प्रपद्ये ॥२६॥

अव्यक्तबन्धो	प्रकृति प्रेरक !	चेष्टते	चेष्टा कर रहा है
निमेषादिः	निमेषसे लेकर	तस्य	उसकी
वत्सर अन्तः	सम्वत्सर तक रूप	चेष्टां आहुः	चेष्टा कहा गया है,
महीयान्	महान्	ते तं ईशानं	आप उस सर्वेश्वर
यः अयं कालः	जो यह काल है	क्षेमधाम तु	अभय स्थान रूपकी ही
येन चेष्टां	उसकी जिस चेष्टासे	प्रपद्ये	मैं शरण हूँ ॥२६॥
विश्वं	संसार		

मर्त्यो मृत्युव्यालभीतः पलायन्
लोकान् सर्वान्निर्भयं नाध्यगच्छत् ।

त्वत्पादाब्जं प्राप्य यदृच्छयाद्य
स्वस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति ॥२७॥

मर्त्यः मृत्युव्याल भीतः पलायन् लोकान् सर्वान् निर्भयं न अध्यगच्छत् त्वत् पादाब्जं प्राप्य यदृच्छया अद्य स्वस्थः शेते मृत्युः अस्मात् अपैति ॥२७॥

मृत्युव्याल	मौत रूपी सर्पसे	अद्य यदृच्छया	आज सौभाग्यवश
भीतः	डरकर	त्वत्	तुम्हारे
पलायन् मर्त्यः	भागता हुआ मनुष्य	पादाब्जं	चरण-कमलको
सर्वान्	सब	प्राप्य स्वस्थः	पाकर सुख पूर्वक
लोकान्	लोकोंमें कहीं	शेते	सोता है,
निर्भयं	निर्भय	मृत्युः अस्मात्	मृत्यु इससे
न	नहीं	अपैति	दूर चली गयी
अध्यगच्छत्	हो पाता,		॥२७॥

स त्वं घोरादुग्रसेनात्मजान्न-
स्त्राहि त्रस्तान् भृत्यवित्रासहासि ।
रूपं चेदं पौरुषं ध्यानधिष्ण्यं
मा प्रत्यक्षं मांसदृशां कृषीष्ठाः ॥२८॥

स त्वं घोरात् उग्रसेन आत्मजात् नः त्राहि त्रस्तान् भृत्य वित्रास हा असि रूपं च इदं पौरुषं ध्यानधिष्ण्यं मा प्रत्यक्षं मांसदृशां कृषीष्ठाः ॥२८॥

स त्वं	वह तुम	हा असि	नष्ट करने वाले हो
घोरात्	दुष्ट	च इदं	और इस
उग्रसेन	उग्रसेनके	ध्यानधिष्ण्यं	ध्यानाधार
आत्मजात्	पुत्र (कंस) से	रूपं	रूपको
त्रस्तान् नः	संत्रस्त हमारी	मांसदृशां	मांस दर्शियोंके
त्राहि	रक्षा करो; क्योंकि	प्रत्यक्षं	सम्मुख
भृत्य	सेवकोंके	मा कृषीष्ठाः	मत प्रकट करो
वित्रास	संत्रासको		॥२८॥

जन्म ते मय्यसौ पापो मा विद्यान्मधुसूदन ।
समुद्विजे भवद्धेतोः कंसादहमधीरधीः ॥२९॥

जन्म ते मयि असौ पापः मा विद्यात् मधुसूदन समुद्विजे भवत् हेतोः कंसात् अहं अधीरधीः ॥२९॥

मधुसूदन	मधुसूदन !	अहं अधीरधीः	मैं व्याकुल बुद्धि
असौ पापः	यह पापी (कंस)	कंसात्	कंससे
मयि ते	मुझसे तुम्हारा	भवत् हेतोः	तुम्हारे लिए
जन्म	जन्म	समुद्विजे	बहुत उद्विग्न हो
मा विद्यात्	न जान पावे,		रही हूँ ॥२९॥

उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मश्रिया जुष्टं चतुर्भुजम् ॥३०॥

उपसंहर विश्वात्मन् अदः रूपं अलौकिकं शंख चक्र गदा पद्म श्रिया जुष्टं चतुर्भुजम् ॥३०॥

विश्वात्मन्	विश्वात्मा !	अलौकिकं	अलौकिक
शंख चक्र	शंख, चक्र,	अदः रूपं	इस रूपका
गदा पद्म	गदा, पद्मकी	उपसंहर	उपसंहार कर लो
श्रिया जुष्टं	शोभासे युक्त		॥३०॥
चतुर्भुजं	चतुर्भुज		

विश्वं यदेतत् स्वतनौ निशान्ते
यथावकाशं पुरुषः परो भवान् ।
बिभर्ति सोऽयं मम गर्भगोऽभू-
दहो नृलोकस्य विडम्बनं हि तत् ॥३१॥

विश्वं यत् एतत् स्वतनौ निशा अन्ते यथा अवकाशं पुरुषः परः भवान् बिभर्ति सः अयं मम गर्भगः अभूत् अहो नृलोकस्य विडम्बनं हि तत् ॥३१॥

यत् एवत्	जो इस	पुरुषः	पुरुष
विश्वं	विश्वको	भवान् मम	आप मेरे
अन्ते निशा	प्रलय रात्रिके समय	गर्भगः अभूत्	मेरे गर्भमें आये,
यथा	यथा	हि तत् अहो	क्योंकि यह अहो,
अवकाशं	अवकाश	नृलोकस्य	मनुष्य लोककी
स्वतनौ	अपने शरीरमें	विडम्बनं	विडम्बना ही है
बिभर्ति	धारण करते हैं,		॥३१॥
सः परः	वही परम		

श्रीभगवानुवाच

त्वमेव पूर्वसर्गेऽभूः पृश्निः स्वायम्भुवे सति ।
तदायं सुतपा नाम प्रजापतिरकल्मषः ॥३२॥

त्वं एव पूर्वसर्गे अभूः पृश्निः स्वायम्भुवे सति तदा अयं सुतपा नाम प्रजापतिः अकल्मषः ॥३२॥

स्वायम्भुवे	स्वायम्भुव मन्व-	तदा	उस समय
	न्तरमें	अयं	ये (वसुदेवजी)
पूर्वसर्गे	पूर्व जन्ममें	अकल्मषः	निष्पाप
सति त्वं एव	सती ! तुम्ही	सुतपा नाम	सुतपा नामके
पृश्निः अभूः	पृश्नि हुई थीं,	प्रजापतिः	प्रजापति थे ॥३२॥

युवां वै ब्रह्मणाऽऽदिष्टौ प्रजासर्गे यदा ततः ।
संनियम्येन्द्रियग्रामं तेपाथे परमं तपः ॥३३॥

युवां वै ब्रह्मणा आदिष्टौ प्रजासर्गे यदा ततः सन्नियम्य इन्द्रियग्रामं तेपाथे परमं तपः ॥३३॥

यदा युवां	जब तुम दोनोंको	ततः	तब
ब्रह्मणा	ब्रह्माजी द्वारा	इन्द्रियग्रामं	इन्द्रिय-समूहका
वै	निश्चित	सन्नियम्य	पूर्ण नियन्त्रण करके
प्रजासर्गे	प्रजाकी सृष्टिका	परमं तपः	(तुमने) घोर तप
आदिष्टौ	आदेश दिया गया	तेपाथे	करने लगे ॥३३॥

वर्षवातातपहिमघर्मकालगुणाननु ।
सहमानौ श्वासरोधविनिर्धूतमनोमलौ ॥३४॥

वर्ष वात आतप हिम घर्म काल गुणान् अनु सहमानौ श्वासरोध विनिर्धूत मनः मलौ ॥३४॥

वर्ष वात	वर्षा, वायु,	**श्वासरोध**	प्राणायाम करके
आतप हिम	धूप, सर्दी,	**मनः मलौ**	मनके दोषोंको
घर्म	गर्मी आदि	**विनिर्धूत**	सम्पूर्ण नष्ट कर
काल गुणान्	कालगुणोंको		दिया ॥३४॥
अनु सहमानौ	बार-बार सहते हुए,		

शीर्णपर्णानिलाहारावुपशान्तेन चेतसा ।
मत्तः कामानभीप्सन्तौ मदाराधनमीहतुः ॥३५॥

शीर्ण पर्ण अनिल आहाराः उपशान्तेन चेतसा मत्तः कामान् अभीप्सन्तौ मत् आराधनं ईहतुः ॥३५॥

शीर्ण पर्ण	स्वयं गिरे पत्ते तथा	**कामान्**	कामना पूर्ति
अनिल आहाराः	वायु-भक्षी होकर	**अभीप्सन्तौ**	चाहते हुए
उपशान्तेन	अत्यन्त शान्त	**मत्**	मेरी
चेतसा	चित्तसे	**आराधनं**	आराधना
मत्तः	मुझसे	**ईहतुः**	करते रहे ॥३५॥

एवं वां तप्यतोस्तीव्रं तपः परमदुष्करम् ।
दिव्यवर्षसहस्राणि द्वादशेयुर्मदात्मनोः ॥३६॥

एवं वां तप्यतः तीव्रं तपः परम दुष्करं दिव्यवर्ष सहस्राणि द्वादश ईयुः मत् आत्मनोः ॥३६॥

एवं	इस प्रकार	**दिव्यवर्ष**	देवताओंके वर्षसे
मत् आत्मनोः	मुझमें चित्त लगाकर	**द्वादश**	बारह
परम दुष्करं	अत्यन्त दुष्कर	**सहस्राणि**	सहस्र वर्ष
तीव्रं तपः	घोर तप	**ईयुः**	बीत गये ॥३६॥
तप्यतः वां	करते तुम दोनोंको		

तदा वां परितुष्टोऽहममुना वपुषानघे ।
तपसा श्रद्धया नित्यं भक्त्या च हृदि भावितः ॥३७॥

तदा वां परितुष्टः अहं अमुना वपुषा अनघे तपसा श्रद्धया नित्यं भक्त्या च हृदि भावितः ॥३७॥

अनघे	हे पुण्यमयी माता	**तपसा**	तप करनेसे
तदा	उस समय	**वां**	तुम दोनोंपर
नित्यं	प्रतिदिन	**अमुना वपुषा**	इस देहसे
हृदि	हृदयमें	**अहं**	मैं
श्रद्धाया च	श्रद्धा और	**परितुष्टः**	प्रसन्न हो गया ॥३७॥
भक्त्या	भक्ति पूर्ण		
भावितः	भावना की		

प्रादुरासं वरदराड् युवयोः कामदित्सया ।
व्रियतां वर इत्युक्ते मादृशो वां वृतः सुतः ॥३८॥

प्रादुः आसं वरदराट् युवयोः काम दित्सया व्रियतां वर इति उक्ते मादृशः वां वृतः सुतः ॥३८॥

युवयोः	तुम दोनोंकी	**वर व्रियतां**	'वरदान मांगो'
काम	कामना पूर्तिकी	**इति उक्ते**	(मेरे) ऐसा कहनेपर
दित्सया	इच्छासे	**वां**	तुम दोनोंने
वरदराट्	वरदाताओंका स्वामी मैं	**मादृशः**	मेरे समान
		सुतः वृतः	पुत्र मांगा ॥३८॥
प्रादुः आसं	प्रकट हुआ		

अजुष्टग्राम्यविषयावनपत्यौ च दम्पती ।
न वव्राथेऽपवर्गं मे मोहितौ मम मायया ॥३९॥

अजुष्ट ग्राम्य विषयाः अनपत्यौ च दम्पती न वव्राथे अपवर्गं मे मोहितौ मम मायया ॥३९॥

दम्पती	तुम दोनों स्त्री-पुरुषने	**ग्राम्य विषयाः**	ऐन्द्रिक सुख
		अजुष्ट	भोगे नहीं थे

च अनपत्यौ	तथा सन्तानहीन थे	मोहितौ	मोहित होकर
मम मायया	(अतः) मेरी मायासे	मे अपवर्गं	मुझसे मोक्ष
		न वव्राथे	नहीं मांगा ॥३६॥

गते मयि युवां लब्ध्वा वरं मत्सदृशं सुतम् ।
ग्राम्यान् भोगानभुङ्क्षाथां युवां प्राप्तमनोरथौ ॥४०॥

गते मयि युवां लब्ध्वा वरं मत् सदृशं सुतं ग्राम्यान् भोगान् अभुञ्जाथां युवां प्राप्तमनोरथौ ॥४०॥

मयि गते	मेरे चले जानेपर	प्राप्तमनोरथौ	मनोरथ पूर्ण होनेपर
युवां	तुम दोनों	युवां	तुम दोनों
मत् सदृशं	मेरे समान	ग्राम्यान्	ऐन्द्रियक
सुतं वरं	पुत्रका वरदान	भोगान्	भोगोंको
लब्ध्वा	पाकर	अभुञ्जाथां	भोगने लगे ॥४०॥

अदृष्ट्वान्यतमं लोके शीलौदार्यगुणैः समम् ।
अहं सुतो वामभवं पृश्निगर्भ इति श्रुतः ॥४१॥

अदृष्ट्वा अन्यतमं लोके शील औदार्य गुणैः समं अहं सुतः वां अभवं पृश्निगर्भ इति श्रुतः ॥४१॥

शील औदार्य	शील, उदारता,	अहं वां	मैं तुम दोनोंका
आदि	आदि	सुतः	पुत्र
गुणैः समं	गुणोंमें समान	अभवं	हो गया,
अन्यतमं	दूसरे किसीको	पृश्निगर्भ	पृश्निगर्भ
लोके अदृष्ट्वा	किसी लोकमें न देख-कर	इति	इस नामसे
		श्रुतः	विख्यात हुआ ॥४१॥

तयोर्वां पुनरेवाहमदित्यामास कश्यपात् ।
उपेन्द्र इति विख्यातो वामनत्वाच्च वामनः ॥४२॥

तयोः वां पुनः एव अहं अदित्यां आस कश्यपात् उपेन्द्र इति विख्यातः वामनत्वात् च वामनः ॥४२॥

तयोः वां	उन्हीं दोनों तुमसे	अदित्यां	अदितिमें
अहं पुनः एव	मैं फिर भी	कश्यपात्	कश्यपजीसे

आस	उत्पन्न हुआ,	वामनत्वात्	बौना होनेसे
उपेन्द्र इति	उपेन्द्र इस नामसे	वामनः	वामन
च	तथा	विख्यातः	प्रसिद्ध हुआ ॥४२॥

तृतीयेऽस्मिन् भवेऽहं वै तेनैव वपुषाथ वाम् ।
जातो भूयस्तयोरेव सत्यं मे व्याहृतं सति ॥४३॥

तृतीये अस्मिन् भवे अहं वै तेन एव वपुषा अथ वां जातः भूयः तयोः एव सत्यं मे व्याहृतं सति ॥४३॥

मे व्याहृतं	मेरा उच्चारण (तीन बार दिया, दिया, दिया कहना)	वै तेन एव	निश्चय उसी
		वपुषा अहं	शरीरसे मैं
		तयोः एव वां	उन्हीं तुम दोनोंसे हो
सत्यं सति	सत्य होनेसे	अथ भूयः	अब फिर
अस्मिन्	इस	जातः	उत्पन्न हुआ हूँ ॥४३॥
तृतीये भवे	तीसरे जन्ममें		

एतद् वां दर्शितं रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे ।
नान्यथा मद्भवं ज्ञानं मर्त्यलिङ्गेन जायते ॥४४॥

एतत् वां दर्शितं रूपं प्राक् जन्म स्मरणाय मे न अन्यथा मत् भवं ज्ञानं मर्त्यलिंगेन जायते ॥४४॥

वां एतत्	तुम दोनोंको इस	अन्यथा	अन्यथा
रूपं	रूपको	मर्त्यलिंगेन	मनुष्य रूपमें
प्राक् जन्म	पूर्व जन्मका	मत् भवं	मेरे उत्पन्न होनेका
स्मरणाय	स्मरण करानेके लिए	ज्ञानं न जायते	ज्ञान नहीं होता ॥४४॥
मे दर्शितं	मैंने दिखलाया है		

युवां मां पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन चासकृत् ।
चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौ यास्येथे मद्गतिं पराम् ॥४५॥

युवां मां पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन च असकृत् चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौ यास्येथे मत् गतिं पराम् ॥४५॥

युवां मां	तुम दोनों मुझे	च ब्रह्मभावेन	तथा ब्रह्म भावसे
पुत्रभावेन	पुत्र भावसे	असकृत्	निरन्तर

चिन्तयन्तौ	चिन्तन करते हुए	गतिं	गतिको
मत् परां	मेरी परम	यास्येथे	जाओगे ॥४५॥

यदा कंसात् विभेषित्वं तर्हि मां गोकुलं नय।
मत्मायां आनयाशुत्वं यशोदा गर्भसम्भवाम् ॥*

यदि कंसात् विभेषि त्वं तर्हि मां गोकुलं नय मत् मायां आनय आशु त्वं यशोदा गर्भसम्भवाम् ॥

यदि त्वं	यदि तुम	गर्भसम्भवां	गर्भसे उत्पन्न
कंसात् विभेषि	कंससे डरते हो	मत् मायां	मेरी मायाको
तर्हि मां	तो मुझे	त्वं आशु	तुम शीघ्र
गोकुलं नय	गोकुल ले जाओ और	आनय	ले आओ ॥
यशोदा	यशोदाके		

श्रीशुक उवाच

इत्युक्त्वाऽऽसीद्धरिस्तूष्णीं भगवानात्ममायया ।
पित्रोः सम्पश्यतोः सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः ॥४६॥

इति उक्त्वा आसीत् हरिः तूष्णीं भगवान् आत्म मायया पित्रोः सम्पश्यतोः सद्यः बभूव प्राकृतः शिशु ॥४७॥

इति उक्त्वा	ऐसा कहकर	पित्रोः	माता-पिताके
हरिः तूष्णीं	श्रीहरि चुप	सम्पश्यतोः	देखते-देखते
आसीत्	हो गये और	सद्यः	तत्काल
आत्म मायया	अपनी मायासे	प्राकृतः	साधारण
भगवान्	वे भगवान्	शिशुः बभूव	शिशु हो गये ॥४६॥

ततश्च शौरिर्भगवत्प्रचोदितः
सुतं समादाय स सूतिकागृहात् ।
यदा बहिर्गन्तुमियेष तर्ह्यजा
या योगमायाजनि नन्दजायया ॥४७॥

*यह श्लोक गीताप्रेस, गोरखपुर संस्करणमें नहीं है। श्रीचक्रजी को यह श्लोक कहाँ मिला ज्ञात नहीं। —प्रकाशक

ततः च शौरिः भगवत् प्रचोदितः सुतं समादाय स सूतिका गृहात् यदा बहिः गन्तुं इयेष तर्हि अजा या योगमाया अजनि नन्द जायया ॥४७॥

ततः च	तदनन्तर	गन्तुं इयेष	जानेको निकले
शौरिः	वसुदेवजी	तर्हि या	उसी समय जो
भगवत्	भगवान् द्वारा	अजा	अजन्मा
प्रचोदितः	प्रेरित होकर	योगमाया	योगमाया
सुतं	पुत्रको	नन्द जायया	नन्द पत्नी (यशोदा) से
समादाय	सम्हालकर लेकर		
सूतिका	उस प्रसूति	अजनि	उत्पन्न हुई थी ॥४७॥
गृहात्	कक्षसे		
स यदा बहिः	वे जब बाहर		

तया हृतप्रत्ययसर्ववृत्तिषु
द्वाःस्थेषु पौरेष्वपि शायितेष्वथ ।
द्वारस्तु सर्वाः पिहिता दुरत्यया
बृहत्कपाटायसकीलशृङ्खलैः ॥४८॥

तया हृत प्रत्यय सर्व वृत्तिषु द्वाःस्थेषु पौरेषु अपि शायितेषु अथ द्वारः तु सर्वाः पिहिता दुरत्यया बृहत् कपाट आयस कील शृंखलैः ॥४८॥

तया	उस (योगमाया) के द्वारा	शायितेषु	सुला दिये जानेपर
		सर्वाः द्वारः तु	सब द्वार तो
सर्व	सब (इन्द्रिय)	बृहत् कपाट	बड़े-बड़े किवाड़ों तथा
वृत्तिषु	वृत्तियोंका		
प्रत्यय हृत	ज्ञान-हरण हो गया	आयस कील	लोहीकी कीलों एवं
अथ द्वाःस्थेषु	अतः द्वारपालों	शृंखलैः	शृंखलाओंसे
अपि	और	पिहिता	बन्द
पौरेषु	पुरवासियोंके भी	दुरत्यया	दुर्गम थे ॥४८॥

ताः कृष्णवाहे वसुदेव आगते
स्वयं व्यवर्यन्त यथा तमो रवेः ।

ववर्ष पर्जन्य उपांशुगर्जितः
शेषोऽन्वगाद् वारि निवारयन् फणैः ॥४९॥

ताः कृष्णवाहे वसुदेव आगते स्वयं व्यवर्यन्त यथा तमः रवेः ववर्ष पर्जन्य उपांशु गर्जितः शेषः अन्वगात् वारि निवारयन् फणैः ॥४९॥

यथा	जैसे	**उपांशु**	समीप ही
रवेः	सूर्यके (उगनेपर)	**गर्जितः**	गर्जना करते हुए
तमः	अन्धकार (दूर हो जाता है)	**पर्जन्य ववर्ष**	मेघ वर्षा करन लगे,
कृष्णवाहे	श्रीकृष्णको लेकर	**शेषः**	शेषजी (अपने)
वसुदेव	वसुदेवजीके	**फणैः**	फणोंसे
आगते	आनेपर	**वारि**	(वर्षा का) जल
ताः	वे (द्वार वैसे ही)	**निवारयन्**	रोकते हुए
स्वयं	स्वयं	**अन्वगात्**	पीछे चलने लगे
व्यवर्यन्त	खुल गये		॥४९॥

मघोनि वर्षत्यसकृद् यमानुजा
गम्भीरतोयौघजवोर्मिफेनिला ।
भयानकावर्तशताकुला नदी
मार्गं ददौ सिन्धुरिव श्रियः पतेः ॥५०॥

मघोनि वर्षति असकृत् यम अनुजा गम्भीर तोय औघजः उर्मि फेनिला भयानक आवर्त शत आकुला नदी मार्गं ददौ सिन्धुः इव श्रियः पतेः ॥५०॥

मघोनि	इन्द्रके	**औघजः**	जलप्लावन हो गया और
असकृत्	निरन्तर		
वर्षति	वर्षा करनेसे	**आवर्त शत**	सैकड़ों भवरोंसे
गम्भीर तोय	गहरे जलके	**आकुला**	चञ्चल
वेग उर्मि	वेगसे उठती लहरों तथा	**यम अनुजा**	यमराजकी छोटी बहिन
फेनिला	फेन भरी	**नदी**	(यमुना) नदीने
भयानक	भयंकर		

श्रियःपतेः	लक्ष्मीपति (शेष-शायी) विष्णुको	मार्गं ददौ	(वसुदेवजीको) मार्ग दे दिया ॥५०॥*
सिन्धुः इव	क्षीर सागरके समान		

नन्दव्रजं शौरिरुपेत्य तत्र तान्
गोपान् प्रसुप्तानुपलभ्य निद्रया ।
सुतं यशोदाशयने निधाय त-
त्सुतामुपादाय पुनर्गृहानगात् ॥५१॥

नन्दव्रजं शौरिः उपेत्य तत्र तान् गोपान् प्रसुप्तान् उपलभ्य निद्रया सुतं यशोदा शयने निधाय तत् सुतां उप आदाय पुनः गृहान् अगात् ॥५१॥

शौरिः	शूरनन्दन वसुदेवजी	यशोदा	यशोदाजी की
नन्दव्रजं	नन्दजीके गोष्ठ गोकुल	शयने	शय्यापर
		सुतं निधाय	पुत्रको रखकर
उपेत्य	पहुँचकर	तत् सुतां	उनकी पुत्रीको
तत्र तान्	वहां उन	उप आदाय	साथ लेकर
गोपान् निद्रया	गोपोंको निद्रासे	पुनः गृहान्	फिर कारागार-भवन
प्रसुप्तान्	सोते हुए	अगात्	आ गये ॥५१॥
उपलभ्य	पाकर		

देवक्याः शयने न्यस्य वसुदेवोऽथ दारिकाम् ।
प्रतिमुच्य पदोर्लोहमास्ते पूर्ववदावृतः ॥५२॥

देवक्याः शयने न्यस्य वसुदेवः अथ दारिकां प्रतिमुच्य पदोः लोहं आस्ते पूर्ववत् आवृतः ॥५२॥

अथ दारिकां	फिर उस बच्चीको	न्यस्य वसुदेवः	रखकर वसुदेवजी
देवक्याः शयने	देवकीकी शैय्यापर	पदोः लोहं	पैरोंमें लोहेकी बेड़ियां

*जैसे भगवान विष्णु आना या जाना चाहते हैं तो उन्हें मध्यमें समुद्र है, यह पता नहीं लगता, ऐसे ही अनायास वसुदेवजीको यमुनाने जाने तथा लौटने भी दिया ।

प्रपिमुच्य	डालकर	आवृतः आस्ते	बन्द हो गये ॥५२॥
पूर्ववत्	पहिलेके समान		

यशोदा नन्दपत्नी च जातं परमबुध्यत ।
न तल्लिङ्गं परिश्रान्ता निद्रयापगतस्मृतिः ॥५३॥

यशोदा नन्दपत्नी च जातं परं अबुध्यत न तत् लिंगं परिश्रान्ता निद्रया अपगत स्मृतिः ॥५३॥

नन्दपत्नी	नन्दकी पत्नी	निद्रया	निद्राके कारण
यशोदा च	यशोदा भी	अपगत स्मृतिः	अचेत हो जानेसे
परं जातं	कोई सन्तान उत्पन्न हुई	तत्	उस (नवजात) का
		लिंगं	चिह्न (लड़का या लड़की)
अबुध्यत	इतना जान सकीं; किन्तु	न	नहीं जान सकीं ॥५३॥
परिश्रान्ता	(प्रसवके कारण) बहुत थकी होने से		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे श्रीकृष्णजन्मनि तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

बहिरन्तःपुरद्वारः सर्वाः पूर्ववदावृताः ।
ततो बालध्वनिं श्रुत्वा गृहपालाः समुत्थिताः ॥१॥

बहिः अन्तःपुर द्वारः सर्वाः पूर्ववत् आवृताः ततः बालध्वनिं श्रुत्वा गृहपालाः समुत्थिताः ॥१॥

सर्वाः बहिः	सब बाहरीं और	ततः बाल ध्वनिं	तब बालकका शब्द (रोना)
अन्तःपुर	अन्तःपुरके	श्रुत्वा	सुनकर
द्वारः पूर्ववत्	द्वार पहिलेके समान	गृहपालाः	घरके पहरेदार
आवृताः	बन्द हो गये	समुत्थिताः	उठ गये ॥१॥

ते तु तूर्णमुपव्रज्य देवक्या गर्भजन्म तत् ।
आचख्युर्भोजराजाय यदुद्विग्नः प्रतीक्षते ॥२॥

ते तु तूर्णं उपव्रज्य देवक्या गर्भजन्म तत् आचख्युः भोजराजाय यत् उद्विग्नः प्रतीक्षते ॥२॥

ते तु तूर्णं	वे तो शीघ्र	आचख्युः	बतलाया
उपव्रज्य	समीप जाकर	यत् उद्विग्नः	जो उद्विग्न होकर
तत् देवक्या	उस देवकीके	प्रतीक्षते	प्रतीक्षा कर रहा था ॥२॥
गर्भजन्म	गर्भके जन्मको		
भोजराजाय	भोजराज कंससे		

स तल्पात् तूर्णमुत्थाय कालोऽयमिति विह्वलः ।
सूतीगृहमगात् तूर्णं प्रस्खलन् मुक्तमूर्धजः ॥३॥

स तत्पात् तूर्णं उत्थाय कालः अयं इति विह्वलः सूतीगृहं अगात् तूर्णं प्रस्खलन् मुक्तमूर्धजः ॥३॥

स तूर्णं	वह झटपट	प्रस्खलन्	लड़खड़ाता हुआ
तल्पात् उत्थाय	शय्यासे उठकर	मुक्तमूर्धजः	बाल खोले
अयं कालः	'यह मेरा काल है'	सूतीगृहं	प्रसूतिका घर
इति विह्वलः	इस भावसे व्याकुल	तूर्णं अगात्	शीघ्रतासे गया ॥३॥

तमाह भ्रातरं देवी कृपणा करुणं सती ।

तं आह भ्रातरं देवी कृपणा करुणं सती ।

तं भ्रातरं	उस भाईसे	देवी करुणं	देवकीजीने दीन
कृपणा सती	दुःखिया साध्वी		वाणीमें
		आह	कहा—

देवक्युवाच*

स्नुषेयं तव कल्याण स्त्रियं मा हन्तुमर्हसि ॥४॥

स्नुषा इयं तव कल्याण स्त्रियं मा हन्तुं अर्हसि ॥४॥

कल्याण इयं	'भद्र ! यह	स्त्रियं हन्तुं	इस स्त्रीका वध
तव स्नुषा	तुम्हारी पुत्रवधूके समान है,	मा अर्हसि	नहीं करना चाहिए ॥४॥

बहवो हिंसिता भ्रातः शिशवः पावकोपमाः ।

त्वया दैवनिसृष्टेन पुत्रिकैका प्रदीयताम् ॥५॥

बहवः हिंसिता भ्रातः शिशवः पावक उपमाः त्वया दैवनिसृष्टेन पुत्रिका एका प्रदीयताम् ॥५॥

भ्रातः	भाई !	त्वया	तुम्हारे द्वारा
दैवनिसृष्टेन	दैवकी प्रेरणासे	हिंसिता	मार दिये गये, नन्ही
पावक	अग्निके	एका पुत्रिका	(अब यह) एक पुत्री
उपमाः	समान तेजस्वी	प्रदीयतां	प्रदान कर दो ॥५॥
बहवः शिशवः	बहुतसे शिशु		

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

नन्वहं ते ह्यवरजा दीना हतसुता प्रभो ।
दातुमर्हसि मन्दाया अंगेमां चरमां प्रजाम् ॥६॥

ननु अहं ते हि अवरजा दीना हतसुता प्रभो दातुं अर्हसि मन्दाया अंग इमां चरमां प्रजाम् ॥६॥

प्रभो	हे समर्थ !	**मन्दाया**	मुझ मन्द भागिनीको
हि ननु	क्योंकि निश्चय	**अंग इमां**	भाई ! यह
अहं ते	मैं तुम्हारी	**चरमां प्रजां**	अन्तिम सन्तान
अवरजा	छोटी बहिन हूँ ।	**दातुं**	आपको
हतसुता	पुत्रोंके मारे जानेसे	**अर्हसि**	दे देनी चाहिए ॥६॥
दीना	दुःखिया हूँ,		

श्रीशुक उवाच

उपगुह्यात्मजामेवं रुदत्या दीनदीनवत् ।
याचितस्तां विनिर्भर्त्स्य हस्तादाचिच्छिदे खलः ॥७॥

उपगुह्य आत्मजां एवं रुदत्या दीन दीनवत् याचितः तां विनिर्भर्त्स्य हस्तात् आचिच्छिदे खलः ॥७॥

आत्मजां	पुत्रीको	**रुदत्या**	रोते हुए
उपगुह्य	गोदमें छिपाकर	**याचितः**	मांगनेपर
एवं दीन	इस प्रकार दुःखी होकर	**तां विनिर्भर्त्स्य**	उन्हें झिड़ककर
		खलः हस्तात्	उस दुष्टने हाथसे
दीनवत्	अत्यन्त दीनाकी भांति	**आचिच्छिदे**	छीन लिया ॥७॥

तां गृहीत्वा चरणयोर्जातमात्रां स्वसुः सुताम् ।
अपोथयच्छिलापृष्ठे स्वार्थोन्मूलितसौहृदः ॥८॥

तां गृहीत्वा चरणयोः जातमात्रां स्वसुः सुतां अपोथयत् शिलापृष्ठे स्वार्थ उन्मूलित सौहृदः ॥८॥

स्वार्थ	स्वार्थ द्वारा	**सौहृदः**	सौहार्द्र वाले उसने
उन्मूलित	जड़से उखाड़े	**जातमात्रां**	सद्योजाता

तां स्वसुः	उस बहिनकी	गृहीत्वा	पकड़कर
सुतां	पुत्रीको	शिलापृष्ठे	शिलाके ऊपर
चरणयोः	पैर	अपोथयत्	पटक दिया ॥८॥

सा तद्धस्तात् समुत्पत्य सद्यो देव्यम्बरं गता ।
अदृश्यतानुजा विष्णोः सायुधाष्टमहाभुजा ॥९॥

सा तत् हस्तात् समुत्पत्य सद्यः देवि अम्बरं गता अदृश्यत अनुजा विष्णोः सायुध अष्ट महाभुजा ॥९॥

तत् हस्तात्	उसके हाथसे	तत् सायुध	वह शस्त्रों सहित
समुत्पत्य	छिटककर	अष्ट	आठ
सद्यः	तुरन्त	महाभुजा	विशाल भुजाओं वाली
सा विष्णोः	वह भगवान विष्णुकी	देवि अदृश्यत	देवीके रूपमें दीखी ॥९॥
अनुजा	छोटी बहिन		
अम्बरं गता	आकाशमें जाकर		

दिव्यस्रगम्बरालेपरत्नाभरणभूषिता ।
धनुःशूलेषुचर्मासिशङ्खचक्रगदाधरा ॥१०॥

दिव्यस्रक् अम्बर आलेप रत्न आभरण भूषिता धनुः शूल इषु चर्म असि शंख चक्र गदाधरा ॥१०॥

दिव्यस्रक्	वह दिव्य माला,	धनुः शूल	धनुष, त्रिशूल,
अम्बर आलेप	वस्त्र, अंगराग युक्ता	इषु चर्म	बाण, ढाल,
रत्न	रत्न जटित	असि शंख	तलवार, शंख,
आभरण	आभूषणोंसे	चक्र गदाधरा	चक्र, गदा धारिणी थी ॥१०॥
भूषिता	अलंकृता,		

सिद्धचारणगन्धर्वैरप्सरःकिन्नरोरगैः ।
उपाहृतोरुबलिभिः स्तूयमानेदमब्रवीत् ॥११॥

सिद्ध चारण गन्धर्वैः अप्सरः किन्नर उरगैः उपाहृता उरु बलिभिः स्तूयमान इदं अब्रवीत् ॥११॥

सिद्ध चारण	सिद्ध, चारण,	उरुबलिभिः	बहुत-सी भेंट
गन्धर्वैः	गन्धर्वों,	उपाहृत	समर्पण करके
अप्सरः किन्नर	अप्सराओं, किन्नरों,	स्तूयमान	स्तुति की जाती हुई
उरगैः	नागों द्वारा	इदं अब्रवीत्	यह बोली ॥११॥

किं मया हतया मन्द जातः खलु तवान्तकृत् ।
यत्र क्व वा पूर्वशत्रुर्मा हिंसीः कृपणान् वृथा ॥१२॥

किं मया हतया मन्द जातः खलु तव अन्त कृत् यत्र क्व वा पूर्वशत्रुः मा हिंसीः कृपणान् वृथा ॥१२॥

मन्द	'मूर्ख !	वा	अथवा
मया हतया	मुझे मारनेसे	पूर्वशत्रुः	(तेरा) पुराना शत्रु
किं	(तेरा) क्या लाभ होगा,	खलु यत्र क्व	निश्चय जहां कहीं
		जातः	उत्पन्न हो गया,
तव	तेरा	वृथा कृपणान्	व्यर्थ दुःखियोंकी
अन्त कृत्	अन्त करनेवाला	मा हिंसीः	मत हिंसा कर' ॥१२॥

इति प्रभाष्य तं देवी माया भगवती भुवि ।
बहुनामनिकेतेषु बहुनामा बभूव ह ॥१३॥

इति प्रभाष्य तं देवी माया भगवती भुवि बहुनाम निकेतेषु बहु नामा बभूव ह ॥१३॥

तं इति	उससे यह	बहुनाम	बहुतसे नामोंके
प्रभाष्य	कहकर	निकेतेषु	स्थानोंमें
भगवती	भगवती	ह बहु	निश्चय बहुत
माया देवी	माया देवी	नामा	नामोंवाली
भुवि	पृथ्वीपर	बभूव	हो गयी ॥१३॥

तयाभिहितमाकर्ण्य कंसः परमविस्मितः ।
देवकीं वसुदेवं च विमुच्य प्रश्रितोऽब्रवीत् ॥१४॥

तया अभिहितं आकर्ण्य कंसः परम विस्मितः देवकीं वसुदेवं च विमुच्य प्रश्रितः अब्रवीत् ॥१४॥

तया अभिहितं	उसका कथन	**देवकीं च**	देवकी तथा
आकर्ण्य	सुनकर	**वसुदेवं**	वसुदेवजी को
कंसः	कंस	**विमुच्य**	बन्धन-मुक्त करके
परम	अत्यन्त	**प्रश्रितः**	विनम्र होकर
विस्मितः	आश्चर्यमें पड़ गया,	**अब्रवीत्**	बोला ॥१४॥

अहो भगिन्यहो भाम मया वां वत पाप्मना ।
पुरुषाद इवापत्यं बहवो हिंसिताः सुताः ॥१५॥

अहो भगिनि अहो भाम मया वां वत पाप्मनां पुरुषाद इव अपत्यं बहवः हिंसिताः सुताः ॥१५॥

अहो भगिनि	'हे बहिन !	**वां**	आप दोनोंके
अहो भाम	हे बहनोईजी !	**बहवः**	बहुतसे
वत मया	अरे मुझ	**सुताः अपत्यं**	पुत्र सन्तानोंको
पाप्मनां	पापीने	**हिंसिताः**	मार दिया ॥१५॥
पुरुषाद इव	राक्षसकी भांति		

स त्वहं त्यक्तकारुण्यस्त्यक्तज्ञातिसुहृत् खलः ।
कांल्लोकान् वै गमिष्यामि ब्रह्महेव मृतः श्वसन् ॥१६॥

स तु अहं त्यक्त कारुण्यः त्यक्त ज्ञाति सुहृत् खलः कान् लोकान् वै गमिष्यामि ब्रह्म हा इव मृतः श्वसन् ॥१६॥

त्यक्त कारुण्यः	करुण छोड़े हुए तथा	**मृतः**	मरेके समान
ज्ञाति	जाति एवं	**ब्रह्म हा**	ब्रह्म-हत्यारेके
सुहृत्	सुहृदों द्वारा	**इव**	समान
त्यक्त	त्यागा हुआ	**वै कान्**	पता नहीं किन
स तु अहं	वह तो मैं	**लोकान्**	लोकोंको
खलः	दुष्ट	**गमिष्यामि**	जाऊँगा ॥१६॥
श्वसन्	श्वास लेता हुआ भी		

दैवमप्यनृतं वक्ति न मर्त्या एव केवलम् ।
यद्विश्रम्भादहं पापः स्वसुर्निहतवाञ्छिशून् ॥१७॥

दैवं अपि अनृतं वक्ति न मर्त्या एव केवलं यत् विश्रम्भात् अहं पापः स्वसुः निहतवान् शिशून् ॥१७॥

केवलं मर्त्या	केवल मनुष्य	विश्रम्भात्	विश्वास करके
एव न	ही नहीं	अहं पापः	मुझ पापीने
दैवं अपि	देवता भी	स्वसुः शिशून्	बहिनके शिशुओंको
अनृतं वक्ति	झूठ बोलते हैं,	निहतवान्	मार डाला ॥१७॥
यत्	जिनपर		

मा शोचतं महाभागावात्मजान् स्वकृतम्भुजः ।
जन्तवो न सदैकत्र दैवाधीनास्तदासते ॥१८॥

मा शोचतं महाभागाः आत्मजान् स्वकृतं भुजः जन्तवः न सदा एकत्र दैवाधीनाः तत् आसते ॥१८॥

महाभागाः	महाभागो !	दैवाधीनाः	दैवके आधीन
स्वकृतं	अपने कर्मोंका	तत् जन्तवः	वे प्राणी
भुजः	फल भोगनेवाले	सदा एकत्र	सदा एक साथ
आत्मजान्	अपने पुत्रोंके लिए	न आसते	नहीं रहते ॥१८॥
शोचतं मा	शोक मत कीजिए,		

भुवि भौमानि भूतानि यथा यान्त्यपयान्ति च ।
नायमात्मा तथैतेषु विपर्येति यथैव भूः ॥१९॥

भुवि भौमानि भूतानि यथा यान्ति अपयान्ति च न अयं आत्मा तथा एतेषु विपर्यं एति यथा एव भूः ॥१९॥

भूवि	पृथ्वीपर	अयं आत्मा	यह आत्मा
भौमानि	मिट्टीसे बने	तथा	उस प्रकार
भूतानि	पदार्थ	एतेषु	इन सबके समान
यथा यान्ति	जैसे आते (बनते)	विपर्यं न	विकारको नहीं
च	तथा	एति	प्राप्त होता
अपयान्ति	दूर जाते (बिगड़ते) हैं	यथा एव	जैसे कि
		भूः	पृथ्वी है ॥१९॥

यथानेवंविदो भेदो यत आत्मविपर्ययः ।
देहयोगवियोगौ च संसृतिर्न निवर्तते ॥२०॥

यथा अन एवं विदः भेदः यत आत्म विपर्ययः देहयोग वियोगौ च संसृतिः न निवर्तते ॥२०॥

यथा	जैसे	वियोगौ	वियोगसे
अन एवं	इस प्रकार न	आत्म	आत्माके सम्बन्धमें
विद	जानने वालोंकी	विपर्ययः	उलटा भाव होता है
यत भेदः	जिससे भेदबुद्धि होती है,	च संसृतिः	और आवागमन
		निवर्तते न	छूट नहीं पाता
देहयोग	शरीरके संयोग		॥२०॥

तस्माद् भद्रे स्वतनयान् मया व्यापादितानपि ।
मानुशोच यतः सर्वः स्वकृतं विन्दतेऽवशः ॥२१॥

तस्मात् भद्रे स्वतनयान् मया व्यापादितान् अपि मा अनुशोच यतः सर्वः स्वकृतं विन्दते अवशः ॥२१॥

भद्रे तस्मात्	कल्याणी ! इसलिए	अनुशोच मा	शोक मत करो,
मया	मेरे द्वारा	यतः सर्वः	क्योंकि सभी
व्यापादितान्	मारे जानेपर	अवशः	विवश होकर
अपि	भी	स्वकृतं	अपने कर्मोंका फल
स्वतनयान्	अपने पुत्रोंके लिए	विन्दते	पाते हैं ॥२१॥

यावद्धतोऽस्मि हन्तास्मीत्यात्मानं मन्यतेऽस्वदृक् ।
तावत्तदभिमान्यज्ञो बाध्यबाधकतामियात् ॥२२॥

यावत् हतः अस्मि हन्ता अस्मि इति आत्मानं मन्यते अस्वदृक् तावत् तत् अभिमानि अज्ञः बाध्य बाधकतां इयात् ॥२२॥

यावत्	जब तक	हन्ता अस्मि	'मैं मारनेवाला हूँ'
अस्वदृक्	अपनी दृष्टिसे	इति	इस प्रकार
हतः अस्मि	'मैं मारा गया हूँ' या	आत्मानं	अपनेको (कोई)
		मन्यते	मानता है

तावत् तत्	तब तक उसका	बाध्य-बाधकतां	बाध्य-बाधक भावको
अभिमानि	अभिमानी	इयात्	प्राप्त होता है ॥२२॥
अज्ञः	अज्ञानी पुरुष		

क्षमध्वं मम दौरात्म्यं साधवो दीनवत्सलाः ।
इत्युक्त्वाश्रुमुखः पादौ श्यालः स्वस्रोरथाग्रहीत् ॥२३॥

क्षमध्वं मम दौरात्म्यं साधवः दीनवत्सलाः इति उक्त्वा अश्रुमुखः पादौ श्यालः स्वस्रोः अथ अग्रहीत् ॥२३॥

साधवः	(आप तो) साधु,	अथ अश्रुमुखः	फिर मुँहपर आँसू ढुलकता
दीनवत्सलाः	दीनोंपर स्नेह करने वाले हैं,	श्यालः स्वस्रोः	बहनोई-बहिनके
मम दौरात्म्यं	मेरी दुष्टताको	पादौ अग्रहीत्	पैर पकड़ लिये ॥२३॥
क्षमध्वं	क्षमा कर दीजिए !'		
इति उक्त्वा	ऐसा कहकर		

मोचयामास निगडाद् विश्रब्धः कन्यकागिरा ।
देवकीं वसुदेवं च दर्शयन्नात्मसौहृदम् ॥२४॥

मोचयामास निगडात् विश्रब्धः कन्यकागिरा देवकीं वसुदेवं च दर्शयन् आत्मसौहृदम् ॥२४॥

कन्यकागिरा	उस कन्याकी बातसे	देवकीं च	देवकी और
विश्रब्धः	विश्वस्त होकर	वसुदेवं	वसुदेवको
आत्मसौहृदं	अपना सौहार्द	निगडात्	बेड़ीसे
दर्शयन्	दिखलाता हुआ	मोचयामास	छुड़ा दिया ॥२४॥

भ्रातुः समनुतप्तस्य क्षान्त्वा रोषं च देवकी ।
व्यसृजद् वसुदेवश्च प्रहस्य तमुवाच ह ॥२५॥

भ्रातुः सम अनुतप्तस्य क्षान्त्वा रोषं च देवकी व्यसृजत् वसुदेवः च प्रहस्य तं उवाच ह ॥२५॥

भ्रातुः	भाईको	अनुतप्तस्य	पछताते हुए देखकर
सम	बहुत	देवकी	देवकीका

क्षान्त्वा रोषं	क्रोध शान्त हो गया	वसुदेवः च	वसुदेवजीने भी
च	तथा	प्रहस्य ह	हँसकर ही
व्यसृजत्	(उसका अपराध) छोड़ (भूल) कर	तं उवाच	उससे बोले ॥२५॥

वसुदेव उवाच*

एवमेतन्महाभाग यथा वदसि देहिनाम् ।
अज्ञानप्रभवाहंधीः स्वपरेति भिदा यतः ॥२६॥

एवं एतत् महाभाग यथा वदसि देहिनां अज्ञान प्रभवा अहं धीः स्व पर इति भिदा यतः ॥२६॥

महाभाग	महाभाग !	अहं धीः	अहंकारमयी बुद्धि होती है
यथा वदसि	जैसा आप कहते हैं	यतः	जिससे
एतत् एवं	यह (तथ्य) ऐसा ही है,	स्व पर	अपने-परायेका
देहिनां	शरीरधारियोंकी	भिदा	भेद (उत्पन्न होता)
अज्ञान प्रभवा	अज्ञानसे उत्पन्न		है ॥२६॥

शोकहर्षभयद्वेषलोभमोहमदान्विताः ।
मिथो घ्नन्तं न पश्यन्ति भावैर्भावं पृथग्दृशः ॥२७॥

शोक हर्ष भय द्वेष लोभ मोह मद अन्विताः मिथः घ्नन्तं न पश्यन्ति भावैः भावं पृथक् दृशः ॥२७॥

शोक हर्ष	शोक, हर्ष,	भावैः	एक भावसे दूसरे
भय द्वेष	भय, द्वेष,	भावं	भावको
लोभ मोह	लोभ, मोह	मिथः घ्नन्तं	परस्पर ही नष्ट करते
मद अन्विताः	मद युक्त		
पृथक् दृशः	भेद-दर्शी लोग	पश्यन्ति न	देखते नहीं ॥२७॥

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

श्रीशुक उवाच

कंस एवं प्रसन्नाभ्यां विशुद्धं प्रतिभाषितः ।
देवकीवसुदेवाभ्यामनुज्ञातोऽविशद् गृहम् ॥२८॥

कंस एवं प्रसन्नाभ्यां विशुद्धं प्रतिभाषितः देवकीवसुदेवाभ्यां अनुज्ञातः आविशत् गृहम् ॥२८॥

एवं	इस प्रकार	अनुज्ञातः	उनकी अनुमति पाकर
प्रसन्नाभ्यां	प्रसन्न होकर	कंस गृहं	कंस अपने घर
देवकी-	देवकी-	आविशत्	आ गया ॥२८॥
वसुदेवाभ्यां	वसुदेव द्वारा		
प्रतिभाषितः	उत्तर पाकर		

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां कंस आहूय मन्त्रिणः ।
तेभ्य आचष्ट तत् सर्वं यदुक्तं योगनिद्रया ॥२९॥

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां कंस आहूय मन्त्रिणः तेभ्य आचष्ट तत् सर्वं यत् उक्तं योगनिद्रया ॥२९॥

तस्यां रात्र्यां	उस रात्रिके	यत्	जो
व्यतीतायां	बीत जानेपर	योगनिद्रया	योगमायाने
कंस	कंसने	उक्तं तत् सर्वं	कहा था वह सब
मन्त्रिणः	मन्त्रियोंको	तेभ्य आचष्ट	उनसे सुनाया ॥२९॥
आहूय	बुलाकर		

आकर्ण्य भर्तुर्गदितं तमूचुर्देवशत्रवः ।
देवान् प्रति कृतामर्षा दैतेया नातिकोविदाः ॥३०॥

आकर्ण्य भर्तुः गदितं तं ऊचुः देवशत्रवः देवान् प्रति कृत अमर्षा दैतेया न अति कोविदाः ॥३०॥

भर्तुः गदितं	अपने स्वामीकी बात	कोविदाः न	चतुर न होनेसे
आकर्ण्य	सुनकर	देवान् प्रति	देवताओंके प्रति
अति	अत्यन्त	कृत अमर्षा	क्रोध करके

देवशत्रवः	देवताओंके शत्रु	तं ऊचुः	उस (कंस) से बोले
दैतेया	दैत्य लोग		॥३०॥

दैत्या ऊचु*

एवं चेत्तर्हि भोजेन्द्र पुरग्रामव्रजादिषु ।
अनिर्दशान् निर्दशांश्च हनिष्यामोऽद्य वै शिशून् ॥३१॥

एवं चेत् तर्हि भोजेन्द्र पुर ग्राम व्रज आदिषु अनिर्दशान् निर्दशान् च हनिष्यामः अद्य वै शिशून् ॥३१॥

भोजेन्द्र	भोजेन्द्र !	च निर्दशान्	और दस दिनसे बड़े हुए
एवं चेत् तर्हि	ऐसा हो तो भी	शिशून् अद्य वै	शिशुओंको आज ही
पुर ग्राम	नगर, गाँव,	हनिष्यामः	(हम) मार देंगे
व्रज आदिषु	गोष्ठादिमें		॥३१॥
अनिर्दशान्	दस दिनके न हुए		

किमुद्यमैः करिष्यन्ति देवाः समरभीरवः ।
नित्यमुद्विग्नमनसो ज्याघोषैर्धनुषस्तव ॥३२॥

किं उद्यमैः करिष्यन्ति देवाः समर भीरवः नित्यं उद्विग्न मनसः ज्याघोषैः धनुषः तव ॥३२॥

तव धनुषः	आपके धनुषकी	समर भीरवः	युद्ध भीरु
ज्याघोषैः	प्रत्यञ्चाके घोषसे	देवाः किं	देवता क्या
नित्यं उद्विग्न	सदा घबड़ाये	उद्यमैः	उद्योग
मनसः	मन वाले	करिष्यन्ति	कर लेंगे ॥३२॥

अस्यतस्ते शरव्रातैर्हन्यमानाः समन्ततः ।
जिजीविषव उत्सृज्य पलायनपरा ययुः ॥३३॥

अस्यतः ते शरव्रातैः हन्यमानाः समन्ततः जिजीविषव उत्सृज्य पलायनपरा ययुः ॥३३॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

ते	आपके
शरव्रातैः	वाण समूहोंके
अस्यतः	घोड़े जानेपर
समन्ततः	चारों ओरसे
हन्यमानाः	मारे जाते हुए (उनमें)
जिजीविषव	जीना चाहनेवाले
उत्सृज्य	(युद्ध) त्यागकर
पलायनपरा	भागनेमें लगकर
ययुः	चले गये ॥३३॥

केचित् प्राञ्जलयो दीना न्यस्तशस्त्रा दिवौकसः ।
मुक्तकच्छशिखाः केचिद् भीताः स्म इति वादिनः ॥३४॥

केचित् प्राञ्जलयः दीना न्यस्तशस्त्रा दिवौकसः मुक्तकच्छ शिखाः केचित् भीताः स्म इति वादिनः ॥३४॥

दीना	बेचारे
दिवौकसः	देवताओंमें
केचित्	कुछ
प्राञ्जलयः	हाथ जोड़कर
केचित्	कुछ
मुक्तकच्छ	खुली लांग
शिखाः	और चोटी
न्यस्यशस्त्रा	हथियार डालकर
'भीताः स्म'	'हम डर गये हैं'
इति वादिनः	ऐसा कहने लगे ॥३४॥

न त्वं विस्मृतशस्त्रास्त्रान् विरथान् भयसंवृतान् ।
हंस्यन्यासक्तविमुखान् भग्नचापानयुध्यतः ॥३५॥

न त्वं विस्मृत शस्त्र अस्त्रान् विरथान् भय संवृतान् हंसि आसक्त विमुखान् भग्न चापान् अयुध्यतः ॥३५॥

शस्त्र अस्त्रान्	शस्त्र-अस्त्रोंको
विस्मृत	(भयसे) चलाना भूल गये,
विरथान्	रथहीन हुए,
भय संवृतान्	भयभीत हो गये,
आसक्त	अपनेसे लड़तेसे
विमुखान्	विमुख हो गये,
भग्न चापान्	धनुष टूटे हुओंको
अयुध्यतः	युद्ध न करने वालेको
त्वं न हंसि	आप नहीं मारते ॥३५॥

किं क्षेमशूरैर्विबुधैरसंयुगविकत्थनैः ।
रहोजुषा किं हरिणा शम्भुना वा वनौकसा ।
किमिन्द्रेणाल्पवीर्येण ब्रह्मणा वा तपस्यता ॥३६॥

किं क्षेम शूरैः विबुधैः असंयुग विकत्थनैः रहः जुषा किं हरिणा शम्भुना वा वनौकसा किं इन्द्रेण अल्पवीर्येण ब्रह्मणा वा तपस्यता ॥३६॥

क्षेम	शान्तिके समय	वा वनौकसा	अथवा बनवासी
शूरैः	वीर बननेवाले,	शम्भुना	शंकरसे,
असंयुग	बिना युद्धके	अल्पवीर्येण	अल्प पराक्रम
विकत्थनैः	बकवाद करनेवाले,	इन्द्रेण वा	इन्द्रसे अथवा
विबुधैः किं	देवताओंसे क्या (भय)	तपस्यता	तपस्या करते
रहः जुषा	एकान्त सेवी	ब्रह्मणा किं	ब्रह्मासे ही क्या
हरिणा किं	हरिसे क्या (भय)		भय ॥३६॥

तथापि देवाः सापत्न्यान्नोपेक्ष्या इति मन्महे ।
ततस्तन्मूलखनने नियुङ्क्ष्वास्माननुव्रतान् ॥३७॥

तथा अपि देवाः सापत्न्याः न उपेक्ष्या इति मन्महे ततः तत् मूल खनने नियुङ्क्ष्व अस्मान् अनुव्रतान् ॥३७॥

तथा अपि	ऐसा होनेपर भी	मूल खनने	जड़ खोदनेमें
सापत्न्याः देवाः	शत्रु देवता	अस्मान्	हम
उपेक्ष्या न	उपेक्षणीय नहीं हैं	अनुव्रतान्	अनुचरोंको
इति मन्महे	ऐसा हम मानते हैं,	नियुङ्क्ष्व	नियुक्त कीजिए
ततः तत्	इसलिए उनकी		॥३७॥

यथाऽऽमयोऽङ्गे समुपेक्षितो नृभि-
र्न शक्यते रूढपदश्चिकित्सितुम् ।
यथेन्द्रियग्राम उपेक्षितस्तथा
रिपुर्महान् बद्धबलो न चाल्यते ॥३८॥

यथा आमयः अंगे सम उपेक्षितः नृभिः न शक्यते रूढपदः चिकित्सितुं यथा इन्द्रियग्राम उपेक्षितः तथा रिपुः महान् बद्धबलः न चाल्यते ॥३८॥

यथा अंगे	जैसे शरीरमें हुआ	इन्द्रियग्राम	इन्द्रिय समूह
आमयः	रोग	उपेक्षितः	उपेक्षा करनेपर
नृभिः सम	मनुष्य द्वारा बहुत		(बलवान हो जाता
उपेक्षितः	उपेक्षा किये जानेपर		है)
रूढपदः	पैर जमा लेनेपर	तथा महान्	वैसे महान्
चिकित्सितुं	(उसकी) चिकित्सा	बद्धबलः रिपुः	बढ़े बलवाला शत्रु
	करना	चाल्यते न	विचलित नहीं किया
न शक्यते	शक्य नहीं होता,		जा पाता ॥३८॥
यथा	जैसे		

मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्मः सनातनः ।
तस्य च ब्रह्म गोविप्रास्तपो यज्ञाः सदक्षिणाः ॥३९॥

मूलं हि विष्णुः देवानां यत्र धर्मः सनातनः तस्य च ब्रह्म गो विप्राः तपः यज्ञाः सदक्षिणाः ॥३९॥

हि देवानां	क्योंकि देवताओंकी	तस्य च	उस (विष्णु) की भी
मूलं विष्णुः	जड़ विष्णु है,		(जड़)
यत्र	जिसमें	ब्रह्म गो	वेद, गौ,
सनातनः धर्मः	सनातन धर्म स्थित	विप्राः तपः	ब्राह्मण, तपस्या,
	है	सदक्षिणाः	दक्षिणा सहित
		यज्ञाः	यज्ञ हैं ॥३९॥

तस्मात् सर्वात्मना राजन् ब्राह्मणान् ब्रह्मवादिनः ।
तपस्विनो यज्ञशीलान् गाश्च हन्मो हविर्दुघाः ॥४०॥

तस्मात् सर्वात्मना राजन् ब्राह्मणान् ब्रह्मवादिनः तपस्विनः यज्ञशीलान् गाः च हन्मः हविर्दुघाः ॥४०॥

राजन् तस्मात्	राजन् ! इसलिए	तपस्विनः	तपस्वी
ब्रह्मवादिनः	वेदवादी,	यज्ञशीलान्	यज्ञकर्ता

ब्राह्मणान्	ब्राह्मणोंको	सर्वात्मना	सब प्रकारसे
च हविर्दुघान्	और हव्य देनेवाली	हन्मः	हम मारेंगे ॥४०॥
गाः	गायोंको		

विप्रा गावश्च वेदाश्च तपः सत्यं दमः शमः ।
श्रद्धा दया तितिक्षा च क्रतवश्च हरेस्तनूः ॥४१॥

विप्रा गावः च वेदाः च तपः सत्यं दमः शमः श्रद्धा दया तितिक्षा च क्रतवः च हरेः तनूः ॥४१॥

विप्रा च	ब्राह्मण और	श्रद्धा दया	श्रद्धा, दया,
गावः	गायें,	च तितिक्षा	तथा तितिक्षा
वेदाः च	वेद एवं	च क्रतवः	एवं यज्ञ
तपः	तपस्या,	हरेः तनूः	हरिके शरीर हैं
सत्यं दमः शमः	सत्य, दम, शम,		॥४१॥

स हि सर्वसुराध्यक्षो ह्यसुरद्विड् गुहाशयः ।
तन्मूला देवताः सर्वाः सेश्वराः सचतुर्मुखाः ।
अयं वै तद्वधोपायो यदृषीणां विहिंसनम् ॥४२॥

स हि सर्वसुर अध्यक्षः हि असुर द्विट् गुहाशयः तत् मूला देवताः सर्वाः स ईश्वराः स चतुर्मुखाः अयं वै तत् वधः उपायः यत् ऋषीणां विहिंसनम् ॥४२॥

हि स	क्योंकि वह	वै यत्	निश्चय जो
सर्वसुर	सब देवताओंका	ऋषीणां	ऋषियोंको
अध्यक्षः	अध्यक्ष है और	विहिंसनं	मार देना है
हि	क्योंकि (वह)	अयं तत्	यह उसके
गुहाशयः	हृदय गुफामें रहता है,	वधः उपायः	वधका उपाय है
असुर द्विट्	असुरोंका द्रोही है,		॥४२॥

श्रीशुक उवाच

एवं दुर्मन्त्रिभिः कंसः सह सम्मन्त्र्य दुर्मतिः ।
ब्रह्महिंसां हितं मेने कालपाशावृतोऽसुरः ॥४३॥

एवं दुर्मन्त्रिभिः कंसः सह सम्मन्त्र्य दुर्मतिः ब्रह्महिंसां हितं मेने कालपाश आवृतः असुरः ॥४३॥

कालपाश	कालपाशसे	सह सम्मन्त्र्य	साथ सलाह करके
आवृतः असुरः	घिरा हुआ असुर	ब्रह्महिंसां	ब्रह्म-हत्यामें
दुर्मतिः कंसः	दुर्मति कंसने	हितं मेने	अपना भला माना
एवं	इस प्रकार		॥४३॥
दुर्मन्त्रिभिः	कुटिल मन्त्रियोंके		

संदिश्य साधुलोकस्य कदने कदनप्रियान् ।
कामरूपधरान् दिक्षु दानवान् गृहमाविशत् ॥४४॥

सन्दिश्य साधु लोकस्य कदने कदने प्रियान् कामरूप धरान् दिक्षु दानवान् गृहं आविशत् ॥४४॥

कामरूप	इच्छानुसार रूप	दिक्षु	सब दिशाओंमें
धरान्	धरनेवाले	कदने	हिंसा करनेका
कदन प्रियान्	हिंसाप्रिय	सन्दिश्य	आदेश देकर
दानवान्	दानवोंको	गृहं आविशत्	घरके भीतर चला
साधु लोकस्य	सत्पुरुष लोगोंकी		गया ॥४४॥

ते वै रजःप्रकृतयस्तमसा मूढचेतसः ।
सतां विद्वेषमाचेरुरारादागतमृत्यवः ॥४५॥

ते वै रजः प्रकृतयः तमसा मूढ चेतसः सतां विद्वेषं आचेरुः आरात् आगत मृत्यवः ॥४५॥

ते वै	निश्चय वे	आरात्	(जिनके) समीप
रजः	रजोगुणी	मृत्यवः आगत	मृत्यु आ गयी थीं
प्रकृतयः	स्वभाववाले	सतां विद्वेषं	सत्पुरुषोंसे शत्रुता
तमसा	क्रोधसे	आचेरुः	करने लगे ॥४५॥
मूढ चेतसः	मूढ बुद्धि हुए		

आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च ।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥४६॥

आयुः श्रियं यशः धर्मं लोकान् आशिष एव च हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसः महत् अतिक्रमः ॥४६॥

महत्	महापुरुषोंका	**आशिष एव**	कामनाओंकी भी
अतिक्रमः	अनादर	**च सर्वाणि**	और सभी
पुंसः आयुः	पुरुषकी आयु,	**श्रेयांसि**	श्रेयोंको
श्रियं यशः धर्मं	लक्ष्मी, यश, धर्म,	**हन्ति**	नष्ट कर देता है
लोकान्	(स्वर्गादि) लोक		॥४६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः ।
आहूय विप्रान् वेदज्ञान् स्नातः शुचिरलंकृतः ॥१॥

नन्दः तु आत्मज उत्पन्ने जात आह्लादः महामनाः आहूय विप्रान् वेदज्ञान् स्नातः शुचिः अलङ्कृतः ॥१॥

आत्मज	पुत्रका	वेदज्ञान् विप्रान	वेदज्ञ ब्राह्मणोंको
उत्पन्ने तु	जन्म होनेसे तो	आहूय	बुलाकर
महामनाः	अत्यन्त उदार	स्नातः	स्नान करके
नन्दः	नन्दजीको	शुचिः	पवित्र होकर
आह्लादः जात	परमानन्द हुआ	अलङ्कृतः	आभूषित हुए ॥१॥

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै ।
कारयामास विधिवत् पितृदेवार्चनं तथा ॥२॥

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्म आत्मजस्य वै कारयामास विधिवत् पितृ देव अर्चनं तथा ॥२॥

स्वस्त्ययनं	स्वस्तिपाठ	तथा पितृ	तथा पितरों
वाचयित्वा	करवाकर	देव	एवं देवताओंका
आत्मजस्य	पुत्रका	अर्चनं	पूजन
वै विधिवत्	निश्चित विधिपूर्वक	कारयामास	करवाया ॥२॥
जातकर्म	जात-कर्म संस्कार		

धेनूनां नियुते प्रादाद् विप्रेभ्यः समलंकृते ।
तिलाद्रीन् सप्त रत्नौघशातकौम्भाम्बरावृतान् ॥३॥

धेनूनां नियुते प्रादात् विप्रेभ्यः समु अलङ्कृते तिल अद्रीन् सप्त रत्न ओघ शात कौम्भ अम्बर आवृतान् ॥३॥

समु	भली प्रकार	अम्बर	वस्त्रोंसे
अलङ्कृते	सजायी हुई	आवृतान्	ढके
धेनूनां नियुते	बीस लाख गायें तथा	सप्त तिल	सात तिल
		अद्रीन्	पर्वत*
रत्न ओघ	रत्न समूह एवं	विप्रेभ्यः	ब्राह्मणोंको
शात कौम्भ	सुनहले कामयुक्त	प्रादात्	प्रदान किये ॥३॥

कालेन स्नानशौचाभ्यां संस्कारैस्तपसेज्यया ।
शुध्यन्ति दानैः सन्तुष्ट्या द्रव्याण्यात्माऽऽत्मविद्यया ॥४॥

कालेन स्नान शौचाभ्यां संस्कारैः तपसा इज्यया शुध्यन्ति दानैः सन्तुष्ट्या द्रव्याणि आत्मा आत्मविद्यया ॥४॥

द्रव्याणि	पदार्थ	दानैः	दान या
कालेन	समय पाकर,	सन्तुष्ट्या	सन्तोषसे तथा
स्नान	स्नान (धोने),	आत्मा	आत्मा
शौचाभ्यां	पवित्र करने,	आत्मविद्यया	आत्म-ज्ञानसे
संस्कारैः	संस्कार करने,	शुध्यन्ति	शुद्ध होता है ॥४॥
तपसा इज्यया	तपस्या, यज्ञ,		

सौमंगल्यगिरो विप्राः सूतमागधवन्दिनः ।
गायकाश्च जगुर्नेदुर्भेर्यो दुन्दुभयो मुहुः ॥५॥

सौमंगल्यगिरः विप्राः सूत मागध वन्दिनः गायकाः च जगुः नेदुः भेर्यः दुन्दुभयः मुहुः ॥५॥

विप्राः	ब्राह्मण	सौमंगल्यगिरः	आशीर्वाद देने लगे,

*जिस तिलकी ऊँची ढ़ेरीके दोनों ओर दो व्यक्ति खड़े, हों तो एक दूसरेको न देख सकें, उसे 'तिल पर्वत' कहते हैं ।

सूत मागध	सूत, मागध	भेर्य: दुन्दुभय:	भेरियां और नगाड़े
च वन्दिन:	तथा वन्दीजन*	मुहु: नेदु:	बार-बारबजने
गायका: जगु:	आदि गायक गाने		लगे ॥५॥
	लगे,		

व्रज: सम्मृष्टसंसिक्तद्वाराजिरगृहान्तर: ।
चित्रध्वजपताकास्त्रक्चैलपल्लवतोरणै: ॥६॥

व्रज: सम्मृष्ट संसिक्त द्वार अजिर गृह अन्तर: चित्र ध्वज पताका स्त्रक् चैल पल्लव तोरणै: ॥६॥

व्रज: द्वार	व्रजके सब द्वार	चित्र	अनेक प्रकारकी
अजिर	आंगन	ध्वज	ध्वजा,
गृह अन्तर:	घरके भीतरी भाग	पताका स्त्रक्	पताका, माला तथा
सम्मृष्ट	स्वच्छ करके	चैल पल्लव	वस्त्रों और पल्लवोंके
संसिक्त	(चन्दनादिसे) छिड़क	तोरणै:	बन्दनवारोंसे सजाये
	कर सींचे गये,		गये ॥६॥

गावो वृषा वत्सतरा हरिद्रातैलरूषिता: ।
विचित्रधातुबर्हस्त्रग्वस्त्रकाञ्चनमालिन: ॥७॥

गाव: वृषा वत्सतरा हरिद्रा तैल रूषिता: विचित्र धातु बर्ह स्त्रक् वस्त्र काञ्चन मालिन: ॥७॥

गाव: वृषा	गायों, बैलों,	बर्ह स्त्रक्	मयूर पंख, माला,
वत्सतरा	बछड़े	वस्त्र	वस्त्र तथा
हरिद्रा तैल	हल्दी मिले तेलसे	काञ्चन	स्वर्ण
रूषिता	रंगे हुए	मालिन:	मालाओंसे (सजाये
विचित्र	(गेरू आदि) अनेक		गये ॥७॥
धातु	धातुओंसे,		

---

* सूता पौराणिका: प्रोक्ता मागधा: वंश शंसका: ।
वन्दिन: तु अमल प्रज्ञा: प्रस्ताव मदृशोक्तय: ॥

१-सूत पुराणोंके कथा वाचक होते हैं । २-मागध वंशवली वर्णन करते हैं और ३-वन्दी प्रसंगानुसार नवीन या पुरानी कविता पाठ करते हैं ।

महार्हवस्त्राभरणकञ्चुकोष्णीषभूषिताः ।
गोपाः समाययू राजन् नानोपायनपाणयः ॥८॥

महा अर्ह वस्त्र आभरण कञ्चुक उष्णीष भूषिताः गोपाः सम आययु राजन् नाना उपायन पाणयः ॥८॥

राजन्	राजन् !	नाना	अनेक प्रकारके
महा अर्ह	बहु मूल्य	उपायन	उपहार
वस्त्र आभरण	वस्त्र, आभूषण,	पाणयः	हाथोंमें लेकर
कञ्चुक	कुर्ते,	गोपाः सम	गोप एक साथ
उष्णीष	पगड़ीसे	आययु	आये ॥८॥
भूषिताः	सुशोभित		

गोप्यश्चाकर्ण्य मुदिता यशोदायाः सुतोद्भवम् ।
आत्मानं भूषयांचक्रुर्वस्त्राकल्पाञ्जनादिभिः ॥९॥

गोप्यः च आकर्ण्य मुदिता यशोदायाः सुत उद्भवं आत्मानं भूषयान् चक्रुः वस्त्र आकल्प अञ्जन आदिभिः ॥९॥

गोप्यः च	गोपियाँ भी	अञ्जन	अञ्जन
यशोदायाः	यशोदाके	आदिभिः	आदिसे
सुत उद्भवं	पुत्र-उत्पन्न होना	आत्मानं	अपनेको
आकर्ण्य	सुनकर	भूषयान् चक्रुः	आभूषित किया ॥९॥
मुदिता	प्रसन्न होकर		
वस्त्र आकल्प	वस्त्र, अंगराग,		

नवकुंकुमकिञ्जल्कमुखपङ्कजभूतयः ।
बलिभिस्त्वरितं जग्मुः पृथुश्रोण्यश्चलत्कुचाः ॥१०॥

नव कुंकुम किञ्जल्क मुख पङ्कज भूतयः बलिभिः त्वरितं जग्मुः पृथुश्रोण्यः चलत् कुचाः ॥१०॥

नव कुङ्कुम	नवीन केशरके	भूतयः	सुशोभित
किञ्जल्क	परागसे	पृथुश्रोण्यः	स्थूल नितम्ब
मुख पङ्कज	मुख-कमल	चलत्	एवं हिलते

कुचाः	पयोधर वाली वे	त्वरितं	शीघ्रतापूर्वक
बलिभिः	उपहार लिये	जग्मुः	चलीं ॥१०॥

गोप्यः सुमृष्टमणिकुण्डलनिष्ककण्ठ्य-
श्चित्राम्बराः पथि शिखाच्युतमाल्यवर्षाः ।
नन्दालयं सवलया व्रजतीर्विरेजु-
र्व्यालोलकुण्डलपयोधरहारशोभाः ॥११॥

गोप्यः सुमृष्ट मणिकुण्डल निष्ककण्ठ्यः चित्र अम्बराः पथि शिखा च्युत माल्य वर्षाः नन्द आलयं सवलया व्रजतीः विरेजुः व्यालोल कुण्डल पयोधर हार शोभाः ॥११॥

सुमृष्ट	उज्ज्वल	व्यालोल	चञ्चल
मणिकुण्डल	मणिमय कुण्डल,	कुंडल	कुण्डल तथा
निष्ककण्ठ्यः	गलेमें पदिक सहित हार,	पयोधर हार	पयोधरोंपर हारसे
		शोभाः	शोभित
चित्र	अनेक रंगोंके	गोप्यः	गोपियां
अम्बराः	वस्त्र पहिने,	नन्द आलयं	नन्द-भवन
शिखा च्युत	जूड़ेमें से गिरते	व्रजतीः	जाती हुई
पथि	मार्गमें	विरेजुः	अत्यन्तु शोभित हुईं ॥११॥
माल्य वर्षाः	मालाएँ बरसाती		
सवलया	कंकण पहिने,		

ता आशिषः प्रयुञ्जानाश्चिरं पाहीति बालके ।
हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः सिञ्चन्त्यो जनमुज्जगुः ॥१२॥

ता आशिषः प्रयुञ्जानाः चिरं पाहि इति बालके हरिद्रा चूर्ण तैल अद्भिः सिञ्चन्त्यः जनं उज्जगुः ॥१२॥

'चिरं पाहि'	'बहुत दिनों तक हमारी रक्षा करना'	बालके	बालकको
		आशिषः	आशीर्वाद
इति	इस प्रकार	प्रयुञ्जानाः	देती हुई

हरिद्रा चूर्ण	हल्दीके चूर्ण	उज्जगुः	उच्च स्वरसे गाने लगीं ॥१२॥
तैल अद्भिः	तेल और पानीसे		
जनं सिञ्चन्त्यः	लोगोंको भिगाती हुई		

अवाद्यन्त विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे ।
कृष्णे विश्वेश्वरेऽनन्ते नन्दस्य व्रजमागते ॥१३॥

अवाद्यन्त विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे कृष्णे विश्वेश्वरे अनन्ते नन्दस्य व्रजं आगते ॥१३॥

विश्वेश्वरे	विश्वेश्वर	विचित्राणि	अनेक प्रकारके
अनन्ते कृष्णे	अनन्त श्रीकृष्णके	वादित्राणि	बाजे
नन्दस्य व्रजं	नन्द-व्रजमें	महोत्सवे	महोत्सवमें
आगते	आनेपर	अवाद्यन्त	बजने लगे ॥१३॥

गोपाः परस्परं हृष्टा दधिक्षीरघृताम्बुभिः ।
आसिञ्चन्तो विलिम्पन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपुः ॥१४॥

गोपाः परस्परं हृष्टा दधि क्षीर घृत अम्बुभिः आसिञ्चन्तः विलिम्पन्तः नवनीतैः च चिक्षिपुः ॥१४॥

हृष्टा गोपाः	हर्षित गोप	विलिम्पन्तः	पोतते हुए
परस्परं	परस्पर	नवनीतैः	मक्खन
दधि क्षीर	दही, दूध,	च	भी (एक दूसरेपर)
घृत अम्बुभिः	घी और पानी	चिक्षिपुः	फेंकने लगे ॥१४॥
आसिञ्चन्तः	उलीचते,		

नन्दो महामनास्तेभ्यो वासोऽलंकारगोधनम् ।
सूतमागधवन्दिभ्यो येऽन्ये विद्योपजीविनः ॥१५॥

नन्दः महामनाः तेभ्यः वासः अलङ्कार गो धनं सूत मागध वन्दिभ्यः ये अन्ये विद्या उपजीविनः ॥१५॥

महामनाः	परमोदार	वन्दिभ्यः	वन्दियोंको और
नन्दः	नन्दजीने	ये अन्ये	जो दूसरे
तेभ्यः वासः	उनको वस्त्र,	विद्या	(नृत्य-गीतादि)
अलङ्कार	आभूषण		विद्याओंसे
गो धनं	गायें, धन (दिया	उपजीविनः	जीविका चलाने
	तथा)		वाले थे ॥१५॥
सूत मागध	सूत, मागध,		

तैस्तैः कामैरदीनात्मा यथोचितमपूजयत् ।
विष्णोराराधनार्थाय स्वपुत्रस्योदयाय च ॥१६॥

तैः तैः कामैः अदीन आत्मा यथा उचितं अपूजयत् विष्णोः आराधना अर्थाय स्वपुत्रस्य उदयाय ॥१६॥

तैः तैः	उन-उनकी	अर्थाय	लिये
कामैः	इच्छाके अनुसार	च	तथा
अदीन आत्मा	बिना कृपण चित्त	स्वपुत्रस्य	अपने पुत्रके
	हुए	उदयाय	अभ्युदयके लिए
यथा उचितं	उचित रूपसे	अपूजयत्	(उनका) सत्कार
विष्णोः	श्रीहरिकी		किया ॥१६॥
आराधना	आराधनाके		

रोहिणी च महाभागा नन्दगोपाभिनन्दिता ।
व्यचरद् दिव्यवासः स्रक्कण्ठाभरणभूषिता ॥१७॥

रोहिणी च महाभागा नन्द गोप अभिनन्दिता व्यचरत् दिव्यवासः स्रक् कण्ठाभरण भूषिता ॥१७॥

नन्द गोप	नन्द गोपसे	कण्ठाभरण	कण्ठाभरणसे
अभिनन्दिता	सत्कृता	भूषिता	आभूषिता,
महाभागा	महाभागा	व्यचरत्	इधर-उधर (गोपियों-
रोहिणी च	रोहिणी भी		के सत्कारको) घूम
दिव्यवासः	दिव्य वस्त्र,		रही थीं ॥१७॥
स्रक्	माला,		

ततः आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान् ।
हरेर्निवासात्मगुणैः रमाक्रीडमभून्नृप ॥१८॥

ततः आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्वं समृद्धिमान् हरेः निवास आत्म गुणैः रमा आक्रीडं अभूत नृप ॥१८॥

नृप	राजन् !	समृद्धिमान्	सम्पत्तियुक्त
ततः	उसी समयसे	हरेः निवास	श्रीहरिके निवास एवं
आरभ्य	आरम्भ करके	आत्म गुणैः	अपने गुणसे
नन्दस्य व्रजः	नन्द-व्रज	रमा आक्रीडं	लक्ष्मीका क्रीड़ास्थल
सर्वं	सब	अभूत्	हो गया ॥१८॥

गोपान् गोकुलरक्षायां निरूप्य मथुरां गतः ।
नन्दः कंसस्य वार्षिक्यं करं दातुं कुरूद्वह ॥१९॥

गोपान् गोकुल रक्षायां निरूप्य मथुरां गतः नन्दः कंसस्य वार्षिक्यं करं दातुं कुरूद्वह ॥१९॥

कुरूद्वह	कुरुकुल पालक परीक्षित् !	कंसस्य वार्षिक्यं	कंसका वार्षिक
गोकुल	गोकुलकी	करं दातुं	कर देने
रक्षायां	रक्षाके लिए	नन्दः मथुरां	नन्दजी मथुरा
गोपान् निरूप्य	गोपोंको नियुक्त करके	गतः	गये ॥१९॥

वसुदेव उपश्रुत्य भ्रातरं नन्दमागतम् ।
ज्ञात्वा दत्तकरं राज्ञे ययौ तदवमोचनम् ॥२०॥

वसुदेव उपश्रुत्य भ्रातरं नन्दं आगतं ज्ञात्वा दत्त करं राज्ञे ययौ तत् अवमोचनम् ॥२०॥

भ्रातरं नन्दं	भाई नन्दको	ज्ञात्वा	यह जानकर
आगतं उपश्रुत्य	आया सुनकर और	तत्	उनके
राज्ञे दत्त करं	राजाको कर दे दिया	अवमोचनं	उतरनेके स्थानपर
		ययौ	आये ॥२०॥

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय देहः प्राणमिवागतम् ।
प्रीतः प्रियतमं दोर्भ्यां सस्वजे प्रेमविह्वलः ॥२१॥

तं दृष्ट्वा सहसा उत्थाय देहः प्राणं इव आगतं प्रीतः प्रियतमं दोर्भ्यां सस्वजे प्रेम विह्वलः ॥२१॥

प्रियतमं	आत्यन्त प्रिय	**प्रीतः**	प्रसन्न होकर
तं दृष्ट्वा	उन्हें देखकर	**दोर्भ्यां**	भुजाओंसे
देहः प्राणं	शरीरमें प्राण	**प्रेम**	प्रेमसे
आगतं इव	आ गये के समान	**विह्वलः**	विह्वल होकर
सहसा	सहसा	**सस्वजे**	आलिंगन किया
उत्थाय	खड़े होकर		॥२१॥

पूजितः सुखमासीनः पृष्ट्वानामयमादृतः ।
प्रसक्तधीः स्वात्मजयोरिदमाह विशाम्पते ॥२२॥

पूजितः सुखं आसीनः पृष्ट्वा अनामयं आदृतः प्रसक्तधीः स्व आत्मजयोः इदं आह दिशांपते ॥२२॥

दिशांपते	राजन् !	**पृष्ट्वा**	पूछकर
पूजितः	सत्कृत होकर,	**स्व आत्मजयोः**	अपने पुत्रोंमें
सुखं आसीनः	सुखपूर्वक बैठकर	**प्रसक्तधीः**	आसक्त चित्त होनेसे
अनामयं	स्वास्थ्य प्रश्न	**इदं आह**	यह बोले ॥२२॥

वसुदेव उवाच*

दिष्ट्या भ्रातः प्रवयस इदानीमप्रजस्य ते ।
प्रजाशाया निवृत्तस्य प्रजा यत् समपद्यत ॥२३॥

दिष्ट्या भ्रातः प्रवयस इदानीं अप्रजस्य ते प्रजा आशाया निवृत्तस्य प्रजा यत् समपद्यत ॥२३॥

भ्रातः	भाई !	**ते अप्रजस्य**	तुम निःसन्तानको
प्रवयस	बड़ी आयुके हो जानेपर	**प्रजा आशाया**	सन्तान होनेकी आशा

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

निवृत्तस्य	छूट जानेपर	**समपद्यत**	प्राप्त हो गयी ॥२३॥
दिष्ट्या	सौभाग्यकी बात है		
यत् प्रजा	जो सन्तान		

दिष्ट्या संसारचक्रेऽस्मिन् वर्तमानः पुनर्भवः ।
उपलब्धो भवानद्य दुर्लभं प्रियदर्शनम् ॥२४॥

दिष्ट्या संसार चक्रे अस्मिन् वर्तमानः पुनर्भवः उपलब्धः भवान् अद्य दुर्लभं प्रियदर्शनम् ॥२४॥

दिष्ट्या	(यह भी) सौभाग्य-की बात है कि	**भवान् अद्य**	आप आज
		उपलब्धः	मिल गये; क्योंकि
अस्मिन्	इस	**प्रियदर्शनं**	प्रियका दर्शन
संसार चक्रे	संसार-चक्रमें	**दुर्लभं**	दुर्लभ होता है ॥२४॥
वर्तमानः	रहते हुए		
पुनर्भवः	पुनर्जन्मके समान		

नैकत्र प्रियसंवासः सुहृदां चित्रकर्मणाम् ।
ओघेन व्यूह्यमानानां प्लवानां स्रोतसो यथा ॥२५॥

न एकत्र प्रिय संवासः सुहृदां चित्र कर्मणां ओघेन व्यूह्यमानानां प्लवानां स्रोतसः यथा ॥२५॥

यथा	जैसे	**चित्र कर्मणां**	विभिन्न प्रारब्धवाले
स्रोतसः	स्रोतके	**प्रिय सुहृदां**	प्रिय सुहृदोंका
ओघेन	बाढ़से	**एकत्र संवासः**	एक साथ निवास
व्यूह्यमानानां	बहाये जाते हुए	**न**	नहीं हो पाता ॥२५॥
प्लवानां	तैरने वालों (तृण-काष्ठादि) का		

कच्चित् पशव्यं निरुजं भूर्यम्बुतृणवीरुधम् ।
बृहद्वनं तदधुना यत्रास्से त्वं सुहृद्वृतः ॥२६॥

कच्चित् पशव्यं निरुजं भूरि अम्बु तृण वीरुधं बृहद्वनं तत् अधुना यत्र आस्से त्वं सुहृत् वृतः ॥२६॥

यत्र त्वं	जहां तुम	पशव्यं	पशुओंके योग्य
सुहृत् वृतः	सुहृदोंसे घिरे	निरुजं	रोगहीन
अधुना	इस समय	भूरि अम्बु	बहुत जल,
आस्से	रह रहे हो	तृण वीरुधं	घास, पौधोंयुक्त
तत् बृहद्वनं	वह बृहद्वन	कच्चित्	है तो सही ॥२६॥

भ्रातर्मम सुतः कच्चिन्मात्रा सह भवद्व्रजे ।
तातं भवन्तं मन्वानो भवद्भ्यामुपलालितः ॥२७॥

भ्रातः मम सुतः कच्चित् मात्रा सह भवत् व्रजे तातं भवन्तं मन्वानः भवत् भ्यां उपलालितः ॥२७॥

भ्रातः मम सुतः	भाई मेरा पुत्र	भवन्तं तातं	आपको ही पिता
मात्रा सह	अपनी माताके साथ	मन्वानः	मानता हुआ
भवत् व्रजे	आपके व्रजमें	कच्चित्	कुशलपूर्वक तो है ॥२७॥
भवत्भ्यां	आप दोनोंके द्वारा		
उपलालितः	लालन-पालन पाकर		

पुंसस्त्रिवर्गो विहितः सुहृदो ह्यनुभावितः ।
न तेषु क्लिश्यमानेषु त्रिवर्गोऽर्थाय कल्पते ॥२८॥

पुंसः त्रिवर्गः विहितः सुहृदः हि अनुभावितः न तेषु क्लिश्यमानेषु त्रिवर्गः अर्थाय कल्पते ॥२८॥

हि	क्योंकि	तेषु	उन (सुहृदों) के
पुंसः	पुरुषके लिये	क्लिश्यमानेषु	कष्ट पाते हुए
सुहृदः	सुहृदोंको	त्रिवर्गः	अर्ध, धर्म, काम (कोई)
अनुभावितः	प्रसन्न करनेवाला		
त्रिवर्गः	अर्थ, धर्म, काम	अर्थाय	लाभ देनेवाला
विहितः	शास्त्र सम्मत है,	न कल्पते	नहीं होता ॥२८॥

नन्द उवाच

अहो ते देवकीपुत्राः कंसेन बहवो हताः ।
एकावशिष्टावरजा कन्या सापि दिवं गता ॥२९॥

अहो ते देवकीपुत्राः कंसेन बहवः हताः एका अवशिष्टा अवरजा कन्या सा अपि दिवं गता ॥२६॥

अहो ते	हाय, तुम्हारे	**कन्या**	कन्या
देवकीपुत्रा	देवकीसे हुए पुत्र	**अवशिष्टा**	बची थी
बहवः	बहुतसे	**स अपि**	वह भी
कंसेन	कंस द्वारा	**दिवं गता**	स्वर्ग चली गयी
हताः	मार दिये गये,		॥२६॥
एका अवरजा	एक सबसे छोटी		

नूनं ह्यदृष्टनिष्ठोऽयमदृष्टपरमो जनः ।
अदृष्टमात्मनस्तत्त्वं यो वेद न स मुह्यति ॥३०॥

नूनं हि अदृष्ट निष्ठः अयं अदृष्ट परमः जनः अदृष्टं आत्मनः तत्त्वं यः वेद न स मुह्यति ॥३०॥

नूनं अयं जनः	निश्चय यह मनुष्य	**आत्मनः**	अपना
अदृष्ट निष्ठः	भाग्याधीन है,	**तत्त्वं**	तत्त्व (मुख्य कारण)
अदृष्ट	भाग्यपर	**अदृष्टं वेद**	भाग्यको जानता है
परमः	अवलम्बित है	**स मुह्यति**	वह मोहित
हि यः	क्योंकि जो	**न**	नहीं होता ॥३०॥

वसुदेव उवाच

करो वै वार्षिको दत्तो राज्ञे दृष्टा वयं च वः ।
नेह स्थेयं बहुतिथं सन्त्युत्पाताश्च गोकुले ॥३१॥

करः वै वार्षिकः दत्तः राज्ञे दृष्टा वयं च वः न इह स्थेयं बहुतिथं सन्ति उत्पाताः च गोकुले ॥३१॥

वै राज्ञे	निश्चय राजाको	**इह बहुतिथं**	यहां बहुत समय
वार्षिकः करः	वार्षिक कर	**न**	नहीं
दत्तः	(आपने) दे दिया	**स्थेयं**	ठहरना चाहिए
च	और		(क्योंकि)
वः वयं दृष्टा	(आप लोग) मुझसे भी मिल चुके,	**गोकुले**	गोकुलमें तो
		उत्पाताः सन्ति	उत्पात हैं ॥३१॥

श्रीशुक उवाच

इति नन्दादयो गोपाः प्रोक्तास्ते शौरिणा ययुः ।
अनोभिरनडुद्युक्तैस्तमनुज्ञाप्य गोकुलम् ॥३२॥

इति नन्द आदयः गोपाः प्रोक्ताः ते शौरिणा ययुः अनोभिः अनडुद्युक्तैः तं अनुज्ञाप्य गोकुलम् ॥३२॥

इति	इस प्रकार	**तं**	उनसे
शौरिणा	शूरनन्दन वसुदेवजी द्वारा	**अनुज्ञाप्य**	अनुमति लेकर
		अनडुद्युक्तैः	बैलोंको जोतकर
प्रोक्ताः ते	कहे जानेपर वे	**अनोभिः**	छकड़ों द्वारा
नन्द आदयः	नन्द आदि	**गोकुलं ययुः**	गोकुल चल पड़े
गोपाः	गोप		॥३२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे नन्द-वसुदेवसङ्गमो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

नन्दः पथि वचः शौरेर्न मृषेति विचिन्तयन् ।
हरिं जगाम शरणमुत्पातागमशंकितः ॥१॥

नन्दः पथि वचः शौरेः न मृषा इति विचिन्तयन् हरिं जगाम शरणं उत्पात आगम शङ्कितः ॥१॥

पथि नन्दः	मार्गमें नन्दजी	**उत्पात आगम**	उत्पात आनेकी
शौरेः वचः	वसुदेवजीकी बात	**शङ्कितः**	आशंकासे
मृषा न	झूठी नहीं होगी	**हरिं शरणं**	श्रीहरिकी शरण
इति	इस प्रकार	**जगाम**	गये ॥१॥
विचिन्तयन्	सोचते हुए		

कंसेन प्रहिता घोरा पूतना बालघातिनी ।
शिशूंश्चचार निघ्नन्ती पुरग्रामव्रजादिषु ॥२॥

कंसेन प्रहिता घोरा पूतना बाल घातिनी शिशून् चचार निघ्नन्ती पुर ग्राम व्रज आदिषु ॥२॥

कंसेन प्रहिता	कंसकी भेजी हुई	**व्रज आदिषु**	व्रज आदिमें
बाल घातिनी	बालघातिनी	**शिशून्**	शिशुओंको
घोरा	भयंकरी	**निघ्नन्ती**	मारती हुई
पूतना	पूतना राक्षसी	**चचार**	घूमने लगी ॥२॥
पुर ग्राम	नगर, गांव,		

न यत्र श्रवणादीनि रक्षोघ्नानि स्वकर्मसु ।
कुर्वन्ति सात्वतां भर्तुर्यातुधान्यश्च तत्र हि ॥३॥

न यत्र श्रवण आदीनि रक्षः घ्नानि स्वकर्मसु कुर्वन्ति सात्वतां भर्तुः यातुधान्यः च तत्र हि ॥३॥

यत्र	जहां	आदीनि	आदि
स्वकर्मसु	अपने नित्य-कर्ममें	न कुर्वन्ति	लोग नहीं करते
रक्षः घ्नानि	राक्षसादि भय नाशक	हि	क्योंकि
		यातुधान्यः च	राक्षसियां भी
सात्वतां	भक्तोंके अधीश्वर	तत्र	वहीं (प्रबल होती) हैं ॥३॥
भर्तुः	भगवानका		
श्रवण	श्रवण (कीर्तन)		

सा खेचर्येकदोपेत्य पूतना नन्दगोकुलम् ।
योषित्वा मायया ऽऽत्मानं प्राविशत् कामचारिणी ॥४॥

सा खेचरि एकदा उपेत्य पूतना नन्द गोकुलं योषित्वा मायया आत्मानं प्राविशत् कामचारिणी ॥४॥

सा काम	वह इच्छानुसार	मायया	मायासे
चारिणी	घूमनेवाली	आत्मानं	अपनेको
खेचरि	आकाश गामिनी	योषित्वा	(सुन्दरी) स्त्री
पूतना	पूतना		बनकर
नन्द गोकुलं	नन्द गोकुलके	प्राविशत्	(गोकुलमें) घुस गयी
एकदा	एक बार		॥४॥
उपेत्य	समीप आकर		

तां केशबन्धव्यतिषक्तमल्लिकां
बृहन्नितम्बस्तनकृच्छ्रमध्यमाम् ।
सुवाससं कम्पितकर्णभूषण-
त्विषोल्लसत्कुन्तलमण्डिताननाम् ॥५॥

तां केशबन्ध व्यतिषक्त मल्लिकां बृहत् नितम्ब स्तन कृच्छ्र मध्यमां सुवाससं कम्पित कर्ण भूषण त्विषा उल्लसत् कुन्तल मण्डित आननाम् ॥५॥

तां केशबन्ध	उसे जूड़ेमें	बृहत्	बड़े
मल्लिकां	चमेलीके पुष्प	नितम्ब स्तन	नितम्ब और स्तन,
व्यतिषक्त	लगाये,	कृच्छ्र	पतले

मध्यमां	मध्य भाग (कटि) वाली	**त्विषा**	कान्तिसे
सुवाससं	उत्तम वस्त्रवाली	**उल्लसत्**	शोभित
कम्पित	हिलते	**कुन्तल मण्डित**	अलकोंसे भूषित
कर्ण भूषण	कर्णाभरणोंकी	**आननां**	मुखवाली ॥५॥

वल्गुस्मितापाङ्गविसर्गवीक्षितै-
र्मनो हरन्तीं वनितां व्रजौकसाम् ।
अमंसताम्भोजकरेण रूपिणीं
गोप्यः श्रियं द्रष्टुमिवागतां पतिम् ॥६॥

वल्गुस्मित अपांग विसर्ग वीक्षितैः मनः हरन्तीं वनितां व्रजौकसां अमंसत अम्भोज करेण रूपिणीं गोप्यः श्रियं द्रष्टुं इव आगतां पतिम् ॥६॥

वल्गुस्मित	मनोहर मुस्कान,	**करेण**	कारण
अपांग विसर्ग	कटाक्षपात पूर्वक	**गोप्यः**	गोपियोंने
वीक्षितैः	देखनेसे	**पतिं**	अपने पतिको
व्रजौकसां	व्रजवासियोंकी	**द्रष्टुं आगतां**	देखने आयी
वनितां	स्त्रियोंका	**रूपिणीं**	स्वरूप धारिणी
मनः हरन्तीं	मन-हरण करती हुई को	**श्रियं इव**	लक्ष्मीके समान
अम्भोज	हाथमें कमल होनेके	**अमंसत**	मान लिया ॥६॥

बालग्रहस्तत्र विचिन्वती शिशून्
यदृच्छया नन्दगृहेऽसदन्तकम् ।
बालं प्रतिच्छन्ननिजोरुतेजसं
ददर्श तल्पेऽग्निमिवाहितं भसि ॥७॥

बालग्रहः तत्र विचिन्वती शिशून् यदृच्छया नन्दगृहे असत् अन्तकं बालं प्रतिच्छन्न निज उरुतेजसं ददर्श तल्पे अग्नि इव आहितं भसि ॥७॥

बालग्रहः	वह बाल ग्रह (पूतना)
तत्र	वहां (गोकुलमें)
शिशून्	शिशुओंको
विचिन्वती	ढूंढ़ती हुई
यदृच्छया	स्वेच्छापूर्वक
नन्दगृहे	नन्द-भवनमें (जाकर)
भसि	भस्ममें
अग्नि इव	अग्निकी भांति
आहितं	छिपे हुए
असत् अन्तकं	दुष्टोंके काल
निज उरुतेजसं	अपने प्रचण्ड तेजको
प्रतिच्छन्न	छिपाये हुए
बालं	बालकको
तल्पे	शय्यापर (सोये)
ददर्श	देखा ॥७॥

विबुध्य तां बालकमारिकाग्रहं
चराचरात्माऽऽस निमीलितेक्षणः ।
अनन्तमारोपयदंकमन्तकं
यथोरगं सुप्तमबुद्धिरज्जुधीः ॥८॥

विबुध्य तां बालक मारिका ग्रहं चर अचर आत्मा आस निमीलित ईक्षणः अनन्तं आरोपयत् अंकं अन्तकं यथा उरगं सुप्तं अबुद्धि रज्जु-धीः ॥८॥

तां बालक	उस बालकोंकी
मारिका ग्रहं	मारिका ग्रहको
विबुध्य	पहिचान कर
आस चर अचर	उन चराचर
आत्मा	जगतके आत्माने
ईक्षणः	नेत्र
निमीलित	बन्द कर लिए,
यथा सुप्तं	जैसे सोये
उरगं	सर्पको
रज्जुधीः	रस्सी समझकर
अबुद्धिः	कोई अज्ञानी (उठा ले वैसे)
अन्तकं	अपने काल उन
अनन्तं	अनन्तको
अङ्कं	(उसने) गोदमें
आरोपयत्	उठा लिया ॥८॥

तां तीक्ष्णचित्तामतिवामचेष्टितां
वीक्ष्यान्तरा कोशपरिच्छदासिवत् ।
वरस्त्रियं तत्प्रभया च धर्षिते
निरीक्षमाणे जननी ह्यतिष्ठताम् ॥९॥

तां तीक्ष्ण चित्तां अतिवाम चेष्टितां वीक्ष्य अन्तरा कोश परिच्छता असिवत् वरस्त्रियं तत् प्रभया च धर्षिते निरीक्षमाणे जननी हि अतिष्ठताम् ॥९॥

अन्तरा कोश	म्यानके भीतर	**च तत् प्रभया**	तथा उनके तेजसे
परिच्छता	छिपी हुई	**हि**	क्योंकि
असिवत्	तलवारके समान	**धर्षिते**	स्तम्भित हो गयी थीं
तां तीक्ष्ण	उस घोर		
चित्तां	चित्तवाली	**जननी**	दोनों माताएँ (यशोदा-रोहिणी)
अतिवाम	अत्यन्त उलटी		
चेष्टितां	चेष्टा करने वाली	**निरीक्षमाणे**	देखती हुई भी
वरस्त्रियं	श्रेष्ठ महिला जैसी	**अतिष्ठतां**	खड़ी रह गयीं ॥९॥

तस्मिन् स्तनं दुर्जरवीर्यमुल्बणं
घोरांकमादाय शिशोर्ददावथ ।
गाढं कराभ्यां भगवान् प्रपीड्य तत्
प्राणैः समं रोषसमन्वितोऽपिबत् ॥१०॥

तस्मिन् स्तनं दुर्जर वीर्यं उल्बणं घोरा अङ्कम् आदाय शिशोः ददाः अथ गाढं कराभ्यां भगवान् प्रपीडय तत् प्राणैः समं रोष सम् अन्वितः अपिबत् ॥१०॥

घोरा	उस उग्रा (पूतना) ने	**स्तनं ददाः**	स्तन दे दिया
शिशोः	शिशुको	**अथ कराभ्यां**	फिर हाथोंसे
अङ्कं आदाय	गोदमें लेकर	**गाढं प्रपीडय**	जोरसे दबाकर
तस्मिन्	उसके (मुखमें)	**रोष**	रोषसे
दुर्जर	न पचनेवाला	**सम् अन्वितः**	पूरे भरकर
उल्बणं	अत्यन्त	**भगवान् तत्**	भगवान् उन्हें
वीर्यं	तीक्ष्ण प्रभाववाले (विष लिप्त)	**प्राणैः समं**	प्राणोंके साथ
		अपिबत्	पीने लगे ॥१०॥

सा मुंच मुञ्चालमिति प्रभाषिणी
निष्पीड्यमानाखिलजीवमर्मणि ।

विवृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः
प्रस्विन्नगात्रा क्षिपती रुरोद ह ॥११॥

सा मुञ्च मुञ्च अलं इति प्रभाषिणी निष्पीड्यमाना अखिल जीव मर्मणि विवृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः प्रस्विन्न गात्रा क्षिपती रुरोद ह ॥११॥

अखिल जीव	जीवके सब	प्रस्विन्न	पसीनेसे भरे
मर्मणि	मर्म स्थानोंमें	गात्रा	शरीर वाली
निष्पीड्यमाना	अत्यन्त पीड़ा होनेसे	विवृत्य नेत्रे	फैले नेत्रवाली
मुञ्च मुञ्च	छोड़-छोड़	मुहुः चरणौ	बार-बार पैर और
अलं इति	बस कर, इस प्रकार	भुजौ क्षिपती	हाथ पटकती
प्रभाषिणी	पुकारती हुई	रुरोद ह	रोने ही लगी
सा	वह		॥११॥

तस्याः स्वनेनातिगभीररंहसा
साद्रिर्महो द्यौश्च चचाल सग्रहा ।
रसा दिशश्च प्रतिनेदिरे जनाः
पेतुः क्षितौ वज्रनिपातशंकया ॥१२॥

तस्याः स्वनेन अति गभीर रंहसा स अद्रिः मही द्यौः च चचाल सग्रहा रसा दिशः च प्रतिनेदिरे जनाः पेतुः क्षितौ वज्र निपात शङ्कया ॥१२॥

अति	अत्यन्त	रसा च	पाताल और
गभीर रंहसा	गंभीर वेग वाले	दिशः	दिशाएँ
तस्याः स्वनेन	उसके (रुदन) शब्दसे	प्रतिनेदिरे	गूंजने लगीं,
स अद्रिः	पर्वतोंके साथ	वज्र निपात	वज्रपात होनेकी
मही च द्यौः	पृथ्वी तथा आकाश	शङ्कया	आशङ्कासे
सग्रहा	ग्रहोंके साथ	जनाः क्षितौ	लोग पृथ्वीपर
चचाल	हिलने लगे,	पपात	गिर पड़े ॥१२॥

निशाचरीत्थं व्यथितस्तना व्यसु-
र्व्यादाय केशांश्चरणौ भुजावपि ।

प्रसार्य गोष्ठे निजरूपमास्थिता
वज्राहतो वृत्र इवापतन्नृप ॥१३॥

निशाचरी इत्थं व्यथित स्तना व्यसुः व्यादाय केशान् चरणौ भुजाः अपि प्रसार्य गोष्ठे निज रूपं आस्थिता वज्र आहतः वृत्र इव अपतन् नृप ॥१३॥

नृप	राजन् !	**निज**	अपने वास्तविक
इत्थं स्तना	इस प्रकार स्तनोंमें	**रूपं**	रूपको
व्यथित	पीड़ा होनेसे	**आस्थिता**	धारण करके
निशाचरी	(वह) राक्षसी	**व्यसुः**	निष्प्राण होकर
व्यादाय	मुख फाड़े,	**वज्र आहतः**	वज्रसे मारे गये
केशान्	केशोंको	**वृत्र इव**	वृत्रासुरकी भांति
चरणौ	पैरों और	**गोष्ठे**	गोष्ठमें
भुजाः अपि	भुजाओंको भी	**अपतन्**	गिर पड़ी ॥१३॥
प्रसार्य	फलाकर		

पतमानोऽपि तद्देहस्त्रिगव्यूत्यन्तरद्रुमान् ।
चूर्णयामास राजेन्द्र महदासीत् तदद्भुतम् ॥१४॥

पतमानः अपि तत् देहः त्रिगव्यूति अन्तर द्रुमान् चूर्ण यामास राजेन्द्र महत् आसीत् तत् अद्भुतम् ॥१४॥

राजेन्द्र	महाराज !	**अन्तर द्रुमान्**	बीचके वृक्षोंको
तत् देहः	उसके शरीरने	**चूर्ण यामास**	कुचल डाला
पतमानः अपि	गिरते हुए भी	**तत् महत्**	यह भारी
त्रिगव्यूति	तीव गव्यूति (छःकोस) के	**अद्भुतं**	अद्भुत
		आसीत्	(घटना) हुई ॥१४॥

ईषामात्रोग्रदंष्ट्रास्यं गिरिकन्दरनासिकम् ।
गण्डशैलस्तनं रौद्रं प्रकीर्णारुणमूर्धजम् ॥१५॥

ईषामात्र उग्रदंष्ट्र आस्यं गिरिकन्दर नासिकं गण्डशैल स्तनं रौद्रं प्रकीर्ण अरुण मूर्धजम् ॥१५॥

इषामात्र	हलके लोहेके बराबर	नासिकं	नाक,
उग्रदंष्ट्र	तीक्ष्ण दांतोंवाला	गण्डशैल	पर्वतकी शिला जैसे
आस्यं	मुख,	रौद्रं स्तनं	भयानक स्तन तथा
गिरिकन्दर	पर्वतकी गुफाके समान	प्रकीर्ण	फैले हुए
		अरुण	लाल रंगके
		मूर्धजं	केश थे ॥१५॥

अन्धकूपगभीराक्षं पुलिनारोहभीषणम् ।
बद्धसेतुभुजोर्वङ्घ्रि शून्यतोयह्रदोदरम् ॥१६॥

अन्ध कूप गभीर अक्षं पुलिन आरोह भीषणं बद्धसेतु भुजः उरु अंघ्रि शून्य तोय ह्रद उदरम् ॥१६॥

अन्ध	अन्धे (जलहीन)	बद्धसेतु	पुल बँधे समान
कूप	कुएँके समान	उरु अंघ्रि	जांघें और पैर तथा
गभीर अक्षं	गड्ढेमें घुसे नेत्र,	शून्य तोय	जलहीन
पुलिन आरोह	नदीके कगारके समान	ह्रद	सरोवरके समान
		उदरम्	पेट था ॥१६॥
भीषणं भुजः	भयानक भुजाएँ		

संतत्रसुः स्म तद् वीक्ष्य गोपा गोप्यः कलेवरम् ।
पूर्वं तु तन्निःस्वनितभिन्नहृत्कर्णमस्तकाः ॥१७॥

सन्तत्रसुः स्म तत् वीक्ष्य गोपा गोप्यः कलेवरं पूर्वं तु तत् निःस्वनित भिन्न हृत् कर्ण मस्तकाः ॥१७॥

पूर्वं तु	पहिले ही	तत्	उस (पूतना) के
तत् निःस्वनित	उसके चीत्कारने	कलेवरं	शरीरको
भिन्न हृत्	जिनके हृदय	वीक्ष्य	देखकर
कर्ण मस्तकाः	कर्ण और सिर मानो फट गये थे	सन्तत्रसुः स्म	भयभीत हो गये ॥१७॥
गोपा गोप्य	वे गोप-गोपियां		

बालं च तस्या उरसि क्रीडन्तमकुतोभयम् ।
गोप्यस्तूर्णं समभ्येत्य जगृहुर्जातसम्भ्रमाः ॥१८॥

बालं च तस्या उरसि क्रीडन्तं अकुतः भयं गोप्यः तूर्णं सम् अभ्येत्य जगृहुः जात सम्भ्रमाः ॥१८॥

तस्या उरसि	उसकी छातीपर	**गोप्यः तूर्णं**	गोपियोंने झटपट
अकुतः भयं	निर्भय	**सम् अभ्येत्य**	एक साथ समीप आकर
बालं च	बालकको भी	**जगृहुः**	उठा लिया ॥१८॥
क्रीडन्तं	खेलते हुए (देखकर)		
जात सम्भ्रमाः	घबड़ाकर		

यशोदारोहिणीभ्यां ताः समं बालस्य सर्वतः ।
रक्षां विदधिरे सम्यग्गोपुच्छभ्रमणादिभिः ॥१९॥

यशोदा रोहिणीभ्यां ताः समं बालस्य सर्वतः रक्षां विदधिरे सम्यक् गोपुच्छ भ्रमण आदिभिः ॥१९॥

यशोदा	यशोदा और	**बालस्य**	बालककी
रोहिणीभ्यां	रोहिणीके	**सर्वतः**	सब ओरसे
समं ताः	साथ उन सबने	**सम्यक् रक्षां**	भली प्रकार रक्षाका
गोपुच्छ भ्रमण	गायकी पूँछ फिराने	**विदधिरे**	विधान किया ॥१९॥
आदिभिः	आदि (उपायों) से		

गोमूत्रेण स्नापयित्वा पुनर्गोरजसार्भकम् ।
रक्षां चक्रुश्च शकृता द्वादशाङ्गेषु नामभिः ॥२०॥

गोमूत्रेण स्नापयित्वा पुनः गोरजसा अर्भकं रक्षां चक्रुः च शकृता द्वादश अंगेषु नामभिः ॥२०॥

अर्भकं	बालकको	**च शकृता**	और गोबरसे
गोमूत्रेण	गोमूत्रसे	**द्वादश**	(उसके) बारहो
पुनः गोरजसा	फिर गायोंके खुरों-की धूलिसे	**अंगेषु**	अंगोंमें
		नामभिः	भगवन्नामों द्वारा
स्नापयित्वा	स्नान कराके	**रक्षां चक्रुः**	रक्षा की ॥२०॥

गोप्यः संस्पृष्टसलिला अङ्गेषु करयोः पृथक् ।
न्यस्यात्मन्यथ बालस्य बीजन्यासमकुर्वत ॥२१॥

गोप्यः संस्पृष्ट सलिला अंगेषु करयोः पृथक् न्यस्य आत्मनि अथ बालस्य बीजन्यासं अकुर्वत ॥२१॥

गोप्यः	गोपियोंने	**न्यस्य**	अंगन्यास-करन्यास
सलिला	जलसे		करके
संस्पृष्ट	आचमन करके	**अथ**	तब
आत्मनि अंगेषु	अपने अंगोंमें	**बालस्य**	बालक (के अंगों) में
करयोः	तथा हाथोंमें	**बीजन्यासं**	बीजन्यास
पृथक्	अलग-अलग	**अकुर्वत**	किया ॥२१॥

गोप्य ऊचुः*

अव्यादजोऽङ्घ्रि मणिमांस्तव जान्वथोरू
यज्ञोऽच्युतः कटितटं जठरं हयास्यः ।
हृत् केशवस्त्वदुर ईश इनस्तु कण्ठं
विष्णुर्भुजं मुखमुरुक्रम ईश्वरः कम् ॥२२॥

अव्यात् अजः अंघ्रि मणिमान् तव जानुः अथ उरू यज्ञः अच्युतः कटितटं जठरं हयास्यः हृत् केशवः त्वत् उदर ईश इन् अस्तु कण्ठं विष्णुः भुजं मुखं उरुक्रम ईश्वरः कम् ॥२२॥

तव अंघ्रि	तुम्हारे पैरोंकी	**जठरं हयास्यः**	पेटकी हयग्रीव,
अजः	अजन्मा भगवान	**हृत् केशवः**	हृदयकी केशव,
अव्यात्	रक्षा करें,	**त्वत् उदर ईश**	तुम्हारे पेटकी ईश
जानुः	घुटनोंकी	**कण्ठं इन्**	कण्ठकी सूर्य
मणिमान्	मणिमान्	**भुजं विष्णः**	भुजाओंकी विष्णु
अथ उरू यज्ञः	और जांघोंकी यज्ञ,	**मुखं उरुक्रम**	मुखकी उरुक्रम
कटितटं	कटिकी	**कं ईश्वरः**	सिरकी ईश्वर
अच्युतः	अच्युत,	**अस्तु**	(रक्षक) होवें ॥२२॥

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

चक्रचग्रतः सहगदो हरिरस्तु पश्चात्
त्वत्पार्श्वयोर्धनुरसी मधुहाजनश्च ।
कोणेषु शङ्ख उरुगाय उपर्युपेन्द्र-
स्तार्क्ष्यः क्षितौ हलधरः पुरुषः समन्तात् ॥२३॥

चक्रि अग्रतः सहगदः हरिः अस्तु पश्चात् त्वत् पार्श्वयोः धनुः असी मधुहा अजनः च कोणेषु शंख उरुगाय उपरि उपेन्द्रः तार्क्ष्यः क्षितौ हलधरः पुरुषः समन्तात् ॥२३॥

अग्रतः चक्रि	आगे चक्रधर,	**कोणेषु शंख**	कोणोंमें शङ्खधारी
सहगदः हरिः	गदाके साथ श्रीहरि	**उरुगाय**	उरुगाय,
पश्चात्	पीछे,	**उपरि उपेन्द्रः**	ऊपर उपेन्द्र
त्वत्	तुम्हारे	**क्षितौ तार्क्ष्यः**	पृथ्वीपर गरुड़,
पार्श्वयोः	दोनों बगलोंमें	**हलधरः**	हलधारी
धनुः असी	धनुष और तलवार लिए	**पुरुषः**	परम पुरुष
		समन्तात्	सब ओर
मधुहा च अजनः	मधुसूदन और अजन,	**अस्तु**	रहकर (रक्षा करें) ॥२३॥

इन्द्रियाणि हृषीकेशः प्राणान् नारायणोऽवतु ।
श्वेतद्वीपपतिश्चित्तं मनो योगेश्वरोऽवतु ॥२४॥

इन्द्रियाणि हृषीकेशः प्राणान् नारायणः अवतु श्वेतद्वीपपतिः चित्तं मनः योगेश्वरः अवतु ॥२४॥

हृषीकेशः	हृषीकेश	**श्वेतद्वीपपतिः**	श्वेतद्वीपके स्वामी
इन्द्रियाणि	इन्द्रियोंकी	**चित्तं**	चित्तकी और
प्राणान्	और प्राणोंकी	**योगेश्वरः**	योगेश्वर
नारायणः	नारायण	**मनः अवतु**	मनकी रक्षा करें ॥२४॥
अवतु	रक्षा करें,		

पृश्निगर्भस्तु ते बुद्धिमात्मानं भगवान् परः ।
क्रीडन्तं पातु गोविन्दः शयानं पातु माधवः ॥२५॥

पृश्निगर्भः तु ते बुद्धिं आत्मानं भगवान् परः क्रीडन्तं पातु गोविन्दः शयानं पातु माधवः ॥२५॥

ते बुद्धिं तु	तुम्हारी बुद्धिकी तो	**गोविन्दः पातु**	गोविन्द रक्षा करें,
पृश्निगर्भः	पृश्निगर्भ,	**शयानं**	सोते समय
आत्मानं	अहंकारकी	**माधवः पातु**	माधव रक्षा करें
भगवान् परः	भगवान् परमात्मा,		॥२५॥
क्रीडन्तं	खेलते समय		

व्रजन्तमव्याद् वैकुण्ठ आसीनं त्वां श्रियः पतिः ।
भुञ्जानं यज्ञभुक् पातु सर्वग्रहभयंकरः ॥२६॥

व्रजन्तं अव्यात् वैकुण्ठ आसीनं त्वां श्रियः पतिः भुञ्जानं यज्ञभुक् पातु सर्व ग्रह भयंकरः ॥२६॥

व्रजन्तं	चलते समय	**त्वां सर्व**	तुम्हारी सब
वैकुण्ठ	वैकुण्ठ	**ग्रह**	ग्रहोंके लिए
अव्यात्	रक्षा करें,	**भयंकरः**	भयंकर
आसीनं	बैठनेपर	**यज्ञभुक् पातु**	यज्ञभोक्ता रक्षा
श्रियः पतिः	श्रीपति और		करें ॥२६॥
भुञ्जानं	भोजन करते समय		

डाकिन्यो यातुधान्यश्च कूष्माण्डा येऽर्भकग्रहाः ।
भूतप्रेतपिशाचाश्च यक्षरक्षोविनायकाः ॥२७॥

डाकिन्यः यातुधान्यः च कुष्माण्डा ये अर्भक ग्रहाः भूत प्रेत पिशाचाः च यक्ष रक्षः विनायकाः ॥२७॥

ये डाकिन्यः	जो डाकिनियां,	**भूत प्रेत**	भूत, प्रेत,
च यातुधान्यः	तथा यातुधानी,	**पिशाचाः**	पिशाच,
कुष्माण्डा	कूष्माण्ड आदि	**यक्ष रक्षः**	यक्ष-राक्षस,
अर्भक ग्रहाः	बालकोंके ग्रह हैं,	**विनायकाः**	विनायक ॥२७॥

कोटरा रेवती ज्येष्ठा पूतना मातृकादयः ।
उन्मादा ये ह्यपस्मारा देहप्राणेन्द्रियद्रुहः ॥२८॥

कोटरा रेवती ज्येष्ठा पूतना मातृका आदयः उन्मादा ये हि अपस्मारा देह प्राण इन्द्रिय द्रुहः ॥२८॥

कोटरा रेवती	कोटरा, रेवती,	**इन्द्रिय द्रुहः**	इन्द्रियोंके शत्रु
ज्येष्ठा	ज्येष्ठा (दरिद्रा)	**ये उन्मादा**	जो पागलपन,
पूतना	पूतना,	**अपस्मारा हि**	मृगी आदि रोग
मातृका आदयः	मातृका आदि		हैं ॥२८॥
देह प्राण	शरीर, प्राण,		

स्वप्नदृष्टा महोत्पाता वृद्धबालग्रहाश्च ये ।
सर्वे नश्यन्तु ते विष्णोर्नामग्रहणभीरवः ॥२९॥

स्वप्नदृष्टा महा उत्पाता वृद्ध बाल ग्रहाः च ये सर्वे नश्यन्तु ते विष्णोः नाम ग्रहण भीरवः ॥२९॥

स्वप्न दृष्टा	स्वप्नमें देखे	**विष्णोः नाम**	भगवान् विष्णुका
महा उत्पाता	महान उत्पात		नाम
च ये	और जो	**ग्रहण भीरवः**	लेनेसे डरनेवाले
वृद्ध बाल	बूढ़ों और बालकोंके	**ते नश्यन्तु**	तुम्हारे नष्ट हो
ग्रहाः सर्वे	ग्रह हैं वे सब		जायँ ॥२९॥

श्रीशुक उवाच

इति प्रणयबद्धाभिर्गोपीभिः कृतरक्षणम् ।
पाययित्वा स्तनं माता संन्यवेशयदात्मजम् ॥३०॥

इति प्रणयबद्धाभिः गोपीभिः कृत रक्षणं पाययित्वा स्तनं माता संन्यवेशयत आत्मजम् ॥३०॥

प्रणयबद्धाभिः	प्रेमपाशमें बँधी	**आत्मजं**	अपने पुत्रको
गोपीभिः	गोपियों द्वारा	**स्तनं**	स्तन
इति	इस प्रकार	**पाययित्वा**	पानकराकर
रक्षणं कृत	रक्षा किये जानेपर	**संन्यवेशयत**	(शय्यापर) सुला
माता	माता (यशोदा) ने		दिया ॥३०॥

तावन्नन्दादयो गोपा मथुराया व्रजं गताः ।
विलोक्य पूतनादेहं बभूवुरतिविस्मिताः ॥३१॥

तावत् नन्द आदयः गोपा मथुराया व्रजं गताः विलोक्य पूतनादेहं बभूवुः अतिविस्मिताः ॥३१॥

नन्द आदयः	नन्द आपि	**पूतनादेहं**	पूतनाके शरीरको
गोपा तावत्	गोप सब तक	**विलोक्य**	देखकर
मथुराया	मथुरासे	**अतिविस्मिताः**	अत्यन्त विस्मित
व्रजं गताः	व्रज पहुँचकर	**बभूवुः**	हुए ॥३१॥

नूनं बतर्षिः संजातो योगेशो वा समास सः ।
स एव दृष्टो दृयुत्पातो यदाहानकदुन्दुभिः ॥३२॥

नूनं बत ऋषिः संजातः योगेशः वा सम आस सः स एव दृष्टः हि उत्पातः यत् आह आनक दुन्दुभिः ॥३२॥

बत नूनं	अहो निश्चय	**आनक दुन्दुभिः**	वसुदेवजीने
ऋषिः	कोई ऋषि	**यत् उत्पातः**	जो उत्पात
संजातः	उत्पन्न हुए हैं	**आह स एव**	बतलाया था वही
वा सः	अथवा वे	**दृष्टः**	देखनेमें आया है
योगेशः सम आस	योगेश्वर तुल्य हैं,		॥३२॥
हि	क्योंकि		

कलेवरं परशुभिश्छित्वा तत्ते व्रजौकसः ।
दूरे क्षिप्त्वावयवशो न्यदहन् काष्ठधिष्ठितम् ॥३३॥

कलेवरं परशुभिः छित्त्वा तत् ते व्रजौकसः दूरे क्षिप्त्वा अवयवशः न्यदहन् काष्ठधिष्ठितम् ॥३३॥

तत् कलेवरं	उस (पूतना) के शरीरको	**छित्त्वा**	काटकर
ते व्रजौकसः	उन व्रजवासियोंने	**दूरे**	दूर ले जाकर
अवयवशः	एक-एक अंग	**क्षिप्त्वा**	फेंककर
परशुभिः	परशुसे	**काष्ठधिष्ठितं**	लकड़ियोंमें रखकर
		न्यदहन्	जला दिया ॥३३॥

दह्यमानस्य देहस्य धूमश्चागुरुसौरभः ।
उत्थितः कृष्णनिर्भुक्तसपद्याहतपाप्मनः ॥३४॥

दह्यमानस्य देहस्य धूमः च अगुरु सौरभः उत्थितः कृष्ण निर्भुक्त सपदि आहत पाप्मनः ॥३४॥

कृष्ण	श्रीकृष्णके	**दह्यमानस्य**	जलते समय
निर्भुक्त	भली प्रकार (दूध) पीने से	**अगुरु**	अगुरुकी
		सौरभः	सुगन्धवाला
सपदि आहत	तत्काल नष्ट	**धूमः च**	धुआ भी
पाप्मनः	पापों वालीके	**उत्थितः**	उठा ॥३४॥
देहस्य	शरीरके		

पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना ।
जिघांसयापि हरये स्तनं दत्वाऽऽप सद्गतिम् ॥३५॥

पूतना लोक बालघ्नी राक्षसी रुधिर अशना जिघांसया अपि हरये स्तनं दत्त्वा आप सद्गतिम् ॥३५॥

लोक बालघ्नी	लोगोंके बालकोंकी हत्यारिणी,	**जिघांसया अपि**	मारनेके लिए भी
		हरये स्तनं	श्रीहरिको स्तन
राक्षसी	राक्षसी	**दत्त्वा**	दे (पिला) कर
रुधिर अशना	रक्त पायिनी	**सद्गतिं आप**	सद्गति पा गयी ॥३५॥
पूतना	पूतना		

किं पुनः श्रद्धया भक्त्या कृष्णाय परमात्मने ।
यच्छन् प्रियतमं किं नु रक्तास्तन्मातरो यथा ॥३६॥

किं पुनः श्रद्धया भक्त्या कृष्णाय परमात्मने यच्छन् प्रियतमं किं नु रक्ताः तत् मातरः यथा ॥३६॥

तत् मातरः	उनकी माताओंके समान	**भक्त्या**	भक्तिपूर्वक
		परमात्मने	परमात्मा
रक्ताः श्रद्धया	आसक्त होकर श्रद्धा	**कृष्णाय**	श्रीकृष्णको

प्रियतमं	उनकी प्रिय वस्तुएँ	नु किं	(गोपियोंकी) भला
यच्छन्	देनेवाली		क्या
		पुनः किं	फिर चर्चा ॥३६॥

पद्भ्यां भक्तहृदिस्थाभ्यां वन्द्याभ्यां लोकवन्दितैः ।
अंग यस्याः समाक्रम्य भगवानपिबत् स्तनम् ॥३७॥

पद्भ्यां भक्त हृदिस्थाभ्यां वन्द्याभ्यां लोकवन्दितैः अंग यस्याः सम आक्रम्य भगवान् अपिबत् स्तनम् ॥३७॥

लोकवन्दितैः	लोकवन्द्य	यस्याः अंग	जिसके शरीरपर
भक्त	भक्तोंके	सम आक्रम्य	भली प्रकार चढ़कर
हृदिस्थाभ्यां	हृदयमें रहनेवाले	भगवान्	भगवान्‌ने
वन्द्याभ्यां	वन्दनीय	स्तनं अपिबत्	स्तन पान किया
पद्भ्यां	अपने चरणोंसे		॥३७॥

यातुधान्यपि सा स्वर्गमवाप जननीगतिम् ।
कृष्णभुक्तस्तनक्षीराः किमु गावो नु मातरः ॥३८॥

यातुधानि अपि सा स्वर्गं अवाप जननी गतिं कृष्ण भुक्त स्तन क्षीराः किमु गावः नु मातरः ॥३८॥

सा	वह	क्षीराः	दूध
यातुधानि अपि	यातुधानी भी	कृष्ण	श्रीकृष्णने
स्वर्गं	स्वर्गमें	भक्त	भोगा (पिया) वे
जननी गतिं	माताकी गति	गावः	गौओं तथा
अवाप	पा गयी,	मातरः	माताओंकी
स्तन	(फिर जिनके) स्तनों-	नु किमु	भला क्या चर्चा
	का		॥३८॥

पयांसि यासामपिबत् पुत्रस्नेहस्नुतान्यलम् ।
भगवान् देवकीपुत्रः कैवल्याद्यखिलप्रदः ॥३९॥

पयांसि यासां अपिबत् पुत्रस्नेह स्नुतानि अलं भगवान् देवकीपुत्रः कैवल्य आदि अखिल प्रदः ॥३६॥

कैवल्य आदि	कैवल्य मोक्षादि	पुत्रस्नेह	पुत्र-स्नेहसे
अखिल	समस्त पुरुषार्थ	स्नुतानि	स्वयं झरते हुए
प्रदः	प्रदाता	यासां पयांसि	जिनके दूधको
भगवान्	भगवान्	अलं अपिबत्	भरपेट पिया ॥३६॥
देवकीपुत्रः	देवकी-नन्दनने		

तासामविरतं कृष्णे कुर्वतीनां सुतेक्षणम् ।
न पुनः कल्पते राजन् संसारोऽज्ञानसम्भवः ॥४०॥

तासां अविरतं कृष्णे कुर्वतीनां सुत ईक्षणं न पुनः कल्पते राजन् संसारः अज्ञान सम्भवः ॥४०॥

राजन्	राजन् !	तासां	उन गोपियोंको
अविरतं	निरन्तर	अज्ञान सम्भवः	अज्ञानसे उत्पन्न
कृष्णे	श्रीकृष्णमें	संसार कल्पतेः	संसारकी प्राप्ति
सुत ईक्षणं	पुत्र दृष्टि	पुनः न	फिर नहीं हो सकती ॥४०॥
कुर्वतीनां	रखनेवाली		

कटधूमस्य सौरभ्यमवघ्राय व्रजौकसः ।
किमिदं कुत एवेति वदन्तो व्रजमाययुः ॥४१॥

कटधूमस्य सौरभ्यं अवघ्राय व्रज ओकसः किं इदं कुत एव इति वदन्तः व्रजं आययुः ॥४१॥

व्रज ओकसः	व्रजवासी-गण	किं इदं	'यह क्या है,
कटधूमस्य	चिता-धूम्रकी	कुत एव	कहांसे आती है'
सौरभ्यं	सुगन्ध	इति वदन्तः	ऐसा कहते हुए
अवघ्राय	सूंघकर	व्रजं आययुः	व्रजमें आये ॥४१॥

ते तत्र वर्णितं गोपैः पूतनागमनादिकम् ।
श्रुत्वा तन्निधनं स्वस्ति शिशोश्चासन् सुविस्मिताः ॥४२॥

ते तत्र वर्णितं गोपैः पूतना आगमन आदिकं श्रुत्वा तत् निधनं स्वस्ति शिशोः च आसन् सुविस्मिताः ॥४२॥

तत्र गोपैः	वहां गोपों द्वारा	च शिशोः	और शिशुकी
वर्णितं	वर्णन किया गया	स्वस्ति	कुशलता
पूतना आगमन	पूतनाका आगमन	श्रुत्वा ते	सुनकर वे
आदिकं	आदि,	सुविस्मिताः	अत्यन्त विस्मित
तत् निधनं	उसकी मृत्यु	आसन्	हुए ॥४२॥

नन्दः स्वपुत्रमादाय प्रेत्यागतमुदारधीः ।
मूर्ध्न्युपाघ्राय परमां मुदं लेभे कुरूद्वह ॥४३॥

नन्दः स्वपुत्रं आदाय प्रेत्य आगतं इव उदार धीः मूर्धनि उपाघ्राय परमां मुदं लेभे कुरु उद्वह ॥४३॥

कुरु उद्वह	कुरुकुल पालक परीक्षित !	आदाय	गोदमें लेकर
उदार धीः नन्दः	उदार चित्त नन्दने	मूर्धनि	(उसका) सिर
प्रेत्य आगतं	मरकर लौटेके	उपाघ्राय	सूंघकर
इव	समान	परमां मुदं	परमानन्द
स्वपुत्रं	अपने पुत्रको	लेभे	पाया ॥४३॥

य एतत् पूतनामोक्षं कृष्णस्यार्भकमद्भुतम् ।
श्रृणुयाच्छ्रद्धया मर्त्यो गोविन्दे लभते रतिम् ॥४४॥

य एतत् पूतना मोक्षं कृष्णस्य अर्भकं अद्भुतं श्रृणुयात् श्रद्धया मर्त्यः गोविन्दे लभते रतिम् ॥४४॥

य एतत्	जो इस	अद्भुतं	अद्भुत
कृष्णस्य	श्रीकृष्णकी	अर्भकं	शिशु-लीला

पूतना मोक्षं	पूतना-मोक्षको	गोविन्दे	गोविन्दमें
मर्त्यः श्रद्धया	मनुष्य श्रद्धापूर्वक	रतिं लभते	प्रीति प्राप्त करता है ॥४४॥
शृणुयात्	सुनता है वह		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

राजोवाच

येन येनावतारेण भगवान् हरिरीश्वरः ।
करोति कर्णरम्याणि मनोज्ञानि च नः प्रभो ॥१॥

येन येन अवतारेण भगवान् हरिः ईश्वरः करोति कर्ण रम्याणि मनोज्ञानि च नः प्रभो ॥१॥

प्रभो	प्रभो !	**करोति**	जो करते हैं
ईश्वरः	ईश्वर,	**नः कर्ण**	वह हमारे कानोंको
भगवान् हरिः	भगवान श्रीहरि	**रम्याणि च**	रमणीय तथा
येन येन	जिस-जिस	**मनोज्ञानि**	मनको आनन्दित
अवतारेण	अवतारमें		करनेवाले ॥१॥

यच्छृण्वतोऽपैत्यरतिर्वितृष्णा
सत्वं च शुद्धयत्यचिरेण पुंसः ।
भक्तिर्हरौ तत्पुरुषे च सख्यं
तदेव हारं वद मन्यसे चेत् ॥२॥

यत् शृण्वतः अपैति अरतिः वितृष्णा सत्त्वं च शुद्ध्यति अचिरेण पुंसः भक्तिः हरौ तत् पुरुषे च सख्यं तत् एव हारं वद मन्यसे चेत् ॥२॥

यत् शृण्वतः	जिसे सुननेसे	**सत्त्वं**	अन्तःकरण
पुंसः अरतिः	पुरुषकी अप्रीति	**शुद्ध्यति**	शुद्ध हो जाता है
वितृष्णा	और वितृष्णा	**हरौ भक्तिः**	श्रीहरिमें भक्ति
अपैति	दूर हो जाती है	**च तत् पुरुषे**	एवं उनके जनोंसे
च अचिरेण	तथा अविलम्ब	**सख्यं**	मित्रता हो जाती है

चेत् मन्यसे	यदि मन हो तो	हारं वद	हरि चरित कहिए
तत् एव	वही		॥२॥

अथान्यदपि कृष्णस्य तोकाचरितमद्भुतम् ।
मानुषं लोकमासाद्य तज्जातिमनुरुन्धतः ॥३॥

अथ अन्यत् अपि कृष्णस्य तोक आचरितं अद्भुतं मानुषं लोकं आसाद्य तत् जातिं अनुरुन्धतः ॥३॥

मानुषं लोकं	मनुष्य लोकमें	अन्यत् अपि	(कोई) दूसरी भी
आसाद्य	आकर	अद्भुतं	भद्भुत
तत्	उस (मानव)	तोक आचरितं	शिशु लीला
जातिं	जातिका	अथ	अब (वर्णन कीजिए)
अनुरुन्धतः	अनुकरण करते हुए		॥३॥
कृष्णस्य	श्रीकृष्णकी		

श्रीशुक उवाच

कदाचिदौत्थानिककौतुकाप्लवे
जन्मर्क्षयोगे समवेतयोषिताम् ।
वादित्रगीतद्विजमन्त्रवाचकै-
श्चकार सूनोरभिषेचनं सती ॥४॥

कदाचित् औत्थानिक कौतुक आप्लवे जन्म ऋक्ष योगे समवेत योषितां वादित्र गीत द्विज मन्त्रवाचकैः चकार सूनोः अभिषेचनं सती ॥४॥

कदाचित्	किसी समय	योषितां	स्त्रियोंके
औत्थानिक	(श्रीकृष्णके) करवट बदलनेके	वादित्र गीत	बजाने-गानेके साथ
		सती	सती यशोदाने
कौतुक आप्लवे	महोत्सवमें	मन्त्रवाचकैः	वेद-मन्त्र पढ़नेवाले
जन्म	(उसी दिन) जन्म-	द्विज	ब्राह्मणों द्वारा
ऋक्ष योगे	नक्षत्रका भी योग होनेसे	सूनोः	पुत्रका
		अभिषेचनं	अभिषेक
समवेत	एकत्र हुई	चकार	कराया ॥४॥

नन्दस्य पत्नी कृतमज्जनादिकं
विप्रैः कृतस्वस्त्ययनं सुपूजितैः ।
अन्नाद्यवासः स्रगभीष्टधेनुभिः
संजातनिद्राक्षमशीशयच्छनैः ॥५॥

नन्दस्य पत्नी कृत मज्जन आदिकं विप्रैः कृत स्वस्त्ययनं सुपूजितैः अन्न आद्य वासः स्रक् अभीष्ट धेनुभिः संजात निद्रा अक्षं अशीशयत् शनैः ॥५॥

नन्दस्य पत्नी	नन्द पत्नी यशोदाने	**कृत**	करके
अन्न आद्य	अन्न आदि	**मज्जन**	अभिषेक
वासः स्रक्	वस्त्र, माला	**आदिकं**	आदि
अभीष्ट	मनचाही	**कृत**	हो जानेपर
धेनुभिः	गौ द्वारा	**अक्षं निद्रा**	आंखोंमें नींद
सपूजितैः	भली प्रकार सत्कृत	**संजात**	आनेपर (पुत्रको)
विप्रैः	ब्राह्मणों द्वारा	**शनैः**	धीरेसे
स्वस्त्ययनं	स्वस्ति पाठ	**अशीशयत्**	सुला दिया ॥५॥

औत्थानिकौत्सुक्यमना मनस्विनी
समागतान् पूजयती व्रजौकसः ।
नैवाशृणोद् वै रुदितं सुतस्य सा
रुदन् स्तनार्थी चरणावुदक्षिपत् ॥६॥

औत्थानिक औत्सुक्यमनः मनस्विनी समागतान् पूजयती व्रजौकसः न एव अशृणोत् वै रुदितं सुतस्य सा रुदन् स्तन अर्थी चरणाः उत् अक्षिपत् ॥६॥

सा मनस्विनी	वह मनस्विनी	**समागतान्**	सब कहीं से आये
औत्थानिक	(उस) औत्थानिक महोत्सवमें	**व्रजौकसः**	व्रजवासियोंका
		पूजयती	सत्कार करनेमें लगी
औत्सुक्यमना	उत्साहित मनसे	**सुतस्य रुदितं**	पुत्रका रुदन

व न एव	निश्चय नहीं ही	**चरणाः**	दोनों पैरोंको
अशृणोत्	सुन सकी	**उत् अक्षिपत्**	ऊपर उछाल दिया ॥६॥
स्तन अर्थी	स्तन-पानके लिए		
रुदन्	रोते हुए (शिशुने)		

अधः शयानस्य शिशोरनोऽल्पक-
प्रवालमृद्वङ्घ्रिहतं व्यवर्तत ।
विध्वस्तनानारसकुप्यभाजनं
व्यत्यस्तचक्राक्षविभिन्नकूबरम् ॥७॥

अधः शयानस्य शिशोः अनोः अल्पक प्रवाल मृदु अंघ्रि हतं व्यवर्तत विध्वस्त नाना रस कुप्य भाजनं व्यत्यस्त चक्र अक्ष विभिन्न कूबरम् ॥७॥

अधः शयानस्य	नीचे सोये हुए	**कुप्य भाजनं**	कुप्पियोंके पात्र
शिशोः अल्पक	शिशुके नन्हे	**विध्वस्त**	फूट गये,
प्रवाल मृदु	किसलय कोमल	**चक्र**	(छकड़ेके) पहिये
अंघ्रि हतं	चरणोंकी चोटसे	**अक्ष**	और धुरे
अनोः	(वह) छकड़ा	**व्यत्यस्त**	अस्तव्यस्त हो गये
व्यवर्तत	उलट गया,	**कूबरं**	और जूआ
नाना रस	(उसमें रखे) अनेक रसोंके	**विभिन्न**	टूट गया ॥७॥

दृष्ट्वा यशोदाप्रमुखा व्रजस्त्रिय
औत्थानिके कर्मणि याः समागताः ।
नन्दादयश्चाद्भुतदर्शनाकुलाः
कथं स्वयं वै शकटं विपर्यगात् ॥८॥

दृष्ट्वा यशोदा प्रमुखा व्रजस्त्रियः औत्थानिके कर्मणि याः सम आगताः नन्द आदयः च अद्भुत दर्शन आकुलाः कथं स्वयं वै शकटं विपरि अगात् ॥८॥

औत्थानिके	उस औत्थानिक	**याः सम**	जो सब कहींसे
कर्मणि	उत्सवमें	**आगताः**	आयी

यशोदा प्रमुखा	यशोदा प्रधाना
व्रजस्त्रियः	व्रजकी स्त्रियां
दृष्ट्वा	यह देखकर
च नन्द	तथा नन्द
आदयः	आदि (गोप)
अद्भुत	यह अद्भुत बात
दर्शन	देखनेसे
आकुलाः	व्याकुल होकर (कहने लगे)
वै स्वयं कथं	'अरे स्वयं कैसे
शकटं	छकड़ा
विपरि अगात्	उलटा हो गया' ॥८॥

ऊचुरव्यवसितमतीन् गोपान् गोपीश्च बालकाः ।
रुदतानेन पादेन क्षिप्तमेतन्न संशयः ॥९॥

ऊचुः अव्यवसित मतीन् गोपान् गोपीन् च बालकाः रुदता अनेन पादेन क्षिप्तं एतत् न संशयः ॥९॥

अव्यवसित	अनिश्चय युक्त
मतीन्	बुद्धिवाले उन
गोपान् च	गोपों और
गोपीन्	गोपियोंसे
बालकाः ऊचुः	बालक बोले—
एतत्	इसमें कोई
संशयः न	सन्देह नहीं कि
रुदता अनेन	रोते हुए इसने
पादेन	अपने पैरोंसे
क्षिप्तं	फेंक दिया है' ॥९॥

न ते श्रद्दधिरे गोपा बालभाषितमित्युत ।
अप्रमेयं बलं तस्य बालकस्य न ते विदुः ॥१०॥

न ते श्रद्दधिरे गोपाः बालभाषितं इति उत अप्रमेयं बलं तस्य बालकस्य न ते विदुः ॥१०॥

उत	'अरे
बालभाषितं	यह बच्चोंकी बात'
इति	ऐसा कहकर
ते गोपाः	उन गोपोंने
श्रद्दधिरे	(उसपर) विश्वास
न	नहीं किया,
तस्य बालकस्य	उस बालकका
अप्रमेयं	अतुलित
बलं ते	बल वे
न विदुः	नहीं जानते थे ॥१०॥

रुदन्तं सुतमादाय यशोदा ग्रहशंकिता ।
कृतस्वस्त्ययनं विप्रैः सूक्तैः स्तनमपाययत् ॥११॥

रुदन्तं सुतं आदाय यशोदा ग्रह शङ्किता कृत स्वस्त्ययनं विप्रैः सूक्तैः स्तनं अपाययत् ॥११॥

रुदन्तं सुतं	रोते हुए पुत्रको	**विप्रैः**	ब्राह्मणोंसे
आदाय	(गोदमें) लेकर	**स्वस्त्ययनं**	स्वस्ति-वाचन
ग्रह शङ्किता	ग्रहसे शंकित हुई	**कृत**	करवाकर
यशोदा	यशोदाने	**स्तनं**	स्तनपान
सूक्तैः	वेद मन्त्रों द्वारा	**अपाययत्**	कराया ॥११॥

पूर्ववत् स्थापितं गोपैर्बलिभिः सपरिच्छदम् ।
विप्रा हुत्वार्चयांचक्रु र्दध्यक्षतकुशाम्बुभिः ॥१२॥

पूर्ववत् स्थापितं गोपैः बलिभिः सपरिच्छदं विप्रा हुत्वा अर्चयान् चक्रुः दधि अक्षत कुश अम्बुभिः ॥१२॥

बलिभिः गोपैः	बलवान गोपोंने	**विप्रा**	ब्राह्मणोंने
सपरिच्छदं	सामग्रीके साथ	**हुत्वा**	हवन करके
पूर्ववत्	पहिलेकी भांति (छकड़ेको)	**दधि अक्षत**	दही, अक्षत
		कुश अम्बुभिः	कुश और जल द्वारा
स्थापितं	रख दिया,	**अर्चयान् चक्रुः**	पूजन किया ॥१२॥

येऽसूयानृतदम्भेर्ष्याहिंसामानविवर्जिताः ।
न तेषां सत्यशीलानामाशिषो विफलाः कृताः ॥१३॥

ये असूया अनृत दम्भ ईर्ष्या हिंसा मान विवर्जिताः न तेषां सत्य शीलानां आशिषः विफलाः कृताः ।:१३॥

ये असूया	'जो दोष-दृष्टि,	**सत्य शीलानां**	सत्यशील (ब्राह्मणों) का
अनृत दम्भ	मिथ्या, पाखण्ड,		
इर्ष्या हिंसा	ईर्षा, हिंसा	**आशिषः**	आशीर्वाद
मान	अभिमान	**विफलाः**	निष्फल
विवर्जिताः	रहित हैं	**कृताः न**	नहीं होता' ॥१३॥
तेषां	उन		

इति बालकमादाय सामर्ग्यजुरुपाकृतैः ।
जलैः पवित्रौषधिभिरभिषिच्य द्विजोत्तमैः ॥१४॥

इति बालकं आदाय साम ऋक् यजुषा कृतैः जलैः पवित्र औषधिभिः अभिषिच्य द्विज उत्तमैः ॥१४॥

इति	यह समझकर	**पवित्र**	पवित्र
बालकं आदाय	पुत्रको लेकर	**औषधिभिः**	औषधियों युक्त
द्विज उत्तमैः	श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा	**जलैः**	जलसे
साम	सामवेद,	**अभिषिच्य**	अभिषेक करवाकर ॥१४॥
ऋक् यजुषा	ऋग्वेद, यजर्वेदके		
कृतैः	मन्त्रोंसे		

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं नन्दगोपः समाहितः ।
हुत्वा चाग्निं द्विजातिभ्यः प्रादादन्नं महागुणम् ॥१५॥

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं नन्दगोपः समाहितः हुत्वा च अग्निं द्विजातिभ्यः प्रादात् अन्नं महागुणम् ॥१५॥

समाहितः	एकाग्र चित्त	**हुत्वा**	होत्र करके
नन्दगोपः	नन्द गोपने	**द्विजातिभ्यः**	ब्राह्मणोंको
स्वस्त्ययनं	स्वस्ति पाठ	**महागुणं**	अत्यन्त गुणकारी
वाचयित्वा	वाचन कराकर	**अन्नं प्रादात्**	भोजन प्रदान किया ॥१५॥
च अग्निं	तथा अग्नि		

गावः सर्वगुणोपेता वासःस्रग्रुक्ममालिनीः ।
आत्मजाभ्युदयार्थाय प्रादात्ते चान्वयुञ्जत ॥१६॥

गावः सर्वगुण उपेता वासः स्रक् रुक्ममालिनीः आत्मज अभ्युदय अर्थाय प्रादात् ते च अन्व युञ्जत ॥१६॥

सर्वगुण	सर्वगुण	**गावः**	गायें
उपेता	सम्पन्ना	**आत्मज**	पुत्रके
वासः स्रक्	वस्त्र, माला	**अभ्युदय**	अभ्युदय
रुक्ममालिनीः	स्वर्ण-माला धारिणी	**अर्थाय**	के लिए

प्रादात्	प्रदानकी	तेअन्व युञ्जत	उन ब्राह्मणोंने भी
च	तथा		(आशीर्वाद) दिया ॥१६॥

विप्रा मन्त्रविदो युक्तास्तैर्याः प्रोक्तास्तथाऽऽशिषः ।
ता निष्फला भविष्यन्ति न कदाचिदपि स्फुटम् ॥१७॥

विप्रा मन्त्रविदः युक्ताः तैः याः प्रोक्ताः तथा आशिषः ता निष्फला भविष्यन्ति न कदाचित् अपि स्फुटम् ॥१७॥

मन्त्रविदः	वेदज्ञ	प्रोक्ताः	दिया है,
युक्ताः	योग-युक्त	ता कदाचित्	वह कभी
विप्रा	ब्राह्मण हैं	अपि	भी
तैः याः	उन्होंने जो	निष्फला	निष्फल
तथा	उस प्रकार (सन्तुष्ट होकर)	न भविष्यन्ति	नहीं होगा,
		स्फुटं	यह स्पष्ट है ॥१७॥
आशिषः	आशीर्वाद		

एकदाऽऽरोहमारूढं लालयन्ती सुतं सती ।
गरिमाणं शिशोर्वोढुं न सेहे गिरिकूटवत् ॥१८॥

एकदा आरोहं आरूढं लालयन्ती सुतं सती गरिमाणं शिशोः वोढुं न सेहे गिरिकूटवत् ॥१८॥

एकदा सती	एक बार साध्वी यशोदा	गिरिकूटवत्	पर्वत शिखरके समान
आरोहं आरूढं	गोदमें बैठे	गरिमाणं	भारीपनको
सुतं	पुत्रको	वोढुं	उठानेको
लालयन्ती	प्यार करती हुई	सेहे न	सहन नहीं कर सकीं ॥१८॥
शिशोः	शिशुके		

भूमौ निधाय तं गोपी विस्मिता भारपीडिता ।
महापुरुषमादध्यौ जगतामास कर्मसु ॥१९॥

भूमौ निधाय तं गोपी विस्मिता भारपीडिता महापुरुषं आदध्यौ जगतां आस कर्मसु ॥१९॥

जगतां	(श्रीकृष्णके उदर स्थिर) जगतके	**भूमौ निधाय**	भूमिपर बैठाकर
भारपीडिता	भारसे पीड़ित होकर	**महापुरुषं**	भगवान पुरुषोत्तम-का
विस्मिता	विस्मित होकर	**आदध्यौ**	ध्यान किया, फिर
गोपी	गोपी (यशोदा) ने	**कर्मसु आस**	(घरके) काममें लग गयीं ॥१९॥
तं	उस (बालक) को		

दैत्यो नाम्ना तृणावर्तः कंसभृत्यः प्रणोदितः ।
चक्रवातस्वरूपेण जहारासीनमर्भकम् ॥२०॥

दैत्यः नाम्ना तृणावर्तः कंसभृत्यः प्रणोदितः चक्रवात स्वरूपेण जहार आसीनं अर्भकम् ॥२०॥

तृष्णावर्तः नाम्ना	तृणावर्त नामक	**स्वरूपेण**	के रूपमें
कंसभृत्यः	कंसका सेवक	**आसीनं अर्भकं**	बैठे हुए बालकका
प्रणोदितः	उसके भेजे हुए	**जहार**	हरण कर लिया ॥२०॥
दैत्यः	दैत्यने		
चक्रवात	चक्रवात (बवंडर)		

गोकुलं सर्वमावृण्वन् मुष्णंश्चक्षूंषि रेणुभिः ।
ईरयन् सुमहाघोरशब्देन प्रदिशो दिशः ॥२१॥

गोकुलं सर्वं आवृण्वन् मुष्णन् चक्षूंषि रेणुभिः ईरयन् सुमहाघोर शब्देन प्रदिशः दिशः ॥२१॥

सुमहाघोर	अत्यन्त भयानक	**रेणुभिः**	धूलिसे
शब्देन प्रदिशः	शब्दसे दिशा-	**सर्वं गोकुलं**	पूरे गोकुलको
दिशः	विदिशाओंको	**आवृण्वन्**	आच्छादित करके
ईरयन्	गुञ्जायमान करते हुए	**चक्षूंषि मुष्णन्**	(सबके) नेत्र बन्द कर दिये ॥२१॥

मुहूर्तमभवद् गोष्ठं रजसा तमसाऽऽवृतम् ।
सुतं यशोदा नापश्यत्तस्मिन् न्यस्तवती यतः ॥२२॥

मुहूर्तं अभवत् गोष्ठं रजसा तमसा आवृतं सुतं यशोदा न अपश्यत् तस्मिन् न्यस्तवती यतः ॥२२॥

मुहूर्तं	एक मुहूर्तके लिए	सुतं	पुत्रको
गोष्ठं	(पूरा) गोकुल	न्यस्तवती	रख दिया था
रजसा तमसा	धूलिसे अन्धकार	यशोदा	यशोदाने (वहां)
आवृतं	आच्छन्न	न अपश्यत्	(उसे) नहीं देखा
अभवत्	हो गया,		॥२२॥
यतः तस्मिन्	क्योंकि जहां		

नापश्यत् कश्चनात्मानं परं चापि विमोहितः ।
तृणावर्तनिसृष्टाभिः शर्कराभिरुपद्रुतः ॥२३॥

न अपश्यत् कश्चन् आत्मानं परं च अपि विमोहितः तृणावर्त निसृष्टाभिः शर्कराभिः उपद्रुतः ॥२३॥

तृणावर्त	तृणावर्त द्वारा	आत्मानं	अपनेको
निसृष्टाभिः	उड़ायी हुई	च परं अपि	तथा दूसरेको भी
शर्कराभिः	धूलि द्वारा	न अपश्यत्	नहीं देखता था
उपद्रुतः	पीड़ित		॥२३॥
कश्चन्	कोई		

इति खरपवनचक्रपांसुवर्षे
सुतपदवीमबलाविलक्ष्य माता ।
अतिकरुणमनुस्मरन्त्यशोचद्
भुवि पतिता मृतवत्सका यथा गौः ॥२४॥

इति खरपवन चक्र पांसुवर्षे सुतपदवीं अबला अविलक्ष्य माता अतिकरुणं अनुस्मरन्ति अशोचत् भुवि पतिता मृत वत्सका यथा गौः ॥२४॥

इति	ऐसी	वत्सका	बछड़े वाली
खरपवन	तीक्ष्ण वायु और	गौः	गाय हो,
चक्र	बवंडरकी	भुवि पतिता	पृथ्वीपर गिरकर
पांसुवर्षे	धूलि वर्षामें	अतिकरुणं	अत्यन्त दुःखी
सुतपदवीं	पुत्रका पता		होकर
अविलक्ष्य	न देखकर	अनुस्मरन्ति	बार-बार (उस पुत्र
अबला	असहाया		का) स्मरण करती
माता	माता (यशोदा)	अशोचत्	शोक करने लगी
यथा मृत	जैसे मरे		॥२४॥

रुदितमनुनिशम्य तत्र गोप्यो
भृशमनुतप्तधियोऽश्रुपूर्णमुख्यः ।
रुरुदुरनुपलभ्य नन्दसूनुं
पवन उपारतपांसुवर्षवेगे ॥२५॥

रुदितं अनुनिशम्य तत्र गोप्यः भृशं अनुतप्त धियः अश्रुपूर्ण मुख्यः रुरुदुः अनुपलभ्य नन्दसूनुं पवन उपारत पांसु वर्ष वेगे ॥२५॥

पांसु वर्ष	धूलि वर्षा करनेवाले	अनुतप्त धियः	संतप्त चित्त
पवन वेगे	वायु वेगके	अश्रु पूर्ण	आंसूसे भरे
उपारत	शान्त होनेपर	मुख्यः	मुखवाली
अनु रुदित	(यशोदाजीका)	गोप्यः तत्र	गोपियां भी वहां
	बार-बार रुदन	नन्दसूनुं	नन्दनन्दनको
निशम्य	सुनकर	अनुपलभ्य	न पाकर
भृशं	अत्यन्त	रुरुदुः	रोने लगीं ॥२५॥

तृणावर्तः शान्तरयो वात्यारूपधरो हरन् ।
कृष्णं नभोगतो गन्तुं नाशक्नोद् भूरिभारभृत् ॥२६॥

तृणावर्तः शान्तरयः वात्यारूपधरः हरन् कृष्णं नभः गतः गन्तुं न अशक्नोत् भूरिभार भृत् ॥२६॥

वात्यारूपधरः बवंडर रूपधारी । तृणावर्तः तृणावर्त

भूरिभार भृत्	बहुत भार धारी	नभोगतः	आकाशमें जानेपर
कृष्णं	श्रीकृष्णका	गन्तुं न	आगे नहीं
हरन्	हरण करके	अशक्नोत्	जा सका ॥२६॥

तमश्मानं मन्यमान आत्मनो गुरुमत्तया ।
गले गृहीत उत्स्रष्टुं नाशक्नोदद्भुतार्भकम् ॥२७॥

तं अश्मानं मन्यमान आत्मनः गुरुमत् तया गले गृहीत उत्स्रष्टुं न अशक्नोत् अद्भुत अर्भकम् ॥२७॥

आत्मनः	अपनेसे भी	मन्यमान	मानता हुआ
गुरुमत् तया	भारी होनेके कारण	गले गृहीत	गला पकड़े हुएको
तं अद्भुतं	उस अद्भुत	उत्स्रष्टुं	छोड़ भी
अर्भकं	शिशुको	न अशक्नोत्	नहीं सका ॥२७॥
अश्मानं	शिलाके समान		

गलग्रहणनिश्चेष्टो दैत्यो निर्गतलोचनः ।
अव्यक्तरावो न्यपतत् सहबालो व्यसुर्व्रजे ॥२८॥

गल ग्रहण निश्चेष्टः दैत्यः निर्गत लोचनः अव्यक्तरावः न्यपतत् सहबालः व्यसुः व्रजे ॥२८॥

गल ग्रहण	गला पकड़नेसे	व्यसुः	निष्प्राण होकर,
दैत्यः	दैत्यके	सहबालः	बालकके साथ
निर्गत लोचनः	नेत्र निकल आये,	व्रजे न्यपतत्	व्रजमें गिर पड़ा
निश्चेष्टः	चेष्टाहीन हो गया,		॥२८॥
अव्यक्तरावः	शब्द बन्द हो गया,		

तमन्तरिक्षात् पतितं शिलायां
विशीर्णसर्वावयवं करालम् ।
पुरं यथा रुद्रशरेण विद्धं
स्त्रियो रुदत्यो ददृशुः समेताः ॥२९॥

तं अन्तरिक्षात् पतितं शिलायां विशीर्ण सर्व अवयवं करालं पुरं यथा रुद्रशरेण विद्धं स्त्रियः रुदत्यः ददृशुः सम एताः ॥२९॥

यथा	जैसे
रुद्रशरेण	त्रिपुरारिके बाणसे
विद्धं पुरं	विद्ध त्रिपुर हो
अन्तरिक्षात्	आकाशसे
शिलायां पतितं	शिलापर गिरनेसे
सर्व अवयवं	सम्पूर्ण अंग
विशीर्णं	बिखरे हुए
करालं तं	विकराल उसे
रुदत्यः स्त्रियः	रोती स्त्रियोंने
सम एताः	एक साथ आकर
ददृशुः	देखा ॥२९॥

प्रादाय मात्रे प्रतिहृत्य विस्मिताः
कृष्णं च तस्योरसि लम्बमानम् ।
तं स्वस्तिमन्तं पुरुषादनीतं
विहायसा मृत्युमुखात् प्रमुक्तम् ।
गोप्यश्च गोपाः किल नन्दमुख्या
लब्ध्वा पुनः प्रापुरतीव मोदम् ॥३०॥

प्रादाय मात्रे प्रतिहृत्य विस्मिताः कृष्णं च तस्य उरसि लम्बमानं तं स्वस्तिमन्तं पुरुषात् अनीतं विहायसा मृत्यु मुखात् प्रमुक्तं गोप्यः च गोपाः किल नन्द मुख्या लब्ध्वा पुनः प्रापुः अतीव मोदम् ॥३०॥

तस्य उरसि	उसकी छातीपर
लम्बमानं	लटके हुए
कृष्णं च	श्रीकृष्णको भी
विस्मिताः	चकित होकर
प्रतिहृत्य	वहांसे उठाकर
मात्रे	माता (यशोदा) को
प्रादाय	दे दिया
पुरुषात्	राक्षस द्वारा
विहायसा	आकाशमें
अनीतं	ले जाये जाकर
मृत्यु मुखात्	मौतके मुखसे
प्रमुक्तं	छूटे हुए
तं	उन (श्रीकृष्ण) को
स्वस्तिमन्तं	सकुशल
पुनः लब्ध्वा	फिर पाकर
गोप्यः च	गोपियां और
नन्द मुख्या	नन्द प्रमुख
गोपाः	गोप
किल अतीव	अहो, अत्यन्त
मोदं प्रापुः	आनन्दको प्राप्त हुए ॥३०॥

अहो बतात्यद्भुतमेष रक्षसा
बालो निवृत्तिं गमितोऽभ्यगात् पुनः ।

हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः
साधुः समत्वेन भयाद् विमुच्यते ॥३१॥

अहो बत अत्यद्भुतं एष रक्षसा बालः निवृत्तिं गमितः अभ्यगात् पुनः हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः साधुः समत्वेन भयात् विमुच्यते ॥३१॥

अहो बत	(कहने लगे) 'अहो अरे	**खलः हिंस्रः**	(सच है) दुष्ट हत्यारा
अत्यद्भुतं	यह अत्यन्त अद्भुत बात है कि	**स्वपापेन**	अपने पापसे
एष रक्षसा	इस राक्षस द्वारा	**विहिंसितः**	मारा गया और
बालः निवृत्तिं	बालक मृत्युको	**साधुः**	सत्पुरुष अपनी
गमितः पुनः	प्राप्त होकर फिर	**समत्वेन**	समतासे
अभ्यगात्	लौट आया	**भयात्**	भयसे
		विमुच्यते	छूट जाते हैं ॥३१॥

किं नस्तपश्चीर्णमधोक्षजार्चनं
पूर्तेष्टदत्तमुत भूतसौहृदम् ।
यत्सम्परेतः पुनरेव बालको
दिष्ट्या स्वबन्धून् प्रणयन्नुपस्थितः ॥३२॥

किं नः तपः चीर्णं अधोक्षज अर्चनं पूर्तं इष्टं दत्तं उत भूत सौहृदं यत् संपरेतः पुनः एव बालकः दिष्ट्या स्वबन्धून् प्रणयन् उपस्थितः ॥३२॥

नः किं	हमने ऐसा कौन-सा	**दिष्ट्या**	सौभाग्यवश
तपः चीर्णं	तप किया था,	**यत् सम्परेतः**	जो मरकर भी
अधोक्षज	हृषीकेश भगवानका	**बालकः**	यह बालक
अर्चनं	पूजन किया था,	**पुनः एव**	फिरसे ही
पूर्तं इष्टं दत्तं	इष्ट-पूर्त आदि दान	**स्वबन्धून्**	अपने सम्बन्धियोंको
उत भूत	अथवा प्राणियोंसे	**प्रणयन्**	आनन्दित करने
सौहृदं	सौहार्द्र किया था, (जिससे)	**उपस्थितः**	आ गया' ॥३२॥

दृष्ट्वाद्भुतानि बहुशो नन्दगोपो बृहद्वने ।
वसुदेववचो भूयो मानयामास विस्मितः ॥३३॥

दृष्ट्वा अद्भुतानि बहुशः नन्दगोपः बृहद्वने वसुदेव वचः भूयः मानयामास विस्मितः ॥३३॥

बृहद्वने	बृहद्वन (महावन) में	**विस्मितः**	चकित होकर
बहुशः	बहुत-सी	**वसुदेव वचः**	वसुदेवजीके कथन-का
अद्भुतानि	अद्भुत बातें	**भूयः**	बार-बार
दृष्ट्वा	देखकर	**मानयामास**	समर्थन किया ॥३३॥
नन्दगोपः	गोपराज नन्दजीने		

एकदार्भकमादाय स्वाङ्कमारोप्य भामिनी ।
प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लुता ॥३४॥

एकदा अर्भकं आदाय स्व अङ्कं आरोप्य भामिनी प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लुता ॥३४॥

एकदा	एक बार	**स्नेहपरिप्लुता**	प्रेमसे परिपूर्णा
अर्भकं आदाय	शिशुको लेकर	**भामिनी**	सुन्दरी यशोदाने
स्व अङ्कं	अपनी गोदमें	**प्रस्नुतं स्तनं**	दूध झरते स्तनको
आरोप्य	लेकर	**पाययामास**	पिलाया ॥३४॥

पीतप्रायस्य जननी सा तस्य रुचिरस्मितम् ।
मुखं लालयती राजञ्जृम्भतो ददृशे इदम् ॥३५॥

पीत प्रायस्य जननी सा तस्य रुचिर स्मितं मुखं लालयती राजन् जृम्भतः ददृशे इदम् ॥३५॥

राजन्	राजन्	**रुचिर स्मितं**	सुन्दर मुस्कानवाले
सा जननी	वह माता	**मुखं**	मुखका
पीत प्रायस्य	प्रायः (दूध) पी लेने पर	**लालयती**	लाड़-लड़ाती हुई
		जृम्भतः	जम्हाई लेनेपर
तस्य	उन (श्रीकृष्ण) के	**इदं ददृशे**	यह देखा ॥३५॥

खं रोदसी ज्यातिरनीकमाशाः
सूर्येन्दुवह्निश्वसनाम्बुधींश्च ।
द्वीपान् नगांस्तद्दुहितृर्वनानि
भूतानि यानि स्थिरजङ्गमानि ॥३६॥

खं रोदसी ज्योतिः अनीकं आशाः सूर्य इन्दु वह्नि श्वसन अम्बुधीन् च द्वीपान् नगान् तत् दुहितृः वनानि भूतानि यानि स्थिर जंगमानि ॥३६॥

खं रोदसी	आकाश, अन्तरिक्ष,	**तत्**	उन (पर्वतोंकी)
ज्योतिः अनीकं	तारा-मण्डल,	**दुहितृः**	पुत्रियां नदियां
आशाः सूर्य	दिशाएँ, सूर्य,	**वनानि च**	वन और
इन्दु वह्नि	चन्द्रमा, अग्नि,	**यानि**	जितने
श्वसन	वायु,	**स्थिर जंगमानि**	अचर-चर
अम्बुधीन्	समुद्र	**भूतानि**	प्राणियोंको ॥३६॥
द्वीपान् नगान्	सब द्वीप, पर्वत्		

सा वीक्ष्य विश्वं सहसा राजन् संजातवेपथुः ।
सम्मील्य मृगशावाक्षी नेत्रे आसीत् सुविस्मिता ॥३७॥

सा वीक्ष्य विश्वं सहसा राजन् सञ्जात वेपथुः सम्मील्य मृगशाव अक्षी नेत्रे आसीत् सुविस्मिता ॥३७॥

राजन्	राजन् !	**वेपथुः सञ्जात**	काँपने लगी,
सहसा	अचानक	**सुविस्मिता**	अत्यन्त चकित होकर
विश्वं वीक्ष्य	विश्वको देखकर	**नेत्रे**	नेत्र
सा	वह	**सम्मील्य**	कसकर बन्द कर
मृगशाव अक्षी	मृगशावक नयनी		लिए ॥३७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे
पूर्वार्धे तृणावर्तमोक्षो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

गर्गः पुरोहितो राजन् यदूनां सुमहातपाः ।
व्रजं जगाम नन्दस्य वसुदेवप्रचोदितः ॥१॥

गर्गः पुरोहितः राजन् यदूनां सुमहा तपाः व्रजं जगाम नन्दस्य वसुदेव प्रचोदितः ॥१॥

राजन्	राजन् !	**गर्गः**	गर्गाचार्य
सुमहा	अत्यन्त महान्	**वसुदेव**	वसुदेवजी के
तपाः	तपस्वी	**प्रचोदितः**	भेजनेसे
यदूनां	यदुवंशके	**नन्दस्य व्रजं**	नन्द व्रजमें
पुरोहितः	पुरोहित	**जगाम**	गये ॥१॥

तं दृष्ट्वा परमप्रीतः प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ।
आनर्चाधोक्षजधिया प्रणिपातपुरस्सरम् ॥२॥

तं दृष्ट्वा परमप्रीतः प्रत्युत्थाय कृत अञ्जलिः आनर्च अधोक्षज धिया प्रणिपात पुरःसरम् ॥२॥

तं दृष्ट्वा	उन्हें देखकर	**पुरः सरं**	पहिले करके
परमप्रीतः	अत्यन्त प्रसन्न होकर	**कृत अञ्जलिः**	हाथ जोड़कर
		अधोक्षजधिया	भगवद् बुद्धिसे
प्रत्युत्थाय	स्वागतमें उठकर	**आनर्च**	(उनका) पूजन
प्रणिपात	दण्डवत् प्रणाम		किया ॥२॥

सूपविष्टं कृतातिथ्यं गिरा सूनृतया मुनिम् ।
नन्दयित्वाब्रवीद् ब्रह्मन् पूर्णस्य करवाम किम् ॥३॥

सु उपविष्टं कृत आतिथ्यं गिरा सूनृतया मुनिं नन्दयित्वा अब्रवीत् ब्रह्मन् पूर्णस्य करवाम किम् ॥३॥

सु उपविष्टं	भली प्रकार बैठ जानेपर	मुनिं	मुनिको
आतिथ्यं	अतिथि-सत्कार	नन्दयित्वा	प्रसन्न करके
कृत	करके	अब्रवीत्	बोले
सूनृतया	बहुत मधुर	ब्रह्मन्	'ब्रह्मन !
गिरा	वाणीसे	पूर्णस्य	आप पूर्णकामकी
		किं करवाम	क्या सेवा करूँ ॥३॥

महद्विचलनं नृणां गृहिणां दीनचेतसाम् ।
निःश्रेयसाय भगवन् कल्पते नान्यथा क्वचित् ॥४॥

महत् विचलनं नृणां गृहिणां दीन चेतसां निःश्रेयसाय भगवन् कल्पते न अन्यथा क्वचित् ॥४॥

महत्	(आप जैसे) महा-पुरुषोंका	निःश्रेयसाय	कल्याणके लिए ही होता है
विचलनं	आना-जाना	भगवन्	भगवन्
दीन चेतसां	दीन-चित्त	अन्यथा क्वचित्	इससे भिन्न कभी
गृहीणां	गृहस्थोंके	न कल्पते	नहीं होता ॥४॥

ज्योतिषामयनं साक्षाद् यत्तज्ज्ञानमतीन्द्रियम् ।
प्रणीतं भवता येन पुमान् वेद परावरम् ॥५॥

ज्योतिषां अयनं साक्षात् यत् तत् ज्ञानं अतीन्द्रियं प्रणीतं भवता येन पुमान् वेद पर अवरम् ॥५॥

यत् ज्ञानं	जो ज्ञान	वेद तत्	जानता है वह
अतीन्द्रियं	इन्द्रियोंसे नहीं जाना जाता	ज्योतिषां अयनं	ज्योतिष शास्त्र
		भवता प्रणीतं	आप द्वारा निर्मित है ॥५॥
येन पुमान्	जिससे पुरुष		
पर अवरं	भूत-भविष्यको		

त्वं हि ब्रह्मविदां श्रेष्ठः संस्कारान् कर्तुमर्हसि ।
बालयोरनयोर्नृणां जन्मना ब्राह्मणो गुरुः ॥६॥

त्वं हि ब्रह्मविदां श्रेष्ठः संस्कारान् कर्तुं अर्हसि बालयोः अनयोः नृणां जन्मना ब्राह्मणः गुरुः ॥६॥

हि ब्रह्मविदां	क्योंकि वेदवेत्ताओंमें	**कर्तुं अर्हसि**	आपको कर देना चाहिए
त्वं श्रेष्ठः	आप श्रेष्ठ हैं	**ब्राह्मणः**	ब्राह्मण
अनयोः	इन दोनों	**जन्मना**	जन्मसे ही
बालयोः	बालकोंका	**नृणां**	मनुष्योंका
संस्कारान्	संस्कार	**गुरुः**	गुरु होता है ॥६॥

गर्ग उवाच

यदूनामहमाचार्यः ख्यातश्च भुवि सर्वतः ।
सुतं मया संस्कृतं ते मन्यते देवकीसुतम् ॥७॥

यदूनां अहं आचार्यः ख्यातः च भुवि सर्वदा सुतं मया संस्कृतं ते मन्यते देवकी सुतम् ॥७॥

अहं सर्वदा	मैं सदासे	**संस्कृतं**	संस्कार किये गये
भुवि	पृथ्वीपर	**ते सुतं**	तुम्हारा पुत्र
यदूनां	यदुवंशियोंका	**देवकी सुतं**	देवकीका पुत्र
आचार्यः ख्यातः	आचार्य प्रसिद्ध हूँ	**मन्यते**	माना जायगा ॥७॥
च मया	अतः मेरे द्वारा		

कंसः पापमतिः सख्यं तव चानकदुन्दुभेः ।
देवक्या अष्टमो गर्भो न स्त्री भवितुमर्हति ॥८॥

कंसः पापमतिः सख्यं तव च आनक दुन्दुभेः देवक्या अष्टमः गर्भः न स्त्री भवितुं अर्हति ॥८॥

कंस (वैसे ही) कंस । **पापमतिः** पाप बुद्धि है,

आनकदुन्दुभेः	'वसुदेवजीसे	अष्टमः गर्भः	आठवाँ बालक
तव सख्यं च	तुम्हारी मित्रता भी है,	स्त्री भवितुं	कन्या होना
		न अर्हति	नहीं चाहिए' ॥८॥
देवक्याः	और देवकीका		

इति संचिन्तयञ्छ्रुत्वा देवक्या दारिकावचः ।
अपि हन्ताऽऽगताशंकस्तर्हि तन्नोऽनयो भवेत् ॥९॥

इति सञ्चिनायन् श्रुत्वा देवक्या दारिका वचः अपि हन्ता आगत आशङ्कः तर्हि तत् नः अनयः भवेत् ॥९॥

इति	इस प्रकार	हन्ता अपि	मार ही डाले
सञ्चिनायन्	सोचकर	तर्हि तत्	तब तो वह
देवक्या दारिका	देवकीकी कन्याकी	नः अनयः	हमसे अन्याय
वचः श्रुत्वा	बात सुनकर	भवेत्	हो जायगा ॥९॥
आगत आशङ्कः	शंका करके		

नन्द उवाच

अलक्षितोऽस्मिन् रहसि मामकैरपि गोव्रजे ।
कुरु द्विजातिसंस्कारं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥१०॥

अलक्षितः अस्मिन् रहसि मामकैः अपि गोव्रजे कुरु द्विजाति संस्कारं स्वस्तिवाचन पूर्वकम् ॥१०॥

मामकैः	मेरी जातिवालोंसे	स्वस्ति वाचन	(केवल) स्वस्ति-पाठ
अपि	भी	पूर्वकं	पहिले करके
अलक्षितः	अज्ञात रहकर	द्विजाति	द्विजाति-
अस्मिन् गोव्रजे	इस गोष्ठके	संस्कारं कुरु	संस्कार कर दीजिये
रहसि	एकान्तमें		॥१०॥

श्रीशुक उवाच

एवं सम्प्रार्थितो विप्रः स्वचिकीर्षितमेव तत् ।
चकार नामकरणं गूढो रहसि बालयोः ॥११॥

एवं सम्प्रार्थितः विप्रः स्वचिकीर्षितं एव तत् चकार नामकरणं गूढः रहसि बालयोः ॥११॥

एवं	इस प्रकार	एव	ही थे (अतः)
सम्प्रार्थितः	प्रार्थना किये जानेपर	रहसि गूढः	एकान्तमें छिपकर
विप्रः	ब्राह्मण (गर्गाचार्य)	बालयोः	दोनों बालकोंका
तत्	वह	नामकरणं	नामकरण
स्वचिकीर्षतं	अपने भी करना चाहते	चकार	संस्कार किया ॥११॥

गर्ग उवाच

अयं हि रोहिणी पुत्रो रमयन् सुहृदो गुणैः ।
आख्यास्यते राम इति बलाधिक्याद् बलं विदुः ।
यदूनामपृथग्भावात् संकर्षणमुशन्त्युत ॥१२॥

अयं हि रोहिणी पुत्रः रमयन् सुहृदः गुणैः आख्यास्यते राम इति बल आधिक्यात् बलं विदुः यदूनां अपृथक् भावात् संकर्षणं उशन्ति उत ॥१२॥

अयं हि	यह जो		होनेसे
रोहिणी	रोहिणीजीका	बलं विदुः	बल नामसे भी जाना जायगा
पुत्रः	पुत्र है	उत यदूनां	तथा यदुवंशियोंमें
सुहृदः	सुहृदोंको	अपृथक् भावात्	एकताका भाव बनाये रखनेसे
गुणैः	अपने गुणोंसे	सङ्कर्षणं	संकर्षण
रमयन्	रमानेके कारण	उशन्ति	कहा जायगा ॥१२॥
राम इति	राम यह		
आख्यास्यते	इसका नाम है,		
बल आधिक्यात्	अधिक बलवान		

आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः ।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥१३॥

आसन् वर्णास्त्रयः हि अस्य गृह्णतः अनुयुगं तनूः शुक्लः रक्तः तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥१३॥

हि	(और) क्योंकि	**त्रयः वर्णाः**	तीन वर्ण
अस्य	इस (तुम्हारे पुत्र) के	**आसन्**	हुए थे
अनुयुगं तनूः	प्रत्येक युगमें शरीर	**इदानीं**	इस बार
गृह्णतः	धारण करते हुए	**कृष्णतां गतः**	कृष्ण वर्ण हुआ है ॥१३॥
शुक्लः रक्तः	श्वेत, लाल,		
तथा पीतः	तथा पीला		

प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः ।
वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः सम्प्रचक्षते ॥१४॥

प्राक् अयं वसुदेवस्य क्वचित् जातः तव आत्मजः वासुदेव इति श्रीमान् अभिज्ञाः सम्प्रचक्षते ॥१४॥

अयं तव	यह तुम्हारा	**अभिज्ञाः**	अतः विद्वान लोग
आत्मजः	पुत्र	**श्रीमान्**	श्रीमान
प्राक् क्वचित्	पहिले कभी	**वासुदेव**	वासुदेव
वसुदेवस्य	वसुदेवजीसे	**इति**	इस प्रकार
जातः	उत्पन्न हुआ था	**सम्प्रचक्षते**	कहते हैं ॥१४॥

बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ।
गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥१५॥

बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते गुण कर्म अनुरूपाणि तानि अहं वेद नो जनाः ॥१५॥

ते सुतस्य	तुम्हारे पुत्रके	**सन्ति**	हैं,
गुण कर्म	गुणों और कर्मोंके	**तानि अहं वेद**	उनको मैं जानता हूँ,
अनुरूपाणि	अनुसार		
बहूनि नामानि	बहुतसे नाम	**जनाः**	दूसरे लोग
च रूपाणि	तथा रूप	**नो**	नहीं जानते ॥१५॥

एष वः श्रेय आधास्यद् गोपगोकुलनन्दनः ।
अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमञ्जस्तरिष्यथ ॥१६॥

एष वः श्रेय आधास्यत् गोप गोकुल नन्दनः अनेन सर्व दुर्गाणि यूयं अञ्जः तरिष्यथ ॥१६॥

एष गोप	यह गोपों और	अनेन यूयं	इसके द्वारा तुम लोग
गोकुल	गोकुलको	सर्व दुर्गाणि	सब सकटोंको
नन्दनः	आनंदित करनेवाला	अञ्जः	सरलतासे
वः श्रेय	तुम लोगोंका कल्याण	तरिष्यथ	पारकर लोगे ॥१६॥
आधास्यत्	करेगा,		

पुरानेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः ।
अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून् समेधिताः ॥१७॥

पुरा अनेन व्रजपते साधवः दस्यु पीडिताः अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युः दस्यून् समेधिताः ॥१७॥

व्रजपते	व्रजराज !	अनेन	इसके द्वारा
पुरा अराजके	पहिले अराजकताके समय	समेधिताः	भली प्रकार अभिवर्धित
दस्यु पीडिताः	लुटेरोंसे पीड़ित	दस्यून्	(साधुओंने) उन दस्युओंको
साधवः	सत्पुरुषोंकी	जिग्युः	जीत लिया ॥१७॥
रक्ष्यमाणा	रक्षा करते हुए		

य एतस्मिन् महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः ।
नारयोऽभिभवन्त्येतान् विष्णुपक्षानिवासुराः ॥१८॥

य एतस्मिन् महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः न अरयः अभिभवन्ति एतान् विष्णु पक्षान् इव असुराः ॥१८॥

य महाभागाः	जो महाभाग	विष्णु	भगवान विष्णुके
मानवाः	मनुष्य	पक्षान्	पक्ष वालोंको
एतस्मिन्	इससे	असुराः इव	असुरोंके समान
प्रीतिं कुर्वन्ति	प्रीति करते हैं	अभिभवन्ति न	दबा नहीं पाते ॥१८॥
एतान् अरयः	उनको उनके शत्रु		

तस्मान्नन्दात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः ।
श्रिया कीर्त्यानुभावेन गोपायस्व समाहितः ॥१६॥

तस्मात् नन्द आत्मजः अयं ते नारायण समः गुणैः श्रिया कीर्त्या अनुभावेन गोपायस्व समाहितः ॥१६॥

तस्मात् नन्द	इसलिए नन्द !	नारायण समः	नारायणके समान है
अयं ते आत्मजः	यह तुम्हारा पुत्र	समाहितः	एकान्त चित्तसे
गुणैः श्रिया	गुणोंमें लक्ष्मी,	गोपायस्व	इसकी रक्षा करो ॥१६॥
कीर्त्या	कीर्ति और		
अनुभावेन	प्रभावमें		

श्रीशुक उवाच*

इत्यात्मानं समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते ।
नन्दः प्रमुदितो मेने आत्मानं पूर्णमाशिषाम् ॥२०॥

इति आत्मानं समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते नन्दः प्रमुदितः मेने आत्मानं पूर्णं आशिषाम् ॥२०॥

इति	इस प्रकार	गते	चले जानेपर
आत्मानं	अपनेको	प्रमुदितः	बहुत आनन्दित
समादिश्य	भली प्रकार आदेश देकर	नन्दः	नन्दजीने
		आत्मानं	अपनेको
गर्गे च	गर्गाचार्यजीके तो	पूर्णं आशिषां	पूर्ण काम
स्वगृहं	अपने घर	मेने	माना ॥२०॥

कालेन व्रजताल्पेन गोकुले रामकेशवौ ।
जानुभ्यां सह पाणिभ्यां रिङ्गमाणौ विजह्रतुः ॥२१॥

कालेन व्रजता अल्पेन गोकुले रामकेशवौ जानुभ्यां सह पाणिभ्यां रिंगमाणौ विजह्रतुः ॥२१॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अल्पेन कालेन	थोड़ा समय
व्रजता	बीत जानेपर
रामकेशवौ	बलराम-श्रीकृष्ण
गोकुले	गोकुलमें
सह पाणिभ्यां	दोनों हाथोंके साथ
जानुभ्यां	घुटनोंके सहारे
रिंगमाणौ	सरकते हुए
विजह्रतुः	विहार करने लगे ॥२१॥

तावङ्घ्रियुग्ममनुकृष्य सरीसृपन्तौ
घोषप्रघोषरुचिरं व्रजकर्दमेषु ।
तन्नादहृष्टमनसावनुसृत्य लोकं
मुग्धप्रभीतवदुपेयतुरन्ति मात्रोः ॥२२॥

ताः अंघ्रि युग्मं अनुकृष्य सरीसृपन्तौ घोष प्रघोष रुचिरं व्रज कर्दमेषु तत् नाद हृष्ट मनसाः अनुसृत्य लोकं मुग्ध प्रभीतवत् उपेयतुः अन्ति मात्रोः ॥२२॥

ताः युग्मं	वे दोनों भाई
अंघ्रि	चरणोंको
अनुकृष्य	घसीट कर
व्रज कर्दमेषु	गोष्ठकी कीचमें
सरीसृपन्तौ	सरकते हुए
रुचिरं	अत्यन्त सुन्दर
घोष प्रघोष	आभूषणोंकी झंकार करते थे
तत् नाद	और उस शब्दसे
हृष्ट	प्रसन्न
मनसाः	चित्त होते
लोकं	लोगोके पीछे
मुग्ध	मोहित होकर
अनुसृत्य	(कुछ दूर) जाते फिर
प्रभीतवत्	डरे हुएके समान
मात्रोः अन्ति	माताओंके समीप
उपेयतुः	लौट आते ॥२२॥

तन्मातरौ निजसुतौ घृणया स्नुवन्त्यौ
पंकाङ्गरागरुचिरावुपगुह्य दोर्भ्याम् ।
दत्त्वा स्तनं प्रपिबतोः स्म मुखं निरीक्ष्य
मुग्धस्मिताल्पदशनं ययतुः प्रमोदम् ॥२३॥

तत् मातरौ निज सुतौ घृणया स्नुवन्त्यौ पङ्क अंग राग रुचिराः उपगुह्य दोर्भ्यां दत्त्वा स्तनं प्रपिबतोः स्म मुखं निरीक्ष्य मुग्ध स्मित अल्पदशनं ययतुः प्रमोदम् ॥२३॥

तत् मातरौ	उनकी माताओंको
घृणया	स्नेहवश
स्नुवन्त्यौ	(स्तनोंसे) दूध टपकने लगता
पङ्क अंग राग	कीचड़का अंगराग लगे
रुचिराः	मनोहर लगते
दोर्भ्यां	उनको भुजाओंसे
उपगुह्य	आलिंगन करके
स्तनं	(उनके मुखोंमें) स्तन
दत्त्वा	देकर
प्रपिबतोः स्म	उसे पीते हुए
मुग्ध स्मितं	मनोहर मुसकान तथा
अल्पदशनं	छोटे दांतों वाले
मुखं	(उनके) मुखोंको
निरीक्ष्य	देखकर
प्रमोदं ययतुः	आनन्दित होती थीं ॥२३॥

यर्ह्यङ्गनादर्शनीयकुमारलीला-
वन्तर्व्रजे तदबलाः प्रगृहीतपुच्छैः ।
वत्सैरितस्तत उभावनुकृष्यमाणौ
प्रेक्षन्त्य उज्झितगृहा जहृषुर्हसन्त्यः ॥२४॥

यर्हि अंगना दर्शनीय कुमारलीलाः अन्तः व्रजे तत् अबलाः प्रगृहीत पुच्छैः वत्सैः इतः तत उभाः अनुकृष्यमाणौ प्रेक्षन्त्य उज्झित गृहा जहृषुः हसन्त्यः ॥२४॥

यर्हि	जब
अंगना	गोपियोंके
दर्शनीय	देखने योग्य
कुमारलीला	शिशु क्रीड़ा करते हुए
अन्तः व्रजे	गोष्ठके भीतर
पुच्छैः प्रगृहीत	पूँछ पकड़े हुए
वत्सैः इतः तत	बछड़ों द्वारा इधर-उधर
अनुकृष्यमाणौ	खींच जाते हुए
उभाः	उन दोनोंको
प्रेक्षन्त्य	देखती हुई
तत् अबलाः	वे गोपियां
उज्झित गृहा	घर छोड़कर आईं
हसन्त्यः	हंस हंसकर
जहृषुः	आनन्दित होती थीं ॥२४॥

शृंगाग्निदंष्ट्रासिजलद्विजकेष्टकेभ्यः
क्रीडापरावतिचलौ स्वसुतौ निषेद्धुम् ।
गृह्याणि कर्तुमपि यत्र न तज्जनन्यौ
शेकात आपतुरलं मनसोऽनवस्थाम् ॥२५॥

शृंगि अग्नि दंष्ट्रि असि जल द्विज कण्टकेभ्यः क्रीडापराः अति चलौ स्वसुतौ निषेद्धुं गृह्याणि कर्तुं अपि यत्र न तत् जनन्यौ शेकात आपतुः अलं मनसः अनवस्थाम् ॥२५॥

अति चलौ	अत्यन्त चंचल	क्रीडापराः	खेलनेवालोंको
स्वसुतौ	अपने पुत्रोंको	निषेद्धुं	रोकनेमें
शृंगि	सींगवाले (गाय-बैल),	तत् जनन्यौ	उनकी माताएँ
		गृह्याणि कर्तुं	घरके काम करनेमें
अग्नि	अग्नि	अलं न शेकात	पूरी समर्थ नहीं थी
दंष्ट्रि	काटनेवाले (कुत्ते-बिल्ली),	मनसः	मनकी
		अनवस्थां	उद्विग्नता
असि	तलवार	आपतुः	प्राप्त हो गयी थी ॥२५॥
जल द्विज	जल, पक्षियों तथा		
कण्टकेभ्यः	कांटोंसे		

कालेनाल्पेन राजर्षे रामः कृष्णश्च गोकुले ।
अघृष्टजानुभिः पद्भिर्विचक्रमतुरञ्जसा ॥२६॥

कालेन अल्पेन राजर्षेः रामः कृष्णः च गोकुले अघृष्ट जानुभिः पद्भिः विचक्रमतुः अञ्जसा ॥२६॥

राजर्षेः	राजर्षि परीक्षित् !	अघृष्ट	बिना
अल्पेन कालेन	थोड़े ही समय में	जानुभिः	घुटना घिसे
गोकुले	गोकुलमें	अञ्जसा	सरलतासे
रामः च	बलराम और	पद्भिः	पैरोंसे
कृष्णः	श्रीकृष्ण	विचक्रमतुः	चलने लगे ॥२६॥

ततस्तु भगवान् कृष्णो वयस्यैर्व्रजबालकैः ।
सहरामो व्रजस्त्रीणां चिक्रीडे जनयन् मुदम् ॥२७॥

ततः तु भगवान् कृष्णः वयस्यैः व्रजबालकैः सहरामः व्रजस्त्रीणां चिक्रीडे जनयन् मुदम् ॥२७॥

भगवान् कृष्णः	भगवान श्रीकृष्ण	**सहरामः**	बलरामजीके साथ
ततः तु	तब तो	**व्रज स्त्रीणां**	व्रजकी गोपियोंको
वयस्यैः	समवयस्क	**मुदं जनयन्**	आनन्द उत्पन्न करते
व्रजबालकैः	व्रजके बालकों और	**चिक्रीडे**	खेलने लगे ॥२७॥

कृष्णस्य गोप्यो रुचिरं वीक्ष्य कौमारचापलम् ।
शृण्वत्याः किल तन्मातुरिति होचुः समागताः ॥२८॥

कृष्णस्य गोप्यः रुचिरं वीक्ष्य कौमार चापलं शृण्वत्याः किल तत् मातुः इति ह ऊचुः समागताः ॥२८॥

कृष्णस्य	श्रीकृष्णकी	**तत् मातुः**	उनकी माताको
रुचिरं	मनोहर	**शृण्वत्याः**	सुनाकर
कौमार चापलं	बाल-चपलता	**इति ह**	निश्चय यही
किल वीक्ष्य	अहो, देखकर	**ऊचुः**	कहने लगीं ॥२८॥

वत्सान् मुञ्चन् क्वचिदसमये क्रोशसंजातहासः ।
स्तेयं स्वाद्वत्यथ दधि पयः कल्पितैः स्तेययोगैः ।
मर्कान् भोक्ष्यन् विभजति स चेन्नात्ति भाण्डं भिनत्ति
द्रव्यालाभे स गृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान् ॥२९॥

वत्सान् मुञ्चन् क्वचित् असमये क्रोश संजात हासः स्तेयं स्वादति अथ दधि पयः कल्पितैः स्तेययोगैः मर्कान् भोक्ष्यन् विभजति स चेत् न अत्ति भाण्डं भिनत्ति द्रव्य अलाभे स गृह कुपितः याति उपक्रोश्य तोकान् ॥२९॥

क्वचित्	कभी	**वत्सान्**	बछड़े
असमये	बिना समयके ही	**मुञ्चन्**	खोल देता है,

क्रोश हासः	डांटनेपर इसे हँसी
संजात	आती है,
स्तेययोगैः	चोरीके उपाय
कल्पितैः अथ	करके फिर
दधि पयः	दही-दूध
स्तेयं	चोरीसे
स्वादति	खा लेता है,
मर्कान	बन्दरोंको
भोक्ष्यन्	खिलानेके लिए
विभजति	बांटता है,
चेत् स न	यदि वह नहीं
अत्ति	खाता तो
भाण्डं भिनत्ति	बरतन फोड़ देता है,
द्रव्य	कोई पदार्थ
अलाभे	न मिलनेपर
स गृह	वह घरपर ही
कुपितः	क्रोध करके
तोकान्	शिशुओंको
उपक्रोश्य	रुलाकर
याति	(भाग) जाता है

॥२९॥

हस्ताग्राह्ये रचयति विधिं पीठकोलूखलाद्यै-
श्छिद्रं ह्यन्तर्निहितवयुनः शिक्यभाण्डेषु तद्वित् ।
ध्वान्तागारे धृतमणिगणं स्वांगमर्थप्रदीपं
काले गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु सुव्यग्रचित्ताः ॥३०॥

हस्त अग्राह्ये रचयति विधि पीठक ऊलूखल आद्यैः छिद्रं हि अन्तः निहित वयुनः शिक्य भाण्डेषु तत् वित् ध्वान्त आगारे धृतमणि गणं स्वांगं अर्थं प्रदीपं काले गोप्यः यर्हि गृह कृत्येषु सुव्यग्र चित्ताः ॥३०॥

हस्त अग्राह्ये	हाथसे न मिलनेवाली वस्तुके लिए
पीठक ऊलूखल	पीढ़ा, ऊखल
आद्यैः विधि	आदिसे उपाय
रचयति	बनाता है,
हि अन्तः	क्योंकि अपने भीतर
निहित	स्थित
वयुनः	ज्ञानसे
शिक्य	छीकेपर रखे
भाण्डेषु	बरतनोंमें क्यों हैं
तत् वित्	उसे जाननेवाला यह
छिद्रं	छेद कर देता है,
ध्वान्त	अँधेरे
आगारे	घरमें के लिए
धृतमणि गणं	मणियां पहिन रखी हैं, फिर
स्वांगं	इसका अपना अंग
अर्थं	सब पदार्थोंको
प्रदीपं	प्रकाशित करने-वाला है,
यर्हि गोप्यः	जब गोपियां

गृह कृत्येषु	घरके कामोंमें	काले	उसी समय (यह सब
सुव्यग्र	अत्यन्त व्यस्त		करता है) ॥३०॥
चित्ताः	चित्त होती हैं		

एवं धाष्टर्च्यान्युशति कुरुते मेहनादीनि वास्तौ
स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः सुप्रतीको यथाऽऽस्ते ।
इत्थं स्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभि-
र्व्याख्यातार्था प्रहसितमुखी न ह्युपालब्धुमैच्छत् ॥३१॥

एवं धाष्टर्चान् उशति कुरुते मेहन आदीनि वास्तौ स्तेय उपायैः विरचित कृतिः सुप्रतीकः यथा आस्ते इत्थं स्त्रीभिः सभय नयन श्रीमुख आलोकिनीभिः व्याख्यात अर्था प्रहसित मुखी न हि उपालब्धुं ऐच्छत्॥३१॥

उशति	सती यशोदा !	स्त्रीभिः	स्त्रियों द्वारा
एवं	इस प्रकारकी	इत्थं	इस प्रकार
धाष्टर्च्यान्	धृष्टताएँ	व्याख्यात	अपने आनेका
वास्तौ	लिपे-पुते घरमें	अर्था	प्रयोजन कहनेपर
मेहन आदीनि	मल-मूत्रादि भी	प्रहसित	हँसते
कुरुते	कर देता है,	मुखी	मुखोंवाली (उन्हें
स्तेय उपायैः	चोरीके उपाय		देखकर)
विरचित कृतिः	बनानेमें कुशल है,	उपालब्धुं	(यशोदाजी) डांटने-
यथा सुप्रतीकः	जैसे बहुत सीधा हो		की
आस्ते	(इस समय) है,	ऐच्छत्	इच्छा
सभय नयन	भयभीत नेत्र	न हि	नहीं करती थीं
श्रीमुख	(श्रीकृष्णके) श्रीमुख		॥३१॥
आलोकिनीभिः	देखनेवाली		

एकदा क्रीडमानास्ते रामाद्या गोपदारकाः ।
कृष्णो मृदं भक्षितवानिति मात्रे न्यवेदयन् ॥३२॥

एकदा क्रीडमानाः ते राम आद्या गोपदारकाः कृष्णः मृदं भक्षितवान् इति मात्रे न्यवेदयन् ॥३२॥

एकदा	एक बार	भक्षितवान्	खायी है'
क्रीडमानाः	खेलते हुए	इति	इस प्रकार
राम आद्याः	बलराम आदि	मात्रे	माता यशोदासे
गोपदारकाः	गोप-बालकोंने	न्यवेदयन्	निवेदन किया ।।३२।।
कृष्णः मृदं	'श्रीकृष्णने मिट्टी		

सा गृहीत्वा करे कृष्णमुपालभ्य हितैषिणी ।
यशोदा भयसम्भ्रान्तप्रेक्षणाक्षमभाषत ।।३३।।

सा गृहीत्वा करे कृष्णं उपालभ्य हित ईषिणी यशोदा भय सम्भ्रान्त प्रेक्षण अक्षमं अभाषत ।।३३।।

सा हित	वह हित	उपालभ्य	डांटकर
ईषिणी	चाहनेवाली	प्रेक्षण	सामने देखनेमें
यशोदा	मैया यशोदा	अक्षमं	असमर्थ
कृष्णं करे	श्रीकृष्ण का हाथ	भय सम्भ्रान्त	भयसे घबड़ायेसे
गृहीत्वा	पकड़कर	अभाषत	बोली ।।३३।।

कस्मान्मृदमदान्तात्मन् भवान् भक्षितवान् रहः ।
वदन्ति तावका ह्येते कुमारास्तेऽग्रजोऽप्ययम् ।।३४।।

कस्मात् मृदं अदान्त आत्मन् भवान् भक्षितवान् रहः वदन्ति तावका हि एते कुमाराः ते अग्रजः अपि अयम् ।।३४।।

अदान्त आत्मन्	चंचल चित्त !	तावकाः	तेरे ही (सखा)
कस्मात् भवान्	क्यों तूने	एते कुमाराः	ये बालक और
रहः मृदं	एकान्तमें मिट्टी	ते अयं अग्रजः	तेरे ये बड़े भाई
भक्षितवान्	खायी ?	अपि वदन्ति	भी कहते हैं ।।३४।।
हि	क्योंकि		

कृष्ण उवाच

नाहं भक्षितवानम्ब सर्वे मिथ्याभिशंसिनः ।
यदि सत्यगिरस्तर्हि समक्षं पश्य मे मुखम् ।।३५।।

न अहं भक्षितवान् अम्ब सर्वे मिथ्या अभिशंसिनः यदि सत्य गिरः तर्हि समक्षं पश्य मे मुखम् ॥३५॥

अम्ब अहं	मैया मैंने
न भक्षितवान्	नहीं खाई है,
सर्वे मिथ्या	सब झूठी बातें
अभिशंसिनः	बनानेवाले हैं,
यदि	यदि ये
सत्य गिरः	सत्यभाषी हैं तो
समक्षं	इनके सामने ही
मे मुखं पश्य	मेरा मुख देख लें

॥३४॥

श्रीशुक उवाच*

यद्येवं तर्हि व्यादेहीत्युक्तः स भगवान् हरिः ।
व्यादत्ताव्याहतैश्वर्यः क्रीडामनुजबालकः ॥३६॥

यदि एवं तर्हि व्यादेहि इति उक्तः स भगवान् हरिः व्यादत्त अव्याहत ऐश्वर्य क्रीडा मनुज बालकः ॥३६॥

यदि एवं	'यदि ऐसा है
तर्हि व्यादेहि	तब मुख फैला'
इति	(यशोदाजी के) ऐसा
उक्तः	कहनेपर
अव्याहत	अखण्ड
ऐश्वर्य	ऐश्वर्य
क्रीडा मनुज	खेलसे मनुष्य
बालकः	बालक बने
स	उन
भगवान् हरिः	भगवान् श्रीहरिने
व्यादत्त	(मुख) फैला दिया

॥३६॥

सा तत्र ददृशे विश्वं जगत् स्थास्नु च खं दिशः ।
साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सवाय्वग्नीन्दुतारकम् ॥३७॥

सा तत्र ददृशे राजन् विश्वं जगत् स्थास्नु च खं दिशः स अद्रि द्वीप अब्धि भूगोलं स वायु अग्नि इन्दु तारकम् ॥३७॥

राजन्	राजन् !
सा तत्र	उसने वहाँ
स्थास्नु जगत्	स्थावर जगत
च खं	तथा आकाश
दिशः	दिशाएँ,
स अद्रि द्वीप	पर्वतों सहित द्वीपों,

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अब्धि	और समुद्रों युक्त	तारकं	तारागण युक्त
भूगोलं	भूमण्डल,	विश्वं ददृशे	विश्वको देखा
वायु अग्नि	वायु, अग्नि,		॥३७॥
स इन्दु	सहित चन्द्रमा और		

ज्योतिश्चक्रं जलं तेजो नभस्वान् वियदेव च ।
वैकारिकाणीन्द्रियाणि मनो मात्रा गुणास्त्रयः ॥३८॥

ज्योतिः चक्रं जलं तेजः नभस्वान् वियत् एव च वैकारिकाणि इन्द्रियाणि मनः मात्रा गुणाः त्रयः ॥३८॥

ज्योतिः चक्रं	ज्योतिर्मण्डल,	वैकारिकाणि	वैकारिक अहंकारके कार्य
जलं तेजः	जल, अग्नि,	इन्द्रियाणि	इन्द्रियोंको
नभस्वान्	वायु	मात्राः	पञ्च तन्मात्राओंको
च	तथा		तथा
वियत् एव	आकाशको भी	त्रयः गुणाः	तीनों गुणोंको ॥३८॥

एतद् विचित्रं सह जीवकाल-
स्वभावकर्माशयलिंगभेदम् ।
सूनोस्तनौ वीक्ष्य विदारितास्ये
व्रजं सहात्मानमवाप शंकाम् ॥३९॥

एतत् विचित्रं सह जीवकाल स्वभाव कर्माशय लिंगभेदं सूनोः तनौ वीक्ष्य विदारित आस्ये व्रजं सह आत्मानं अवाप शङ्काम् ॥३९॥

जीवकाल	जीव, काल,	आत्मानं	अपनेको भी
स्वभाव सह	स्वभावके साथ	आस्ये विदारित	मुख फैलाये
कर्माशय	कर्माशयसे	सूनोः तनौ	पुत्रके शरीरमें
लिंगभेदं	लिंगभेदवाला	वीक्ष्य	देखकर
एतत् विचित्रं	यह विचित्र विश्व तथा	शङ्कां	शंकाको
		अवाप	प्राप्त हो गयीं ॥३९॥
व्रजं सह	व्रजके साथ		

किं स्वप्न एतदुत देवमाया
किं वा मदीयो बत बुद्धिमोहः ।
अथो अमुष्यैव ममार्भकस्य
यः कश्चनौत्पत्तिक आत्मयोगः ॥४०॥

किं स्वप्न एतत् उत देवमाया किं वा मदीयः बत बुद्धिमोहः अथो अमुष्य एव मम अर्भकस्य यः कश्चन औत्पत्तिक आत्मयोगः ॥४०॥

एतत् किं स्वप्न	यह क्या स्वप्न है ?	अमुष्य एव	इसी
उत	या	मम	मेरे
देवमाया	भगवानकी माया है ?	अर्भकस्य	बालककी
वा बत	अथवा यह	कश्चन	कोई
मदीयः	मेरी ही	औत्पत्तिक	जन्मजात
बुद्धिमोहः	बुद्धिका भ्रम है ?	आत्मयोगः	अपनी योग-सिद्धि
अथो	अथवा		है ? ॥४०॥

अथो यथावन्न वितर्कगोचरं
चेतोमनः कर्मवचोभिरञ्जसा ।
यदाश्रयं येन यतः प्रतीयते
सुदुर्विभाव्यं प्रणतास्मि तत्पदम् ॥४१॥

अथो यथावत् न वितर्क गोचरं चेतः मनः कर्म वचः भिः अञ्जसा यत् आश्रयं येन यतः प्रतीयते सुदुर्विभाव्यं प्रणता अस्मि तत् पदम् ॥४१॥

अथो	अथवा	येन यतः	जिसके द्वारा, जिससे
चेतः मनः	चित्त, मन,	प्रतीयते	(यह जगत्) प्रतीत
कर्म वचः भिः	कर्म और वाणीसे		होता है
अञ्जसा	सरलतासे	तत्	उस
यथावत्	ठीक-ठीक	सुदुर्विभाव्यं	अचिन्त्य
वितर्क गोचरं	जो समझमें	पदं	परम पदको
न	नहीं आता,	प्रणता अस्मि	प्रणाम करती हूँ
यत् आश्रयं	जिसके आश्रयसे,		॥४१॥

अहं ममासौ पतिरेष मे सुतो
व्रजेश्वरस्याखिलवित्तपा सती ।
गोप्यश्च गोपाः सहगोधनाश्च मे
यन्मायया इत्थं कुमतिः स मे गतिः ॥४२॥

अहं मम असौ पतिः एष मे सुतः व्रजेश्वरस्य अखिल वित्तपा सति गोप्यः च गोपाः सह गोधनाः च मे यत् मायया इत्थं कुमतिः स मे गतिः ॥४२॥

अहं	यह मैं हूँ,
असौ मम पतिः	यह मेरे पति हैं,
एष मे सुतः	यह मेरा पुत्र है,
व्रजेश्वरस्य	व्रजराजकी
अखिल	सम्पूर्ण
वित्तपा	सम्पतिकी रक्षिका
सति च	मैं हूँ, तथा
गोप्यः च	गोपियाँ और
गोपाः	गोप
गोधनाः सह	गायोंके साथ
मे	मेरे हैं
यत् मायया	जिनकी मायासे
इत्थं कुमतिः	ऐसी दुर्बुद्धि है,
स मे	वही मेरी
गतिः	गति है' ॥४२॥

इत्थं विदिततत्वायां गोपिकायां स ईश्वरः ।
वैष्णवीं व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः ॥४३॥

इत्थं विदित तत्त्वायां गोपिकायां स ईश्वरः वैष्णवीं व्यतनोत् मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः ॥४३॥

इत्थं	इस प्रकार
गोपिकायां	गोपी (यशोदा) को
विदित तत्त्वायां	तत्त्व ज्ञान हो जाने-पर
स विभुः	उन विभु
ईश्वरः	परमेश्वरने
पुत्रस्नेहमयीं	पुत्र-स्नेह रूपा
वैष्णवीं मायां	वैष्णवी मायाको
व्यतनोत्	फैला दिया ॥४३॥

सद्योनष्टस्मृतिर्गोपी साऽऽरोप्यारोहमात्मजम् ।
प्रवृद्धस्नेहकलिलहृदयाऽऽसीद् यथा पुरा ॥४४॥

सद्यः नष्ट स्मृतिः गोपी सा आरोप्य आरोहं आत्मजं प्रवृद्ध स्नेह कलिल हृदया आसीत् यथा पुरा ॥४४॥

गोपी सद्यः	गोपी (यशोदा) तुरन्त	**आरोप्य**	उठा लिया,
		हृदया स्नेह	हृदयमें प्रेमकी
नष्ट स्मृतिः	वह स्मृति नष्ट हो जानेसे	**कलिल प्रवृद्ध**	बाढ़ बढ़ जानेसे
		पुरा यथा	पहिलेके समान
सा आत्मजं	उन्होंने पुत्रको	**आसीत्**	हो गयीं ॥४४॥
आरोहं	गोदमें		

त्रय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्वतैः ।
उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं सामन्यतात्मजम् ॥४५॥

त्रय्या च उपनिषत् भिः च सांख्य योगैः च सात्वतैः उपगीयमान माहात्म्यं हरिं सा अमन्यत आत्मजम् ॥४५॥

त्रय्या	वेदत्रयी,	**माहात्म्यं**	जिनकी महिमा
च	तथा	**उपगीयमान**	बराबर गायी जाती है
उपनिषत् भिः	उपनिषदों द्वारा,		
सांख्य	सांख्य	**हरिं**	उन श्रीहरि
च योगैः	और योग	**सा**	वह
च	तथा	**आत्मजं**	अपना पुत्र
सात्वतैः	पाञ्चरात्र द्वारा	**अमन्यत**	मानती थी ॥४५॥

राजोवाच

नन्दः किमकरोद् ब्रह्मन् श्रेय एवं महोदयम् ।
यशोदा च महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः ॥४६॥

नन्दः किं अकरोत् ब्रह्मन् श्रेय एवं महोदयम् यशोदा च महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः ॥४६॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**एवं महोदयं**	ऐसा महान अभ्युदयदायी

किं श्रेयः	कौन-सा पुण्य	**यस्याः**	जिसके
नन्दः	नन्दजीने	**स्तनं**	स्तनको
अकरोत्	किया था	**हरिः पपौ**	श्रीहरिने पिया
च महाभागा	और महाभागा		॥४६॥
यशोदा	यशोदाने		

पितरौ नान्वविन्देतां कृष्णोदारार्भकेहितम् ।
गायन्त्यद्यापि कवयो यल्लोकशमलापहम् ॥४७॥

पितरौ न अन्वविन्देतां कृष्ण उदार अर्भक ईहितं गायन्ति अद्य अपि कवयः यशः लोक मल अपहम् ॥४७॥

लोक मल	त्रिलोकीके पापको	**कवयः**	कवि लोग
अपहं	दूर करनेवाली	**गायन्ति**	गाते हैं
एतां	इन	**पितरौ**	माता-पिता (देवकी-वसुदेव) ने
कृष्ण	श्रीकृष्णकी	**अन्वविन्देतां**	अनुभव
उदार	उदार	**न**	नहीं किया ॥४७॥
अर्भक ईहितं	बाल-लीलाको		
अद्य अपि	आज भी		

श्रीशुक उवाच

द्रोणो वसूनां प्रवरो धरया सह भार्यया ।
करिष्यमाण आदेशान् ब्रह्मणस्तमुवाच ह ॥४८॥

द्रोणः वसूनां प्रवरः धरया सह भार्यया करिष्यमाण आदेशान् ब्रह्मणः तं उवाच ह ॥४८॥

वसूनां प्रवरः	वसुओंमें श्रेष्ठ	**आदेशान्**	आदेशका
द्रोणः	द्रोणने	**करिष्यमाण**	पालन करते हुए
धरया	धरा नामक	**तं ह**	उनसे निश्चयपूर्वक
भार्यया सह	पत्नीके साथ	**उवाच**	कहा ॥४८॥
ब्रह्मणः	ब्रह्माके		

जातयोर्नौ महादेवे भुवि विश्वेश्वरे हरौ ।
भक्तिः स्यात् परमा लोके ययाञ्जो दुर्गतिं तरेत् ॥४६॥

जातयोः नौः महादेवे भुवि विश्वेश्वरे हरौ भक्तिः स्यात् परमा लोके यया अञ्जः दुर्गतिं तरेत् ॥४६॥

नौः	हम दोनोंके	**स्यात्**	होवे
भुवि	पृथ्वीपर	**यया**	जिससे (जीव)
जातयोः	उत्पन्न होनेपर	**अञ्जः**	सरलतासे
लोके	उस लोकमें	**दुर्गतिं**	दुर्गतिसे
विश्वेश्वरे	विश्वेश्वर	**तरेत्**	पार हो जाता है ॥४६॥
हरौ	श्रीहरिमें		
परमा भक्तिः	परम भक्ति		

अस्त्वित्युक्तः स भगवान् व्रजे द्रोणो महायशाः ।
जज्ञे नन्द इति ख्यातो यशोदा सा धराभवत् ॥५०॥

अस्तु इति उक्तः स भगवान् व्रजे द्रोणः महायशाः जज्ञे नन्द इति ख्यातः यशोदा सा धरा अभवत् ॥५०॥

अस्तु	'अच्छा'	**नन्द इति**	नन्द इस नामसे
इति उक्ते	यह (ब्रह्माके) कहने पर	**ख्यातः**	प्रसिद्ध
		जज्ञे	उत्पन्न हुए
महायशाः	महान् यशस्वी	**सा धरा**	और वह धरा
भगवान् द्रोणः	भगवान् द्रोण	**यशोदा अभवत्**	यशोदा हुई ॥५०॥

ततो भक्तिर्भगवति पुत्रीभूते जनार्दने ।
दम्पत्योर्नितरामासीद् गोपगोपीषु भारत ॥५१॥

ततः भक्तिः भगवति पुत्री भूते जनार्दने दम्पत्योः नितरां आसीत् गोप गोपीषु भारत ॥५१॥

भारत	परीक्षित !	**जनार्दने**	जनार्दनके
ततः भगवति	अतः भगवान	**पुत्री भूते**	पुत्र बननेपर

गोप गोपीषु	गोप-गोपियोंसे	**भक्तिः**	भक्ति
नितरां	बहुत अधिक	**आसीत्**	थी ॥५१॥
दम्पत्योः	इस दम्पतिकी		

कृष्णो ब्रह्मण आदेशं सत्यं कर्तुं व्रजे विभुः ।
सहरामो वसंश्चक्रे तेषां प्रीतिं स्वलीलया ॥५२॥

कृष्णः ब्रह्मण आदेशं सत्यं कर्तुं व्रजे विभुः सहरामः वसन् चक्रे तेषां प्रीतिं स्वलीलया ॥५२॥

ब्रह्मण	ब्रह्माके	**व्रजे वसन्**	व्रजमें रहते हुए
आदेशं	आदेशको	**स्वलीलया**	अपनी लीलासे
सत्यं कर्तुं	सच करनेके लिए	**तेषां प्रीतिं**	उनको प्रसन्न
विभुः कृष्णः	विभु श्रीकृष्ण	**चक्रे**	करने लगे ॥५२॥
सहरामः	बलरामजीके साथ		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे
पूर्वार्धे विश्वरूपदर्शनेऽमोऽध्यायः ॥८॥

अथ नवमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

एकदा गृहदासीषु यशोदा नन्दगेहिनी ।
कर्मान्तरनियुक्तासु निर्ममन्थ स्वयं दधि ॥१॥

एकदा गृहदासीषु यशोदा नन्दगेहिनी कर्मान्तर नियुक्तासु निर्ममन्थ स्वयं दधि ॥१॥

एकदा	एक बार	**नन्दगेहिनी**	नन्द-पत्नी
गृहदासीषु	घरकी दासियोंके	**यशोदा स्वयं**	यशोदा स्वयं
कर्मान्तर	दूसरे कर्ममें	**दधि निर्ममन्थ**	दधि-मन्थन करने
नियुक्तासु	लगाये जानेपर		लगीं ॥१॥

यानि यानीह गीतानि तद्बालचरितानि च ।
दधिनिर्मन्थने काले स्मरन्ती तान्यगायत ॥२॥

यानि यानि इह गीतानि तत् बाल चरितानि च दधि निर्मन्थने काले स्मरन्ती तान् अगायत ॥२॥

इह यानि यानि	यहां जिन-जिन	**तान् च**	उन सबको
तत् बाल	उनके बालकका	**दधि निर्मन्थने**	दधि-मन्थनके
चरितानि	चरित	**काले स्मरन्ती**	समय स्मरण करके
गीतानि	वर्णन हुआ है	**अगायत**	गा रही थीं ॥२॥

क्षौमं वासः पृथुकटितटे
बिभ्रती सूत्रनद्धं
पुत्रस्नेहस्नुतकुचयुगं
जातकम्पं च सुभ्रूः ।

रज्ज्वाकर्षश्रमभुजचलत्-
कंकणौ कुण्डले च
स्विन्नं वक्त्रं कबरविगल-
न्मालती निर्ममन्थ ॥३॥

क्षौमं वासः पृथु कटि तटे बिभ्रती सूत्रनद्धं पुत्र स्नेह स्नुत कुचयुगं जात कम्पं च सुभ्रूः रज्जु आकर्ष श्रमभुज चलत् कङ्कणौ कुण्डले च स्विन्नं वक्त्रं कबर विगलत् मालती निर्ममन्थ ॥३॥

पृथु	स्थूल	**रज्जु आकर्ष**	रस्सी खींचनेके
कटि तटे	कटि तट (नितम्बों) के ऊपर	**श्रमभुज**	श्रमसे भुजाओंके साथ हिलनेसे
सूत्रनद्धं	कटि-बन्धन (नीवी) बँधा	**कङ्कणौ च**	कंकण और
क्षौमं वासः	रेशमी वस्त्र	**कुण्डले**	कुण्डल
बिभ्रती	धारण किये हुए	**चलत्**	हिल रहे थे,
पुत्र स्नेह	पुत्र स्नेहसे	**वक्त्रं स्विन्नं**	मुखपर पसीना आ गया था
स्नुत	टपकते (दूध) वाले	**कबर**	जूड़ेमें लगे
कुचयुगं	दोनों स्तन	**मालती**	मालती पुष्प
जात कम्पं	हिल रहे थे,	**विगलत्**	गिरते जाते थे
च	तथा वे	**निर्ममन्थ**	(इस प्रकार दही) मन्थन कर रही थीं ॥३॥
सुभ्रूः	सुन्दर भौहों वाली (यशोदाजी)		

तां स्तन्यकाम आसाद्य मथ्नन्तीं जननीं हरिः ।
गृहीत्वा दधिमन्थानं न्यषेधत् प्रीतिमावहन् ॥४॥

तां स्तन्यकाम आसाद्य मथ्नन्तीं जननीं हरिः गृहीत्वा दधि मन्थानं न्यषेधत् प्रीतिं आवहन् ॥४॥

तां	उस	**स्तन्यकाम**	स्तन पातकी इच्छा-से
मथ्नन्तीं	मन्थन करती हुई	**आसाद्य**	समीप आकर
जननीं	माताके		

दधि-मन्थानं	दहीकी मथानी	प्रीतिं आवहन्	प्रसन्न करते हुए
गृहीत्वा	पकड़कर	न्यषेधत्	रोक दिया ॥४॥

तमङ्कमारूढमपाययत् स्तनं
स्नेहस्नुतं सस्मितमीक्षती मुखम् ।
अतृप्तमुत्सृज्य जवेन सा यया-
वुत्सिच्यमाने पयसि त्वधिश्रिते ॥५॥

तं अङ्कं आरूढं अपाययत् स्तनं स्नेह स्नुतं सस्मितं ईक्षती मुखं अतृप्तं उत्सृज्य जवेन सा ययाः उत्सिच्यमाने पयसि तु अधिश्रिते ॥५॥

तं अङ्कं	उन गोदमें	पयसि	दूधके
आरूढं	चढ़े हुएको	उत्सिच्यमाने	उफननेपर
सस्मितं मुखं	मुस्कान युक्त मुख	अतृप्तं	अतृप्त
ईक्षती	देखती हुई	उत्सृज्य	छोड़कर
स्नेह स्नुतं	स्नेहसे टपकता	सा जवेन	वे वेग पूर्वक
स्तनं अपाययत्	स्तन पिलाने लगीं	ययाः	चली गयीं ॥५॥
अधिश्रिते	(इतनेमें अग्निपर) चढ़े हुए		

संजातकोपः स्फुरितारुणाधरं
संदश्य दद्भिर्दधिमन्थभाजनम् ।
भित्त्वा मृषाश्रुर्दृषदश्मना रहो
जघास हैयङ्गवमन्तरं गतः ॥६॥

सञ्जातः कोपः स्फुरितं अरुण अधरं संदश्य दद्भिः दधि मन्थ भाजनं भित्त्वा मृषा अश्रुः दृषत् अश्मना रहः जघास हैयंगवं अन्तरं गतः ॥६॥

कोपः	(श्रीकृष्णको) क्रोध	अरुण अधरं	लाल ओष्ठको
सञ्जातः	आ गया	दद्भिः संदश्य	दांतोंसे दबाकर
स्फुरितं	फड़कते	दधि मन्थ	दही-मन्थनके

भाजनं	मटकेको	अन्तरं	भीतर
अश्मना भित्त्वा	पत्थरसे फोड़कर	रहः गतः	एकान्तमें जाकर
दृषत्	नेत्रोंमें	हैयंगवं	माखन
मृषा अश्रुः	झूठे आंसू लाकर	जघास	खाने लगे ॥६॥

उत्तार्य गोपी सुश्रृतं पयः पुनः
प्रविश्य संदृश्य च दध्यमत्रकम् ।
भग्नं विलोक्य स्वसुतस्य कर्म त-
ज्जहास तं चापि न तत्र पश्यती ॥७॥

उत्तार्य गोपी सुश्रृतं पयः पुनः प्रविश्य संदृश्य च दधि अमत्रकं भग्नं विलोक्य स्वसुतस्य कर्म तत् जहास तं च अपि न तत्र पश्यती ॥७॥

गोपी	गोपी (यशोदाजी)	च	तथा
सुश्रृतं	भली प्रकार	स्वसुतस्य	अपने पुत्रके
पयः	औटा दूध	तत् कर्म	उस कर्मको
उत्तार्य	उतार कर	सन्दृश्य	देखकर
पुनः प्रविश्य	फिर आकर	च तं अपि	और उसे भी
दधि अमत्रकं	दहीके मटकेको	तत्र न पश्यती	वहाँ न देखकर
भग्नं विलोक्य	फूटा देखकर	जहास	हँस पड़ीं ॥७॥

उलूखलाङ्घ्रेरुपरि व्यवस्थितं
मर्काय कामं ददतं शिचि स्थितम् ।
हैयंगवं चौर्यविशंकितेक्षणं
निरीक्ष्य पश्चात् सुतमागमच्छनैः ॥८॥

उलूखल अंघ्रेः उपरि व्यवस्थितं मर्काय कामं ददतं शिचि स्थितं हैयंगवं चौर्य विशङ्कित ईक्षणं निरीक्ष्य पश्चात् सुतं आगमत् शनैः ॥८॥

उलूखल अंघ्रेः	ऊखलके पैर (ऊखलके निचले भाग)	उपरि	ऊपर
		व्यवस्थितं	खड़े होकर
		शिचि स्थितं	छीकेमें रखा

हैयंगवं	मक्खन
मर्काय	बन्दरोंको
कामं ददतं	यथेच्छ देते हुए
चौर्य	चोरीसे
विशङ्कित	चौकन्नी
ईक्षणं	दृष्टिवाले
सुतं निरीक्ष्य	पुत्रको देखकर
शनैः पश्चात्	धीरे-धीरे पीछेसे
आगमत्	समीप आ गयीं ॥८॥

तामात्तयष्टिं प्रसमीक्ष्य सत्वर-
स्ततोऽवरुह्यापससार भीतवत् ।
गोप्यन्वधावन्न यमाप योगिनां
क्षमं प्रवेष्टुं तपसेरितं मनः ॥९॥

तां आत्त यष्टिं प्रसमीक्ष्य सत्वरः ततः अवरुह्य अपससार भीतवत् गोपी अन्वधावत् न यं आप योगिनां क्षमं प्रवेष्टुं तपसा ईरितं मनः ॥९॥

तां यष्टिं	उन्हें छड़ी
आत्त	लिये
प्रसमीक्ष्य	देखकर
ततः अवरुह्य	वहांसे उतर कर
भीतवत्	डरे हुएके समान
अपससार	दूर भागे
गोपी	गोपी (यशोदा उनके)
अन्वधावत्	पीछे दौड़ीं,
तपसा ईरितं	तपस्या प्रेरित
योगिनां मनः	योगियोंका मन
यं प्रवेष्टुं	जिनमें प्रवेशकी
क्षमं न आप	क्षमता नहीं पाता ॥९॥

अन्वञ्चमाना जननी बृहच्चल-
च्छ्रोणीभराक्रान्तगतिः सुमध्यमा ।
जवेन विस्रंसितकेशबन्धन-
च्युतप्रसूनानुगतिः परामृशत् ॥१०॥

अन्वञ्च माना जननी बृहत् चलत् श्रोणी भर आक्रान्त गतिः सुमध्यमा जवेन विस्रंसित केश बन्धनः च्युत प्रसूना अनुगतिः परामृशत् ॥१०॥

अनु जननीं	पीछे आती मैयाको	जवेन	वेगसे (दौड़नेके कारण)
अन्वञ्च माना	छकाते हुए के	केश बन्धनः	केश-बन्धन (जूड़ा)
अनुगतिः	पीछे दौड़ती	विस्रंसित	खुल गया
बृहत् चलत्	भारी हिलते	च्युत प्रसूना	उसमें लगे पुष्प गिर गये, पर
श्रोणी भर	नितम्बोंके भारसे	परामृशत्	पकड़ लिया ॥१०॥
आक्रान्त गतिः	दबी गतिवाली		
सुमध्यमा	सुन्दर कटि यशोदा-जी के		

कृतागसं तं प्ररुदन्तमक्षिणी
कषन्तमञ्जन्मषिणी स्वपाणिना ।
उद्वीक्षमाणं भयविह्वलेक्षणं
हस्ते गृहीत्वा भिषयन्त्यवागुरत् ॥११॥

कृत आगसं तं प्ररुदन्तं अक्षिणी कषन्तं अञ्जन मषिणी स्वपाणिना उद्वीक्षमाणं भय विह्वल ईक्षणं हस्ते गृहीत्वा भिषयन्ति अवागुरत् ॥११॥

तं कृत आगसं	उन अपराध करके	भय विह्वल	भय व्याकुल
प्ररुदन्तं	जोर-जोरसे रोते,	ईक्षणं	नेत्रोंसे
अञ्जन	अञ्जनसे	उद्वीक्षमाणं	देखते हुए
मषिणी	कजरारी	हस्ते	(श्रीकृष्णका)
अक्षिणी	नेत्रोंको	गृहीत्वा	हाथ पकड़कर
स्वपाणिना	अपने हाथोंसे	भिषयन्ति	डराती हुई
कषन्तं	मलते हुए	अवागुरत्	गुर्राने लगी ॥११॥

त्यक्त्वा यष्टिं सुतं भीतं विज्ञायार्भकवत्सला ।
इयेष किल तं बद्धुं दाम्नातद्वीर्यकोविदा ॥१२॥

त्यक्त्वा यष्टिं सुतं भीतं विज्ञाय अर्भक वत्सला इयेष किल तं बद्धुं दाम्ना अतत् वीर्य कोविदा ॥१२॥

सुतं भीतं	पुत्रको डरा हुआ	अर्भक वत्सला	पुत्र-वत्सला (यशोदा) ने
विज्ञाय	जानकर		

यष्टिं त्यक्त्वा	छड़ीको छोड़कर	दाम्ना	रस्सीसे
अतद् वीर्यं	उनके प्रभावको	बद्धुं	बाँधनेकी
कोविदा	न जाननेके कारण	इयेष	इच्छा करने लगी
किल तं	अहो उनको		॥१२॥

न चान्तर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम् ।
पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्च यः ॥१३॥

न च अन्तः न बहिः यस्य न पूर्वं न अपि च अपरं पूर्वं अपरं बहिः च अन्तः जगतः यः जगत् च यः ॥१३॥

यस्य च	जिसका कि	च जगतः	तथा जगतके
न अन्तः	न भीतर है	अन्तः बहिः	भीतर-बाहर
न बहिः	न बाहर,	यः च	जो है और
न पूर्वं	न पूर्वं है	जगत् यः	जो जगद्रूप है
न अपरं	न पश्चिम		॥१३॥
पूर्वं अपरं	पूर्व-पश्चिम		

तं मत्वाऽऽत्मजमव्यक्तं मर्त्यलिङ्गमधोक्षजम् ।
गोपिकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा ॥१४॥

तं मत्वा आत्मजं अव्यक्तं मर्त्य लिंगं अधोक्षजं गोपिका उलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा ॥१४॥

तं मर्त्य लिंगं	उन मनुष्य रूपधारी	यथा	जैसे कोई
अव्यक्तं	अव्यक्त	प्राकृतं	साधारण बालक हो
अधोक्षजं	हृषीकेशको	उलूखले	ऊखलके साथ
आत्मजं	अपना पुत्र	दाम्ना	रस्सीसे
मत्वा	मानकर	गोपिका	गोपी (यशोदा)
		बबन्ध	बाँधने लगीं ॥१४॥

तद् दाम बध्यमानस्य स्वार्भकस्य कृतागसः ।
द्व्यंगुलोनमभूत्तेन संदधेऽन्यच्च गोपिका ॥१५॥

तत् दाम बध्यमानस्य स्व अर्भकस्य कृत आगसः द्वि अंगुल ऊनं अभूत् तेन सन्दधे अन्यत् च गोपिका ॥१५॥

कृत आगसः	अपराध करनेवाले	ऊनं अभूत्	कम हो गयी
स्व अर्भकस्य	अपने बालकको	तेन	इससे
बध्यमानस्य	बाँधते हुए	गोपिका	गोपी (यशोदा) ने
तत् दाम	वह रस्सी	अन्यत् च	दूसरी (रस्सी) भी
द्वि अंगुल	दो अंगुल	सन्दधे	(उससे) जोड़ दी ॥१५॥

यदाऽऽसीत्तदपि न्यूनं तेनान्यदपि संदधे ।
तदपि द्वयंगुलं न्यूनं यद् यदादत्त बन्धनम् ॥१६॥

यत् आसीत् तत् अपि न्यूनं तेन अन्यत् अपि सन्दधे तत् अपि द्वि अंगुलं न्यूनं यत् यत् आदत्त बन्धनम् ॥१६॥

यत्	अब जो	यत् यत्	जो-जो
आसीत्	(जुड़कर) हुई	बन्धनं	बाँधनेको
तत् अपि	वह भी	आदत्त	(रस्सियां) लेती गई
न्यूनं	कम पड़ी	तत् अपि	वह भी
तेन अन्यत्	इसलिए दूसरी	द्वि अंगुलं	दो अंगुल
अपि	भी	न्यूनं	कम हुई ॥१६॥
सन्दधे	जोड़ी (इस प्रकार)		

एवं स्वगेहदामानि यशोदा संदधत्यपि ।
गोपीनां सुस्मयन्तीनां स्मयन्ती विस्मिताभवत् ॥१७॥

एवं स्वगेह दामानि यशोदा सन्दधति अपि गोपीनां सुस्मयन्तीनां स्मयन्ती विस्मिता अभवत् ॥१७॥

एवं	इस प्रकार	सन्दधति	जोड़ते जानेपर
यशोदा	यशोदाजी	अपि	भी (बाँध नहीं सकीं तब)
स्वगेह	अपने घरकी		
दामानि	सब रस्सियोंको	सुस्मयन्तीनां	मुस्कराती हुई

गोपीनां	गोपियोंके साथ	विस्मिता	चकित
स्मयन्ती	मुस्कराकर	अभवत्	हो गयीं ॥१७॥

स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्तकबरस्रजः ।
दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयाऽऽसीत् स्वबन्धने ॥१८॥

स्वमातुः स्विन्न गात्राया विस्रस्त कबर स्रजः दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपया आसीत् स्व बन्धने ॥१८॥

विस्रस्त कबर	खुले जूड़े तथा	दृष्ट्वा	देखकर
स्रजः	माला वाली	कृष्णः	श्रीकृष्णने
स्विन्न	पसीनेसे भीगे	कृपया	कृपा करके
गात्राया	शरीर	स्व	अपने आप
स्वमातुः	अपनी माताका	बन्धने	बन्धनमें
परिश्रमं	परिश्रम	आसीत्	आ गये ॥१८॥

एवं संदर्शिता ह्यंग हरिणा भृत्यवश्यता ।
स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे ॥१९॥

एवं सन्दर्शिता हि अंग हरिणा भृत्य वश्यता स्ववशेन अपि कृष्णेन यस्य इदं स ईश्वरं वशे ॥१९॥

अंग	प्रिय परीक्षित	कृष्णेन	श्रीकृष्ण रूपी
स ईश्वरं	लोकपालोंके साथ	हरिणा	श्रीहरिने
इदं यस्य	यह सम्पूर्ण विश्व	हि एवं	क्योंकि इस प्रकार
वशे	जिनके वशमें है	भृत्य	अपने सेवकोंके
		वश्यता	वशमें रहना
स्ववशेन	परम स्वाधीन	सन्दर्शिता	दिखला दिया
अपि	भी		॥१९॥

नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यंगसंश्रया ।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत् प्राप विमुक्तिदात् ॥२०॥

न इमं विरिञ्चः न भवः न श्रीः अपि अंग संश्रया प्रसादं लेभिरे गोपी यत् तत् प्राप विमुक्तिदात् ॥२०॥

तत्	उन	श्रीः अपि न	लक्ष्मीने भी नहीं
विमुक्तिदात्	मोक्षदातासे	इमं प्रसादं	यह कृपा
न विरिञ्चः	न ब्रह्माजी,	लेभिरे	प्राप्त की
न भवः	न शङ्करजी और	यत् गोपी	जो गोपी (यशोदा)
अंग	अंगमें		ने
संश्रया	रहनेवाली	प्राप	पाया ॥२०॥

नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः ।
ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह ॥२१॥

न अयं सुख आपः भगवान् देहिनां गोपिका सुतः ज्ञानिनां च आत्म भूतानां यथा भक्तिमतां इह ॥२१॥

इह	इस संसारमें	भगवान्	भगवान्
देहिनां	शरीर-धारियोंको	सुख	सुखपूर्वक
च	तथा	आपः न	प्राप्त होनेवाले नहीं
आत्म भूतानां	अपने स्वरूप भूत		हैं
ज्ञानिनां	ज्ञानियोंको	यथा	जैसे (सुखपूर्वक)
अयं	ये	भक्तिमतां	भक्ति करनेवालों
गोपिका सुतः	गोपी-नन्दन		को ॥२१॥

कृष्णस्तु गृहकृत्येषु व्यग्रायां मातरि प्रभुः ।
अद्राक्षीदर्जुनौ पूर्वं गुह्यकौ धनदात्मजौ ॥२२॥

कृष्णः तु गृहकृत्येषु व्यग्रायां मातरि प्रभुः अद्राक्षीत् अर्जुनौ पूर्वं गुह्यकौ धनद आत्मजौ ॥२२॥

मातरि	माताके	आत्मजौ	पुत्र
गृहकृत्येषु	घरके काममें	गुह्यकौ	यक्षोंको
व्यग्रायां	व्यस्त हो जानेपर	अर्जुनौ	अर्जुन वृक्ष हुए
कृष्णः तु	श्रीकृष्णने भी	अद्राक्षीत्	देखा ॥२२॥
पूर्वं धनद	पूर्व जन्मके कुबेर		

पुरा नारदशापेन वृक्षतां प्रापितौ मदात् ।
नलकूबरमणिग्रीवाविति ख्यातौ श्रियान्वितौ ॥२३॥

पुरा नारद शापेन वृक्षतां प्रापितौ मदात् नल कूबर मणिग्रीवाः इति ख्यातौ श्रिया अन्वितौ ॥२३॥

नल कूबर	नल कूबर,	**नारद**	देवर्षि नारदके
मणिग्रीवाः	मणिग्रीव	**शापेन**	शापसे
इति ख्यातौ	इस नामसे प्रसिद्ध	**पुरा**	पहिले जन्ममें
श्रिया अन्वितौ	लक्ष्मीवान् होनेसे	**वृक्षतां**	वृक्ष बना
मदात्	घमण्डके कारण	**प्रापितौ**	दिये गये ॥२३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे गोपीप्रसादो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

अथ दशमोऽध्यायः

राजोवाच

कथ्यतां भगवन्नेतत्तयोः शापस्य कारणम् ।
यत्तद् विगर्हितं कर्म येन वा देवर्षेस्तमः ॥१॥

कथ्यतां भगवन् एतत् तयोः शापस्य कारणं यत् तत् विगर्हितं कर्म येन वा देवर्षेः तमः ॥१॥

भगवन्	भगवन् !	**यत् तत्**	जो उनका
एतत् तयोः	यह उनको	**विगर्हितं कर्म**	निन्दित कर्म था
शापस्य	शाप मिलनेका	**वा येन**	अथवा जिस कारण
कारणं	कारण	**देवर्षेः**	देवर्षिको
कथ्यतां	कहिए	**तमः**	क्रोध आया ॥१॥

श्रीशुक उवाच

रुद्रस्यानुचरौ भूत्वा सुदृप्तौ धनदात्मजौ ।
कैलासोपवने रम्ये मन्दाकिन्यां मदोत्कटौ ॥२॥

रुद्रस्य अनुचरौ भूत्वा सुदृप्तौ धनद आत्मजौ कैलास उपवने रम्ये मन्दाकिन्यां मद उत्कटौ ॥२॥

धनदस्य	धनाधीश कुबेरके	**रम्ये कैलास**	रमणीय कैलासके
आत्मजौ	इन दोनों पुत्रोंको	**उपवने**	उपवनमें
रुद्रस्य अनुचरौ	रुद्रका सेवक	**मन्दाकिन्यां**	मन्दाकिनी (गंगा) में
भूत्वा	होकर	**मद उत्कटौ**	मदोन्मत्त होकर
सुदृप्तौ	बहुत गर्व हो गया,		॥२॥

वारुणीं मदिरां पीत्वा मदाघूर्णितलोचनौ ।
स्त्रीजनैरनुगायद्भिश्चेरतुः पुष्पिते वने ॥३॥

वारुणीं मदिरां पीत्वा मदाघूर्णित लोचनौ स्त्रीजनैः अनु गायत् भिः चेरतुः पुष्पिते वने ॥३॥

वारुणीं मदिरां	ताड़ी	गायत् भिः	गाती चलती
पीत्वा	पीकर	स्त्रीजनैः	स्त्रियोंके साथ
मदाघूर्णित	नशेंसे घूमते	पुष्पिते वने	पुष्पित वनमें
लोचनौ	नेत्रोंवाले	चेरतुः	घूमते रहे ॥३॥
अनु	पीछे-पीछे		

अन्तः प्रविश्य गंगायामम्भोजवनराजिनि ।
चिक्रीडतुर्युवतिभिर्गजाविव करेणुभिः ॥४॥

अन्तः प्रविश्य गंगायां अम्भोजवन राजिनि चिक्रीडतुः युवतिभिः गजाः इव करेणुभिः ॥४॥

अम्भोजवन	कमलवनसे	करेणुभिः	हथिनियोंके साथ
राजिनि	सुशोभिता	गजाः इव	हाथीके समान
गंगायां	गंगामें	चिक्रीडतुः	क्रीड़ा करने लगे ॥४॥
अन्तः प्रविश्य	भीतर घुसकर		
युवतिभिः	युवतियोंके साथ		

यदृच्छया च देवर्षिर्भगवांस्तत्र कौरव ।
अपश्यन्नारदो देवौ क्षीबाणौ समबुध्यत ॥५॥

यदृच्छया च देवर्षिः भगवान् तत्र कौरव अपश्यत् नारदः देवौ क्षीबाणौ समबुध्यत ॥५॥

कौरव	कुरु-नन्दन !	देवौ	इन दोनों यक्षोंको
यदृच्छया च	दैवयोगसे ही	अपश्यत्	देखकर
भगवान्	भगवान	क्षीबाणौ	मदोन्मत्त
देवर्षिः नारदः	देवर्षि नारद	समबुध्यत	जान लिया ॥५॥
तत्र	वहां (आ गये और)		

तं दृष्ट्वा व्रीडिता देव्यो विवस्त्राः शापशंकिताः ।
वासांसि पर्यधुः शीघ्रं विवस्त्रौ नैव गुह्यकौ ॥६॥

तं दृष्ट्वा व्रीडिता देव्यः विवस्त्राः शाप शङ्किताः वासांसि पर्यधुः शीघ्रं विवस्त्रौ न एव गुह्यकौ ॥६॥

तं दृष्ट्वा	उनको देखकर	वासांसि	वस्त्र
शाप	शाप (मिलने) की	पर्यधुः	पहिन लिए, किन्तु
शङ्किताः	आशङ्कासे	विवस्त्रौ	वस्त्रहीन
विवस्त्राः	वस्त्रहीना	गुह्यकौ	दोनों यक्षोंने
देव्यः	देवियोंने	न एव	नहीं ही (पहिने)
व्रीडिता	लज्जित होकर		॥६॥
शीघ्रं	शीघ्र		

तौ दृष्ट्वा मदिरामत्तौ श्रीमदान्धौ सुरात्मजौ ।
तयोरनुग्रहार्थाय शापं दास्यन्निदं जगौ ॥७॥

तौ दृष्ट्वा मदिरा मत्तौ श्रीमद अन्धौ सुर आत्मजौ तयोः अनुग्रह अर्थाय शापं दास्यन् इदं जगौ ॥७॥

तौ सुर	उन देव	दृष्ट्वा	देखकर
आत्मजौ	पुत्रोंको	तयोः अनुग्रह	उनपर कृपा
मदिरा मत्तौ	शराब पीकर उन्मत्त तथा	अर्थाय	करनेके लिए
		शापं दास्यन्	शाप देते हुए
श्रीमद	लक्ष्मीके गर्वसे	इदं जगौ	यह बोले ॥७॥
अन्धौ	अन्धे हुए		

नारद उवाच

न ह्यन्यो जुषतो जोष्यान् बुद्धिभ्रंशो रजोगुणः ।
श्रीमदादाभिजात्यादिर्यत्र स्त्री द्यूतमासवः ॥८॥

न हि अन्यः जुषतः जोष्यान् बुद्धिभ्रंशः रजोगुणः श्रीमदात् आभिजात्य आदिः यत्र स्त्री द्यूतं आसवः ॥८॥

जोष्यान्	प्रिय विषयोंका	अन्यः	छोड़कर दूसरा
जुषतः	सेवन करते हुए	आभिजात्य	उच्चकुलमें उत्पन्न होना
श्रीमदात्	ऐश्वर्यमदको		

आदि	आदि	हि यत्र	क्योंकि जहां
बुद्धिभ्रंशः	(मद) बुद्धि भ्रष्ट करनेवाले	स्त्री द्यूतं	स्त्रियां, जुआ,
रजोगुणः	रजोगुणके कार्य	आसवः	शराब (सेवन) रहता है ॥८॥
न	नहीं होते		

हन्यन्ते पशवो यत्र निर्दयैरजितात्मभिः ।
मन्यमानैरिमं देहमजरामृत्यु नश्वरम् ॥९॥

हन्यन्ते पशवः यत्र निर्दयैः अजित आत्मभिः मन्यमानैः इमं देहं अजर अमृत्यु नश्वरम् ॥९॥

यत्र	जहां (ऐश्वर्य मदमें)	देहं	शरीरको
निर्दयैः	निर्दय	अजर अमृत्यु	अजर-अमर
अजित	अजित	मन्यमानैः	मानते हुए
आत्मभिः	इन्द्रियों द्वारा	पशवः हन्यन्ते	पशु मारे जाते हैं ॥९॥
इमं नश्वरं	इस नश्वर		

देवसंज्ञितमप्यन्ते कृमिविड्भस्मसंज्ञितम् ।
भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥१०॥

देव संज्ञितं अपि अन्ते कृमिविट् भस्म संज्ञितं भूतध्रुक् तत् कृते स्वार्थं किं वेद निरयः यतः ॥१०॥

देव	देव (नरदेव, भूदेव)	निरयः	नरक होता है
संज्ञितं	कहलानेवाले	तत् कृते	उसके लिये
अपि अन्ते	भी अन्तमें	भूतध्रुक्	प्राणियोंसे द्रोह करने वाला
कृमिविट्	कीड़े, विष्ठा या		
भस्म	भस्म ही	किं	क्या (अपना वास्तविक)
संज्ञितं	कहलाते हैं,	स्वार्थं वेद	स्वार्थ जानता है ॥१०॥
यतः	जिस (शरीरके कारण)		

देहः किमन्नदातुः स्वं निषेक्तुर्मातुरेव च ।
मातुः पितुर्वा बलिनः क्रेतुरग्नेः शुनोऽपि वा ॥११॥

देहः किं अन्नदातुः स्वं निषेक्तुः मातुः एव च मातुः पितुः वा बलिनः क्रेतुः अग्नेः शुनः अपि वा ॥११॥

किं	क्या	**च मातुः पितुः**	या माता-पिताका
अन्नदातुः	अन्नदाताका	**वा बलिनः**	अथवा बलवानका
देहः	यह देह है ?	**क्रेतुः**	खरीदनेवाले का,
एव मातुः	अपनी मातामें	**अग्नेः**	अग्निका,
निषेक्तुः एव	निषेचन (गर्भाधान) करनेवाले का ही	**वा शुनः**	अथवा कुत्ते का
		अपि	भी है ॥११॥

एवं साधारणं देहमव्यक्तप्रभवाप्ययम् ।
को विद्वानात्मसात् कृत्वा हन्ति जन्तूनृतेऽसतः ॥१२॥

एवं साधारणं देहं अव्यक्त प्रभव अप्ययं कः विद्वान् आत्मसात् कृत्वा हन्ति जन्तून् ऋते असतः ॥१२॥

एवं	इस प्रकारके	**आत्मसात्**	आत्मा
साधारणं	साधारण	**कृत्वा**	मानकर
देहं	शरीरको जिसका	**असतः ऋते**	दुष्टोंको छोड़कर
प्रभव अप्ययं	उत्पत्ति और नाश	**कः विद्वान्**	कौन विद्वान
अव्यक्त	अव्यक्तसे होता है (जाना नहीं जाता)	**जन्तून्**	प्राणियोंको
		हन्ति	मारेगा ॥१२॥

असतः श्रीमदान्धस्य दारिद्र्यं परमञ्जनम् ।
आत्मौपम्येन भूतानि दरिद्रः परमीक्षते ॥१३॥

असतः श्रीमद अन्धस्य दारिद्र्यं परम् अञ्जनं आत्म उपम्येन भूतानि दरिद्रः परं ईक्षते ॥१३॥

श्रीमद अन्धस्य	ऐश्वर्य मदान्ध	**दारिद्र्यं**	दरिद्रता
असतः	दुष्टके लिए	**परं अञ्जनं**	श्रेष्ठ अंजन है,

दरिद्रः	दरिद्र	उपमेयेन	समान
परं भूतानि	दूसरे प्राणियोंको	ईक्षते	देखता है ॥१३॥
आत्म	अपने		

यथा कण्टकविद्धांगो जन्तोर्नेच्छति तां व्यथाम् ।
जीवसाम्यं गतो लिंगैर्न तथाविद्धकण्टकः ॥१४॥

यथा कण्टक विद्ध अंगः जन्तुः न इच्छति तां व्यथां जीव साम्यं गतः लिंगैः न तथा अविद्ध कण्टकः ॥१४॥

कण्टक विद्ध	कांटेसे बिंधे	न इच्छति	नहीं चाहता
अंगः यथा	शरीरवाला जैसे	तथा	वैसा
लिंगैः साम्यं	चिह्नोंसे समताकी	अविद्ध कण्टकः	जिसे कांटा नहीं बिंधा हो
जीव गतः	जीवन प्राप्त		
जन्तुः तां	प्राणीको वह	न	वह नहीं होता
व्यथां	पीड़ा		॥१४॥

दरिद्रो निरहंस्तम्भो मुक्तः सर्वमदैरिह ।
कृच्छ्रं यदृच्छयाऽऽप्नोति तद्धि तस्य परं तपः ॥१५॥

दरिद्रः निः अहं स्तम्भः मुक्तः सर्वमदैः इह कृच्छ्रं यदृच्छया आप्नोति तत् हि तस्य परं तपः ॥१५॥

निः अहं	अहंकार एवं	यदृच्छया	भाग्यसे
स्तम्भः	घमण्डहीन	कृच्छ्र	जो कष्ट
दरिद्रः इह	दरिद्र इसी लोकमें	आप्नोति	पाता है
सर्वमदैः	सब गर्वोंसे	तत् हि तस्य	वही उसकी
मुक्तः	मुक्त होता है	परं	महान्
इह	इस लोकमें	तपः	तपस्या है ॥१५॥

नित्यं क्षुत्क्षामदेहस्य दरिद्रस्यान्नकांक्षिणः ।
इन्द्रियाण्यनुशुष्यन्ति हिंसापि विनिवर्तते ॥१६॥

नित्यं क्षुत् क्षाम देहस्य दरिद्रस्य अन्न काङ्क्षिणः इन्द्रियाणि अनुशुष्यन्ति हिंसा अपि विनिवर्तते ॥१६॥

नित्यं क्षुत	सदा भूखसे	इन्द्रियाणि	इन्द्रियां
क्षाम	दुबले पड़े	अनुशुष्यन्ति	धीरे-धीरे सूख
देहस्य	देहवाले		जाती हैं
अन्न	भोजन	हिंसा अपि	हिंसा भी
काङ्क्षिणः	चाहनेवाले	विनिवर्तते	निवृत्त हो जाती
दरिद्रस्य	दरिद्रकी		है ॥१६॥

दरिद्रस्यैव युज्यन्ते साधवः समदर्शिनः ।
सद्भिः क्षिणोति सं तर्षं तत आराद् विशुद्धयति ॥१७॥

दरिद्रस्य एव युज्यन्ते साधवः समदर्शिनः सत्भिः क्षिणोति तं तर्षं तत् आरात् विशुद्ध्यति ॥१७॥

समदर्शिनः	समदर्शी	क्षिणोति	क्षीण कर दी जाती
साधव	सत्पुरुष		है,
दरिद्रस्य एव	दरिद्रसे ही	तत् आरात्	तब शीघ्र
युज्यन्ते	मिलते हैं,	विशुद्ध्यति	पूर्ण शुद्ध हो जाता
सत्भिः तं	सत्पुरुषों द्वारा वह		है ॥१७॥
तर्षं	तृष्णा		

साधूनां समचित्तानां मुकुन्दचरणैषिणाम् ।
उपेक्ष्यैः किं धनस्तम्भैरसद्भिरसदाश्रयैः ॥१८॥

साधूनां समचित्तानां मुकुन्द चरण ईषिणां उपेक्ष्यैः किं धन स्तम्भैः असत् भिः असत् आश्रयैः ॥१८॥

मुकुन्द चरण	मुकुन्द-चरणोंको	असत् आश्रयैः	दुष्टोंके संगी
ईषिणां	चाहनेवाले	धन स्तम्भैः	धन मदमत्त
समचित्तानां	समचित्त	असत् भिः	दुष्टोंसे
साधूनां	सत्पुरुषोंके लिये	किं	क्या प्रयोजन ॥१८॥
उपेक्ष्यैः	उपेक्षणीय		

तदहं मत्तयोर्माध्व्या वारुण्या श्रीमदान्धयोः ।
तमोमदं हरिष्यामि स्त्रैणयोरजितात्मनोः ॥१९॥

तत् अहं मत्तयोः माध्व्या वारुण्या श्रीमत् अन्धयोः तमः मदं हरिष्यामि स्त्रैणयोः अजित आत्मनोः ॥१९॥

तत् अहं	अतः मैं	स्त्रैणयोः	स्त्रीजित्
माध्व्या	मीठी	अजित	अजित
वारुण्या	ताड़ी पीकर	आत्मनोः	ईन्द्रिय इनके
मत्तयोः	मतवाले हुए	तमः मदं	अज्ञान और गर्वको
श्रीमत् अन्धयोः	ऐश्वर्य मदान्ध	हरिष्यामि	हरण करूँगा ॥१९॥

यदिमौ लोकपालस्य पुत्रौ भूत्वा तमःप्लुतौ ।
न विवाससमात्मानं विजानीतः सुदुर्मदौ ॥२०॥

यत् इमौ लोकपालस्य पुत्रौ भूत्वा तमःप्लुतौ न विवाससं आत्मानं विजानीतः सुदुर्मदौ ॥२०॥

यत् इमौ	क्योंकि ये दोनों	तमःप्लुतौ	अज्ञानमें डूबकर
लोकपालस्य	लोकपालके	आत्मानं	अपनेको
पुत्रौ भूत्वा	पुत्र होकर	विवाससं	दिगम्बर
सुदुर्मदौ	अत्यन्त मतवाले होनेसे	न	नहीं
		विजानीतः	जान पाते ॥२०॥

अतोऽर्हतः स्थावरतां स्यातां नैवं यथा पुनः ।
स्मृतिः स्यान्मत्प्रसादेन तत्रापि मदनुग्रहात् ॥२१॥

अतः अर्हतः स्थावरतां स्मातां न एवं यथा पुनः स्मृतिः स्यात् मत् प्रसादेन तत्र अपि मत् अनुग्रहात् ॥२१॥

अतः	अतः	मत् प्रसादेन	मेरी कृपासे
स्थावरतां	स्थावर होने	मत्	मेरी
अर्हतः	योग्य हैं	अनुग्रहात्	अनुग्रहरूपा
यथा पुनः	जिससे फिर	तत्र अपि	वहां भी
एवं न स्मातां	इस प्रकार न हों,	स्मृतिः स्यात्	स्मृति रहे ॥२१॥

वासुदेवस्य सांनिध्यं लब्ध्वा दिव्यशरच्छते ।
वृत्ते स्वर्लोकतां भूयो लब्धभक्ती भविष्यतः ॥२२॥

वासुदेवस्य सान्निध्यं लब्ध्वा दिव्य शरत् शते वृत्ते स्वः लोकतां भूयः लब्ध भक्ती भविष्यतः ॥२२॥

दिव्य	देवताओंके	लब्ध्वा	पाकर
शरत् शते	सौ वर्ष	भूयः स्वः	फिर स्वर्ग
वृत्ते	बीतनेपर	लोकतां	निवास तथा
वासुदेवस्य	भगवान् वासुदेवका	भक्ती लब्ध	भक्तिकी प्राप्ति
सान्निध्यं	सामीप्य	भविष्यतः	होगी ॥२२॥

श्रीशुक उवाच

एवमुक्त्वा स देवर्षिर्गतो नारायणाश्रमम् ।
नलकूबरमणिग्रीवावासतुर्यमलार्जुनौ ॥२३॥

एवं उक्त्वा स देवर्षिः गतः नारायण आश्रमं नलकूबर मणिग्रीवाः आसतुः यमल अर्जुनौ ॥२३॥

स देवर्षिः	वे देवर्षि नारदजी	नलकूबर	(और) नलकूबर एवं
एवं उक्त्वा	ऐसा कहकर	मणिग्रीवाः	मणिग्रीव
नारायण	नारायणके	यमल	सटे हुए
आश्रमं	आश्रम	अर्जुनौ	अर्जुनके दो वृक्ष
गतः	(बद्रीनाथ) चले गये	आसतुः	हो गये ॥२३॥

ऋषेर्भागवतमुख्यस्य सत्यं कर्तुं वचो हरिः ।
जगाम शनकैस्तत्र यत्रास्तां यमलार्जुनौ ॥२४॥

ऋषेः भागवत मुख्यस्य सत्यं कर्तुं वचः हरिः जगाम शनकैः तत्र यत्र आस्तां यमल अर्जुनौ ॥२४॥

भागवत	भगवद्भक्तोंमें	हरिः शनकैः	श्रीकृष्ण धीरे-धीरे
मुख्यस्य	प्रमुख	तत्र जगाम	वहां गये
ऋषेः	देवर्षिकी	यत्र यमल	जहाँ वे सटे
वचः	बातको	अर्जुनौ आस्तां	अर्जुन वृक्ष थे ॥२४॥
सत्यं कर्तुं	सच करनेके लिये		

देवर्षिर्मे प्रियतमो यदिमौ धनदात्मजौ ।
तत्तथा साधयिष्यामि यद् गीतं तन्महात्मना ॥२५॥

देवर्षिः मे प्रियतमः यत् इमौ धनद आत्मजौ तत् तथा साधयिष्यामि यत् गीतं तत् महात्मना ॥२५॥

यत्	(सोचा) क्योंकि	तत् तत्	अतः उस
देवर्षिः	देवर्षि	महात्मना	महात्माने
मे प्रियतमः	मुझे बहुत प्रिय हैं और	यत् गीतं तथा	जो कहा है वैसा
		साधयिष्यामि	पूरा कर दूंगा ॥२५॥
इमौ	ये दोनों		
धनद आत्मजौ	कुबेरके पुत्र हैं,		

इत्यन्तरेणार्जुनयोः कृष्णस्तु यमयोर्ययौ ।
आत्मनिर्वेशमात्रेण तिर्यग्गतमुलूखलम् ॥२६॥

इति अन्तरेण अर्जुनयोः कृष्णः तु यमयोः ययौ आत्मनिर्वेश मात्रेण तिर्यक् गतं उलूखलम् ॥२६॥

इति	यह सोचकर	कृष्णः तु	श्रीकृष्ण तो
मात्रेण	केवल अपने	ययौ	निकल गये
आत्मनिर्वेश	प्रवेश योग्य	उलूखलं	किन्तु ऊखल
यमयोः	दोनों	तिर्यक गतं	तिरछा हो गया (अटक गया) ॥२६॥
अर्जुनयोः	अर्जुनवृक्षोंके		
अन्तरेण	बीचमें-से		

बालेन निष्कर्षयतान्वगुलूखलं तद्
दामोदरेण तरसोत्कलिताङ्घ्रिबन्धौ ।
निष्पेततुः परमविक्रमितातिवेप-
स्कन्धप्रवालविटपौ कृतचण्डशब्दौ ॥२७॥

बालेन निष्कर्षयता अन्वक् उलूखलं तत् दामोदरेण तरसा उत्कलित अङ्घ्रि बन्धौ निष्पेततुः परम विक्रमित अतिवेप स्कन्ध प्रवाल विटपौ कृत चण्ड शब्दौ ॥२७॥

तत्	उस	बालेन	बालक द्वारा
दामोदरेण	पेटमें रस्सी बँधे	अन्वक्	अपने पीछे

उलूखलं	ऊखलको	अङ्घ्रि बन्धौ	जड़ोंका बन्धन
निष्कर्षयता	खींचनेसे	उत्कलित	उखड़ जानेसे
परम विक्रम	बहुत बल लगानेपर	चण्ड शब्दौ	प्रचण्ड शब्द
स्कन्ध प्रवाल	शाखा, पत्ते,	कृत	करते
विटयौ	तनोंमें	तरसा	वेगसे
अतिवेप	अत्यन्त कम्पन हुआ,	निष्पेततुः	गिर पड़े ॥२७॥

तत्र श्रिया परमया ककुभः स्फुरन्तौ
सिद्धावुपेत्य कुजयोरिव जातवेदाः ।
कृष्णं प्रणम्य शिरसाखिललोकनाथं
बद्धाञ्जली विरजसाविदमूचतुः स्म ॥२८॥

तत्र श्रिया परमया ककुभः स्फुरन्तौ सिद्धाः उपेत्य कुजयोः इव जातवेदाः कृष्णं प्रणम्य शिरसा अखिल लोकनाथं बद्धाञ्जली विरजसाः इदं ऊचतुः स्म ॥२८॥

तत्र कुजयोः	उन वृक्षोंमें-से	लोकनाथं	लोकोंके स्वामी
जातवेदाः इव	अग्निके समान	कृष्णं	श्रीकृष्णको
परमया श्रिया	दिव्य कान्तिसे	शिरसा	सिरसे
ककुभः	दिशाओंको	प्रणम्य	प्रणाम करके
स्फुरन्तौ	प्रकाशित करते	विरजसाः	निर्मल होकर
सिद्धाः	दो सिद्ध	बद्धाञ्जली	हाथ जोड़कर
उपेत्य	निकल कर पास आकर	इदं ऊचतुः स्म	यह कहने लगे ॥२८॥
अखिल	समस्त		

यमलार्जुनौ उवाच*

कृष्ण कृष्ण महायोगिंस्त्वमाद्यः पुरुषः परः ।
व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः ॥२९॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् त्वं आद्यः पुरुषः परः व्यक्त अव्यक्तम् इदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः ॥२९॥

कृष्ण	श्रीकृष्ण !	**विश्वं**	विश्वको
महायोगिन्	महायोगी	**ते रूपं**	तुम्हारा स्वरूप
कृष्ण	श्रीकृष्ण !	**ब्राह्मणा विदुः**	ब्रह्मज्ञानी जानते हैं ॥२९॥
इदं व्यक्त	इस व्यक्त और		
अव्यक्तं	अव्यक्त		

त्वमेकः सर्वभूतानां देहास्वात्मेन्द्रियेश्वरः ।
त्वमेव कालो भगवान् विष्णुरव्यय ईश्वरः ॥३०॥

त्वं एकः सर्व भूतानां देहः स्व आत्मा इन्द्रिय ईश्वरः त्वं एव कालः भगवान् विष्णुः अव्यय ईश्वरः ॥३०॥

एकः त्वं	अकेले तुम्ही	**ईश्वरः**	स्वामी हो,
सर्व भूतानां	सम्पूर्ण प्राणियोंके	**त्वं एव**	तुम्ही
देहः	शरीर,	**भगवान् कालः**	भगवान काल
स्व आत्मा	प्राण, आत्मा	**अव्यय ईश्वरः**	अविनाशी ईश्वर
इन्द्रिय	और इन्द्रियोंके	**विष्णुः**	विष्णु हो ॥३०॥

त्वं महान् प्रकृतिः सूक्ष्मा रजः सत्त्वतमोमयी ।
त्वमेव पुरुषोऽध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित् ॥३१॥

त्वं महान् प्रकृतिः सूक्ष्मा रजः सत्त्व तमः मयी त्वं एव पुरुषः अध्यक्षः सर्व क्षेत्र विकारवित् ॥३१॥

त्वं महान्	आप महत् तत्त्व तथा	**त्वं एव सर्व**	आप ही सब
		क्षेत्र	अन्तःकरणोंके
रजः	रजो गुण,	**विकारवित्**	विकारोंके साक्षी
सत्त्व	सत्व गुण	**अध्यक्षः**	अध्यक्ष
तमः मयी	तमोगुण मयी	**पुरुषः**	पुरुष (अन्तर्यामी)
सूक्ष्मा प्रकृतिः	सूक्ष्म प्रकृति हैं,		हैं ॥३१॥

गृह्यमाणैस्त्वमग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर्गुणैः ।
को न्विहार्हति विज्ञातुं प्राक्सिद्धं गुणसंवृतः ॥३२॥

गृह्य माणैः त्वं अग्राह्यः विकारैः प्राकृतैः गुणैः कः नु इह अर्हति विज्ञातुं प्राक सिद्धं गुणसंवृतः ॥३२॥

प्राकृतैः गुणैः	प्रकृतिके गुणोंके	**कः**	कौन है जो
गृह्य माणैः	ग्रहण होनेवाले	**प्राक सिद्धं**	सबसे पूर्व विद्यमान-को
विकारैः	विकारोंसे	**विज्ञातुं अर्हति**	जान सकता हो ॥३२॥
त्वं अग्राह्यः	तुम अग्राह्य हो,		
गुणसंवृतः	गुण (देहादि) युक्त		
इह नु	इस जगतमें भला		

तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ।
आत्मद्योतगुणैश्छन्नमहिम्ने ब्रह्मणे नमः ॥३३॥

तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे आत्मद्योत गुणैः छन्न महिम्ने ब्रह्मणे नमः ॥३३॥

आत्मद्योत	अपने द्वारा ही प्रकाशित	**तस्मै ब्रह्मणे**	उस परम ब्रह्म
गुणैः छन्न	गुणों द्वारा ढकी	**भगवते**	भगवान
महिम्ने	महिमावाले	**वासुदेवाय**	वासुदेव
वेधसे	सबके विधाता	**तुभ्यं नमः**	आपको नमस्कार ॥३३॥

यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरेष्वशरीरिणः ।
तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसंगतैः ॥३४॥

यस्य अवतारा ज्ञायन्ते शरीरेषु अशरीरिणः तैः तैः अतुल्य अतिशयैः वीर्यैः देहिषु असंगतैः ॥३४॥

देहिषु	(सामान्य) शरीर-धारीमें	**वीर्यैः**	पराक्रमोंसे
असंगतैः	(जिनका होना) संगत नहीं है	**अशरीरिणः**	अशरीरी आपका
तैः तैः अतुल्य अतिशयैः	उन-उन अतुलनीय निरतिशय	**शरीरेषु**	शरीर-धारियोंमें
		अवतारा	अवतार
		ज्ञायन्ते	जाने जाते हैं ॥३४॥

स भवान् सर्वलोकस्य भवाय विभवाय च ।
अवतीर्णोंऽशभागेन साम्प्रतं पतिराशिषाम् ॥३५॥

स भवान् सर्व लोकस्य भवाय विभवाय च अवतीर्णः अंश भागेन साम्प्रतं पतिः आशिषाम् ॥३५॥

स भवान्	वही आप	**भवाय च**	रक्षा तथा
आशिषां	सम्पूर्ण कामनाओंके	**विभवाय**	वैभवके लिए
पतिः	स्वामी	**अंश भागेन**	सम्पूर्ण अंशसे
साम्प्रतं	इस समय	**अवतीर्णः**	अवतरित हुए हैं
सर्व लोकस्य	सब लोकोंकी		॥३५॥

नमः परमकल्याण नमः परममङ्गल ।
वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः ॥३६॥

नमः परम कल्याण नमः परम मंगल वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः ॥३६॥

परम	परम	**शान्ताय**	शान्त स्वरूपको
कल्याण	कल्याण स्वरूप	**नमः**	नमस्कार
वासुदेवाय	वासुदेवको	**यदूनां पतये**	यदुपतिको
नमः	नमस्कार	**नमः**	नमस्कार ॥३६॥
परम मंगल	परम मंगल स्वरूप		

अनुजानीहि नौ भूमंस्तवानुचरकिंकरौ ।
दर्शनं नौ भगवत ऋषेरासीदनुग्रहात् ॥३७॥

अनुजानीहि नौ भूमन् तव अनुचर किङ्करौ दर्शनं नौ भगवत ऋषेः आसीत् अनुग्रहात् ॥३७॥

भूमन्	भगवन् !	**नौ**	हम दोनोंको आपका
तव अनुचर	आपके सेवक (रुद्रके)	**दर्शनं**	दर्शन हुआ
किङ्करौ	हम दोनों दास हैं		(अब हमें अपने लोक
भगवतः	भगवान्		जानेकी)
ऋषेः	देवर्षिके	**अनुजा नीहि**	अनुमति दीजिए
अनुग्रहात्	अनुग्रहसे		॥३७॥

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां
हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः ।
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे
दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ॥३८॥

वाणी गुण अनुकथने श्रवणौ कथायां हस्तौ च कर्मसु मनः तव पादयोः नः स्मृत्यां शिरसि तव निवास जगत् प्रणामे दृष्टिः सतां दर्शने अस्तु भवत् तनूनाम् ॥३८॥

नः वाणी	हमारी वाणी	**शिरसि तव**	सिर आपके
तव गुण	आपके गुणोंका	**निवास**	निवास
अनुकथने	बार-बार वर्णन करनेमें	**जगत् प्रणामे**	विश्वको प्रणाम करनेमें
श्रवणौ	कान	**दृष्टिः**	दृष्टि
कथायां	सुननेमें	**भवत् तनूनां**	आपके श्रीविग्रह रूप
च हस्तौ	तथा हाथ	**सतां**	संतोंके
कर्मसु	सेवा कर्ममें,	**दर्शने अस्तु**	दर्शनमें लगी रहे ॥३८॥
पादयोः	चरणोंका		
मनः स्मृत्यां	स्मरण करनेमें		

श्रीशुक उवाच

इत्थं संकीर्तितस्ताभ्यां भगवान् गोकुलेश्वरः ।
दाम्ना चोलूखले बद्धः प्रहसन्नाह गुह्यकौ ॥३९॥

इत्थं संकीर्तितः ताभ्यां भगवान् गोकुलेश्वरः दाम्ना च उलूखले बद्धः प्रहसन् आह गुह्यकौ ॥३९॥

ताभ्यां	उन दोनों द्वारा	**उलूखले**	ऊखलमें
इत्थं	इस प्रकार	**दाम्ना बद्धः च**	रस्सीसे बँधे हुए भी
संकीर्तितः	स्तुति करनेपर	**प्रहसन्**	हँसते हुए
भगवान्	भगवान्	**गुह्यकौ**	उन यक्षोंसे
गोकुलेश्वरः	गोकुलेश्वर	**आह**	बोले ॥३९॥

श्रीभगवानुवाच

ज्ञातं मम पुरैवैतदृषिणा करुणात्मना ।
यच्छ्रीमदान्धयोर्वाग्भिर्विभ्रंशोऽनुग्रहः कृतः ॥४०॥

ज्ञातं मम पुरा एव एतत् ऋषिणा करुण आत्मना यत् श्रीमद् अन्धयोः वाग्भिः विभ्रंशः अनुग्रहः कृतः ॥४०॥

करुण आत्मना	दयालु चित्त	विभ्रंशः	गिराने रूपी
ऋषिणा	देवर्षि नारदने	अनुग्रहः	कृपा
यत् श्रीमद्	जो ऐश्वर्य	कृतः एतत्	की, यह
अन्धयोः	मदान्ध तुम दोनोंको	पुरा एव	पहिले ही
वाग्भिः	अपनी शाप-वाणीसे	मम ज्ञातं	मेरा जाना है ॥४०॥

साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम् ।
दर्शनान्नो भवेद् बन्धः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा ॥४१॥

साधूनां समचित्तानां सुतरां मत् कृत आत्मनां दर्शनात् न भवेत् बन्धः पुंसः अक्ष्णोः सवितुः यथा ॥४१॥

यथा पुंसः	जैसे पुरुषके	मत्	मुझमें
अक्ष्णोः	नेत्र	कृत आत्मनां	चित्त लगाये
सवितुः	सूर्यसे (नहीं जाते वैसे ही)	साधूनां	साधुओंके
		दर्शनात्	दर्शनसे
समचित्तानां	समचित्त,	बन्धः न	बन्धन नहीं
सुतरां	विशेषतः	भवेत्	होता ॥४१॥

तद् गच्छतं मत्परमौ नलकूबर सादनम् ।
सञ्जातो मयि भावो वामीप्सितः परमोऽभवः ॥४२॥

तत् गच्छतं मत् परमौ नलकूबर सादनं सञ्जातः मयि भावः वां ईप्सितः परमः अभवः ॥४२॥

तत् मत्	अतः मेरे	नलकूबर	नल कूबर
परमौ	परायण	सादनं गच्छतं	घर जाओ

वां	तुम दोनोंका	**परमः भावः**	परम प्रेम
ईप्सितः	अभीष्ट	**सञ्जातः**	(तुममें) उत्पन्न हो गया ॥४२॥
अभवः	मोक्षदाता		
मयि	मुझमें		

श्रीशुक उवाच

इत्युक्तौ तौ परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः ।
बद्धोलूखलमामन्त्र्य जग्मतुर्दिशमुत्तराम् ॥४३॥

इति उक्तौ तौ परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः बद्ध उलूखलं आमन्त्र्य जग्मतुः दिशं उत्तराम् ॥४३॥

इति	इस प्रकार	**प्रणम्य**	प्रणाम करके
उक्तौ	कहे जानेपर	**आमन्त्र्य**	अनुमति लेकर
उलूखलं	ऊखलमें	**तौ उत्तरां**	वे दोनों उत्तर
बद्ध	बँधे श्रीकृष्णकी	**दिशं**	दिशामें
परिक्रम्य	परिक्रमा करके	**जग्मतुः**	चले गये ॥४३॥
च पुनः पुनः	तथा बार-बार		

इति श्रीमद्भागवते महापुराण पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे
पूर्वार्धे नारदशापो नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथ एकादशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

गोपा नन्दादयः श्रुत्वा द्रुमयोः पततो रवम् ।
तत्राजग्मुः कुरुश्रेष्ठ निर्घातभयशङ्किताः ॥१॥

गोपा नन्द आदयः श्रुत्वा द्रुमयोः पततः रवं तत्र आजग्मुः कुरुश्रेष्ठ निर्घात भय शङ्किताः ॥१॥

कुरुश्रेष्ठ	कुरुश्रेष्ठ !	**भम शङ्किताः**	भयसे आशंकित
पततः	गिरते हुए	**नन्द आदयः**	नन्द आदि
द्रुमयोः	वृक्षोंका	**गोपा तत्र**	गोप वहां
रवं श्रुत्वा	शब्द सुनकर	**आजग्मुः**	आये ॥१॥
निर्घात	वज्रपातके		

भूम्यां निपतितौ तत्र ददृशुर्यमलार्जुनौ ।
बभ्रमुस्तदविज्ञाय लक्ष्यं पतनकारणम् ॥२॥

भूम्यां निपतितौ तत्र ददृशुः यमल अर्जुनौ बभ्रमुः तत् अविज्ञाय लक्ष्यं पतन कारणम् ॥२॥

तत्र अर्जुनौ	वहां अर्जुनके	**कारणं**	कारण
यमल	जुड़वां वृक्षोंको	**लक्ष्यं**	(श्रीकृष्ण) सामने ही थे; किन्तु
भूम्यां	पृथ्वीपर	**तत् अविज्ञाय**	उसे न जानकर
निपतितौ	गिरा	**बभ्रमुः**	भ्रममें पड़ गये ॥२॥
ददृशुः	देखा		
तत् पतन	उनके गिरनेका		

उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं च बालकम् ।
कस्येदं कुत आश्चर्यमुत्पात इति कातराः ॥३॥

उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं च बालकं कस्य इदं कुत आश्चर्यं उत्पात इति कातराः ॥३॥

उलूखलं	ऊखलको	**कुत**	'कहांसे
विकर्षन्तं	खींचते हुए	**आश्चर्यं**	आश्चर्य जनक
दाम्ना बद्धं	रस्सीसे बँधे	**उत्पातं**	यह उत्पात आया'
बालकं च	बालकको भी (देखकर)	**इति**	इस प्रकार
कस्य इदं	'यह किसका काम है'	**कातराः**	(सोचकर) व्याकुल हो गये ॥३॥

बाला ऊचुरनेनेति तिर्यग्गतमुलूखलम् ।
विकर्षता मध्यगेन पुरुषावप्यचक्ष्महि ॥४॥

बाला ऊचुः अनेन इति तिर्यक् गतं उलूखलं विकर्षता मध्यगेन पुरुषाः अपि चक्ष्महि ।४॥

बाला इति	बालकोंने यह	**विकर्षता**	खींचते हुए
ऊचुः	कहा—	**अनेन**	इसी (कृष्ण) ने (गिराया है)
तिर्यक् गतं	तिरछे हुए		
उलूखलं	ऊखलको	**पुरुषाः अपि**	दो पुरुषोंको भी
मध्यगेन	(वृक्षोंके) बीचसे निकल कर	**चक्ष्महि**	हमने देखा है ॥४॥

न ते तदुक्तं जगृहुर्न घटेतेति तस्य तत् ।
बालस्योत्पाटनं तर्वोः केचित् संदिग्धचेतसः ॥५॥

न ते तत् उक्तं जगृहुः न घटेत इति तस्य तत् बालस्य उत्पाटनं तर्वोः केचित् सन्दिग्ध चेतसः ॥५॥

तत्	उन (बालकों) की	**तस्य बालस्य**	'इस बालकका
उक्तं	कही बात	**तत् तर्वोः**	इन (भारी) वृक्षों का
ते	उन (गोपों) ने		
न जगृहुः	नहीं माना	**उत्पाटनं**	उखाड़ना

न घटेत	नहीं बन सकता'	चेतसः	मनमें
इति	ऐसा मानकर किन्तु	सन्दिग्ध	सन्देह हो गया ॥५॥
केचित्	कुछ लोगोंके		

उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं स्वमात्मजम् ।
विलोक्य नन्दः प्रहसद्वदनो विमुमोच ह ॥६॥

उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं स्वं आत्मजं विलोक्य नन्दः प्रहसत् वदनः विमुमोच ह ॥६॥

उलूखलं	ऊखलको	नन्दः	नन्दजीने
विकर्षन्तं	खींचते हुए	प्रहसत् वदनः	हँसते मुखसे
दाम्ना बद्धं	रस्सीसे बँधे	विमुमोच ह	झट छुड़ा दिया ॥६॥
स्वं आत्मजं	अपने पुत्रको		
विलोक्य	देखकर		

गोपीभिः स्तोभितोऽनृत्यद् भगवान् बालवत् क्वचित् ।
उद्गायति क्वचिन्मुग्धस्तद्वशो दारुयन्त्रवत् ॥७॥

गोपीभिः स्तोभितः नृत्यत् भगवान् बालवत् क्वचित् उद्गायति क्वचित् मुग्धः तत् वशः दारुयन्त्रवत् ॥७॥

गोपीभिः	गोपियोंके	क्वचित्	कभी
स्तोभितः	फुसलानेपर	उद्गायति	ऊँचे स्वरसे गाते थे,
भगवान्	भगवान	दारुयन्त्रवत्	कठपुतलीके समान
क्वचित्	कभी	तत् वशः	उनके वशमें
बालवत्	बालकके समान	मुग्धः	मोहितसे रहते थे ॥७॥
नृत्यत्	नाचते थे,		

बिभर्ति क्वचिदाज्ञप्तः पीठकोन्मानपादुकम् ।
बाहुक्षेपं च कुरुते स्वानां च प्रीतिमावहन् ॥८॥

बिभर्ति क्वचित् आज्ञप्तः पीठक उन्मान पादुकं बाहुक्षेपं च कुरुते स्वानां च प्रीतिं आवहन् ॥८॥

क्वचित्	कभी
आज्ञप्तः	आज्ञा देनेपर
पीठक उन्मान	पीढ़ा, बाट या
पादुकं	खड़ाऊँ
बिभर्ति	उठाते थे,
च स्वानां	तथा अपनोंको
प्रीतिं	प्रसन्न
आवहन्	करनेके लिए
बाहु क्षेपं च	(मल्लोंके समान) ताल ठोंकना भी
कुरुते	करते थे ॥८॥

दर्शयंस्तद्विदां लोक आत्मनो भृत्यवश्यताम् ।
व्रजस्योवाह वै हर्षं भगवान् बालचेष्टितैः ॥९॥

दर्शयन् तत् विदां लोक आत्मनः भृत्यवश्यतां व्रजस्य उवाह वै हर्षं भगवान् बाल चेष्टितैः ॥९॥

तत्	उनको
विदां	जाननेवालों (ज्ञानियों) को
आत्मनः	अपनी
भृत्यवश्यतां	भक्त-परवशता
वै	निश्चित
दर्शयन्	दिखलाते हुए
बाल चेष्टितैः	बाल-क्रीड़ा द्वारा
भगवान्	भगवान
व्रजस्य	व्रजवासियोंकी
हर्षं	प्रसन्नता
उवाह	सम्पादित करते थे ॥९॥

क्रीणीहि भोः फलानीति श्रुत्वा सत्वरमच्युतः ।
फलार्थी धान्यमादाय ययौ सर्वफलप्रदः ॥१०॥

क्रीणीहि भोः फलानि इति श्रुत्वा सत्वरं अच्युतः फल अर्थी धान्यं आदाय ययौ सर्वफस प्रदः ॥१०॥

भोः फलानि	'अहो कोई फल
क्रीणीहि	खरीद लो'
इति	इस प्रकार
श्रुत्वा सत्वरं	सुनकर झटपट
सर्वफल	समस्त फलोंके
प्रदः	प्रदाता
अच्युतः	अच्युत श्रीकृष्ण
फल अर्थी	फल चाहते हुए
धान्यं आदाय	अनाज लेकर
ययौ	चल पड़े ॥१०॥

फलविक्रयिणी तस्य च्युतधान्यं करद्वयम् ।
फलैरपूरयद् रत्नैः फलभाण्डमपूरि च ॥११॥

फल विक्रयिणी तस्य च्युत धान्यं करद्वयं फलैः अपूरयत् रत्नैः फल भाण्डं अपूरि च ॥११॥

फल विक्रयिणी	फल वेचनेवालीने	**अपूरयत्**	भर दिया
तस्य	उनके	**च**	तथा (भगवानने उसकी)
च्युत धान्यं	अन्न बिखरे		
कर द्वयं	दोनों हाथों (अञ्जलि) को	**फल भाण्डं**	फलोंकी टोकरी
		रत्नैः अपूरि	रत्नोंसे भर दी ॥११॥
फलैः	फलोंसे		

सरित्तीरगतं कृष्णं भग्नार्जुनमथाह्वयत् ।
रामं च रोहिणी देवी क्रीडन्तं बालकैर्भृशम् ॥१२॥

सरित् तीर गतं कृष्णं भग्न अर्जुनं अथ आह्वयत् रामं च रोहिणी देवी क्रीडन्तं बालकैः भृशम् ॥१२॥

भग्न अर्जुनं	अर्जुन वृक्षोंके टूट जानेपर	**क्रीडन्तं**	खेलते हुए
		कृष्णं	श्रीकृष्ण
सरित्	सरिता	**च रामं**	तथा बलरामको
तीर गतं	(यमुना) किनारे जाकर	**अथ**	फिर
		रोहिणी देवी	रोहिणी देवीने
बालकैः	बालकोंके	**आह्वयत्**	बुलाया ॥१२॥
भृशं	साथ देर तक		

नोपेयातां यदाऽऽहूतौ क्रीडासङ्गेन पुत्रकौ ।
यशोदां प्रेषयामास रोहिणी पुत्रवत्सलाम् ॥१३॥

न उपेयातां यदा आहूतौ क्रीडा संगेन पुत्रकौ यशोदां प्रेषयामास रोहिणी पुत्रवत्सलाम् ॥१३॥

क्रीडा संगेन	खेलनेमें आसक्त	**रोहिणी**	रोहिणीजीने
पुत्रकौ	दोनों छोटे बच्चे	**पुत्रवत्सलां**	पुत्र-वत्सला
यदा आहूतौ	जब बुलानेपर	**यशोदां**	यशोदाजीको
उपेयातां न	समीप नहीं आये तब	**प्रेषयामास**	भेजा ॥१३॥

क्रीडन्तं सा सुतं बालैरतिवेलं सहाग्रजम् ।
यशोदाजोहवीत् कृष्णं पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी ॥१४॥

क्रीडन्तं सा सुतं बालैः अतिवेलं सह अग्रजं यशोदा अजोहवीत् कृष्णं पुत्र स्नेह स्नुत स्तनी ॥१४॥

सह अग्रजं	बड़े भाईके साथ एवं	स्नुत	दूध टपकते
		स्तनी	स्तनों वाली
बालैः	बालकोंके संग	सुतं	अपने पुत्र
अतिवेलं	बहुत देरसे	कृष्णं	श्रीकृष्णको
क्रीडन्तं	खेलते हुए	अजोहवीत्	पुकारने लगी ॥१४॥
सा पुत्र स्नेह	वह पुत्र स्नेहसे		

कृष्ण कृष्णारविन्दाक्ष तात एहि स्तनं पिब ।
अलं विहारैः क्षुत्क्षान्तः क्रीडाश्रान्तोऽसि पुत्रक ॥१५॥

कृष्ण कृष्ण अरविन्द अक्ष तात एहि स्तनं पिब अलं विहारैः क्षुत् क्षान्तः क्रीडा श्रान्तः असि पुत्रक ॥१५॥

तात कृष्ण	बेटा कृष्ण !	क्षुत् क्षान्तः	भूखसे दुबले हो गये, हो,
अरविन्द अक्ष	कमल नयन		
पुत्रक कृष्ण	नन्हें बच्चे कृष्ण !	एहि	आओ,
विहारैः अलं	खेलना बन्द करो,	स्तनं पिब	स्तन पान करो ॥१५॥
क्रीडा श्रान्तः	तुम खेलमें थक		
असि	गये हो		

हे रामागच्छ तातशु सानुजः कुलनन्दन ।
प्रातरेव कृताहारस्तद् भवान् भोक्तुमर्हति ॥१६॥

हे राम आगच्छ तात आशु सानुजः कुलनन्दन प्रातः एव कृतः आहारः तत् भवान् भोक्तुं अर्हति ॥१६॥

कुलनन्दन	कुलनन्दन	सानुजः	छोटे भाईके साथ
हे राम	हे बलराम !	आगच्छ	आजाओ
तात आशु	बेटा शीघ्र	प्रातः एव	सवेरे ही (तुमने)

आहारः कृतः	भोजन किया है	भोक्तुं	भोजन करना
तत् भवान्	इसलिए तुमको	अर्हति	चाहिए ॥१६॥

प्रतीक्षते त्वां दाशार्ह भोक्ष्यमाणो व्रजाधिपः ।
एह्यावयोः प्रियं धेहि स्वगृहान् यात बालकाः ॥१७॥

प्रतीक्षते त्वां दाशार्ह भोक्ष्यमाणः व्रज अधिपः एहि आवयोः प्रियं धेहि स्वगृहान् यात बालकाः ॥१७॥

दाशार्ह	हे दाशार्ह	आवयोः	हम दोनोंको
भोक्ष्यमाणः	भोजनको उद्यत	प्रियं धेहि	आनन्द दो,
व्रज अधिपः	व्रजराज	बालकाः	(दूसरे) बालक भी
त्वां	तुम्हारी	स्वगृहान्	अपने घर
प्रतीक्षते	प्रतीक्षा कर रहे हैं	यात	जावें ॥१७॥
एहि	आओ,		

धूलिधूसरिताङ्गस्त्वं पुत्र मज्जनमावह ।
जन्मर्क्षमद्य भवतो विप्रेभ्यो देहि गाः शुचिः ॥१८॥

धूलि धूसरित अंगः त्वं पुत्र मज्जनं आवह जन्मर्क्षं अद्य भवतः विप्रेभ्यः देहि गाः शुचिः ॥१८॥

पुत्र त्वं	पुत्र तुम	जन्मर्क्षं	जन्म-नक्षत्र है
धूलि धूसरित	धूलिसे मलिन	शुचिः	पवित्र होकर
अंगः	शरीर (हो रहे हो)	विप्रेभ्यः	ब्राह्मणोंको
मज्जनं आवह	स्नान करो,	गाः देहि	गोदान करो ॥१८॥
अद्य भवतः	आज तुम्हारा		

पश्य पश्य वयस्यांस्ते मातृमृष्टान् स्वलंकृतान् ।
त्वं च स्नातः कृताहारो बिहरस्व स्वलंकृतः ॥१९॥

पश्य पश्य वयस्यान् ते मातृ मृष्टान् स्वलङ्कृतान् त्वं च स्नातः कृत आहारः विहरस्व स्वलङ्कृतः ॥१९॥

मातृ	माताओं द्वारा	स्वलङ्कृतान्	भली प्रकार
मृष्टान्	स्वच्छ किये गये		आभूषित

ते वयस्यान्	अपने सखाओंको	कृत आहारः	भोजन करनेके
पश्य पश्य	देखो ! देखो !		पश्चात्
त्वं च स्नातः	तुम भी स्नान करके,	स्वलङ्कृतः	भली प्रकार आभूषण पहिनकर
		विहरस्व	खेलना ।।१६।।

इत्थं यशोदा तमशेषशेखरं
मत्वा सुतं स्नेहनिबद्धधीर्नृप ।
हस्ते गृहीत्वा सहरामम्च्युतं
नीत्वा स्ववाटं कृतवत्यथोदयम् ।।२०।।

इत्थं यशोदा तं अशेष शेखरं मत्वा सुतं स्नेह निबद्ध धीः नृप हस्ते गृहीत्वा सहरामं अच्युतं नीत्वा स्ववाटं कृतवति यथा उदयम् ।।२०।।

नृप	राजन् !	सहरामं	बलरामके साथ
इत्थं	इस प्रकार	अच्युतं	श्रीकृष्णका
स्नेह निबद्ध	स्नेहसे आबद्ध	हस्ते गृहीत्वा	हाथ पकड़कर
धीः यशोदा	बुद्धि यशोदा	स्ववाटं नीत्वा	अपने घर लाकर
तं	उन	अथ यथा	फिर जैसे
अशेषशेखरं	सर्व मुकुट मणिको	उदयं	उनका मंगल हो
सुतं मत्वा	अपना पुत्र मानकर	कृतवति	वैसा किया ।।२०।।

गोपवृद्धा महोत्पाताननुभूय बृहद्वने ।
नन्दादयः समागम्य व्रजकार्यममन्त्रयन् ।।२१।।

गोपवृद्धा महा उत्पातान् अनुभूय बृहत् वने नन्द आदयः सम आगम्य व्रज कार्यं अमन्त्रयन् ।।२१।।

बृहत् वने	महावनमें	सम आगम्य	एकत्र होकर
महा उत्पातान्	बड़े उत्पातोंका	व्रज	व्रजवासियोंके
अनुभूय	अनुभव करके	कार्यं	कर्तव्यका
नन्द आदयः	नन्द आदि	अमन्त्रयन्	विचार करने लगे
गोपवृद्धाः	वृद्ध गोपगण		।।२१।।

तत्रोपनन्दनामाऽऽह गोपो ज्ञानवयोऽधिकः ।
देशकालार्थतत्वज्ञः प्रियकृद् रामकृष्णयोः ॥२२॥

तत्र उपनन्द नामा आह गोपः ज्ञानवयः अधिकः देशकाल अर्थ तत्त्वज्ञः प्रियकृत् राम कृष्णयोः ॥२२॥

तत्र राम	वहां बलराम	तत्त्वज्ञः	तत्त्वके ज्ञाता,
कृष्णयोः	श्रीकृष्णका	ज्ञानवयः	ज्ञान तथा आयुमें
प्रियकृत्	प्रिय करनेवाले,	अधिकः	बड़े
देशकाल	देश-काल तथा	उपनन्द नामा	उपनन्द नामक
अर्थ	प्रयोजन	गोपः आह	गोप बोले ॥२२॥

उत्थातव्यमितोऽस्माभिर्गोकुलस्य हितैषिभिः ।
आयान्त्यत्र महोत्पाता बालानां नाशहेतवः ॥२३॥

उत्थातव्यं इतः अस्माभिः गोकुलस्य हितैषिभिः आयान्ति अत्र महा उत्पाता बालानां नाशहेतवः ॥२३॥

बालानां	बालकोंका	हितैषिभिः	हित चाहनेवाले
नाशहेतवः	अनिष्ट करनेवाले	अस्माभिः	हम लोगोंको
महा उत्पाता	बड़े उपद्रव	इतः	यहांसे
अत्र आयान्ति	यहां आते हैं, अतः	उत्थातव्यं	उठ जाना चाहिए ॥२३॥
गोकुलस्य	गोकुलका		

मुक्तः कथञ्चिद् राक्षस्या बालघ्न्या बालको ह्यसौ ।
हरेरनुग्रहान्नूनमनश्चोपरि नापतत् ॥२४॥

मुक्तः कथञ्चित् राक्षस्या बालघ्न्या बालकः हि असौ हरेः अनुग्रहात् नूनं अनः च उपरि न अपतत् ॥२४॥

हि असौ	क्योंकि यह	नूनं हरेः	निश्चय श्रीहरिकी
बालकः	बालक	अनुग्रहात्	कृपासे ही
बालघ्न्या	बाल-हत्यारिणी	अनः च	पकड़ा भी
राक्षस्या	राक्षसीसे	उपरि न	ऊपर नहीं
कथञ्चित्	किसी प्रकार	अपतत्	गिरा ॥२४॥
मुक्तः	छूटा था,		

चक्रवातेन नीतोऽयं दैत्येन विपदं वियत् ।
शिलायां पतितस्तत्र परित्रातः सुरेश्वरैः ॥२५॥

चक्रवातेन नीतः अयं दैत्येन विपदं वियत् शिलायां पतितः तु तत्र परित्रातः सुर ईश्वरैः ॥३५॥

अयं विपदं	इसे बिपत्ति रूप	**पतितः तु**	गिरनेपर भी
चक्रवातेन	बवण्डर बने	**तत्र सुर**	वहां देवताओं
दैत्येन	दैत्य	**ईश्वरैः**	तथा ईश्वरने
वियत् नीतः	आकाशमें ले गया	**परित्रातः**	रक्षा कर ली ॥२५॥
शिलायां	फिर शिलापर		

यन्न म्रियेत द्रुमयोरन्तरं प्राप्य बालकः ।
असावन्यतमो वापि तदप्यच्युतरक्षणम् ॥२६॥

यत् न म्रियेत द्रुमयोः अन्तरं प्राप्य बालकः असाः अन्यतमः वा अपि तत् अपि अच्युत रक्षणम् ॥२६॥

यत् द्रुमयोः	जो वृक्षोंके	**अन्यतमः**	कोई दूसरा
अन्तरं प्राप्य	बीचमें जाकर भी	**अपि**	भी (नहीं मरा)
बालकः न	बालक नहीं	**तत् अपि**	वह भी
म्रियेय	मरा	**अच्युत**	भगवान् द्वारा ही
वा	अथवा	**रक्षणं**	रक्षा हुई ॥२६॥

यावदौत्पातिकोऽरिष्टो व्रजं नाभिभवेदितः ।
तावद् बालानुपादाय यास्यामोऽन्यत्र सानुगाः ॥२७॥

यावत् औत्पातिकः अरिष्टः व्रजं न अभिभवेत् इतः तावत् बालान् उपादाय यास्यामः अन्यत्र स अनुगः ॥२७॥

यावत्	जब तक	**बालान्**	बालकोंको
औत्पातिकः	उत्पात रूप	**उप आदय**	साथ लेकर
अरिष्टः	कोई अरिष्ट	**स अनुगः**	अनुचरोंके साथ
इतः व्रजं	यहां व्रजको	**अन्यत्र**	दूसरे
न अभिभवेत्	न दबाले	**यास्यामः**	स्थानपर हम चले
तावत्	तभी तक		जायँ ॥२७॥

वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम् ।
गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम् ॥२८॥

वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननं गोप गोपी गवां सेव्यं पुण्य अद्रि तृण वीरुधम् ॥२८॥

गोप गोपी	गोप, गोपी,	**वीरुधं**	पौधों युक्त
गवां	गायोंके	**पशव्यं**	पशुओंको हितकर
सेव्यं	सेवन योग्य	**नवकाननं**	नवीन वनवाला
पुण्य अद्रि	पवित्र पर्वत,	**वृन्दावनं नाम**	वृन्दावन नामका
तृण	तृण तथा	**वनं**	वन है ॥२८॥

तत्तत्राद्यैव यास्यामः शकटान् युङ्क्त मा चिरम् ।
गोधनान्यग्रतो यान्तु भवतां यदि रोचते ॥२९॥

तत् तत्र अद्य एव यास्यामः शकटान् युङ्क्त मा चिरं गोधनानि अग्रतः यान्तु भवतां यदि रोचते ॥२९॥

तत्	इसलिए	**युङ्क्त**	जो तो
यदि भवतां	यदि आप लोगोंको	**तत्र अद्य एव**	वहां आज ही
रोचते	पसन्द आवे तो	**यास्यामः**	हम जायँगे
मा चिरं	देर मत करो,	**गोधनानि**	गायें
शकटान्	छकड़े	**अग्रतः यान्तु**	आगे जायें ॥२९॥

तच्छ्रुत्वैकधियो गोपाः साधु साध्विति वादिनः ।
व्रजान् स्वान् स्वान् समायुज्य ययू रूढपरिच्छदाः ॥३०॥

तत् श्रुत्वा एकधियः गोपाः साधु साधु इति वादिनः व्रजान् स्वान् स्वान् सम आयुज्य ययू रूढ परिच्छदाः ॥३०॥

तत्	उस (उपनन्द) की	**इति वादिनः**	ऐसा कहनेवाले
श्रुत्वा	बात सुनकर	**एकधियः**	एक मतवाले
साधु साधु	'बहुत ठीक, बहुत ठीक'	**गोपाः**	गोपोंने
		स्वान् स्वान्	अपने-अपने

व्रजान्	गोधनको	रूढ परिच्छदाः	सामग्री (छकड़ोंपर)
सम आयुज्य	भली प्रकार एकत्र करके		लादकर
		ययू	चल पड़े ॥३०॥

वृद्धान् बालान् स्त्रियो राजन् सर्वोपकरणानि च ।
अनस्स्वारोप्य गोपाला यत्ता आत्तशरासनाः ॥३१॥

वृद्धान् बालान् स्त्रियः राजन् सर्व उपकरणानि च अनः सु आरोप्य गोपाला यत्ता आत्त शरासनाः ॥३१॥

राजन्	राजन् !	आरोप्य	चढ़ाकर
वृद्धान् बालान्	वृद्धों, बालकों,	गोपाला	गोप लोग (स्वयं)
स्त्रियः	स्त्रियों	आत्त	धनुष,
च सर्वान्	और सब	शरासनाः	बाण लेकर
उपकरणानि	सामग्रीको	यत्ता	सावधान (साथ चले) ॥३१॥
अनः सु	छकड़ोंपर		

गोधनानि पुरस्कृत्य शृंगाण्यापूर्य सर्वतः ।
तूर्यघोषेण महता ययुः सहपुरोहिताः ॥३२॥

गोधनानि पुरः कृत्य शृंगाणि आपूर्य सर्वतः तूर्य घोषेण महता ययुः सह पुरोहिताः ॥३२॥

गोधनानि	सब गोधनको	महता	भारी
पुरः कृत्य	आगे करके	तूर्य घोषेण	तुरही नाद करते
सर्वतः	सब ओर	सह पुरोहिताः	पुरोहितोंके साथ
शृंगाणि आपूर्य	नरसिंगे बजाकर	ययुः	चल पड़े ॥३२॥

गोप्यो रूढरथा नूत्नकुचकुङ्कुमकान्तयः ।
कृष्णलीला जगुः प्रीता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः ॥३३॥

गोप्यः रूढरथा नूत्न कुचकुङ्कुम कान्तयः कृष्ण लीला जगुः प्रीता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः ॥३३॥

नूत्न	नवीन
कुङ्कुम	कुंकुम लगे
कुच	पयोधरकी
कान्तयः	शोभावाली
निष्ककण्ठयः	गलेमें हुमेल पहिने
सुवाससः	उत्तम वस्त्रोंवाली
गोप्यः	गोपियां
रूढरथा	रथोंपर बैठी
प्रीता	प्रसन्न होकर
कृष्ण	श्रीकृष्णकी
लीला	लीलाओंका
जगुः	गान कर रही थीं ॥३३॥

तथा यशोदारोहिण्यावेकं शकटमास्थिते ।
रेजतुः कृष्णरामाभ्यां तत्कथाश्रवणोत्सुके ॥३४॥

तथा यशोदा रोहिण्याः एकं शकटं आस्थिते रेजतुः कृष्ण रामाभ्यां तत् कथा श्रवण उत्सुके ॥३४॥

तथा	इसी प्रकार
तत्	उन (अपने पुत्रों) की
कथा श्रवण	कथा सुननेको
उत्सुके	उत्सुक
यशोदा	यशोदा और
रोहिण्यः	रोहिणी
एकं शकटं	एक ही छकड़ेपर
कृष्ण	श्रीकृष्ण और
रामाभ्यां	बलरामके साथ
आस्थिते रेजतुः	बैठी सुशोभित थीं ॥३४॥

वृन्दावनं सम्प्रविश्य सर्वकालसुखावहम् ।
तत्र चक्रुर्व्रजावासं शकटैरर्धचन्द्रवत् ॥३५॥

वृन्दावनं सम्प्रविश्य सर्वकाल सुख आवहं तत्र चक्रुः व्रज आवासं शकटैः अर्धचन्द्रवत् ॥३५॥

सर्वकाल	सभी मौसमोंमें
सुख आवहं	सुखदायक
वृन्दावनं	वृन्दावनमें
सम्प्रविश्य	प्रवेश करके
तत्र शकटैः	वहां छकड़ोंसे
अर्धचन्द्रवत्	अर्धचन्द्रके समान
व्रज	गोधनके
आवासं	निवास योग्य स्थान
चक्रुः	बनाया ॥३५॥

वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनानि च ।
वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृप ॥३६॥

वृन्दावनं गोवर्धनं यमुना पुलिनानि च वीक्ष्य आसीत् उत्तमा प्रीती राम माधवयोः नृप ॥३६॥

नृप	राजन् !	**वीक्ष्य**	देखकर
वृन्दावनं	वृन्दावन,	**राम माधवयोः**	बलराम श्रीकृष्णको
गोवर्धनं	गोवर्धन,	**उत्तमा प्रीती**	बड़ी प्रसन्नता
च यमुना	और यमुनाके	**आसीत्**	हुई ॥३६॥
पुलिनानि	पुलिनोंको		

एवं व्रजौकसां प्रीतिं यच्छन्तौ बालचेष्टितैः ।
कलवाक्यैः स्वकालेन वत्सपालौ बभूवतुः ॥३७॥

एवं व्रज ओकसां प्रीतिं यच्छन्तौ बालचेष्टितैं कलवाक्यैः स्वकालेन वत्सपालौ बभूवतुः ॥३७॥

कलवाक्यैः	मधुर वाणी तथा	**स्वकालेन**	अपने समयपर
बालचेष्टितैः	बाल क्रीडासे	**वत्सपालौ**	(दोनों भाई)
व्रज ओकसां	व्रज-वासियोंको		वत्सपाल
एवं प्रीतिं	इस प्रकार प्रसन्नता	**बभूवतुः**	हो गये ॥३७॥
यच्छन्तौ	देते हुए		

अविदूरे व्रजभुवः सह गोपालदारकैः ।
चारयामासतुर्वत्सान् नानाक्रीडापरिच्छदौ ॥३८॥

अविदूरे व्रजभुवः सह गोपाल दारकैः चारयामासतुः वत्सान् नाना क्रीडा परिच्छदौ ॥३८॥

गोपाल दारकैः	गोप-बालकोंके	**क्रीड परिच्छदौ**	खेल सामग्रीके साथ
सह व्रजभुवः	साथ व्रजभूमिसे	**वत्सान्**	बछड़ोंको
अविदूरे	समीप ही	**चारयामासतुः**	चराने लगे ॥३८॥
नाना	अनेक प्रकारकी		

क्वचिद् वादयतो वेणुं क्षेपणैः क्षिपतः क्वचित् ।
क्वचित् पादैः किङ्किणीभिः क्वचित् कृत्रिम गोवृषैः ॥३९॥

क्वचित् वादयतः वेणुं क्षेपणैः क्षिपतः क्वचित् क्वचित् पादैः किङ्किणीभिः क्वचित् कृतिम गो वृषैः ॥३९॥

क्वचित्	कभी	**पादैः**	पैरोंके
वेणुं वादयतः	वंशी बजाते,	**किङ्किणीभिः**	घुंघरू बजाते,
क्वचित्	कभी	**क्वचित्**	कभी
क्षेपणैः	गुलेलसे	**कृतिम गो**	नकली गाय या
क्षिपतः	ढले फेंकते,	**वृषैः**	बैल बनते ॥३९॥
क्वचित्	कभी		

वृषायमाणौ नर्दन्तौ युयुधाते परस्परम् ।
अनुकृत्य रुतैर्जन्तूंश्चेरतुः प्राकृतौ यथा ॥४०॥

वृषायमाणौ नर्दन्तौ युयुधाते परस्परं अनुकृत्य रुतैः जन्तूः चेरतुः प्राकृतौ यथा ॥४०॥

यथा	जैसे	**युयुधाते**	लड़ते थे या
प्राकृतौ	साधारण बालक हों	**जन्तूः**	प्राणियोंके
वृषायमाणौ	सांड़ोंकी नकल करके	**रुतैः**	शब्दोंका
नर्दन्तौ	गर्जना करते हुए	**अनुकृत्य**	अनुकरण करते हुए
परस्परं	आपसमें	**चेरतुः**	घूमते थे ॥४०॥

कदाचिद् यमुनातीरे वत्सांश्चारयतोः स्वकैः ।
वयस्यैः कृष्णबलयोर्जिघांसुर्दैत्य आगमत् ॥४१॥

कदाचित् यमुनातीरे वत्सान् चारयतः स्वकैः वयस्यैः कृष्ण बलयोः जिघांसुः दैत्य आगमत् ॥४१॥

कदाचित्	किसी समय	**यमुनातीरे**	यमुना-किनारे
स्वकैः	अपने	**वत्सान्**	बछड़े
वयस्यैः	सखाओंके साथ	**चारयतः**	चराते समय

कृष्ण	श्रीकृष्ण और	दैत्य	एक दैत्य
बलयोः	बलरामको	आगमत्	आ गया ॥४१॥
जिघांसुः	मारनेके लिए		

तं वत्सरूपिणं वीक्ष्य वत्सयूथगतं हरिः ।
दर्शयन् बलदेवाय शनैर्मुग्ध इवासदत् ॥४२॥

तं वत्सरूपिणं वीक्ष्य वत्सयूथ गतं हरिः दर्शयन् बलदेवाय शनैः मुग्ध इव असदत् ॥४२॥

तं	उसे	दर्शयन्	दिखलाते हुए
वत्सरूपिणं	बछड़ेके रूपमें	मुग्ध इव	अनजानके समान
वत्सयूथ गतं	बछड़ोंके झुण्डमें मिले	शनैः	धीरे-धीरे
वीक्ष्य हरिः	देखकर श्रीकृष्ण	असदत्	पास पहुँच गये ॥४२॥
बलदेवाय	बलरामजी-को		

गृहीत्वापरपादाभ्यां सहलाङ्गूलमच्युतः ।
भ्रामयित्वा कपित्थाग्रे प्राहिणोद् गतजीवितम् ।
स कपित्थैर्महाकायः पात्यमानैः पपात ह ॥४३॥

गृहीत्वा अपर पादाभ्यां सह लाङ्गूलं अच्युतः भ्रामयित्वा कपित्थ अग्रे प्राहिणोत् गत जीवितं स कपित्थैः महाकायः पात्यमानैः पपात ह ॥४३॥

अच्युतः	श्रीकृष्णने	अग्रे	ऊपर
सह लाङ्गूलं	पूंछके साथ	प्राहिणोत्	पटक दिया
अपर	पिछले	गत जीवितं	निष्प्राण होकर वह
पादाभ्यां	दोनोंपैर	महाकायः	विशाल शरीर
गृहीत्वा	पकड़कर	कपित्थैः	कैथोंको
भ्रामयित्वा	घुमाकर	पात्यमानैः	गिराता हुआ
कपित्थ	कैथेके वृक्षके	पपात ह	गिर ही पड़ा ॥४३॥

तं वीक्ष्य विस्मिता बालाः शशंसुः साधु साध्विति ।
देवाश्च परिसन्तुष्टा बभूवुः पुष्पवर्षिणः ॥४४॥

तं वीक्ष्य विस्मिता बालाः शशंसुः साधु-साधु इति देवाः च परिसन्तुष्टाः बभूवुः पुष्पवर्षिणः ॥४४॥

तं वीक्ष्य	उसे देखकर	**शशंसुः**	प्रशंसा करने लगे
विस्मिता	आश्चर्य चकित	**च देवाः**	और देवता
बालाः	गोप-बालक	**परिसन्तुष्टा**	परम सन्तुष्ट होकर
साधु	'अच्छा, किया,	**पुष्पवर्षिणः**	पुष्प-वर्षा
साधु	अच्छा किया'		करने वाले
इति	इस प्रकार	**बभूवुः**	हो गये ॥४४॥

तौ वत्सपालकौ भूत्वा सर्वलोकैकपालकौ ।
सप्रातराशौ गोवत्सांश्चारयन्तौ विचेरतुः ॥४५॥

तौ वत्सपालकौ भूत्वा सर्वलोक एकपालकौ सप्रातराशौ गोवत्सान् चारयन्तौ विचेरतुः ॥४५॥

सर्वलोक	सब लोकोंके	**सप्रातराशौ**	कलेऊ साथ
एकपालकौ	एकमात्र रक्षक		लेकर
तौ	वे दोनों भाई	**गोवत्सान्**	गौओंके बछड़ोंको
वत्सपालकौ	वत्सपाल	**चारयन्तौ**	चराते हुए
भूत्वा	होकर	**विचेरतुः**	घूमा करते थे ॥४५॥

स्वं स्वं वत्सकुलं सर्वे पाययिष्यन्त एकदा ।
गत्वा जलाशयाभ्याशं पाययित्वा पपुर्जलम् ॥४६॥

स्वं स्वं वत्सकुलं सर्वे पाययिष्यन्त एकदा गत्वा जलाशय अभ्याशं पाययित्वा पपुः जलम् ॥४६॥

सर्वे	सब (बालक)	**पाययिष्यन्त**	जल पिलानेके लिए
त्व स्वं	अपने-अपने	**जलाशय**	जलाशय (सरोवर)
वत्सकुलं	बछड़ोंके समूहको		के
एकदा	एक बार	**अभ्याशं गत्वा**	समीप जाकर

जलं	उन्हें जल	पपुः	(स्वयं जल) पिया
पाययित्वा	पिलाकर		॥४६॥

ते तत्र ददृशुर्बाला महासत्वमवस्थितम् ।
तत्रसुर्वज्रनिर्भिन्नं गिरेः शृंगमिव च्युतम् ॥४७॥

ते तत्र ददृशुः बाला महासत्त्वं अवस्थितं तत्र सुः वज्र निर्भिन्नं गिरेः शृंगं इव च्युतम् ॥४७॥

तत्र	वहां	शृंगं इव	शिखरके समान
ते	उन	महासत्वं	बहुत बड़ा जीव
बाला	गोप बालकोंने	अवस्थितं ददृशुः	बैठा देखा,
वज्र निर्भिन्नं	वज्रसे टूटे हुए	तत्र सुः	(इससे) भयभीत
गिरेः च्युतं	पर्वतसे गिरे		हो गये ॥४७॥

स वै बको नाम महानसुरो वकरूपधृक् ।
आगत्य सहसा कृष्णं तीक्ष्णतुण्डोऽग्रसद् बली ॥४८॥

स वै बकः नाम महान् असुरः बकरूपधृक् आगत्य सहसा कृष्णं तीक्ष्ण तुण्डः अग्रसीत् बली ॥४८॥

वै स बकः	निश्चय वह बक	बली	बलवानने
नाम	नामक	सहसा	अचानक
महान् असुरः	महा असुर	आगत्य	समीप आकर
तीक्ष्ण तुण्डः	तीखी चोंचवाले	कृष्णं	श्रीकृष्णको
बकरूपधृक्	बगुलेका रूपधारी	अग्रसीत्	निगल लिया ॥४८॥

कृष्णं महाबकग्रस्तं दृष्ट्वा रामादयोऽर्भकाः ।
बभूवुरिन्द्रियाणीव विना प्राणं विचेतसः ॥४९॥

कृष्णं महाबक ग्रस्तं दृष्ट्वा राम आदयः अर्भकाः बभूवुः इन्द्रियाणि इव विना प्राणं विचेतसः ॥४९॥

महाबक	विशाल बगुले द्वारा	दृष्ट्वा	देखकर
ग्रस्तं	निगले गये	राम आदयः	बलराम आदि
कृष्णं	श्रीकृष्णको	अर्भकाः	बालक

विना प्राणं	प्राणके बिना	**विचेतसः**	मूर्छित
इन्द्रियाणि इव	इन्द्रियोंके समान	**बभूवुः**	हो गये ॥४९॥

तं तालुमूलं प्रदहन्तमग्निवद्
गोपालसूनुं पितरं जगद्गुरोः ।
चच्छर्द सद्योऽतिरुषाक्षतं बक-
स्तुण्डेन हन्तुं पुनरभ्यपद्यत ॥५०॥

तं तालुमूलं प्रदहन्तं अग्निवत् गोपलसूनूं पितरं जगद्गुरोः चच्छर्द सद्यः अतिरुषा अक्षतं बकः तुण्डेन हन्तुं पुनः अभ्यपद्यत ॥५०॥

जगद्गुरोः	जगद्गुरु ब्रह्माके भी	**अक्षतं**	बिना क्षति पहुँचाये
पितरं तं	पिता उन	**चच्छर्द**	उगल दिया
गोपालसूनूं	गोपाल-नन्दन	**अतिरुषा**	बहुत क्रोधके कारण
अग्निवत्	अग्निके समान	**पुनः**	फिर
तालुमूलं	गले तक तालुको	**तुण्डेन हन्तुं**	चोंचसे मारने
प्रदहन्तं	भस्म करतेको	**अभ्यपद्यत**	उनकी ओर झपटा
सद्यः	तुरन्त		॥५०॥

तमापतन्तं स निगृह्य तुण्डयो-
र्दोर्भ्यां बकं कंससखं सतां पतिः ।
पश्यत्सु बालेषु ददार लीलया
मुदावहो वीरणवद् दिवौकसाम् ॥५१॥

तं आपतन्तं स निगृह्य तुण्डयोः दोर्भ्यां बकं कंस सखं सतां पतिः पश्यत्सु बालेषु ददार लीलया मुद आवहः वीरणवत् दिव ओकसाम् ॥५१॥

तं कंस	उस कंसके	**ओकसां**	देवताओंको
सखं	मित्र	**मुद आवहः**	आनन्द देनेवाले
बकं	बकके	**सतां पतिः**	सत्पुरुषोंके स्वामी
आपतन्तं	समीप पहुँचते ही	**स**	उन श्रीकृष्णने
दिव	स्वर्गीय	**दोर्भ्यां**	हाथोंसे

तुण्डयोः	चोंचको	वीरणवत्	सरकण्डेके समान
निगृह्य	पकड़कर	लीलया	खेलमें
बालेषु	बालकोंके	ददार	चीर डाला ॥५१॥
पश्यत्सु	देखते हुए		

तदा बकारिं सुरलोकवासिनः
समाकिरन् नन्दनमल्लिकादिभिः ।
समीडिरे चानकशङ्खसंस्तवै-
स्तद् वीक्ष्य गोपालसुता विसिस्मिरे ॥५२॥

तदा बकारिं सुरलोक वासिनः सम आकिरन् नन्दन मल्लिका आदिभिः समीडिरे च आनक शंख संस्तवैः तत् वीक्ष्य गोपाल सुता विसिस्मिरे ॥५२॥

तदा सुरलोक	तब देवलोकमें	शंख	शंख आदि बजाकर
वासिनः	रहनेवालोंने	संस्तवैः	स्तोत्रोंसे
बकारिं	बकारि श्रीकृष्णपर	समीडिरे	स्तुति की,
नन्दन	नन्दनवनके	तत् वीक्ष्य	उसे देखकर
मल्लिका	चमेली	गोपाल सुता	गोप-बालक
आदिभिः	आदि पुष्पोंकी	विसिस्मिरे	आश्चर्यमें पड़
सम आकिरन्	खूब वर्षाकी		गये ॥५२॥
च आनक	तथा नगाड़े		

मुक्तं बकास्यादुपलभ्य बालका
रामादयः प्राणमिवेन्द्रियो गणः ।
स्थानागतं तं परिरभ्य निर्वृताः
प्रणीय वत्सान् व्रजमेत्य तज्जगुः ॥५३॥

मुक्तं बक आस्यात् उपलभ्य बालका राम आदयः प्राणं इव इन्द्रियः गणः स्थान आगतं तं परिरभ्य निर्वृताः प्रणीय वत्सान् व्रजं एत्य तत् जगुः ॥५३॥

बक आस्यात्	बगुलेके मुखसे	राम आदयः	बलराम आदि
मुक्तं उपलभ्य	छूटे पाकर	बालका	बालक
इन्द्रियः गणः	इन्द्रिय गणमें	निर्वृताः	आनन्दित हुए
प्राणं इव	प्राणके समान	वत्सान्	फिर बछड़ोंको
स्थान	अपने स्थानपर	प्रणीय	लेकर
आगतं	आये	व्रजं एत्य	व्रजमें आकर
तं	उन (श्रीकृष्णका)	तत्	वह (वृत्तान्त)
परिरभ्य	आलिंगन करके	जगुः	उतलाया ॥५३॥

श्रुत्वा तद् विस्मिता गोपा गोप्यश्चातिप्रियादृताः ।
प्रेत्यागतमिवौत्सुक्यादैक्षन्त तृषितेक्षणाः ॥५४॥

श्रुत्वा तत् विस्मिता गोपा गोप्यः च अति प्रिय आदृताः प्रेत्य आगतं इव औत्सुक्यात् ऐक्षन्त तृषित ईक्षणाः ॥५४॥

तत् श्रुत्वा	उसे सुनकर	आगतं इव	लौटेके समान
गोपा अति	गोप बहुत	आदृताः	आदर पूर्वक
विस्मिता	चकित हुए	तृषित	प्यासे
च गोप्यः	और गोपियां	ईक्षणाः	नेत्रोंसे
अति प्रिय	अत्यन्त प्रियके	औत्सुक्यात्	उत्सुकता पूर्वक
प्रेत्य	मरकर	ऐक्षन्त	देखने लगीं ॥५४॥

अहो बतास्य बालस्य बहवो मृत्यवोऽभवन् ।
अप्यासीद् विप्रियं तेषां कृतं पूर्वं यतो भयम् ॥५५॥

अहो बत अस्य बालस्य बहवः मृत्यवः अभवन् अपि आसीत् विप्रियं तेषां कृतं पूर्वं यतः भयम् ॥५५॥

अहो बत	(कहने लगीं) अहो, आश्चर्य है	यतः भयं कृतं	जिनसे (इसे) भय उपस्थित किया गया
अस्य बालस्य	इस बालककी	तेषां	उन्हींका
बहवः	बहुत बार	विप्रियं	अप्रिय
मृत्यवः	मृत्यु	आसीत्	हुआ ॥५५॥
अभवन्	समीप आयी,		
अपि पूर्वं	परन्तु पहिले		

अथाप्यभिभवन्त्येनं नैव ते घोरदर्शनाः ।
जिघांसयैनमासाद्य नश्यन्त्यग्नौ पतङ्गवत् ॥५६॥

अथ अपि अभिभवन्ति एनं न एव ते घोर दर्शनाः जिघांसया एनं आसाद्य नश्यन्ति अग्नौ पतंगवत् ॥५६॥

अथ अपि ते	फिर भी वे	**एनं**	इसके पास
घोर	भयानक	**आसाद्य**	आकर
दर्शनाः	रूपवाले	**अग्नौ**	अग्निमें
एनं न एव	इसको नहीं ही	**पतंगवत्**	पतिंगेके समान
अभिभवन्ति	दबा पाते हैं (अपितु)	**नश्यन्ति**	नष्ट हो जाते हैं
जिघांसया	मारनेके लिए		॥५६॥

अहो ब्रह्मविदां वाचो नासत्याः सन्ति कर्हिचित् ।
गर्गो यदाह भगवानन्वभावि तथैव तत् ॥५७॥

अहो ब्रह्मविदां वाचः न असत्याः सन्ति कर्हिचित् गर्गः यत् आह भगवान् अन्वभावि तथा एव तत् ॥५७॥

अहो	अहो,	**भगवान् गर्गः**	भगवान् गर्गने
ब्रह्मविदां	ब्रह्मवेत्ताओंकी	**यत् आह**	जो कहा था
वाचः कर्हिचित्	वाणी कभी भी	**तथा**	उसी प्रकारका
असत्याः न	असत्य नहीं	**एव तत्**	ही उसका
सन्ति	होती,	**अन्वभावि**	अनुभव हुआ ॥५७॥

इति नन्दादयो गोपाः कृष्णरामकथां मुदा ।
कुर्वन्तो रममाणाश्च नाविन्दन् भववेदनाम् ॥५८॥

इति नन्द आदयः गोपाः कृष्ण राम कथां मुदा कुर्वन्तः रममाणाः च न अविन्दन् भववेदनाम् ॥५८॥

इति	इस प्रकार	**कथां कुर्वन्तः**	कथा-चर्चा करते
नन्द आदयः	नन्द आदि		हुए
गोपाः मुदा	गोप आनन्दपूर्वक	**च**	तथा (उसीमें)
कृष्ण राम	श्रीकृष्ण-बलरामकी	**रममाणाः**	रमण करते

भववेदनां	सांसारिक कष्टोंको	न	नहीं करते थे ॥५८॥
अविन्दन	अनुभव		

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ।
निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥५९॥

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुः व्रजे निलायनैः सेतुबन्धैः मर्कट उत्प्लवन आदिभिः ॥५९॥

एवं	इस प्रकार	उत्प्लवन	भांति कूदना
कौमारैः	कुमारावस्थाकी	आदिभिः	आदिके द्वारा
विहारैः	क्रीड़ामें	व्रजे	व्रजमें
निलायनैः	आँख मिचौनी,	कौमारं	कुमारावस्थको
सेतुवन्धैः	पुल बाँधना,	जहतुः	छोड़ (बिता)
मर्कट	बन्दरोंकी		दिया ॥५९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे
पूर्वार्धे वत्सबकवधो नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

क्वचिद् वनाशाय मनो दधद् व्रजात्
प्रातः समुत्थाय वयस्यवत्सपान् ।
प्रबोधयञ्छृङ्गरवेण चारुणा
विनिर्गतो वत्सपुरःसरो हरिः ॥१॥

क्वचित् वन आशाय मनः दधत् व्रजात् प्रातः सम उत्थाय वयस्य वत्सपान् प्रबोधयन् शृंगरवेण चारुणा विनिर्गतः वत्स पुरः सरः हरिः ॥१॥

क्वचित्	किसी दिन	वयस्य	सखा
वन आशाय	वन-भोजन करनेका	वत्सान्	वत्सपालोंको
मनः दधत्	विचार करके	प्रबोधयन	जगाते हुए
प्रातः सम	सवेरे जल्दी	वत्स	बछड़ोंको
उत्थाय	उठकर	पुरः सरः	आगे करके
चारुणा	सुन्दर	हरिः	श्रीकृष्ण
शृंगरवेण	शृंगी नादसे	विनिर्गतः	निकल पड़े ॥१॥

तेनैव साकं पृथुकाः सहस्रशः
स्निग्धाः सुशिग्वेत्रविषाणवेणवः ।
स्वान् स्वान् सहस्रोपरिसंख्ययान्वितान्
वत्सान् पुरस्कृत्य विनिर्ययुर्मुदा ॥२॥

तेन एव साकं पृथुकाः सहस्रशः स्निग्धाः सुशिक् वेत्र विषाण वेणवः स्वान् स्वान् सहस्र उपरि संख्यया अन्वितान् वत्सान् पुरस्कृत्य विनिर्ययुः मुदा ॥२॥

तेन एव साकं	उनके साथ ही	सहस्रशः	सहस्रों
स्निग्धाः	उनके प्रेमी	पृथुकाः	बालक

सुशिक् वेत्र	उत्तम छीके, बेंत,	अन्वितान्	वाल
विषाण वेणवः	सींग, वंशी लिए	वत्सान्	बछड़ोंको
स्वान् स्वान्	अपने-अपने	पुरस्कृत्य	आगे करके
सहस्र उपरि	सहस्राधिक	मुदा	प्रसन्नता पूर्वक
संख्यया	संख्या	विनर्ययुः	निकले ॥२॥

कृष्णवत्सैरसंख्यातैर्यूथीकृत्य स्ववत्सकान् ।
चारयन्तोऽर्भलीलाभिर्विजह्रुस्तत्र तत्र ह ॥३॥

कृष्ण वत्सैः असंख्यातैः यूथी कृत्य स्ववत्सकान् चारयन्तः अर्भलीलाभिः विजह्रुः तत्र तत्र ह ॥३॥

कृष्ण	श्रीकृष्णके	चारयन्तः	उन्हें चराते हुए
असंख्यातैः	असंख्य	अर्भलीलाभिः	बालक्रीड़ा करते
वत्सैं	बछड़ोंमें	ह तत्र तत्र	चाहे जहां कहीं
स्ववत्सकान्	अपने बछड़े	विजह्रुः	विचरने लगे ॥३॥
यूथी कृत्य	सम्मिलित करके		

फलप्रवालस्तबकसुमनः पिच्छधातुभिः ।
काचगुञ्जामणिस्वर्णभूषिता अप्यभूषयन् ॥४॥

फल प्रवाल स्तबक सुमनः पिच्छ धातुभिः काच गुञ्जा मणि स्वर्ण भूषिता अपि अभूषयन् ॥४॥

काच गुञ्जा	काच, गुञ्जा,	स्तबक सुमनः	पुष्प गुच्छ, पुष्प,
मणि स्वर्ण	मणि तथा स्वर्णसे	पिच्छ	मयूर पंखादि तथा
भूषिता	आभूषित होनेपर		(गेरू आदि)
अपि	भी (वे)	धातुभिः	धातुओंसे
फल	(छोटे) फलों,	अभूषयन्	(एक दूसरेको)
प्रवाल	किसलय,		सजाने लगे ॥४॥

मृष्णन्तोऽन्योन्यशिक्यादीन् ज्ञातानाराच्च चिक्षिपुः ।
तत्रत्याश्च पुनर्दूराद्धसन्तश्च पुनर्ददुः ॥५॥

मृष्णन्तः अन्योन्य शिक्य आदीन् ज्ञातान् आरात् च चिक्षुपुः तत्रत्याः च पुनः दूरात् हसन्तः च पुनः ददुः ॥५॥

अन्योन्य	एक दूसरेकी	तत्रत्याः च	वहां वाला भी
शिक्य आदीन्	छीका आदि वस्तु	पुनः दूरात्	फिर दूर (फेंकता
मुष्णन्तः	चुरा लेते थे		था)
ज्ञातान्	पता लगनेपर	हसन्तः च	(इस प्रकार) हँसी
आरात् च	समीपके ही		करते हुए ही
	(दूसरेके पास)	पुनः ददुः	फिर दे देते थे ॥५॥
विक्षुपुः	फेंक देता था,		

यदि दूरं गतः कृष्णो वनशोभेक्षणाय तम् ।
अहं पूर्वमहं पूर्वमिति संस्पृश्य रेमिरे ॥६॥

यदि दूरं गतः कृष्णः वनशोभा ईक्षणाय तं अहं पूर्वं अहं पूर्वं इति संस्पृश्य रेमिरे ॥६॥

यदि कृष्णः	यदि श्रीकृष्ण	अहं पूर्वं	मैं पहिले'
वनशोभा	वनकी शोभा	इति	इस प्रकार
ईक्षणाय	देखनेके लिए	संस्पृश्य	उन्हें छूकर
दूरं	(कुछ) दूर	रेमिरे	आनन्द मनाते थे
गतः	चले जाते तो		॥६॥
अहं पूर्वं	'मैं पहिले,		

केचिद् वेणून् वादयन्तो ध्मान्तः शृंगाणि केचन ।
केचिद् भृंगैः प्रगायन्तः कूजन्तः कोकिलैः परे ॥७॥

केचित् वेणून् वादयन्तः ध्मान्तः शृंगाणि केचन केचित् भृंगैः प्रगायन्तः कूजन्तः कोकिलैः परे ॥७॥

केचित्	कोई	केचित् भृंगैः	कोई भौंरोंके साथ
वेणून्	बंशी	प्रगायन्तः	गा रहे थे,
वादयन्तः	बजाते थे,	परे	दूसरे
केचन शृंगाणि	कोई नरसिंहा	कोकिलैः	कोयलके साथ
ध्मान्तः	फूंक रहे थे,	कूजन्तः	कुहक रहे थे ॥७॥

विच्छायाभिः प्रधावन्तो गच्छन्तः साधु हंसकैः ।
बकैरुपविशन्तश्च नृत्यन्तश्च कलापिभिः ॥८॥

विच्छायाभिः प्रधावन्तः गच्छन्तः साधु हंसकैः बकैः उपविशन्तः च नृत्यन्तः च कलापिभिः ॥८॥

विच्छायाभिः	आकाशमें उड़ते पक्षियोंकी छायाके साथ	**साधु गच्छन्तः**	सुन्दर चालसे चलते थे,
प्रधावन्तः	दौड़ते थे,	**बकैः**	बगुलोंके
हंसकैः	हंसोंके साथ उनके समान	**उपविशन्तः**	पास बैठ जाते थे,
		च	तथा
		कलापिभिः	मयूरोंके साथ
		नृत्यन्तः	नाचते थे ॥८॥

विकर्षन्तः कीशबालानारोहन्तश्च तैर्द्रुमान् ।
विकुर्वन्तश्च तैः साकं प्लवन्तश्च पलाशिषु ॥९॥

विकर्षन्तः कीशबालान् आरोहन्तः च तैः द्रुमान् विकुर्वन्तः च तैः साकं प्लवन्तः च पल आशिषु ॥९॥

कीशबालान्	बन्दरोंके बच्चोंको	**च तैः साकं**	एवं उनके साथ
विकर्षन्तः	(पकड़कर) खींचते थे,	**विकुर्वन्तः**	उनको (मुँह बना-कर) चिढ़ाते थे,
च तैः	तथा उनके साथ	**च**	और उनके
द्रुमान्	वृक्षोंपर	**पल आशिषु**	डालोंपर कूदते समय
आरोहन्तः	चढ़ जाते थे,	**प्लवन्तः**	उछलते थे ॥९॥

साकं भेकैर्बिलंघन्तः सरित्प्रस्रवसम्प्लुताः ।
विहसन्तः प्रतिच्छायाः शपन्तश्च प्रतिस्वनान् ॥१०॥

साकं भेकैः बिलङ्घन्तः सरित् प्रस्रव सम्प्लुताः विहसन्तः प्रतिच्छायाः शपन्तः च प्रतिस्वनान् ॥१०॥

भेकैः साकं	मेढ़कोंके साथ	**प्रस्रव**	कछारके (थोड़े) जलमें
विलङ्घन्तः	फुदकते हुए	**सम्प्लुताः**	गोता लगाते थे,
सरित्	नदीके		

प्रतिच्छायाः	(जलमें पड़े) प्रति-विम्बकी	च	तथा
		प्रतिस्वनान्	प्रतिध्वनिको
विहसन्तः	(मुख बनाकर) हँसी उड़ाते थे,	शपन्तः	गाली देते थे ॥१०॥

इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या
दास्यं गतानां परदैवतेन ।
मायाश्रितानां नरदारकेण
साकं विजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः ॥११॥

इत्थं सतां ब्रह्म सुख अनुभूत्या दास्यं गतानां पर देवतेन माया श्रितानां नरदारकेण साकं विजह्रुः कृत पुण्य पुञ्जाः ॥११॥

इत्थं	इस प्रकार	श्रितानां	मोहित लोगोंके लिए
सतां	जो सत्पुरुषोंके लिए	नरदारकेण	मनुष्य बालक रूप हैं
ब्रह्म सुख	ब्रह्म-सुखकी	साकं	उनके साथ
अनुभूत्या	अनुभूति रूप	कृत पुण्य	अनन्त पुण्य
दास्यं	दास्य भावको	पुञ्जाः	करनेवाले ये
गतानां	प्राप्तोंके लिए	विजह्रुः	क्रीड़ा करते हैं ॥११॥
पर देवतेन	पर देवता स्वरूप,		
माया	माया		

यत्पादपांसुर्बहुजन्मकृच्छ्रतो
धृतात्मभिर्योगिभिरप्यलभ्यः ।
स एव यद्दृग्विषयः स्वयं स्थितः
किं वर्ण्यते दिष्टमतो व्रजौकसाम् ॥१२॥

यत् पाद पांसुः बहुजन्म कृच्छ्रतः धृत आत्मभिः योगिभिः अपि अलभ्यः स एव यत् दृक् विषयः स्वयं स्थितः किं वर्ण्यते दिष्टं अतः व्रजौकसाम् ॥१२॥

बहुजन्म	बहुत जन्मों तक	धृत आत्मभिः	इन्द्रियोंको वशमें करनेवाले
कृच्छतः	कष्ट सहकर		

योगिभिः अपि	योगियोंके लिए भी	स्वयं स्थितः	साक्षात् विद्यमान् हैं
यत् पाद पांसुः	जिनकी चरण-रज	अतः व्रजौ कसां	अतः व्रजवासियोंके
अलभ्यः	अगम्य (दुर्लभ) है,	दिष्टं किं	सौभाग्यका क्या
स एव	वही (श्रीकृष्ण)	वर्ण्यते	वर्णन किया जाय
यत् दृक्	जिनके नेत्रोंके		॥१२॥
विषयः	सामने		

अथाघनामाभ्यपतन्महासुर-
स्तेषां सुखक्रीडनवीक्षणाक्षमः ।
नित्यं यदन्तर्निजजीवितेप्सुभिः
पीतामृतैरप्यमरैः प्रतीक्ष्यते ॥१३॥

अथ अघ नाम अभ्यपतत् महाअसुरः तेषां सुखक्रीडन वीक्षण अक्षमः नित्यं यत् अन्तः निज जीवित ईप्सुभिः पीत अमृतैः अपि अमरैः प्रतीक्ष्यते ॥१३॥

तेषां	उन बालकोंको	पीत अमृतैः	अमृत पीकर
सुखक्रीडन	सुखपूर्वक खेलते	अपि	भी
वीक्षण	देखनेमें	अमरैः	अमर हुए देवता
अक्षमः	असमर्थ	नित्यं यत्	सदा जिसकी
अघ नाम	अघ नामक	अन्तः	मृत्युकी
महाअसुरः	महादैत्य	प्रतीक्ष्यते	प्रतीक्षा करते थे
निज जीवित	अपना जीवन	अथ	तब वहां
ईप्सुभिः	चाहनेवाले	अभ्यपतत्	आ पहुँचा ॥१३॥

दृष्ट्वार्भकान् कृष्णमुखानघासुरः
कंसानुशिष्टः स बकीबकानुजः ।
अयं तु मे सोदरनाशकृत्तयो-
र्द्वयोर्ममैनं सबलं हनिष्ये ॥१४॥

दृष्ट्वा अर्भकान् कृष्ण मुखान् अघ असुरः कंस अनुशिष्टः स बकी बक अनुजः अयं तु मे सोदर नाशकृत् तयोः द्वयोः मम एनं सबलं हनिष्ये ॥१४॥

स बकी	वह पूतना और
बक	बकासुरका
अनुजः	छोटा भाई
अघः असुरः	अघासुर
कंस	कंसका
अनुशिष्टः	भेजा था,
अर्भकान्	बालकोंको
दृष्ट्वा	देखकर (उसने सोचा)
अयं तु	यह (कृष्ण) तो
मम द्वयोः	मेरे दोनों
तयोः सोदर	उन सहोदरोंको
नाशकृत्	मारनेवाला है,
मे एनं	मैं इसे
सबलं	साथियोंके साथ
हनिष्ये	मार डूंगा ॥१४॥

एते यदा मत्सुहृदोस्तिलापः
कृतास्तदा नष्टसमा व्रजौकसः ।
प्राणे गते वर्ष्मसु का नु चिन्ता
प्रजासवः प्राणभृतो हि ये ते ॥१५॥

एते यदा मत् सुहृदः अस्ति तिल आपः कृताः तदा नष्ट समा व्रजौकसः प्राणे गते वर्ष्मसु का नु चिन्ता प्रजा असवः प्राणभृतः हि ये ते ॥१५॥

यदा एते	जब ये सब
मत् सुहृदः	मेरे सुहृदोंके लिए
तिल आपः	तिलाञ्जलि
कृताः अस्ति	बना दिये जायँगे
तदा व्रजौकसः	तब व्रजवासी
नष्ट	नष्ट हुएके
समा	समान होंगे
प्राणे गते	प्राण चले जानेपर
नु वर्ष्मसु	भला शरीरकी
का चिन्ता	क्या चिन्ता
हि प्रजा	क्योंकि सन्तान
असवः	प्राण होती है
ये ते	ये सब (व्रजवासियों-के)
प्राणभृतः	प्राण धारक है ॥१५॥

इति व्यवस्याजगरं बृहद् वपुः
स योजनायाममहाद्रिपीवरम् ।
धृत्वाद्भुतं व्यात्तगुहाननं तदा
पथि व्यशेत ग्रसनाशया खलः ॥१६॥

इति व्यवस्य आजगरं बृहत् वपुः स योजन आयाम महा अद्रि पीवरं धृत्वा अद्भुतं व्यात्तगुहा आननं तदा पथि व्यशेत ग्रसन आशया खलः ॥१६॥

तदा खलः	उस समय वह दुष्ट	**अद्भुतं बृहत्**	अद्भुत बहुत बड़े
इति व्यवस्य	ऐसा निश्चय करके	**आजगरं**	अजगरका
ग्रसन	(सबको) निगल जानेके	**वपुः धृत्वा**	शरीर बनाकर
आशया	अभिप्रायसे	**व्यात्तगुहा**	गुफाके समान
योजन आयाम	एक योजन लम्बा	**आननं**	मुख फैलाकर
महा अद्रि	महा पर्वतके समान	**पथि व्यशेत**	मार्गमें लेट गया ॥१६॥
पीवरं	मोटा		

धराधरोष्ठो जलदोत्तरोष्ठो
दर्याननान्तो गिरिशृङ्गदंष्ट्रः ।
ध्वान्तान्तरास्यो विततार्ध्वजिह्वः
परुषानिलश्वासदवेक्षणोष्णः ॥१७॥

धरा अधर ओष्ठः जलद उत्तर ओष्ठः दरि आनन अन्तः गिरिशृंग दंष्ट्रः ध्वान्त अन्तर आस्यः विनत अध्व जिह्वः परुष अनिल श्वास दव ईक्षण ऊष्णः ॥१७॥

धरा अधर	पृथ्वीसे नीचेका	**ध्वान्तः**	अन्धकार था
ओष्ठः	ओष्ठ लगा था	**अध्व जिह्वः**	मार्गके समान जीभ
उत्तर	ऊपरका	**विनत**	फैली थी,
ओष्ठः जलद	ओष्ठ मेघों तक था	**श्वास परुष**	श्वास प्रचण्ड
आनन अन्तः	मुखका भीतरी भाग	**अनिल**	वायुके समान और
दरि	गुफाके समान	**ईक्षण**	नेत्र
गिरिशृंग	पर्वत शिखर जैसे	**दव उष्णः**	दावाग्नि जैसे जलते थे ॥१७॥
दंष्ट्रः	दांत थे		
अन्तर आस्यः	मुखके भीतर		

दृष्ट्वा तं तादृशं सर्वे मत्वा वृन्दावनश्रियम् ।
व्यात्ताजगरतुण्डेन हृयुत्प्रेक्षन्ते स्म लीलया ॥१८॥

दृष्ट्वा तं तादृशं सर्वे मत्वा वृन्दावन श्रियं व्यात्त आजगर तुण्डेन हि उत्प्रेक्षन्ते स्म लीलया ॥१८॥

तं तादृशं	उसे इस रूपमें	लीलया	खेलमें
दृष्ट्वा	देखकर	व्यात्त	फैले
सर्वे वृन्दावन	सब वृन्दावनकी	आजगर तुण्डेन	अजगरके मुखसे
श्रियं	कोई शोभा	उत्पेक्षन्ते स्म	तुलना करने लगे
मत्वा हि	मानकर ही		॥१८॥

अहो मित्राणि गदत सत्त्वकूटं पुरः स्थितम् ।
अस्मत्संग्रसनव्यात्तव्यालतुण्डायते न वा ॥१९॥

अहो मित्राणि गदत सत्त्वकूटं पुरः स्थितं अस्मत् संग्रसन व्यात्त व्याल तुण्ड आयते न वा ॥१९॥

अहो मित्राणि	हे मित्रो !	व्यात्त	फैले
गदत	बतलाओ तो	व्याल	सर्पके
पुरः स्थितं	यह सामने स्थित	तुण्ड	मुखके समान
सत्त्वकूटं	पर्वत शिखर	आयते	लगता है
अस्मत्	हम लोगोंको	न वा	अथवा नहीं ॥१९॥
संग्रसन	निगलनेके लिए		

सत्यमर्ककरारक्तमुत्तराहनुवद् घनम् ।
अधराहनुवद् रोधस्तत्प्रतिच्छाययारुणम् ॥२०॥

सत्यं अर्ककर आरक्तं उत्तर आहनुवत् घनं अधर आहनुवत् रोधः तत् प्रतिच्छायया अरुणम् ॥२०॥

सत्यं	सचमुच	उत्तर	ऊपरी
अर्ककर	सूर्यकी किरणोंसे	आहनुवत्	ओष्ठ जैसा है,
आरक्तं	लाल हुआ	तत्	उसकी
घनं	मेघ मण्डल	प्रतिच्छायया	परछाईंसे

अरुणं	लाल हुआ	आहनुवत्	ओष्ठके समान है ॥२०॥
रोधः	भूभाग		
अधर	नीचेके		

प्रतिस्पर्धेते सृक्किभ्यां सव्यासव्ये नगोदरे ।
तुंगशृंगालयोऽप्येतास्तद्दंष्ट्राभिश्च पश्यत ॥२१॥

प्रतिस्पर्धेते सृक्किभ्यां सव्य आसव्ये नग उदरे तुंग शृंग आलयः अपि एताः तत् दंष्ट्राभिः च पश्यत ॥२१॥

सव्य आसव्ये	दाहिने-बायेंका	तुंग शृंग अपि	ऊँचे शिर भी
नग उदरे	पर्वतका भीतरी भाग	पश्यत तत्	देखो, उसके
सृक्किभ्यां	जबड़ोंकी	दंष्ट्राभिः	दांतोंके समान हैं ॥२१॥
प्रतिस्पर्धेते	होड़ करते हैं,		
आलयः एताः	भीतरके ये		

आस्तृतायाममार्गोऽयं रसनां प्रतिगर्जति ।
एषामन्तर्गतं ध्वान्तमेतदप्यन्तराननम् ॥२२॥

आस्तृतायां अमार्गः अयं रसनां प्रति गर्जति एषां अन्तर्गतं ध्वान्तं एतत् अपि अन्तर आननम् ॥२२॥

अयं	यह	अन्तर्गतं	इसके भीतरका
आस्तृतायां	फैली हुई	ध्वान्तं	अन्धकार
अमार्गः	सड़क	एतत् अपि	यह भी
रसनां प्रति	जीभके साथ	अन्तर आननं	मुखका भीतरी भाग लगता है ॥२२॥
गर्जति	होड़ करती है,		

दावोष्णखरवातोऽयं श्वासवद् भाति पश्यत ।
तद्दग्धसत्वदुर्गन्धोऽप्यन्तरामिषगन्धवत् ॥२३॥

दाव उष्ण खरवातः अयं श्वासवत् भाति पश्यत तत् दग्ध सत्व दुर्गन्धः अपि अन्तर आमिष गन्धवत् ॥२३॥

अयं	यह	तत् दग्ध सत्त्व	उस (दावाग्नि) से जलते प्राणियोंकी
दाव उष्ण	दावाग्निसे गरम		
खरवातः	तीव्र वायु	दुर्गन्धः अपि	दुर्गन्ध भी
पश्यत्	देखो	अन्तर आमिष	भीतरी मांसकी
श्वासवत	उसके श्वासकें	गन्धवत्	गन्धके समान है
भाति	समान लगती है,		॥२३॥

अस्मान् किमत्र ग्रसिता निविष्टा-
नयं तथा चेद् बकवद् विनङ्क्ष्यति ।
क्षणादनेनेति बकार्युशन्मुखं
वीक्ष्योद्धसन्तः करताडनैर्ययुः ॥२४॥

अस्मान् किं अत्र ग्रसिता निविष्टान् अयं तथा चेत् बकवत् विनङ्क्ष्यति क्षणात् अनेन इति बकारि उशत् मुखं वीक्ष्य उद्हसन्तः कर ताडनैः ययुः ॥२४॥

अत्र	इसमें	विनङ्क्ष्यति	नष्ट हो जायगा,
निविष्टान्	भीतर जानेपर	इति	ऐसा कहकर
किं अयं	क्या हम	बकारि	बकारि श्रीकृष्ण
अस्मान्	हम लोगोंको	मुखं उशत्	कमनीय मुखको
ग्रसिता	निगलेगा ?	वीक्ष्य कर	देखकर
अनेन तथा	इसके द्वारा	ताडनैः	ताली लजा
चेत्	यदि ऐसा किया गया	उद्हसन्तः	जोरसे हँसते हुए
		ययुः	(भीतर) चले गये
क्षणात्	एक क्षणमें		॥२४॥
बकवत्	बकासुरके समान		

इत्थं मिथोऽतथ्यमतज्ज्ञभाषितं
श्रुत्वा विचिन्त्येत्यमृषा मृषायते ।
रक्षो विदित्वाखिलभूतहृत्स्थितः
स्वानां निरोद्धुं भगवान् मनो दधे ॥२५॥

इत्थं मिथः अतथ्यं अतज्ञ भाषितं श्रुत्वा विचिन्त्य इति अमृषा मृषायते रक्षः विदित्वा अखिल भूत हृत् स्थितः स्वानां निरोद्धुं भगवान् मनः दधे ॥२५॥

इत्थं	इस प्रकार
मिथः	परस्पर
अतज्ञ	अज्ञानी (बालकों) द्वारा
कतथ्यं	तथ्यसे उलटी
भाषितं श्रुत्वा	बात सुनकर
विचिन्य	सोचा
अमृषा	इन्हें सत्य ही
मृषायते	झूठ लग रहा है
अखिल भूत	फिर सब प्राणियोंके
हृत् स्थितः	हृदयमें स्थित
भगवान्	भगवान्ने
रक्षः	उसे राक्षस
विदित्वा	जानकर
स्वानां	अपने (सखाओं) को
निरोद्धुं	रोकनेको
मनः दधे	विचार किया ॥२५॥

तावत् प्रविष्टास्त्वसुरोदरान्तरं
परं न गीर्णाः शिशवः सवत्साः ।
प्रतीक्षमाणेन बकारिवेशनं
हतस्वकान्तस्मरणेन रक्षसा ॥२६॥

तावत् प्रविष्टाः तु असुर उदर अन्तरं परं न गीर्णाः शिशवः सवत्साः प्रतीक्षमाणेन बकारि वेशनं हतः स्वकान्त स्मरणेन रक्षसा ॥२६॥

तावत् तु	तब तक तो
सवत्साः	बछड़ोंके
शिशवः	साथ बालक
असुर	असुरके
उदर अन्तरं	पेटके भीतर
प्रविष्टाः	प्रवेश कर गये,
परं	किन्तु
स्वकान्त	अपने प्रियजनोंका
हतः	मारा जाना
स्मरणेन	स्मरण करके
बकारि	बकके शत्रुके
वेशनं	प्रवेशकी
प्रतीक्षमाणेन	प्रतीक्षा करते हुए
रक्षसा	राक्षस द्वारा वे
गीर्णाः न	निगले नहीं गये ॥२६॥

तान् वीक्ष्य कृष्णः सकलाभयप्रदो
ह्यनन्यनाथान् स्वकरादवच्युतान् ।

दीनांश्च मृत्योर्जठराग्निघासान्
घृणार्दितो दिष्टकृतेन विस्मितः ॥२७॥

तान् वीक्ष्य कृष्णः सकल अभयप्रदः हि अनन्य नाथान् स्वकरात् अवच्युतान् दीनान् च मृत्योः जठर अग्नि घासान् घृणा अर्दितः दिष्ट कृतेन विस्मितः ॥२७॥

सकल	सबको
अभयप्रदः	अभय देनेवाले
कृष्णः	श्रीकृष्णने
तान् वीक्ष्य	उनको देखकर
घृणा अर्दितः	दया पीड़ित हो गये,
हि	क्योंकि उनका
अनन्य	दूसरा कोई
नाथान्	स्वामी नहीं था,
स्वकरात्	(जैसे वे) अपने ही हाथसे
अवच्युतान्	गिर गये हों
दीनान्	बेचारे
च मृत्योः	फिर मृत्युकी
जठर अग्नि	जठराग्निके
घासान्	ग्रास बन गये थे,
दिष्ट कृतेन	दैवकी इस लीलासे
विस्मितः	चकित रह गये ॥२७॥

कृत्यं किमत्रास्य खलस्य जीवनं
न वा अमीषां च सतां विहिंसनम् ।
द्वयं कथं स्यादिति संविचिन्त्य त-
ज्ज्ञात्वाविशत्तुण्डमशेषदृग्घरिः ॥२८॥

कृत्यं किं अत्र अस्य खलस्य जीवनं न वा अमीषां च सतां विहिंसनं द्वयं कथं स्यात् इति संविचिन्त्य तत् ज्ञात्वा आविशत् तुण्डं अशेष दृक् हरिः ॥२८॥

अत्र	इस सम्बन्धमें
किं कृत्यं	क्या करना चाहिए
अस्य खलस्य	जिससे इस दुष्टका
जीवनं न	जीवन नहीं रहे
वा अमरीषां	तथा इन
सतां	सत्पुरुषोंकी
विहिंसनं च	हत्या भी न हो,
द्वयं कथं	दोनों बातें
स्यात्	कैसे हों ?
इति	यह भली प्रकार

संविचिन्त्य	सोचकर	तुण्डं	उसके मुखमें
अशेष दृक्	सर्वद्रष्टा	आविशत्	प्रवेश कर गये
हरिः	श्रीहरि		॥२८॥
तत् ज्ञात्वा	वह उपाय जानकर		

तदा घनच्छदा देवा भयाद्धाहेति चुक्रुशुः ।
जहृषुर्ये च कंसाद्याः कौणपास्त्वघबान्धवाः ॥२९॥

तदा घनच्छदा देवा भयात् हा हा इति चुक्रुशुः जहृषुः ये च कंस आद्याः कौणपाः तु अघ बान्धवाः ॥२९॥

तदा	उस समय	तु ये च	किन्तु जो भी
घनच्छदा	मेघोंके पीछे छिपे	कंस आद्याः	कंस आदि
देवा भयात्	देवता भयसे	अघ	अघासुरके
हा हा	'हा-हा'	बान्धवाः	सम्बन्धी थे वे
इति	इस प्रकार	कौणपाः जहृषुः	राक्षस आनन्दित
चुक्रुशुः	चिल्लाने लगे		हुए ॥२९॥

तच्छ्रुत्वा भगवान् कृष्णस्त्वव्ययः सार्भवत्सकम् ।
चूर्णीचिकीर्षोरात्मानं तरसा ववृधे गले ॥३०॥

तत् श्रुत्वा भगवान् कृष्णः तु अव्ययः स अर्भ वत्सकम् चूर्णी चिकीर्षोः आत्मानं तरसा ववृधे गले ॥३०॥

तत्	उस (देवताओंके हा-हाकार) को	वत्सकम्	बछड़ों सहित
		आत्मानं	अपनेको
श्रुत्वा	सुनकर	चूर्णी	पीस देनेकी
अव्ययः	अविनाशी	चिकीर्षोः	इच्छावाले (अधा-
भगवान्	भगवान		सुर) के
कृष्णः तु	श्रीकृष्ण तो	गले तरसा	गलेमें बड़े वेगसे
स अर्भ	बालकों और	ववृधे	बढ़ गये ॥३०॥

ततोऽतिकायस्य निरुद्धमार्गिणो
दृयुद्नीर्णदृष्टेर्भ्रमतस्त्वतस्ततः ।

पूर्णोऽन्तरङ्गे पवनो निरुद्धो
मूर्धन् विनिष्पाट्य विनिर्गतो बहिः ॥३१॥

ततः अतिकायस्य निरुद्ध मार्गिणः हि उद्गीर्ण दृष्टेः भ्रमत तु इतः ततः पूर्णः अन्तरंगे पवनः निरुद्धः मूर्धनि विनिष्पाट्य विनिर्गतः बहिः ॥३१॥

ततः	तब उस	अन्तरंगे	भीतरी शरीरमें
अतिकायस्य	विशाल शरीरवाले-का	पूर्णः	भर गया
मार्गिणः	मार्ग (कण्ठ)	पवनः निरुद्धः	वायु रोके जानेसे
निरुद्ध	रुक गया (इससे)	मूर्धनि	सिरको
उद्गीर्ण दृष्टेः	नेत्र निकल आये	विनिष्पाट्य	फोड़कर
इतःततः	इधर-उधर	बहिः	बाहर
भ्रमत तु	छटपटाते हुए भी	विनिर्गतः	निकल गया ॥३१॥

तनैव सर्वेषु बहिर्गतेषु
प्राणेषु वत्सान् सुहृदः परेतान् ।
दृष्टया स्वयोत्थाप्य तदन्वितः पुन-
र्वक्त्रान्मुकुन्दो भगवान् विनिर्ययौ ॥३२॥

तेन एव सर्वेषु बहिः गतेषु प्राणेषु वत्सात् सुहृदः परेतान् दृष्टया स्वया उत्थाप्य तत् अन्वितः पुनः वक्त्रात् मुकुन्दः भगवान् विनिर्ययौ ॥३२॥

तेन	उसी (प्राण) के	वत्सान्	बछड़ों और
एव सर्वेषु	साथ सब	सुहृदः	सखाओंको
प्राणेषु	इन्द्रियोंके	स्वया दृष्ट्या	अपने दृष्टिपातसे
बहिः गतेषु	बाहर निकल जाने-पर	उत्थाप्य	उठा (जीवित) करके
भगवान्	भगवान्	पुनः तत्	फिर उनके
मुकुन्दः	मुकुन्द	अन्वितः	साथ
परेतान्	भरे हुए	वक्त्रात्	मुखसे
		विनिर्ययौ	निकल आये ॥३२॥

पीनाहिभोगोत्थितमद्भुतं महः-
ज्ज्योतिः स्वधाम्ना ज्वलयद् दिशो दश ।
प्रतीक्ष्य खेऽवस्थितमीशनिर्गमं
विवेश तस्मिन् मिषतां दिवौकसाम् ॥३३॥

पीन अहि भोग उत्थितं अद्भुतं महत् ज्योतिः स्वधाम्ना ज्वलयत् दिशः दश प्रतीक्ष्य खे अवस्थितं ईश निर्गमं विवेश तस्मिन् मिषतां दिवौकसाम् ॥३३॥

पीन	उस	**निर्गमं**	निकलनेकी
अहि भोग	मोटे सर्प-देहसे	**खे**	आकाशमें
अद्भुतं महत्	अद्भुत् महान	**अवस्थितं**	स्थित होकर
ज्योतिः	ज्योति	**प्रतीक्ष्य**	प्रतीक्षा करके
उत्थितं	उठ (निकल) कर	**दिवौकसां**	देवताओंके
स्वधाम्ना	अपने प्रकाससे	**मिषतां**	देखते हुए
दश दिशः	दसो दिशाओंको	**तस्मिन्**	उन (श्रीकृष्ण) में
ज्वलयत्	प्रकाशित करती हुई	**विवेश**	प्रविष्ट हो गई
ईश	परमेश्वर श्रीकृष्णके		॥३३॥

ततोऽतिहृष्टाः स्वकृतोऽकृतार्हणं
पुष्पैः सुरा अप्सरसश्च नर्तनैः ।
गीतैः सुगा वाद्यधराश्च वाद्यकैः
स्तवैश्च विप्रा जयनिः स्वनैर्गणाः ॥३४॥

ततः अतिहृष्टाः स्वकृतः अकृत अर्हणं पुष्पैः सुराः अप्सरसः च नर्तनैः गीतैः सुगाः वाद्यधराः च वाद्यकैः स्तवैः च विप्रा जयनिःस्वनैः गणाः ॥३४॥

ततः	तब	**नर्तनैः**	नृत्यसे
अतिहृष्टाः	अत्यन्त प्रसन्न होकर	**सुगाः**	अच्छे गायक (किन्नर)
सुराः	देवता		
पुष्पैः	पुष्प वर्षासे	**गीतैः**	गायनसे
च अप्सरसः	तथा अप्सराएं		

च वाद्यधरा	एवं बजानेवाले (गन्धर्व)
वाद्यकैः	बजाने द्वारा
च विप्रा	और ऋषि लोग
स्तवैः	स्तुतिसे
गणाः	दूसरे देवगण
जय निःस्वनैः	जय ध्वनिसे
स्वकृतैः	अपने कार्योंसे (सबने)
अर्हणं अकृत	पूजन (सत्कार) किया ॥३४॥

तदद्भुतस्तोत्रसुवाद्यगीतिका-
जयादिनैकोत्सवमंगलस्वनान् ।
श्रुत्वा स्वधाम्नोऽन्त्यज आगतोऽचिराद्
दृष्ट्वा महीशस्य जगाम विस्मयम् ॥३५॥

तत् अद्भुत स्तोत्र सुवाद्य गीतिका जय आदि अनेक उत्सव मंगल स्वनान् श्रुत्वा स्वधाम्नः अन्ति अज आगतः अचिरात् दृष्ट्वा महि ईशस्य जगाम विस्मयम् ॥३५॥

तत् अद्भुत	उस सद्भुत
स्तोत्र	स्तोत्र,
सुवाद्य	उत्तम बाजों,
गीतिका जय	गायन, जय,
आदि	आदि
अनेक	अनेक प्रकारके
उत्सव मंगल	मंगलमय उत्सवकी
स्वनान्	ध्वनियोंको
स्वधाम्नः	अपने धामके
अन्ति	समीप
श्रुत्वा	सुनकर
अचिरात्	अविलम्ब
अजः आगतः	ब्रह्माजी आये और
ईशस्य महि	परमेश्वरकी महिमा
दृष्ट्वा	देखकर
विस्मयं	आश्चर्यमें
जगाम	पड़ गये ॥३५॥

राजन्नाजगरं चर्म शुष्कं वृन्दावनेऽद्भुतम् ।
व्रजौकसां बहुतिथं बभूवाक्रीडगह्वरम् ॥३६॥

राजन् आजगरं चर्म शुष्कं वृन्दावने अद्भुतं व्रजौकसां बहुतिथं बभूव आक्रीड गह्वरम् ॥३६॥

राजन्	राजन् !
अद्भुतं	वह अद्भुत
आजगरं चर्म	अजगरका चमड़ा
शुष्कं	सूखकर
वृन्दावने	वृन्दावनमें
बहुतिथं	बहुत समय तक
व्रजौकसां	व्रजवासियोंके लिए
आक्रीड गह्वरं	खेलनेकी गुफा
बभूव	बना रहा ॥३६॥

एतत् कौमारजं कर्म हरेरात्माहिमोक्षणम् ।
मृत्योः पौगण्डके बाला दृष्ट्वोचुर्विस्मिता व्रजे ॥३७॥

एतत् कौमारजं कर्म हरेः आत्म अहि मोक्षणं मृत्योः पौगण्डके बाला दृष्ट्वा ऊचुः विस्मिता व्रजे ॥३७॥

आत्म	अपनेको
मृत्योः अहि	मृत्युरूपी सर्पसे
मोक्षणं	छुड़ानेका
एतत् हरेः	यह श्रीकृष्णका
कौमरजं	कुमारावस्था (पांच वर्षकी आयु) का
कर्म	कर्म
दृष्ट्वा	देखकर
विस्मिता	अत्यन्त चकित
बाला व्रजे	बालकोंने व्रजमें
पौगण्डके	पौगण्ड (छ वर्षकी) अवस्थामें
ऊचुः	कहा ॥३७॥

नैतद् विचित्रं मनुजार्भमायिनः
परावराणां परमस्य वेधसः ।
अघोऽपि यत्स्पर्शनधौतपातकः
प्रापात्मसाम्यं त्वसतां सुदुर्लभम् ॥३८॥

न एतत् विचित्रं मनुज अर्भ मायिनः पर अवराणां परमस्य वेधसः अघः अपि यत् स्पर्शन धौत पातकः प्राप आत्मसाम्यं तु असतां सुदुर्लभम् ॥३८॥

असतां तु	दुष्टोंके लिए तो
सुदुर्लभं	अत्यन्त दुर्लभ
आत्मसाम्यं	उनकी समता
अघः अपि	अघासुर भी
यत् स्पर्शन	जिनके स्पर्शसे
धौत-	समस्त

पातकः	पाप धुल जानेसे	परमस्य	परे उसके
प्राप	पा गया	वेधसः	विधाताके लिए
मायिनः	मायासे	एतत् विचित्रं	यह विचित्र बात
मनुज अर्भ	मनुष्य बालक बने	न	नहीं है ॥३८॥
पर अवराणां	कारण-कार्य जगत्से		

सकृद् यदङ्गप्रतिमान्तराहिता
मनोमयी भागवतीं ददौ गतिम् ।
स एव नित्यात्मसुखानुभूत्यभि-
व्युदस्तमायोऽन्तर्गतो हि किं पुनः ॥३९॥

सकृत् यत् अंग प्रतिमा अन्तर आहिता मनोमयी भागवतीं ददौ गतिं स एव नित्य आत्मसुख अनुभूतिभिः व्युदस्तमायः अन्तः गतः हि किं पुनः ॥३९॥

अंग	प्रिय परीक्षित् !	स एव	वही
यत्	जिनकी	नित्य	सदा
मनोमयी	मनोमयी	आत्मसुख	आत्मानन्दके
प्रतिमा	मूर्तिके केवल	अनुभूतिभिः	अनुभवसे
सकृत्	एक बार	व्युदस्तमायः	मायाको नष्ट किये श्रीहरि
अन्तर	हृदयमें		
आहिता	धारण करनेसे	हि अन्तः	क्योंकि जिसके भीतर
भागवतीं	वह भागवती	गतः	चले गये
गतिं	गति	किं पुनः	फिर उसका
ददौ	दे देती है,		क्या कहना ॥३९॥

सूत उवाच

इत्थं द्विजा यादवदेवदत्तः
श्रुत्वा स्वरातुश्चरितं विचित्रम् ।
पप्रच्छ भूयोऽपि तदेव पुण्यं
वैयासकिं यन्निगृहीतचेताः ॥४०॥

इत्थं द्विजा यादवदेवदत्तः श्रुत्वा स्वरातुः चरितं विचित्रं पप्रच्छ भूयः अपि तत् एव पुण्यं वैयासकिं यत् निगृहीत चेताः ॥४०॥

द्विजा	शौनकादि ब्राह्मणो !	वैयासकिं	श्रीव्यासनन्दनसे
इत्थं	इस प्रकार	भूयः अपि	फिरसे
यादवदेवदत्तः	यदुवंशियोंके कुलदेव	पप्रच्छ	पूछा
स्वरातुः	अपने रक्षकका	यत्	क्योंकि (वे उसमें)
विचित्रं चरितं	विचित्र चरित्र	निगृहीत चेताः	आसक्त चित्त थे ॥४०॥
श्रुत्वा तत् एव	सुनकर उसी		
पुण्यं	पवित्र चरितको		

राजोवाच

ब्रह्मन् कालान्तरकृतं तत्कालीनं कथं भवेत् ।
यत् कौमारे हरिकृतं जगुः पौगण्डकेऽर्भकाः ॥४१॥

ब्रह्मन् कालान्तर कृतं तत् कालीनं कथं भवेत् यत् कौमारे हरिकृतं जगुः पौगण्डके अर्भकाः ॥४१॥

ब्रह्मन्	भगवन् !	कौमारे	कुमारावस्थाकी
कालान्तर	दूसरे कालमें	हरिकृतं	श्रीकृष्ण-लीला
कृतं	किया गया कर्म	अर्भकाः	बालकोंने
तत् कालीनं	तात्कालिक	पौगण्डके	पौगण्डावस्थामें
कथं भवेत्	कैसे हो सकता है	जगुः	सुनायी ॥४१॥
यत्	जो		

तद् ब्रूहि मे महायोगिन् परं कौतूहलं गुरो ।
नूनमेतद्धरेरेव माया भवति नान्यथा ॥४२॥

तत् ब्रूहि मे महायोगिन् परं कौतूहलं गुरो नूनं एतत् हरेः एव माया भवति न अन्यथा ॥४२॥

महायोगिन्	महायोगी	तत् मे	वह मुझे
गुरो	गुरुदेव !	ब्रूहि	बतलाइये

परं	मुझे अत्यन्त	**माया भवति**	माया होगी
कौतूहलं	उत्सुकता है	**अन्यथा न**	दूसरी बात नहीं हो
नूनं एतत्	निश्चय यह		सकती ॥४२॥
हरेः एव	श्रीहरिकी ही		

वयं धन्यतमा लोके गुरोऽपि क्षत्रबन्धवः ।
यत् पिबामो मुहुस्त्वत्तः पुण्यं कृष्णकथामृतम् ॥४३॥

वयं धन्यतमा लोके गुरो अपि क्षत्र बन्धवः यत् पिबामः मुहुः त्वत्तः पुण्यं कृष्ण कथा अमृतम् ॥४३॥

गुरो	गुरुदेव !	**पुण्यं**	परम पवित्र
क्षत्र बन्धवः	अधम क्षत्रिय	**कृष्ण**	श्रीकृष्ण-
अपि	होनेपर भी	**कथा अमृतं**	कथा-सुधाको
लोके वयं	संसारमें हम	**मुहुः**	बार-बार
धन्यतमा	परम धन्य हैं	**पिबामः**	पी रहे हैं ॥४३॥
यत् त्वत्तः	क्योंकि आपके द्वारा		

सूत उवाच

इत्थं स्म पृष्टः स तु बादरायणि-
स्तत्स्मारितानन्तहृताखिलेन्द्रियः ।
कृच्छ्रात् पुनर्लब्धबहिर्दृशिः शनैः
प्रत्याह तं भागवतोत्तमोत्तम ॥४४॥

इत्थं स्म पृष्टः स तु बादरायणिः तत् स्मारित अनन्त हृत अखिल इन्द्रियः कृच्छ्रात् पुनः लब्ध बहिः दृशिः शनैः प्रत्याह तं भागवत उत्तम उत्तम ॥४४॥

भागवत उत्तम उत्तम	भगवद्भक्तोंमें सर्वश्रेष्ठ शौनकजी !	**इत्थं**	इस प्रकार
		पृष्टः स्म	पूछे जानेपर
		स बादरायणिः	वे व्यास-नन्दनजी

तु	तो	पुनः	फिर बड़ी
तत्	उन भगवान	कृच्छ्रात्	कठिनतासे
अनन्त	अनन्तका	शनैः	धीरे-धीरे
स्मारित	स्मरण कराये जानेसे	बहिः दृशिः	बाह्य दृष्टि
		लब्ध	पाकर
अखिल	उनकी सम्पूर्ण	तं	उन (परीक्षित) को
इन्द्रियः	इन्द्रियां	प्रत्याह	उत्तर दिया ॥४४॥
हृत	हरण (वृत्तिशून्य) ही गयीं		

इति श्रीमद्भागवते महापुराण पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

साधु पृष्टं महाभाग त्वया भागवतोत्तम ।
यन्नूतनयसीशस्य शृण्वन्नपि कथां मुहुः ॥१॥

साधु पृष्टं महाभाग त्वया भागवत उत्तम यत् नूतनयसि ईशस्य शृण्वन् अपि कथां मुहुः ॥१॥

भागवत	भगवद्भक्तोंमें	**यत् ईशस्य**	क्योंकि भगवान्‌की
उत्तम	श्रेष्ठ	**कथां मुहुः**	कथाको बार-बार
महाभाग	महाभाग	**शृण्वन् अपि**	सुनते हुए भी
त्वया	तुमने	**नूतनयसि**	नवीन बना देते
साधु पृष्टं	अच्छा प्रश्न किया		हो ॥१॥

सतामयं सारभृतां निसर्गो
यदर्थवाणीश्रुतिचेतसामपि ।
प्रतिक्षणं नव्यवदच्युतस्य यत्
स्त्रिया विटानामिव साधु वार्ता ॥२॥

सतां अयं सारभृतां निसर्गः यत् अर्थ वाणी श्रुति चेतसां अपि प्रतिक्षणं नव्यवत् अच्युतस्य यत् स्त्रिया विटानां इव साधु वार्ता ॥२॥

यत्	जिन (भगवान्) के	**विटानां**	लम्पट पुरुषोंको
अर्थ	लिए ही	**स्त्रिया**	स्त्री-विषयक चर्चाके
वाणी श्रुति	वाणी, कर्ण	**इव**	समान लगे,
चेतसां अपि	तथा चित्त भी हैं	**अयं**	यह
प्रतिक्षणं	प्रत्येक क्षण	**सारभृतां**	सारग्राही
अच्युतस्य	उन अच्युतकी	**सतां**	सत्पुरुषोंका
साधु वार्ता	उत्तम कथा	**निसर्गः**	स्वभाव ही है ॥२॥
नव्यवत्	नवीनकी भांति		

शृणुष्वावहितो राजन्नपि गुह्यं वदामि ते ।
ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत ॥३॥

शृणुष्व अवहितः राजन् अपि गुह्यं वदामि ते ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवः गुह्यं अपि उत ॥३॥

राजन्	राजन् !	**स्निग्धस्य**	स्नेह करनेवाले
अवहितः	एकाग्र होकर	**शिष्यस्य**	शिष्यको
शृणुष्व	सुनो !	**गुरवः**	गुरुजन
गुह्यं अपि	गोपनीय होनेपर भी	**गुह्यं अपि**	गोपनीय रहस्य भी
ते वदामि	तुमसे कहता हूँ,	**ब्रूयुः**	बतला देते हैं ॥३॥
उत	क्योंकि		

तथाघवदनान्मृत्यो रक्षित्वा वत्सपालकान् ।
सरित्पुलिनमानीय भगवानिदमब्रवीत् ॥४॥

तथा अघवदनात् मृत्यो रक्षित्वा वत्सपालकान् सरित् पुलिनं आनीय भगवान् इदं अब्रवीत् ॥४॥

तथा	उस प्रकार	**सरित्**	उन्हें सरिताके
मृत्यो	मृत्युरूपी	**पुलिनं**	किनारे
अघवदनात्	अघासुरके मुखसे	**आनीय**	ले आकर
वत्सपालकान्	वत्सपालोंकी	**भगवान्**	भगवान्ने
रक्षित्वा	रक्षा करके	**इदं अब्रवीत्**	यह कहा ॥४॥

अहोऽतिरम्यं पुलिनं वयस्याः
स्वकेलिसम्पन्मृदुलाच्छवालुकम् ।
स्फुटत्सरोगन्धहृतालिपत्रिक-
ध्वनिप्रतिध्वानलसद्द्रुमाकुलम् ॥५॥

अहो अतिरम्यं पुलिनं वयस्याः स्वकेलि सम्पत् मृदुल अच्छ वालुकं स्फुटत् सरोगन्ध हृत अलिपत्रिक ध्वनि प्रतिध्वान लसत् द्रुम आकुलम् ॥५॥

अहो वयस्याः	अहो मित्रो !
अतिरम्यं	अत्यन्त रमणीक
स्वकेलि	हमारे खेलनेकी
सम्पत्	सामग्री
मृदुल अच्छ	कोमल और स्वच्छ
बालुकं	बालुका वाला
पुलिनं	सरिता-तट है,
स्फुटत्	खिले कमलोंकी
सरोगन्ध	सुगन्धिसे
हृत	आकर्षित
अलिपत्रिक	भ्रमरावलीके
ध्वनि	शब्द तथा उसकी
प्रतिध्वान	प्रतिध्वनिके समान
लसत्	(पक्षियोंके शब्दोंसे) सुशोभित
द्रुम आकुलं	वृक्षोंसे भरा है ॥५॥

अत्र भोक्तव्यमस्माभिर्दिवा रूढं क्षुधार्दिताः ।
वत्साः समीपेऽपः पीत्वा चरन्तु शनकैस्तृणम् ॥६॥

अत्र भोक्तव्यं अस्माभिः दिवा रूढं क्षुधा अर्दिताः वत्साः समीपे अपः पीत्वा चरन्तु शनकैः तृणम् ॥६॥

क्षुधा अर्दिताः	भूखसे पीड़ित
अस्माभिः	हम लोगों द्वारा
अत्र भोक्तव्यं	यहां भोजन किया जाना चाहिए
दिवा	दिन (पर्याप्त)
रूढं	चढ़ आया है,
वत्साः अपः	बछड़े पानी
पीत्वा	पीकर
समीपे शनकैः	पास ही धीरे-धीरे
तृणं चरन्तु	घास चरें ॥६॥

तथेति पाययित्वार्भा वत्सानारुध्य शाद्वले ।
मुक्त्वा शिक्यानि बुभुजुः समं भगवता मुदा ॥७॥

तथा इति पाययित्वा अर्भा वत्सान् आरुध्य शाद्वले मुक्त्वा शिक्यानि बुभुजुः समं भगवता मुदा ॥७॥

तथा	'बहुत अच्छा'
इति	इस प्रकार कहकर
अर्भा	बालकोंने
वत्सान्	बछड़ोंको
पाययित्वा	पानी पिलाकर
शाद्वले	हरी घासपर
आरुध्य	छोड़कर
शिक्यानि	छीके
मुक्त्वा	खोलकर
भगवता	भगवान् श्रीकृष्णके
समं	साथ
मुदा	आनन्द पूर्वक
बुभुजुः	भोजन करने लगे ॥७॥

कृष्णस्य विष्वक् पुरुराजिमण्डलै-
रभ्याननाः फुल्लदृशो व्रजार्भकाः ।
सहोपविष्टा विपिने विरेजु-
श्छदा यथाम्भोरुहकर्णिकायाः ॥८॥

कृष्णस्य विष्वक् पुरुराजि मण्डलैः अभि आननाः फुल्लदृशः व्रज अर्भकाः सह उपविष्टा विपिने विरेजुः छदा यथा अम्भोरुह कर्णिकायाः ॥८॥

यथा अम्भोरुह	जैसे कमलकी	पुरुराजि	अनेक घेरे
कर्णिकायाः	कर्णिकाके	मण्डलैः	बनाकर
छदा	चारों ओर दल हों वैसे	फुल्लदृशः	उत्फुल्ल नेत्र
		व्रज अर्भकाः	व्रजके बालक
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके	विपिने	वनमें
विष्वक्	चारों ओर	सह उपविष्टा	सटकर बैठे हुए
अभि आननाः	उन्हींकी ओर मुख करके	विरेजुः	अत्यन्त शोभित थे ॥८॥

केचित् पुष्पैर्दलैः केचित् पल्लवैरङ्कुरैः फलैः ।
शिग्भिस्त्वग्भिर्दृषद्भिश्च बुभुजुः कृतभाजनाः ॥९॥

केचित् पुष्पैः दलैः केचित् पल्लवैः अङ्कुरैः फलैः शिक्भिः त्वक्भिः दृषत्भिः च बुभुजुः कृत भाजनाः ॥९॥

केचित्	कुछने (कमलादि)	शिक्भिः	छीकेका
पुष्पैः	फूलोंका	त्वक्भिः	(केले आदिकी) छालका
दलैः केचित्	कुछने पंखड़ियोंका		
पल्लवैः	पत्तोंका	च दृषत्भिः	अथवा पत्थरका
अंकुरैः	(वांसादिके) अंकुरों (सुपेलियों) का	भाजनाः कृत	वर्तन बनाकर
		बुभुजुः	भोजन करने लगे ॥९॥
फलैः	(नारियलादि) फलों का,		

सर्वे मिथो दर्शयन्तः स्वस्वभोज्यरुचिं पृथक् ।
हसन्तो हासयन्तश्चाभ्यवजह्रुः सहेश्वराः ॥१०॥

सर्वे मिथः दर्शयन्तः स्व स्व भोज्य रुचिं पृथक् हसन्तः हासयन्तः च अभ्यवजह्रुः सह ईश्वराः ॥१०॥

सर्वे पृथक्	सब अलग-अलग	**हासयन्तः**	हँसाते हुए
मिथः स्व स्व	परस्पर अपनी-अपनी	**सह ईश्वराः**	भगवान् श्रीकृष्णके साथ
भोज्य	भोजन सम्बन्धी	**अभ्यवजह्रुः**	भोजन करने लगे ॥१०॥
रुचि	रुचि		
दर्शयन्तः	दिखलाते हुए		
हसन्तः च	हँसते तथा		

बिभ्रद् वेणुं जठरपटयोः शृङ्गवेत्रे च कक्षे
वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यंगुलीषु ।
तिष्ठन् मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन् नर्मभिः स्वैः
स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग् बालकेलिः ॥११॥

बिभ्रत् वेणुं जठर पटयोः शृंगवेत्रे च कक्षे वामे पाणौ मसृण कवलं तत् फलानि अंगुलीषु तिष्ठन् मध्ये स्वपरि सुहृदः हासयन् नर्मभिः स्वैः स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुक् बालकेलिः ॥११॥

यज्ञभुक्	यज्ञ भोक्ता भगवान्	**वेणुं च**	वंशी तथा
बालकेलिः	बालक्रीड़ा करते हुए	**कक्षे**	कांख (बगल) में
स्वर्गे लोके	स्वर्गमें रहनेवाले देवताओंके	**शृंगवेत्रे**	शृंगी और बेंत
मिषति	देखते हुए	**वामे पाणौ**	बायें हाथपर
स्वपरि	अपने चारों ओर	**मसृण कवलं**	(माखन-दहीसे) स्निग्ध ग्रास तथा
सुहृदः	बैठे सखाओंके	**तत्**	उस (भोजन) के
मध्ये तिष्ठन्	बीचमें बैठे	**फलानि**	फल (नीबू, अचार आदि)
जठर	पेट (कमर) के		
पटयोः	वस्त्र (फेंटे) में	**अंगुलीषु**	अंगुलियोंपर

बिभ्रत्	धारण किये	बुभुजे	भोजन कर रहे
स्वै नर्मभिः	अपने परिहाससे		थे ॥११॥
हासयन्	सबको हँसाते हुए		

भारतैवं वत्सपेषु भुञ्जानेष्वच्युतात्मसु ।
वत्सास्त्वन्तर्वने दूरं विवशुस्तृणलोभिताः ॥१२॥

भारत एवं वत्सपेषु भुञ्जानेषु अच्युत आत्मसु वत्साः तु अन्तर्वने दूरं विवशुः तृणलोभिताः ॥१२॥

भारत	परीक्षित !	वत्साः तु	बछड़े तो
एवं अच्युत	इस प्रकार भगवानमें	तृणलोभिताः	घासके प्रलोभनसे
आत्मसु	चित्त लगाये	दूरं अन्तर्वने	दूर वनके भीतर
वत्सपेषु	वत्सपालों (बालकों) के	विवशुः	प्रवेश कर गये ॥१२॥
भुञ्जानेषु	भोजन करते समय		

तान् दृष्ट्वा भयसंत्रस्तानूचे कृष्णोऽस्य भीभयम् ।
मित्राण्याशान्मा विरमतेहानेष्ये वत्सकानहम् ॥१३॥

तान् दृष्ट्वा भय सन्त्रस्तान् ऊचे कृष्णः अस्य भी भयं मित्राणि आशात् मा विरमत इह आनेष्ये वत्सकान् अहम् ॥१३॥

अस्य	इस जगतके	मित्राणि	'मित्रो !
भी भयं	भयको भी भय देने-वाले	आशात्	भोजन करनेसे
कृष्णः	श्रीकृष्णने	मा विरमत	मत रुको,
तान्	उन (बालकों) को	अहं वत्सकान्	मैं बछड़ोंको
भय संत्रस्तान्	भयसे सन्त्रस्त	इह आनेष्ये	यहां ले आऊँगा' ॥१३॥
दृष्ट्वा ऊचे	देखकर कहा		

इत्युक्त्वाद्रिदरीकुञ्जगह्वरेष्वात्मवत्सकान् ।
विचिन्वन् भगवान् कृष्णः सपाणिकवलो ययौ ॥१४॥

इति उक्त्वा अद्रिदरी कुञ्जगह्वरेषु आत्म वत्सकान् विचिन्वन् भगवान् कृष्णः सपाणि कवलः ययौ ॥१४॥

इति उक्त्वा	ऐसा कहकर
अद्रिदरी	पर्वतकी गुफाओं तथा
कुञ्जगह्वरेषु	सघन कुञ्जोंमें
आत्म वत्सकान्	अपने बछड़ोंको
विचिन्वन्	ढूंढ़नेके लिए
सपाणि	हाथपर
कवलः	ग्रास लिए हुए ही
भगवान्	भगवान्
कृष्णः ययौ	श्रीकृष्ण चल पड़े ॥१४॥

अम्भोजन्मजनिस्तदन्तरगतो मायार्भकस्येशितु-
र्द्रष्टुं मञ्जु महित्वमन्यदपि तद्वत्सानितो वत्सपान् ।
नीत्वान्यत्र कुरूद्वहान्तरदधात् खेऽवस्थितो यः पुरा
दृष्ट्वाघासुरमोक्षणं प्रभवतः प्राप्तः परं विस्मयम् ॥१५॥

अम्भोजन्मजनिः तत् अन्तरगतः माया अर्भकस्य ईशितुः द्रष्टुं मञ्जु महित्वं अन्यत् अपि तत्वत्सान् इतः वत्सपान् नीत्वा अन्यत्र कुरूद्वह अन्तः अदधात् खे अवस्थितः यः पुरा दृष्ट्वा अघासुर मोक्षणं प्रभवतः प्राप्तः परं विस्मयम् ॥१५॥

कुरूद्वह	कुरुनन्दन परीक्षित !
यः पुरा	जो पहिले
खे	आकाशमें
अवस्थितः	स्थित थे वे
अम्भो-	कमलोद्भव-
जन्मजनिः	ब्रह्मा
प्रभवतः	सर्व समर्थ श्रीकृष्ण द्वारा
अघासुर	अघासुरको
मोक्षणं	मुक्त किया जाना
दृष्ट्वा	देखकर
परं विस्मयं	अत्यन्त आश्चर्य
प्राप्तः	पाकर
ईशितुः	उन सर्वसमर्थकी
अन्यत् अपि	कोई दूसरी भी
मञ्जु महित्वं	मंजुल महिमा
द्रष्टुं	देखनेकी इच्छासे
तत् वत्सान्	उन बछड़ोंको और
इतः	यहां
वत्सपान्	वत्सपालोंको
अन्यत्र	दूसरे स्थानपर
नीत्वा	ले जाकर
अन्तरगतः	अन्तर्धान
अदधात्	हो गये ॥१५॥

ततो वत्सानदृष्ट्वैत्य पुलिनेऽपि च वत्सपान् ।
उभावपि वने कृष्णो विचिकाय समन्ततः ॥१६॥

ततः वत्सान् अदृष्ट्वा एत्य पुलिने अपि च वत्सपान् उभाः अपि वने कृष्णः विचिकाय समन्ततः ॥१६॥

ततः वने	तब वनमें	अदृष्ट्वा	न देखकर
वत्सान्	बछड़ोंको	कृष्णः	श्रीकृष्णने
च पुलिने	तथा सरिता किनारे	उभाः अपि	दोनोंको ही
अपि	भी	समन्ततः	चारों ओर
एत्य	आकर	विचिकाय	घूम-घूम कर ढूंढ़ा
वत्सपान्	वत्सपालोंको		॥१६॥

क्वाप्यदृष्ट्वान्तर्विपिने वत्सान् पालांश्च विश्ववित् ।
सर्वं विधिकृतं कृष्णः सहसावजगाम ह ॥१७॥

क्व अपि अदृष्ट्वा अन्तः विपिने वत्सान् पालान् च विश्ववित् सर्वं विधिकृतं कृष्णः सहसा अवजगाम ह ॥१७॥

अन्तः विपिने	वनके भीतर	कृष्णः	श्रीकृष्णने
वत्सान् च	बछड़ों तथा उनके	विधिकृतं	ब्रह्माकी करतूत
पालन्	पालकोंको	सर्वं सहसा	सब सहसा
क्व अपि	कहीं भी	ह	निश्चित
अदृष्ट्वा	न देखकर	अवजगाम	जान ली ॥१७॥
विश्ववित्	विश्ववेत्ता		

ततः कृष्णो मुदं कर्तुं तन्मातॄणां च कस्य च ।
उभयायितमात्मानं चक्रे विश्वकृदीश्वरः ॥१८॥

ततः कृष्णः मुदं कर्तुं तत् मातॄणां च कस्य च उभयायितं आत्मानं चक्रे विश्वकृत् ईश्वरः ॥१८॥

ततः विश्वकृत्	तब विश्वकर्ता	मुदं कर्तुं	प्रमुदित करनेके लिए
ईश्वरः	सर्व समर्थ	आत्मानं	अपनेको
कृष्णः	श्रीकृष्णने	उभयायितं	(बछड़े-बालक)
तत् मातॄणां	उनकी माताओंको		दोनों रूपोंमें
च कस्य च	तथा ब्रह्माको भी	चक्रे	बना लिया ॥१८॥

यावद् वत्सपवत्सकाल्पकवपुर्यावत् कराङ्घ्र्यादिकं ।
यावद् यष्टिविषाणवेणुदलशिग् यावद् विभूषाम्बरम् ।
यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद् विहारादिकं
सर्वं विष्णुमयं गिरोऽङ्ग वदजः सर्वस्वरूपो बभौ ॥१६॥

यावत् वत्सप वत्सक अल्पकवपुः यावत् कर आङ्घ्रि आदिकं यावत् यष्टि विषाण वेणु दल शिक् यावत् विभूष अम्बरं यावत् शील गुण अभिधा आकृति वयः यावत् विहार आदिकं सर्वं विष्णुमयं गिरः अंग अवद् अजः सर्वस्वरूपः बभौ ॥१६॥

अंग	प्रिय परीक्षित् !	**विषाण वेण**	शृंग, वंशी
सर्वं	'सब (विश्व)	**दल शिक्**	पत्ते, छीके,
विष्णुमयं	विष्णुमय है'	**यावत् विभूष**	जैसे आभूषण
अजः	अजन्मा वेदवाणी	**अम्बरं**	वस्त्र थे,
अवद्	कहती है (मानो इसीलिए)	**यावत्**	जैसा उनका
		शील गुण	स्वभाव, गुण,
यावत् वत्सप	जितने वत्सपाल	**अभिधा**	नाम,
वत्सक	बछड़े	**आकृति**	आकार,
अल्पकवपुः	(जितनी) छोटे शरीरके थे,	**वयः**	आयु,
		विहार	व्यवहारका ढंग
यावत् कर	जैसे उनके हाथ,	**आदिकं**	आदि था
आङ्घ्रि	पैर	**सर्वस्वरूपः**	उस सब रूपमें
आदिकं	आदि अंग थे,	**बभौ**	शोभा पाने लगे ॥१६॥
यावत् यष्टि	जैसी छड़ियां		

स्वयमात्माऽऽत्मगोवत्सान् प्रतिवार्यात्मवत्सपैः ।
क्रीडन्नात्मविहारैश्च सर्वात्मा प्राविशद् व्रजम् ॥२०॥

स्वयं आत्म आत्म गोवत्सान् प्रतिवार्य आत्मवत्सपैः क्रीडन् आत्म विहारैः च सर्व आत्मा प्राविशत् व्रजम् ॥२०॥

आत्म	अपने ही रूप	**आत्मवत्सपैः**	अपने रूप वत्सपालों द्वारा
गोवत्सान्	गायोंके बछड़ोंको		

प्रतिवार्य	लौटा लाकर		हुए
च स्वयं	तथा स्वयं	सर्व आत्मा	वे सर्व स्वरूप
आत्मा	अपने स्वरूपसे	व्रजं प्राविशत्	व्रजमें प्रविष्ट हुए
क्रीडन्	उनके साथ खेलते		॥२०॥

तत्तद्वत्सान् पृथङ्नीत्वा तत्तद्गोष्ठे निवेश्य सः ।
तत्तदात्माभवद् राजस्तत्तत्सद्म प्रविष्टवान् ॥२१॥

तत् तत् वत्सान् पृथक् नीत्वा तत् तत् गोष्ठे निवेश्य सः तत् तत् आत्मा अभवत् राजन् तत् तत् सद्म प्रविष्टवान् ॥२१॥

राजन्	राजन् !	तत् तत्	उन उन (बालकों)
तत् तत् वत्सान्	उन-उन बछड़ोंको		का
पृथक् नीत्वा	अलग-अलग करके	आत्मा	स्वरूप
तत् तत्	उन उनके	अभवत्	होकर
गोष्ठे	गोष्ठोंमें	तत् तत् सद्म	उन-उनके घरोंमें
सः निवेश्य	उन्होंने पहुँचाकर	प्रविष्टवान्	प्रवेश किया ॥२१॥

तन्मातरो वेणुरवत्वरोत्थिता
उत्थाप्य दोर्भिः परिरभ्य निर्भरम् ।
स्नेहस्नुतस्तन्यपयः सुधासवं
मत्वा परं ब्रह्म सुतानपाययन् ॥२२॥

तत् मातरः वेणुरवः त्वरा उत्थिता उत्थाप्य दोर्भिः परिरभ्य निर्भरं स्नेह स्नुतान् स्तन्यपयः सुधासवं मत्वा परं ब्रह्म सुतान् अपाययन् ॥२२॥

तत् मातरः	उनकी माताएँ	परिरभ्य	आलिंगन करके
वेणुरवः	वंशी-ध्वनि (सुनकर)	परं	उन्हें परम
त्वरा उत्थिता	झटपट उठीं	ब्रह्म मत्वा	ब्रह्म मानकर
सुतान्	पुत्रोंको	स्नेह स्नुतान्	स्नेहसे झरते
दोर्भिः	भुजाओंसे	स्तन्यपयः	स्तनोंका दूध
उत्थाप्य	उठाकर	अपाययन्	पिलाने लगीं ॥२२॥
निर्भरं	प्रेम पूर्वक		

ततो नृपोन्मर्दनमज्जलेपना-
लंकाररक्षातिलकाशनादिभिः ।
संलालितः स्वाचरितैः प्रहर्षयन्
सायं गतो यामयमेन माधवः ॥२३॥

ततः नृप उन्मर्दन मज्ज लेपन अलङ्कार रक्षातिलक अशन आदिभिः संलालितः स्व आचरितैः प्रहर्षयन् सायं गतः याम यमेन माधवः ॥२३॥

नृप	राजन् !	रक्षातिलक	रक्षा-तिलक,
याम यमेन	दिन बीतनेपर	अशन आदिभिः	भोजन आदि
माधवः	श्रीकृष्ण	स्व आचरितैः	अपने व्यवहारसे
सायं गतः	सायंकाल लौटते थे,	संलालितः	भली प्रकार दुलार करके
ततः उन्मर्दन	तब उबटन लगाने,	प्रहर्षयन्	हर्षित करती थीं ॥२३॥
मज्ज	स्नान कराने,		
लेपन	(चन्दनादि) लेपन,		
अलङ्कार	आभूषण पहिनाने,		

गावस्ततो गोष्ठमुपेत्य सत्वरं
हुङ्कारघोषैः परिहूतसंगतान् ।
स्वकान् स्वकान् वत्सतरानपाययन्
मुहुर्लिहन्त्यः स्रवदौधसं पयः ॥२४॥

गावः ततः गोष्ठं उपेत्य सत्वरं हुङ्कार घोषैः परिहूत संगतान् स्वकान स्वकान् वत्सतरान् अपाययन् मुहुः लिहन्त्यः स्रवत् औधसं पयः ॥२४॥

ततः	उस समय	हुङ्कार घोषैः	हुंकार ध्वनिसे
गावः	गायें भी	परिहूत	बुलाये गये
सत्वरं	शीघ्रता पूर्वक	संगतान्	समीप आये
गोष्ठं	गोष्ठमें	स्वकान स्वकान्	अपने-अपने
उपेत्य	पहुँचकर	वत्सतरान्	छोटे बछड़ोंको

मुहुः	बार-बार	**स्रवत्**	स्वतः झरता
लिहन्त्यः	चाटती हुई	**पयः अपायमन्**	दूध पिलाती थीं
औधसः	थनोंसे		॥२४॥

गोगोपीनां मातृतास्मिन् सर्वा स्नेहर्द्धिकां विना ।
पुरोवदास्वपि हरेस्तोकता मायया विना ॥२५॥

गो गोपीनां मातृता अस्मिन् सर्वा स्नेहर्द्धिकां विना पुरः वत् आस्व अपि हरेः तोकता मायया विना ॥२५॥

गो	गौओं और	**आस्व**	था और
गोपीनां	गोपियोंका	**हरेः अपि**	श्रीकृष्णका भी
मातृता	मातृत्व	**तोकता**	पुत्रत्व
अस्मिन्	इन (बच्चों) में	**मायया विना**	विना मायाके
स्नेहर्द्धिकां	स्नेहाधिक्यको		(निश्छल) था
विना	छोड़कर		॥२५॥
पुरः वत्	पहिलेके समान		

व्रजौकसां स्वतोकेषु स्नेहवल्लच्याब्दमन्वहम् ।
शनैर्निःसीम ववृधे यथा कृष्णे त्वपूर्ववत् ॥२६॥

व्रजौकसां स्वतोकेषु स्नेहवल्लि अब्दं अनु अहं शनैः निःसीम ववृधे यथा कृष्णे तु अपूर्ववत् ॥२६॥

स्वतोकेषु	अपने बालकोंमें	**अपूर्ववत्**	जैसी पहिले नहीं
व्रजौकसां	व्रजवासियोंकी		थीं,
स्नेहवल्लि	स्नेह रूपी लता	**ववृधे**	बढ़ गयी
अब्दं	उस वर्ष	**यथा तु**	जैसी कि
अनु अग्रहं	प्रतिदिन	**कृष्णे**	श्रीकृष्णमें थी
शनैः	धीरे-धीरे		॥२६॥
निःसीम	असीम		

इत्थमात्माऽऽत्मनाऽऽत्मानं वत्सपालमिषेण सः ।
पालयन् वत्सपो वर्षं चिक्रीडे वनगोष्ठयोः ॥२७॥

इत्थं आत्मा आत्मन् आत्मानं वत्स पाल मिषेण सः पालयन् वत्सपः वर्ष चिक्रीडे वन गोष्ठयोः ॥२७॥

इत्थं	इस प्रकार	**पालयन्**	पालन करते हुए
आत्मा	सर्वात्मा	**सः वत्सपः**	वे वत्सपाल श्रीकृष्ण
आत्मन्	अपने ही द्वारा	**वर्ष**	एक वर्ष तक
वत्स	बछड़े और	**वन गोष्ठयोः**	वन तथा गोष्ठमें
पाल मिषेण	पालकोंके बहाने	**चिक्रीडे**	क्रीड़ा करते रहे
आत्मानं	अपना ही		॥२७॥

एकदा चारयन् वत्सान् सरामो वनमाविशत् ।
पञ्चषासु त्रियामासु हायनापूरणीष्वजः ॥२८॥

एकदा चारयन् वत्सान् सरामः वनं आविशत् पञ्चषासु त्रियामासु हायना पूरणीषु अजः ॥२८॥

पञ्चषासु	पांच-छः	**अजः**	अजन्मा (श्रीकृष्ण)
त्रियामासु	रात्रियोंके	**वत्सान्**	बछड़ोंको
हायना	वर्ष	**चारयन्**	चराते हुए
पूरणीषु	पूरा करनेवाली रहनेपर	**सरामः**	बलरामजीके साथ
		वनं	वनमें
एकदा	एक बार वे	**आविशत्**	प्रविष्ट हुए ॥२८॥

ततो विदूराच्चरतो गावो वत्सानुपव्रजम् ।
गोवर्धनाद्रिशिरसि चरन्त्यो ददृशुस्तृणम् ॥२९॥

ततः विदूरात् चरतः गावः वत्सान् उपव्रजं गोवर्धन अद्रि शिरसि चरन्त्यः ददृशुः तृणम् ॥२९॥

ततः गावः	उस समय गायोंने	**उपव्रजं**	व्रजके समीप
गोवर्धन	गोवर्धन	**तृणं चरतः**	घास चरते हुए
अद्रि शिरसि	पर्वतके ऊपर	**वत्सान् दूरात्**	बछड़ोंको दूरसे
चरन्त्यः	चरते समय	**ददृशुः**	देखा ॥२९॥

दृष्ट्वाथ तत्स्नेहवशोऽस्मृतात्मा
स गोव्रजोऽत्यात्मपदुर्गमार्गः ।
द्विपात् ककुद्ग्रीव उदास्यपुच्छो-
ऽगाद्धुङ्कृतैरास्रुपया जवेन ॥३०॥

दृष्ट्वा अथ तत् स्नेह वशः अस्मृत आत्मा स गो व्रजः अति आत्म अपदुर्ग मार्गः द्विपात् ककुत् ग्रीव उद् आस्य पुच्छः अगात् हुङ्कृतैः आस्रुपया जवेन ॥३०॥

अथ तत्	तब उन (बछड़ों) के	**ककुत् ग्रीव**	गर्दन ककुदसे
स्नेह	स्नेहसे		लगाये
आत्मा	(वे) अपनेको	**उद् आस्य**	मुख और
अस्मृत	भूल गयीं	**पुच्छः**	पूंछ उठाये,
स गो व्रजः	वे व्रजकी गायें	**हुङ्कृतैः**	हुंकार करती
आत्म अति	अपने लिए अत्यन्त	**आस्रुपया**	थनोंसे दूध बहाती
अपदुर्ग मार्गः	कठिन मार्गसे	**जवेन**	वेगसे
द्विपात्	दो पैरोंसे कूदती,	**अगात्**	दौड़ पड़ीं ॥३०॥

समेत्य गावोऽधो वत्सान् वत्सवत्योऽप्यपाययन् ।
गिलन्त्य इव चांगानि लिहन्त्यः स्वौधसं पयः ॥३१॥

सम एत्य गावः अधः वत्सान् वत्स वत्यः अपि अपाययन् गिलन्ति इव च अंगानि लिहन्त्यः स्वौधसं पयः ॥३१॥

गावः अधः	गायें नीचे	**गिलन्त्य**	निगल जानेके
वत्सान्	बछड़ोंके	**इव**	समान
सम एत्य	समीप पहुँचकर	**लिहन्त्यः**	चाटती हुई
वत्स वत्यः	दूसरे छोटे बछड़ों-वाली होनेपर	**स्वौधसं पयः**	बड़े थनोंका झरता दूध
अपि	भी	**अपाययन्**	पिलाने लगीं ॥३१॥
अंगानि	इनके अंगोंको		

गोपास्तद्रोधनायासमौढ्यलज्जोरुमन्युना ।
दुर्गाध्वकृच्छ्रतोऽभ्येत्य गोवत्सैर्ददृशुः सुतान् ॥३२॥

गोपाः तत् रोधन आयास मौध्य लज्जः उरु मन्युना दुर्ग अध्व कृच्छ्रतः अभि एत्य गोवत्सैः गोवत्सैः ददृशुः सुतान् ॥३२॥

तत्	उन (गायों) को	**कृच्छ्रतः**	कठिनाईसे
रोधन	रोकनेके	**दुर्ग अध्व**	उस कठिन मार्गसे
आयास	प्रयत्नके	**एत्य अभि**	आकर
मौध्य	व्यर्थ होनेसे	**गोवत्सैः**	गायके बछड़ोंके
लज्जः	लज्जित		समीप
उरु मन्युना	बहुत क्रोध पूर्वक	**सुतान्**	अपने पुत्रोंको
गोपाः	गोपोंने	**ददृशुः**	देखा ॥३२॥

तदीक्षणोत्प्रेमरसाप्लुताशया
जातानुरागा गतमन्यवोऽर्भकान् ।
उदुह्य दोर्भिः परिरभ्य मूर्धनि
घ्राणैरवापुः परमां मुदं ते ॥३३॥

तत् ईक्षण उत्प्रेमरस आप्लुत आशया जात अनुरागा गत मन्यवः अर्भकान् उदुह्य दोः भिः परिरभ्य मूर्धनि घ्राणैः अवापुः परमां मुदं ते ॥३३॥

तत्	उन (बालकों) को	**गत मन्यवः**	क्रोधहीन हुए
ईक्षण	देखनेसे	**ते अर्भकान्**	उन्होंने बच्चोंको
उत् प्रेमरस	उत्पन्न प्रेमरसमें	**दोः भिःउदुह्य**	भुजाओंसे उठाकर
आप्लुत	चित्तके सराबोर	**परिरभ्यः**	आलिंगन करके
आशया	हो जानेसे	**मूर्धनि घ्राणैः**	सिर सूंघकर
अनुरागः	स्नेह	**परमां मुदं**	परम आनन्द
जात	उत्पन्न हो गया	**अवापुः**	प्राप्त किया ॥३३॥

ततः प्रवयसो गोपास्तोकाश्लेषसुनिर्वृताः ।
कृच्छ्राच्छनैरपगतास्तदनुस्मृत्युदश्रवः ॥३४॥

ततः प्रवयसः गोपाः तोक आश्लेष सुनिर्वृताः कृच्छ्रात् शनैः अपगताः तत् अनुस्मृति उत् अश्रवः ॥३४॥

ततः	तब बड़ी	**शनैः**	धीरे-धीरे
प्रवयसः	आयुके वे	**अपगताः**	लौट सके,
गोपाः तोक	गोप बच्चोंके	**तत्**	(फिर भी) उन (बालकों) का
आश्लेष	आलिंगनसे	**अनुस्मृत्य**	स्मरण करके
सुनिर्वृताः	बहुत आनन्दित होकर	**उत् अश्रवः**	अश्रु बहा रहे थे ॥३४॥
कृच्छ्रात्	बड़ी कठिनाईसे		

व्रजस्य रामः प्रेमर्धेर्वीक्ष्यौत्कण्ठ्यमनुक्षणम् ।
मुक्तस्तनेष्वपत्येष्वप्यहेतुविदचिन्तयत् ॥३५॥

व्रजस्य रामः प्रेम अर्धेः वीक्ष्य औत्कण्ठ्यं अनुक्षणं मुक्त स्तनेषु अपत्येषु अपि हेतुः अवित् अचिन्तयत् ॥३५॥

व्रजस्य	व्रज-वासियोंका	**औत्कण्ठ्यं**	उत्कण्ठा पूर्वक
अनुक्षणं	प्रतिक्षण	**अर्धेः प्रेम**	प्रेमकी वृद्धि
अपत्येषु	पुत्रोंपर	**वीक्ष्य रामः**	देखकर बलरामजी
स्तनेषु	दूध पीना	**हेतुः**	इसका कारण
मुक्त	छोड़ चुके	**अवित्**	न जाननेसे
अपि	(बछड़ोंपर) भी (गायोंकी)	**अचिन्तयत्**	सोचने लगे ॥३५॥

किमेतदद्भुतमिव वासुदेवेऽखिलात्मनि ।
व्रजस्य सात्मनस्तोकेष्वपूर्वं प्रेम वर्धते ॥३६॥

किं एतत् अद्भुतं इव वासुदेव अखिल आत्मनि व्रजस्य स आत्मनः तोकेषु अपूर्वं प्रेम वर्धत ॥३६॥

एतत् किं	यह क्या	**तोकेषु**	पुत्रोंमें
अद्भुतं इव	आश्चर्य जैसा है कि	**प्रेम**	जैसा प्रेम
अखिल	सबके	**अपूर्वं**	पहिले नहीं था
आत्मनि	आत्मस्वरूप	**वर्धत**	अब बढ़ गया है ॥३६॥
वासुदेवे	श्रीकृष्णके		
स आत्मनः	समान अपने		

केयं वा कुत आयाता देवी वा नार्युतासुरी ।
प्रायो मायास्तु मे भर्तुर्नान्या मेऽपि विमोहिनी ॥३७॥

क इयं वा कुत आयाता देवी वा नार्य उत आसुरी प्रायः मायाः तु मे भर्तुः न अन्या मे अपि विमोहिनी ॥३७॥

क इयं	यह कैसी	प्रायः मे	प्रायः मेरे
माया	माया है ?	भर्तुः	स्वामीसे
कुतः आयाता	कहांसे आयी है ?	अन्या मे अपि	दूसरेकी मुझे भी
देवी	किसी देवताकी,	विमोहिनी	मोहित करनेवाली
नार्य	मनुष्यकी,	न	नहीं हो सकती
उत	अथवा		॥३७॥
आसुरी	असुरकी है ?		

इति सञ्चिन्त्य दाशार्हो वत्सान् सवयसानपि ।
सर्वानाचष्ट वैकुण्ठं चक्षुषा वयुनेन सः ॥३८॥

इति सञ्चिन्त्य दाशार्हः वत्सान् सवयसान् अपि सर्वान् आचष्ट वैकुण्ठं चक्षुषा वयुनेन सः ॥३८॥

इति	ऐसा	सर्वान्वत्सान्	सब बछड़ोंके
सञ्चिन्त्य	सोचकर	सः	साथ
सः दाशार्हः	उन दशार्ह वंशी बलरामजीने	वयसान् अपि	सखाओंको भी
		वैकुण्ठं	विष्णु रूप
वयुनेन चक्षुषा	ज्ञान-दृष्टिसे	आचष्ट	देखा ॥३८॥

नैते सुरेशा ऋषयो न चैते
त्वमेव भासीश भिदाश्रयेऽपि ।
सर्वं पृथक्त्वं निगमात् कथं वदे-
त्युक्तेन वृत्तं प्रभुणा बलोऽवैत् ॥३९॥

न एते सुरेशा ऋषयः न च एते त्वं एव भासि ईश भिदा आश्रये अपि सर्वं पृथक्त्वं निगमात्ः कथं वद इति उक्तेन वृत्तं प्रभुणा बलः अवैत् ॥३९॥

एते	(बलरामजीने श्रीकृष्णसे कहा) ये सब
सुरेशा न	देवनायक नहीं हैं,
च एते	और ये सब
ऋषयः न	ऋषि भी नहीं हैं,
भिदा	भेदका
आश्रये अपि	आश्रय लेनेपर भी
ईश त्वं एव	भगवन् तुम्हीं
भासि	प्रतीत हो रहे हो, तब
पृथक्त्वं	यह पार्थक्य
कथं	कैसे हो गया
निगमात्	ठीक प्रकार
वद	बतलाओ
इति	ऐसा कहनेपर
प्रभुणा	भगवानके
वृत्तं उक्तेन	वृत्तान्त बतलानेपर
बलः	बलरामजी ने
अवैत्	जाना ॥३९॥

तावदेत्यात्मभूरात्ममानेन त्रुटचनेहसा ।
पुरोवदब्दं क्रीडन्तं ददृशे सकलं हरिम् ॥४०॥

तावत् एत्य आत्मभूः आत्ममानेन त्रुटिना ईहसा पुरोवत् अब्दं क्रीडन्तं ददृशे सकलं हरिम् ॥४०॥

तावत्	तब तक
आत्ममानने	अपने काल प्रमाणसे
ईहसा	उस चेष्टाके एक
त्रुटिना	त्रुटि मात्र बाद
आत्मभूः एत्य	ब्रह्माने आकर
पुरोवत्	पहिलेके समान
सकलं	सबको
हरिं	श्रीकृष्णके साथ
अब्दं	एक वर्षसे
क्रीडन्तं	क्रीड़ा करते
ददृशे	देखा ॥४०॥

यावन्तो गोकुले बालाः सवत्साः सर्व एव हि ।
मायाशये शयाना मे नाद्यापि पुनरुत्थिताः ॥४१॥

यावन्तः गोकुले बालाः सवत्साः सर्व एव हि मायाशये शयाना मे न अद्य अपि पुनः उत्थिताः ॥४१॥

गोकुले	(सोचने लगे) 'गोकुलमें
यावन्तः	जितने भी
बालाः	बालक थे
सवत्साः	बछड़ोंके साथ
हि सर्व एव	क्योंकि सभी

मे मायाशये	मेरी माया निद्रामें	पुनः	फिर
शयाना	सो रहे हैं	उत्थिताः न	उठे नहीं हैं ॥४१॥
अद्य अपि	अब तक भी		

इत एतेऽत्र कुत्रत्या मन्मायामोहितेतरे ।
तावन्त एव तत्राब्दं क्रीडन्तो विष्णुना समम् ॥४२॥

इत एते अत्र कुत्रत्या मत् माया मोहिते इतरे तावन्त एव तत्र अब्दं क्रीडन्तः विष्णुना समम् ॥४२॥

मत् माया	मेरी मायासे	तावन्त एव	उतने ही
मोहिते	मोहितोंको	तत्र	वहां
इतरे	छोड़कर	विष्णुना समं	श्रीहरिके साथ
इत अत्र	यहां व्रजमें	अब्दं	एक वर्षसे
एते कुत्रत्या	ये कहांके	क्रीडन्तः	खेल रहे हैं ॥४२॥

एवमेतेषु भेदेषु चिरं ध्यात्वा स आत्मभूः ।
सत्याः के कतरे नेति ज्ञातुं नेष्टे कथञ्चन ॥४३॥

एवं एतेषु भेदेषु चिरं ध्यात्वा स आत्मभूः सत्याः के कतरे न इति ज्ञातुं न इष्टे कथञ्चन ॥४३॥

स आत्मभूः	उन स्वयंभू ब्रह्माने	चिरं ध्यात्वा	देर तक ध्यान करके भी
एवं एतेषु	इस प्रकार इनमें		
के सत्याः	कौन सच्चे हैं,	कथञ्चन	किसी प्रकार
कतरे	कौनसे (सच्चे)	ज्ञातुं	जाननेमें सफल
न	नहीं हैं	न इष्टे	नहीं हुए ॥४३॥
एतेषु भेदेषु	इस भेदके विषयमें		

एवं सम्मोहयन् विष्णुं विमोहं विश्वमोहनम् ।
स्वयैव माययाजोऽपि स्वयमेव विमोहितः ॥४४॥

एवं सम्मोहयन् विष्णुं विमोहं विश्व मोहनं स्व एव मायया अजः अपि स्वयं एव विमोहितः ॥४४॥

एवं	इस प्रकार	**अजः अपि**	ब्रह्मा भी
विमोहं	मोहरहित	**स्वयं एव मायया**	अपनी ही मायासे
विश्वमोहनं	विश्वको मोहित करनेवाले	**स्व एवयं**	स्वयं ही
विष्णुं	विष्णुको	**विमोहितः**	मोहित हो गये ॥४४॥
विमोहं	मोहित करने जाकर		

तम्यां तमोवन्नैहारं खद्योतार्चिरिवाहनि ।
महतीतरमायैश्यं निहन्त्यात्मनि युञ्जतः ॥४५॥

तम्यां तमः वत् नैहारं खद्योत अर्चिः इव अहनि महत् इतरं माया ऐश्यं निहन्ति आत्मनि युञ्जतः ॥४५॥

महत् ऐश्यं	महान ईश्वरीय	**तमः वत्**	अन्धकारके समान
माया	मायापरा	**अहनि खद्योत**	दिनमें जुगुनूकी
इतरं	दूसरीका	**अर्चि इव**	चमकके समान
युञ्जतः	प्रयोग करनेपर	**आत्मनि**	अपनेको ही
तम्यां	अँधेरी रातमें	**निहन्ति**	नष्ट कर लेती है ॥४५॥
नैहारं	कुहरेके		

तावत् सर्वे वत्सपालाः पश्यतोऽजस्य तत्क्षणात् ।
व्यदृश्यन्त घनश्यामाः पीतकौशेयवाससः ॥४६॥

तावत् सर्वे वत्स पाला. पश्यतः अजस्य तत् क्षणात् व्यदृश्यन्त घनश्यामाः पीतकौशेय वाससः ॥४६॥

तावत्	उसी समय	**पालाः**	उनके पालक
अजस्य	ब्रह्माजीके	**घनश्यामाः**	जलधर श्याम
पश्यतः	देखते हुए	**पीतकौशेय**	पीले रेशमी
तत् क्षणात्	उस क्षणमें ही	**वाससः**	वस्त्र पहिने
सर्वे वत्स	सब बछड़े और	**व्यदृश्यन्त**	दिखायी पड़े ॥४६॥

चतुर्भुजाः शङ्खचक्रगदाराजीवपाणयः ।
किरीटिनः कुण्डलिनो हारिणो वनमालिनः ॥४७॥

चतुर्भुजाः शंख चक्र गदा राजीव पाणयः किरीटिनः कुण्डलिनः हारिणः वनमालिनः ॥४७॥

चतुर्भुजाः	चतुर्भुज	**कुण्डलिनः**	कुण्डल पहिने
शंख चक्र	शंख, चक्र,	**हारिणः**	हार पहिने,
गदा राजीव	गदा, पद्म,	**वनमालिनः**	वनमालाधारी
पाणयः	हाथोंमें लिए		॥४७॥
किरीटिनः	मुकुटधारी		

श्रीवत्साङ्गददोरत्नकम्बुकंकणपाणयः ।
नूपुरैः कटकैर्भाताः कटिसूत्रांगुलीयकैः ॥४८॥

श्रीवत्स अंगदद: रत्न कम्बु कङ्कण पाणय: नूपुरैः कटकैः भाताः कटिसूत्र अंगुलीयकैः ॥४८॥

श्रीवत्स	श्रीवत्स चिह्न	**नूपुरैः कटकैः**	नूपुर, कड़े,
अंगदद:	भुजाओंमें अंगद	**कटिसूत्र**	करधनी
कम्बु रत्न	शंखाकार रत्न	**अंगुलीयकैः**	अंगूठियोंसे
	जटित	**भाता**	सुशोभित ॥४८॥
पाणयः कङ्कण	हाथोंमें कंकण,		

आङ्घ्रिमस्तकमापूर्णास्तुलसीनवदामभिः ।
कोमलैः सर्वगात्रेषु भूरिपुण्यवदर्पितैः ॥४९॥

आङ्घ्रि मस्तकं आपूर्णाः तुलसी नवदामभिः कोमलैः सर्व गात्रेषु भूरिपुण्यवत् अर्पितैः ॥४९॥

सर्व कोमलैः	सब सुकुमार	**नवदामभिः**	नवीन मालाओंसे
गात्रेषु	अंगोंमें	**आङ्घ्रि**	चरणोंसे
भूरि-	परम	**मस्तकं**	सिर तक
पुण्यवत्	पुण्यवान जनोंकी	**आपूर्णाः**	आच्छादित थे
अर्पितैः	चढ़ायी हुई		॥४९॥
तुलसी	तुलसीकी		

चन्द्रिकाविशदस्मेरैः सारुणापांगवीक्षितैः ।
स्वकार्थानामिव रजः सत्त्वाभ्यां स्रष्टृपालकाः ॥५०॥

चन्द्रिका विशद स्मेरैः स अरुण अपांग वीक्षितैः स्वक अर्थानां इव रजः सत्त्वाभ्यां स्रष्टृ पालकाः ॥५०॥

चन्द्रिका	चन्द्रिकाके समान	**अर्थानां**	प्रयोजन
विशद	उज्वल	**रजः**	रजोगुण तथा
स्मरैः	मुस्कान तथा	**सत्त्वाभ्यां**	सत्व गुण द्वारा
अरुण स	लालिमा युक्त	**स्रष्टृ**	उत्पन्न करने और
अपांग	कटाक्ष	**पालकाः**	पालन करने वाले
वीक्षितैः	पातसे	**इव**	के समान लगते
स्वक	अपने भक्तोंका		थे ॥५०॥

आत्मादिस्तम्बपर्यन्तैर्मूर्तिमद्भिश्चराचरैः ।
नृत्यगीताद्यनेकार्हैः पृथक् पृथगुपासिताः ॥५१॥

आत्मा आदि स्तम्ब पर्यन्तैः मूर्तिमद्भिः चराचरैः नृत्य गीता आदि अनेक अर्हैः पृथक् पृथक् उपासिताः ॥५१॥

आत्मा-	(ब्रह्मा देखते हैं) कि	**आदि अनेक**	आदि अनेक
आदि	उनसे लेकर	**अर्हैः**	पूजा-साधनोंसे
स्तम्ब पर्यन्तैः	तिनके तक	**पृथक् पृथक्**	अलग-अलग वे
मूर्तिमद्भिः	मूर्तिमान होकर	**उपासिताः**	पूजित हो रहे हैं
चराचरैः	सब चराचर द्वारा		॥५१॥
नृत्य गीत	नृत्य, गायन		

अणिमाद्यैर्महिमभिरजाद्याभिर्विभूतिभिः ।
चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः परीता महदादिभिः ॥५२॥

अणिमा आद्यैः महिम भिः अजा आद्याभिः विभूतिभिः चतुर्विंशति भिः तत्त्वैः परीता महदादिभिः ॥५२॥

अणिमा महिम	अणिमा, महिमा	**अजा आद्यभिः**	माया आदि
आद्यैः भिः	आदि सिद्धियोंसे	**विभूतिभिः**	विभूतियोंसे

चतुर्विंशति	चौबीसो	महदादिभिः	परमर्षियोंसे
तत्त्वै भिः	तत्त्वोंसे तथा	परीता	घिरे हैं ॥५२॥

कालस्वभावसंस्कारकामकर्मगुणादिभिः ।
स्वमहिध्वस्तमहिभिर्मूर्तिमद्भिरुपासिताः ॥५३॥

काल स्वभाव संस्कार काम कर्म गुण आदिभिः स्वमहि ध्वस्त महिभिः मूर्तिमत् भिः उपासिताः ॥५३॥

महिभिः	(भगवानकी) महिमा से	काम	वासना
		गुण आदिभिः	गुण आदि द्वारा
स्वमहि	अपनी महिमा	मूर्तिमत् भिः	मूर्तिमान रूपसे
ध्वस्त	नष्ट हुए	उपासिताः	उपासित हो रहे हैं ॥५३॥
काल स्वभाव	काल, स्वभाव,		
संस्कार कर्म	संस्कार, कर्म,		

सत्यज्ञानानन्तानन्दमात्रैकरसमूर्तयः ।
अस्पृष्टभूरिमाहात्म्या अपि ह्युपनिषद्दृशाम् ॥५४॥

सत्य ज्ञान अनन्त आनन्द मात्र एक रस मूर्तयः अस्पृष्ट भूरि-माहात्म्या अपि हि उपनिषत् दृशाम् ॥५४॥

सत्य ज्ञान	सत्य, ज्ञान,	दृशां	विद्वानोंके लिए
अनन्त आनन्द	अनन्त आनन्द	अपि	भी उनका
मात्र	मात्र ही हैं	भूरिमाहात्म्या	महा माहात्म्य
एक रस	केवल रस	अस्पृष्ट	स्पर्शनीय नहीं है ॥५४॥
मूर्तयः	स्वरूप हैं,		
हि उपनिषत्	क्योंकि उपनिषदोंके		

एवं सकृद् ददर्शाजः परब्रह्मात्मनोऽखिलान् ।
यस्य भासा सर्वमिदं विभाति सचराचरम् ॥५५॥

एवं सकृत् ददर्श अजः परब्रह्म आत्मनः अखिलान् यस्य भासा सर्वं इदं विभाति सचराचरम् ॥५५॥

एवं	इस प्रकार	इदं सर्वं	यह सब
सकृत	एक ही साथ	सचराचरं	सम्पूर्ण जगत्
अजः	ब्रह्माने	विभाति	भास रहा है, उस
अखिलान्	उन सबको	परब्रह्म	परम ब्रह्मका
यस्य भासा	जिसके प्रकाशसे	आत्मनः ददर्श	स्वरूप देखा ॥५५॥

ततोऽतिकुतुकोद्वृत्तस्तिमितैकादशेन्द्रियः ।
तद्धाम्नाभूदजस्तूष्णीं पूर्देव्यन्तीव पुत्रिका ॥५६॥

ततः अति कुतुक उद्वृत्त स्तिमित एकादश इन्द्रियः तत् धाम्ना अभूत् अजः तूष्णीं पूः देव्य अन्ति इव पुत्रिका ॥५६॥

ततः	तब	अजः	ब्रह्माजी
अति कुतक	अत्यन्त कौतूहल वश	तूष्णीं	चुप होकर
एकादश-	ग्यारहो इन्द्रियों	देव्य अन्ति	ब्रह्मदेवीके समीप
इन्द्रियः	(दस इन्द्रियां और मन) के	पुत्रिका इव	एक पुतलीके समान
		अभूत्	हो गये ॥५६॥
स्तिमित	स्तब्ध हो जानेसे		

इतीरेशेऽतर्क्ये निजमहिमनि स्वप्रमितिके
परत्राजातोऽतन्निरसनमुखब्रह्मकमितौ ।
अनीशेऽपि द्रष्टुं किमिदमिति वा मुह्यति सति
चछादाजो ज्ञात्वा सपदि परमोऽजाजवनिकाम् ॥५७॥

इति ईशे अतर्क्ये निजमहिमनि स्वप्रमतिके परत्राजातः अतत् निरसनमुख ब्रह्म कं इतौ अनीशे अपि द्रष्टुं किं इदं इति वा मुह्यति सति चछाद अजः ज्ञात्वा सपदि परमः अजा जवनिकाम् ॥५७॥

इति	इस प्रकार	स्व प्रमतिके	स्वयं प्रकाश,
अतर्क्ये	तर्कातीत	कं	आनन्द स्वरूप
ईशे	सर्वेश्वर,	परत्राजातः	मायातीत
निजमहिमनि	अपनी महिमामें स्थित	अतत्	अनात्म
		निरसन	पदार्थोंका बाध

मुख	करके श्रुतिसे जाने वाले	वा मुह्यति सति	अथवा मोहिता (मूर्छित) होता हुआ
ब्रह्म	ब्रह्म	आजाः ज्ञात्वा	ब्रह्माको जानकर
इतो द्रष्टुं	इसको देखनेमें	परमः	परम पुरुष
अनीशे अपि	असमर्थ होनेपर भी	सपदि	तत्काल
किं इदं	'यह क्या है'	अजा जवनिकां	मायाका पर्दा
इति	इस प्रकार	चछाद	ढक दिया ॥५७॥

ततोऽर्वाक् प्रतिलब्धाक्षः कः परेतवदुत्थितः ।
कृच्छ्रादुन्मील्य वै दृष्टीराचष्टेदं सहात्मना ॥५८॥

ततः अर्वाक् प्रतिलब्ध अक्षः कः परेतवत् उत्थितः कृच्छ्रात् उन्मील्य वै दृष्टिः आचष्ट इदं सह आत्मना ॥५८॥

ततः	तब	कृच्छ्रात्	बड़े कष्टसे
अर्वाक्	उस स्थितिसे नीचे आनेपर	वै दृष्टिः	निश्चय करके
		उन्मील्य	नेत्र खोलकर
प्रतिलब्ध अक्षः	इन्द्रिय चेतना मिली	सह आत्मना	अपने साथ
कः	ब्रह्माजीने	इदं	इस जगतको
परेतवत्	मरकर	आचष्ट	देखा ॥५८॥
उत्थितः	उठे (पुन जीवित) हुए जैसे		

सपद्येवाभितः पश्यन् दिशोऽपश्यत् पुरः स्थितम् ।
वृन्दावनं जनाजीव्यद्रुमाकीर्णं समाप्रियम् ॥५९॥

सपदि एव अभितः पश्यन् दिशः अपश्यत् पुरः स्थितं वृन्दावनं जन आजीव्य द्रुम आकीर्णं सम आप्रियम् ॥५९॥

सपदि एव	तत्काल	पुरः स्थितं	सामने स्थित
अभितः दिशः	चारों दिशाओंमें	जन	लोगोंको
पश्यन्	(चौंककर) देखते हुए	आजीव्य	जीविका देनेवाले

द्रुम आकीर्ण	वृक्षोंसे भरे हुए	वृन्दावनं	वृन्दावनको
सम	सब ओर	अपश्यत्	देखा ॥५६॥
आप्रियं	अत्यन्त प्रिय		

यत्र नैसर्गदुर्वैराः सहासन् नृमृगादयः ।
मित्राणीवाजितावासद्रुतरुट्तर्षकादिकम् ॥६०॥

यत्र नैसर्ग दुः वैराः सह आसन् नृ मृग आदयः मित्राणि इव अजित आवास द्रुत रुट् तर्षक आदिकम् ॥६०॥

अजित	अजित श्रीकृष्णके	दुः	दूर हो जानेसे
आवास	निवासके कारण	नृ मृग आदयः	मनुष्य-पशु आदि
यत्र रुट्	जहां रोष,	मित्राणि इव	मित्रोंके समान
तर्षक	तृष्णा	सह आसन्	साथ ही रहते
आदिकं द्रुत्	आदिके भाग जानेसे		थे ॥६०॥
नैसर्ग वैराः	स्वाभाविक शत्रुता		

तत्रोद्वहत् पशुपवंशशिशुत्वनाट्यं
ब्रह्माद्वयं परमनन्तमगाधबोधम् ।
वत्सान् सखीनिव पुरा परितो विचिन्व-
देकं सपाणिकवलं परमेष्ठ्यचष्ट ॥६१॥

तत्र उद्वहत् पशुपवंश शिशुत्व नाट्यं ब्रह्म अद्वयं परं अनन्तं अगाध बोधं वत्सान् सखीन् इव पुरा परितः विचिन्वत् एकं सपाणि कवलं परमेष्ठि अचष्ट ॥६१॥

तत्र	वहाँ	बोधं	स्वरूपको
पशुपवंश	गोपकुलके	पुरा इव	पहिलेके समान
शिशुत्व नाट्यं	शिशुकी लीला	वत्सान्	बछड़ों तथा
उद्वहत्	करते हुए	सखीन्	सखाओंको
अद्वयं ब्रह्म	अद्वितीय ब्रह्म	परितः	चारों ओर
परं अनन्तं	परम पुरुष, अनन्त,	विचिन्वत्	ढूंढ़ते हुए
अगाध	अथाह ज्ञान	एकः सपाणि	अलेके हाथपर

कवलं	ग्रास लिए	अचष्ट	देखा ।।६१।।
परमेष्ठि	ब्रह्माने		

दृष्ट्वा त्वरेण निजधोरणतोऽवतीर्य
पृथ्व्यां वपुः कनकदण्डमिवाभिपात्य ।
स्पृष्ट्वा चतुर्मुकुटकोटिभिरङ्घ्रियुग्मं
नत्वा मुदश्रुसुजलैरकृताभिषेकम् ।।६२।।

दृष्ट्वा त्वरेण निजधोरणतः अवतीर्य पृथ्व्यां वपुः कनकदण्डं इव अभिपात्य स्पृष्ट्वा चतुः मुकुट कोटिभिः अङ्घ्रि युग्मं नत्वा मुद् अश्रुजलैः अकृत अभिषेकम् ।।६२।।

दृष्ट्वा	देखकर	चतुः	चारों
त्वरेण	शीघ्रता पूर्वक	मुकुट कोटिभिः	मुकुटोंकी नोकसे
निजधोरणतः	अपने वाहनसे	अङ्घ्रि युग्मं	(श्रीकृष्णके) दोनों चरणोंका
अवतीर्य	उतरकर		
वपुः	शरीरको	स्पृष्ट्वा	स्पर्श करके
पृथ्व्यां	पृथ्वीपर	मुद् अश्रुजलैः	आनन्दाश्रु जलसे
कनकदण्डं	स्वर्ण-दण्डके	अभिषेकं	उनका स्नान
इव अभिपात्य	समान गिराकर	अकृत	करा दिया ।।६२।।

उत्थायोत्थाय कृष्णस्य चिरस्य पादयोः पतन् ।
आस्ते महित्वं प्राग्दृष्टं स्मृत्वा स्मृत्वा पुनः पुनः ।।६३।।

उत्थाय उत्थाय कृष्णस्य चिरस्य पादयोः पतन् आस्ते महित्वं प्राक् दृष्टं स्मृत्वा स्मृत्वा पुनः पुनः ।।६३।।

प्राक् दृष्टं	(अभी) पहिले देखी	चिरस्य	देर तक
महित्वं	महिमाको	कृष्णस्य	श्रीकृष्णके
पुनः पुनः	बार-बार	पादयोः	चरणोंपर
स्मृत्वा	स्मरण करके, फिर	पतन्	गिरते
स्मृत्वा	स्मरण करके	आस्ते	रहे ।।६३।।
उत्थाय उत्थाय	बार-बार उठ-उठ कर		

शनैरथोत्थाय विमृज्य लोचने
मुकुन्दमुद्वीक्ष्य विनम्रकन्धरः ।
कृताञ्जलिः प्रश्रयवान् समाहितः
सवेपथुर्गद्गदयैलतेलया ॥६४॥

शनैः अथ उत्थाय विमृज्य लोचने मुकुन्दं उद्वीक्ष्य विनम्र कन्धरः कृत अञ्जलिः प्रश्रयवान् समाहितः सवेपथुः गद्गद्या ऐलत एलया ॥६४॥

अथ शनैः	फिर धीरेसे	प्रश्रयवान्	विनयपूर्वक
उत्थाय	उठकर	समाहितः	एकाग्र चित्तसे
लोचने	नेत्रोंको	सवेपथुः	काँपते हुए
विमृज्य	पोंछकर	गद्गद्या	गद्गद्
मुकुन्दं	श्रीकृष्णको	एलया	वाणीसे
उद्वीक्ष्य	सिर उठाकर देखकर	ऐलत	स्तुति करने लगे ॥६४॥
विनम्र	नम्रतासे		
कन्धरः	गर्दन झुकाकर		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

नौमीड्य तेऽभ्रवपुष तडिदम्बराय
गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु-
लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय ॥१॥

नौमि ईड्य ते अभ्र वपुष तडित् अम्बराय गुञ्जा अवतंस परिपिच्छल सन्मुखाय वन्यस्रजे कवल वेत्र विषाण वेणु लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुप अंगजाय ॥१॥

अभ्र वपुष	मेघश्याम शरीर,	**विषाण**	शृंगी लिए
तडित्	बिजलीके समान	**लक्ष्मश्रिये**	श्रीवत्स चिह्न युक्त
अम्बराय	पीताम्बरधारी	**सन्मुखाय**	सन्मुख खड़े
गुञ्जा	गुञ्जाके	**मृदुपदे**	कोमल-चरण
अवतंस	कुंडलधारी	**पशुप-**	गोपाल-
परिपिच्छल	मयूर पिच्छवाले,	**अंगजाय**	नन्दन
वन्यस्रजे	वनमाला पहिने,	**ईड्य**	स्तवनीय
कवल	(हाथपर) ग्रास,	**ते नौमि**	आपको नमस्कार ॥१॥
वेणु	वेंत (का लकुट)		

अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य
स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि ।
नेशे महि त्ववसितुं मनसाऽऽन्तरेण
साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः ॥२॥

अस्य अपि देव वपुषः मत् अनुग्रहस्य स्व इच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कः अपि न ईशे महि तु अवसितुं मनसा आन्तरेण साक्षत् तव एव किं उत आत्मसुख अनुभूतेः ॥२॥

देव	देव !
अस्य अपि	(आपका) यह भी
वपुषः	श्रीविग्रह
मत्	मुझपर
अनुग्रहस्य	कृपा करनेके लिए
स्व	आपकी
इच्छामयस्य	इच्छाका मूर्तिमान रूप हैं
भूतमयस्य	पञ्चभूतात्मक
न तु	नहीं ही है,
कः अपि	कोई भी
मनसा	मनके द्वारा
आन्तरेण	समाधि लगाकर भी
तव एव	आपके इसी रूपकी
महि	महिमाको
अवसितुं	जाननेमें
ईशे न	समर्थ नहीं है
तु साक्षात्	फिर साक्षात्
आत्मसुख	आत्मानन्द
अनुभूतेः	अनुभव रूपको
उत किं	भला कैसे जानेगा ॥२॥

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव
जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम् ।
स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभि-
र्ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम् ॥३॥

ज्ञाने प्रयासं उत् अपास्य नमन्त एव जीवन्ति सत् मुखरितां भवदीय वार्तां स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनु वाङ् मनः भिः ये प्रायशः अजित जितः अपि असि तैः त्रिलोक्याम् ॥३॥

ये ज्ञाने	जो (लोग) ज्ञान
प्रयासं	प्राप्तिका उद्योग
उत् अपास्य	सर्वथा त्यागकर
स्थाने स्थिताः	अपने स्थानपर ही रहते हुए
तनु वाङ्	शरीर, वाणी,
मनः भिः	मनसे
नमन्त एव	विनयावनत होकर ही
श्रुतिगतां	कानमें पहुँची
सत्	सत् पुरुषों द्वारा
मुखरितां	वर्णित
भवदीय वार्तां	आपकी कथाको
जीवन्ति	अपना जीवन बना लेते हैं
त्रिलोक्यां	त्रिलोकीमें
अजित अपि	अजेय होनेपर भी आप
तैः प्रायशः	उनके द्वारा प्रायः
जितः असि	जीत लिए गये हैं ॥३॥

श्रेयःसृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये ।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥४॥

श्रेयः सृतिं भक्तिं उदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति ये केवल बोध लब्धये तेषां असौ क्लेशल एव शिष्यते न अन्यत् यथा स्थूल तुष अवघातिनाम् ॥४॥

विभो	प्रभो !	**क्लेशल एव**	कष्ट उठाना ही
ते	आपकी	**शिष्यते**	बच रहता (मिलता) है
श्रेयः सृतिं	कल्याण दायिनी		
भक्तिं उदस्य	भक्तिको छोड़कर	**यथा**	जैसे
ये केवल	जो केवल	**स्थूल तुष**	थोथी भूसी
बोध लब्धये	ज्ञान-प्राप्तिके लिए	**अवघातिनां**	कूटनेवालोंको
क्लिश्यन्ति	क्लेश उठाते हैं	**अन्यत्**	दूसरा कुछ
तेषां असौ	उनको यह	**न**	नहीं मिलता ॥४॥

पुरेह भूमन् बहवोऽपि योगिन-
स्त्वदर्पितेहा निजकर्मलब्धया ।
विबुध्य भक्त्यैव कथोपनीतया
प्रपेदिरेऽञ्जोऽच्युत ते गतिं पराम् ॥५॥

पुरा इह भूमन् बहवः अपि योगिनः त्वत् अर्पित ईहा निजकर्म लब्धया विबुध्य भक्त्या एव कथा उपनीतया प्रपेदिरे अञ्जः अच्युत ते गतिं पराम् ॥५॥

भूमन्	सर्व व्यापक प्रभु	**निजकर्म**	अपने सब कर्म और
इह	इस लोकमें	**ईहा**	चेष्टाएँ
पुरा	पहिले हुए	**त्वत्**	आपको
बहवः	बहुतसे	**अर्पित**	अर्पण करके तथा
योगिनः अपि	योगियोंने भी	**कथा**	(आपकी) कथा

उपनीतया	(श्रवण) से लाये (प्राप्त)	अञ्जः	सरलतापूर्वक
		ते परां गतिं	आपके परमपदको
भक्त्या एव	भक्तिसे ही	प्रपेदिरे	प्राप्त कर लिया
विबुध्य	(आपको) जानकर		॥५॥
अच्युत	हे अच्युत !		

तथापि भूमन् महिमागुणस्य ते
विबोद्धुमर्हत्यमलान्तरात्मभिः ।
अविक्रियात् स्वानुभवादरूपतो
ह्यनन्यबोध्यात्मतया न चान्यथा ॥६॥

तथा अपि भूमन् महिमा अगुणस्य ते विबोद्धुं अर्हति अमल अन्तरात्मभिः अविक्रियात् स्व अनुभवात् अरूपतः हि अनन्य बोध्य आत्मतया न च अन्यथा ॥६॥

भूमन्	विभो !	अविक्रियात्	(वह निर्गुण रूप) निर्विकार
तथा अपि	ऐसा होनेपर भी		
ते	आपके	स्व अनुभवात्	आत्मानुभव रूप
अगुणस्य	निर्गुण स्वरूपकी	अरूपतः	निराकार होनेसे
महिमा	महिमा	आत्मतया	अपने आत्म स्वरूप-में ही
अमल	निर्मल		
अन्तरात्मभिः	अन्तःकरण पुरुषों द्वारा	अनन्य बोध्य	केवल ज्ञेय है
		अन्यथा	दूसरे किसी
विबोद्धुं	जानी जानी	अपि न च	भी रूपमें नहीं (जाना जाता)
अर्हति	चाहिए		
हि	क्योंकि		॥६॥

गुणात्मनस्तेऽपि गुणान् विमातुं
हितावतीर्णस्य क ईशिरेऽस्य ।
कालेन यैर्वा विमिताः सुकल्पै-
र्भूपांसवः खे मिहिका द्युभासः ॥७॥

गुण आत्मनः ते अपि गुणान् विमातुं हित अवतीर्णस्य क ईशिरे अस्य कालेन यैः वा विमिताः सुकल्पैः भूपांसवः खे मिहिका द्युभासः ॥७॥

यैः	जिन्होंने	**अस्य**	इस जगतके
कालेन	दीर्घकालमें	**हित**	कल्याणके लिए
भूपांसवः	पृथ्वीके धूलि कणों-को	**अवतीर्णस्य**	अवतार धारण किये
		ते	आपके
खे मिहिका	आकाशकी ओसकी बूँदें और	**गुण आत्मनः**	सगुण स्वरूपके
		गुणान्	गुणोंको
द्युभासः	नभके तारे भी	**विमातुं**	गिन लेनेमें
विमिताः	गिन लेनेमें	**क ईशिरे**	कौन समर्थ हो सकता है ॥७॥
सुकल्पैः	पूरी सामर्थ्य पा ली है (उनमें भी)		

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो
भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम् ।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते
जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक् ॥८॥

तत् ते अनुकम्पां सुसमीक्षमाणः भुञ्जान एव आत्मकृतं विपाकं हृत् वाक् वपुः भिः विदधत् नमः ते जीवेत यः मुक्तिपदे स दायभाक् ॥८॥

तत्	इसलिए	**ते नमः**	आपको नमस्कार (आत्मार्पण)
ते	आपके		
अनुकम्पां	अनुग्रहको	**विदधत्**	करता हुआ
सुसमीक्षमाणः	भली प्रकार देखता हुआ,	**जीवेत**	जीवन बिताता है
		स मुक्तिपदे	वह मोक्षपदका
आत्मकृतं	अपने किये कर्मोंका	**दायभाक्**	(पिताकी सम्पत्तिका पुत्रके समान स्वतः सिद्ध) अधि-कारी है ॥८॥
विपाकं	फल		
भुञ्जान एव	भोगता हुआ ही		
यः हृत् वाक्	जो हृदय, वाणी,		
वपुः भिः	शरीरसे		

पश्येश मेऽनार्यमनन्त आद्ये
परात्मनि त्वय्यपि मायिमायिनि ।
मायां वितत्येक्षितुमात्मवैभवं
ह्यहं कियानैच्छमिवार्चिरग्नौ ॥६॥

पश्य ईश मे अनार्यं अनन्त आद्ये पर आत्मनि त्वयि अपि मायि मायिनि मायां वितत्य ईक्षितुं आत्म वैभवं हि अहं कियान् ऐच्छं इव अर्चिः अग्नौ ॥६॥

ईशः	स्वामी !	**त्वयि अपि**	आपपर भी
मे अनार्यं	मेरी निकृष्टता (नीचता) तो	**आत्म वैभवं**	अपना ऐश्वर्य
		ईक्षितुं ऐच्छं	देखनेके लिए इच्छा की
पश्य	देखिये कि		
अनन्त	अनन्त,	**मायां**	(मैंने अपनी) माया
आद्ये	आदिपुरुष,	**वितत्य**	फैलायी,
पर आत्मनि	परमात्मा,	**हि अग्नौ**	भला अग्निके सम्मुख
मायि	बड़े-बड़े मायावियों-को भी	**अर्चिः इव**	चिनगारीके समान
		अहं कियान्	मैं होता ही क्या हूँ ॥६॥
मायिनि	मायामें डाले रखने वाले		

अतः क्षमस्वाच्युत मे रजोभुवो
ह्यजानतस्त्वत्पृथगीशमानिनः ।
अजावलेपान्धतमोऽन्धचक्षुष
एषोऽनुकम्प्यो मयि नाथवानिति ॥१०॥

अतः क्षमस्व अच्युत मे रजः भुवः हि अजानतः त्वत् पृथक् ईश मानिनः अजा अवलेप अन्धतमः अन्ध चक्षुषः एषः अनुकम्प्यः मयि नाथवान् इति ॥१०॥

अतः अच्युत	अतः अच्युत !	**अजा**	मायाके
रजः भुवः	रजोगुणसे उत्पन्न	**अन्धतमः**	प्रगाढ़ अन्धकाररूप

अवलेप	अज्ञानसे लिप्त होने-	**मानिनः**	माननेवाला था,
	के कारण	**इति**	यह समझकर कि
अन्ध चक्षुषः	अन्धे नेत्र	**एषः मयि**	यह मुझसे
	(ज्ञान हीन) होकर	**नाथवान्**	स्वामी वाला (मेरा
हि	क्योंकि		सेवक)
अजानतः	(आपको) नहीं	**अनुकम्पयः**	कृपाका पात्र है
	जानता था	**मे क्षमस्व**	मुझे क्षमा करें
त्वत् पृथक्	आपसे अलग		॥१०॥
ईश	अपनेको समर्थ		

क्वाहं तमोमहदहंखचराग्निवार्भू-
संवेष्टिताण्डघटसप्तवितस्तिकायः ।
क्वेदृग्विधाविगणिताण्डपराणुचर्या-
वाताध्वरोमविवरस्य च ते महित्वम् ॥११॥

क्व अहं तमः महत् अहं ख चर अग्नि वारि भू संवेष्टित अण्डघट सप्त वितस्तिकायः क्व ईदृक् विध अविगणित अण्ड परअणु चर्या वात अध्व रोम विवरस्य च ते महित्वम् ॥११॥

तमः महत्	प्रकृति, महत्तत्त्व,	**क्व ईदृक् विध**	कहां इस प्रकारके
अहं ख	अहंकार, आकाश,	**अविगणित**	अनगिनती
चर अग्नि	वायु, अग्नि,	**अण्ड**	ब्रह्माण्ड
वारि भू	जल, पृथ्वी (के	**अध्वरोम**	(जिनके) रोम
	आवरणों) से	**विवरस्य**	छिद्रोंमें
संवेष्टित	घिरा हुआ	**परअणु चर्या**	परमाणुके समान
अण्डघट	एक ब्रह्माण्ड रूपसे	**वात**	उड़ते रहते हैं ऐसी
	बना	**ते च**	आपकी तो
क्व अहं	कहां तो मैं	**महित्वं**	(अपार) महिमा
सप्त वितस्ति-	अपने सात बित्तेका		॥११॥
कायः	शरीर वाला और		

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः
किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे ।
किमस्तिनास्तिव्यपदेशभूषितं
तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः ॥१२॥

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः किं कल्पते मातुः अधोक्षज अगसे किं अस्ति नास्ति व्यपदेश भूषितं तव अस्ति कुक्षेः कियत् अपि अनन्तः ॥१२॥

अधोक्षज	हृषीकेश !	**व्यपदेश**	इन शब्दोंसे
गर्भगतस्य	अपने गर्भमें आये (शिशु) का	**भूषितं**	कही जानेवाली
पादयोः	पैरोंका	**कियत् अपि**	कोई भी वस्तु
उत्क्षेपणं	उछालना	**अनन्तः**	हे अनन्त !
मातुः किं	माता क्या	**तव कुक्षेः**	आपके ही कोखमें
अगसे कल्पते	अपराध मानती है ?	**किं अपि अस्ति**	ही क्या नहीं है ॥१२॥
'अस्ति नास्ति'	'है' और 'नहीं है'		

जगत्त्रयान्तोदधिसम्प्लवोदे
नारायणस्योदरनाभिनालात् ।
विनिर्गतोऽजस्त्विति वाङ् न वै मृषा
किं त्वीश्वर त्वन्न विनिर्गतोऽस्मि ॥१३॥

जगत्त्रय अन्त उदधि सम्प्लव उदे नारायणस्य उदर नाभि नालात् विनिर्गतः अजः तु इति वाङ् न वै मृषा किं तु ईश्वरः त्वत् न विनिर्गतः अस्मि ॥१३॥

जगत्त्रय	त्रिलोकी का	**नारायणस्य**	भगवान् नारायणके
अन्त	अन्त (प्रलय) हो जानेपर फिर	**उदर नाभि**	उदरकी नाभिसे निकले
सम्प्लव	प्रलय	**नालात्**	कमल-नालसे
उदधि उदे	सागरके जलमें	**अजः विनिर्गतः**	ब्रह्मा उत्पन्न हुए,

इति वाङ् तु	ऐसी वेदवाणी तो	किं त्वत्	क्या आपसे
वै मृषा	निश्चित रूपसे झूठी	न विनिर्गतः	मैं नहीं उत्पन्न हुआ
न	नहीं है	अस्मि	हूँ ॥१३॥
तु ईश्वरः	तब हे स्वामी !		

नारायणस्त्वं न हि सर्वदेहिना-
मात्मास्यधीशाखिललोकसाक्षी ।
नारायणोऽङ्गं नरभूजलायना-
त्तच्चापि सत्यं न तवैव माया ॥१४॥

नारायणः त्वं न हि सर्वदेहिनां आत्मा अस्य अधीशः अखिललोक साक्षी नारायणः अंगं नर भू जल अयनात् तत् च अपि सत्यं न तव एव माया ॥१४॥*

हि त्वं	क्योंकि आप	नारायणः	नारायण (कहलाते)
सर्वदेहिनां	सब देहधारियोंके		हैं,
आत्मा	आत्मा हैं तथा	तत् च	वह भी
अस्य	इस जगतके	नारायणः अपि	नारायण रूप भी
अधीशः	अधीश्वर,	सत्यं न	सत्य नहीं है
अखिललोकः	सब लोकोंके	तव	वह आपका (एक)
साक्षी	द्रष्टा हैं,		रूप है, पर
नर अंगं भू	नरके अंगसे उत्पन्न	माया एव	माया ही
जल	जलमें	न	(असत्) नहीं है
अयनात्	निवास करनेसे		॥१४॥

तच्चेज्जलस्थं तव सज्जगद्वपुः
किं मे न दृष्टं भगवंस्तदैव ।

---

* इस श्लोकके अन्वय भेदसे अनेक अर्थ सम्भव हैं—जैसे आप केवल नारायण ही नहीं हैं। क्योंकि सबके आत्मा, सब लोकोंके साक्षी तथा स्वामी हैं। वे जो नरके देहसे उत्पन्न जलमें रहने वाले हैं, वे सत्य नहीं हैं, आपकी मायासे प्रतीत हो जाते हैं।

किं वा सुदृष्टं हृदि मे तदैव
किं नो सपद्येव पुनर्व्यदर्शि ॥१५॥

तत् चेत् जलस्थं तव सत् जगत् वपुः किं मे न दृष्टं भगवन् तदा एव किं वा सुदृष्टं हृदि मे तदा एव किं नः सपदि एव पुनः व्यदर्शि ॥१५॥

भगवन्	भगवन !	हृदि	हृदयमें जो
तत् जलस्थं	वह जलमें स्थित	सुदृष्टं	भली प्रकार देखा
तव	आपका	किं	वह क्या था (सत्य
जगत् वपुः	विश्वरूप देह		था या नहीं)
चेत् सत्	यदि सत्य था तो	तदा एव	उसी समय
मे	मुझे	सपदि एव पुनः	शीघ्र ही फिर
किं	(कमलनालमें होकर	किं न	क्यों नहीं
	जानेपर) क्यों	व्यदर्शि	दीखा (अनार्धान
न दृष्टं	नहीं दीखा,		हो गया) ॥१५॥
तदा एव मे	उसी समय मैंने		

अत्रैव मायाधमनावतारे
ह्यस्य प्रपञ्चस्य बहिः स्फुटस्य ।
कृत्स्नस्य चान्तर्जठरे जनन्या
मायात्वमेव प्रकटीकृतं ते ॥१६॥

अत्र एव माया धमन अवतारे हि अस्य प्रपञ्चस्य बहिः स्फुटस्य कृत्स्नस्य च अन्तः जठरे जनन्या माया त्वं एव प्रकटीकृतं ते ॥१६॥

माया धमन	माया-नाशक प्रभो !	जनन्या	माताको (दिखलाने-
हि अत्र एव	क्योंकि इसी		के) लिए
अवतारे	अवतारमें	त्वं एव	आपने ही
अस्य स्फुटस्य	इस प्रत्यक्ष	प्रकटीकृतं	प्रकट कर दिया
बहिः प्रपञ्चस्य	वाह्य जगत्को	ते	यह आपकी
जठरे अन्तः	अपने उदरके भीतर	माया	माया ही तो है
कृत्स्नस्य	सम्पूर्ण रूपसे		॥१६॥

यस्य कुक्षाविदं सर्वं सात्मं भाति यथा तथा ।
तत्वय्यपोह तत् सर्वं किमिदं मायया विना ॥१७॥

यस्य कुक्षाः इदं सर्वं स आत्मं भाति यथा तथा तत् त्वयि अपि इह तत् सर्वं किं इदं मायया विना ॥१७॥

इदं सर्वं	यह सब संसार	**तथा तत्**	वैसा ही
स आत्मं	आपके सहित	**सर्वं**	सब दीखा
यथा	जैसा	**किं इदं**	क्या यह
इह भाति	यहां प्रतीत होता है,	**मायया विना**	मायाके बिना हो
यस्य त्वयि	जिस आपके		सकता है ॥१७॥
कुक्षाः अपि	पेटमें भी		

अद्यैव त्वदृतेऽस्य किं मम न ते
मायात्वमादर्शित-
मेकोऽसि प्रथमं ततो व्रजसुहृद्-
वत्साः समस्ता अपि ।
तावन्तोऽसि चतुर्भुजास्तदखिलैः
साकं मयोपासिता-
स्तावन्त्येव जगन्त्यभूस्तदमितं
ब्रह्माद्वयं शिष्यते ॥१८॥

अद्य एव त्वत् दृते अस्य किं मम न ते माया त्वं आदर्शितं एकः असि प्रथमं ततः व्रज सुहृत् वत्साः समस्ता अपि तावन्तः असि चतुर्भुजाः तत् अखिलैः साकं मया उपासिताः तावन्ति एव जगन्ति अभूः तत् अमितं ब्रह्म अद्वयं शिष्यते ॥१८॥

अद्य एव	आज ही	**किं ते**	क्या अपनी
त्वत् दृते	आपको छोड़कर	**माया त्वं**	माया आपने
अस्य	इस जगतको और	**न आदर्शितं**	नहीं दिखलाया ?
मम	मुझे	**प्रथमं**	पहिले

एकः असि	अकेले ही थे,
ततः	फिर
व्रज सुहृत्	व्रजके सखा और
समस्ता	सम्पूर्ण
वत्साः अपि	बछड़े भी हो गये
तावन्तः	फिर उतने ही
चतुर्भुजाः	चतुर्भुज रूप
असि	हो गये
तत् अखिलैः	वे सब रूप
तावन्तः एव	उतने ही रूपोंसे
मया साकं	मेरे साथ (अन्यों द्वारा)
उपासिताः	उपासित हो रहे थे
जगन्ति अभूः	(उतने ही) ब्रह्माण्ड भी बन गये थे,
तत् अमितं	वह अपरिमित (अब)
ब्रह्म अद्वयं	अद्वितीय ब्रह्म रूपसे
शिष्यते	शेष रह गये हैं ॥१८॥

अजानतां त्वत्पदवीमनात्म-
न्यात्माऽऽत्मना भासि वितत्य मायाम् ।
सृष्टाविवाहं जगतो विधान
इव त्वमेषोऽन्त इव त्रिनेत्रः ॥१९॥

अजानतां त्वत् पदवीं अनात्मनि आत्मा आत्मना भासि वितत्य मायां सृष्टाः इव अहं जगतः विधानं इव त्वं एषः अन्तः इव त्रिनेत्रः ॥१९॥

त्वत् पदवीं	आपके स्वरूपको
अजानतां	न जाननेवालों के लिए
अनात्मनि	प्रकृतिमें
आत्मना	अपने द्वारा ही
आत्मा भासि	जीवके रूपमें प्रतीत होते हैं,
मायां	मायाका
वितत्य	विस्तार करके
सृष्टाः	सृष्टिके लिए
अहं इव	जैसे मेरा स्वरूप,
जगतः	सृष्टिकी
विधानं	विधान-रक्षाके लिए
त्वं	आपके (विष्णु रूपके)
इव	समान,
एषः	इस जगतके
अन्तः	प्रलयके लिए
त्रिनेत्रः इव	शंकरजीके समान (होकर) स्थित हैं ॥१९॥

सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि
तिर्यक्षु यादस्स्वपि तेऽजनस्य ।
जन्मासतां दुर्मदनिग्रहाय
प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च ॥२०॥

सुरेषु ऋषिषु ईश तथा एव नृषु अपि तिर्यक्षु यादः सु अपि ते अजनस्य जन्म असतां दुर्मद निग्रहाय प्रभो विधातः सत् अनुग्रहाय च ॥२०॥

प्रभो ईश	प्रभो ! स्वामी !	**यादः सु अपि**	जलचरोंमें भी
विधातः	सर्व विधाता !	**जन्म**	जन्म (अवतार) लेना
ते अजनस्य	आप अजन्माका	**दुर्मद असतां**	गर्विष्ठ दुष्टोंका
सुरेषु	देवताओं,	**निग्रहाय**	नियन्त्रण करनेके लिए
ऋषिसु	ऋषियों,		
नृषिषु अपि	मनुष्योंमें भी,	**च सतां**	तथा सत्पुरुषोंपर
तथा इव	इसी प्रकार	**अनुग्रहाय**	कृपा करनेके लिए
तिर्यक्षु	पशु-पक्षियोंमें,		होता है ॥२०॥

को वेत्ति भूमन् भगवन् परात्मन्
योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम् ।
क्व वा कथं वा कति वा कदेति
विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम् ॥२१॥

कः वेत्ति भूमन् भगवन् पर आत्मन् योगेश्वरः अतीः भवतः त्रिलोक्यां क्व वा कथं वा कति वा कदा इति विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम् ॥२१॥

भूमन्	सर्वव्यापक	**अतीः**	अवतार लेकर
भगवन्	भगवान्	**योगमायां**	योगमायाका
पर आत्मन्	परमात्मा	**विस्तारयन्**	विस्तार करके
योगेश्वरः	योगेश्वर आप	**क्रीडसि**	जब क्रीड़ा करते हैं
त्रिलोक्यां	त्रिलोकीमें		तब

क्व वा	कौन-सी या	इति कः	इस प्रकार
कथं वा	किस प्रकार की या	वेत्ति	जान सकता है
कति	कितने प्रकारकी		॥२१॥
वा कदा	अथवा कब (लीला करेंगे)		

तस्मादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपं
स्वप्नाभमस्तधिषणं पुरुदुःखदुःखम् ।
त्वय्येव नित्यसुखबोधतनावनन्ते
मायात उद्यदपि यत् सदिवावभाति ॥२२॥

तस्मात् इदं जगत् अशेषं असत् स्वरूपं स्वप्न आभं अस्तधिषणं पुरुदुःख दुःखं त्वयि एव नित्यसुख बोधतनाः अनन्ते मायात उद्यत् अपि यत् सत् इव अवभाति ॥२२॥

तस्मात् इदं	इसलिए यह	नित्यसुख	नित्य आनन्द,
अशेषं जगत्	सम्पूर्ण विश्व	बोधतनाः	ज्ञान स्वरूप,
असत् स्वरूपं	असत् स्वरूप,	अनन्ते	अनन्तमें
स्वप्न आभं	स्वप्नके समान	मायात	मायासे
अस्तधिषणं	अज्ञान स्वरूप,	उद्यत् अपि	उत्पन्न होनेपर भी
पुरुदुःख	असंख्य दुःखोंसे भरा	यत् सत् इव	क्योंकि सतके समान
दुःखं	दुःखदायी	अवभाति	प्रतीत हो रहा है
त्वयि एव	आप ही		॥२२॥

एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः
सत्यः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः ।
नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरञ्जनः
पूर्णोऽद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः ॥२३॥

एकः त्वं आत्मा पुरुषः पुराणः सत्यः स्वयं ज्योतिः अनन्त आद्यः नित्यः अक्षरः अजस्र सुखः निरञ्जनः पूर्णः अद्वयः मुक्त उपाधितः अमृतः ॥२३॥

एकः	एक मात्र	अजस्र सुखः	अखण्ड आनन्द रूप,
त्वं सत्यः	आप सत्य,	निरञ्जनः	निष्कलंक,
आत्मा	आत्मा हैं,	पूर्णः अद्वयः	परिपूर्ण, अद्वितीय,
पुराणः पुरुषः	पुराण-पुरुष,	उपाधितः	उपाधियोंसे
स्वयं ज्योतिः	स्वयं प्रकाश,	मुक्तः	विनिर्मुक्त
अनन्त आद्यः	अनन्त, अनादि	अमृतः	अमृत स्वरूप हैं
नित्यः अक्षरः	नित्य, अविनाशी,		॥२३॥

एवंविधं त्वां सकलात्मनामपि
स्वात्मानमात्मात्मतया विचक्षते ।
गुर्वर्कलब्धोपनिषत्सुचक्षुषा
ये ते तरन्तीव भवानृताम्बुधिम् ॥२४॥

एवंविधं त्वां सकल आत्मनां अपि स्वात्मानं आत्मा आत्मतया विचक्षते गुरु अर्क लब्ध उपनिषत् सुचक्षुषा ये ते तरन्ति इव भव अनृत अम्बुधिम् ॥२४॥

सकल आत्मनां	समस्त जीवोंका	आत्म लब्ध	स्वयं प्राप्त करके
त्वां एवंविधं	आपके इस प्रकारके	ये	जो
स्वात्मानं अपि	स्वरूपको ही	विचक्षते	साक्षात्कार कर लेते हैं
आत्मतया	अपनी आत्मा रूपसे	ते भव	वे संसार रूपी
गुरु अर्क	गुरु रूपी सूर्य तथा	अनृत	असत्
उपनिषत्	उपनिषत् रूपी	अम्बुधिम्	समुद्रको
सुचक्षुषा	उत्तम नेत्रोंके द्वारा	तरन्ति इव	तैरते जाते हैं ॥२४॥

आत्मानमेवात्मतयाविजानतां
तेनैव जातं निखिलं प्रपञ्चितम् ।
ज्ञानेन भूयोऽपि च तत् प्रलीयते
रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा ॥२५॥

आत्मानं एव आत्मतया अविजानतां तेन एव जातं निखिलं प्रपञ्चितं ज्ञानेन भूयः अपि च तत् प्रलीयते रज्ज्वां अहेः भोग भवः अभवौ यथा ॥२५॥

आत्मानं	परमात्माको	च ज्ञानेन	और ज्ञानके द्वारा
आत्मतया	अपने स्वरूपमें	रज्ज्वां	रस्सीमें
अविजानतां	न जाननेवालोंको	अहेः भोग	सर्पके शरीरकी
तेन एव	उसी (अज्ञान) से ही	भवः	उत्पत्ति और
निखिलं	सम्पूर्ण	अभवौ यथा	विनाशके समान
प्रपञ्चितं	जगत	तत् भूयः अपि	वह फिरसे ही
जातं	उत्पन्न (प्रतीत होता) है,	प्रलीयते	लीन हो जाता है ॥२५॥

अज्ञानसंज्ञौ भवबन्धमोक्षौ
द्वौ नाम नान्यौ स्त ऋतज्ञभावात् ।
अजस्रचित्यात्मनि केवले परे
विचार्यमाणे तरणाविवाहनी ॥२६॥

अज्ञान संज्ञौ भव बन्धमोक्षौ द्वौ नाम न अन्यौ स्त ऋतज्ञभावात् अजस्रचिति आत्मनि केवले परे विचार्यमाणे तरणाः इव अहनि ॥२६॥

विचार्यमाणे	विचार करनेपर	अन्यौ	भिन्न दूसरा
तरणाः	सूर्यमें	न	नहीं है, अतः
अहनि इव	दिन-रातके समान	भव	संसारमें
अजस्रचिति	अखण्ड ज्ञान स्वरूप	बन्धमोक्षौ	बन्धन और मुक्ति
केवले	अद्वितीय	अज्ञान	अज्ञान जन्य
परे आत्मनि	परमात्मामें	द्वौ नाम	दोनों नाम
स्त	उस	संज्ञौ	केवल संज्ञा (नाम मात्र) हैं ॥२६॥
ऋतज्ञभावात्	ज्ञान स्वरूपसे		

त्वामात्मानं परं मत्वा परमात्मानमेव च ।
आत्मा पुनर्बहिर्मृग्य अहोऽज्ञजनताज्ञता ॥२७॥

त्वां आत्मानं परं मत्वा परमात्मानं एव च आत्मा पुनः बहिः मृग्य अहो अज्ञ जनता अज्ञता ॥२७॥

अहो अज्ञ	अहो, अज्ञानी	**परमात्मनं एव**	परमात्माको भी
जनता	लोगोंका (कितना)	**परं मत्त्वा**	(अपनेसे भिन्न) कोई
अज्ञता	अज्ञान है कि		दूसरा मानकर
त्वां	आप	**पुनः आत्मा**	फिर आत्माको
आत्मानं	आत्म स्वरूपको	**बहिः मृग्यः**	बाहर अन्वेषणीय
च	तथा		मानते हैं ॥२७॥

अन्तर्भवेऽनन्त भवन्तमेव
ह्यतत्त्यजन्तो मृगयन्ति सन्तः ।
असन्तमप्यन्त्यहिमन्तरेण
सन्तं गुणं तं किमु यन्ति सन्तः ॥२८॥

अन्तः भवे अनन्त भवन्तं एव हि अतत् त्यजन्तः मृगयन्ति सन्तः असन्तं अपि अन्ति अहिं अन्तरेण सन्तं गुणं तं किमु यन्ति सन्तः ॥२८॥

अनन्त	अनन्त !	**असन्तं अपि**	न होनेपर भी
अन्तः भवे	इस संसाके	**अहिं**	(प्रतीयमान) सर्पका
	भीतर	**अन्तरेण**	त्याग किये बिना
सन्तः	सत्पुरुष	**सन्तं तं गुणं**	विद्यमान उस रस्सी-
अतत्	आपसे भिन्नका		को
त्यजन्तः	त्याग करते हुए	**सन्तः**	सत्पुरुष
भवन्तं एव हि	आपको ही	**किमु यन्ति**	कैसे जान सकते
मृगयन्ति	ढूंढ़ते हैं,		हैं ॥२८॥

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय-
प्रसादलेशानुगृहीत एव हि ।
जानाति तत्त्वं भगवन् महिम्नो
न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन् ॥२९॥

अथ अपि ते देव पदाम्बुज द्वय प्रसादलेश अनुगृहीत एव हि जानाति तत्त्वं भगवन् महिम्नः न च अन्य एकः अपि चिरं विचिन्वन् ॥२९॥

देव भगवन्	हे देव ! भगवन् !	तत्त्वं	आपका तत्व तथा
अथ अपि	फिर भी	महिम्नः	महिमा
ते द्वय	आपके दोनों	जानाति	जानता है
पदाम्बुज	चरण-कमलोंकी	च अन्य	और कोइ दूसरा
प्रसादलेश	कृपाका तनिक-सा अंश भी पाकर जो	एकः अपि	एक भी
		चिरं विचिन्वन्	दीर्घकाल तक ढूंढ़ता हुआ
अनुगृहीत	(आपका) अनुग्रह भाजन हुआ है	न	नहीं जान पाता ॥२९॥
एव हि	केवल वही		

तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो
भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम् ।
येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां
भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम् ॥३०॥

तत् अस्तु मे नाथ स भूरि भागः भवे अत्र वा अन्यत्र तु वा तिरश्चां येन अहं इकः अपि भवत् जनानां भूत्वा निषेवे तव पाद पल्लवम् ॥३०॥

नाथ	स्वामी !	येन अहं	जिससे मैं
तत् मे	इसलिए मेरा	भवत्	आपके
स भूरि भागः	वह बड़ा सौभाग्य	जनानां	भक्तोंमें-से
अस्तु	हो कि	एकः	कोई एक
अत्र भवे	इस जन्ममें,	अपि भूत्वा	भी होकर
वा	अथवा	तव	आपके
अन्यत्र	दूसरे जन्ममें	पाद पल्लवं	चरण-पल्लवोंकी
वा तु	अथवा तो	निषेवे	सेवा करूं ॥३०॥
तिरश्चां	पशु-पक्षी होकर ही		

अहोऽतिधन्या व्रजगोरमण्यः
स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा ।
यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना
यत्तृप्तयेऽद्यापि न चालमध्वराः ॥३१॥

अहो अति धन्या व्रज गो रमण्यः स्तन्य अमृतं पीतं अतीव ते मुदा यासां विभो वत्सतरा आत्मज आत्मना यत् तृप्तये अद्य अपि न च अलं अध्वराः ॥३१॥

विभो	प्रभो !	**ते**	आपने
यत्	जिनके	**अतीव मुदा**	अत्यन्त आनन्दसे
तृप्तये	तृप्त करनेमें	**वत्सतरा**	छोटे बछड़े और
अद्य अपि	आज तक भी	**आत्मज**	पुत्र
अध्वराः	(बड़े-बड़े) यज्ञ	**आत्मना**	स्वरूबसे
च अलं	भी पर्याप्त	**यासां स्तन्य**	जिनके स्तनोंको
न	नहीं हुए	**अमृतं**	अमृत (दूध)
अहो व्रज	धन्य हैं इस व्रजकी	**पीतं**	पिया ॥३१॥
गो रमण्यः	गायें और गोपियां		

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥३२॥

अहो भाग्यं अहो भाग्यं नन्दगोप व्रज ओकसां यत् मित्रं परम् आनन्दं पूर्ण ब्रह्म सनातनम् ॥३२॥

अहो	धन्य	**परम्**	परम
भाग्यं	भाग्य हैं	**आनन्दं**	आनन्द स्वरूप
नन्दगोप	गोपराज नन्दके	**सनातनम्**	सनातन
व्रज	व्रजके	**पूर्ण ब्रह्म**	पूर्ण ब्रह्म आप
ओकसां	निवासियोंके	**यत् मित्रं**	जिनके मित्र हैं
अहो	परम धन्य		॥३२॥
भाग्यं	भाग्य हैं,		

एषां तु भाग्यमहिमाच्युत तावदास्ता-
मेकादशैव हि वयं बत भूरिभागाः ।
एतद्धृषीकचषकैरसकृत् पिबामः
शर्वादयोऽङ्घ्र्युदजमध्वमृतासवं ते ॥३३॥

एषां तु भाग्य महिमा अच्युत तावत् आस्तां एकादश एव हि वयं बत भूरिभागाः एतत् हृषीक चषकैः असकृत् पिबामः शर्व आदयः अङ्घ्रि उदजं अध्वं अमृत आसवं ते ॥३३॥

अच्युत	अच्युत !
एषां	इन (व्रजवासियों) की
भाग्य महिमा	भाग्य-महिमा
तु तावत्	तो तब तक
आस्तां	अलग रहे,
हि बत वयं	क्योंकि अहो हम
शर्व आदयः	शिव आदि (इनकी इन्द्रियोंको अधिदेवता)
एकादश एव	ग्यारह ही
भूरिभागा	अत्यन्त भाग्यशाली हैं (क्योंकि)
एतत् हृषीक चषकैः	इनकी इन्द्रिय रूपी प्यालोंसे
अध्वं	आवागमन निवर्तक
अमृत आसवं ते अङ्घ्रि	अमृत आसव आपके चरणोंका
उदजं	जल
असकृत्	निरन्तर
पिबामः	पीते हैं ॥३३॥

तद् भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां
यद् गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम् ।
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान् मुकुन्द-
स्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव ॥३४॥

तत् भूरिभाग्यं इह जन्म किमपि अटव्यां यत् गोकुले अपि कतम अङ्घ्रि रजः अभिषेकं यत् जीवितं तु निखिलं भगवान् मुकुन्दः तु अद्य अपि यत् पदरजः श्रुति मृग्यं एव ॥३४॥

इह अटव्यां	इस वन (वृन्दावन) में
यत्	जो
गोकुले अपि	गोकुलमें भी
किमपि	कोई-सा भी
जन्म	जन्म हो जाय तो
तत्	वह (मेरा)
भूरिभाग्यं	बड़ा सौभाग्य होगा
कतम	(क्योंकि उससे यहांके) किसीकी
अङ्घ्रि	चरण
रजः अभिषेकं	धूलिमें स्नान मिलेगा,
अद्य अपि	आज तक भी

यत् पदरजः	जिनकी चरण-रज	मुकुन्दः तु	मुकुन्द तो
श्रुति	श्रुतियोंकी	यत् जीवितं	जिनके जीवन
मृग्यं एव	अन्वेषणीय ही है वे	तु निखिलं	तथा सर्वस्व हैं
भगवान्	भगवान्		॥३४॥

एषां घोषनिवासिनामुत भवान् किं देव रातेति न-
श्चेतो विश्वफलात् फलं त्वदपरं कुत्राप्ययन् मुह्यति ।
सद्द्वेषादिव पूतनापि सकुला त्वामेव देवापिता
यद्धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयास्त्वत्कृते ॥३५॥

एषां घोष निवासिनां उत भवान् किं देव रात इति नः चेतः विश्व फलात् फलं त्वत् अपरं कुत्र अप्ययन् मुह्यति सत् द्वेषात् इव पूतना अपि सकुला त्वां एव देव आपिता यत् धाम अर्थ सुहृत् प्रिय आत्म तनय प्राण आशयाः त्वत् कृते ॥३५॥

यत् धाम	जिनके घर	फलं	फल
अर्थ सुहृत्	धन, बन्धु-बान्धव,	कुत्र अप्ययन्	कुछ भी न पाकर
प्रिय आत्म	प्रिय शरीर,	मुह्यति	मोहमें पड़ रहा है
तनय प्राण	पुत्र, प्राण,	देव	देव !
आशयाः	हृदय	सत्	उस सत् स्वरूप
त्वत् कृते	आपके लिए ही हैं	द्वेषात् इव	आपसे द्वेष-सा
एषां	इन		करनेके कारण
घोष निवासिनां	व्रज-वासियोंको	पूतना अपि	पूतना भी
देव भवान्	हे देव ! आप	सकुला	पूरे कुलके साथ
उत किं रात	भला क्या देंगे,	त्वां एव	आपको ही
इति नः	ऐसा सोचकर मेरा	आपिता	प्राप्त हो गयी (तब
चेतः	चित्त		इनको क्या देंगे)
विश्व फलात्	विश्वके फलोंमें		॥३५॥
त्वत् अपरं	आपसे श्रेष्ठ कोई		

तावद् रागादयः स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम् ।
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः ॥३६॥

तावत् राग आदयः स्तेनाः तावत् कारागृहं गृहं तावत् मोहः अङ्घ्रि निगडः यावत् कृष्ण न ते जनाः ॥३६॥

कृष्ण	श्रीकृष्ण !	कारागृहं	कारागार रहता है,
तावत्	तभी तक	तावत् मोहः	तभी तक मोह
राग आदयः	राग (द्वेष) आदि	अङ्घ्रि निगडः	पैरकी बेड़ी रहता है
स्तेनाः	चोर रहते हैं,	यावत्	जब तक
तावत्	तभी तक	जनाः ते	लोग तुम्हारे
गृहं	घर	न	नहीं हो जाते ॥३६॥

प्रपञ्चं निष्प्रपञ्चोऽपि विडम्बयसि भूतले ।
प्रपन्नजनतानन्दसन्दोहं प्रथितुं प्रभो ॥३७॥

प्रपञ्चं निष्प्रपञ्चः अपि विडम्बयसि भूतले प्रपन्न जनता आनन्द संदोहं प्रथितुं प्रभो ॥३७॥

प्रभो	प्रभो !	प्रथितुं	विस्तार करनेके लिए
निष्प्रपञ्चः	प्रपञ्चसे सर्वथा रहित	भूतले	(आप) पृथ्वीपर
		प्रपञ्चं	सृष्टिका
अपि	होनेपर भी	विडम्बयसि	प्रपञ्च फैलाते हैं ॥३७॥
प्रपन्न जनता	शरणागत लोगोंके		
आनन्द सन्दोहं	आनन्दकी उमंगका		

जानन्त एव जानन्तु किं बहूक्त्या न मे प्रभो ।
मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः ॥३८॥

जानन्त एव जानन्तु किं बहु उक्त्या न मे प्रभो मनसः वपुषः वाचः वैभवं तव अगोचरः ॥३८॥

प्रभो	प्रभो !	मे मनसः	मेरे मन
तव वैभवं	आपका ऐश्वर्य	वपुषः	शरीर और
जानन्त एव	जाननेवाले ही	वाचः	वाणीसे वह
जानन्तु	जानते रहें	गोचरः	इन्द्रियातीत (अज्ञात) है ॥३८॥
बहु उक्त्या न	बहुत कहनेसे		
किं	क्या लाभ		

अनुजानीहि मां कृष्ण सर्वं त्वं वेत्सि सर्वदृक् ।
त्वमेव जगतां नाथो जगदेतत्तवार्पितम् ॥३६॥

अनुजानीहि मां कृष्ण सर्वं त्वं वेत्सि सर्वदृक् त्वं एव जगतां नाथः जगत् एतत् तव अर्पितम् ॥३६॥

कृष्ण	श्रीकृष्ण !	नाथः	स्वामी हैं
त्वं सर्वं	आप सब कुछ	एतत् जगत्	यह ससार
वेत्सि	जानते हैं (क्योंकि)	तव अर्पितं	आपमें ही स्थित है
सर्वदृक्	सर्वदर्शी हैं,	मां	मुझे (जानेकी)
त्वं एव	आप ही	अनुजानीहि	अनुमति दीजिये
जगतां	सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्डोंके		॥३६॥

श्रीकृष्ण वृष्णिकुलपुष्करजोषदायिन्
क्ष्मानिर्जरद्विजपशूदधिवृद्धिकारिन् ।
उद्धर्मशार्वरहर क्षितिराक्षसध्रु-
गाकल्पमार्कमर्हन् भगवन् नमस्ते ॥४०॥

श्रीकृष्ण वृष्णिकुल पुष्कर जोषदायिन् क्ष्मा निर्जर द्विज पशु उदधि वृद्धिकारिन् उद्धर्म शार्वरहर क्षिति राक्षस ध्रुक् आकल्पं अर्कं अर्हन् भगवन् नमः ते ॥४०॥

वृष्णिकुल	वृष्णि वंश रूपी	वृद्धिकारिन्	बढ़ानेवाले (चन्द्र स्वरूप)
पुष्कर	कमलको	उद्धर्म शार्वरहर	पाखण्डियों रूपी रात्रिको नष्ट करने वाले
जोषदायिन्	विकसित करनेवाले		
अर्कं	सूर्य,		
क्ष्मा निर्जर	पृथ्वी, देवता,	क्षिति राक्षस	पृथ्वीके राक्षसोंके
द्विज पशु	ब्राह्मण, पशु रूपी	ध्रुक्	विनाशक
उदधि	समुद्रको		

आकल्पं	कल्प पर्यन्त	**श्रीकृष्ण**	श्रीकृष्ण
अर्हन्	पूजनीय	**ते नमः**	आपको नमस्कार ॥४०॥
भगवन्	भगवान् !		

श्रीशुक उवाच

इत्यभिष्टूय भूमानं त्रिः परिक्रम्य पादयोः ।
नत्वाभीष्टं जगद्धाता स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥४१॥

इति अभिष्टूय भूमानं त्रिः परिक्रम्य पादयोः नत्वा अभीष्टं जगत् धाता स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥४१॥

जगत् धाता	जगतके विधाता ब्रह्माजी	**पादयोः**	(श्रीकृष्णके) चरणोंमें
भूमानं	उन भूमा पुरुषकी	**नत्वा**	प्रणाम करके
इति	इस प्रकार	**अभीष्टं**	अपने गन्तव्य
अभिष्टूय	स्तुति करके	**स्वधाम**	अपने परम धाम (ब्रह्मलोक)
त्रिः	तीन बार	**प्रत्यपद्यत**	चले गये ॥४१॥
परिक्रम्य	परिक्रमा करके		

ततोऽनुज्ञाप्य भगवान् स्वभुवं प्रागवस्थितान् ।
वत्सान् पुलिनमानिन्ये यथापूर्वसखं स्वकम् ॥४२॥

ततः अनुज्ञाप्य भगवान् स्वभुवं प्राक् अवस्थितान् वत्सान् पुलिनं आनिन्ये यथा पूर्वं सखं स्वकम् ॥४२॥

ततः	तब	**यथा पूर्वं**	पहिलेके समान ही
भगवान्	भगवान् (श्रीकृष्ण)	**अवस्थितान्**	बैठे (बैठा दिये) हुए
स्वभुवं	ब्रह्माजीको	**स्वकं सखं**	अपने सखाओंके पास
अनुज्ञाप्य	अनुमति देकर (विदा करके)	**वत्सान्**	बछड़ोंको
प्राक्	पहिलेसे (ब्रह्माजी द्वारा)	**पुलिनं**	सरिता-तटपर
		आनिन्ये	ले आये ॥४२॥

एकस्मिन्नपि यातेऽब्दे प्राणेशं चान्तराऽऽत्मनः ।
कृष्णमायाहता राजन् क्षणार्धं मेनिरेऽर्भकाः ॥४३॥

एकस्मिन् अपि याते अब्दे प्राण ईशं च अन्तरा आत्मनः कृष्णमाया आहता राजन् क्षण अर्धं मेनिरे अर्भकाः ॥४३॥

राजन्	राजन् !	**कृष्णमाया**	श्रीकृष्णकी मायासे
प्राण ईशं	अपने प्राणोंके स्वामी	**आहता**	मोहित
च	तथा	**अर्भकाः**	बालकोंने
अन्तरा आत्मनः	अपने हृदय स्वरूपसे	**क्षण अर्धं**	आधा क्षण
एकस्मिन अब्दे	एक वर्ष (वियोगके)	**मेनिरे**	माना ॥४३॥
याते अपि	बीत जानेपर भी		

किं किं न विस्मरन्तीह मायामोहितचेतसः ।
यन्मोहितं जगत् सर्वमभीक्ष्णं विस्मृतात्मकम् ॥४४॥

किं किं न विस्मरन्ति इह माया मोहित चेतसः यत् मोहितं जगत् सर्वं अभीक्ष्णं विस्मृत आत्मकम् ॥४४॥

इह	इस संसारमें	**मोहितं**	सम्मोहित
माया मोहित	मायासे मोहित	**सर्वं जगत्**	सम्पूर्ण संसार
चेतसः	चित्त लोग	**अभीक्ष्णं**	निरन्तर
किं किं न	क्या-क्या नहीं	**आत्मकं**	अपने स्वरूपको ही
विस्मरन्ति	भूलते	**विस्मृत**	भूला है ॥४४॥
यत्	जिस (माया) से		

ऊचुश्च सुहृदः कृष्णं स्वागतं तेऽतिरंहसा ।
नैकोऽप्यभोजि कवल एहीतः साधु भुज्यताम् ॥४५॥

ऊचुः च सुहृदः कृष्णं स्वागतं ते अति रंहसा न एकः अपि अभोजि कवल एहि इतः साधु भुज्यताम् ॥४५॥

सुहृदः	सखाओंने	**ते स्वागतं**	'तुम्हारा स्वागत है,
कृष्णं	श्रीकृष्णसे	**अति रंहसा**	बहुत वेगसे (लौटे)
ऊचुः च	कहा भी	**एकः अपि**	(हमने) एक भी

कवल न	ग्रास नहीं	**साधु**	भली प्रकार
अभोजि	खाया है,	**भुज्यतां**	भोजन करो ॥४५॥
इतः एहि	यहां आओ,		

ततो हसन् हृषीकेशोऽभ्यवहृत्य सहार्भकैः ।
दर्शयंश्चर्माजगरं न्यवर्तत वनाद् व्रजम् ॥४६॥

ततः हसन् हृषीकेशः अभ्यवहृत्य सह अर्भकैः दर्शयन् चर्म आजगरं न्यवर्तत वनात् व्रजम् ॥४६॥

ततः	तब	**आजगरं**	अजगर (अघासुर)
हृषीकेशः	हृषीकेश श्रीकृष्ण		का
हसन्	हँसते हुए	**चर्म दर्शयन्**	चमड़ा दिखलाते हुए
सह अर्भकैः	बालकोंके साथ	**वनात् व्रजं**	वनमें-से व्रजको
अभ्यवहृत्य	भोजन करके	**न्यवर्तत**	लौटे ॥४६॥

बर्हप्रसूननवधातुविचित्रिताङ्गः
प्रोद्दामवेणुदलशृङ्गरवोत्सवाढ्यः ।
वत्सान् गृणन्ननुगगीतपवित्रकीर्ति-
र्गोपीदृगुत्सवदृशिः प्रविवेश गोष्ठम् ॥४७॥

बर्ह प्रसून नव धातु विचित्रित अंगः प्रोद्दाम वेणु दल शृंग रवः उत्सव आढ्यः वत्सान् गृणन् अनुग गीत पवित्र कीर्तिः गोपीदृक् उत्सव दृशिः प्रविवेश गोष्ठम् ॥४७॥

बर्ह	मयूर पिच्छ तथा	**रव**	ध्वनिका
प्रसून	पुष्पोंसे सजे,	**उत्सव आढ्यः**	भारी उत्सव मनाते,
नव	नवीन (गैरिकादि)	**वत्सान् गृणन्**	बछड़ोंको पुकारते हैं,
धातु	धातुओंसे	**पवित्र कीर्तिः**	उनका पवित्र यश
अंगः विचित्रित	शरीरपर अनेक चित्र बने हुए हैं,	**अनुग**	पीछे चलते सखा
		गीत	गा रहे हैं,
प्रोद्दाम	उच्च स्वरसे	**गोपीदृक्**	गोपियोंके नेत्रोंके
वेणु दल	वंशी, पत्ते या		लिए
शृंग	शृंगीकी	**उत्सव**	उत्सव (आनन्द) रूप

दृशिः	दृष्टिसे देखते	प्रविवेश	प्रवेश किया ॥४७॥
गोष्ठं	अपने गोष्ठमें		

अद्यानेन महाव्यालो यशोदानन्दसूनुना ।
हतोऽविता वयं चास्मादिति बाला व्रजे जगुः ॥४८॥

अद्य अनेन महाव्यालः यशोदा नन्द सूनुना हतः अविता वयं च अस्मात् इति बाला व्रज्ञे जगुः ॥४८॥

बाला इति	बालकोंने इस प्रकार	अद्य महाव्यालः	आज महासर्प (अजगर)
व्रजे जगुः	व्रजमें कहा–		
अनेन	इस	हतः	मारा है,
यशोद-नन्द	यशोदा तथा नन्दके	च अस्मात्	तथा उससे
सूनुना	कुमारने	वयं अविता	हम बचाये गये हैं ॥४८॥

राजोवाच

ब्रह्मन् परोद्भवे कृष्णे इयान् प्रेमा कथं भवेत् ।
योऽभूतपूर्वस्तोकेषु स्वोद्भवेष्वपि कथ्यताम् ॥४९॥

ब्रह्मन् पर उद्भवे कृष्णे इयान् प्रेमा कथं भवेत् यः अभूतपूर्वः तोकेषु स्व उद्भवेषु अपि कथ्यताम् ॥४९॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	यः स्व उद्भवेषु	जो अपनेसे उत्पन्न
पर उद्भवे	दूसरेसे उत्पन्न	तोकेषु अपि	बालकोंमें भी
कृष्णे इयान्	श्रीकृष्णमें इतना	अभूतपूर्वः	पहिले कभी नहीं हुआ था
प्रेमा	प्रेम		
कथं भवेत्	कैसे हुआ	कथ्यतां	यह बतलाइये ॥४९॥

श्रीशुक उवाच

सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वात्मैव वल्लभः ।
इतरेऽपत्यवित्ताद्यास्तद्वल्लभतयैव हि ॥५०॥

सर्वेषां अपि भूतानां नृप स्व आत्मा एव वल्लभः इतरे अपत्य वित्त आद्याः तत् वल्लभतया एव हि ॥५०॥

नृप	राजन् !	**वल्लभतया**	प्रिय होने
सर्वेषां भूतानां	समस्त प्राणियोंके	**एव**	से ही
अपि	लिए ही	**इतरे अपत्य**	दूसरे पुत्र,
स्व आत्मा एव	अपना आत्मा ही	**वित्त आद्याः**	धन आदि (प्रिय)
हि वल्लभः	क्योंकि प्रिय है		हैं ॥५०॥
तत्	उसके		

तद् राजेन्द्र यथा स्नेहः स्वस्वकात्मनि देहिनाम् ।
न तथा ममतालम्बिपुत्रवित्तगृहादिषु ॥५१॥

तत् राजेन्द्र यथा स्नेहः स्व स्वक आत्मनि देहिनां न तथा ममता लम्बि पुत्र वित्त गृह आदिषु ॥५१॥

राजेन्द्र	महाराज !	**ममता लम्बि**	ममत्वके आधार
तत् देहिनां	इसलिए शरीर-धारियोंका	**पुत्र वित्त**	पुत्र, धन,
		गृह आदिषु	घर आदिमें
स्व स्वक	अपने-अपने	**तथा न**	वैसा (प्रेम) नहीं
आत्मनि	आत्मासे		होता ॥५१॥
यथा स्नेहः	जैसे प्रेम है,		

देहात्मवादिनां पुंसामपि राजन्यसत्तम ।
यथा देहः प्रियतमस्तथा न ह्यनु ये च तम् ॥५२॥

देह आत्म वादिनां पुंसां अपि राजन्य सत्तम यथा देहः प्रियतमः तथा न अनु ये च तम् ॥५२॥

राजन्य सत्तम	नृप श्रेष्ठ !	**प्रियतमः**	अत्यन्त प्रिय होता है
देह आत्म	शरीरको ही आत्मा	**ये च तं अनु**	जो भी उस (देह) के
वादिनां	माननेवाले		लगे हैं
पुंसां अपि	पुरुषोंके लिए भी	**तथा न**	वैसे (प्रिय) नहीं
यथा देहः	जैसा शरीर		होते ॥५२॥

देहोऽपि ममताभाक् चेत्तर्ह्यसौ नात्मवत् प्रियः ।
यज्जीर्यत्यपि देहेऽस्मिन् जीविताशा बलीयसी ॥५३॥

देहः अपि ममता भाक् चेत् तर्हि हि असौ न आत्मवत् प्रियः यत् जीर्यति अपि देहे अस्मिन् जीवित आशा बलीयसी ॥५३॥

चेत् देहः	यदि शरीर (मैं न रहकर)	**यत् देहे**	क्योंकि शरीरके
ममता भाक्	ममताका भाजन (मेरा) हो गया	**जीर्यति अपि**	बहुत जीर्ण होनेपर भी
हि तर्हि	क्योंकि तब	**अस्मिन्**	इसी (देह) में
असौ आत्मवत्	यह (देह) आत्माके समान	**बलीयसी**	बलवान
प्रियः न	प्रिय नहीं होता	**जीवित आशा**	जीते रहनेकी आशा रहती है ॥५३॥

तस्मात् प्रियतमः स्वात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ।
तदर्थमेव सकलं जगदेतच्चराचरम् ॥५४॥

तस्मात् प्रियतमः स्व आत्मा सर्वेषां अपि देहिनां तत् अर्थं एव सकलं जगत् एतत् चराचरम् ॥५४॥

तस्मात्	इसलिए	**एतत् चराचरं**	यह चराचर
सर्वेषां	सभी	**सकलं जगत्**	सम्पूर्ण जगत
देहिनां अपि	देहधारियोंको ही	**तत् अर्थं एव**	उस (आत्मा) के लिए ही है ॥५४॥
स्व आत्मा	अपना आत्मा		
प्रियतमः	अत्यन्त प्रिय है		

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम् ।
जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया ॥५५॥

कृष्णं एनं अवेहि त्वं आत्मानं अखिल आत्मनां जगत् हिताय सः अपि अत्र देहि इव आभाति मायया ॥५५॥

एनं कृष्णं	इन श्रीकृष्णको	**आत्मनां**	आत्माओंका
अखिल	सब	**आत्मानं**	आत्मा

त्वं अवेहि	तुम समझो	**मायया**	अपनी मायासे
सः अपि अत्र	वह भी यहां (व्रजमें)	**देहि इव**	शरीरधारीसे
जगत् हिताय	संसारके कल्याणके लिए	**आभाति**	प्रतीत हो रहे हैं ॥५५॥

वस्तुतो जानतामत्र कृष्णं स्थास्नु चरिष्णु च ।
भगवद्रूपमखिलं नान्यद् वस्त्विह किञ्चन ॥५६॥

वस्तुतः जानतां अत्र कृष्णं स्थास्नु चरिष्णु च भगवत् रूपं अखिलं न अन्यत् वस्तु इह किञ्चन ॥५६॥

अत्र	इस संसारमें	**अखिलं**	समस्त जगत्
वस्तुतः	सचमुच	**भगवत् रूपं**	भगवत् स्वरूप है,
कृष्णं	श्रीकृष्णके स्वरूपको	**इह**	इस संसारमें
जानतां	जाननेवालोंके लिए	**किञ्चन**	कोई भी
स्थास्नु च	स्थावर तथा	**अन्यत् वस्तु**	दूसरी वस्तु है ही
चरिष्णु	जंगम	**न**	नहीं ॥५६॥

सर्वेषामपि वस्तूनां भावार्थो भवति स्थितः ।
तस्यापि भगवान् कृष्णः किमतद्वस्तु रूप्यताम् ॥५७॥

सर्वेषां अपि वस्तूनां भाव अर्थः भवति स्थितः तस्य अपि भगवान् कृष्णः किं अतत् वस्तु रूप्यताम् ॥४७॥

सर्वेषां	सभी	**अपि**	भी (कारण)
वस्तूनां अपि	वस्तुओंका ही	**भगवान् कृष्णः**	भगवान् श्रीकृष्ण हैं
भाव	मूल स्वरूप	**रूप्यतां**	अतः बतलाओ
अर्थः स्थितः	अपने कारणमें स्थित	**अतत्**	उनसे भिन्न
भवति	रहता है	**किं वस्तु**	कौन-सी वस्तु है ॥५७॥
तस्य	उस (कारण) के		

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं
महत्पदं पुण्ययशोमुरारेः ।
भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं
पदं पदं यद् विपदां न तेषाम् ॥५८॥

सम आश्रिता ये पदपल्लव प्लवं महत् पदं पुण्ययशः मुरारेः भव अम्बुधिः वत्सपदं परं पदं पदं पदं यत् विपदां न तेषाम् ॥५८॥

महत् पदं	महापुरुषोंके आश्रय	विपदां न	कहीं विपत्ति नहीं है,
पुण्ययशः	पवित्र कीर्ति	भव अम्बुधिः	संसार-सागर
मुरारेः	श्रीमुरारिके	वत्सपदं	बछड़ेके खुरके गड्ढे के समान है और
पदपल्लव	चरण-पल्लव रूपी		
प्लवं ये	नौकाका जिन्होंने	परं पदं	परम पद
सम	भली प्रकार	पदं पदं	पद पदपर प्राप्त है
आश्रिता	आश्रय लिया है		॥५८॥
तेषां	उनके लिए		

एतत्ते सर्वमाख्यातं यत् पृष्टोऽहमिह त्वया ।
तत् कौमारे हरिकृतं पौगण्डे परिकीर्तितम् ॥५९॥

एतत् ते सर्वं आख्यातं यत् पृष्टः अहं इह त्वया तत् कौमारे हरिकृतं पौगण्डे परिकीर्तितम् ॥५९॥

यत् कौमारे	जो कुमारा वस्थामें	इह त्वया	इस सम्बन्धमें तुमने
हरिकृतं	किये श्रीहरिके कर्मके	यत् अहं पृष्टः	जो मुझसे पूछा था
		एतत् सर्वं	यह सब
पौगण्डे	पौगण्डावस्थामें	ते आख्यातं	तुमसे बतला दिया
परिकीर्तितं	(बालकों द्वारा) वर्णन किया गया		॥५९॥

एतत् सुहृद्भिश्चरितं मुरारे-
रघार्दनं शाद्वलजेमनं च ।
व्यक्तेतरद् रूपमजोर्वभिष्टवं
शृण्वन् गृणन्नेति नरोऽखिलार्थान् ॥६०॥

एतत् सुहृत् भिः चरितं मुरारेः अघ अर्दनं शाद्वल जेमनं च व्यक्त इतरत् रूपं अजः अभिष्टवं शृण्वन् गृणन् एति नरः अखिल अर्थान् ॥६०॥

एतत्	इस
अघ अर्दनं	अघासुरको मारना
सुहृत् भिः	सखाओंके साथ
शाद्वल जेमनं	वन-भोजन करना,
व्यक्त इतरत्	प्रकटसे भिन्न
रूपं	रूप ग्रहण करना,
च अजः	तथा ब्रह्माजी द्वारा
अभिष्टवं	स्तुति किया जाना आदि
मुरारेः	श्रीमुरारिके
चरितं	चरितको
शृण्वन्	सुनते तथा
गृणन्	वर्णन करते हुए
नरः	पुरुष
अखिल अर्थान्	सभी पुरुषार्थोंको
एति	पा लेता है ॥६०॥

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ।
निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥६१॥

एवं विहारैः कौमारैः जहतुः व्रजे निलायनैः सेतुबन्धैः मर्कट उत्प्लवन आदिभिः ॥६१॥

एवं निलायनैः	इस प्रकार लुका-छिपी,
सेतुबन्धैः	पुल बाँधना,
मर्कट	बन्दरोंकी भांति
उत्प्लवन	उछलना
आदिभिः	आदि
कौमारैः	कुमारावस्थाके खेल करते हुए
व्रज कौमारैः	व्रजमें कुमारावस्था
जहतुः	छोड़ दी ॥६१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे ब्रह्मस्तुतिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अथ पंचदशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

ततश्च पौगण्डवयः श्रितौ व्रजे
बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ ।
गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदै-
र्वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः ॥१॥

ततः च पौगण्डवयः श्रितौ व्रजे बभूवतुः तौ पशुपाल सम्मतौ गाः चारयन्तौ सखिभिः समं पदैः वृन्दावनं पुण्यं अतीव चक्रतुः ॥१॥

पौगण्डवयः	पौगण्ड (छठे वर्ष) की अवस्थामें	**सखिभिः समं**	सखाओंके साथ
श्रितौ तौ	प्रवेश करनेपर वे दोनों (श्रीकृष्ण-बलराम)	**व्रजे गाः**	व्रजमें गायें
		चारयन्तौ	चराते हुए
		ततः वृन्दावनं	तब वृन्दावनको
सम्मतौ	अनुमति मिलनेपर	**पदैः**	अपने चरणोंसे
पशुपाल	पशुपालक	**अतीव**	अत्यन्त
बभूवतुः	हो गये,	**पुण्यं चक्रतुः**	पवित्र बनाने लगे ॥१॥
च	तथा		

तन्माधवो वेणुमुदीरयन् वृतो
गोपैर्गृणद्भिः स्वयशो बलान्वितः ।
पशून् पुरस्कृत्य पशव्यमाविशद्
विहर्तुकामः कुसुमाकरं वनम् ॥२॥

तत् माधवः वेणुं उदीरयन् वृतः गोपैः गृणत् भिः स्वयशः बल अन्वितः पशून् पुरस्कृत्य पशव्यं आविशत् विहर्तुकामः कुसुम आकरं वनम् ॥२॥

स्वयशः	अपना यश	माधवः	श्रीकृष्ण
गृणद्भिः	गाते हुए	पशव्यं	पशुओंके चरने योग्य
गोपैः वृतः	गोपोंसे घिरे		
बल अन्वितः	बलरामजीके साथ	कुसुम आकरं	पुष्पोंकी खान बने
वेणुं उदीरयन्	वंशी बजाते हुए,	वनं	वनमें
पशून्	पशुओंको	विहर्तुकामः	खेलनेकी इच्छीसे
पुरस्कृत्य	आगे करके	आविशत्	प्रवेश किया ॥२॥

तन्मञ्जुघोषालिमृगद्विजाकुलं

महन्मनः प्रख्यपयः सरस्वता ।

वातेन जुष्टं शतपत्रगन्धिना

निरीक्ष्य रन्तुं भगवान् मनो दधे ॥३॥

तत् मञ्जुघोष अलि मृग द्विज आकुलं महत् मनः प्रख्यपयः सरस्वता वातेन जुष्टं शतपत्र गन्धिना निरीक्ष्य रन्तुं भगवान् मनः दधे ॥३॥

मञ्जुघोष	सुन्दर गुंजार करते	शतपत्र	कमलोंकी
अलि	भ्रमरों,	गन्धिना	सुगन्धवाले
मृग द्विज	पशु-पक्षियोंसे	वातेन जुष्टं	वायुसे संयुक्त
आकुलं	परिपूर्ण,	तत्	उस (वन) को
महत् मनः	महात्माओंके मनके	निरीक्ष्य	देखकर
प्रख्यपयः	समान निर्मल जल-वाले	भगवान्	भगवानने
		रन्तुं मनः	क्रीड़ा करनेका
सरस्वता	सरोवर युक्त	दधे	विचार किया ॥३॥

स तत्र तत्रारुणपल्लवश्रिया

फलप्रसूनोरुभरेण पादयोः ।

स्पृशच्छिखान् वीक्ष्य वनस्पतीन् मुदा

स्मयन्निवाहाग्रजमादिपूरुषः ॥४॥

स तत्र तत्र अरुण पल्लव श्रिया फल प्रसून उरुभरेण पादयोः स्पृशत् शिखान् वीक्ष्य वनस्पतीन् मुदा स्मयन् इव आह आग्रजं आदि पूरुषः ॥४॥

स आदि	उन आदि	**वनस्पतीन्**	वृक्षोंको
पूरुषः	पुरुषने	**पादयोः**	चरणोंको
तत्र तत्र	जहां-तहां	**स्पृशत्**	स्पर्श करते
अरुण पल्लव	लाल-लाल किसलयों की	**वीक्ष्य**	देखकर
		मुदा	आनन्दसे
श्रिया	शोभा तथा	**स्मयन् इव**	मुस्कराते हुएसे
फल प्रसून	फल और पुष्पोंके	**अग्रजं आह**	बड़े भाईसे बोले ॥४॥
उरुभरेण	भारी भारसे		
शिखान्	अपनी शाखाओंसे		

श्रीभगवानुवाच

अहो अमी देववरामरार्चितं
पादाम्बुजं ते सुमनः फलार्हणम् ।
नमन्त्युपादाय शिखाभिरात्मन-
स्तमोऽपहत्यै तरुजन्म यत्कृतम् ॥५॥

अहो अमी देववर अमर अर्चितं पादाम्बुजं ते सुमनः फल अर्हणं नमन्ति उपादाय शिखाभिः आत्मनः तमः अपहत्यै तरु जन्म यत् कृतम् ॥५॥

अहो देववर	हे देवश्रेष्ठ !	**कृतं**	प्राप्त हुई
अमर अर्चितं	देव-पूजित	**आत्मनः**	उस अपने
ते	आपके	**तमः**	तमोगुणके
पादाम्बुजं	चरण-कमलोंमें	**अपहत्यै**	नाशके लिए
सुमनः	पुष्पों तथा	**शिखाभिः**	अपनी चोटी (शाखाओं) से
फल अर्हणं	फलोंका पूजोपहार		
उपादाय	साथ लेकर	**नमन्ति**	नमस्कार कर रहे हैं ॥५॥
यत् तरु जन्म	जिससे वृक्ष योनि		

एतेऽलिनस्तव यशोऽखिललोकतीर्थं
गायन्त आदिपुरुषानुपदं भजन्ते ।
प्रायो अमी मुनिगणा भवदीयमुख्या
गूढं वनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवम् । ६॥

एते अलिनः तव यशः अखिललोक तीर्थं गायन्त आदिपुरुष अनुपदं भजन्ते प्रायः अमी मुनिगणाः भवदीय मुख्या गूढं वने अपि न जहति अनघ आत्म दैवम् ॥६॥

अनघ	निष्पाप	प्रायः अमी	प्रायः ये
आदिपुरुष	आदिपुरुष !	भवदीय	आपके भक्तोंमें
एते अलिनः	ये भौंरे	मुख्या	प्रमुख
अखिललोक	समस्त लोकोंको	मुनिगणाः	मुनिगण हैं जो
तीर्थं	पवित्र करनेवाले	वने गूढं अपि	वनमें छिपे हुए भी
तव यशः	आपके यशको	आत्म	अपने आराध्य
गायन्त	गा रहे हैं और	दैवं	देव आपको
अनुपदं	प्रत्येक पदपर	न जहति	नहीं छोड़ते हैं ॥६॥
भजन्ते	पीछे चल रहे हैं		

नृत्यन्त्यमी शिखिन ईडच मुदा हरिण्यः
कुर्वन्ति गोप्य इव ते प्रियमीक्षणेन ।
सूक्तैश्च कोकिलगणा गृहमागताय
धन्या वनौकस इयान् हि सतां निसर्गः ॥७॥

नृत्यन्ति अमी शिखिन ईडच मुदा हरिण्यः कुर्वन्ति गोप्य इव ते प्रियं ईक्षणेन सूक्तैः च कोकिलगणा गृहं आगताय धन्या वनौकस इयान् हि सतां निसर्गः ॥७॥

ईडच	स्तवनीय !	हरिण्यः मुदा	हरिणियां आनन्दसे
अमी शिखिन	ये मयूर	गोप्यः इव	गोपियोंके समान
नृत्यन्ति	नाच रहे हैं,	ईक्षणेन	अपने देखनेके द्वारा

च	तथा
कोकिलगणाः	कोकिल समूह
सूक्तैः	स्तुतिके द्वारा
ते प्रियं	आपका प्रिय
कुर्वन्ति	कर रही हैं
वनौकस	(ये) वनवासी
धन्या	धन्य हैं
हि गृहं	क्योंकि घर
आगताय	आये (अतिथिका)
इयान्	ऐसा (स्वागत)
सतां	सत् पुरुषोंका
निसर्गः	स्वभाव होता है ॥७॥

धन्येयमद्य धरणी तृणवीरुधस्त्वत्-
पादस्पृशो द्रुमलताः करजाभिमृष्टाः ।
नद्योऽद्रयः खगमृगाः सदयावलोकै-
र्गोप्योऽन्तरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः ॥८॥

धन्या इयं अद्य धरणी तृण वीरुधः त्वत् पाद स्पृशः द्रुमलताः करजा अभिमृष्टाः नद्यः अद्रयः खग मृगाः सदय अवलोकैः गोप्यः अन्तरेण भुजयोः अपि यत् स्पृहाः श्रीः ॥८॥

त्वत् पाद	आपके चरणोंका
स्पृशः	स्पर्श पाकर
अद्य	आज
तृण वीरुधः	घास एवं क्षुप युक्त
इयं धरणी	यह पृथ्वी,
करजा	हाथके नखोंके द्वारा
अभिमृष्टाः	स्पर्शित होकर
द्रुमलताः	वृक्ष तथा लताएँ,
सदय	दयापूर्ण
अवलोकैः	दृष्टिपातसे
नद्यः अद्रयः	नदियां, पर्वत,
खग मृगाः	पक्षी-पशु
धन्या	धन्य हो रहे हैं,
च गोप्यः	और गोपियां भी
भुजयोः	भुजाओंके
अन्तरेण	मध्य भाग (वक्ष स्थल) का स्पर्श पाकर
यत् श्रीः	जिसके लिए लक्ष्मी
स्पृहा	लालायित रहती है ॥८॥

श्रीशुक उवाच

एवं वृन्दावनं श्रीमत् कृष्णः प्रीतमनाः पशून् ।
रेमे सञ्चारयन्नद्रेः सरिद्रोधस्सु सानुगः ॥९॥

एवं वृन्दावनं श्रीमत् कृष्णः प्रीतमनाः पशून् रेमे सञ्चारयन् अद्रेः सरित् रोधः सु सानुगः ॥९॥

एवं	इस प्रकार	अद्रेः	पर्वत (गोवर्धन) पर
श्रीमत्	परम सुन्दर	सरित् रोधः सु	नदी (यमुना) किनारे
वृन्दावनं	वृन्दावनमें	पशून्	पशुओंको
प्रीतमनाः	प्रसन्न-चित्त	सञ्चारयन्	चराते हुए
कृष्णः	श्रीकृष्ण	रेमे	क्रीड़ा करते रहे ॥९॥
सानुगः	अनुचरोंके साथ		

क्वचिद् गायति गायत्सु मदान्धालिष्वनुव्रतैः ।
उपगीयमानचरितः स्रग्वी सङ्कर्षणान्वितः ॥१०॥

क्वचित् गायति गायत्सु मद अन्ध अलिषु अनुव्रतैः उपगीयमान चरितः स्रग्वी सङ्कर्षण अन्वितः ॥१०॥

चरितः	(श्रीकृष्ण) चरितों-को	स्रग्वी	वनमालाधारी
उपगीयमान	(ग्वाल-बालकों द्वारा) गाये जाते हुए	सङ्कर्षण	बलरामजीके
		अन्वितः	साथ
मद अन्ध	मतवाले	अनुव्रतैः	अनुकरण करते हुए
अलिषु	भ्रौंरोंके	क्वचित्	कभी
गायत्सु	गुंजार करते समय	गायति	गाते हैं ॥१०॥

क्वचिच्च कलहंसानामनु कूजति कूजितम् ।
अभि नृत्यति नृत्यन्तं बर्हिणं हासयन् क्वचित् ॥११॥

क्वचित् च कल हंसानां अनु कूजति कूजितं अभि नृत्यति नृत्यन्तं बर्हिणं हासयन् क्वचित् ॥११॥

क्वचित्	कभी	कूजति	कूजन करते हैं
हंसानां	हंसोंके	च क्वचित्	और कभी
कल कूजितं	कूजन करते मधुर शब्दके	नृत्यन्तं बर्हिणं	नाचते मयूरकी
		हासयन्	हंसी उड़ाते
अनु	पीछे उसका अनु-करण करके	नृत्यति	नाचते हैं ॥११॥

मेघगम्भीरया वाचा नामभिर्दूरगान् पशून् ।
क्वचिदाह्वयति प्रीत्या गोगोपालमनोज्ञया ॥१२॥

मेघ गम्भीरया वाचा नामभिः दूरगान् पशून् क्वचित् आह्वयति प्रीत्या गो गोपाल मनोज्ञया ॥१२॥

गो	गायों तथा	**क्वचित्**	कभी
गोपाल	गोपालकोंके लिए	**प्रीत्या**	प्रेमपूर्वक
मनोज्ञया	मनोहारिणी	**दूरगान्**	दूर गये
मेघ	मेघ गर्जनके समान	**पशून्**	पशुओंको
गम्भीरया	गम्भीर	**नामभिः**	नाम लेकर
वाचा	वाणीसे	**आह्वयति**	पुकारते हैं ॥१२॥

चकोरक्रौञ्चचक्राह्वभारद्वाजांश्च बर्हिणः ।
अनुरौति स्म सत्वानां भीतवद् व्याघ्रसिंहयोः ॥१३॥

चकोर क्रौञ्च चक्राह्व भारद्वाजान् च बर्हिणः अनुरौति स्म सत्त्वानां भीत वत् व्याघ्र सिंहयोः ॥१३॥

चकोर क्रौञ्च	चकोर, सारस,	**व्याघ्र सिंहयोः**	बाघ तथा सिंहसे
चक्राह्व	चकवा,	**भीत सत्त्वानां**	डरे प्राणियोंके
भारद्वाजान्	टिटिहरी (भरदूल)	**वत्**	समान
च	तथा	**अनुरौति स्म**	शब्दानुकरण करते
बर्हिणः	मयूरों आदिके समान या		हैं ॥१३॥

क्वचित् क्रीडापरिश्रान्तं गोपोत्सङ्गोपबर्हणम् ।
स्वयं विश्रमयत्यार्यं पादसंवाहनादिभिः ॥१४॥

क्वचित् क्रीडा परिश्रान्तं गोप उत्संग उपबर्हणं स्वयं विश्रमयति आर्यं पदा संवाहन आदिभिः ॥१४॥

क्वचित्	कभी	**गोप उत्संग**	(किसी) गोपकी
क्रीडा	खेलसे		गोदको
परिश्रान्तं	थके हुए	**उपबर्हणं**	तकिया बनाये

आर्यं स्वयं	बड़े भाईकी स्वयं	विश्रमयति	थकावट मिटाते हैं ॥१४॥
पादसंवाहन	चरण दबाने		
आदिभिः	आदिके द्वारा		

नृत्यतो गायतः क्वापि वल्गतो युध्यतो मिथः ।
गृहीतहस्तौ गोपालान् हसन्तौ प्रशशंसतुः ॥१५॥

नृत्यतः गायतः क्व अपि वल्गतः युध्यतः मिथः गृहीत हस्तौ गोपालान् हसन्तौ प्रशशंसतुः ॥१५॥

क्व अपि	कभी भी	गृहीत हस्तौ	परस्पर हाथ पकड़े (दोनों भाई)
नृत्यतः गायतः	नाचते, गाते,	हसन्तौ	हंसते हुए
वल्गतः	ताल ठोंककर	प्रशशंसतुः	प्रशंसा करते थे ॥१५॥
मिथः युध्यतः	परस्पर कुश्ती लड़ते		
गोपालान्	गोपालोंकी		

क्वचित् पल्लवतल्पेषु नियुद्धश्रमकर्शितः ।
वृक्षमूलाश्रयः शेते गोपोत्सङ्गोपबर्हणः ॥१६॥

क्वचित् पल्लव तल्पेषु नियुद्ध श्रम कर्शितः वृक्षमूल आश्रयः शेते गोप उत्संग उपबर्हणः ॥१६॥

क्वचित्	कभी	पल्लव तल्पेषु	पल्लवोंकी शय्यापर
नियुद्ध	कुश्ती लड़नेके	गोप उत्संग	किसी गोपकी गोद-को
श्रम	परिश्रमसे	उपबर्हणः	तकिया बनाकर
कर्शितः	थककर	शेते	सोते थे ॥१६॥
वृक्षमूल	किसी पेड़की जड़के		
आश्रयः	साथ बनी		

पादसंवाहनं चक्रुः केचित्तस्य महात्मनः ।
अपरे हतपाप्मानो व्यजनैः समवीजयन् ॥१७॥

पादसंवाहनं चक्रुः केचित् तस्य महात्मनः अपरे हत पाप्मानः व्यजनैः सम वीजयन् ॥१७॥

केचित्	कोई	अपरे	दूसरे
महात्मनः	महात्मा (गोप बालक)	हत पाप्मानः	परम निष्पाप हुए
तस्य	उनका	व्यजनैः	(पत्तेके) पंखोंसे
पादसंवाहनं	चरण-दवाना	सम वीजयन्	भली प्रकार पंखा झलते थे ॥१७॥
चक्रुः	करते थे,		

अन्ये तदनुरूपाणि मनोज्ञानि महात्मनः ।
गायन्ति स्म महाराज स्नेहक्लिन्नधियः शनैः ॥१८॥

अन्ये तत् अनुरूपाणि मनोज्ञानि महात्मनः गायन्ति स्म महाराज स्नेह क्लिन्न धियः शनैः ॥१८॥

महाराज	महाराज	तत् अनुरूपाणि	उनके अनुरूप
अन्ये	दूसरे	मनोज्ञानि	(उनको) प्रिय लगने वाला
महात्मनः	महात्मा (बालक)	गायन्ति स्म	गायन करते थे ॥१८॥
स्नेह क्लिन्न	स्नेहार्द्र		
धियः शनैः	चित्तसे धीरे-धीरे		

एवं निगूढात्मगतिः स्वमायया
गोपात्मजत्वं चरितैर्विडम्बयन् ।
रेमे रमालालितपादपल्लवो
ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः ॥१९॥

एवं निगूढ आत्मगतिः स्वमायया गोप आत्मजत्वं चरितैः विडम्बयन् रेमे रमा लालित पादपल्लवः ग्राम्यैः समं ग्राम्यवत् ईश चेष्टितः ॥१९॥

रमा	लक्ष्मी द्वारा	निगूढ	सर्वथा छिपाकर
लालित	लाड़ लड़ाये गये	गोप आत्मजत्वं	गोपकुमारके
पादपल्लवः	चरण-पल्लववाले	चरितैः	चरितका
ईश एवं	सर्वेश इस प्रकार	विडम्बयन्	नाटक करते हुए के
स्वमायया	अपनी माया द्वारा	ग्राम्यैः	ग्रामीणों (गोपों)
आत्मगतिः	अपना स्वरूप	समं	साथ

ग्राम्यवत्	ग्रामीणके समान	रेमे	क्रीड़ा करते रहे
चेष्टित	चेष्टा करते हुए		॥१९॥

श्रीदामा नाम गोपालो रामकेशवयोः सखा ।
सुबलस्तोककृष्णाद्या गोपाः प्रेम्णेदमब्रुवन् ॥२०॥

श्रीदामा नाम गोपालः राम केशवयोः सखा सुबलः तोक कृष्ण आद्या गोपाः प्रेम्णा इदं अब्रुवन् ॥२०॥

श्रीदामा नाम	श्रीदामा नामक	तोक कृष्ण	तोक कृष्ण
गोपालः	गोपाल तथा	आद्याः गोपाः	आदि गोप बालकोंने
राम	बलराम तथा	प्रेम्णा इदं	प्रेमपूर्वक यह
केशवयोः	श्रीकृष्णके	अब्रूवन्	कहा ॥२०॥
सखा सुबलः	सखा सुबल,		

राम राम महाबाहो कृष्ण दुष्टनिबर्हण ।
इतोऽविदूरे सुमहद् वनं तालालिसङ्कुलम् ॥२१॥

राम राम महाबाहो कृष्ण दुष्ट निबर्हण इतः अविदूरे सुमहत् वनं ताल अलि सङ्कुलम् ॥२१॥

राम	बलरामजी !	अविदूरे	थोड़ी ही दूरीपर
महाबाहो	विशाल बाहु	सुमहत्	बहुत बड़ा
राम	बलरामजी ! तथा	ताल अलि	ताड़ समूहोंसे
दुष्ट निबर्हण	दुष्ट-दलन	सङ्कुलं वनं	भरा हुआ वन है
कृष्ण	श्रीकृष्ण !		॥२१॥
इतः	यहांसे		

फलानि तत्र भूरीणि पतन्ति पतितानि च ।
सन्ति किंत्ववरुद्धानि धेनुकेन दुरात्मना ॥२२॥

फलानि तत्र भूरीणि पतन्ति पतितानि च सन्ति किन्तु अवरुद्धानि धेनुकेन दुरात्मना ॥२२॥

तत्र भूरीणि वहां बहुतसे । **फलानि पतन्ति** फल गिर रहे हैं

च पतितानि	तथा गिरे हुए भी	धेनुकेन	धेनुक द्वारा
सन्ति किन्तु	हैं; किन्तु	अवरुद्धानि	रोके हुए हैं ॥२२॥
दुरात्मना	दुष्ट चित्त		

सोऽतिवीर्योऽसुरो राम हे कृष्ण खररूपधृक् ।
आत्मतुल्यबलैरन्यैर्ज्ञातिभिर्बहुभिर्वृतः ॥२३॥

सः अतिवीर्यः असुरः राम हे कृष्ण खररूप धृक् आत्मतुल्य बलैः अन्यैः ज्ञातिभिः बहुभिः वृतः ॥२३॥

हे राम	हे बलराम और	आत्मतुल्य	अपने समान
कृष्ण	श्रीकृष्ण !	बलैः अन्यैः	बलवाले दूसरे
सः	वह	बहुभिः	अपने बहुतसे
खररूप धृक्	गधेका रूपधारी	ज्ञातिभिः	जातिवालोंसे
असुरः	असुर	वृतः	घिरा रहता है
अतिवीर्यः	बहुत बलवान है,		॥२३॥

तस्मात् कृतनराहाराद् भीतैर्नृभिरमित्रहन् ।
न सेव्यते पशुगणैः पक्षिसङ्घैर्विवर्जितम् ॥२४॥

तस्मात् कृत नर आहारात् भीतैः नृभिः अमित्रहन् न सेव्यते पशुगणैः पक्षिसंघैः विवर्जितं ॥२४॥

अमित्रहन्	शत्रु-नाशन !	विवर्जितं	छोड़कर
तस्मात्	इसलिए	भीतैः नृभिः	डरे हुए मनुष्यों
नर आहारात्	(उसके द्वारा) मनुष्य-भक्षण		तथा
		पशुगणैः	पशुओं द्वारा
कृत	कर लिए जानेसे	सेव्यते	(वह वन) सेवित
पक्षिसंघैः	पक्षी-समूहोंको	न	नहीं होता ॥२४॥

विद्यन्तेऽभुक्तपूर्वाणि फलानि सुरभीणि च ।
एष वै सुरभिर्गन्धो विषूचीनोऽवगृह्यते ॥२५॥

विद्यन्ते अभुक्त पूर्वाणि फलानि सुरभीणि च एष वै सुरभिः गन्धः विषूचीनः अवगृह्यते ॥२५॥

अमुक्त	जिन्हें हमने	**वै एष**	निश्चय यह
पूर्वाणि	पहिले कभी नहीं खाया	**विषूचीनः**	मादक
		सुरभिः गन्धः	गन्धवाली सुगन्ध
फलानि	ऐसे फल	**अवगृह्यते**	(उन्हींकी) ग्रहण हो रही है ॥२५॥
विद्यन्ते	वहां हैं		
सुरभीणि च	वे सुगन्धित भी हैं,		

प्रयच्छ तानि नः कृष्ण गन्धलोभितचेतसाम् ।
वाञ्छास्ति महती राम गम्यतां यदि रोचते ॥२६॥

प्रयच्छ तानि नः कृष्ण गन्ध लोभित चेतसां वाञ्छा अस्ति महती राम गम्यतां यदि रोचते ॥२६॥

कृष्ण	श्रीकृष्ण !	**महती**	यह बड़ी
गन्ध	उनकी सुगन्धसे	**वाञ्छा अस्ति**	इच्छा है,
लोभित	लुब्ध	**राम यदि**	बलरामजी यदि
चेतसां नः	चित्तवाले हम लोगोंको	**रोचते**	(आपको) रुचे तो
		गम्यतां	(आप भी) चलिए ॥२६॥
तानि प्रयच्छ	उन्हें दो,		

एवं सुहृद्वचः श्रुत्वा सुहृत्प्रियचिकीर्षया ।
प्रहस्य जग्मतुर्गोपैर्वृतौ तालवनं प्रभू ॥२७॥

एवं सुहृत् वचः श्रुत्वा सुहृत् प्रिय चिकीर्षया प्रहस्य जग्मतुः गोपैः वृतौ तालवनं प्रभू ॥२७॥

एवं	इस प्रकार	**गोपैः वृतौ**	गोपोंसे घिरे
सुहृत्	मित्रोंकी	**प्रभू**	(वे) समर्थ (दोनों भाई)
वचः श्रुत्वा	बात सुनकर		
सुहृत् प्रिय	मित्रोंको प्रसन्न	**तालवनं**	ताड़वनको
चिकीर्षया	करनेकी इच्छासे	**जग्मतुः**	चल पड़े ॥२७॥

बलः प्रविश्य बाहुभ्यां तालान् सम्परिकम्पयन् ।
फलानि पातयामास मतङ्गज इवौजसा ॥२८॥

बलः प्रविश्य बाहुभ्यां तालान् सम्परि कम्पयन् फलानि पातयामास मतंगज इव ओजसा ॥२८॥

बलः	बलरामजीने	**तालान्**	ताड़ वृक्षोंको
प्रविश्य	(उस वनमें) घुसकर	**सम्परि**	बहुत वेगसे
मतंगज	मदमत्त हाथीके	**कम्पयन्**	हिलाते हुए
इव	समान	**फलानि**	उनके फलोंको
ओजसा	बलपूर्वक	**पातयामास**	गिरा दिया ॥२८॥
बाहुभ्यां	भुजाओंसे		

फलानां पततां शब्दं निशम्यासुररासभः ।
अभ्यधावत् क्षितितलं सनगं परिकम्पयन् ॥२९॥

फलानां पततां शब्दं निशम्य असुर रासभः अभ्यधावत् क्षितितलं सनगं परिकम्पयन् ॥२९॥

असुर रासभः	वह असुर गधा	**परिकम्पयन्**	चारों ओर कम्पित करता
फलानां पततां	फलोंके गिरनेका	**अभ्यधावत्**	उस ओर दौड़ा ॥२९॥
शब्दं निशम्य	शब्द सुनकर		
सनगं	पर्वतोंके साथ		
क्षितितलं	भूतलको		

समेत्य तरसा प्रत्यग् द्वाभ्यां पद्भ्यां बलं बली ।
निहत्योरसि काशब्दं मुञ्चन् पर्यसरत् खलः ॥३०॥

सम एत्य तरसा प्रत्यक् द्वाभ्यां पद्भ्यां बलं बली निहत्य उरसि काशब्दं मुञ्चन् परि असरत् खलः ॥३०॥

बली खलः	वह बलवान् दुष्ट	**प्रत्यक् द्वाभ्यां**	पिछले दोनों
काशब्दं	रेंकता	**पद्भ्यां बलं**	पैरोंसे बलरामजीकी
मुञ्चन्	हुआ	**उरसि निहत्य**	छातीपर प्रहार करके
तरसा	वेग पूर्वक	**परि असरत्**	आगे बढ़ गया ॥३०॥
सम एत्य	समीप आकर		

पुनरासाद्य संरब्ध उपक्रोष्टा पराक् स्थितः ।
चरणावपरौ राजन् बलाय प्राक्षिपद् रुषा ॥३१॥

पुनः आसाद्य संरब्धः उपक्रोष्टा पराक् स्थितः चरणाः अपरौ राजन् बलाय प्राक्षिपत् रुषा ॥३१॥

राजन्	राजन् !	**स्थितः**	खड़े होकर
संरब्धः	रोषमें भरा	**बलाय**	बलरामजीपर
उपक्रोष्टा	वह रेंकता हुआ	**रुषा**	क्रोध पूर्वक
पुनः आसाद्य	फिर समीप आकर	**अपरौ**	दूसरी बार
पराक्	पिछला भग उनकी ओर करके	**चरणाः**	दोनों पैर
		प्राक्षिपत्	वेगसे फेंके ॥३१॥

स तं गृहीत्वा प्रपदोर्भ्रामयित्वैकपाणिना ।
चिक्षेप तृणराजाग्रे भ्रामणत्यक्तजीवितम् ॥३२॥

स तं गृहीत्वा प्रपदोः भ्रामयित्वा एक पाणिना चिक्षेप तृणराज अग्रे भ्रामण त्यक्त जीवितम् ॥३२॥

स तं	उन (बलरामजी) ने उसे	**भ्रामयित्वा**	घुमाकर
		भ्रामण	घुमानेसे ही
एक पाणिना	एक हाथसे	**त्यक्त जीवितं**	प्राण त्यागे हुए को
प्रपदोः	पिछले दोनों पैर	**तृणराज अग्रे**	ताड़वृक्षके ऊपर
गृहीत्वा	पकड़कर	**चिक्षेप**	फेंक दिया ॥३२॥

तेनाहतो महातालो वेपमानो बृहच्छिराः ।
पार्श्वस्थं कम्पयन् भग्नः स चान्यं सोऽपि चापरम् ॥३३॥

तेन आहतः महातालः वेपमानः बृहत् शिराः पार्श्वस्थं कम्पयन् भग्नः स च अन्यं सः अपि च अपरम् ॥३३॥

तेन	उस (असुर देह) से	**भग्नः**	टूट गया
आहतः	मारा गया	**स च**	वह (बगलका वृक्ष) भी
बृहत् शिराः	बड़े सिरो भागवाला		
महातालः	वह बड़ा ताड़ वृक्ष	**अन्यं**	दूसरे को
पार्श्वस्थं	बगलके वृक्षको	**च सः अपरं**	और वह दूसरेको ॥३३॥
कम्पयन्	कम्पित करता		

बलस्य लीलयोत्सृष्टखरदेहहताहताः ।
तालाश्चकम्पिरे सर्वे महावातेरिता इव ॥३४॥

बलस्य लीलया उत्सृष्ट खर देह हता हताः तालाः चकम्पिरे सर्वे महावात ईरिता इव ॥३४॥

बलस्य	बलरामजीके	**सर्वे तालाः**	सब ताड़ वृक्ष
लीलया उत्सृष्ट	खेलमें फेंके गये	**महावात**	बड़े अन्धड़से
खर देह	गधेके शरीरसे	**ईरिता इव**	हिलाये गयेके समान
हताः	मारे गये	**चकम्पिरे**	हिल गये ॥३४॥
हता	टकराते जाकर		

नैतच्चित्रं भगवति ह्यनन्ते जगदीश्वरे ।
ओतप्रोतमिदं यस्मिंस्तन्तुष्वङ्ग यथा पटः ॥३५॥

न एतत् चित्रं भगवति हि अनन्ते जगदीश्वरे ओत प्रोतं इद यस्मिन् तन्तुषु अंग यथा पटः ॥३५॥

अंग	प्रिय परीक्षित् !	**चित्रं न**	विचित्र बात नहीं है
हि	क्योंकि वे	**यस्मिन् इदं**	जिनमें यह विश्व
भगवति	भगवान्	**तन्तुषु**	सूतोंमें
जगदीश्वरे	जगदीश्वर हैं,	**पटः यथा**	वस्त्रके समान
अनन्ते	उन अनन्तके लिए	**ओत प्रोतं**	ओत-प्रोत है ॥३५॥
एतत्	यह कुछ		

ततः कृष्णं च रामं च ज्ञातयो धेनुकस्य ये ।
क्रोष्टारोऽभ्यद्रवन् सर्वे संरब्धा हतबान्धवाः ॥३६॥

ततः कृष्णं च रामं च ज्ञातयः धेनुकस्य ये क्रोष्टारः अभ्यद्रवन् सर्वे संरब्धा हत बान्धवाः ॥३६॥

बान्धवाः	अपने सम्बन्धीके	**संरब्धा**	क्रोधमें भरे
हत	मारे जानेसे	**कृष्णं च**	श्रीकृष्ण और
ततः सर्वे	तब सब	**रामं च**	बलरामजीकी भी
क्रोष्टारः	रेंकनेवाले गधे	**अभ्यद्रवन्**	ओर दौड़ पड़े ॥३६॥

तांस्तानापततः कृष्णो रामश्च नृप लीलया ।
गृहीतपश्चाच्चरणान् प्राहिणोत्तृणराजसु ॥३७॥

तान् तान् आपततः कृष्णः रामः च नृप लीलया गृहीत पश्चात् चरणान् प्राहिणोत् तृणराजसु ॥३७॥

नृप	राजन् !	पश्चात्	पिछले
तान् तान्	उन उन	चरणान्	पैर
आपततः	आक्रमण करते हुओं को	गृहीत	पकड़कर
		लीलया	खेल पूर्वक
कृष्णः च	श्रीकृष्ण और	तृणराजसु	ताड़ोंपर
रामः	बलराम	प्राहिणोत्	फेंकते गये ॥३७॥

फलप्रकरसङ्कीर्णं दैत्यदेहैर्गतासुभिः ।
रराज भूः सतालाग्रैर्घनैरिव नभस्तलम् ॥३८॥

फल प्रकर सङ्कीर्णं दैत्यदेहैः गत असुभिः रराज भूः स ताल अग्रैः घनैः इव नभस्तलम् ॥३८॥

फलप्रकर	फलोंकी बहुलतासे	अग्रैः सः	(टूटे) सिरों सहित
सङ्कीर्णं	बिछी हुई	भूः घनैः	वह भूमि बादलोंसे
गत असुभिः	निष्प्राण	नभस्तलं	आकाश मण्डलके
दैत्यदेहैः	दैत्योंके शरीरोंसे	इव	समान
ताल	ताड़-वृक्षोंके	रराज	शोभित हुई ॥३८॥

तयोस्तत् सुमहत् कर्म निशाम्य विबुधादयः ।
मुमुचुः पुष्पवर्षाणि चक्रुर्वाद्यानि तुष्टुवुः ॥३९॥

तयोः तत् सुमहत् कर्म निशाम्य विबुध आदयः मुमुचुः पुष्पवर्षाणि चक्रुः वाद्यानि तुष्टुवुः ॥३९॥

तयोः	उन दोनों	सुमहत् कर्म	मंगलमयी-लीला
तत्	भाइयोंका वह	निशाम्य	देखकर

विबुध आदयः	देवता आदि	**वाद्यानि चक्रुः**	वाद्य बजाने लगे,
पुष्पवर्षाणि	पुष्पोंकी वर्षा	**तुष्टुवुः**	और स्तुति करने
मुमुचुः	छोड़ने (करने) लगे,		लगे ॥३९॥

अथ तालफलान्यादन् मनुष्या गतसाध्वसाः ।
तृणं च पशवश्चेरुर्हतधेनुककानने ॥४०॥

अथ ताल फलानि आदन् मनुष्याः गत साध्वसाः तृणं च पशवः चेरुः हत धेनुक कानने ॥४०॥

हत धेनुक	मारे गये धेनुकके	**फलानि**	फलोंको
कानने	वनमें	**आदन्**	लेने लगे
अथ	फिर	**च पशवः**	तथा पशु
गत साध्वसाः	निर्भय होकर	**तृणं**	घास
मनुष्याः	मनुष्य	**चेरुः**	चरने लगे ॥४०॥

कृष्णः कमलपत्राक्षः पुण्यश्रवणकीर्तनः ।
स्तूयमानोऽनुगैर्गोपैः साग्रजो व्रजमाव्रजत् ॥४१॥

कृष्णः कमलपत्र अक्षः पुण्य श्रवण कीर्तनः स्तूयमानः अनुगैः गोपैः स अग्रजः व्रजं आव्रजत् ॥४१॥

श्रवण	जिनकी लीला सुनना तथा	**अनुगैः**	अनुयायी
		गोपैः	गोपों द्वारा
कीर्तनः	कीर्तन करना	**स्तूयमानः**	स्तुत होते
पुण्य	पवित्र है वे	**स अग्रजः**	बड़े भाईके साथ
कमलपत्र	कमल-दल	**व्रजं**	व्रजमें
अक्षः	लोचन	**आव्रजत्**	लौट आये ॥४१॥
कृष्णः	श्रीकृष्ण		

तं गोरजश्छुरितकुन्तलबद्धबर्ह-
वन्यप्रसूनरुचिरेक्षणचारुहासम् ।
वेणुं क्वणन्तमनुगैरनुगीतकीर्तिं
गोप्यो दिदृक्षितदृशोऽभ्यगमन् समेताः ॥४२॥

तं गोरजः छुरित कुन्तल बद्ध बर्ह वन्य प्रसून रुचिर ईक्षण चारु हासं वेणुं क्वणन्तं अनुगैः अनुगीत कीर्ति गोप्यः दिदृक्षित दृशः अभ्यगमन् समेताः ॥४२॥

गोरजः छुरित	गायोंके खुरोंसे उड़ी धूलिसे सनी
कुन्तल	अलकोंमें
बद्ध बर्ह	मयूर पिच्छ बाँधे
वन्य प्रसून	वन-पुष्पोंसे सजे,
रुचिर ईक्षण	सुन्दर नेत्रोंवाले,
चारु हासं	सुन्दर हास्य वाले,
वेणुं क्वणन्तं	वंशी बजाते
अनुगैः	अनुचरों द्वारा
अनुगीत	पीछे-पीछे
कीर्ति	कीर्ति गाये जाते
तं	उनको
दिदृक्षित	देखनेको उत्सुक
दृशः गोप्यः	नेत्रोंवाली गोपियां
समेताः	एकत्र होकर
अभ्यगमन्	सामने आ गयीं ॥४२॥

पीत्वा मुकुन्दमुखसारघमक्षिभृङ्गै-
स्तापं जहुर्विरहजं व्रजयोषितोऽह्नि ।
तत्सत्कृतिं समधिगम्य विवेश गोष्ठं
सव्रीडहासविनयं यदपाङ्गमोक्षम् ॥४३॥

पीत्वा मुकुन्द मुख सारघं अक्षिभृङ्गैः तापं जहुः विरहजं व्रज योषितः अह्नि तत् सत्कृतिं समधिगम्य विवेश गोष्ठं सव्रीडहास विनयं यत् अपांग मोक्षम् ॥४३॥

अक्षिभृङ्गैः	नेत्र रूपी भ्रमरोंसे
मुकुन्द	श्रीमुकुन्दके
मुख	मुखका
सारघं पीत्वा	मधुपान करके
व्रज योषितः	व्रज-स्त्रियोंने
अह्नि विरहजं	दिनके वियोगसे उत्पन्न
ताप जहुः	सताप त्याग दिया
यत्	जो (उनकी)
सव्रीडहास	लज्जापूर्ण हंसी
विनयं	विनम्रता तथा
अपांग मोक्षं	कटाक्षपात पूर्वक देखना है
तत् सत्कृतिं	वह उनका सत्कार
समधिगम्य	भली प्रकार पाकर
गोष्ठं विवेश	गोष्ठमें प्रविष्ट हुए ॥४३॥

तयोर्यशोदारोहिण्यौ पुत्रयोः पुत्रवत्सले ।
यथाकामं यथाकालं व्यधत्तां परमाशिषः ॥४४॥

तयोः यशोदा रोहिण्यौ पुत्रयोः पुत्र वत्सले यथा कामं यथा कालं व्यधत्तां परम आशिषः ॥४४॥

पुत्र	पुत्र	कामं	इच्छानुसार एवं
वत्सले	स्नेहपूर्णा	यथा कालं	समयके अनुसार
यशोदा	यशोदा और	परम	श्रेष्ठ
रोहिण्यौ	रोहिणीजीने	आशिषः	अभीष्ट वस्तुएँ
तयोः	उन अपने	व्यधत्तां	बनाई हुई प्रदान कीं ॥४४॥
पुत्रयोः	पुत्रोंके लिए		
यथा	उनकी		

गताध्वानश्रमौ तत्र मज्जनोन्मर्दनादिभिः ।
नीवीं वसित्वा रुचिरां दिव्यस्रग्गन्धमण्डितौ ॥४५॥

गत अध्वान श्रमौ तत्र मज्जन उन्मर्दन आदिभिः नीवीं वसित्वा रुचिरां दिव्यस्रक् गन्ध मण्डितौ ॥४५॥

तत्र मज्जन	वहां स्नान	वसित्वा	पहिनकर
उन्मर्दन	उबटन	दिव्यस्रक्	दिव्य-माला,
आदिभिः	आदिके द्वारा	गन्ध	चन्दनसे
अध्वान	मार्ग चलनेकी	मण्डितौ	अलंकृत होकर ॥४५॥
श्रमौ गत	थकावट चली गयी		
रुचिरां नीवीं	सुन्दर धोती		

जनन्युपहृतं प्राश्य स्वाद्वन्नमुपलालितौ ।
संविश्य वरशय्यायां सुखं सुषुपतुर्व्रजे ॥४६॥

जननि उपहृतं प्राश्य स्वादु अन्नं उपलालितौ संविश्य वरशय्यायां सुखं सुषुपतुः व्रजे ॥४६॥

जननि	माताओंका	स्वादु अन्नं	स्वादिष्ट भोजन
उपहृतं	दिया हुआ	प्राश्य	करके

उपलालितौ	बहुत दुलार पाकर	**सुखं**	सुखपूर्वक
वरशय्यायां	श्रेष्ठ शय्यापर	**सुषुपतुः**	सो गये ॥४६॥*
संविश्य व्रजे	लेटकर व्रजमें		

एवं स भगवान् कृष्णो वृन्दावनचरः क्वचित् ।
ययौ राममृते राजन् कालिन्दीं सखिभिर्वृतः ॥४७॥

एवं स भगवान् कृष्णः वृन्दावन चरः क्वचित् ययौ रामं ऋते राजन् कालिन्दीं सखिभिः वृतः ॥४७॥

राजन्	राजन् !	**सखिभिः वृतः**	सखाओंसे घिरे हुए
स भगवान्	वे भगवान	**वृन्दावन**	वृन्दावनमें
कृष्णः	श्रीकृष्ण	**चरः**	घूमते हुए
क्वचित्	कभी	**कालिन्दीं**	यमुनाके समीप
रामं	श्रीबलरामजी के	**ययौ**	समीप चले गये
ऋते	बिना		॥४७॥

अथ गावश्च गोपाश्च निदाघातपपीडिताः ।
दुष्टं जलं पपुस्तस्यास्तृषार्ता विषदूषितम् ॥४८॥

अथ गावः च गोपाः च निदाघ आतप पीडिताः दुष्टं जलं पपुः तस्याः तृषा आर्ता विषदूषितं ॥४८॥

अथ गावः	फिर गायों	**तृषा आर्ता**	प्याससे व्याकुल
च गोपाः च	तथा गोपोंने भी		होकर
निदाघ आतप	ग्रीष्मकी धूपसे	**विषदूषितं**	विषसे विषैला
पीडिताः	पीड़ित (संतप्त)	**तस्याः**	उस (यमुना) का
	होनेसे	**दुष्टं जलं**	दूषित जल
		पपुः	पी लिया ॥४८॥

---

* यहां तक इस दिनकी लीला पूर्ण हो गयी। अतः इस अध्यायकी यहां समाप्ति स्वाभाविक होती है। अगले ६ श्लोक दूसरे किसी दिनकी लीलाके हैं और उनका सम्बन्ध भी अगले अध्यायकी लीलासे है, अतः उन्हें अगले अध्यायमें क्यों सम्मिलित न किया जाय, यह चिन्तनीय है।

विषाम्भस्तदुपस्पृश्य दैवोपहतचेतसः ।
निपेतुर्व्यसवः सर्वे सलिलान्ते कुरूद्वह ॥४९॥

विष अम्भः तत् उपस्पृश्य दैव अपहत चेतसः निपेतुः व्यसवः सर्वे सलिल अन्ते कुरुद्वह ॥४९॥

कुरुद्वह	कुरु-श्रेष्ठ !	**उपस्पृश्य**	पीकर
दैव अपहृत	होनहारके मारे	**सर्वे व्यसवः**	सब निष्प्राण होकर
चेतसः	चित्तवाले वे	**सलिल अन्ते**	जलके समीप ही
तत् विष अम्भः	वह विषैला जल	**निपेतुः**	गिर पड़े ॥४९॥

वीक्ष्य तान् वै तथाभूतान् कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ।
ईक्षयामृतवर्षिण्या स्वनाथान् समजीवयत् ॥५०॥

वीक्ष्य तान् वै तथा भूतान् कृष्णः योगेश्वर ईश्वरः ईक्षया अमृत वर्षिण्या स्व नाथान् सम जीवयत् ॥५०॥

तान्	उनको	**स्व**	जिनके वही
तथा भूतान्	उस प्रकारका हुआ	**नाथान्**	स्वामी हैं
वीक्ष्य	देखकर	**अमृत वर्षिण्या**	अमृत वर्षिणी
योगेश्वर	योगेश्वरोंके भी	**ईक्षया**	दृष्टिपात्से
ईश्वरः	स्वामी	**सम जीवयत्**	सबको जीवित कर
कृष्णः	श्रीकृष्णने		दिया ॥५०॥
वै	निश्चित रूपसे		

ते सम्प्रतीतस्मृतयः समुत्थाय जलान्तिकात् ।
आसन् सुविस्मिताः सर्वे वीक्षमाणाः परस्परम् ॥५१॥

ते सम्प्रतीत स्मृतयः सम उत्थाय जल अन्तिकात् आसन् सुविस्मिताः सर्वे वीक्षमाणाः परस्परम् ॥५१॥

सम्प्रतीत	भली प्रकार	**सर्वे परस्परं**	सब एक दूसरेको
स्मृतयः	स्मृति-आनेपर	**वीक्षमाणाः**	देखते हुए
ते जल	वे जलके	**सुविस्मिताः**	अत्यन्त चकित
अन्तिकात्	पाससे	**आसन्**	हुए ॥५१॥
सम उत्थाय	झटसे उठकर		

अन्वमंसत तद् राजन् गोविन्दानुग्रहेक्षितम् ।
पीत्वा विषं परेतस्य पुनरुत्थानमात्मनः ॥५२॥

अन्वमंसत तत् राजन् गोविन्द अनुग्रह ईक्षितं पीत्वा विषं परेतस्य पुनः उत्थानं आत्मनः ॥५२॥

राजन्	राजन् !	**उत्थानं**	उठ (जीवित हो) जानेका कारण
तत् विषं पीत्वा	वह विष पीकर	**गोविन्द**	गोविन्दका
परेतस्य	मरे हुए	**अनुग्रह ईक्षितं**	अनुग्रह पूर्वक देखना
आत्मनः	अपना	**अन्वमंसत**	निश्चय कर लिया ॥५२॥
पुनः	फिर		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे धेनुकवधो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्णः कृष्णाहिना विभुः ।
तस्या विशुद्धिमन्विच्छन् सर्पं तमुदवासयत् ॥१॥

विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्णः कृष्ण अहिना विभुः तस्या विशुद्धि अन्विच्छन् सर्पं तं उदवासयत् ॥१॥

विभुः कृष्णः	भगवान श्रीकृष्णने	**तस्या विशुद्धि**	उसकी शुद्धि करने-की
कृष्ण अहिना	काले सर्प (कालिय) द्वारा	**अन्विच्छन्**	इच्छा करके
कृष्णां दूषितां	यमुनाको दूषित हुआ	**तं सर्पं**	उस सर्पको
विलोक्य	देखकर	**उदवासयत्**	निकाल दिया ॥१॥

राजोवाच

कथमन्तर्जलेऽगाधे न्यगृह्णाद् भगवानहिम् ।
स वै बहुयुगावासं यथाऽऽसीद् विप्र कथ्यताम् ॥२॥

कथं अन्तः जले अगाधे न्यगृह्णात् भगवान् अहिं स वै बहुयुग आवासं यथा आसीत् विप्र कथ्यताम् ॥२॥

अगाधे	अथाह	**बहुयुग**	बहुत समयसे
अन्तः जले	जलके भीतरसे	**यथा**	(जलचर न होनेपर भी) वहां जैसे
भगवान् कथं	भगवानने कैसे		
अहिं	सर्पका	**आवासं**	रहता था
न्यगृह्णात्	दमन किया	**विप्र**	ब्रह्मन् !
वै स	निश्चय वह	**कथ्यतां**	यह बतलाइये ॥२॥

ब्रह्मन् भगवतस्तस्य भूम्नः स्वच्छन्दवर्तिनः ।
गोपालोदारचरितं कस्तृप्येतामृतं जुषन् ॥३॥

ब्रह्मन् भगवतः तस्य भूम्नः स्वच्छन्द वर्तिनः गोपाल उदार चरितं कः तृप्येत अमृतं जुषन् ॥३॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**तस्य गोपाल**	उन गोपालके
तस्य भूम्नः	उन सर्वव्यापक	**उदार चरितं**	उदार चरित रूपी
भगवतः	भगवान्	**अमृतं जुषन्**	अमृतको पीते हुए
स्वच्छन्द	स्वेच्छानुसार	**कः तृप्येत**	कौन तृप्त हो सकता है ॥३॥
वर्तिनः	लीला करनेवाले		

श्रीशुक उवाच

कालिन्द्यां कालियस्यासीद्ध्रदः कश्चिद् विषाग्निना ।
श्रप्यमाणपया यस्मिन् पतन्त्युपरिगाः खगाः ॥४॥

कालिन्द्यां कालियस्य आसीत् ह्रदः कश्चित् विष अग्निना श्रप्यमाणपया यस्मिन् पतन्ति उपरिगाः खगाः ॥४॥

कालिन्द्यां	यमुनामें	**उपरिगाः**	उसके ऊपरसे उड़कर जानेवाले
कालियस्य	कालिय नागके	**खगाः**	पक्षी
विष अग्निना	विषकी ज्वालासे	**यस्मिन्**	जिसमें
श्रप्यमाणपया	खौलते जल वाला	**पतन्ति**	गिर पड़ते थे ॥४॥
कश्चित् ह्रदः	कोई कुण्ड		
आसीत्	था,		

विप्रुष्मता विषोदोर्मिमारुतेनाभिमर्शिताः ।
म्रियन्ते तीरगा यस्य प्राणिनः स्थिरजंगमाः ॥५॥

विप्रुष्मता विषात् उर्मि मारुतेन अभिमर्शिताः म्रियन्ते तीरगा यस्य प्राणिनः स्थिर जंगमाः ॥५॥

यस्य विषात्	जिसके विषसे	**तीरगा**	किनारेके
विप्रुष्मता	खौलती	**स्थिर जंगमाः**	स्थावर-जंगम सब
उर्मि	तरंगोंसे	**प्राणिनः म्रियन्ते**	प्राणी मर जाते थे ॥५॥
अभिमर्शिताः	लगकर चलते		
मारुतेन	वायुके कारण		

तं चण्डवेगविषवीर्यमवेक्ष्य तेन
दुष्टां नदीं च खलसंयमनावतारः ।
कृष्णः कदम्बमधिरुह्य ततोऽतितुंग-
मास्फोट्य गाढरशनो न्यपतद् विषोदे ॥६॥

तं चण्डवेग विषवीर्यं अवेक्ष्य तेन दुष्टां नदीं च खल संयमन अवतारः कृष्णः कदम्बं अधिरुह्य ततः अतितुंगं आस्फोट्य गाढरशनः न्यपतत् विष ओदे ॥६॥

खल संयमन	दुष्ट-दलनके लिए	अवेक्ष्य	देखकर
अवतारः	अवतार लेनेवाले	ततः	वहांसे
कृष्णः	श्रीकृष्णने	अतितुंगं	बहुत ऊँचे
तं	उस (कालिय) को	कदम्बं	कदम्बपर
चण्डवेग	प्रचण्ड वेगवाले	अधिरुह्य	चढ़कर
विषवीर्यं	विषका बलवाला	गाढरशनः	फेटा कसकर
च तेन	और उसके द्वारा	आस्फोट्य	ताल ठोंककर
दुष्टां	दूषित	विष ओदे	विषैले जलमें
नदीं	नदी (यमुना) को	न्यपतत्	कूद पड़े ॥६॥

सर्पह्रदः पुरुषसारनिपातवेग-
संक्षोभितोरगविषोच्छ्वसिताम्बुराशिः ।
पर्यक्प्लुतो विषकषायविभीषणोर्मि-
र्धावन् धनुःशतमनन्तबलस्य किं तत् ॥७॥

सर्पह्रदः पुरुषसार निपात वेग संक्षोभित उरग विष उच्छ्वसित अम्बुराशिः पर्यक् प्लुतः विष कषाय विभीषण उर्मिः धावन् धनुः शतं अनन्त बलस्य किं तत् ॥७॥

सर्पह्रदः	वह सर्पका कुण्ड	पुरुष	परम पुरुषके
उरग विष	सर्पके विषसे	सार	पौरुष पूर्वक
उच्छ्वसित	(पहिले ही) खौल रहा था	निपात	कूदनेके
		वेग	वेगसे

संक्षोभित	क्षुब्ध हुई	पर्यक्	(चार सौ हाथ) चारों ओर
विष कषाय	विषके दोषसे	धावन् प्लुतः	दौड़ती भिगा गयी,
विभीषण	अत्यन्त भयानक	अनन्त	अनन्त
उर्मिः	लहरोंवाली	बलस्य	पराक्रम (भगवान्के लिए)
अम्बुराशिः	वह जल राशि	तत् किं	यह क्या बड़ी बात है ॥७॥
धनुः शतं	सौ धनुष		

तस्य ह्रदे विहरतो भुजदण्डघूर्ण-
वार्घोषमंग वरवारणविक्रमस्य ।
आश्रुत्य तत् स्वसदनाभिभवं निरीक्ष्य
चक्षुःश्रवाः समसरत्तदमृष्यमाणः ॥८॥

तस्य ह्रदे विहरतः भुजदण्ड घूर्ण वारि घोषं अंग वरवारण विक्रमस्य आश्रुत्य तत् स्वसदन अभिभवं निरीक्ष्य चक्षुःश्रवाः समसरत् तत् अमृष्यमाणः ॥८॥

अंग	प्रिय परीक्षित् !	आश्रुत्य	सुनकर और
वरवारण	श्रेष्ठ गजराजके समान	स्वसदन	अपने निवासका
विक्रमस्य	पराक्रमवाले	तत् अभिभवं	वह तिरस्कार
तस्य ह्रदे	उनके कुण्डमें	निरीक्ष्य	देखकर
विहरतः	विहार करते (तैरते) समय	चक्षुः श्रवाः	आंखोंसे सुननेवाला (सर्प)
भुजदण्ड	भुजदण्डोंसे	तत्	उसे
घूर्ण	घूमते	अमृश्यमाणः	सहन न करके (चिढ़कर)
वारि घोषं	जलका शब्द	समसरत्	सामने आ गया ॥८॥

तं प्रेक्षणीयसुकुमारघनावदातं
श्रीवत्सपीतवसनं स्मितसुन्दरास्यम् ।
क्रीडन्तमप्रतिभयं कमलोदराङ्घ्रि
सन्दश्य मर्मसु रुषा भुजया चछाद ॥९॥

तं प्रेक्षणीय सुकुमार घन अवदातं श्रीवत्स पीतवसनं स्मित सुन्दर आस्यं क्रीडन्तं अप्रतिभयं कमल उदर अङ्घ्रि सन्दश्य मर्मसु रुषा भुजया चछाद ॥६॥

तं प्रेक्षणीय	उन दर्शनीय	क्रीडन्तं	खेलते हुए
सुकुमार	सुकुमार	कमल	कमलके
घन	मेघश्याम	उदर	भीतरी भागके समान
श्रीवत्स	श्रीवत्स	अङ्घ्रि	चरणोंवाले-को
अवदातं	लाञ्छन,	रुषा	क्रोधपूर्वक
पीतवसनं	पीताम्बरधारी,	मर्मसु	मर्म-स्थानमें
स्मित	मुस्कान	सन्दश्य	डंसकर
सुन्दर आस्यं	विभूषित मुखको	भुजया	अपने भोग-बन्धनसे
अप्रतिभयं	शत्रुसे निर्भय	चछाद	ढक लिया ॥६॥

तं नागभोगपरिवीतमदृष्टचेष्ट-
मालोक्य तत्प्रियसखाः पशुपा भृशार्ताः ।
कृष्णेऽर्पितात्मसुहृदर्थकलत्रकामा
दुःखानुशोकभयमूढधियो निपेतुः ॥१०॥

तं नाग भोग परिवीतं अदृष्ट चेष्टं आलोक्य तत् प्रिय सखाः पशुपा भृश आर्ताः कृष्णे अर्पित आत्म सुहृत् अर्थ कलत्र कामा दुःख अनुशोक भय मूढधियः निपेतुः ॥१०॥

तं नाग	उन नागके	कामा	सब कामनाओंवाले
भोग	शरीरसे	तत् प्रिय सखाः	उनके प्यारे सखा
परिवीतं	बँधे हुए	पशुपा	पशुपालक
अदृष्ट चेष्टं	कोई चेष्टा न दीखने वाले	भृश आर्ताः	अत्यन्त व्याकुल होकर
कृष्णे	श्रीकृष्णको	दुःख	दुःख,
आलोक्य	देखकर	अनुशोक	भारी शोक,
अर्पित	उन्हींको समर्पित	भय मूढधियः	भयसे मूर्छित बुद्धि होकर
आत्म	शरीर	निपेतुः	गिर पड़े ॥१०॥
सुहृत् अर्थ	सुहृद, धन,		
कलत्र	स्त्री तथा		

गावो वृषा वत्सतर्यः क्रन्दमानाः सुदुःखिताः ।
कृष्णे न्यस्तेक्षणा भीता रुदत्य इव तस्थिरे ॥११॥

गावः वृषा वत्सतर्यः क्रन्दमानाः सुदुःखिताः कृष्णे न्यस्त ईक्षणा भीता रुदत्य इव तस्थिरे ॥११॥

क्रन्दमानाः	डकराते हुए	**न्यस्त ईक्षणा**	दृष्टि लगाये
सुदुःखिताः	अत्यन्त दुःखी	**भीता**	डरे हुए,
गावः वृषा	गायें, बैल,	**रुदत्य इव**	रोतेके समान
वत्सतर्यः	बछड़ियां	**तस्थिरे**	खड़े रह गये ॥११॥
कृष्णे	श्रीकृष्णमें		

अथ व्रजे महोत्पातास्त्रिविधा ह्यतिदारुणाः ।
उत्पेतुर्भुवि दिव्यात्मन्यासन्नभयशंसिनः ॥१२॥

अथ व्रजे महा उत्पाताः त्रिविधा हि अति दारुणाः उत्पेतुः भुवि दिवि आत्मनि आसन्न भय शंसिनः ॥१२॥

अथ हि	फिर क्योंकि	**त्रिविधा**	तीनों प्रकारके
आसन्न भय	निकटके भयको	**अति दारुणाः**	अत्यन्त भयानक
शंसिनः	सूचित करनेवाले	**महा उत्पाताः**	घोर अपशकुन
भुवि दिवि	पृथ्वी, आकाश और	**व्रजे उत्पेतुः**	व्रजमें उठने (होने)
आत्मनि	शरीरमें		लगे ॥१२॥

तानालक्ष्य भयोद्विग्ना गोपा नन्दपुरोगमाः ।
विना रामेण गाः कृष्णं ज्ञात्वा चारयितुं गतम् ॥१३॥

तान् आलक्ष्य भय उद्विग्ना गोपा नन्द पुरोगमाः विना रामेण गाः कृष्णं ज्ञात्वा चारयितुं गतम् ॥१३॥

नन्द	जिनके आगे नन्दजी	**उद्विग्ना**	व्याकुल होकर
पुरोगमाः	चलत थे उन	**विना रामेण**	बिना बलरामके
गोपा	गोपोंने	**गाः चारयितुं**	गाय चराने
तान् आलक्ष्य	उन अपशकुनोंको देखकर	**गतं कृष्णं**	गये श्रीकृष्णको
		ज्ञात्वा	जानकर ॥१३॥
भय	भयसे		

तैर्दुर्निमित्तैर्निधनं मत्वा प्राप्तमतद्विदः ।
तत्प्राणास्तन्मनस्कास्ते दुःखशोकभयातुराः ॥१४॥

तैः दुर्निमित्तैः निधनं मत्वा प्राप्तं अतत् विदः तत् प्राणाः तत् मनस्काः ते दुःख शोक भय आतुराः ॥१४॥

अतत् विदः	उनको न जानने-वाले	**तत् प्राणाः**	उन्हींपर आश्रित जीवन
ते तैः	वे उन	**तत् मनस्काः**	उन्हींमें लगे मनवाले
दुर्निमित्तैः	बुरे शकुनोंसे	**दुःख शोक**	दुःख, शोक,
निधनं प्राप्तं मत्वा	(उनको) मृत्यु प्राप्त मानकर	**भय आतुराः**	भयसे व्याकुल हो गये ॥१४॥

आबालवृद्धवनिताः सर्वेऽङ्ग पशुवृत्तयः ।
निर्जग्मुर्गोकुलाद् दीनाः कृष्णदर्शनलालसाः ॥१५॥

आबाल वृद्ध वनिताः सर्वे अंग पशु वृत्तयः निर्जग्मुः गोकुलात् दीनाः कृष्ण दर्शन लालसाः ॥१५॥

अंग	प्रिय परीक्षित !	**कृष्ण**	श्रीकृष्णके
आबाल	बच्चोंसे लेकर	**दर्शन**	दर्शनकी
वृद्ध	बूढ़ों तक और	**लालसाः**	लालसासे
वनिताः	स्त्रियां	**दीनाः**	दुःखित
सर्वे	सब	**गोकुलात्**	गोष्ठोंसे
पशु वृत्तयः	पशु-पालन जीविकावाले	**निर्जग्मुः**	निकल पड़े ॥१५॥

तांस्तथा कातरान् वीक्ष्य भगवान् माधवो बलः ।
प्रहस्य किञ्चिन्नोवाच प्रभावज्ञोऽनुजस्य सः ॥१६॥

तान् तथा कातरान् वीक्ष्य भगवान् माधवः बलः प्रहस्य किञ्चित् न उवाच प्रभावज्ञः अनुजस्य सः ॥१६॥

तान्	उन सबको	**कातरान्**	भय-विह्वल
तथा	इस प्रकार	**वीक्ष्य**	देखकर

माधवः	लक्ष्मीकान्तके स्वरूप	**न उवाच**	नहीं बोले, क्योंकि
भगवान् बलः	भगवान् बलराम	**सः अनुजस्य**	वे छोटे भाईका
प्रहस्य	जोरसे हंसकर	**प्रभावज्ञः**	प्रभाव जाननेवाले
किञ्चित्	कुछ भी		थे ॥१६॥

तेऽन्वेषमाणा दयितं कृष्णं सूचितया पदैः ।
भगवल्लक्षणैर्जग्मुः पदव्या यमुनातटम् ॥१७॥

ते अन्वेषमाणा दयितं कृष्णं सूचितया पदैः भगवत् लक्षणैः जग्मुः पदव्या यमुनातटम् ॥१७॥

भगवत्	भगवान्के	**कृष्णं**	श्रीकृष्णको
लक्षणैः	लक्षणोंवाले	**अन्वेषमाणा**	ढूंढ़ते हुए
पदैः	चरण-चिह्नोंसे	**यमुनातटं**	यमुना किनारे
सूचितया	सूचित करनेके कारण	**पदव्या जग्मुः**	उनके स्थानपर गये ॥१७॥
ते दयितं	वे अपने प्रिय		

ते तत्र तत्राब्जयवाङ्कुशाशनि-
ध्वजोपपन्नानि पदानि विश्पतेः ।
मार्गे गवामन्यपदान्तरान्तरे
निरीक्षमाणा ययुरंग सत्वराः ॥१८॥

ते तत्र तत्र अब्ज यव अङ्कुश अशनि ध्वज उपपन्नानि पदानि विश्पतेः मार्गे गवां अन्य पद अन्तर अन्तरे निरीक्षमाणा ययुः अंग सत्वराः ॥१८॥

तत्र तत्र	जहां-तहां	**ध्वज**	ध्वजाके
मार्गे	मार्गमें	**उपपन्नानि**	चिह्नोंसे युक्त
गवां	गायों तथा	**निश्पतेः**	विश्वपति भगवान्के
अन्य पद	दूसरोंके पैरोंके	**पदानि**	चरण-चिह्न
अन्तरे	बीच-बीचमें	**निरीक्षमाणा**	देखते हुए
अब्ज यव	कमल, जौ	**ते सत्वराः**	वे शीघ्रतापूर्वक
अङ्कुश अशनि	अंकुश, वज्र,	**ययुः**	गये ॥१८॥

अन्तर्ह्रदे भुजगभोगपरीतमारात्
कृष्णं निरीहमुपलभ्य जलाशयान्ते ।
गोपांश्च मूढधिषणान् परितः पशूंश्च
संक्रन्दतः परमकश्मलमापुरार्ताः ॥१६॥

अन्तः ह्रदे भुजग भोग परीतं आरात् कृष्णं निरीहं उपलभ्य जलाशय अन्ते गोपान् च मूढधिषणान् परितः पशून् च संक्रन्दतः परम कश्मलं आपुः आर्ताः ॥१६॥

आरात्	दूरसे ही	मूढधिषणान्	मूर्छित पड़े
अन्तः ह्रदे	कुण्डके भीतर	गोपान्	गोपोंको
भुजग भोग	सर्पके शरीरमें	च परितः	एवं चारों ओर
परीतं	लिपटे हुए	संक्रन्दतः	डकराते
निरीहं	निश्चेष्ट	पशून् उपलभ्य	पशुओंको पाकर
कृष्णं	श्रीकृष्णको	आर्ताः	व्याकुल होकर
च	तथा	परम कश्मलं	बहुत कष्ट
जलाशय	उस जलाशयके	आपुः	पाया ॥१६॥
अन्ते	किनारे		

गोप्योऽनुरक्तमनसो भगवत्यनन्ते
तत्सौहृदस्मितविलोकगिरः स्मरन्त्यः ।
ग्रस्तेऽहिना प्रियतमे भृशदुःखतप्ताः
शून्यं प्रियव्यतिहृतं ददृशुस्त्रिलोकम् ॥२०॥

गोप्यः अनुरक्त मनसः भगवति अनन्ते तत् सौहृद स्मित विलोक गिरः स्मरन्त्यः ग्रस्ते अहिना प्रियतमे भृश दुःख तप्ताः शून्यं प्रिय व्यतिहृतं ददृशुः त्रिलोकम् ॥२०॥

भगवति अनन्ते	अनन्त भगवान्‌में	मनसः गोप्यः	चित्त गोपियां
अनुरक्त	आसक्त	तत् सौहृद	उनका सौहार्द्र,

स्मित	मुस्कराते हुए	भृश दुःख	अत्यन्त दुःखसे
विलोक	देखकर	तप्ताः	सन्तप्त हुईं और
गिरः	बोलना	प्रिय	उन प्रियतमके
स्मरन्त्यः	स्मरण करती हुई	व्यतिहृतं	वियोगमें
प्रियतमे	उन प्रियतमके	त्रिलोक	त्रिभुवन
अहिना	सांप द्वारा	शून्यं ददृशुः	सूना देखने लगीं
ग्रस्ते	पकड़े जानेपर		॥२०॥

ताः कृष्णमातरमपत्यमनु प्रविष्टां
तुल्यव्यथा समनुगृह्य शुचः स्रवन्त्यः ।
तास्ता व्रजप्रियकथाः कथयन्त्य आसन्
कृष्णाननेऽर्पितदृशो मृतकप्रतीकाः ॥२१॥

ताः कृष्ण मातरं अपत्यं अनु प्रविष्टां तुल्य व्यथाः सम् अनुगृह्य शुचः स्रवन्त्यः ताः ता व्रजप्रिय कथाः कथयन्त्य आसन् कृष्ण आनने अर्पित दृशः मृतक प्रतीकाः ॥२१॥

कृष्ण	श्रीकृष्णकी	अनुगृह्य	पकड़कर
मातरं	माता यशोदाको	ताः	वे उनके
अपत्यं अनु	पुत्रके पीछे	तुल्य व्यथाः	समान ही पीड़ावाली
प्रविष्टां	(हृदमें) कूदनेसे	शुचः स्रवन्त्यः	आंसू बहाती
कृष्ण	श्रीकृष्णके	व्रजप्रिय	व्रजके प्रिय (उन श्रीकृष्ण) की
आनने	मुखपर	ताः ता	उन-उन (पिछले)
अर्पित दृशः	नेत्र लगाये	कथाः	चरितोंको
मृतक	मृत हो गयी-सी	कथयन्त्य आसन्	वर्णन करने लगीं
प्रतीकाः	लगतीको		॥२१॥
सम्	भली प्रकार		

कृष्णप्राणान् निविशतो नन्दादीन् वीक्ष्य तं ह्रदम् ।
प्रत्यषेधत् स भगवान् रामः कृष्णानुभाववित् ॥२२॥

कृष्ण प्राणान् निविशतः नन्द आदीन् वीक्ष्य तं ह्रदं प्रत्यषेधत् स भगवान् रामः कृष्ण अनुभाववित् ॥२२॥

कृष्ण	श्रीकृष्ण ही	कृष्ण	श्रीकृष्णका
प्राणान्	जिनके प्राण हैं	अनुभाववित्	प्रभाव जाननेवाले
नन्द आदीन्	उन नन्द आदिको	स	उन
तं ह्रदं	उस ह्रदमें	भगवान् रामः	भगवान बलरामने
निविशतः	कूदते	प्रत्यषेधत्	बलपूर्वक रोक
वीक्ष्य	देखकर		दिया ॥२२॥

इत्थं स्वगोकुलमनन्यगतिं निरीक्ष्य
सस्त्रीकुमारमतिदुःखितमात्महेतोः ।
आज्ञाय मर्त्यपदवीमनुवर्तमानः
स्थित्वा मुहूर्तमुदतिष्ठदुरङ्गबन्धात् ॥२३॥

इत्थं स्वगोकुलं अनन्य गतिं निरीक्ष्य सस्त्री कुमारं अति दुःखितं आत्महेतोः आज्ञाय मर्त्यपदवीं अनुवर्तमानः स्थित्वा मुहूर्तं उदतिष्ठत् उरंग बन्धात् ॥२३॥

मर्त्यपदवीं	मनुष्य-चरितका	कुमारं	बालकों तकको
अनुवर्तमानः	अनुकरण करते हुए	आत्महेतोः	अपने लिए
इत्थं	इस प्रकार	अति दुःखितं	अत्यन्त दुःखी
स्वगोकुलं	अपने गो-व्रजको	आज्ञाय	जानकर
अनन्य	अपने अतिरिक्त	मुहूर्तं	वहां एक मुहूर्त
	और कोई	स्थित्वा	रहकर
गतिं	गति नहीं	उरंग बन्धात्	सर्पके बन्धनसे
निरीक्ष्य	देखकर तथा	उदतिष्ठत्	बाहर निकल आये
सस्त्री	स्त्रियोंके साथ		॥२३॥

तत्प्रथ्यमानवपुषा व्यथितात्मभोग-
स्त्यक्त्वोन्नमय्य कुपितः स्वफणान् भुजङ्गः ।
तस्थौ श्वसञ्छ्वसनरन्ध्रविषाम्बरीष-
स्तब्धेक्षणोल्मुकमुखो हरिमीक्षमाणः ॥२४॥

तत् प्रध्यमान वपुषा व्यथित आत्मभोगः त्यक्त्वा उन्नमय्य कुपितः स्वफणान् भुजंगः तस्थौ श्वसन् श्वसन् रन्ध्र विष अम्बरीषः स्तब्ध ईक्षण उल्मुक मुखः हरिं ईक्षमाणः ॥२४॥

तत् वपुषा	उन (श्रीकृष्ण) के शरीर	**श्वसन् रन्ध्र**	श्वास-छिद्र नासिका से
प्रध्यमान	फुलानेसे	**विष**	विषकी
आत्मभोगः	अपना शरीर	**अम्बरीषः**	फुहार छोड़ता
व्यथितः	पीड़ित होनेसे	**उल्मुक मुखः**	मुखसे जैसे आगकी लपटें फेंकता हो
त्यक्त्वा	उन्हें छोड़कर		
स्वफणान्	अपने फणोंको	**स्तब्ध ईक्षणं**	स्थिर नेत्रोंसे
उन्नमय्य	ऊपर उठाकर	**हरिं ईक्षमाणः**	श्रीकृष्णको देखता
कुपितः भुजंगः	क्रुद्ध सर्प	**तस्थौ**	खड़ा रह गया
श्वसन्	फुसकार मारता		॥२४॥

तं जिह्वया द्विशिखया परिलेलिहानं
द्वे सृक्किणी ह्यतिकरालविषाग्निदृष्टिम् ।
क्रीडन्नमुं परिससार यथा खगेन्द्रो
बभ्राम सोऽप्यवसरं प्रसमीक्षमाणः ॥२५॥

तं जिह्वया द्विशिखयां परिलेलिहानं द्वे सृक्किणी हि अतिकराल विष अग्नि दृष्टिं क्रीडन् अमुं परिससार यथा खगेन्द्रः बभ्रामं सः अपि अवसरं प्रसमीक्षमाणः ॥२५॥

द्विशिखया	दो नोकोंवाली	**अतिकराल**	अत्यन्त भयंकर
जिह्वया	जीभसे	**विष अग्नि**	विष भरी अग्नि जैसे
द्वे सृक्किणी	दोनों ओष्ठोंके किनारोंको	**दृष्टिं**	नेत्रोंसे देख रहा था,
		क्रीडन्	उसके साथ खेलते हुए
परिलेलिहानं	चारों ओर चाटता हुआ	**खगेन्द्रः यथा**	गरुड़के समान
हि	क्योंकि	**अमुं**	उसके चारों ओर

परिससार	घूमने लगे,	प्रसमीक्षमाणः	देखता हुआ
सः अपि	(तब) वह भी	बभ्राम	घूमने लगा ॥२५॥
अवसरं	अवसर		

एवं परिभ्रमहतौजसमुन्नतांस-
मानम्य तत्पृथुशिरः स्वधिरूढ आद्यः ।
तन्मूर्धरत्ननिकरस्पर्शातिताम्र-
पादाम्बुजोऽखिलकलादिगुरुर्ननर्त ॥२६॥

एवं परिभ्रम हत ओजसं उन्नत अंसं आनम्य तत् पृथुशिरः सु अधिरूढ आद्यः तत् मूर्ध्नि रत्न निकर स्पर्श अतिताम्र पादाम्बुजः अखिल कला आदि गुरुः ननर्त ॥२६॥

एवं	इस प्रकार	कला	कलाओंके वे
परिभ्रम	चारों ओर घूमनेसे	आदि गुरुः	आदि गुरु
हत ओजसं	क्षीण बल हुए	तत्	उसके
तत् उन्नत अंसं	उसके उठे फणको	मूर्ध्नि रत्न	सिरोंमें स्थित रत्न
आनम्य	झुकाकर	निकर स्पर्शं	समूहके स्पर्शसे
पृथुशिरः सु	भारी फणपर	अतिताम्र	अतिशय लाल
अधिरूढः	उछलकर चढ़कर	पादाम्बुजः	चरण-कमलोंसे
आद्यः	आदि पुरुष	ननर्त	नाचने लगे ॥२६॥
अखिल	सम्पूर्ण		

तं नर्तुमुद्यतमवेक्ष्य तदा तदीय-
गन्धर्वसिद्धसुरचारणदेववध्वः ।
प्रीत्या मृदंगपणवानकवाद्यगीत-
पुष्पोपहारनुतिभिः सहसोपसेदुः ॥२७॥

तं नर्तुं उद्यतं अवेक्ष्य तदा तदीय गन्धर्व सिद्ध सुर चारण देववध्वः प्रीत्या मृदंग पणव आनक वाद्य गीत पुष्प उपहार नुतिभिः सहसा उपसेदुः ॥२७॥

तं नतुं	उनको नृत्य करनेको	पणव आनक	भेरी, नगाड़े
उद्यतं	उद्यत	वाद्य गीत	बजाते, गाते
तदा अवेक्ष्य	उस समय देखकर	पुष्प	पुष्प
तदीय	उनके भक्त	उपहार	भेंट करते (बरसाते)
गन्धर्व सिद्ध	गन्धर्व, सिद्ध,	नुतिभिः	नमस्कार करते
सुर चारण	देवता, चारण,	सहसा	अचानक
देववध्वः	देवांगनाएँ	उपसेदुः	समीप आ गये
प्रीत्या मृदंग	प्रेमपूर्वक मृदंग,		॥२७॥

यद् यच्छिरो न नमतेऽङ्गशतैकशीर्ष्ण-
स्तत्तन्ममर्द खरदण्डधरोऽङ्घ्रिपातैः ।
क्षीणायुषो भ्रमत उल्बणमास्यतोऽसृङ्
नस्तो वमन् परमकश्मलमाप नागः ॥२८॥

यत् यत् शिरः न नमते अंग शत एक शीर्ष्णः तत् तत् ममर्द खर दण्डधरः अङ्घ्रि पातैः क्षीण आयुषः भ्रमत उल्बणं आस्यतः असृक् नस्तः वमन् परम कश्मलं आप नागः ॥२८॥

अंग	प्रिय परीक्षित !	क्षीण	(इससे उसकी) जीवन शक्ति क्षीण
शत एक	उस एक सौ एक		
शीर्ष्णः	सिर वाले	आयुषः	हो गयी
यत् यत् शिरः	जो-जो सिर (फण)	भ्रमत उल्बणं	घूमते हुए भयानक
न नमते	नहीं झुकता था	आस्यतः नस्तः	मुखों और नाकसे
खर	उग्र	असृक् वमन्	खून फेंकता
दण्डधरः	दण्ड देनेवाले*	नागः	कालिय नाग
अङ्घ्रि पातैः	चरण पटककर	परम कश्मलं	भारी कष्ट
तत् तत्	उस उसको	आप	पाने लगा ॥२८॥
ममर्द	कुचल देते थे,		

तस्याक्षिभिर्गरलमुद्वमतः शिरस्सु
यद् यत् समुन्नमति निःश्वसतो रुषोच्चैः ।

---

* अथवा कमलनालधारी श्रीकृष्ण

नृत्यन् पदानुनमयन् दमयाम्बभूव
पुष्पैः प्रपूजित इवेह पुमान् पुराणः ॥२९॥

तस्य अक्षिभिः गरलं उद्वमतः शिरः सु यत् यत् सम उन्नमति निःश्वसतः रुषा उच्चैः नृत्यन् पदा अनुनमयन् दमयान् बभूव पुष्पैः प्रपूजित इव इह पुमान् पुराणः ॥२९॥

तस्य अक्षिभिः	उसकी आखोंसे	नृत्यन् पदा	नाचते हुए चरणोंसे
गरलं	विष	अनुनमयन्	उसी क्रमसे उसे झुकाते
उद्वमतः	उगलते हुए		
रुषा	क्रोधसे	दमयान्	कुचलते हुए
उच्चैः	जोर-जोरसे	इह पुष्पैः	यहां फूलोंसे
निःश्वसतः	फुसकार छोड़ते हुए	प्रपूजित	भली प्रकार पूजितके
शिरः सु	फणोंमें-से	इव	समान
यत् यत्	जिस जिसको	पुराणः पुमान्	वे पुराण पुरुष
सम	सम्हाल कर	बभूव	(शोभित) हुए
उन्नमति	ऊपर उठाता था		॥२९॥

तच्चित्रताण्डवविरुग्णफणातपत्रो
रक्तं मुखैरुरु वमन् नृप भग्नगात्रः ।
स्मृत्वा चराचरगुरुं पुरुषं पुराणं
नारायणं तमरणं मनसा जगाम ॥३०॥

तत् चित्रताण्डव विरुग्ण फण आतपत्रः रक्तं मुखैः उरु वमन् नृप भग्नगात्रः स्मृत्वा चराचर गुरुं पुरुषं पुराणं नारायणं तं अरणं मनसा जगाम ॥३०॥

नृप	राजन् !	विरुग्ण	बहुत घायल हो गया,
तत्	(श्रीकृष्णके) उस		
चित्रताण्डव	विचित्र ताण्डवसे	मुखैः	मुखोंसे
फण आतपत्रः	फणों रूपी छत्ता	उरु रक्तं	बहुत-सा रक्त

वमन्	फेंकता हुआ	नारायणं	नारायणका
भग्नगात्रः	टूटे शरीरवाला वह	स्मृत्वा	स्मरण करके
चराचर गुरुं	चराचरके गुरु	तं अरणं	उन रक्षककी
पुराणं पुरुषं	पुराण पुरुष	मनसा जगाम	शरण गया ॥३०॥

कृष्णस्य गर्भजगतोऽतिभरावसन्नं
पार्ष्णिप्रहारपरिरुग्णफणातपत्रम् ।
दृष्ट्वाहिमाद्यमुपसेदुरमुष्य पत्न्य
आर्ताः श्लथद्वसनभूषणकेशबन्धाः ॥३१॥

कृष्णस्य गर्भं जगतः अतिभर अवसन्नं पार्ष्णि प्रहार परिरुग्ण फण आतपत्रं दृष्ट्वा अहिं आद्यं उपसेदुः अमुष्य पत्न्य आर्ताः श्लथत् वसन भूषण केशबन्धाः ॥३१॥

गर्भं	उदरमें सम्पूर्ण	अहिं दृष्ट्वा	सर्पको देखकर
जगतः	विश्वको लिए	आर्ताः	व्याकुला
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके	श्लथत्	अस्त-व्यस्त
अतिभर	भारी भारसे	वसन भूषण	वस्त्र, आभूषण,
अवसन्नं	शिथिल पड़े,	केशबन्धाः	तथा जूड़ेवाली
पार्ष्णि	(उनकी) एड़ीके	अमुष्य पत्न्य	उसकी पत्नियां
प्रहार	प्रहारसे	आद्यं उपसेदुः	उन आदि पुरुषकी
परिरुग्ण	सब ओर फटे		शरण आयीं ॥३१॥
फण आतपत्रं	फणोंके छत्ते वाले		

तास्तं सुविग्नमनसोऽथ पुरस्कृतार्भाः
कायं निधाय भुवि भूतपतिं प्रणेमुः ।
साध्व्यः कृताञ्जलिपुटाः शमलस्य भर्तु-
र्मोक्षेप्सवः शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥३२॥

तान् तं सुविग्न मनसः अथ पुरः कृत अर्भः कायं निधाय भुवि भूतपतिं प्रणेमुः साध्व्यः कृत अञ्जलिपुटाः शमलस्य भर्तुः मोक्ष ईप्सवः शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥३२॥

सुविग्न	अत्यन्त घबड़ाते	भूत-	समस्त प्राणियोंके
मनसः	चित्तसे	पतिं	स्वामीको
अथ अर्भः	उस समय बालकों-	प्रणेमुः	प्रणाम किया
	को	तान्	उन (पतिके)
पुरः कृत	आगे करके	शमलस्य	अपराधोंसे
साध्व्यः	उन सतियोंने	भर्तुः मोक्ष	पतिका छुटकारा
अंजिल	हाथ	ईप्सवः	चाहती हुई
पुटाः कृत	जोड़े हुए	तं शरणदं	उन शरण दाताकी
भुवि कायं	पृथ्वीपर शरीर	शरणं प्रपन्नाः	शरण ग्रहण की
निधाय	फैलाकर		॥३२॥

नागपत्न्य ऊचुः

न्याय्यो हि दण्डः कृतकिल्बिषेऽस्मि-
स्तवावतारः खलनिग्रहाय ।
रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टे-
र्धत्से दमं फलमेवानुशंसन् ॥३३॥

न्याय्यः हि दण्डः कृत किल्बिषे अस्मिन् तव अवतारः खल निग्रहाय रिपोः सुतानां अपि तुल्य दृष्टेः धत्से दमं फलं एव अनुशंसन् ॥३३॥

हि तव	क्योंकि आपका	रिपोः सुतानां	शत्रु और पुत्रोंपर
अवतारः	अवतार	अपि तुल्य	भी समान
खल निग्रहाय	दुष्ट-दलनके लिए	दृष्टेः	दृष्टि रखनेवाले
	है,		आप
कृत किल्बिषे	अपराध करनेवाले	फलं एव	परिणामको ही
अस्मिन्	इस (नाग) को	अनुशंसन्	ध्यानमें रखकर
दण्डः	दण्ड देना	दण्डः धत्से	दण्ड देते हैं ॥३३॥
न्याय्यः	उचित ही है,		

अनुग्रहोऽयं भवतः कृतो हि नो
दण्डोऽसतां ते खलु कल्मषापहः ।

यद् दन्दशूकत्वममुष्य देहिनः
क्रोधोऽपि तेऽनुग्रह एव सम्मतः ॥३४॥

अनुग्रहः अयं भवतः कृतः हि नः दण्डः असतां ते खलु कल्मष अपहः यत् दन्दशूकत्वं अमुष्य देहिनः क्रोधः अपि ते अनुग्रह एव सम्मतः ॥३४॥

भवतः नः	आपका हमपर	दन्दशूकत्वं	सर्प-योनि प्राप्त हुई (उस पापसे)
अयं अनुग्रहः	यह अनुग्रह है,	देहिनः	इस शरीरधारीपर
हि असतां	क्योंकि दुष्टोंको	ते क्रोधः अपि	आपका क्रोध भी
ते दण्डः	आपका दण्ड	अनुग्रह एव	अनुग्रह ही
खलु	निश्चय	सम्मतः	(हम) मानती हैं ॥३४॥
कल्मष अपहः	पापहारी होता है,		
यत् अमुष्य	जिससे इनको		

तपः सुतप्तं किमनेन पूर्वं
निरस्तमानेन च मानदेन ।
धर्मोऽथ वा सर्वजनानुकम्पया
यतो भवांस्तुष्यति सर्वजीवः ॥३५॥

तपः सुतप्तं किं अनेन पूर्वं निरस्त मानेन च मानदेन धर्मः अथ वा सर्वजन अनुकम्पया यतः भवान् तुष्यति सर्वजीवः ॥३५॥

पूर्वं	पूर्व जन्ममें	तपः सुतप्तं	उत्तम तपस्या की,
अनेन	इन्होंने	अथ वा	अथवा
मानेन	अभिमान	सर्वजन	सब लोगोंपर
निरस्त	त्यागकर	अनुकम्पया	कृपा करते हुए
च	तथा	धर्मः	धर्म किया
मानदेन	दूसरोंको सम्मान देते हुए	यतः सर्वजीवः	जिससे सर्वात्मा
		भवान् तुष्यति	आप सन्तुष्ट होते हैं ॥३५॥
किं	क्या		

कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे
तवाङ्घ्रिरेणुस्पर्शाधिकारः ।

यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाऽऽचरत्तपो
विहाय कामान् सुचिरं धृतव्रता ॥३६॥

कस्य अनुभावः अस्य न देव विद्महे तव अङ्घ्रि रेणु स्पर्श अधिकारः यत् वाञ्छया श्रीः ललना आचरत् तपः विहाय कामान् सुचिरं धृतव्रता ॥३६॥

यत्	जिसे	**अङ्घ्रि रेणुः**	चरण-रजको
वाञ्छया	पानेकी इच्छासे	**स्पर्श**	स्पर्शकर
कामान् विहाय	भोगोंको त्यागकर	**अधिकारः**	अधिकार
धृतव्रता	व्रत धारण करके	**देव**	देव !
सुचिरं	बहुत समय तक	**अस्य कस्य**	इनके किस पुण्यका
श्रीः ललना	लक्ष्मी जैसी सुन्दरी	**अनुभावः**	प्रभाव हैं,
तपः आचरत्	तपस्या करती रहीं	**विद्महे न**	हम नहीं जानतीं ॥३६॥
तव	उस आपकी		

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं
न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
वाञ्छन्ति यत्पादरजः प्रपन्नाः ॥३७॥

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं न पारमेष्ठ्यं न रसा आधिपत्यं न योगसिद्धिः न अपुनः भवं वा वाञ्छन्ति यत् पादरजः प्रपन्नाः ॥३७॥

यत् पादरजः	जिनकी चरण-रजके	**न**	नहीं,
प्रपन्नाः	शरणागत लोग	**रसा**	पातालका
नाकपृष्ठं न	स्वर्ग नहीं	**आधित्यं न**	अधिपति होना नहीं,
च	तथा	**योगसिद्धिः**	योगकी सिद्धियां
सार्वभौमं	पृथ्वीका सम्राटपद	**न**	नहीं
न	नहीं,	**वा अपुनः भवं**	तथा मोक्ष भी
पारमेष्ठ्यं	ब्रह्माका पद	**न वाञ्छन्ति**	नहीं चाहते ॥३७॥

तदेष नाथाप दुराप्तमन्यै-
स्तमोजनिः क्रोधवशोऽप्यहीशः ।
संसारचक्रे भ्रमतः शरीरिणो
यदिच्छतः स्याद् विभवः समक्षः ॥३८॥

तत् एष नाथ आप दुः अवाप अन्यैः तमः अजनिः क्रोधवशः अपि अहीशः संसारचक्रे भ्रमतः शरीरिणः यत् इच्छतः स्यात् विभवः समक्षः ॥३८॥

नाथ	प्रभो !	**अहीशः आप**	सर्पराज पा गया,
अन्यैः	दूसरोंके लिए	**संसारचक्रे**	इस संसार-चक्रमें
दुःअवाप	दुष्प्राप्य	**भ्रमतः**	भटकते हुए
तत्	वह (आपकी चरण-रज)	**शरीरिणः**	शरीरधारीके
		यत्	जिसका
तमः	तमोगुणी	**समक्षः**	साक्षात्कार पानेकी
अजनिः	योनिमें उत्पन्न	**इच्छतः**	इच्छा मात्र करनेसे
क्रोधवशः	क्रोधके वशमें रहने-वाला	**विभवः**	(मोक्षका भी) वैभव
		स्यात्	प्राप्त हो जाता है ॥३८॥
अपि एष	होकर भी यह		

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ।
भूतावासाय भूताय पराय परमात्मने ॥३९॥

नमः तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने भूत आवासाय भूताय पराय परमात्मने ॥३९॥

तुभ्यं भगवते	आप भगवान	**भूताय**	प्राणि स्वरूप
पुरुषाय	जीवस्वरूप	**पराय**	सबसे परे
महात्मने	पुरुषोत्तम	**परमात्मने**	परमात्मा
भूत आवासाय	सब प्राणियोंमें रहने वाले	**तुभ्यं नमः**	आपको नमस्कार ॥३९॥

ज्ञानविज्ञाननिधये ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
अगुणायाविकाराय नमस्तेऽप्राकृताय च ॥४०॥

ज्ञान विज्ञान निधये ब्रह्मणे अनन्त शक्तये अगुणाय अविकाराय नमः ते अप्राकृताय च ॥४०॥

ज्ञान विज्ञान	ज्ञान-विज्ञानके	अविकाराय	निर्विकार
निधये	कोश	च	तथा
ब्रह्मणे	ब्रह्मस्वरूप	अप्राकृताय	प्रकृतिसे अस्पृष्ट
अनन्त शक्तये	अनन्त शक्तिवाले	ते नमः	अपको नमस्कार ॥४०॥
अगुणाय	निर्गुण		

कालाय कालनाभाय कालावयवसाक्षिणे ।
विश्वाय तदुपद्रष्ट्रे तत्कर्त्रे विश्वहेतवे ॥४१॥

कालाय कालनाभाय काल अवयव साक्षिणे विश्वाय तत् उपद्रष्ट्रे तत् कर्त्रे विश्वहेतवे ॥४१॥

कालाय	कालस्वरूप	विश्वाय	विश्वरूप
कालनाभाय	कालके आश्रय	तत्	उस विश्व) के
काल	कालके (दिन-कल्पादि)	उपद्रष्ट्रे	तटस्थ द्रष्टा
		तत् कर्त्रे	उसके निर्माता तथा
अवयव	अंगोंके	विश्व हेतवे	विश्वके कारण ॥४१॥
साक्षिणे	साक्षी		

भूतमात्रेन्द्रियप्राणमनोबुद्ध्याशयात्मने ।
त्रिगुणेनाभिमानेन गूढस्वात्मानुभूतये ॥४२॥

भूत मात्र इन्द्रिय प्राण मनः बुद्धि आशय आत्मने त्रिगुणेन अभिमानेन गूढ स्वात्म अनुभूतये ॥४२॥

भूत मात्र	पंचभूत, पंचतन्मात्रा,	त्रिगुणेन	त्रिगुणात्मक
		अभिमानेन	अभिमान द्वारा
इन्द्रिय प्राण	इन्द्रिय, प्राण,	स्वात्म	अपने आत्मा
मनः बुद्धि	मन, बुद्धि,	अनुभूतये	अनुभवको
आशय आत्मने	अन्तःकरण स्वरूप,	गूढ	छिपाये हुए ॥४२॥

नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय कूटस्थाय विपश्चिते ।
नानावादानुरोधाय वाच्यवाचकशक्तये ॥४३॥

नमः अनन्ताय सूक्ष्माय कूटस्थाय विपश्चिते नानावाद अनुरोधाय वाच्य वाचक शक्तये ॥४३॥

अनन्ताय	अनन्त,	**अनुरोधाय**	जाननेवाले,
सूक्ष्माय	अत्यन्त सूक्ष्म	**वाच्य वाचक**	शब्दार्थ एवं शब्दकी
कूटस्थाय	कूटस्थ	**शक्तये नमः**	शक्ति स्वरूप आप-
विपश्चिते	सर्वज्ञ,		को नमस्कार ॥४३॥
नानावाद	नाना मतोंसे		

नमः प्रमाणमूलाय कवये शास्त्रयोनये ।
प्रवृत्ताय निवृत्ताय निगमाय नमो नमः ॥४४॥

नमः प्रमाण मूलाय कवये शास्त्र योनये प्रवृत्ताय निवृत्ताय निगमाय नमो नमः ॥४४॥

प्रमाण मूलाय	(प्रत्यक्षादि) प्रमाणों-	**प्रवृत्ताय**	प्रवृत्ति-परक एवं
	के मूलाधार	**निवृत्ताय**	निवृत्ति-परक
कवये नमः	ज्ञान स्वरूप आपको	**निगमाय**	श्रुति स्वरूप
	नमस्कार,	**नमो नमः**	आपको बार-बार
शास्त्र योनये	शास्त्रोंके उत्पत्ति		नमस्कार ॥४४॥
	स्थान		

नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥४५॥

नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च प्रद्युम्नाय अनिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥४५॥

सात्वतां पतये	भक्तोंके स्वामी	**कृष्णाय**	श्रीकृष्ण
वसुदेवसुताय	वसुदेव-पुत्र	**रामाय**	बलराम (सङ्कर्षण)
	(वासुदेव)		को

नमः	नमस्कार	**अनिरुद्धाय**	अनिरुद्ध (चतुर्व्यूह)
च प्रद्युम्नाय	तथा प्रद्युम्न एवं		को
		नमः	नमस्कार ॥४५॥

नमो गुणप्रदीपाय गुणात्मच्छादनाय च ।
गुणवृत्त्युपलक्ष्याय गुणद्रष्ट्रे स्वसंविदे ॥४६॥

नमः गुण प्रदीपाय गुण आत्मच्छादनाय च गुण वृत्ति उपलक्ष्याय गुणद्रष्ट्रे स्वसंविदे ॥४६॥

गुण प्रदीपाय	अन्तःकरण तथा वृत्तियोंके प्रकाशक,	**उपलक्ष्याय**	(कुछ) उपलक्षित होनेवाले,
गुण आत्म-	उन्हीं गुणोंसे अपने-	**गुणद्रष्ट्रे**	उन गुणोंके साक्षी
	को	**स्वसंविदे**	स्वयं ज्ञानरूपको
च्छादनाय	ढक लेनेवाले	**नमः**	नमस्कार ॥४६॥
च गुण वृत्ति	तथा गुणोंकी वृत्तियोंसे		

अव्याकृतविहाराय सर्वव्याकृतसिद्धये ।
हृषीकेश नमस्तेऽस्तु मुनये मौनशीलिने ॥४७॥

अव्याकृत विहाराय सर्वव्याकृत सिद्धये हृषीकेश नमः ते अस्तु मुनये मौनशीलिने ॥४७॥

सर्वव्याकृत	सब विकारवान् प्रपञ्चकी	**मौनशीलिने**	मननशाली
सिद्धये	सिद्धिके लिए	**मुनये**	मुनिस्वरूप
अव्याकृत	विकारहीन	**हृषीकेश**	हृषीकेश
विहाराय	लीला (स्वधाममें) करनेवाले	**ते नमः**	आपको नमस्कार
		अस्तु	है ॥४७॥

परावरगतिज्ञाय सर्वाध्यक्षाय ते नमः ।
अविश्वाय च विश्वाय तद्द्रष्ट्रेऽस्य च हेतवे ॥४८॥

पर अवर गतिज्ञाय सर्व अध्यक्षाय ते नमः अविश्वाय च विश्वाय तत् द्रष्ट्रे अस्य च हेतवे ॥४८॥

पर अवर	कारण-कार्य सब	**तत् द्रष्ट्रे**	उस (विश्व) के साक्षी,
गतिज्ञाय	गतियोंको जानने-वाले,	**च अस्य हेतवे**	तथा इस जगत्के कारण
सर्व अध्यक्षाय	सबके अध्यक्ष,	**ते नमः**	आपको नमस्कार ॥४८॥
अविश्वाय	विश्वातीत,		
च विश्वाय	तथा विश्वरूप,		

त्वं ह्यस्य जन्मस्थितिसंयमान् प्रभो
गुणैरनीहोऽकृतकालशक्तिधृक् ।
तत्तत्स्वभावान् प्रतिबोधयन् सतः
समीक्षयामोघविहार ईहसे ॥४९॥

त्वं हि अस्य जन्म स्थिति संयमान् प्रभो गुणैः अनीहः अकृत काल-शक्ति धृक् तत् तत् स्वभावान् प्रतिबोधयन् सतः समीक्षया अमोघविहार ईहसे ॥४९॥

प्रभो	प्रभो !	**अकृत**	करते हैं
हि त्वं	क्योंकि आप	**अमोघविहार**	अमोघ चेष्टावाले आप
अनीहः	चेष्टाहीन हैं, फिर भी	**समीक्षया**	अपनी सम्यक् दृष्टि-से ही
काल शक्ति धृक्	काल शक्तिको स्वीकार करके	**तत् तत्**	उन उन
गुणैः	गुणोंके द्वारा	**स्वभावान्**	अपने स्वरूप जीवोंको
अस्य जन्म	इस संसारकी उत्पत्ति	**प्रतिबोधयन्**	(सृष्टिके प्रारम्भमें) जगाते हुए
स्थिति	स्थिति	**सतः ईहसे**	सत्वगुणसे चेष्टावान् होते हैं ॥४९॥
संयमान्	प्रलय		

तस्यैव तेऽमूस्तनवस्त्रिलोक्यां
शान्ता अशान्ता उत मूढयोनयः ।
शान्ताः प्रियास्ते ह्यधुनावितुं सतां
स्थातुश्च ते धर्मपरीप्सयेहतः ॥५०॥

तस्य एव ते अमूः तनवः त्रिलोक्यां शान्ता अशान्ता उत मूढयोनयः शान्ताः प्रियाः ते हि अधुना अवितुं सतां स्थातुः च ते धर्म परीप्सया ईहतः ॥५०॥

त्रिलोक्यां	त्रिलोकीमें	**सतां अवितुं**	सत्पुरुषोंकी रक्षाके लिये
तस्य एव ते	उसी आपकी ही	**स्थातुः**	(विश्वकी) स्थितिके लिये
अमूः तनवः	ये लीला मूर्तियाँ	**धर्मं परिप्सया**	धर्मकी रक्षाके लिये
शान्ता अशान्ता	शान्त, अशान्त	**ते ईहत**	आपकी चेष्टा हो रही है
उत मूढयोनयः	तथा (तमोगुण प्रधान) मूढ-योनियों के प्राणी हैं	**शान्ताः**	शान्त (प्राणी)
हि अधुना	क्योंकि इस समय (आप)	**ते प्रियाः**	आपको प्रिय हैं ॥५०॥

अपराधः सकृद्भर्त्रा सोढव्यः स्वप्रजाकृतः ।
क्षन्तुमर्हसि शान्तात्मन् मूढस्य त्वामजानतः ॥५१॥

अपराधः सकृत् भर्त्रा सोढव्यः स्वप्रजाकृतः क्षन्तुम् अर्हसि शान्त आत्मन् मूढस्य त्वां अजानतः ॥५१॥

स्वप्रजाकृतः	अपनी प्रजाका किया हुआ	**मूढस्य**	इन मूढको
सकृत् अपराधः	एक बारका अपराध	**शान्त आत्मन्**	आप शान्त स्वरूप-को
भर्त्रा सोढव्यः	स्वामीको सह लेना चाहिए	**क्षन्तुम् अर्हसि**	क्षमा कर देना चाहिए ॥५१॥
त्वां अजानतः	आपको न जानने-वाले		

अनुगृह्णीष्व भगवन् प्राणांस्त्यजति पन्नगः ।
स्त्रीणां नः साधुशोच्यानां पतिः प्राणः प्रदीयताम् ॥५२॥

अनुगृह्णीष्व भगवन् प्राणान् त्यजति पन्नगः स्त्रीणां नः साधु शोच्यानां पतिः प्राणः प्रदीयताम् ॥५२॥

भगवन्	भगवन् !
पन्नगः	यह सर्प
प्राणान् त्यजति	प्राण त्याग करने ही वाला है
साधु शोच्यानां	सत्पुरुषों द्वारा शोचनीय मानी जाने वाली
नः स्त्रीणां	हम स्त्रियोंपर
अनुगृह्णीष्व	अनुग्रह कीजिए
पतिः प्राणः	हमें पतिका प्राण
प्रदीयतां	(दानमें) दीजिए ॥५२॥

विधेहि ते किङ्करीणामनुष्ठेयं तवाज्ञया ।
यच्छ्रद्धयानुतिष्ठन् वै मुच्यते सर्वतोभयात् ॥५३॥

विधेहि ते किङ्करीणां अनुष्ठेयं तव आज्ञया यत् श्रद्धया अनुतिष्ठन् वै मुच्यते सर्वतः भयात् ॥५३॥

नः किङ्करीणां	हम दासियोंको
तव आज्ञया	आपकी आज्ञासे
अनुष्ठेयं	जो करना हो उसकी
विधेहि	आज्ञा दीजिए
यत्	जिस (आपकी आज्ञाका)
श्रद्धया	श्रद्धापूर्वक
अनुतिष्ठत्	पालन करनेसे
वै	निश्चय (प्राणी)
सर्वतः ते	सब ओरसे वे
भयात् मुच्यते	भयसे छूट जाते हैं ॥५३॥

श्रीशुक उवाच

इत्थं स नागपत्नीभिर्भगवान् समभिष्टुतः ।
मूर्च्छितं भग्नशिरसं विससर्जाङ्घ्रिकुट्टनैः ॥५४॥

इत्थं स नागपत्नीभिः भगवान् सम अभिष्टुतः मूर्च्छितं भग्नशिरसं विससर्ज अङ्घ्रि कुट्टनैः ॥५४॥

इत्थं	इस प्रकार
नागपत्नीभिः	नाग पत्नियों द्वारा
सम अभिष्टुतः	भली प्रकार स्तुति करनेपर
स भगवान्	उन भगवान्ने
अङ्घ्रि कुट्टनैः	पैरकी ठोकरोंसे
भग्नशिरसं	फटे फणोंवाले
मूर्च्छितं	मुर्छित (नाग) को
विससर्ज	छोड़ दिया ॥५४॥

प्रतिलब्धेन्द्रियप्राणः कालियः शनकैर्हरिम् ।
कृच्छ्रात् समुच्छ्वसन् दीनः कृष्णं प्राह कृताञ्जलिः ॥५५॥

प्रतिलब्ध इन्द्रियप्राणः कालियः शनकैः हरिं कृच्छ्रात् सम उच्छ्वसन् दीनः कृष्णं प्राह कृत अञ्जलिः ॥५५॥

शनकैः	धीरे-धीरे	**दीनः**	दीनतापूर्वक
इन्द्रियप्राणः	इन्द्रियोंमें चेतना	**कृत अञ्जलिः**	हाथ जोड़कर
प्रतिलब्ध	लौट आनेपर	**हरिं कृष्णं**	श्रीहरि श्रीकृष्णसे
कृच्छ्रात्	कष्ट पूर्वक	**प्राह**	बोला ॥५५॥
सम उच्छ्वसन्	ठीक श्वास ले पाने-पर		

कालिय उवाच*

वयं खलाः सहोत्पत्त्या तामसा दीर्घमन्यवः ।
स्वभावो दुस्त्यजो नाथ लोकानां यदसद्ग्रहः ॥५६॥

वयं खलाः सह उत्पत्या तामसा दीर्घमन्यवः स्वभावः दुस्त्यजः नाथ लोकानां यत् असत् ग्रहः ॥५६॥

नाथ	स्वामी !	**वयं सह**	हम तो
यत् लोकानां	जिससे लोगोंमें	**उत्पत्या**	जन्मसे ही
असत् ग्रहः	दुराग्रह होता है, वह	**खलाः तामसा**	दुष्ट, तमोगुणी,
स्वभावः	अपना स्वभाव	**दीर्घ**	बहुत समय तक
दुस्त्यजः	त्याग देना बहुत कठिन है और	**मन्यवः**	क्रोध रखनेवाले हैं ॥५६॥

त्वया सृष्टमिदं विश्वं धातर्गुणविसर्जनम् ।
नानास्वभाववीर्यौजोयोनिबीजाशयाकृति ॥५७॥

त्वया सृष्टं इदं विश्वं धातः गुण विसर्जनं नाना स्वभाव वीर्यं ओजः योनि बीज आशय आकृतिः ॥५७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

धातः	विश्वविधाता !	**वीर्य ओजः**	वीर्य, बल,
गुण विसर्जनं	गुणोंके कार्यभेदसे	**योनि बीज**	योनि, संस्कार,
त्वया इदं	आपने इस	**आशय**	अन्तःकरण और
विश्वं	संसारको	**आकृतिः**	आकार वाला
नाना	अनेक प्रकारके	**सृष्टं**	बनाया है ॥५७॥
स्वभाव	स्वभाव		

वयं च तत्र भगवन् सर्पा जात्युरुमन्यवः ।
कथं त्यजामस्त्वन्मायां दुस्त्यजां मोहिताः स्वयम् ॥५८॥

वयं च तत्र भगवन् सर्पा जाति उरु मन्यवः कथं त्यजामः त्वत् मायां दुस्त्यजां मोहिताः स्वयम् ॥५८॥

भगवन्	भगवन् !	**त्वत् दुस्त्यजां**	आपकी दुस्त्याज्य
तत्र वयं च	उसीमें हम भी	**मायां**	मायाको
जाति	जातिसे	**स्वयं मोहिताः**	स्वयं मोहित रहते
उरु मन्यवः	अत्यन्त क्रोधी	**कथं त्यजामः**	कैसे छोड़ सकते हैं
सर्पा	सर्प हैं		॥५८॥

भवान् हि कारणं तत्र सर्वज्ञो जगदीश्वरः ।
अनुग्रहं निग्रहं वा मन्यसे तद् विधेहि नः ॥५९॥

भवान् हि कारणं तत्र सर्वज्ञः जगदीश्वरः अनुग्रहं निग्रहं वा मन्यसे तत् विधेहि नः ॥५९॥

सर्वज्ञः	सर्वज्ञ !	**अनुग्रहं**	अनुग्रह
जगदीश्वरः	जगदीश्वर	**वा निग्रहं**	अथवा दण्ड देना,
हि तत्र	क्योंकि इसमें भी	**मन्यसे**	जो ठीक समझें
भवान् कारणं	आप ही कारण हैं	**विधेहि**	वह कीजिये ॥५९॥
तत् नः	अतः हमपर		

श्रीशुक उवाच

इत्याकर्ण्य वचः प्राह भगवान् कार्यमानुषः ।

इति आकर्ण्य वचः प्राह भगवान् कार्य मानुषः ।

इति	(कालियकी) यह	**कार्यं**	प्रयोजन वश
वचः	बात	**मानुषः**	मनुष्य बने
आकर्ण्य	सुनकर	**भगवान् प्राह**	भगवानने कहा

श्रीभगवानुवाच*

नात्र स्थेयं त्वया सर्प समुद्रं याहि माचिरम् ।
स्वज्ञात्यपत्यदाराढ्यो गोनृभिर्भुज्यतां नदी ॥६०॥

न अत्र स्थेयं त्वया सर्प समुद्रं याहि माचिरम् स्वज्ञाति अपत्य दार आढ्यः गाः नृभिः भुज्यतां नदी ॥६०॥

सर्प	सर्प !	**समुद्रं याहि**	समुद्रमें चले जाओ
अत्र त्वया	यहां तुमको	**माचिरं**	देर मत करो
न	नहीं रहना चाहिए	**गाः**	गायों और
स्थेयं	(तुम)	**नृभिः**	मनुष्यों द्वारा
स्वज्ञाति	अपनी जाति	**नदी**	इस नदी (यमुना)
अपत्य दार	पुत्र-स्त्रियोंसे		का
आढ्यः	बहुत बढ़े हो (अतः)	**भुज्यतां**	उपभोग हो ॥६०॥

त एतत् संस्मरेन्मर्त्यस्तुभ्यं मदनुशासनम् ।
कीर्तयन्नुभयोः सन्ध्योर्न युष्मद् भयमाप्नुयात् ॥६१॥

यः एतत् संस्मरेत् मर्त्यः तुभ्यं मत् अनुशासनं कीर्तयन् उभयोः सन्ध्योः न युष्मत् भयं आप्नुयात् ॥६१॥

यः मर्त्यः	जो मनुष्य	**कीर्तयन**	कीर्तन करे
उभयोः सन्ध्योः	दोनों सन्ध्या समय	**युष्मत्**	वह तुम लोगों
तुभ्यं	तुमको दी गयी		(सर्पों) से
एतत् मत्	इस मेरी	**भयं न**	भय नहीं
अनुशासनं	आज्ञाको	**आप्नुयात्**	पावेगा ॥६१॥
संस्मरेत्	स्मरण करे या		

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

योऽस्मिन् स्नात्वा मदाक्रीडे देवादींस्तर्पयेज्जलैः ।
उपोष्य मां स्मरन्नर्चेत् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६२॥

यः अस्मिन् स्नात्वा मत् आक्रीडे देव आदीन् तपयेत् जलैः उपोष्य मां स्मरन् अर्चेत् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६२॥

यः अस्मिन्	जो इस	जलैः	जलसे
मत् आक्रीडे	मेरे क्रीडास्थानमें	तर्पयेत्	तर्पण करेगा तथा
स्नात्वा	स्नान करके	अर्चेत्	पूजा करेगा
उपोष्य मां	उपवास करके मुझे	सर्वपापैः	वह सब पापोंसे
स्मरन्	स्मरण करते हुए	प्रमुच्यते	मुक्त हो जायगा
देव आदीन्	देवतादिको		॥६२॥

द्वीपं रमणकं हित्वा ह्रदमेतमुपाश्रितः ।
यद्भयात् स सुपर्णस्त्वां नाद्यान्मत्पादलाञ्छितम् ॥६३॥

द्वीपं रमणकं हित्वा ह्रदं एतं उपाश्रितः यत् भयात् स सुपर्णः त्वां न अद्यात् मत् पदलाञ्छितम् ॥६३॥

यत् भयात्	जिनके भयसे	स सुपर्णः	वे गरुड़
रमणकं द्वीपं	रमणक द्वीपको	मत्	मेरे
हित्वा	त्याग कर	पादलाञ्छितं	चरणोंसे चिह्नित
एतं ह्रदं	इस कुंडका (तुमने)	त्वां न अद्यात्	तुमको नहीं खायँगे
उपाश्रितः	आश्रय लिया था		॥६३॥

श्रीशुक उवाच

एवमुक्तो भगवता कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ।
तं पूजयामास मुदा नागपत्न्यश्च सादरम् ॥६४॥

एवं उक्तः भगवता कृष्णेन अद्भुत कर्मणा तं पूजयामास मुदा नागपत्न्यः च सादरम् ॥६४॥

एवं अद्भुत	इस प्रकार	तं मुदा	उनकी आनन्दपूर्वक
कर्मणा	कर्म करनेवाले	सादरं	आदर सहित उसने
भगवता	भगवान	च	तथा
कृष्णेन	श्रीकृष्ण द्वारा	नागपत्न्यः	नाग पत्नियोंने भी
उक्तः	आज्ञा देनेपर	पूजयामास	पूजा की ॥६४॥

दिव्याम्बरस्रङ्मणिभिः परार्ध्यैरपि भूषणैः ।
दिव्यगन्धानुलेपैश्च महत्योत्पलमालया ॥६५॥

दिव्य अम्बर स्रक् मणिभिः परार्ध्यैः अपि भूषणैः दिव्य गन्ध अनुलेपैः च महत्या उत्पलमालया ॥६५॥

दिव्य अम्बर	दिव्य वस्त्र	अनुलेपैः	अंगराग
स्रक् मणिभिः	मणियोंकी माला,	च महत्या	एवं भारी
च परार्ध्यैः	तथा बहुमूल्य	उत्पलमालया	कमलोंकी मालासे ॥६५॥
भूषणैः	आभूषणों		
दिव्य गन्ध	दिव्य सुगन्धित		

पूजयित्वा जगन्नाथं प्रसाद्य गरुडध्वजम् ।
ततः प्रीतोऽभ्यनुज्ञातः परिक्रम्याभिवन्द्य तम् ॥६६॥

पूजयित्वा जगन्नाथं प्रसाद्य गरुडध्वजं ततः प्रीतः अभ्य अनुज्ञातः परिक्रम्य अभिवन्द्य तम् ॥६६॥

तं जगन्नाथं	उन जगन्नाथ	अभ्य	भली प्रकार
गरुडध्वजं	गरुड़-ध्वजकी	अनुज्ञातः	अनुमति पाकर
पूजयित्वा	पूजा करके	परिक्रम्य	(उनकी) परिकमा करके
प्रसाद्य	(उनको) प्रसन्न करके	अभिवन्द्य	पुनः प्रणाम करके ॥६६॥
ततः प्रीतः	तब प्रसन्न होकर		

सकलत्रसुहृत्पुत्रो द्वीपमब्धेर्जगाम ह ।
तदैव सामृतजला यमुना निर्विषाभवत् ।
अनुग्रहाद् भगवतः क्रीडामानुषरूपिणः ॥६७॥

स कलत्र सुहृत् पुत्रः द्वीपं अब्धेः जगाम ह तत् एव सा अमृत जला यमुना निर्विषा अभवत् अनुग्रहात् भगवतः क्रीडा मानुष रूपिणः ॥६७॥

कलत्र	स्त्रियों	**भगवतः**	भगवानके
सुहृत्	सम्बन्धियों	**अनुग्रहात्**	अनुग्रहसे
स पुत्रः	तथा पुत्रोंके साथ	**तत् एव**	उसी समयसे ही
अब्धेः	समुद्रके	**सा अमृत**	वह अमृतके समान
द्वीपं	द्वीप (रमणक) में	**जला**	जलवाली
ह जगाम	निश्चित चला गया	**यमुना**	यमुना
क्रीडा मानुष	लीलासे मनुष्य	**निर्विषा**	विष-रहित
रूपिणः	रूपधारी	**अभवत्**	हो गयी ॥६७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे कालियमोक्षणं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

राजोवाच

नागालयं रमणकं कस्मात्तत्याज कालियः ।
कृतं किं वा सुपर्णस्य तेनैकेनासमञ्जसम् ॥ १ ॥

नाग आलयं रमणकं कस्मात् तत्याज कालियः कृतं किं वा सुपर्णस्य तेन एकेन असमञ्जसम् ॥१॥

नाग आलयं	नागोंके निवास	**वा तेन एकेन**	अथवा उस अकेलेने ही
रमणकं	रमणक द्वीपको	**सुपर्णस्य**	गरुड़का
कालियः	कालिय नागने	**किं असमञ्जसं कृतं**	क्या अपराध किया था ॥१॥
कस्मात् तत्याज	क्यों छोड़ा था		

श्रीशुक उवाच

उपहार्यैः सर्पजनैर्मासि मासीह यो बलिः ।
वानस्पत्यो महाबाहो नागानां प्राङ् निरूपितः ॥ २ ॥

उपहार्यैः सर्प जनैः मासि मासि इह यः बलिः वानस्पत्यः महाबाहो नागानां प्राक् निरुपितः ॥२॥

महाबाहो	विशाल बाहु परीक्षित !	**वानस्पत्यः**	निश्चित वृक्षके नीचे
नागानां यः	नागोंने जो	**सर्प जनैः**	एक-एक सर्पकी
प्राक् निरूपितः	पूर्वकालमें निश्चय किया था कि	**उपहार्यैः**	(गरुड़को) उपहार स्वरूप
इह मासि मासि	यहां प्रत्येक महीने	**बलिः**	बलि दी जाय ॥२॥

स्वं स्वं भागं प्रयच्छन्ति नागाः पर्वणि पर्वणि ।
गोपीथायात्मनः सर्वे सुपर्णाय महात्मने ॥ ३ ॥

स्वं स्वं भागं प्रयच्छन्ति नागाः पर्वणि पर्वणि गोपीथाय आत्मनः सर्वे सुपर्णाय महात्मने ॥३॥

आत्मनः	अपनी	**महात्मने**	महाकाय
गोपीथाय	रक्षाके लिए	**सुपर्णाय**	गरुड़को
सर्वे नागाः	सब नाग	**स्वं स्वं भागं**	अपना अपना भाग
पर्वणि पर्वणि	प्रत्येक पूर्णिमाको	**प्रयच्छन्ति**	देते थे ॥३॥

विषवीर्यमदाविष्टः काद्रवेयस्तु कालियः ।
कदर्थीकृत्य गरुडं स्वयं तं बुभुजे बलिम् ॥ ४ ॥

विष वीर्य मद आविष्टः काद्रवेयः तु कालियः कदर्थी कृत्य गरुडं स्वयं तं बुभुजे बलिम् ॥४॥

काद्रवेयः	कद्रूका पुत्र	**गरुडं**	गरुड़को
कालियः तु	कालिय तो	**कदर्थी कृत्य**	तुच्छ समझकर
विष वीर्य	विष-वीर्यके	**तं बलि**	उस भेंटको
मद आविष्टः	गर्वके आवेशमें आकर	**स्वयं बुभुजे**	स्वयं खा गया ॥४॥

तच्छ्रुत्वा कुपितो राजन् भगवान् भगवत्प्रियः ।
विजिघांसुर्महावेगः कालियं समुपाद्रवत् ॥ ५ ॥

तत् श्रुत्वा कुपितः राजन् भगवान् भगवत् प्रियः विजिघांसुः महावेगः कालियं सम उपाद्रवत् ॥५॥

भगवत् प्रियः	भगवान्के प्रिय	**कालियं**	कालियको
भगवान्	भगवान गरुड़ने	**विजिघांसुः**	मार देनेके लिए
तत् श्रुत्वा	यह सुनकर	**सम उपाद्रवत्**	उसपर टूट पड़े ॥५॥
महावेगः	वे अत्यन्त तीव्र वेगवाले		

तमापतन्तं तरसा विषायुधः
प्रत्यभ्ययादुच्छ्रितनैकमस्तकः ।
दद्भिः सुपर्णं व्यदशद् ददायुधः
करालजिह्वोच्छ्वसितोग्रलोचनः ॥ ६ ॥

तं आपतन्तं तरसा विष आयुधः प्रति अभ्ययात् उच्छ्रित न एक मस्तकः दद्भिः सुपर्णं व्यदशत् दद् आयुधः कराल जिह्वा उच्छ्वसित उग्रलोचनः ॥६॥

तं तरसा	उनको वेगपूर्वक	दद् आयुधः	दांत रूप अस्त्रवाला (नाग)
आपतन्तं	झपटते समय	उच्छ्वासित	फुफकारता हुआ
विष आयुधः	विष रूपी हथियार-वाला,	तं प्रति	उन (गरुड़) की ओर
न एक मस्तकः	अनेक सिरों (फणों) को	अभ्ययात्	सामने झपटा और
उच्छ्रित	उठाये	सुपर्णं	गरुड़को
उग्रलोचनः	भयानक नेत्रोंवाला,	दद्भिः	दांतोंसे
कराल जिह्वा	विकराल जीभों-वाला,	व्यदशत्	भली प्रकार डंसा ॥६॥

तं तार्क्ष्यपुत्रः स निरस्य मन्युमान्
प्रचण्डवेगो मधुसूदनासनः ।
पक्षेण सव्येन हिरण्यरोचिषा
जघान कद्रूसुतमुग्रविक्रमः ॥ ७ ॥

तं तार्क्ष्यपुत्रः स निरस्य मन्युमान् प्रचण्ड वेगः मधुसूदन आसनः पक्षेण सव्येन हिरण्य रोचिषा जघान कद्रू सुतं उग्र विक्रमः ॥७॥

तार्क्ष्यपुत्रः	त्वष्ट्रा-नन्दन,	उग्र विक्रमः	प्रचण्ड पराक्रम
मधुसूदन	भगवान् नारायणके	मन्युमान	क्रुद्ध उन गरुड़ने
आसनः	वाहन	तं कद्रू सुतं	उस कद्रू के पुत्र कालियको
प्रचण्ड वेगः	बहुत तीव्र गतिवाले,		

निरस्य	झटककर (फेंक दिया) और	सव्येन पक्षेण जघान	अपने बायें पंखसे मारा ॥७॥
हिरण्य रोचिषा	स्वर्णके समान कान्तिवाले		

सुपर्णपक्षाभिहतः कालियोऽतीव विह्वलः ।
ह्रदं विवेश कालिन्द्यास्तदगम्यं दुरासदम् ॥८॥

सुपर्ण पक्ष अभिहतः कालियः अतीव विह्वलः ह्रदं विवेश कालिन्द्याः तत् अगम्यं दुरासदम् ॥८॥

सुपर्ण पक्ष	गरुड़के पंखसे	दुरासदं	(दूसरोंके लिए भी गहरे होनेसे) अप्रवेश्य
अभिहतः	मारे जानेपर		
कालियः	कालिय नागने		
अतीव	अत्यन्त	कालिन्द्याः	यमुनाके (इस)
विह्वलः	व्याकुल होकर	ह्रदं विवेश	कुंडमें घुस गया ॥८॥
तत्	उनके लिए		
अगम्यं	अगम्य		

तत्रैकदा जलचरं गरुडो भक्ष्यमीप्सितम् ।
निवारितः सौभरिणा प्रसह्य क्षुधितोऽहरत् ॥९॥

तत्र एकदा जलचरं गरुडः भक्ष्यं ईप्सितं निवारितः सौभरिणा प्रसह्य क्षुधितः अहरत् ॥९॥

एकदा तत्र	एक बार वहां	जलचरं	एक जलचर मत्स्य-को
सौभरिणा	(तप करनेवाले) सौभरि मुनि द्वारा	प्रसह्य	बलपूर्वक
निवारितः	रोके जानेपर भी	अहरत्	पकड़कर खालिया ॥९॥
क्षुधितः गरुडः	भूखे गरुड़ने		
ईप्सितं भक्ष्यं	अपने अभीष्ट आहार		

मीनान् सुदुःखितान् दृष्ट्वा दीनान् मीनपतौ हते ।
कृपया सौभरिः प्राह तत्रत्यक्षेममाचरन् ॥१०॥

मीनान् सुदुःखितान् दृष्ट्वा दीनान् मीनपतौ हते कृपया सौभरिः प्राह तत्रत्य क्षेमं आचरन् ॥१०॥

मीनपतौ	'मत्स्यराजके	**तत्रत्य**	वहां रहनेवाले '
हते	मारे-मारे जानेपर		प्राणियोंकी
सुदुःखितान	अत्यन्त दुःखी	**क्षेमं आचरन्**	सुरक्षा करते हुए
दीनान् मीनान्	बेचारी मछलियोंको	**सौभरिः प्राह**	सौभरि मुनि बोले
दृष्ट्वा	देखकर		॥१०॥
कृपया	कृपापूर्वक		

अत्र प्रविश्य गरुडो यदि मत्स्यान् स खादति ।
सद्यः प्राणैर्वियुज्येत सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम् ॥११॥

अत्र प्रविश्य गरुडः यदि मत्स्यान् स खादति सद्यः प्राणैः वियुज्येत सत्यं एतत् ब्रवीमि अहम् ॥११॥

यदि गरुडः	यदि गरुड़	**वियुज्येत**	विमुक्त हो जायगा,
अत्र प्रविश्य	यहां आकर	**अहं एतत्**	मैं यह
स मत्स्यान्	वह मछलियां	**सत्यं ब्रवीमि**	सत्य कह रहा हूँ
खादति	खायगा तो		॥११॥
सद्यः प्राणैः	तत्काल प्राणोंसे		

तं कालियः परं वेद नान्यः कश्चन लेलिहः ।
अवात्सीद् गरुडाद् भीतः कृष्णेन च विवासितः ॥१२॥

तं कालियः परं वेद न अन्यः कश्चन लेलिहः अवात्सीत् गरुडात् भीतः कृष्णेन स विवासितः ॥१२॥

तं परं	इस बातको केवल	**भीतः**	डरकर (वह)
कालियः	कालिय नाग ही	**अवात्सीत्**	(वहां) बस गया
वेद	जानता था,	**कृष्णेन**	श्रीकृष्णके द्वारा
अन्यः कश्चन	दूसरा कोई	**स**	वह
लोलिहः न	सर्प नहीं जानता था,	**विवासितः**	निर्वासित कर दिया
गरुडात्	(अतः) गरुड़से		गया ॥१२॥

कृष्णं हृदाद् विनिष्क्रान्तं दिव्यस्रग्गन्धवाससम् ।
महामणिगणाकीर्णं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ॥१३॥

कृष्णं हृदात् विनिष्क्रान्तं दिव्यस्रक् गन्ध वाससं महामणिगण आकीर्णं जाम्बूनद परिष्कृतम् ॥१३॥

दिव्यस्रक्	दिव्यमाला,	**आकीर्णं**	खूब भरे (आभूणोंसे)
गन्ध	चन्दन,		ढकेसे
वाससं	वस्त्र धारण किये,	**हृदात्**	उस कुण्डसे
जाम्बूनद	स्वर्णमें	**विनिष्क्रान्तं**	निकलते हुए
परिष्कृतं	जटित	**कृष्णं**	श्रीकृष्णको ॥१३॥
महामणिगण	महामणियोंसे		

उपलभ्योत्थिताः सर्वे लब्धप्राणा इवासवः ।
प्रमोदनिभृतात्मानो गोपाः प्रीत्याभिरेभिरे ॥१४॥

उपलभ्य उत्थिताः सर्वे लब्ध प्राणा इव असवः प्रमोद निभृत आत्मानः गोपाः प्रीत्या अभिरेभिरे ॥१४॥

उपलभ्य	पाकर	**प्रमोद निभृत**	आनन्द मग्न
प्राणा	प्राणोंको	**आत्मानः**	चित्तसे
लब्ध असवः	जीवन-प्राप्तके	**प्रीत्या**	प्रेम पूर्वक
इव	समान	**अभिरेभिरे**	आलिंगन करने लगे
सर्वे गोपाः	सब गोप		॥१४॥
उत्थिताः	उठ खड़े हुए और		

यशोदा रोहिणी नन्दो गोप्यो गोपाश्च कौरव ।
कृष्णं समेत्य लब्धेहा आसँल्लब्धमनोरथाः ॥१५॥

यशोदा रोहिणी नन्दः गोप्यः गोपाः च कौरव कृष्णं सम एत्य लब्ध ईहा आसन् लब्ध मनोरथाः ॥१५॥

कौरव	परीक्षित !	**नन्दः**	बाबानन्द
यशोदा	यशोदा मैया,	**च गोप्यः**	तथा गोपियां
रोहिणी	माता रोहिणी	**गोपाः**	गोप

कृष्णं	श्रीकृष्णके	लब्ध मनोरथाः	वे पूर्णकाम
सम एत्य	समीप पहुँचकर	आसन्	हो गये ॥१५॥
लब्ध ईहा	उनकी इच्छा पूरी हो गयी		

रामश्चाच्युतमालिङ्ग्य जहासास्यानुभाववित् ।
नगा गावो वृषा वत्सा लेभिरे परमां मुदम् ॥१६॥

रामः च अच्युतं आलिङ्गच जहास अस्य अनुभाव वित् नगा गावः वृषा वत्सा लेभिरे परमां मुदम् ॥१६॥

अस्य	इन (श्रीकृष्ण) के	जहास	हंसे,
अनुभाव	प्रभावको	नगा गावः	पर्वत, गायों,
वित्	जाननेवाले	वृषा वत्सा	बैलों, बछड़ोंने
रामः च	बलरामजी भी	परमां मुदं	अत्यन्त आनन्द
अच्युतं	श्रीकृष्णका	लेभिरे	पाया ॥१६॥
आलिङ्गच	आलिंगन करके		

नन्दं विप्राः समागत्य गुरवः सकलत्रकाः ।
ऊचुस्ते कालियग्रस्तो दिष्ट्या मुक्तस्तवात्मजः ॥१७॥

नन्दं विप्राः सम आगत्य गुरवः सकलत्रकाः ऊचुः ते कालिय ग्रस्तः दिष्टया मुक्तः तव आत्मजः ॥१७॥

सकलत्रकाः	पत्नियोंके साथ	दिष्टचा	सौभाग्यवश
गुरवः	(गोपोंके) कुलगुरु	तव आत्मजः	तुम्हारा पुत्र
विप्राः	ब्राह्मणोंने	कालिय	कालिय नाग द्वारा
नन्दं सम	नन्दजीके समीप	ग्रस्तः	पकड़े जानेपर भी
आगत्य	आकर	मुक्तः	छूट गया है ॥१७॥
ते ऊचुः	उन्होंने कहा–		

देहि दानं द्विजातीनां कृष्णनिर्मुक्तिहेतवे ।
नन्दः प्रीतमना राजन् गाः सुवर्णं तदादिशत् ॥१८॥

देहि दानं द्विजातीनां कृष्ण निर्मुक्ति हेतवे नन्दः प्रीतमना राजन् गाः सुवर्णं तदा आदिशत् ॥१८॥

कृष्ण	श्रीकृष्णके	तदा नन्दः	तब नन्दजीने
निर्मुक्ति	छूट जानेके	प्रीतमना	प्रसन्न चित्तसे
हेतवे	कारण (उपलक्ष) में	गाः सुवर्ण	गायों और स्वर्ण
द्विजातीनां	ब्राह्मणोंको		(दानका)
दानं देहि	दान दीजिये	आदिशत्	सङ्कल्प किया ॥१८॥
राजन्	राजन् !		

यशोदापि महाभागा नष्टलब्धप्रजा सती ।
परिष्वज्याङ्कमारोप्य मुमोचाश्रुकलां मुहुः ॥१९॥

यशोदा अपि महाभागा नष्टलब्ध प्रजा सती परिष्वज्य अङ्कम् आरोप्य मुमोच अश्रुकलां मुहुः ॥१९॥

सती यशोदा	साध्वी यशोदाजी	परिष्वज्य	आलिंगन करके
अपि	भी	अङ्कं आरोप्य	गोदमें बैठाकर
नष्ट लब्ध	नष्ट हुए	मुहुः अश्रुकलां	बार-बार अश्रुधारा
प्रजा	पुत्रको फिर पाकर	मुमोच	बहाने लगीं ॥१९॥

तां रात्रिं तत्र राजेन्द्र क्षुत्तृड्भ्यां श्रमकर्शिताः ।
ऊषुर्व्रजौकसो गावः कालिन्द्या उपकूलतः ॥२०॥

तां रात्रिं तत्र राजेन्द्र क्षुत् तृट्भ्यां श्रमकर्शिताः ऊषुः व्रजौकसः गावः कालिन्द्या उपकूलतः ॥२०॥

राजेन्द्र	महाराज !	गावः तत्र	गायें वहीं
तां रात्रिं	उस रातमें	कालिन्द्या	यमुनाके
क्षुत् तृट्भ्यां	भूख-प्याससे तथा	उपकूलतः	कगारके ऊपर
श्रमकर्शितः	थके हुए	ऊषुः	सो रहे ॥२०॥
व्रजौकसः	व्रजवासी एवं		

तदा शुचिवनोद्भूतो दावाग्निः पर्वतो व्रजम् ।
सुप्तं निशीथ आवृत्य प्रदग्धुमुपचक्रमे ॥२१॥

तदा शुचिवन उद्भूतः दावाग्निः सर्वतः व्रजं सुप्तं निशीथ आवृत्य प्रदग्धुं उपचक्रमे ॥२१॥

तदा	उस समय	व्रजं आवृत्य	व्रजवासियोंको घेरकर
निशीथ	आधी रातमें		
शुचिवन	कांसके वनमें	प्रदग्धुं	जला देनेका
उद्भूतः	उठा (लगा) हुआ	उपचक्रमे	उपक्रम करने लगा ॥२१॥
दावाग्निः	दावाग्नि		
सर्वतः	चारों ओरसे		

तत उत्थाय सम्भ्रान्ता दह्यमाना व्रजौकसः ।
कृष्णं ययुस्ते शरणं मायामनुजमीश्वरम् ॥२२॥

तत उत्थाय सम्भ्रान्ता दह्यमाना व्रजौकसः कृष्णं ययुः ते शरणं माया मनुजं ईश्वरम् ॥२२॥

दह्यमाना	(आगकी गर्मीसे) जलते हुए	माया मनुजं	मायासे मनुष्य बने
		ईश्वरं	परमेश्वर
सम्भ्रान्ता	घबड़ाये हुए	कृष्णं	श्रीकृष्णकी
ते व्रजौकसः	वे व्रजवासी	शरणं ययुः	शरणमें गये ॥२२॥
तत उत्थाय	तब उठकर		

कृष्ण कृष्ण महाभाग हे रामामितविक्रम ।
एष घोरतमो वह्निस्तावकान् ग्रसते हि नः ॥२३॥

कृष्ण कृष्ण महाभाग हे राम अमित विक्रम एष घोरतमः वह्निः तावकान् ग्रसते हि नः ॥२३॥

कृष्ण	(बोले) कृष्ण !	तावकान्	हम तुम्हारे हैं,
महाभाग	महाभाग	एष घोरतमः	यह अत्यन्त भयानक
कृष्ण	कृष्ण !	वह्निः नः	अग्नि हम लोगोंको
हे अमित	हे अमित	ग्रसते	निगल लेना चाहती है ॥२३॥
विक्रम राम	पराक्रम बलराम !		
हि	क्योंकि		

सुदुस्तरान्नः स्वान् पाहि कालाग्नेः सुहृदः प्रभो ।
न शक्नुमस्त्वच्चरणं संत्यक्तुमकुतोभयम् ॥२४॥

सुदुस्तरात् नः स्वान् पाहि काल अग्नेः सुहृदः प्रभो न शक्नुमः त्वत् चरणं संत्यक्तुं अकुतः भयम् ॥२४॥

प्रभो	प्रभो !	**अकुतः भयं**	सर्वथा भयहीन
सुदुस्तरात्	इस अत्यन्त दुस्तर	**चरणं**	चरणोंको
काल अग्नेः	कालरूपी अग्निसे	**संत्यक्तुं**	छोड़नेमें
नः स्वान्	हम अपने	**शक्नुमः**	(हम) समर्थ
सुहृदः पाहि	सुहृदोंकी रक्षा करो	**न**	नहीं है ॥२४॥
त्वत्	तुम्हारे		

इत्थं स्वजनवैक्लव्यं निरीक्ष्य जगदीश्वरः ।
तमग्निमपिबत्तीव्रमनन्तोऽनन्तशक्तिधृक् ॥२५॥

इत्थं स्वजन वैक्लव्यं निरीक्ष्य जगदीश्वरः तं अग्निं अपिबत् तीव्रं अनन्तः अनन्त शक्तिधृक् ॥२५॥

इत्थं	इस प्रकार	**शक्तिधृक्**	शक्तिधारी
स्वजन	अपने लोगोंकी	**अनन्तः**	उन अनन्त श्रीकृष्णने
वैक्लव्यं	व्याकुलता	**तं तीव्रं**	उस भयंकर
निरीक्ष्य	देखकर	**अग्निं**	अग्निको
जगदीश्वरः	जगदीश्वर	**अपिबत्**	पी लिया ॥२५॥
अनन्त	अनन्त		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे
पूर्वार्धे दावाग्निमोचनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अथ अष्टादशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

अथ कृष्णः परिवृतो ज्ञातिभिर्मुदितात्मभिः ।
अनुगीयमानो न्यविशद् व्रजं गोकुलमण्डितम् ॥१॥

अथ कृष्णः परिवृतः ज्ञातिभिः मुदित आत्मभिः अनुगीयमानः न्यविशत् व्रजं गोकुल मण्डितम् ॥१॥*

अथ	इसके अनन्तर	**अनुगीयमानः**	प्रशंसित होते
मुदित	प्रसन्न	**कृष्णः**	श्रीकृष्ण
आत्मभिः	चित्त	**गोकुल**	गायोंके समूहसे
ज्ञातिभिः	अपनी जातिके लोगोंसे	**मण्डितं**	सुशोभित
		व्रजं	गोष्ठमें
परिवृतः	घिरे हुए	**न्यविशत्**	प्रविष्ट हुए ॥१॥

व्रजे विक्रीडतोरेवं गोपालच्छद्ममायया ।
ग्रीष्मो नामर्तुरभवन्नातिप्रेयाञ्छरीरिणाम् ॥२॥

व्रजे विक्रीडतः एवं गोपाल छद्म मायया ग्रीष्मः नाम ऋतुः अभवत् न अति प्रेयान् शरीरिणाम् ॥२॥

एवं	इस प्रकार	**ग्रीष्मः नाम**	ग्रीष्म नामक
मायया	मायासे	**ऋतुः अभवत्**	ऋतु हो गयी जो
गोपाल	गोपालका	**शरीरिणां**	शरीर-धारियोंको
छद्म	वेष बनाये	**अति प्रेयान्**	बहुत प्रिय
व्रजे	व्रजमें	**न**	नहीं है ॥२॥
विक्रीडतः	क्रीडा करते हुए		

---

* प्रसंगानुसार यह श्लोक पिछले सत्रहवें अध्यायका अन्तिम श्लोक होना चाहिये; क्योंकि अगले श्लोकसे ही दूसरे समयकी दूसरी लीलाका वर्णन प्रारम्भ हो गया है ।

स च वृन्दावनगुणैर्वसन्त इव लक्षितः ।
यत्रास्ते भगवान् साक्षाद् रामेण सह केशवः ॥३॥

स च वृन्दावन गुणैः वसन्त इव लक्षितः यत्र आस्ते भगवान् साक्षात् रामेण सह केशवः ॥३॥

यत्र रामेण	जहां बलरामजीके	**वृन्दावन**	वृन्दावनके
सह	साथ	**गुणैः**	गुणोंसे
साक्षात्	साक्षात्	**स च**	वह (ग्रीष्म) भी
भगवान्	भगवान	**वसन्त इव**	वसन्तके समान
केशवः आस्ते	केशव निवास करते थे उस	**लक्षितः**	जान पड़ता था ॥३॥

यत्र निर्झरनिर्ह्रादनिवृत्तस्वनझिल्लिकम् ।
शश्वत्तच्छीकरजीषद्रुममण्डलमण्डितम् ॥४॥

यत्र निर्झर निर्ह्राद निवृत्त स्वन झिल्लिकं शश्वत् तत् शीकरः जीष द्रुम मण्डल मण्डितम् ॥४॥

यत्र निर्झर	जहां झरनोंके	**शश्वत्**	निरन्तर
निर्ह्राद	तुमुल नादसे	**शीकरः जीष**	फुहारोंके लगनेसे हरे भरे
झिल्लिकं	झींगुरोंका तीक्ष्ण		
स्वन	स्वर	**द्रुम मण्डल**	वृक्ष-समूहोंसे (वह वन)
निवृत्त	दब गया था,		
तत्	उन (झरनों) की	**मण्डितं**	अलंकृत था ॥४॥

सरित्सरः प्रस्रवणोर्मिवायुना
कह्लारकञ्जोत्पलरेणुहारिणा ।
न विद्यते यत्र वनौकसां दवो
निदाघवह्न्यर्कभवोऽतिशाद्वले ॥५॥

सरित् सरः प्रस्रवण ऊर्मि वायुना कह्लार कञ्ज उत्पल रेणु हारिणा न विद्यते यत्र वनौकसां दवः निदाघ वह्नि अर्कभवः अतिशाद्वले ॥५॥

अतिशाद्वले	अत्यन्त हरे-भरे	वायुना	वायुकी
यत्र	जिस (वन) में	ऊर्मि	लहरोंके कारण
सरित्	नदियों,	निदाघ वह्नि	ग्रीष्मके दावानल
सरः	सरोवरों तथा		तथा
प्रस्रवण	झरनोंसे	अर्कभवः	सूर्यसे उत्पन्न
कह्लार कंज	लाल कमल,	दवः	ताप
	गुलाबी कमल,	वन ओकसां	वनवासियोंके लिए
उत्पल रेणु	श्वेत कमलकी पराग	विद्यते न	था ही नहीं ॥५॥
हारिणा	लाने वाले		

अगाधतोयह्रदिनीतटोर्मिभि-
र्द्रवत्पुरीष्याः पुलिनैः समन्ततः ।
न यत्र चण्डांशुकरा विषोल्बणा
भुवो रसं शाद्वलितं च गृह्णते ।६॥

अगाध तोय ह्रदिनी तट ऊर्मिभिः द्रवत् पुरीष्याः पुलिनैः समन्ततः न यत्र चण्डांशु करा विष उल्बणा भुवः रसं शाद्वलितं च गृह्णते ॥६॥

अगाध तोय	अथाह जलवाली	चण्डांशु	मार्तण्डकी
ह्रदिनी	सरिता (यमुना) का	विष उल्बणा	भयंकर विषैली
तट	किनारा	करा यत्र	किरणें जहां
द्रवत् ऊर्मिभिः	उठती लहरोंसे	शाद्वलितं	हरी-घासभरी
समन्ततः	चारों ओर	भुवः रसं च	भूमिका रस भी
पुरीष्याः	गली रेतवाले	न गृह्णते	नहीं ले पाती थीं
पुलिनैः	किनारेका था, अतः		॥६॥

वनं कुसुमितं श्रीमन्नदच्चित्रमृगद्विजम् ।
गायन्मयूरभ्रमरं कूजत्कोकिलसारसम् ॥७॥

वनं कुसुमितं श्रीमत् नदत् चित्र मृग द्विजं गायन् मयूर भ्रमरं कूजत् कोकिल सारसम् ॥७॥

कुसुमितं	पुष्पित	नदत्	शब्द करते थे
वनं	वन	मयूर भ्रमरं	मयूर और भ्रमर
श्रीमत्	शोभाशाली था,	गायन्	गाते थे,
मृग द्विजं	पशु-पक्षी	कोकिल सारसं	कोयल और सारस
चित्र	अनेक प्रकारके	कूजत्	कुहकते थे ॥७॥

क्रीडिष्यमाणस्तत् कृष्णो भगवान् बलसंयुतः ।
वेणुं विरणयन् गोपैर्गोधनैः संवृतोऽविशत् ॥८॥

क्रीडिष्यमाणः तत् कृष्णः भगवान् बल संयुतः वेणुं विरणयन् गोपैः गोधनैः संवृतः अविशत् ॥८॥

बल संयुतः	बलरामजीके साथ	संवृतः	घिरे हुए
क्रीडिष्यमाणः	खेलनेकी इच्छासे	वेणुं	उच्च स्वरसे वंशी
भगवान्	भगवान्	विरणयन्	बजाते हुए
कृष्णः	श्रीकृष्णने	तत्	उस (वन) में
गोपैः गोधनैः	गोपों और गायोंसे	अविशत्	प्रवेश किया ॥८॥

प्रवालबर्हस्तबकस्रग्धातुकृतभूषणाः ।
रामकृष्णादयो गोपा ननृतुर्युयुधुर्जगुः ॥९॥

प्रवालबर्ह स्तबक स्रक् धातु कृत भूषणाः राम कृष्ण आदयः गोपा ननृतुः युयुधुः जगुः ॥९॥

प्रवालबर्ह	किसलय, मयूर-पिच्छ,	राम कृष्ण	बलराम-श्रीकृष्ण
		आदयः गोपा	आदि गोप-बालक
स्तबक	पुष्प-गुच्छ,	ननृतुः	(कभी) नाचते थे,
स्रक्	माला, (गैरिकादि) वन	युयुधुः	(कभी) कुश्ती लड़ते थे,
धातु	धातुओंसे	जगुः	(कभी) गाते थे
कृत भूषणाः	आभूषण बनाये हुए		॥९॥

कृष्णस्य नृत्यतः केचिज्जगुः केचिदवादयन् ।
वेणुपाणितलैः शृंगैः प्रशशंसुरथापरे ॥१०॥

कृष्णस्य नृत्यतः केचित् जगुः केचित् अवादयन् वेणु पाणितलैः शृंगैः प्रशशंसुः अथ अपरे ॥१०॥

कृष्णस्य	श्रीकृष्णके	**शृंगैः अवादयन्**	शृंगी बजाते थे
नृत्यतः	नाचते समय	**अथ अपरे**	तथा दूसरे
केचित् जगुः	कोई गाते थे,	**प्रशशंसुः**	प्रशंसा करते थे ॥१०॥
केचित् वेणु	कोई वंशी		
पाणितलैः	हाथसे ताली या		

गोपजातिप्रतिच्छन्नौ देवा गोपालरूपिणः ।
ईडिरे कृष्णरामौ च नटा इव नटं नृप ॥११॥

गोप जाति प्रतिच्छन्नौ देवा गोपालरूपिणः ईडिरे कृष्ण रामौ च नटा इव नटं नृप ॥११॥

नृप	राजन् !	**गोपालरूपिणः**	गोपाल रूपधारी
नटा इव	नट लोग जैसे	**कृष्ण च**	श्रीकृष्ण तथा
नटं	नटकी (इस प्रकार)	**रामौ**	बलरामकी
गोप जाति	गोप जातिमें	**ईडिरे**	स्तुति करते थे ॥११॥
प्रतिच्छन्नौ	छिपे हुए		
देवा	देवता		

भ्रामणैर्लङ्घनैः क्षेपैरास्फोटनविकर्षणैः ।
चिक्रीडतुर्नियुद्धेन काकपक्षधरौ क्वचित् ॥१२॥

भ्रामणैः लङ्घनैः क्षेपैः आस्फोटन विकर्षणैः चिक्रीडतुः नियुद्धेन काकपक्षधरः क्वचित् ॥१२॥

काकपक्षधरः	घुंघराली अलकों-वाले (राम-कृष्ण)	**क्षेपैः**	दूर फेंक देने
		आस्फोटन	ताल ठोंकने
क्वचित्	कभी	**विकर्षणैः**	धक्का देने (आदि)
भ्रामणैः	पकड़कर घुमादेने	**नियुद्धेन**	कुश्तीके दाव-पेचसे
लङ्घनैः	कूद जाने	**चिक्रीडतुः**	खेलते थे ॥१२॥

क्वचिन्नृत्यत्सु चान्येषु गायकौ वादकौ स्वयम् ।
शशंसतुर्महाराज साधु साध्विति वादिनौ ॥१३॥

क्वचित् नृत्यत्सु च अन्येषु गायकौ वादकौ स्वयं शशंसतुः महाराज साधु-साधु इति वादिनौ ॥१३॥

महाराज	महाराज !	**साधु**	'बहुत सुन्दर !
क्वचित	कभी	**साधु**	बहुत सुन्दर'
अन्येषु च	किसी दूसरेके भी	**इति**	इस प्रकार
नृत्यत्सु	नाचते समय	**वादिनौ**	कहते हुए
स्वयं	स्वयं (दोनों भाई)	**शशंसतुः**	प्रशंसा करते थे ॥१३॥
गायकौ	गानेवाले और		
वादकौ	बजानेवाले बन जाते थे,		

क्वचिद् बिल्वैः क्वचित् कुम्भैः क्व चामलकमुष्टिभिः ।
अस्पृश्यनेत्रबन्धाद्यैः क्वचिन्मृगखगेहया ॥१४॥

क्वचित् बिल्वैः क्वचित् कुम्भैः क्व च आमलक मुष्टिभिः अस्पृश्य नेत्रबन्ध आद्यैः क्वचित् मृग खग ईहया ॥१४॥

क्वचित् बिल्वैः	कभी बेलफलोंसे (गेंद-सा खेलते)	**नेत्रबन्ध**	(किसीके) नेत्र बाँध-कर
क्वचित्	कभी	**अस्पृश्य**	उसे छूने न देकर
कुम्भैः	जायफल (उछालने) से	**क्वचित्**	कभी
क्व च	और कभी	**मृग-खग**	पशु या पक्षीके समान
मुष्टिभिः	मुठ्ठीमें	**ईहया**	चेष्ट करते
आमलक	आंवले लेकर (संख्या पूछने) द्वारा	**आद्यैः**	इस प्रकार अनेक प्रकार से ॥१४॥

क्वचिच्च दर्दुरप्लावैर्विविधैरुपहासकैः ।
कदाचित् स्पन्दोलिकया कर्हिचिन्नृपचेष्टया ॥१५॥

क्वचित् च दर्दुर प्लावैः विविधैः उपहासकैः कदाचित् स्पन्दोलिकया कर्हिचित् नृप चेष्टया ॥१५॥

क्वचित् च	कभी तो	**प्लावैः**	कुदकते हुए
दर्दुर	मेढ़कके समान	**विविधैः**	अनेक प्रकारके

	(मुँह बनाने आदि)	स्पन्दोलिकया	झूला झूलनेसे या
उपहासकैः	हंसी करनेकी रीतिसे,		परस्पर भुजा फँसाकर उसमें बैठाकर झुलाते हुए
कदाचित्	कभी	कर्हिचित्	और कभी
		नृप चेष्टया	राजाकी नकल करने से ॥१५॥

एवं तौ लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वने ।
नद्यद्रिद्रोणिकुञ्जेषु काननेषु सरस्सु च ॥१६॥

एवं तौ लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिः चेरतुः वने नदि अद्रिद्रोणि कुञ्जेषु काननेषु सरः सु च ॥१६॥

एवं	इस प्रकार	अद्रिद्रोणि	पर्वतकी घाटी
तौ	वे दोनों भाई	कुञ्जेषु	कुञ्जोंमें
लोकसिद्धाभिः	लोकमें प्रसिद्ध	च काननेषु	तथा वनमें स्थित
क्रीडाभिः	(बालकोंके) खेलोंको खेलते हुए	सरः सु	सरोवरोंमें भी
		चेरतुः	खेलते-विचरते थे ॥१६॥
वने नदि	वनमें, नदी किनारे		

पशूंश्चारयतोर्गोपैस्तद्वने रामकृष्णयोः ।
गोपरूपी प्रलम्बोऽगादसुरस्तज्जिहीर्षया ॥१७॥

पशून् चारयतः गोपैः तत् वने राम कृष्णयोः गोपरूपी प्रलम्बः अगात् असुरः तत् जिहीर्षया ॥१७॥

तत् वने	उस वनमें	तत् जिहीर्षया	उनका हरण करने-की इच्छासे
गोपैः	गोपोंके साथ	गोपरूपी	गोपरूपधारी
राम	बलराम तथा	प्रलम्बः असुरः	प्रलम्बासुर
कृष्णयोः	श्रीकृष्णके	अगात्	आ गया ॥१७॥
पशून्	पशुओंको		
चारयतः	चराते हुए		

तं विद्वानपि दाशार्हो भगवान् सर्वदर्शनः ।
अन्वमोदत तत्सख्यं वधं तस्य विचिन्तयन् ॥१८॥

तं विद्वान् अपि दाशार्हः भगवान् सर्वदर्शनः अन्वमोदत तत् सख्यं वधं तस्य विचिन्तयन् ॥१८॥

दाशार्हः	दशार्ह वंशमें प्रकट	**विचिन्तयन्**	सोचते हुए
सर्वदर्शनः	सर्वज्ञ	**तत् सख्यं**	उसको सखा बनाने का
भगवान्	भगवान श्रीकृष्णने	**अन्वमोदत**	अनुमोदन कर दिया ॥१८॥
तं विद्वान्	उसे पहिचान कर		
अपि	भी		
तस्य वधं	उसको मारनेका उपाय		

तत्रोपाहूय गोपालान् कृष्णः प्राह विहारवित् ।
हे गोपा विहरिष्यामो द्वन्द्वीभूय यथायथम् ॥१९॥

तत्र उप आहूय गोपालान् कृष्णः प्राह विहारवित् हे गोपा विहरिष्यामः द्वन्द्वीभूय यथायथम् ॥१९॥

विहारवित्	खेलोंके जानकार	**हे गोपा**	हे गोपो !
कृष्णः तत्र	श्रीकृष्णने वहां	**यथायथं**	अपने-अपने अनुरूप
गोपालान्	गोपालक बालकोंको	**द्वन्द्वीभूय**	जोड़ी बनाकर
उप आहूय	समीप बुलाकर	**विहरिष्यामः**	हम लोग खेलेंगे ॥१९॥
प्राह	कहा		

तत्र चक्रुः परिवृढौ गोपा रामजनार्दनौ ।
कृष्णसंघट्टिनः केचिदासन् रामस्य चापरे ॥२०॥

तत्र चक्रुः परिवृढौ गोपा राम जनार्दनौ कृष्ण संघट्टिनः केचित् आसन् रामस्य च अपरे ॥२०॥

तत्र	उस (खेल) में	**जनार्दनौ**	श्रीकृष्णको
गोपा	गोपोंने	**परिवृढौ चक्रुः**	दलनायक बनाया,
राम	बलराम तथा	**केचित् कृष्ण**	कुछ श्रीकृष्णके

संघट्टिनः	दलमें	रामस्य	बलरामके दलमें
च अपरे	तथा दूसरे	आसन्	हो गये ॥२०॥

आचेरुर्विविधाः क्रीडा वाह्यवाहकलक्षणाः ।
यत्रारोहन्ति जेतारो वहन्ति च पराजिताः ॥२१॥

आचेरुः विविधाः क्रीडा वाह्य वाहक लक्षणाः यत्र आरोहन्ति जेतारः वहन्ति च पराजिताः ॥२१॥

वाह्य	चढ़ने और	यत्र जेतारः	जिनमें जीतनेवाले
वाहक	वाहन बननेवाले	आरोहन्ति	(पीठपर) चढ़ते हैं
लक्षणाः	लक्षण (नियम) के	च पराजिताः	तथा हारनेवाले
विविधाः क्रीडा	अनेक प्रकारके खेल	वहन्ति	(उन्हें) ढोते हैं
आचेरुः	करने लगे,		॥२१॥

वहन्तो वाह्यमानाश्च चारयन्तश्च गोधनम् ।
भाण्डीरकं नाम वटं जग्मुः कृष्णपुरोगमाः ॥२२॥

वहन्तः वाह्यमानाः च चारयन्तः च गोधनं भाण्डीरकं नाम वटं जग्मुः कृष्ण पुरोगमाः ॥२२॥

कृष्ण	श्रीकृष्ण	गोधनं	गायोंको
पुरोगमाः	उनके आगे चलने वाले थे,	चारयन्तः च	चराते हुए भी
		भाण्डीरकं नाम	भाण्डीर नामक
वाह्यमानाः	पीठपर चढ़े हुओंको	वटं	वटके पास
वहन्तः च	ढोते हुए तथा	जग्मुः	पहुँच गये ॥२२॥

रामसंघट्टिनो यर्हि श्रीदामवृषभादयः ।
क्रीडायां जयिनस्तांस्तानूहुः कृष्णादयो नृप ॥२३॥

राम सङ्घट्टिनः यर्हि श्रीदाम वृषभ आदयः क्रीडायां जयिनः तान् तात् अहुः कृष्ण आदयः नृप ॥२३॥

नृप	राजन् !	। यर्हि क्रीडायां	जब खेलमें

राम संघट्टिनः	बलरामजीके दलके	**तान् तान्**	उन-उनको
श्रीदाम वृषभ	श्रीदाम, ऋषभ	**कृष्ण आदयः**	श्रीकृष्ण आदि
आदयः जयिनः	आदि जीत गये तब	**अहुः**	ढोने लगे ॥२३॥

उवाह कृष्णो भगवान् श्रीदामानं पराजितः ।
वृषभं भद्रसेनस्तु प्रलम्बो रोहिणीसुतम् ॥२४॥

उवाह कृष्णः भगवान् श्रीदामानं पराजितः वृषभं भद्रसेनः तु प्रलम्बः रोहिणीसुतम् ॥२४॥

पराजितः	हारे हुए	**प्रलम्बः**	प्रलम्ब
भगवान् कृष्णः	भगवान् श्रीकृष्ण	**रोहिणीसुतं**	रोहिणी-नन्दन बलरामजीको
श्रीदामानं	श्रीदामाको	**उवाह**	ढोने लगे ॥२४॥
भद्रसेनः तु	भद्रसेन तो		
वृषभं	ऋषभको और		

अविषह्यं मन्यमानः कृष्णं दानवपुंगवः ।
वहन् द्रुततरं प्रागादवरोहणतः परम् ॥२५॥

अविषह्यं मन्यमानः कृष्णं दानवपुंगवः वहन् द्रुततरं प्राक् अगात् अवरोहणतः परम् ॥२५॥

दानवपुंगवः	दानव श्रेष्ठ प्रलंब	**प्राक्**	सबसे आगे
कृष्णं	श्रीकृष्णको	**वहन्**	ढोता हुआ
अविषह्यं	असहनीय	**अवरोहणतः**	उतारनेके स्थानसे
मन्यमानः	मानता हुआ	**परं अगात्**	आगे चला गया
द्रुततरं	बहुत शीघ्रतासे		॥२५॥

तमुद्वहन् धरणिधरेन्द्रगौरवं
महासुरो विगतरयो निजं वपुः ।
स आस्थितः पुरटपरिच्छदो बभौ
तडिद्द्युमानुडुपतिवाडिवाम्बुदः ॥२६॥

तं उद्वहन् धरणिधर इन्द्र गौरवं महा असुरः विगतरयः निजं वपुः सः आस्थितः पुरट परिच्छदः बभौ तडित् द्युमान् उडुपति इव अम्बुदः ॥२६॥

धरणिधर इन्द्र	पर्वतराजके समान	**आस्थितः**	धारण करके
गौरवं तं	भारी उन (बलराम-जी) को	**पुरट**	स्वर्णा भरण
उद्वहन	ढोते समय	**परिच्छदः**	भूषित
महा असुर	उस महा असुरकी	**द्युमान्**	चमकती
विगतरयः	गति शिथिल हो गयी (अतः)	**तडित्**	बिजली युक्त
सः निजं	वह अपने (दानव)	**अम्बुदः**	(काला) बादल जैसा
वपुः	शरीरको	**उडुपति**	चन्द्रमाको ले जानेके
		इव	समान
		बभौ	शोभित हुआ ॥२६॥

निरीक्ष्य तद्वपुरलमम्बरे चरत्
प्रदीप्तदृग् भ्रुकुटितटोग्रदंष्ट्रकम् ।
ज्वलच्छिखं कटककिरीटकुण्डल-
त्विषाद्भुतं हलधर ईषदत्रसत् ॥२७॥

निरीक्ष्य तत् वपुः अलं अम्बरे चरत् प्रदीप्त दृक् भ्रुकुटि तट उग्र-दंष्ट्रकं ज्वलत शिखं कटक किरीट कुण्डल त्विषा अद्भुतं हलधर ईषत् अत्रसत् ॥२७॥

प्रदीप्त दृक्	प्रज्वलित नेत्र,	**कुण्डल त्विषा**	कुंडलोंकी कान्तिसे
भ्रुकुटि तट	भौंहोंके किनारों तक पहुँची	**अलं अद्भुतं**	अत्यन्त अद्भुत
उग्रदंष्ट्रकं	भयानक दाढ़ोंवाले,	**तत् वपुः**	उस शरीरवाले को
ज्वलत् शिखं	आगकी लपटोंके समान लालकेश,	**अम्बरे चरत्**	आकाशमें जाता
कटक किरीट	कंकण, मुकुट,	**निरीक्ष्य**	देखकर
		हलधर	बलरामजी
		ईषत् अत्रसत्	तनिक डर गये ॥२७॥

अथागतस्मृतिरभयो रिपुं बलो
विहायसार्थमिव हरन्तमात्मनः ।
रुषाहनच्छिरसि दृढेन मुष्टिना
सुराधिपो गिरिमिव वज्ररंहसा ॥२८॥

अथ आगत स्मृतिः अभयः रिपुं बलः विहायसा अर्थं इव हरन्तं आत्मनः रुषा हनत् शिरसि दृढेन मुष्टिना सुराधिपः गिरिं इव वज्र रंहसा ॥२८॥

अथ	फिर (अपने स्वरूप-की)	रिपुं शिरसि	शत्रुके शिरपर
स्मृतिः	स्मृति	रुषा	क्रोध पूर्वक
आगत	आनेपर	दृढेन	कसकर
अभयः बलः	निर्भय बलरामजीने	मुष्टिना	बाँधे घूसे से
अर्थं इव	धनके समान	सुराधिपः	इन्द्रके द्वारा
आत्मनः हरन्तं	अपनेको चुराकर	गिरिं	पर्वतपर
विहायसा	आकाश मार्गसे (भागते)	वज्र इव	वज्रके समान
		रंहसा हनत्	वेगसे मारा ॥२८॥

स आहतः सपदि विशीर्णमस्तको
मुखाद् वमन् रुधिरमपस्मृतोऽसुरः ।
महारवं व्यसुरपतत् समीरयन्
गिरिर्यथा मघवत आयुधाहतः ॥२९॥

सः आहतः सपदि विशीर्ण मस्तकः मुखात् वमन् रुधिरं अपस्मृतः असुरः महारवं व्यसुः अपतत् समीरयन् गिरिः यथा मघवत आयुध आहतः ॥२९॥

आहतः	आघात लगते ही	विशीर्ण	चूर-चूर हो गया
सपदि मस्तकः	मस्तक तुरन्त	मुखात्	मुखसे

रुधिरं वमन्	रक्त उगलते
अपस्मृतः	चेतनाहीन होकर
महारवं	भारी शब्द (चीत्कार)
समीरयन्	करता हुआ
व्यसुः	निष्प्राण होकर
यथा मघवत	जैसे इन्द्रके
आयुध	अस्त्र (वज्र) से
आहतः	मारा
गिरिः अपतत्	पर्वत हो (वैसे) गिर पड़ा ॥२९॥

दृष्ट्वा प्रलम्बं निहतं बलेन बलशालिना ।
गोपाः सुविस्मिता आसन् साधु साध्विति वादिनः ॥३०॥

दृष्ट्वा प्रलम्बं निहतं बलेन बलशालिना गोपाः सुविस्मिताः आसन् साधुःसाधु इति वादिनः ॥३०॥

बलशालिना	बलवान
बलेन	बलरामजी द्वारा
प्रलम्बं	प्रलम्बको
निहतं	मारा गया
दृष्ट्वा गोपाः	देखकर गोप
साधु	'अच्छा किया,
साधु	अच्छा किया'
इति वादिनः	ऐसा कहते हुए
सुविस्मिताः	अत्यन्त चकित
आसन्	हुए ॥३०॥

आशिषोऽभिगृणन्तस्तं प्रशशंसुस्तदर्हणम् ।
प्रेत्यागतमिवालिङ्ग्य प्रेमविह्वलचेतसः ॥३१॥

आशिषः अभिगृणन्तः तं प्रशशंसुः तत् अर्हणं प्रेत्य आगतं इव आलिंग्य प्रेम विह्वल चेतसः ॥३१॥

प्रेम विह्वल	प्रेमसे विह्वल
चेतसः	चित्तवाले (गोपोंने)
प्रेत्य आगतं	मरकर लौटे
इव तं	के समान उनका
आलिंग्य	आलिंगन करके
आशिषः	आशीर्वाद
अभिगृणन्तः	देते हुए
तत्	इसके
अर्हणं	सर्वथा उपयुक्त उनकी
प्रशशंसुः	प्रशंसा करने लगे ॥३१॥

पापे प्रलम्बे निहते देवाः परमनिर्वृताः ।
अभ्यवर्षन् बलं माल्यैः शशंसुः साधु साध्विति ॥३२॥

पापे प्रलम्बे निहते देवाः परम निर्वृताः अभ्यवर्षन् बलं माल्यैः शशंसुः साधु-साधु इति ॥३२॥

पापे प्रलम्बे	पापी प्रलम्बके	**अभ्यवर्षन्**	अच्छी वर्षा करते
निहते	मारे जानेपर		हुए
देवाः	देवता	**साधु**	'अच्छा किया,
परम	अत्यन्त	**साधु**	अच्छा किया'
निर्वृताः	आनन्दित हुए,	**इति**	ऐसा कहकर
बलं	बलरामजी पर	**शशंसुः**	प्रशंसा करने लगे
माल्यैः	पुष्पोंकी		॥३२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे प्रलम्बवधो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

क्रीडासक्तेषु गोपेषु तद्गावो दूरचारिणीः ।
स्वैरं चरन्त्यो विविशुस्तृणलोभेन गह्वरम् ॥१॥

क्रीडा सक्तेषु गोपेषु तत् गावः दूर चारिणीः स्वैरं चरन्त्यः विविशुः तृण लोभेन गह्वरम् ॥१॥

गोपेषु	गोपोंके	चरन्त्यः	चरती हुई
क्रीडा	खेलमें	तृण लोभेन	घासके लोभसे
सक्तेषु	लग जानेपर	गह्वरं	घने
तत् गावः	उनकी गायें	विविशुः	वनमें घुस गयीं
दूर चारिणीः	दूर चली गयीं और		॥१॥
स्वैरं	स्वच्छन्द		

अजा गावो महिष्यश्च निर्विशन्त्यो वनाद् वनम् ।
इषीकाटवीं निर्विविशुः क्रन्दन्त्यो दावतर्षिताः ॥२॥

अजा गावः महिष्यः च निर्विशन्त्यः वनात् वनं इषीक अटवीं निर्विविशुः क्रन्दन्त्यः दाव तर्षिताः ॥२॥

अजा गावः	बकरियां, गायें,	तर्षिताः	प्यासी होकर
च महिष्यः	तथा भैंसें	क्रन्दन्त्यः	ठुकराती हुई
वनात्	एक वनसे	इषीक अटवीं	मूंजके वनमें
वनं	दूसरे वनमें	निर्विविशुः	प्रविष्ट हो गयीं
निर्विशन्त्यः	घुसती हुई		॥२॥
दाव	गर्मीसे		

तेऽपश्यन्तः पशून् गोपाः कृष्णरामादयस्तदा ।
जातानुतापा न विदुर्विचिन्वन्तो गवां गतिम् ॥३॥

ते अपश्यन्तः पशून् गोपाः कृष्ण राम आदयः तदा जात अनुतापा न विदुः विचिन्वन्तः गवां गतिम् ॥३॥

ते कृष्ण	वे श्रीकृष्ण	**विचिन्वन्तः**	उन्हें ढूंढ़नेपर भी
राम	बलराम	**गवां गतिं**	गायोंका स्थान
आदयः गोपाः	आदि गोप (बालक)	**न विदुः**	नहीं जान सके तो
तदा	उस समय	**जात अनुतापा**	(खेलनेपर) पश्चाताप
पशून्	पशुओंको		होने लगा ॥३॥
अपश्यन्तः	न देखकर		

तृणैस्तत्खुरदच्छिन्नैर्गोष्पदैरङ्कितैर्गवाम् ।
मार्गमन्वगमन् सर्वे नष्टाजीव्या विचेतसः ॥४॥

तृणैः तत् खुरदैः छिन्नैः गोष्पदैः अङ्कितैः गवां मार्गं अनु अगमन् सर्वे नष्ट आजीव्या विचेतसः ॥४॥

नष्ट आजीव्या	जीविकाके साधन (गायोंके) नष्ट हो जाने (खो जाने) से	**छिन्नैः तृणैः**	कुचली घास तथा
		गोष्पदैः	गायोंके खुरोंसे
		अङ्कितैः	चिह्नित
विचेतसः	व्याकुल चित्त	**मार्गं**	मार्गसे
सर्वे तत्	सब उन (गायों) के	**गवां**	गायों को (ढूंढ़ते उनके)
खुरदैः	कठोर खुरोंसे	**अनु अगमन्**	पीछे चल पड़े ॥४॥

मुञ्जाटव्यां भ्रष्टमार्गं क्रन्दमानं स्वगोधनम् ।
सम्प्राप्य तृषिताः श्रान्तास्ततस्ते संन्यवर्तयन् ॥५॥

मुञ्ज अटव्यां भ्रष्ट मार्गं क्रन्दमानं स्वगोधनं सम्प्राप्य तृषिताः श्रान्ताः ततः ते संन्यवर्तयन् ॥५॥

मुञ्ज अटव्यां	मूंजके घोरवनमें	**तृषिताः श्रान्ताः**	प्यासे, थके
भ्रष्ट मार्गं	मार्गसे भटकी	**ते ततः**	वे सब वहांसे
क्रन्दमानं	डकराती हुई	**संन्यवर्तयन्**	उन (गायों) को लौटा ले चले ॥५॥
स्वगोधनं	अपनी गायोंको		
सम्प्राप्य	इकट्ठा पाकर		

ता आहूता भगवता मेघगम्भीरया गिरा ।
स्वनाम्नां निनदं श्रुत्वा प्रतिनेदुः प्रहर्षिताः ॥६॥

ताः आहूता भगवता मेघगम्भीरया गिरा स्वनाम्नां निनदं श्रुत्वा प्रतिनेदुः प्रहर्षिताः ॥६॥

भगवता	भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा	निनदं	वह पुकार
मेघगम्भीरया	मेघ-गम्भीर	श्रुत्वा ताः	सुनकर वे भी
गिरा	वाणीसे	प्रहर्षिताः	अत्यन्त हर्षित होकर
स्वनाम्नां	अपने नामोंसे	प्रतिनेदुः	प्रत्युत्तरमें बोलने लगीं ॥६॥
आहूता	बुलाये जानेपर		

ततः समन्ताद् वनधूमकेतु-
र्यदृच्छयाभूत् क्षयकृद् वनौकसाम् ।
समीरितः सारथिनोल्बणोल्मुकै-
र्विलेलिहानः स्थिरजङ्गमान् महान् ॥७॥

ततः समन्तात् वन धूमकेतुः यदृच्छया अभूत् क्षयकृत् वनौकसां सम ईरितः सारथिना उल्बण उल्मुकैः विलेलिहानः स्थिर जङ्गमान् महान् ॥७॥

ततः	उसी समय	सम ईरितः	भली प्रकार प्रेरित होता
यदृच्छया	संयोगवश	उल्बण उल्मुकैः	भयंकर लपटोंसे
वन समन्तात्	वनमें चारों ओर	स्थिर जङ्गमान्	अचर-चर सबको
वनौकसां	वनवासियोंका	विलेलिहानः	चाटता (जलाता)
क्षयकृत्	विनाश करनेवाला	महान् अभूत्	बहुत बढ़ गया ॥७॥
धूमकेतुः	धुएंके झंडेवाला अग्नि		
सारथिना	अपने सारथी वायु द्वारा		

तमापतन्तं परितो दवाग्निं
गोपाश्च गावः प्रसमीक्ष्य भीताः ।
ऊचुश्च कृष्णं सबलं प्रपन्ना
यथा हरिं मृत्युभयार्दिता जनाः ॥८॥

तं आपतन्तं परितः दवाग्निं गोपाः च गावः प्रसमीक्ष्य भीताः ऊचुः च कृष्णं सबलं प्रपन्ना यथा हरिं मृत्यु भय अर्दिता जनाः ॥८॥

तं परितः	उस चारों ओरसे	**अर्दिताः जनाः**	सन्त्रस्त लोग (श्रीहरिकी शरण लेते हैं)
आपतन्तं	झपटते आते	**सबलं**	बलरामजीके साथ
दवाग्निं	दावाग्निको•	**कृष्णं**	श्रीकृष्णकी
प्रसमीक्ष्य	चारों ओर देखकर	**प्रपन्ना**	शरण लेकर
गोपाः च गावः	गोप तथा गायें	**ऊचुः च**	बोले भी ॥८॥
भीताः	डर गये		
यथा	जैसे		
मृत्यु भय	मृत्युके भयसे		

गोपा ऊचुः*

कृष्ण कृष्ण महावीर हे रामामितविक्रम ।
दावाग्निना दह्यमानान् प्रपन्नांस्त्रातुमर्हथः ॥९॥

कृष्ण कृष्ण महाबीर हे राम अमित विक्रम दावग्निना दह्यमानान् प्रपन्नान् त्रातुं अर्हथः ॥९॥

कृष्ण महावीर	'कृष्ण' महावीर	**अमित विक्रम**	अमित पराक्रम
कृष्ण	कृष्ण !	**हे राम**	हे बलराम !

• वनमें सामान्य ढंगसे कहीं कोई चिनगारी (बीड़ी आदि) गिरनेसे आग लगे तो वह एक ओरसे बढ़ती है; किन्तु दावाग्निका लक्षण ही है कि वह चारों ओर पहिले किनारे फैलकर घेरा बनाकर बढ़ती है और ग्रीष्ममें सूखे मूंजके बनमें तो उसकी गति बहुत तीव्र होगी ।

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

दावाग्निना	दावाग्नि द्वारा	त्रातुं अर्हथः	तुम्हें बचाना चाहिए ॥९॥
दह्यमानान्	जलाये जाते हुए		
प्रपन्नान्	हम शरणागतोंको		

नूनं त्वद्बान्धवाः कृष्ण न चार्हन्त्यवसीदितुम् ।
वयं हि सर्वधर्मज्ञ त्वन्नाथास्त्वत्परायणाः ॥१०॥

नूनं त्वत् बान्धवाः कृष्ण न च अर्हन्ति अवसीदितुं वयं हि सर्व धर्मज्ञ त्वत् नाथाः त्वत् परायणाः ॥१०॥

हि सर्व	क्योंकि तुम सब	वयं त्वत्	और हमारे तुम्हीं
धर्मज्ञ	धर्मको जानते हो	नाथाः	स्वामी हो,
कृष्ण नूनं	श्रीकृष्ण ! निश्चय	त्वत्	(हम) तुम्हारे
त्वत् बान्धवाः	तुम्हारे सम्बन्धी	परायणाः	परायण (आश्रित) हैं ॥१०॥
अवसीदितुं	कष्टपानेके		
अर्हन्ति न च	योग्य नहीं ही है		

श्रीशुक उवाच

वचो निशम्य कृपणं बन्धूनां भगवान् हरिः ।
निमीलयत मा भैष्ट लोचनानीत्यभाषत ॥११॥

वचः निशम्य कृपणं बन्धूनां भगवान् हरिः निमीलयत मा भैष्ट लोचनानि इति अभाषत ॥११॥

भगवान् हरिः	भगवान् श्रीकृष्णने	इति अभाषत	यह कहा—
बन्धूनां	अपने सम्बन्धियोंकी	मा भैष्ट	डरो मत !
कृपणं वचः	दीन-वाणी	लोचनानि	नेत्रोंको
निशम्य	सुनकर	निमीलयत	बन्द कर लो ॥११॥

तथेति मीलिताक्षेषु भगवानग्निमुल्बणम् ।
पीत्वा मुखेन तान् कृच्छ्राद् योगाधीशो व्यमोचयत् ॥१२॥

तथा इति मीलित अक्षेषु भगवान् अग्निं उल्बणं पीत्वा मुखेन तान् कृच्छ्रात् योग अधीशः व्यमोचयत् ॥१२॥

तथा	'बहुत अच्छा'	**अग्निं**	अग्निको
इति	इस प्रकार कहकर	**मुखेन**	अपने मुखसे
अक्षेषु	नेत्रोंको	**पीत्वा**	पीकर
मीलितेषु	बन्द कर लेनेपर	**तान् कृच्छ्रात्**	उन सबको संकटसे
योग अधीशः	योगेश्वर	**व्यमोचयत्**	सर्वथा छुड़ा दिया
भगवान्	भगवानने		॥१२॥
उल्बणं	उस भयंकर		

ततश्च तेऽक्षीण्युन्मील्य पुनर्भाण्डीरमापिताः ।
निशाम्य विस्मिता आसन्नात्मानं गाश्च मोचिताः ॥१३॥

ततः च ते अक्षीणि उन्मील्य पुनः भाण्डीरं आपिताः निशाम्य विस्मिताः आसन् आत्मानं गाः च मोचिताः ॥१३॥

च ततः ते	और फिर उन सबने	**मोचिताः**	छुड़ाया हुआ
अक्षीणि	नेत्रोंको	**आत्मानं**	अपने तथा
उन्मील्य	खोलकर	**गाः**	गायोंको
पुनः भाण्डीरं	फिर भाण्डीर वटके पास	**निशाम्य**	देखकर
		विस्मिताः	चकित
आपिताः	पहुँचाया	**आसन्**	हो गये ॥१३॥
च	तथा (अग्निसे)		

कृष्णस्य योगवीर्यं तद् योगमायानुभावितम् ।
दावाग्नेरात्मनः क्षेमं वीक्ष्य ते मेनिरेऽमरम् ॥१४॥

कृष्णस्य योगवीर्यं तत् योगमाया अनुभावितं दावाग्नेः आत्मनः क्षेमं वीक्ष्य ते मेनिरे अमरम् ॥१४॥

तत् कृष्णस्य	उस श्रीकृष्णके	**आत्मनः क्षेमं**	अपनी रक्षाको
योगवीर्यं	योग-बलको,	**वीक्ष्य ते**	देखकर उन्होंने
योगमाया	योगमायाके	**अमरं**	(श्रीकृष्णको) देवता
अनुभावितं	प्रभावको	**मेनिरे**	माना ॥१४॥
दावाग्नेः	दावाग्निसे		

गाः सन्निवर्त्य सायाह्ने सहरामो जनार्दनः ।
वेणुं विरणयन् गोष्ठमगाद् गोपैरभिष्टुतः ॥१५॥

गा सन्निवर्त्य साय अह्ने सहरामः जनार्दनः वेणुं बिरणयन् गोष्ठं अगात् गोपैः अभिष्टुतः ॥१५॥

साय अह्ने	सायंकाल	**सहरामः**	बलरामजीके साथ
गाः सन्निवर्त्य	गायें लौटाकर	**जनार्दनः**	माया नाशक श्रीकृष्ण
गोपैः	गोपोंसे	**गोष्ठं**	गोष्ठमें
अभिष्टुतः	स्तुत होते	**अगात्**	आ गये ॥१५॥
वेणुं विरणयन्	उच्च स्वरसे वंशी बजाते		

गोपीनां परमानन्द आसीद् गोविन्ददर्शने ।
क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाभवत् ॥१६॥

गोपीनां परम आनन्द आसीत् गोविन्द दर्शने क्षणं युग शतं इव यासां येन विना अभवत् ॥१६॥

येन विना	जिनके बिना	**गोपीनां**	गोपियोंको
यासां क्षणं	जिनको एक क्षण	**गोविन्द दर्शने**	गोविन्दके दर्शनसे
युग शतं इव	सौ युगोंके समान	**परम**	अत्यन्त
अभवत्	हो गया था उन	**आनन्द**	आनन्द हुआ ॥१६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे
पूर्वार्धे दावाग्निपानं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

अथ विंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

तयोस्तदद्भुतं कर्म दावाग्नेर्मोक्षमात्मनः ।
गोपाः स्त्रीभ्यः समाचख्युः प्रलम्बवधमेव च ॥१॥

तयोः तत् अद्भुतं कर्म दावाग्नेः मोक्षं आत्मनः गोपाः स्त्रीभ्यः सम आचख्युः प्रलम्ब वधं एव च ॥१॥

तयोः तत्	उन दोनों (भाइयों) का वह	च प्रलम्ब	तथा प्रलम्बका
		वधं एव	वध भी
दावाग्नेः	दावाग्निसे	गोपाः	गोपोंने
आत्मनः	अपनेको	स्त्रीभ्यः	व्रजस्त्रियोंसे
मोक्षं	छुड़ाना रूप	सम	भली प्रकार
अद्भुतं कर्म	अद्भुत कर्म	आचख्युः	सुनाया ॥१॥

गोपवृद्धाश्च गोप्यश्च तदुपाकर्ण्य विस्मिताः ।
मेनिरे देवप्रवरौ कृष्णरामौ व्रजं गतौ ॥२॥

गोपवृद्धाः च गोप्यः च तत् उपाकर्ण्य विस्मिताः मेनिरे देवप्रवरौ कृष्णरामौ व्रजं गतौ ॥२॥

तत् उपाकर्ण्य	उसे सुनकर	रामौ	बलरामको
गोपवृद्धाः	वृद्ध गोपोंने	व्रजं गतौ	व्रजमें आया
च गोप्यः च	तथा गोपियोंने भी	देवप्रवरौ	देवश्रेष्ठ
कृष्ण-	श्रीकृष्ण और	मेनिरे	माना ॥२॥

ततः प्रावर्तत प्रावृट् सर्वसत्त्वसमुद्भवा ।
विद्योतमानपरिधिर्विस्फूर्जितनभस्तला ॥३॥

ततः प्रावर्तत प्रावृट् सर्वसत्त्व समुद्भवा विद्योतमान परिधिः विस्फूर्जित नभः तला ॥३॥

ततः	तब	**परिधिः**	क्षितिजको
सर्वसत्त्व	सब प्राणियोंकी	**विद्योतमान**	प्रकाशित करते हुए
समुद्भवा	बहुत वृद्धि करनेवाली	**नभः तला**	आकाश मण्डल
प्रावृट्	प्रावृट् ऋतु*	**विस्फूर्जित**	बार-बार (बिजलीसे) चमकने लगा ॥३॥
प्रावर्तत	प्रारम्भ हुई		

सान्द्रनीलाम्बुदैर्व्योम सविद्युत्स्तनयित्नुभिः ।
अस्पष्टज्योतिराच्छन्नः ब्रह्मेव सगुणं बभौ ॥४॥

सान्द्र नील अम्बुदैः व्योम सविद्युत् स्तनयित्नुभिः अस्पष्ट ज्योतिः आच्छन्नः ब्रह्म इव सगुणं बभौ ॥४॥

सान्द्र	जल भरे	**सगुणं**	सगुण
सविद्युत्	बिजली सहित	**ब्रह्म**	ब्रह्म (जीव) के
स्तनयित्नुभिः	गरजनेवाले	**इव**	समान
नील अम्बुदैः	काले बादलोंसे	**बभौ**	लगने लगा (जैसे जीवमें कभी ज्ञान चमक कर लुप्त हो जाता है वैसा) ॥४॥
ज्योतिः	तारोंके		
आच्छन्नः	ढक जानेसे		
अस्पष्ट व्योम	धुंधला आकाश		

अष्टौ मासान् निपीतं यद् भूम्याश्चोदमयं वसु ।
स्वगोभिर्मोक्तुमारेभे पर्जन्यः काल आगते ॥५॥

अष्टौ मासान् निपीतं यत् भूम्याः च ओदमयं वसु स्वगोभिः मोक्तुं आरेभे पर्जन्यः काल आगते ॥५॥

पर्जन्यः	राजा रूप सूर्यने	**ओदमयं वसु**	जल स्वरूप धन
यत्	जो (प्रजारूपी)	**अष्टौ मासान्**	आठ महीने तक
भूम्याः च	पृथ्वीसे ही	**स्वगोभिः**	अपनी किरणोंसे

---

* आयुर्वेदके अनुसार वर्षाके चार महीनोंमें दो श्रावण-भाद्रका नाम प्रावृट् ऋतु है और आश्विन-कार्तिक वर्षा ऋतु है। इसीलिए चातुर्मास्य कार्तिकमें पूर्ण होता है।

निपीतं	भली प्रकार पिया थी	मोक्तुं	उसे छोड़ना
काल आगते	समय आनेपर	आरेभे	प्रारम्भ कर दिया ॥५॥

तडित्वन्तो महामेघाश्चण्डश्वसनवेपिताः ।
प्रीणनं जीवनं ह्यस्य मुमुचुः करुणा इव ॥६॥

तडित् वन्तः महामेघाः चण्डश्वसन वेपिताः प्रीणनं जीवनं हि अस्य मुमुचुः करुणा इव ॥६॥

करुणा	दयालु पुष्पोंके	वेपिताः	छितराये (कंपाये) जाते हुए
इव	समान		
तडित्	विद्युत्की	हि अस्य	क्योंकि उनका
वन्तः	चमकवाले	जीवनं	जीवन भी जल है
महामेघाः	भारी बादल	प्रीणनं	(प्राणियोंको) तृप्त करनेके लिए
चण्डश्वसन	प्रचण्ड वायुसे	मुमुचुः	त्यागते हैं ॥६॥

तपः कृशा देवमीढा आसीद् वर्षीयसी मही ।
यथैव काम्यतपसस्तनुः सम्प्राप्य तत्फलम् ॥७॥

तपः कृशा देवमीढा आसीत् वर्षीयसी मही यथा इव काम्यः तपसः तनुः सम्प्राप्य तत् फलम् ॥७॥

यथा काम्यः	जैसे सकाम	देवमीढा मही	भगवत् प्रिया पृथ्वी
तपसः तनुः	तपस्वीका शरीर	तपः	गर्मीके तापसे
तत् फलं	उस (तप) का फल	कृशा	सूख गई थी,
सम्प्राप्य	हो जाता है,	वर्षीयसी	वर्षासे पुष्ट
इव	उसके समान	आसीत्	(हरी) हो गयी ॥७॥

निशामुखेषु खद्योतास्तमसा भान्ति न ग्रहाः ।
यथा पापेन पाखण्डा न हि वेदाः कलौ युगे ॥८॥

निशामुखेषु खद्योताः तमसा भान्ति न ग्रहाः यथा पापेन पाखण्डा न हि वेदाः कलौ युगे ॥८॥

निशामुखेषु	रात्रिके प्रारम्भमें	**पापेन**	पापके कारण
तमसा	अन्धकारके कारण	**पाखण्डा**	पाखण्डियोंके पंथ
खद्योताः भान्ति	जुगुनू चमकते हैं		चलते हैं,
ग्रहा न हि	ग्रहतारक नहीं	**वेदाः न**	वैदिक मार्ग नहीं
यथा कलौ युगे	जैसे कलियुगमें		॥८॥

श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं मण्डूका व्यसृजन् गिरः ।
तूष्णीं शयानाः प्राग् यद्वद् ब्राह्मणा नियमात्यये ॥९॥

श्रुत्वा पर्जन्य निनदं मण्डूका व्यसृजन् गिरः तूष्णीं शयानाः प्राक् यत् वत् ब्राह्मणाः नियम अत्यये ॥९॥

प्राक् तूष्णीं	पहिले मौन	**शयानाः**	सोये हुए
ब्राह्मणाः यत्	ब्राह्मण लोग जैसे	**मण्डूका**	मेढ़क
नियम	नियम	**पर्जन्य निनदं**	मेघोंकी गर्जना
अत्यये	पूरा हो जानेपर (बोलने लगते हैं)	**श्रुत्वा वत्**	सुनकर उसी प्रकार
		गिरः व्यसृजन्	बोलने लगे ॥९॥

आसन्नुत्पथवाहिन्यः क्षुद्रनद्योऽनुशुष्यतीः ।
पुंसो यथास्वतन्त्रस्य देहद्रविणसम्पदः ॥१०॥

आसन् उत्पथ वाहिन्यः क्षुद्रनद्यः अनुशुष्यतीः पुंसः यथा स्वतन्त्रस्य देह द्रविण सम्पदः ॥१०॥

यथा	जैसे (मर्यादासे)	**अनुशुष्यतीः**	(वर्षाके) पीछे सूख
स्वतन्त्रस्य	स्वतन्त्र		गयी
पुंसः देह	पुरुषका शरीर	**क्षुद्रनद्यः**	छोटी नदियां
द्रविण सम्पदः	धन-सम्पत्ति (कुमार्ग में जाता है)	**उत्पथ**	अपना मार्ग छोड़कर
		वाहिन्यः	बहनेवाली
		आसन्	हो गयीं ॥१०॥

हरिता हरिभिः शष्पैरिन्द्रगोपैश्च लोहिताः ।
उच्छिलीन्ध्रकृतच्छाया नृणां श्रीरिव भूरभूत् ॥११॥

हरिता हरिभिः शष्पैः इन्द्र गोपैः च लोहिताः उच्छिलीन्ध्र कृतच्छाया नृणां श्रीः इव भूः अभूत् ॥११॥

नृणां	मनुष्योंकी (अल्पकालिक)	इन्द्र गोपैः	इन्द्र गोप (कीट-गिजाई) से
श्रीः इव	लक्ष्मीके समान	भूः लोहिताः	पृथ्वी लाल
हरिभिः शष्पैः	हरी घाससे	अभूत्	हो गयी है ॥११॥
हरिता च	हरी तथा		

क्षेत्राणि सस्यसम्पद्भिः कर्षकाणां मुदं ददुः ।
धनिनामुपतापं च दैवाधीनमजानताम् ॥१२॥

क्षेत्राणि सस्य सम्पद्भिः कर्षकाणां मुदं ददुः धनिनां उपतापं च दैव आधीनं अजानताम् ॥१२॥

सस्य	अन्नकी	आधीनं	वशमें है'
सम्पद्भिः	सम्पत्तिसे	अजानतां	इसे न जाननेवाले
क्षेत्राणि	खेत	धनिनां	धनियोंको
कृषकाणां	किसानोंको	उपतापं	जलन (दे रहे हैं) ॥१२॥
मुदं ददुः	आनन्द देते हैं		
च दैव	तथा 'सब दैवके		

जलस्थलौकसः सर्वे नववारिनिषेवया ।
अबिभ्रद् रुचिरं रूपं यथा हरिनिषेवया ॥१३॥

जलस्थल ओकसः सर्वे नववारि निषेवया अविभ्रत् रुचिरं रूपं यथा हरि निषेवया ॥१३॥

सर्वे	सब	रुचिरं रूपं	सुन्दर रूप
जलस्थल	जल या स्थल	अविभ्रत्	धारण किये हैं,
ओकसः	निवासी	यथा हरि	जैसे श्रीहरिकी
नववारि	नवीन जलका	निषेवया	उत्तम सेवा करनेसे होता है ॥१३॥
निषेवया	भरपूर सेवन करनेसे		

सरिद्भिः सङ्गतः सिन्धुश्चुक्षुभे श्वसनोर्मिमान् ।
अपक्वयोगिनश्चित्तं कामाक्तं गुणयुग् यथा ॥१४॥

सरित्भिः सङ्गतः सिन्धुः चुक्षुभे श्वसन् उर्मिमान् अपक्व योगिनः चित्तं काम अक्तं गुणयुक् यथा ॥१४॥

यथा	जैसे	श्वसन्	वायुसे
गुणयुक्	विषयोंके सम्पर्कसे	उर्मिमान्	लहरें लेता
अपक्व	अपरिपक्व (अधकचरे)	सिन्धुः	समुद्र
योगिनः	योगीका	सरित्भिः	सरिताओंसे
चित्तं काम	चित्त कामनाओंसे	सङ्गतः	मिलकर
अक्तं	भर जाता है (वैसे ही)	चुक्षुभे	क्षुब्ध हो गया है ॥१४॥

गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः ।
अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाधोक्षजचेतसः ॥१५॥

गिरयः वर्ष धाराभिः हन्यमाना न विव्यथुः अभिभूयमाना व्यसनैः यथा अधोक्षज चेतसः ॥१५॥

यथा	जैसे	गिरयः	पर्वत
अधोक्षज	भगवान हृषीकेशमें	वर्ष धाराभिः	वर्षाकी धाराओं
चेतसः	चित्त लगाये लोग	हन्यमाना	चोट लगाये जाने पर भी
व्यसनैः	दुःखोंसे		
अभिभूयमाना	आक्रान्त होनेपर भी (व्यथित नहीं होते)	विव्यथुः	बहुत पीड़ित
		न	नहीं होते ॥१५॥

मार्गा बभूवुः सन्दिग्धास्तृणैश्छन्ना ह्यसंस्कृताः ।
नाभ्यस्यमानाः श्रुतयो द्विजैः कालहता इव ॥१६॥

मार्गा बभूवुः सन्दिग्धाः तृणैः छन्ना हि असंस्कृताः न अभ्यस्यमानाः श्रुतयः द्विजैः कालहता इव ॥१६॥

द्विजैः	ब्राह्मणों द्वारा	श्रुतयः इव	वेद-मन्त्रोंके समान
न अभ्यस्यमानाः	अभ्यास न की गयी	हि	क्योंकि
कालहता	कालसे मारी (विस्मृत)	असंस्कृताः	स्वच्छ नहीं किये गये हैं

तृणैः छन्ना घाससे ढके
मार्गा सन्दिग्धाः मार्ग सन्देहास्पद
बभूवुः हो गये हैं ॥१६॥

लोकबन्धुषु मेघेषु विद्युतश्चलसौहृदाः ।
स्थैर्यं न चक्रुः कामिन्यः पुरुषेषु गुणिष्विव ॥१७॥

लोक बन्धुषु मेघेषु विद्युतः चल सौहृदाः स्थैर्यं न चक्रुः कामिन्यः पुरुषेषु गुणिषु इव ॥१७॥

गुणिषु गुणवान
पुरुषेषु पुरुषमें भी
कामिन्यः इव कामना युक्ता स्त्रियोंकी भांति
लोक बन्धुषु लोक-हितैषी
मेघेषु मेघोंमें
चल सौहृदाः चञ्चल सौहार्द्र-वाली
विद्युतः बिजलियां
स्थैर्यं न स्थिरता नहीं
चक्रुः करतीं ॥१७॥

धनुर्वियति माहेन्द्रं निर्गुणं च गुणिन्यभात् ।
व्यक्ते गुणव्यतिकरेऽगुणवान् पुरुषो यथा ॥१८॥

धनुः वियति माहेन्द्रं निर्गुणं च गुणिन् अभात् व्यक्ते गुण व्यतिकरे अगुणवान् पुरुषः यथा ॥१८॥

यथा जैसे
अगुणवान् निर्गुण
पुरुषः पुरुष (परमात्म)
गुण व्यतिकरे गुणोंके विकारसे
व्यक्ते प्रकट (संसारमें सगुण जान पड़ता है)
वियति आकाशमें
निर्गुणं रस्सी (प्रत्यञ्चा) रहित
माहेन्द्रं धनुः इन्द्र-धनुष
गुणिन् गुणवाला (परिणाम सूचक)
अभात् लगता है ॥१८॥

न रराजोडुपश्छन्नः स्वज्योत्स्नाराजितैर्घनैः ।
अहंमत्या भासितया स्वभासा पुरुषो यथा ॥१९॥

न रराज उडुपः छन्नः स्वज्योत्स्ना राजितैः घनैः अहंमत्या भासितया स्वभासा पुरुषः यथा ॥१९॥

यथा स्वभासा	जैसे स्वयं प्रकाश	स्वज्योत्स्ना	अपनी चन्द्रिकासे
पुरुषः	आत्मा	राजितैः घनैः	प्रकाशित मेघोंसे
भासितया	उसीसे प्रकाशित	छन्नः उडुपः	ढका चन्द्रमा
अहंमत्या	अहंकारात्मिका बुद्धिसे (ढका रहता है)	रराज न	शोभा नहीं देता ॥१६॥

मेघागमोत्सवा हृष्टाः प्रत्यनन्दञ्छिखण्डिनः ।
गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथाच्युतजनागमे ॥२०॥

मेघ आगम उत्सवा हृष्टाः प्रत्यनन्दन् शिखण्डिनः गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथा अच्युत जन आगमे ॥२०॥

यथा	जैसे	उत्सवा	आनन्दोल्लाससे
अच्युतजन	भगवान्के जनोंके	हृष्टाः	प्रसन्न
आगमे	आनेपर	शिखण्डिनः	मयूर
गृहेषु तप्ता	गृह-संतापसे संतप्त	प्रत्यनन्दन्	(उन मेघोंका बोल-कर) स्वागत करते हैं ॥२०॥
निर्विण्णा	विरक्त (प्रसन्न होते हैं)		
मेघ आगम	बादलोंके आनेके		

पीत्वापः पादपाः पद्भिरासन्नानात्ममूर्तयः ।
प्राक् क्षामास्तपसा श्रान्ता यथा कामानुसेवया॥२१॥

पीत्वा अपः पादपाः पद्भिः आसन् नाना आत्ममूर्तयः प्राक् क्षमाः तपसा श्रान्ता यथा काम अनुसेवया ॥२१॥

यथा तपसा	जैसे तपस्यासे	पादपाः पद्भिः	वृक्ष जड़ोंसे
प्राक्	पहिले	अपः पीत्वा	जल पीकर
क्षामाः	दुबले हुए लोग	आत्मनाना	अपने अनेक प्रकारके
श्रान्ता	(उससे) थककर	मूर्तयः	रूपवाले
काम	भोगोंका	आसन्	हो गये हैं ॥२१॥
अनुसेवया	बराबर सेवन करनेसे (मोटे हो जाते हैं)		

सरस्स्वशान्तरोधस्सु न्यूषुरङ्गापि सारसाः ।
गृहेष्वशान्तकृत्येषु ग्राम्या इव दुराशयाः ॥२२॥

सरः सु अशान्त रोधः सु न्यूषुः अङ्ग अपि सारसाः गृहेषु अशान्त कृत्येषु ग्राम्या इव दुराशयाः ॥२२॥

अशान्त	कभी शान्त न होने वाले	सारसाः	सारस
कृत्येषु	कर्मोंवाले	अशान्त	अशान्त
गृहेषु	घरोंमें	रोधः सु	तट वाले
दुराशयाः	मलिन चित्त	सरः सु	सरोवरोंमें ही
ग्राम्या	विषयी पुरुषोंके	न्यूषुः	निरन्तर डटे रहते हैं ॥२२॥
इव	समान		

जलौघैर्निरभिद्यन्त सेतवो वर्षतीश्वरे ।
पाखण्डिनामसद्वादैर्वेदमार्गाः कलौ यथा ॥२३॥

जल ओघैः निरभिद्यन्त सेतवः वर्षति ईश्वरे पाखण्डिनां असत् वादैः वेदमार्गाः कलौ यथा ॥२३॥

पाखण्डिनां	पाखण्डियोंके	ईश्वरे	समर्थ इन्द्र द्वारा
असत् वादैः	मिथ्या मतवादोंसे	वर्षति	(तीव्र) वर्षा करनेसे
कलौ यथा	कलियुगमें जैसे	जल ओघैः	पानीकी बाढ़से
वेदमार्गाः	वैदिक मत (उच्छिन्न हो जाते हैं)	सेतवः	पुल
		निरभिद्यन्त	टूट जाते हैं ॥२३॥

व्यमुञ्चन् वायुभिर्नुन्ना भूतेभ्योऽथामृतं घनाः ।
यथाऽऽशिषो विश्पतयः काले काले द्विजेरिताः ॥२४॥

व्यमुञ्चन् वायुभिः नुन्ना भूतेभ्यः अथ अमृतं घनाः यथा आशिषः विश् पतयः काले काले द्विज ईरिताः ॥२४॥

यथा	जैसे	विश् पतयः	धनपति लोग
काले काले	समय-समयपर	आशिषः	(लोगोंकी) अभिलाषा (पूरी करते हैं)
द्विज ईरिताः	ब्राह्मणोंकी प्रेरणासे		

वायुभिः तुन्ना	वायुसे प्रेरित	अमृतं	अमृतके समान जल-
अथ घनाः	अब बादल		की
भूतेभ्यः	प्राणियोंके लिये	व्यमुञ्चन्	वर्षा करते हैं ॥२४॥

एवं वनं तद् वर्षिष्ठं पक्वखर्जूरजम्बुमत् ।
गोगोपालैर्वृतो रन्तुं सबलः प्राविशद्धरिः ॥२५॥

एवं वनं तत् वर्षिष्ठं पक्व खर्जूर जम्बुमत् गो गोपालैः वृतः रन्तुं सबलः प्राविशत् हरिः ॥२५॥

वर्षिष्ठं	वर्षा ऋतु वाले	वृतः सबलः	घिरे बलरामजीके
पक्व खर्जूर	पके खजूर तथा		साथ
जम्बुमत्	जामुनवाले	हरिः	श्रीकृष्णने
तत् एवं	उस इस प्रकार	रन्तुं	खेलनेके लिए
वनं	वनमें	प्राविशत्	प्रवेश किया ॥२५॥
गो गोपालैः	गायों तथा गोपालकों से		

धेनवो मन्दगामिन्य ऊधोभारेण भूयसा ।
ययुर्भगवताऽऽहूता द्रुतं प्रीत्या स्नुतस्तनीः ॥२६॥

धेनवः मन्द गामिन्यः ऊधोभारेण भूयसा ययुः भगवता आहूता द्रुतं प्रीत्या स्नुतस्तनीः ॥२६॥

भूयासा	बहुत अधिक	आहूता	पुकारनेपर
ऊधोभारेण	थनोंके भारसे	प्रीत्या	प्रेमसे
मन्द गामिन्यः	धीरे चलनेवाली	स्नुतस्तनीः	स्तनोंसे दूध झरती
धेनवः	गायें	द्रुतं ययुः	शीघ्र दौड़ती जाती
भगवता	भगवानके		थीं ॥२६॥

वनौकसः प्रमुदिता वनराजीर्मधुच्युतः ।
जलधारा निरेर्नादानासन्ना ददृशे गुहाः ॥२७॥

वनौकसः प्रमुदिता वनराजीः मधुच्युतः जलधारा निरेः नादान् आसन्ना ददृशे गुहाः ॥२७॥

वनौकसः	वनवासी लोग
प्रमुदिता	बहुत प्रसन्न थे
वनराजीः	वृक्षावलियां
मधु च्युता	मधु-धारा बहाने वाली थीं
गिरेः जलधारा	पर्वतकी जलधारा जहां
नादान्	शब्द करती (गिरती) थी
आसन्ना	उसके समीप ही
गुहाः ददृशे	गुफा देखा ॥२७॥

क्वचिद् वनस्पतिक्रोडे गुहायां चाभिवर्षति ।
निर्विश्य भगवान् रेमे कन्दमूलफलाशनः ॥२८॥

क्वचित् वनस्पतिक्रोडे गुहायां च अभिवर्षति निर्विश्य भगवान् रेमे कन्द मूल फल अशनः ॥२८॥

क्वचित्	कभी
अभिवर्षति	वर्षा होनेपर
वनस्पतिक्रोडे	वृक्षकी गोदमें
च गुहायां	अथवा गुफामें
निर्विश्य	प्रवेश करके
भगवान्	भगवान
कन्द मूल फल	कन्द, मूल, फल
अशनः रेमे	खाते हुए खेलते थे ॥२८॥

दध्योदनं समानीतं शिलायां सलिलान्तिके ।
सम्भोजनीयैर्बुभुजे गोपैः सङ्कर्षणान्वितः ॥२९॥

दधि ओदनं सम आनीतं शिलायां सलिल अन्तिके सम्भोजनीयैः बुभुजे गोपैः सङ्कर्षण अन्वितः ॥२९॥

सम आनीतं	साथ लाया हुआ
दधि ओदनं	दही-भात,
क्वचित्	कभी
सलिल अन्तिके	जलके पासकी
शिलायां	चट्टानपर रखकर
सम्भोजनीयैः	भोजनमें आनेवाले (शाकादि) के साथ
गोपैः	गोपों तथा
सङ्कर्षण	बलरामजीके
अन्वितः	साथ
बुभुजे	भोजन करते थे ॥२९॥

शाद्वलोपरि संविश्य चर्वतो मीलितेक्षणान् ।

तृप्तान् वृषान् वत्सतरान् गाश्च स्वोधोभरश्रमाः ॥३०॥

शाद्वल उपरि संविश्य चर्वतः मीलित ईक्षणान् तृप्तान् वृषान् वत्सतरान् गाः च स्व ओधो भरश्रमाः ॥३०॥

शाद्वल उपरि	हरी घासके ऊपर	**वृषान्**	बैलों तथा
संविश्य	बैठे हुए	**वत्सतरान्**	बछड़ोंको
तृप्तान्	तृप्त होकर	**च स्व ओधो**	और अपने थनके
चर्वतः	जुगाली करते	**भरश्रमाः**	भारसे थकी गायों-
मीलित ईक्षणान्	नेत्र मूंदे		की ॥३०॥

प्रावृट्श्रियं च तां वीक्ष्य सर्वभूतमुदावहाम् ।

भगवान् पूजयाञ्चक्रे आत्मशक्त्युपबृंहिताम् ॥३१॥

प्रावृट् श्रियं च तां वीक्ष्य सर्वभूत मुद आवहां भगवान् पूजयान् चक्रे आत्मशक्ति उपबृंहिताम् ॥३१॥

च तां	और उस	**प्रावृट् श्रियं**	प्रावृट् ऋतुकी शोभा
सर्वभूत	सब प्राणियोंको	**वीक्ष्य**	देखकर
मुद आवहां	आनन्ददायिनी	**भगवान्**	भगवानने (उसे)
आत्मशक्ति	अपनी शक्तिसे	**पूजयान् चक्रे**	सत्कृत किया ॥३१॥
उपबृंहिताम्	अभिवृद्धि हुई		

एवं निवसतोस्तस्मिन् रामकेशवयोर्व्रजे ।

शरत् समभवद् व्यभ्रा स्वच्छाम्बवपरुषानिला ॥३२॥

एवं निवसतः तस्मिन् रामकेशवयोः व्रजे शरत् सम् अभवत् व्यभ्रा स्वच्छ अम्बु अपरुषा अनिलाः ॥३२॥

एवं तस्मिन्	इस प्रकार उस	**अपरुषा**	शान्त
व्रजे राम-	ब्रजमें बलराम तथा	**अनिलाः**	पवन वाली
केशवयोः	श्रीकृष्णके	**सम् शरत्**	उत्तम शरद ऋतु
निवसतः	रहते हुए	**अभवत्**	हो गयी ॥३२॥
व्यभ्रा स्वच्छ	मेघहीन,		
अम्बु	स्वच्छ जलवाली		

शरदा नीरजोत्पत्त्या नीराणि प्रकृतिं ययुः ।
भ्रष्टानामिव चेतांसि पुनर्योगनिषेवया ॥३३॥

शरदा नीरज उत्पत्त्या नीराणि प्रकृतिं ययुः भ्रष्टानां इव चेतांसि पुनः योग निषेवया ॥३३॥

पुनः	फिर	**नीरज**	कमल
योग	योग-साधनोंको	**उत्पत्त्या**	उत्पन्न होनेसे
निषेवया	सेवन करनेसे	**शरदा नीराणि**	शरत्-कालीन जल
भ्रष्टानां	योग-भ्रष्ट हुए लोगोंके	**प्रकृतिं**	अपनी स्वाभाविक
		ययुः	(स्वच्छ) स्थितिमें आ गया ॥३३॥
चेतांसि इव	चित्तके समान		

व्योम्नोऽब्दं भूतशाबल्यं भुवः पङ्कमपां मलम् ।
शरज्जहाराश्रमिणां कृष्णे भक्तिर्यथाशुभम् ॥३४॥

व्योम्नः अब्दं भूत शाबल्यं भुवः पंकं अपां मलं शरत् जहार आश्रमिणां कृष्णे भक्तिः यथा अशुभम् ॥३४॥

यथा कृष्णे	जैसे श्रीकृष्णमें	**भूत शाबल्यं**	(वर्षा कालमें) बड़े प्राणियोंकी भीड़
भक्तिः	भक्ति		
आश्रमिणां	सभी आश्रमोंवालोंके	**भुवः पङ्कं**	पृथ्वीका कीचड़ तथा
अशुभं	अशुभको (नष्ट कर देती है)	**अपां मलं**	पानीका मैल
		जहार	हरण कर लिया ॥३४॥
शरत्	शरद ऋतुने		
व्योम्नः अब्दं	आकाशके मेघ		

सर्वस्वं जलदा हित्वा विरेजुः शुभ्रवर्चसः ।
यथा त्यक्तैषणाः शान्ता मुनयो मुक्तकिल्बिषाः ॥३५॥

सर्वस्वं जलदा हित्वा विरेजुः शुभ्रवर्चसः यथा त्यक्त ईषणाः शान्ताः मुनयः मुक्त किल्बिषाः ॥३५॥

यथा ईषणाः	जैसे कामनाओंको	**मुनयः**	मुनि लोग (शोभित होते हैं)
त्यक्त शान्ताः	छोड़कर शान्त हुए		
मुक्त किल्बिषाः	पापोंसे मुक्त	**सर्वस्वं**	अपना सर्वस्व

हित्वा	(जल) त्यागकर	जलदा इरेजुः	मेघ शोभित हो रहे
शुभ्रवर्चसः	उज्वलकान्ति		हैं ॥३५॥

गिरयो मुमुचुस्तोयं क्वचिन्न मुमुचुः शिवम् ।
यथा ज्ञानामृतं काले ज्ञानिनो ददते न वा ॥३६॥

गिरयः मुमुचुः तोयं क्वचित् न मुमुचुः शिवं यथा ज्ञान अमृतं काले ज्ञानिनः ददते न वा ॥३६॥

गिरयः	पर्वत	यथा ज्ञान	जैसे ज्ञानरूपी
शिवं तोयं	कल्याणमय (स्वच्छ) जल	अमृतं	अमृत
		ज्ञानिनः काले	ज्ञानी-जन समयपर
क्वचित् मुमुचुः	कहीं छोड़ते हैं और	ददते वा	देते हैं अथवा
न मुमुचुः	(कहीं) नहीं छोड़ते	न	नहीं देते ॥३६॥

नैवाविदन् क्षीयमाणं जलं गाधजलेचराः ।
यथाऽऽयुरन्वहं क्षय्यं नरा मूढाः कुटुम्बिनः ॥३७॥

न एव अविदन् क्षीयमाणं जलं गाध जलेचराः यथा आयुः अनु अहं क्षय्यं नरा मूढाः कुटुम्बिनः ॥३७॥

गाध	कम गहरे पानीमें	यथा अनु अहं	जैसे प्रतिदिन
जलेचराः	रहने वाले जीव	क्षय्यं आयुः	क्षीण होती आयुको
क्षीयमाणं	घटते हुए	मूढाः कुटुम्बिनः	अज्ञानी कुटुम्बवान
जलं न एव	जलको नहीं ही	नरा	मनुष्य (नहीं जान
अविदन्	जान पाते		पाते) ॥३७॥

गाधवारिचरास्तापमविन्दञ्छरदर्कजम् ।
यथा दरिद्रः कृपणः कुटुम्ब्यविजितेन्द्रियः ॥३८॥

गाध वारिचराः तापं अविन्दन् शरत् अर्कजं यथा दरिद्रः कृपणः कुटुम्बि अविजित् इन्द्रियः ॥३८॥

गाध	थोड़े गहरे	अर्कजं	सूर्यसे उत्पन्न
वारिचराः	जलमें रहनेवाले जीव	तापं अविन्दन्	तापकी पीड़ा भोगते
शरत्	शरत्-कालीन		हैं

यथा कृपणः जैसे बेचारा
अविजित् इन्द्रियः अजितेन्द्रिय
दरिद्रः कुटुम्बि दरिद्र कुटुम्ब (कष्ट भोगता है) ॥३८॥

शनैः शनैर्जहुः पङ्कं स्थलान्यामं च वीरुधः ।
यथाहंममतां धीराः शरीरादिष्वनात्मसु ॥३९॥

शनैः शनैः जहुः पङ्कं स्थलानि आमं च वीरुधः यथा अहं ममतां धीराः शरीर आदिषु अनात्मसु ॥३९॥

शनैः शनैः धीरे-धीरे
स्थलानि पङ्कं भूमि कीचड़,
च वीरुधः आमं तथा पौधे अपना कच्चापन
जहुः छोड़ते हैं,
यथा धीराः जैसे धैर्यशाली पुरुष
शरीर आदिषु शरीर आदि
अनात्मसु आत्माके अतिरिक्त पदार्थोंमें
अहं ममतां अहंता और ममता (धीरे-धीरे त्याग देते हैं) ॥३९॥

निश्चलाम्बुरभूत्तूष्णीं समुद्रः शरदागमे ।
आत्मन्युपरते सम्यङ्मुनिर्व्युपरतागमः ॥४०॥

निश्चल अम्बुः अभूत् तूष्णीं समुद्रः शरत् आगमे आत्मनि उपरते सम्यक् यथा मुनिः उपरत आगमः ॥४०॥

शरत् आगमे शरद-ऋतु आनेपर
समुद्रः अम्बुः समुद्रका जल
निश्चल तूष्णीं स्थिर और शान्त
अभूत् हो गया
यथा मुनिः जैसे मुनि
आत्मनि सम्यक् चित्तके पूर्णतः
उपरते उपराम (विरक्त) हो जानेपर
उपरत आगमः कर्मकाण्डसे भी उपरत हो जाता है ॥४०॥

केदारेभ्यस्त्वपोऽगृह्णन् कर्षका दृढसेतुभिः ।
यथा प्राणैः स्रवज्ज्ञानं तन्निरोधेन योगिनः ॥४१॥

केदारेभ्यः तु अपः अगृह्णन् कर्षका दृढसेतुभिः यथा प्राणैः स्रवत् ज्ञानं तत् निरोधेन योगिनः ॥४१॥

कर्षका	किसान
दृढसेतुभिः	मजबूत बांधके द्वारा
केदारेभ्यः तु	खेतोंसे तो
अपः अगृह्णन्	जलको (बहनेसे) रोकने लगे
यथा योगिनः	जैसे योगी लोग
प्राणैः स्रवत्	इन्द्रियों द्वारा नष्ट होते
ज्ञानं	ज्ञानको
तत् निरोधेन	उनका निरोध (प्रत्याहार) करके (रोकते हैं) ॥४१॥

शरदर्कांशुजांस्तापान् भूतानामुडुपोऽहरत् ।
देहाभिमानजं बोधो मुकुन्दो व्रजयोषिताम् ॥४२॥

शरत् अर्क अंशु जान् तापान् भूतानां उडुपः अहरत् देह अभिमानजं बोधः मुकुन्दः व्रजयोषितां ॥४२॥

शरत् अर्क	शरद ऋतुके सूर्यकी
अंशु जान्	(तीक्ष्ण) किरणोंसे उत्पन्न
भूतानां तापान्	प्राणियोंकी गर्मीको
उडुपः अहरत्	चन्द्रमा हरण कर लेता है (जैसे)
व्रजयोषितां	व्रज-स्त्रियोंका
देह अभिमानजं	देहाभिमानसे उत्पन्न
बोधः मुकुन्दः	(लौकिक) ज्ञान श्रीकृष्णने (हरण कर लिया) ॥४२॥

खमशोभत निर्मेघं शरद्विमलतारकम् ।
सत्त्वयुक्तं यथा चित्तं शब्दब्रह्मार्थदर्शनम् ॥४३॥

खं अशोभत निर्मेघं शरत् विमल तारकं सत्त्व युक्तम् यथा चित्तं शब्द ब्रह्म अर्थ दर्शनम् ॥४३॥

शरत् निर्मेघं	शरद-ऋतुमें मेघ-हीन
विमल तारकं	निर्मल तारागणोंसे
खं अशोभत	आकाश सुशोभित हो रहा है
यथा सत्त्व	जैसे सत्त्व गुण
युक्तं	युक्त
चित्तं	चित्तमें
शब्द ब्रह्म	वेदमन्त्रोंका
अर्थ दर्शनं	अर्थ प्रत्यक्ष होता है ॥४३॥

अखण्डमण्डलो व्योम्नि रराजोडुगणैः शशी ।
यथा यदुपतिः कृष्णो वृष्णिचक्रावृतो भुवि ॥४४॥

अखण्डमण्डलः व्योम्नि रराज उडुगणैः शशी, यथा, यदुपतिः कृष्णः वृष्णिचक्र आवृतः भुवि ॥४४॥

यदुपतिः	हे परीक्षित्	अखण्ड मंडल	अखिल ब्रह्माण्डके
यथा	जैसे	व्योम्नि	आकाशमें
भुवि	पृथ्वीतलमें	उडुगणैः	तारोंके बीच
वृष्णिचक्र	वृष्णि वंशियोंसे	शशी	चन्द्रमा
आवृतः	घिरे (बीचमें)	रराज	शोभित है ॥४४॥
कृष्णः	श्रीकृष्ण हैं (वैसे ही)		

आश्लिष्य समशीतोष्णं प्रसूनवनमारुतम् ।
जनास्तापं जहुर्गोप्यो न कृष्णहृतचेतसः ॥४५॥

आश्लिष्य समशीतोष्णं प्रसून वन मारुतं जनाः तापं जहुः गोप्यः न कृष्णहृत चेतसः ॥४५॥

वन प्रसून	जंगलकेपुष्पों से आती	कृष्णहृत चेतसः	श्रीकृष्णने जिनका चित्त चुरा लिया था
समशीतोष्णं	समशीतोष्ण	गोप्यः न	उन गोपियोंने
मारुतं	वायुका		(संताप) नहीं त्यागा
आश्लिष्य	स्पर्श करके		॥४५॥
जनाः तापं जहुः	लोगोंने अपना संताप त्याग दिया; किन्तु		

गावो मृगाः खगा नार्यः पुष्पिण्यः शरदाभवन् ।
अन्वीयमानाः स्ववृषैः फलेरीशक्रिया इव ॥४६॥

गावः मृगाः खगाः नार्यः पुष्पिण्यः शरद अभवन् अन्वीयमानाः स्व वृषैः फलैः ईश क्रिया इव ॥४६॥

गावः मृगाः	गायों, पशुओं,	शरद	शरद-ऋतुमें
खगाः नार्यः	और पक्षियोंकी मादाएँ	पुष्पिण्य	पुष्प (ऋतु) मती
		अभवन्	हो गयीं

स्व वृषैः	अपने सांडों (नरों) द्वारा	ईश क्रिया	समर्थ पुरुष द्वारा किये कर्मोंका
अन्वीयमाना	उनका पीछा किया जाने लगा	फलैः इव	फलोंके समान (जैसे पीछा किया जाता है) ॥४६॥

उदहृष्यन् वारिजानि सूर्योत्थाने कुमुद् विना ।
राज्ञा तु निर्भया लोका यथा दस्यून् विना नृप ॥४७॥

उदहृष्यन् वारिजानि सूर्य उत्थाने कुमुद विना राज्ञा तु निर्भया लोका यथा दस्यून् विना नृप ॥४७॥

नृप	राजन् !	यथा राज्ञा तु	जैसे राजाके द्वारा तो
सूर्य उत्थाने	सूर्योदय होनेपर	दस्यून् विना	डाकुओंके अतिरिक्त
कुमुद् विना	कुमुदिनीके अतिरिक्त	लोका निर्भया	सब लोग निर्भय हो जाते हैं ॥४७॥
वारिजानि	कमल		
उदहृष्यन्	खिल उठे,		

पुरग्रामेष्वाग्रयणैरैन्द्रियैश्च महोत्सवैः ।
बभौ भूः पक्वसस्याढ्या कलाभ्यां नितरां हरेः ॥४८॥

पुर ग्रामेषु अग्रगण्यैः इन्द्रियैः च महोत्सवैः बभौ भूः पक्व सस्य आढ्या कलाभ्यां नितरां हरेः ॥४८॥

पुर ग्रामेषु	नगरों और ग्रामोंमें	पक्व सस्य	पके धानसे
अग्रगण्यैः	उनके मुखियाओं द्वारा	आढ्या	सम्पन्न
		भूः	पृथ्वी
च इन्द्रियैः	तथा (शरीरमें) इन्द्रियों द्वारा भी	हरेः कलाभ्यां	श्रीहरि और उनकी कला बलरामजीसे
महोत्सवैः	बड़े उत्सव मनाये जाने लगे,	नितरां बभौ	बहुत अधिक शोभितसे हुई ॥४८॥

वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्यार्थान् प्रपेदिरे ।
वर्षरुद्धा यथा सिद्धाः स्वपिण्डान् काल आगते ॥४६॥

वणिक् मुनि नृप स्नाता निर्गम्य अर्थान् प्रपेदिरे वर्षरुद्धा यथा सिद्धाः स्वपिण्डान् काल आगते ॥४६॥

वणिक् मुनि	व्यापारी, संन्यासी,	**यथा वर्षरुद्धा**	जैसे वर्ष भरसे रुके
नृप स्नाता	राजा और स्नातक		(या साधनासे)
निर्गम्य	(अपने स्थानोंसे	**सिद्धाः**	(सिद्ध या) पितर
	बाहर) निकलकर	**काल आगते**	समय आनेपर
अर्थान्	अभीष्ट काममें	**स्वपिण्डान्**	(अपना पिण्डदान
प्रपेदिरे	लग गये		या सिद्ध देह) पाते
			पाते हैं ॥४६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे
पूर्वार्धे प्रावृट्शरद्वर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥

अथ एकविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगन्धिना ।
न्यविशद् वायुना वातं सगोगोपालकोऽच्युतः ॥१॥

इत्थं शरत् स्वच्छ जलं पद्माकर सुगन्धिना न्यविशत् वायुना वातं सगो गोपालकः अच्युतः ॥१॥

इत्थं	इस प्रकार	वायुना	वायुवाले (वन) में
शरत्	शरद-ऋतुके	गो	गायों और
स्वच्छ जलं	निर्मल जलमें	गोपालकः स	गोपालकोंके साथ
पद्माकर	कमलोंके समूहसे	अच्युतः	श्रीकृष्णने
वातं	चलती	न्यविशत्	प्रवेश किया ॥१॥
सुगन्धिना	सुगन्धित		

कुसुमितवनराजिशुष्मभृङ्ग-
द्विजकुलघुष्टसरः सरिन्महीध्रम् ।
मधुपतिरवगाह्य चारयन् गाः
सहपशुपालबलश्चुकूज वेणुम् ॥२॥

कुसुमित वनराजि शुष्मभृङ्ग द्विजकुल घुष्ट सरः सरित् महीध्रं मधुपतिः अवगाह्यः चारयन् गाः सह पशुपाल बलः चुकूज वेणुम् ॥२॥

कुसुमित	पुष्पित	द्विजकुल	पक्षि-समूहके
वनराजि	वनावलीपर;	घुष्ट	शब्दसे गूंजते
शुष्मिभृङ्गं	मतवाले भ्रमरों	सरः सरित्	सरोवर, सरिता एवं
	तथा	महीध्रं	पर्वतोंवाले वनमें

अवगाह्य	भीतर प्रवेश करके	**मधुपतिः**	श्रीकृष्णने
पशुपाल	पशुपालकों (ग्वालों)	**वेणुं**	मधुर स्वरमें
च बलः सह	तथा बलरामके साथ	**चुकूज**	वंशी बजायी ॥२॥
गाः चारयन्	गायें चराते हुए		

तद् व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम् ।
काश्चित् परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन् ॥३॥

तत् व्रजस्त्रियः आश्रुत्य वेणुगीतं स्मर उदयं काः चित् परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्यः अन्व वर्णयन् ॥३॥

तत् स्मर	उस काम (प्रेम)	**व्रजस्त्रियः**	व्रजकी स्त्रियां (गोपियां)
उदयं	उद्दीपक	**स्वसखीभ्यः**	अपनी सखियोंसे
वेणुगीतं	वंशीके गीतको	**अन्व**	उन (श्रीकृष्ण) का
आश्रुत्य	सुनकर	**वर्णयन्**	वर्णन करने लगीं ॥३॥
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके		
परोक्षं	परीक्षमें		
काः चित्	कोई		

तद् वर्णयितुमारब्धाः स्मरन्त्यः कृष्णचेष्टितम् ।
नाशकन् स्मरवेगेन विक्षिप्तमनसो नृप ॥४॥

तत् वर्णयितुं आरब्धाः स्मरन्त्यः कृष्ण चेष्टितं न अशकन् स्मर वेगेन विक्षिप्त मनसः नृप ॥४॥

नृप	राजन् !	**स्मर**	काम (प्रेम) के
तत्	उसको	**वेगेन**	वेगसे
आरब्धाः	प्रारम्भ करनेपर	**मनसः**	चित्तके
कृष्ण	श्रीकृष्णकी	**विक्षिप्त**	दूर चले जानेसे
चेष्टितं	चेष्टाओंको	**वर्णयितुं**	वर्णन करनेमें
स्मरन्त्यः	स्मरण करती हुई	**अशकन् न**	समर्थ नहीं हुईं ॥४॥

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद् वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ।

रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः ॥५॥

बर्हापीडं नटवर वपुः कर्णयोः कर्णिकारं बिभ्रत् वासः कनक कपिशं वैजयन्तीं च मालां रन्ध्रान् वेणोः अधर सुधया पूरयन् गोपवृन्दैः वृन्दारण्यं स्वपद रमणं प्राविशत् गीतकीर्तिः ॥५॥

नटवर	(उनके मनमें यह रूप आया) श्रेष्ठ नटके सामान	**मालां बिभ्रत्**	माला धारण किये
		अधर सुधया	अधरामृतसे
		वेणोः रन्ध्रान्	वंशीके छिद्रोंको
वपुः	शरीर है,	**पूरयन्**	भरते हुए
बर्हापीडं	मयूर पिच्छका मुकुट	**गोप वृन्दैः**	गोप-सखाओं द्वारा
		गीतकीर्तिः	कीर्ति गाये जाते
कर्णयोः	कानोंपर	**स्वपद**	अपने धाम वैकुण्ठसे भी
कर्णिकारं	पीले कनेरका पुष्प		
कनक	स्वर्णके	**रमणं**	रमणीय
कपिशं	समान पीला	**वृन्दारण्यं**	वृन्दावनमें
वासः	बस्त्र	**प्राविशत्**	प्रवेश कर रहे हैं ॥५॥
च	तथा		
वैजयन्तीं	घुटनों तक लटकती		

इति वेणुरवं राजन् सर्वभूतमनोहरम् ।
श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वा वर्णयन्त्योऽभिरेभिरे ॥६॥

इति वेणुरवं राजन् सर्वभूत मनोहरं श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वाः वर्णयन्त्यः अभिरेभिरे ॥६॥

राजन्	राजन् !	**वेणुरवं**	वंशी-ध्वनिको
इति	इस प्रकार	**श्रुत्वा**	सुनकर
सर्वभूत	समस्त प्राणियोंकी	**सर्वाः**	सब
मनोहरं	मनोहारिणी	**व्रजस्त्रियः**	व्रजकी स्त्रियां

वर्णयन्त्यः	उसका वर्णन करती हुई	अभिरेभिरे	(मन ही मन श्रीकृष्णका) आलिंगन करने लगीं ॥६॥

गोप्यऊचु

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः
सख्यः पशूननु विवेशयतोर्वयस्यैः ।
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणु जुष्टं
यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ॥७॥

अक्षण्वतां फलं इदं न परं विदामः सख्यः पशून् अनु विवेशयतः वयस्यैः वक्त्रं व्रजेश सुतयोः अनुवेणु जुष्टं यैः वा निपीतं अनुरक्त कटाक्ष मोक्षम् ॥७॥

सख्यः	सखियो !	सुतयोः	दोनों पुत्रों (श्याम-बलराम) के
वयस्यैः	सखाओंके साथ		
पशून् अनु	पशुओंके पीछे	वक्त्रं वा	मुखोंका ही
विवेशयतः	उन्हें ले जाते या लाते समय	यैः	जो भली प्रकार (नेत्रोंसे) पान करना है;
अनुरक्त	प्रेम पूर्ण		
कटाक्ष	कटाक्ष	इदं परं	इससे बड़ा
मोक्षं	पूर्वक देखते	अक्षण्वतां	नेत्र होनेका
अनुवेणु जुष्टं	वंशीसे युक्त	फलं न	फल हम नहीं
व्रजेश	व्रजराजके	विदामः	जानतीं ॥७॥

चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्ज-
मालानुपृक्तपरिधानविचित्रवेषौ ।
मध्ये विरेजतुरलं पशुपालगोष्ठ्यां
रङ्गे यथा नटवरौ क्व च गायमानौ ॥८॥

चूत प्रवाल बर्ह स्तबक उत्पल अब्ज माला अनुपृक्त परिधान विचित्रवेषौ मध्ये विरेजतुः अलं पशुपाल गोष्ठ्यां रङ्गे यथा नटवरौ क्व च गायमानौ ॥८॥

चूत प्रवाल	आमके किसलय	पशुपाल	पशुपालकोंकी
बर्ह	मयूर पिच्छ,	गोष्ठ्यां	बैठकके
स्तबक	पुष्प गुच्छ,	मध्ये	बीचमें
उत्पल अब्ज	श्वेत-लाल कमल,	यथा क्व च	जैसे कभी-कभी
माला	तथा मालाके	गायमानौ	गाते हुए
परिधरन	शृंगारको	नटवरौ	दो श्रेष्ठ नट हों,
अनुपृक्त	भली प्रकार धारण किये	अलं	अत्यन्त
		विरेजतुः	शोभित होते हैं ॥८॥
विचित्रवेषौ	अपने विचित्र वेषसे		

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणु-
दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम् ।
भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो
हृष्यत्त्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्याः ॥९॥

गोप्यः किं अचरत् अयं कुशलं स्म वेणुः दामोदरः अधरसुधां अपि गोपिकानां भुङ्क्ते स्वयं यत् अवशिष्ट रसं ह्रदिन्यः हृष्यत् त्वचः अश्रु मुमुचुः तरवः यथा आर्याः ॥९॥

गोप्यः	गोपियो !	यत् अवशिष्ट	जिससे बचे हुए
अय वेणुः	इस वंशीने	रसं ह्रदिन्यः	रससे ह्रदिनियों (वावलियों) को
किं कुशलं	क्या पुण्य		
अचरत् स्म	किया था कि	त्वचः हृष्यत्	(कमलोंके बहाने) रोमाञ्च हो रहा है,
गोपिकानां	गोपियोंका		
अपि	(भाग) भी	आर्याः	श्रेष्ठ पुरुषोंके
दामोदरः	श्रीदामोदरके	यथा	समान (हर्षसे)
अधरसुधां	अधरामृतको	तरवः	वृक्ष
स्वयं	स्वयं	अश्रु मुमुचुः	अश्रु बहा रहे हैं ॥९॥
भुङ्क्ते	भोगती है,		

वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं
यद् देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि ।
गोविन्दवेणुमनु मत्तमयूरनृत्यं
प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरतान्यसमस्तसत्त्वम् ॥१०॥

वृन्दावनं सखि भुवः वितनोति कीर्तिं यत् देवकीसुत पदाम्बुज लब्ध लक्ष्मि गोविन्द वेणुं अनु मत्त मयूर नृत्यं प्रेक्ष्य अद्रि सानु अपरत अन्य समस्त सत्त्वम् ॥१०॥

सखि	सखी !	**गोविन्द वेणुम्**	गोविन्दकी बंशी ध्वनिके
वृन्दावनं	वृन्दावन	**अनु मत्त**	पीछे पागल
भुवः कीर्तिं	पृथ्वीकी कीर्तिका	**मयूर नृत्यं**	मयूरके नृत्यको
वितनोति	विस्तार कर रहा है,	**अद्रि सानु**	पर्वत शिखरसे
यत् देवकीसुत	क्योंकि श्री देवकी-नन्दनके*	**प्रेक्ष्य**	देखकर
पदाम्बुज	चरण-कमलोंसे	**समस्त सत्त्वं**	दूसरे सब प्राणी
लब्ध लक्ष्मि	चिह्नित हुआ है,	**अपरत**	शान्त रह जाते हैं ॥१०॥

धन्याः स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता
या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेषम् ।
आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः
पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ॥११॥

धन्याः स्म मूढ मतयः अपि हरिण्यः एता या नन्दनन्दनं उपात्त विचित्र वेषं आकर्ण्य वेणु रणितं सह कृष्ण साराः पूजां दधुः विरचितां प्रणय अवलोकैः ॥११॥

मूढ मतयः	मूढ बुद्धि	**हरिण्यः धन्याः**	हरिणियां धन्य हैं,
अपि एता	होनेपर भी ये	**या विचित्र वेषं**	जो विचित्र वेश

---

* अनेक आचार्य मानते हैं कि यशोदाजीका भी एक नाम देवकी था, अतः 'देवकीसुत' का अर्थ वे 'यशोदा-नन्दन' करते हैं ।

उपात्त	धारण किये	**प्रणय अवलोकैः**	प्रेमपूर्ण दृष्टिके द्वारा
नन्दनन्दन	नन्द-नन्दनकी	**विरचितां**	विशेष रूपमें उपस्थित
वेणु रणितं	वंशी-ध्वनि	**पूजां दधुः**	उनका सत्कार करती हैं ॥११॥
आकर्ण्य	सुनकर		
सह कृष्ण सारैः	कृष्णसार (काले मृगों) के साथ		

कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपशीलं
श्रुत्वा च तत्क्वणितवेणुविचित्रगीतम् ।
देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसारा
भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्यः ॥१२॥

कृष्णं निरीक्ष्य वनिता उत्सव रूपशीलं श्रुत्वा च तत् क्वणित वेणु विचित्रगीतं देव्यः विमान गतयः स्मर नुन्न सारा भ्रश्यत् प्रसून कबरा मुमुहुः विनीव्यः ॥१२॥

वनिता उत्सव	अनुरागिणी स्त्रीके लिए उत्सव रूप	**विमान गतयः**	विमानों से जाने-वाली
रूपशीलं	सौन्दर्य एवं आचरण-वाले	**देव्यः**	देवियोंका
कृष्णं निरीक्ष्य	श्रीकृष्णको देखकर	**स्मर नुन्न सारा**	काम वेगसे धैर्य छूट जाता है,
च तत्	तथा उनके द्वारा	**कबर प्रसून**	जूड़ेके पुष्प
क्वणित वेणु	बजायी वंशीके	**भ्रश्यत्**	गिरने लगते हैं,
विचित्रगीतं	विचित्र गीतको	**विनीव्यः**	साड़ी गिर जाती है,
श्रुत्वा	सुनकर	**मुमुहुः**	(वे) मूर्च्छित हो जाती हैं ॥१२॥

गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीत-
पीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिबन्त्यः ।
शावाः स्नुतस्तनपयः कवलाः स्म तस्थु-
र्गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकलाः स्पृशन्त्यः ॥१३॥

गावः च कृष्ण मुख निर्गत वेणुगीत पीयूषं उत्तभित कर्ण पुटैः पिबन्त्यः शावाः स्नुत स्तनपयः कवलाः स्म तस्थुः गोविन्दं आत्मनि दृशा अश्रु कलाः स्पृशन्त्यः ॥१३॥

गावः च	गायें भी
कृष्ण मुख	श्रीकृष्णके मुखसे
निर्गत वेणु-	निकले वंशी-
गीत	गायन रूप
पीयूषं	अमृतको
उत्तभित कर्ण	उठाये हुए कानोंके
पुटैः पिबन्त्यः	दोनोंसे पीती हुई
दृशा	आंखोंसे
अश्रु कलाः	आंसू बहाती
आत्मनि	अपने हृदयमें
गोविन्दं	गोविन्दका
स्पृशन्त्यः	स्पर्श करती हैं,
शावाः	उनके बछड़े
स्नुत स्तनपयः	स्तनोंसे स्वतः झरते दूधका
कवलाः	ग्रास मुखमें लिए
तस्थुः स्म	स्थिर रह जाते हैं ॥१३॥

प्रायो बताम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन्
कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम् ।
आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान्
शृण्वन्त्यमीलितदृशो विगतान्यवाचः ॥१४॥

प्रायः बत अम्ब विहगा मुनयः वने अस्मिन् कृष्ण इक्षितं तत् उदितं कलवेणु गीतं आरुह्य ये द्रुम भुजान् रुचिर प्रवालान् शृण्वन्ति अमीलित दृशः विगत अन्यवाचः ॥१४॥

बत अम्ब	अरी मैया !
अस्मिन् वने	इस वृन्दावनमें
ये विहगा	जो पक्षी
द्रुम	वृक्षोंकी
भुजान्	शाखाओंके
रुचिर	सुन्दर
प्रवालान्	पल्लवोंपर
आरुह्य	चढ़कर
अन्यवाचः	दूसरी सब बोली
विगत	छोड़कर
अमीलित दृशः	अपलक नेत्रोंसे
कृष्ण	श्रीकृष्णका
ईक्षितं	दर्शन करते हैं और
तत्	उनके द्वारा
उदितं	उठाया (बजाया)
कलवेणु गीतं	सुन्दर वंशी-गायन
शृण्वन्ति	सुनते हैं
प्रायः मुनयः	वे प्रायः मुनि हैं ॥१४॥

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीत-
मावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः ।
आलिङ्गनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारे-
र्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः ॥१५॥

नद्यः तदा तत् उपधार्य मुकुन्द गीतं आवर्त लक्षित मनोभव भग्न वेगाः आलिङ्गन स्थगितं ऊर्मिभुजैः मुरारेः गृह्णन्ति पादयुगलं कमल उपहाराः ॥१५॥

तदा नद्यः	उस समय नदियां	**आलिङ्गन स्थगितं**	आलिंगनके लिए रुकी
तत् मुकुन्द गीतं	उस मुकुन्दके गायनको	**ऊर्मिभुजैः**	लहरों रूपी भुजाओं से
उपधार्य	सुनकर	**पादयुगलं**	उनके दोनों चरणों को
मनोभव भग्न वेगाः	कामके कारण वेग (प्रवाह) रुक जाने वाली हो जाती हैं,	**गृह्णन्ति**	पकड़ती हैं और
		कमल उपहाराः	कमल पुष्पोंकी भेंट देती हैं ॥१५॥
आवर्त लक्षित	यह (उनमें पड़नेवाले) भ्रमरोंसे पहिचाना जाता है		

दृष्ट्वाऽऽतपे व्रजपशून् सह रामगोपैः
सञ्चारयन्तमनु वेणुमुदीरयन्तम् ।
प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः
सख्युर्व्यधात् स्ववपुषाम्बुद आतपत्रम् ॥१६॥

दृष्ट्वा आतपे व्रजपशून् सह राम गोपैः सञ्चारयन्तं अनु वेणुं उदीरयन्तं प्रेम प्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः सख्युः व्यधात् स्ववपुषा अम्बुद आतपत्रम् ॥१६॥

आतपे	धूपमें	**गोपैः सह**	गोपोंके साथ
राम	बलराम तथा	**व्रज पशून्**	व्रजके पशुओंको

सञ्चारयन्तं	चराते हुए	**कुसुमावलीभिः**	पुष्प (सीकर) वर्षा द्वारा
अनु वेणुं	उनके पीछे वंशी		
उदीरयन्तं	बजाते हुए	**सख्युः**	अपनी मैत्री तथा
दृष्ट्वा	(श्रीकृष्णको) देखकर	**स्ववपुषा**	अपने शरीरसे
प्रेम	प्रेमके कारण	**आतपत्रं**	छाता
प्रवृद्ध	खूब बढ़कर	**व्यधात्**	बनाता है ॥१६॥
उदितः अम्बुद	प्रगट होकर मेघ		

पूर्णाः पुलिन्ध्य उरुगायपदाब्जराग-
श्रीकुङ्कुमेन दयितास्तनमण्डितेन ।
तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन
लिम्पन्त्य आननकुचेषु जहुस्तदाधिम् ॥१७॥

पूर्णाः पुलिन्ध्य उरुगाय पदाब्ज राग श्री कुङ्कुमेन दयिता स्तन मण्डितेन तत् दर्शन स्मर रुजः तृण रूषितेन लिम्पन्त्य आनन कुचेषु जहुः तत् आधिम् ॥१७॥

पुलिन्ध्य	ये भीलिनियां	**रूषितेन**	लग जाता है
पूर्णाः	परिपूर्ण (धन्य) हैं,	**आनन**	मुख और
उरुगाय	अनन्त कीर्ति (श्रीकृष्ण) के	**कुचेषु**	छातियोंपर
		लिम्पन्त्य	लगा लेती हैं और
पदाब्ज राग	चरण-कमलमें लगे	**तत् दर्शन**	इनके दर्शनसे उत्पन्न जो
दयिता श्री	इनकी प्रिया लक्ष्मीके		
स्तन मण्डितेन	स्तनोंपर सजाये	**स्मर रूजः**	काम रूपी रोग है
कुङ्कुमेन	कुंकुमको जो	**तत् आधिं**	उसकी व्यथा
तृण	(इनके चरणसे) घासपर	**जहुः**	त्याग देती हैं ॥१७॥

हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो
यद् रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः ।
मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत्
पानीयसूयवसकन्दरकन्दमूलैः ॥१८॥

हन्त अयं अद्रिः अबला हरिदास वर्यः यत् राम कृष्ण चरण स्पर्श प्रमोदः मानं तनोति सह गो गणयोः तयोः यत् पानीय सूय वस कन्दर कन्दमूलैः ॥१८॥

अबला	सखियो !	**गो**	गायों तथा
हन्त अयं	अहो यह	**गणयोः सह**	सखाओंके साथ
अद्रिः	(गोवर्धन) पर्वत	**तयोः**	उन दोनों भाइयोंका
हरिदास	भगवद् भक्तोंमें	**यत् पानीय**	जो पीने और
वर्यः	श्रेष्ठ है,	**सूय**	स्नानके लिए जल,
यत् राम	क्योंकि बलराम तथा	**वस कन्दर**	बैठनेके लिए गुफा
कृष्ण	श्रीकृष्णके		एवं
चरण स्पर्श	चरण-स्पर्शका	**कन्दमूलैः**	कन्द एवं मूलसे
प्रमोदः	आनन्द प्राप्त करता	**मानं**	सम्मान (आतिथ्य)
	है और	**तनोति**	करता है ॥१८॥

गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदार-
वेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः ।
अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां
निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् ॥१९॥

गा गोपकैः अनुवनं नयतोः उदार वेणु स्वनैः कलपदैः तनुभृत्सु सख्यः अस्पन्दनं गतिमतां पुलकः तरूणां निर्योगपाश कृत लक्षणयोः विचित्रम् ॥१९॥

सख्यः	सखियो !	**उदार वेणु**	उच्च वंशी
निर्योग	नोवने तथा गाय	**स्वनैः**	ध्वनिके
पाश	बांधनेकी रस्सीसे	**कलपदैः**	सुन्दर पदोंसे
कृत लक्षणयोः	वेश बनाये	**तनुभृत् सु**	सब शरीर धारियों
विचित्रं	(इन दोनों भाइयोंकी		(चरजीवों) में
	गति) विचित्र है,	**अस्पन्दनं**	स्थिरता तथा
गोपकैः	ग्वाल-बालोंके साथ	**तरूणां**	वृक्षों (अचरों) में
अनुवनं	एकसे दूसरे वनमें	**पुलकः**	रोमाञ्च (उत्पन्न
गा नयतोः	गायें ले जाते हुए		कर देते हैं) ॥१९॥

एवंविधा भगवतो या वृन्दावनचारिणः ।
वर्णयन्त्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः ॥२०॥

एवं विधा भगवतः या वृन्दावन चारिणः वर्णयन्त्यः मिथः गोप्यः क्रीडाः तन्मयतां ययुः ॥२०॥

वृन्दावन	वृन्दावनमें	**मिथः**	उनका परस्पर
चारिणः	विचरण करनेवाले	**वर्णयन्त्यः**	वर्णन करती हुई
भगवतः	भगवानकी	**गोप्यः**	गोपियां
एवं विधा	इस प्रकारकी	**तन्मयतां**	उनमें तन्मय
या क्रीड़ाः	जो लीलाएँ हैं	**ययुः**	हो गयीं ॥२०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे वेणुगीतं नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिकाः ।
चेरुर्हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम् ॥१॥

हेमन्ते प्रथमे मासि नन्द व्रज कुमारिकाः चक्रुः हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायनि अर्चन व्रतम् ॥१॥

हैमन्ते	हेमन्त ऋतुके	भुञ्जानाः	खाती हुई
प्रथमे	पहिले	कात्यायनि	कात्यायनी देवीकी
मासि	महीने (मार्ग शीर्ष) में	अर्चन	पूजा और
नन्द व्रज	नन्द व्रजकी	व्रतं चक्रुः	व्रत करने लगीं
कुमारिकाः	कुमारियोंने		॥१॥
हविष्यं	हविष्यान्न ही		

आप्लुत्याम्भसि कालिन्द्या जलान्ते चोदितेऽरुणे ।
कृत्वा प्रतिकृतिं देवीमानर्चुर्नृप सैकतीम् ॥२॥

आप्लुत्य अम्भसि कालिन्द्या जलान्ते चोदिते अरुणे कृत्वा प्रतिकृतिं देवीं आनर्चुः नृप सैकतीम् ॥२॥

नृप	राजन् !	देवीं	देवीकी
चोदिते अरुणे	अरुणोदय होनेपर	सैकतीं	बालुकामयी
कालिन्द्या	यमुनाके	प्रतिकृतिं कृत्वा	मूर्ति बनाकर
अम्भसि	जलमें	आनर्चुः	पूजा करती थीं
आप्लुत्य	स्नान करके		॥२॥
जलान्ते	जलके समीप		

गन्धैर्माल्यैः सुरभिर्बलिभिर्धूपदीपकैः ।
उच्चावचैश्चोपहारैः प्रवालफलतण्डुलैः ॥३॥

गन्धैः माल्यैः सुरभिभिः बलिभिः धूप दीपकैः उच्च अवचैः च उपहारैः प्रवाल फल तण्डुलैः ॥३॥

गन्धैः माल्यैः	चन्दन, माला	उच्च अवचैः	बड़े-छोटे
सुरभिभिः	सुगन्धि (इत्यादि)	उपहारैः	उपहारों एवं
बलिभिः	नैवेद्य	प्रवाल फल	पल्लव, फल तथा
धूप दीपकैः	धूप, दीपक,	तण्डुलैः	अक्षतसे (पूजा
च	तथा		करती थीं) ॥३॥

कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि ।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ।
इति मन्त्रं जपन्त्यस्ताः पूजां चक्रुः कुमारिकाः ॥४॥

कात्यायनि महामाये महायोगिनि अधीश्वरि नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः इति मन्त्रं जपन्त्यः ताः पूजां चक्रुः कुमारिकाः ॥४॥

कात्ययनि	कात्यायनी !	दे विते	देवी ! आपको
महामाये	महामाया !	नमः	नमस्कार
महायोगिनि	महायोगिनी !	इति मन्त्रं	इस मन्त्रका
अधीश्वरि	सर्वेश्वरी !	जपन्त्यः	जप करती हुई
नन्दगोपसुतं	गोपराज नन्दके पुत्र-	ताः कुमरिकाः	वे कुमारियां
	को	पूजां चक्रुः	पूजा करती थीं ॥४॥
मे पतिं कुरु	मेरा पति बनाओ		

एवं मासं व्रतं चेरुः कुमार्यः कृष्णचेतसः ।
भद्रकालीं समानर्चुर्भूयान्नन्दसुतः पतिः ॥५॥

एवं मासं व्रतं चेरुः कुमार्यः कृष्ण चेतसः भद्रकालीं सम आनर्चुः भूयात् नन्दसुतः पतिः ॥५॥

कृष्ण	श्रीकृष्णमें	कुमार्यः	उन कुमारियोंने
चेतसः	लगे चित्तवाली	नन्दसुतः	नन्दनन्दन

पतिः भूयात्	हमारे पति हों	भद्रकालीं	भद्रकालीकी
एवं	इस संकल्पसे	सम	भली प्रकार
मासं	एक महीने तक	आनर्चुः	पूजा की ॥५॥
व्रतं चेरुः	व्रत किया तथा		

उषस्युत्थाय गोत्रैः स्वैरन्योन्याबद्धबाहवः ।
कृष्णमुच्चैर्जगुर्यान्त्यः कालिन्द्यां स्नातुमन्वहम् ॥६॥

उषसि उत्थाय गोत्रैः स्वैः अन्योन्य आबद्ध बाहुभिः कृष्णं उच्चैः जगुः गायन्त्यः कालिन्द्यां स्नतुं अनु अहम् ॥६॥

उषसि	उषा कालमें ही	उच्चैः	उच्च स्वरसे
उत्थाय	उठकर	गायन्त्यः	गाती हुई
स्वैः गोत्रैः	अपने गोत्रका नाम लेकर	कृष्णं	श्रीकृष्ण
		जगुः	कीर्तन करती
अन्योन्य	एक दूसरीको उठाकर	अनु अहं	प्रतिदिन
		कालिन्द्यां	यमुना
आबद्ध	परस्पर	स्नातुं	स्नान करने जाती थीं ॥६॥
बाहुभिः	भुजाएँ फँसाकर		

नद्यां कदाचिदागत्य तीरे निक्षिप्य पूर्ववत् ।
वासांसि कृष्णं गायन्त्यो विजह्रुः सलिले मुदा ॥७॥

नद्यां कदाचित् आगत्य तीरे निक्षिप्य पूर्ववत् वासांसि कृष्णं गायन्त्यः विजह्रुः सलिले मुदा ॥७॥

कदाचित्	किसी दिन	कृष्णं	श्रीकृष्ण लीला
नद्यां आगत्य	नदी किनारे आकर	गायन्त्यः	गाती हुई
पूर्ववत्	पहिलेके समान	मुदा सलिले	आनन्दसे जलमें
तीरे वासांसि	किनारेपर वस्त्रोंको	विजह्रुः	कीड़ा करने लगीं ॥७॥
निक्षिप्य	डालकर		

भगवांस्तदभिप्रेत्य कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ।
वयस्यैरावृतस्तत्र गतस्तत्कर्मसिद्धये ॥८॥

भगवान् तत् अभिप्रेत्य कृष्णः योगेश्वर ईश्वरः वयस्यैः आवृतः तत्र गतः तत् कर्म सिद्धये ॥८॥

योगेश्वर	योगेश्वरोंके भी	**तत्**	उनके (इस पूजा)
ईश्वरः	स्वामी	**कर्म**	कर्मको
भगवान्	भगवान	**सिद्धये**	सफल करनेके लिए
कृष्णः	श्रीकृष्णने	**वयस्यैः**	सखाओंसे
तत्	उनकी	**आवृतः**	घिरे हुए
अभिप्रेत्य	अभिप्राय जानकर	**तत्र गतः**	वहां गये ॥८॥

तासां वासांस्युपादाय नीपमारुह्य सत्वरः ।
हसद्भिः प्रहसन् बालैः परिहासमुवाच ह ॥९॥

तासां वासांसि उप आदाय नीपं आरुह्य सत्वरः हसद्भिः प्रहसन् बालैः परिहासं उवाच ह ॥९॥

तासां वासांसि	उनके वस्त्रोंको	**बालैः**	बालकोंके
उप आदाय	एक साथ उठाकर	**हसद्भिः**	हँसते हुए
सत्वरः	शीघ्रतापूर्वक	**प्रहसन्**	स्वयं जोरसे हँसते
नीपं	मौलिश्रीके वृक्षपर	**ह परिहासं**	निश्चय हंसीकी बात
आरुह्य	चढ़कर	**उवाच**	कहने लगे ॥९॥

अत्रागत्याबलाः कामं स्वं स्वं वासः प्रगृह्यताम् ।
सत्यं ब्रवाणि नो नर्म यद् यूयं व्रतकर्शिताः ॥१०॥

अत्र आगत्य अबलाः कामं स्वं स्वं वासः प्रगृह्यतां सत्यं ब्रुवाणि नो नर्म यत् यूयं व्रत कर्शिताः ॥१०॥

अबलाः	कुमारियो !	**सत्यं ब्रुवाणि**	मैं सच कहता हूँ,
अत्र कामं	यहां इच्छानुसार	**नर्म नो**	हंसी नहीं है,
आगत्य	आकर	**यत् यूयं**	क्योंकि तुम सब
स्वं स्वं वासः	अपना अपना वस्त्र	**व्रत कर्शिता**	व्रत करके दुबली
प्रगृह्यतां	ले जाओ,		हो गयी हो ॥१०॥

न मयोदितपूर्वं वा अनृतं तदिमे विदुः ।
एकैकशः प्रतीच्छध्वं सहैवोत सुमध्यमाः ॥११॥

न मया उदित पूर्वं वा अनृतं तत् इमे विदुः एक एकशः प्रतीच्छध्वं सह वा उत सुमध्यमाः ॥११॥

वा मया	अथवा मैंने	एक एकशः	एक-एक करके
पूर्वं अनृतं	पहिले कभी झूठ	उत वा सह	अथवा एक साथ
न उदित	नहीं बोला है	प्रतीच्छध्वं	(वस्त्रोंकी) लेनेकी
तत् इमे	इसको ये		इच्छा करो
विदुः	(मेरे सखा) जानते हैं		(ले लो) ॥११॥
सुमध्यमाः	क्षीण कटि सुन्दरियो !		

तस्य तत् क्ष्वेलितं दृष्ट्वा गोप्यः प्रेमपरिप्लुताः ।
व्रीडिताः प्रेक्ष्य चान्योन्यं जातहासा न निर्ययुः ॥१२॥

तस्य तत् क्ष्वेलितं दृष्ट्वा गोप्यः प्रेमपरिप्लुताः व्रीडिताः प्रेक्ष्य च अन्योन्यं जात हासा न निर्ययुः ॥१२॥

तस्य	उन (श्रीकृष्ण) की	च	तथा
तत्	यह	व्रीडिताः	लज्जित होकर
क्ष्वेलितं	परिहास-क्रीड़ा	अन्योन्यं	एक दूसरीको
दृष्ट्वा	देखकर	प्रेक्ष्य जात	देखकर
गोप्यः	गोपियां	हासा	उन्हें हँसी आ गयी
प्रेमपरिप्लुताः	प्रेममें निमग्न हो गयीं,	निर्ययुः	(जलसे) निकलीं
		न	नहीं ॥१२॥

एवं ब्रुवति गोविन्दे नर्मणाऽऽक्षिप्तचेतसः ।
आकण्ठमग्नाः शीतोदे वेपमानास्तमब्रुवन् ॥१३॥

एवं ब्रुवति गोविन्दे नर्मणा आक्षिप्त चेतसः आकण्ठमग्नाः शीत उदे वेपमानाः तं अब्रुवन् ॥१३॥

गोविन्दे	गोविन्दके	**चेतसः**	चित्तवाली वे
एवं	इस प्रकार	**शीत उदे**	शीतल जलमें
ब्रुवति	कहनेपर	**आकण्ठमग्नाः**	गले तक डूबी हुईं
नर्मणा	(उनके) परिहाससे	**वेपमानाः**	कांपती हुईं
आक्षिप्त	अत्यन्त आकृष्ट	**तं अब्रुवन्**	उनसे बोलीं ॥१३॥

गोप्य ऊचुः*

मानयं भोः कृथास्त्वां तु नन्दगोपसुतं प्रियम् ।
जानीमोऽङ्ग व्रजश्लाघ्यं देहि वासांसि वेपिताः ॥१४॥

मा अनयं भोः कृथाः त्वां तु नन्दगोपसुतं प्रियं जानीमः अङ्ग व्रज श्लाघ्य देहि वासांसि वेपिताः ॥१४॥

भोः	हे	**व्रज श्लाघ्यं**	व्रजमें प्रशंसनीय
नन्दगोपसुतं	नन्दनन्दन !	**जानीमः**	जानती हैं,
प्रियं	प्रिय	**वेपिताः**	हम कांप रही हैं,
अनयं मा कृथाः	अन्याय मत करो	**वासांसि देहि**	वस्त्रोंको दे दो
अङ्ग त्वां तु	प्रिय, तुमको तो		॥१४॥

श्यामसुन्दर ते दास्यः करवाम तवोदितम् ।
देहि वासांसि धर्मज्ञ नो चेद् राज्ञे ब्रुवामहे ॥१५॥

श्यामसुन्दर ते दास्यः करवाम तव उदितं देहि वासांसि धर्मज्ञ नो चेत् राज्ञे ब्रुवामहे ॥१५॥

श्यामसुन्दर	श्यामसुन्दर !	**धर्मज्ञ**	(तुम) धर्म जानने-वाले हो,
ते दास्यः	(हम) तुम्हारी दासियां हैं,	**वासांसि देहि**	वस्त्रोंको दे दो,
तव उदितं	तुम्हारी आज्ञाकी	**चेत् नो**	यदि नहीं (दोगे)
करवाम	पालन करेंगी	**राज्ञे**	(हम) राजासे
		ब्रुवामहे	कह देंगी ॥१५॥

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

श्रीभगवानुवाच

भवत्यो यदि मे दास्यो मयोक्तं वा करिष्यथ ।
अत्रागत्य स्ववासांसि प्रतीच्छन्तु शुचिस्मिताः ॥१६॥

भवत्यः यदि मे दास्यः मया उक्तं वा करिष्यथ अत्र आगत्य स्व वासांसि प्रतीच्छन्तु शुचिस्मिताः ॥१६॥

शुचिस्मिताः	पवित्र मुसकान वालियो !	**करिष्यथ**	(सचमुच) करोगी तो
भवत्यः	तुम सब	**अत्र आगत्य**	यहां आकर
यदि मे	यदि मेरी	**स्व वासांसि**	अपने वस्त्रोंको
दास्यः	दासियां हो	**प्रतीच्छन्तु**	लेनेकी इच्छा करो ॥१६॥
वा मया उक्तं	अथवा मेरा कहना		

श्रीशुक उवाच*

ततो जलाशयात् सर्वा दारिकाः शीतवेपिताः ।
पाणिभ्यां योनिमाच्छाद्य प्रोत्तेरुः शीतकर्शिताः ॥१७॥

ततः जलाशयात् सर्वाः दारिकाः शीत वेपिताः पाणिभ्यां योनिं आच्छाद्य प्रोत्तेरुः शीतकर्शिताः ॥१७॥

ततः	तब	**योनिं आच्छाद्य**	गुप्तांग ढककर
शीत वेपिताः	ठंढसे कांपती हुई	**जलाशयात्**	जलाशयसे
सर्वाः दारिकाः	सब बालिकाएँ	**शीतकर्शिताः**	ठंढसे कष्ट पाती
पाणिभ्यां	हाथोंसे	**प्रोत्तेरुः**	निकल आयीं ॥१७॥

भगवानाहता वीक्ष्य शुद्धभावप्रसादितः ।
स्कन्धे निधाय वासांसि प्रीतः प्रोवाच सस्मितम् ॥१८॥

भगवान् आहता वीक्ष्य शुद्धभाव प्रसादितः स्कन्धे निधाय वासांसि प्रीतः प्रोवाच सस्मितम् ॥१८॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

भगवान्	भगवान्ने	वासांसि	(उनके) वस्त्रोंको
आहता	(उनको शीतसे) पीड़िता	स्कन्धे	(अपने) कन्धोंपर
		निधाय	रखकर
वीक्ष्य	देखकर	प्रीतः	प्रसन्न होकर
शुद्धभाव	(उनके) शुद्धभावसे	सस्मितं	मुस्कराते हुए
प्रसादितः	प्रसन्न किये जानेपर	प्रोवाच	बोले ॥१८॥

यूयं विवस्त्रा यदपो धृतव्रता
व्यगाहतैतत्तयु देवहेलनम् ।
बद्ध्वाञ्जलिं मूर्ध्न्यपनुत्तयेंऽहसः
कृत्वा नमोऽधो वसनं प्रगृह्यताम् ॥१९॥

यूयं विवस्त्रा यत् अपः धृतव्रता व्यगाहत एतत् तत् उ देवहेलनं बद्ध्वा अञ्जलिं मूर्ध्नि अपनुत्तये अंहसः कृत्वा नमः अधः वसनं प्रगृह्यताम् ॥१९॥

यूयं	तुम लोगोंने	तत् अंहसः	उस अपराधको
धृतव्रता	व्रत धारिणी होकर	अपनुत्तये	दूर करनेके लिए
यत्	जो	अञ्जलिं बद्ध्वा	हाथ जोड़कर
विवस्त्रा	वस्त्रहीना होकर	मूर्ध्नि अधः	सिर झुकाकर
अपः व्यगाहत	जलमें स्नान किया है	नमः कृत्वा	नमस्कार करके
उ एतत्	निश्चय यह काम	वसनं	वस्त्रोंको
देवहेलनं	देवताका तिरस्कार है	प्रगृह्यतां	ग्रहण करो ॥१९॥

इत्यच्युतेनाभिहितं व्रजाबला
मत्वा विवस्त्राप्लवनं व्रतच्युतिम् ।
तत्पूर्तिकामास्तदशेषकर्मणां
साक्षात्कृतं नेमुरवद्यमृग् यतः ॥२०॥

इति अच्युतेन अभिहितं व्रज अबला मत्वा विवस्त्राप्लवनं व्रत च्युतिं तत् पूर्तिकामाः तत् अशेष कर्मणां साक्षात् कृतं नेमुः अवद्यमृक् यतः ॥२०॥

इति	इस प्रकार
अच्युतेन	श्रीकृष्णके
अभिहितं	कहनेपर
व्रज अबला	व्रजकी कुमारियोंने
विवस्त्राप्लवनं	निर्वसन-स्नानको
व्रत च्युति	व्रतमें त्रुटि
मत्वा	मानकर
तत्	उस (त्रुटि) को
पूतिकामाः	पूरा (दूर) करनेकी इच्छासे
तत् अशेष	उन समस्त
कर्मणां	कर्मोंके
साक्षात् कृतं	साक्षीको
नेमुः	नमस्कार किया
यतः	क्योंकि वह
अवद्यमृक्	(उनको नमस्कार सब) दोषोंका मार्जन करनेवाला है ॥२०॥

तास्तथावनता दृष्ट्वा भगवान् देवकीसुतः ।
वासांसि ताभ्यः प्रायच्छत् करुणस्तेन तोषितः ॥२१॥

ताः तथा अवनता दृष्ट्वा भगवान् देवकीसुतः वासांसि ताभ्यः प्रायच्छत् करुणः तेन तोषितः ॥२१॥

ताः तथा	उनको इस प्रकार
अवनता	झुकी हुई
दृष्ट्वा करुणः	देखकर दयामय
देवकीसुतः	देवकी-नन्दन
भगवान्	भगवान
तेन तोषितः	उस (नमस्कार) से सन्तुष्ट हो गये
ताभ्यः वासांसि	उनको वस्त्र
प्रायच्छत्	प्रदान कर दिया ॥२१॥

दृढं प्रलब्धास्त्रपया च हापिताः
प्रस्तोभिताः क्रीडनवच्च कारिताः ।
वस्त्राणि चैवापहृतान्यथाप्यमुं
ता नाभ्यसूयन् प्रियसङ्गनिर्वृताः ॥२२॥

दृढं प्रलब्धाः त्रपया च हापिताः प्रस्तोभिताः क्रीडनवत् च कारिताः वस्त्राणि च एव अपहृतानि अथ अपि अमुं ता न अभ्यसूयन् प्रियसंग निर्वृताः ॥२२॥

दृढं प्रलब्धाः	भली प्रकार छली गयीं	च वस्त्राणि एव एवं वस्त्र भी	
		अपहृतानि	चुरा लिये थे
च त्रपया	तथा लज्जा	अथ अपि ता	फिर भी उन्होंने
हापिताः	छुड़ायी गयी,	अभ्यसूयन्	(श्रीकृष्णमें) दोष
प्रस्तोभिताः	हंसी उड़ायी गयी	न	नहीं देखा,
च क्रीडनवत्	और खिलौनोंके समान	प्रियसङ्ग	(वे तो) प्रियतमके सामीप्यसे
कारिताः	बनायी गयीं	निर्वृताः	आनन्दित हुईं ॥२२॥

परिधाय स्ववासांसि प्रेष्ठसंगमसज्जिताः ।
गृहीतचित्ता नो चेलुस्तस्मिँल्लज्जायितेक्षणाः ॥२३॥

परिधाय स्ववासांसि प्रेष्ठसङ्गम् असज्जिताः गृहीत चित्ता नो चेलुः तस्मिन् लज्जायित ईक्षणाः ॥२३॥

स्ववासांसि	अपने वस्त्र	ईक्षणाः	नेत्रोंसे देखती हुई
परिधाय	पहिनकर	गृहीत	(श्रीकृष्ण द्वारा) आकृष्ट
प्रेष्ठसङ्गं	प्रियतमके संगके लिए	चित्ता	चित्ता (वे वहांसे)
असज्जिताः	सज्जित होकर	नो चेलुः	नहीं चल सकीं ॥२३॥
तस्मिन्	उनकी ओर		
लज्जायित	लज्जापूर्ण		

तासां विज्ञाय भगवान् स्वपादस्पर्शकाम्यया ।
धृतव्रतानां संकल्पमाह दामोदरोऽबलाः ॥२४॥

तासां विज्ञाय भगवान् स्वपाद स्पर्श काम्यया धृत व्रतानां संकल्पं आह दामोदरः अबलाः ॥२४॥

भगवान्	भगवान्	सङ्कल्पं	संकल्प
स्वपाद	अपने चरण	विज्ञाय	जानकर
स्पर्श	स्पर्शकी	अबलाः	उन स्त्रियोंसे
तासां काम्यया	उनकी कामना तथा	दामोदरः	वे दामोदर
धृत-	उन	आह	बोले ॥२४॥
व्रतानां	व्रत धारिणियोंका		

श्रीभगवानुवाच*

संकल्पो विदितः साध्व्यो भवतीनां मदर्चनम् ।
मयानुमोदितः सोऽसौ सत्यो भवितुमर्हति ॥२५॥

संकल्पः विदितः साध्व्यः भवतीनां मत् अर्चनं मया अनुमोदितः सः असौ सत्यः भवितुं अर्हति ॥२५॥

साध्व्यः	सतियो !	**अनुमोदितः**	अनुमोदन कर दिया गया
भवतीनां	तुम लोगोंका		
मत् अर्चनं	मेरी सेवा करनेका	**सत्यः भवितुं**	(अतः उसे) सत्य होना
संकल्पः	संकल्प		
विदितः	ज्ञात हो गया है,	**अर्हति**	चाहिए ॥२५॥
सः असौ मया	वह यह मेरे द्वारा		

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते ।
भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते ॥२६॥

न मयि आवेशित धियां कामः कामाय कल्पते भर्जिता क्वथिता धाना प्रायः बीजाय न इष्यते ॥२६॥

मयि आवेशित	मुझमें लगाये	**क्वथिता**	उबाले
धियां	चित्तवालोंकी	**धाना प्रायः**	अन्न प्रायः*
कामः	कामनाएँ	**बीजाय**	बीज देनेमें
कामाय	(सांसारिक) भोगोंमें	**न इष्यते**	समर्थ नहीं होते ॥२६॥
न कल्पते	नहीं ले जातीं		
भर्जिता	भूने या		

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

* यहां 'प्रायः' शब्द बहुत सार्थक है; क्योंकि बट, पीपल, बबूल आदिके कई बीज बिना उबाले नहीं उगते । पक्षियों या पशुओंके पेटसे निकल कर या हल्के उबालनेपर उगते हैं ।

यातबला व्रजं सिद्धा मयेमा रंस्यथ क्षपाः ।
यदुद्दिश्य व्रतमिदं चेरुरार्यार्चनं सतीः ॥२७॥

यात अबला व्रजं सिद्धा मयि इमा रंस्यथ क्षपाः यत् उद्दिश्य व्रतं इदं चेरुः आर्या अर्चनं सतीः ॥२७॥

अबला	कुमारियो !	**चेरुः**	(तुम लोगोंने) किया
व्रजं यात	व्रजमें जाओ,		था
यत्	जिसको	**सिद्धा**	(वह) सिद्ध हो गया
उद्दिश्य	उद्देश बनाकर	**मयि इमा**	मेरे साथ इन
सतीः आर्या	देवी भगवतीका		(शरदकी)
अर्चनं	पूजन और	**क्षपाः रंस्यथ**	रात्रियोंमें विहार
इदं व्रतं	यह व्रत		करोगी ॥२७॥

श्रीशुक उवाच

इत्यादिष्टा भगवता लब्धकामाः कुमारिकाः ।
ध्यायन्त्यस्तत्पदाम्भोजं कृच्छ्रान्निर्विविशुर्व्रजम् ॥२८॥

इति आदिष्टा भगवता लब्धकामाः कुमारिकाः ध्यायन्त्यः तत् पदाम्भोजं कृच्छ्रात् निर्विविशुः व्रजम् ॥२८॥

इति	इस प्रकार	**पदाम्भोजं**	चरण-कमलोंका
भगवता	भगवान द्वारा	**ध्यायन्त्यः**	ध्यान करती हुई
आदिष्टा	आदेश मिलनेपर	**कृच्छ्रात्**	बड़े कष्टसे
लब्धकामाः	मनोरथ पाकर	**व्रजं**	व्रजमें
कुमारिकाः	कुमारियां	**निर्विविशुः**	लौटकर गयीं ॥२८॥
तत्	उनके		

अथ गोपैः परिवृतो भगवान् देवकीसुतः ।
वृन्दावनाद् गतो दूरं चारयन् गाः सहाग्रजः ॥२९॥

अथ गोपैः परिवृतः भगवान् देवकीसुतः वृन्दावनात् गतः दूरं चारयन् गाः सह अग्रजः ॥२९॥

अथ गोपैः	फिर गोपोंसे	देवकीसुतः	देवकीनन्दन
परिवृतः	चारों ओरसे घिरे	गाः चारयन्	गायें चराते हुए
सह अग्रजः	बड़े भाईके साथ*	वृन्दावनात्	वृन्दावनसे
भगवान्	भगवान्	दूरं गतः	दूर चले गये ॥२९॥

निदाघार्कातपे तिग्मे छायाभिः स्वाभिरात्मनः ।
आतपत्रायितान् वीक्ष्य द्रुमानाह व्रजौकसः ॥३०॥

निदाघ अर्क आतपे तिग्मे छायाभिः स्वाभिः आत्मनः आतपत्रायितान् वीक्ष्य द्रुमान् आह व्रजौकसः ॥३०॥

निदाघ	ग्रीष्म ऋतुकी	आतपत्रायितान्	छाता बने
तिग्मे अर्क	तीक्ष्ण सूर्यकी	व्रजौकसः	व्रजके निवासी
आतपे	धूपमें	द्रुमान् वीक्ष्य	वृक्षोंको देखकर
स्वाभिः	अपनी	आह	(भगवान) बोले
छायाभिः	छायासे		॥३०॥
आत्मनः	अपने लिए		

हे स्तोककृष्ण हे अंशो श्रीदामन् सुबलार्जुन ।
विशालर्षभ तेजस्विन् देवप्रस्थ वरूथप ॥३१॥

हे स्तोककृष्ण हे अंशुः श्रीदामन् सुबल अर्जुन विशाल ऋषभ तेजस्विन् देवप्रस्थ वरूथप ॥३१॥

हे स्तोककृष्ण	हे तोककृष्ण	विशाल	विशाल
हे अंशुः	हे अंशु	ऋषभ	ऋषभ
श्रीदामन्	श्रीदामा	तेजस्विन्	तेजस्वी
सुबल अर्जुन	सुबल, अर्जुन	देवप्रस्थ	देवप्रस्थ
		वरूथप	और वरूथप ॥३१॥

---

* स्पष्ट है कि यह 'चीरहरण' के दिनकी लीला नहीं है। उस दिन बलरामजी साथ नहीं थे और वह लीला हेमन्तमें हुई थी। यह निदाघ (ग्रीष्म) की लीला है। यहाँसे अध्यायका प्रारम्भ होना चाहिए।

पश्यतैतान् महाभागान् परार्थैकान्तजीवितान् ।
वातवर्षातपहिमान् सहन्तो वारयन्ति नः ॥३२॥

पश्यत् एतान् महाभागान् पर अर्थ एकान्त जीवितान् वात वर्ष आतप हिमान् सहन्तः वारयन्ति नः ॥३२॥

एतान्	इन	**पश्यत्**	देखो
एकान्त	एकमात्र	**वात वर्ष**	आंधी-वर्षा
पर अर्थ	दूसरोंके लिए ही	**आतप हिमान्**	धूप, सर्दी
जीवितान्	जीवन धारण करने वाले	**सहन्तः**	(स्वयं) सहते हुए
महाभागान्	परम भाग्यशलियों (वृक्षों) को	**नः**	हमें (उनसे)
		वारयन्ति	बचाते हैं ॥३२॥

अहो एषां वरं जन्म सर्वप्राण्युपजीवनम् ।
सुजनस्येव येषां वै विमुखा यान्ति नार्थिनः ॥३३॥

अहो एषां वरं जन्म सर्वप्राणि उपजीवनं सुजनस्य इव येषां वै विमुखा यान्ति न अर्थिनः ॥३३॥

सर्वप्राणि	सभी प्राणियोंको	**सुजनस्य इव**	सज्जनोंकी भांति
उपजीवनं	जीवनका सहारा देनेवाला	**येषां अर्थिनः**	जिनसे कुछ चाहने वाले
अहो एषां जन्म	अहो, इनका जन्म	**विमुखा**	खाली हाथ
वरं	श्रेष्ठ है	**न यान्ति**	नहीं जाते ॥३३॥
वै	निश्चय		

पत्र पुष्पफलच्छायामूलवल्कलदारुभिः ।
गन्धनिर्यासभस्मास्थितोकैमः कामान् वितन्वते ॥३४॥

पत्र पुष्प फलः छाया मूल वल्कल दारुभिः गन्ध निर्यास भस्म अस्थि तोकैमः कामान् वितन्वते ॥३४॥

पत्र पुष्प	पत्ते, फूल,	**मूल वल्कल**	जड़, छाल,
फलः छाया	फल, छाया	**दारुभिः**	लकड़ी,

गन्ध निर्यास	सुगन्धि, गोंद,	**कामान्**	(लोगोंको उनका)
भस्म अस्थि	भस्म, हड्डी		अभिलषित
	(कोयला)	**वितन्वते**	बांटते रहनेवाले हैं
तोक्मैः	अंकुरोंसे भी		॥३४॥

एतावज्जन्मसाफल्यं देहिनामिह देहिषु ।
प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय एवाचरेत् सदा ॥३५॥

एतावत् जन्म साफल्यं देहिनां इह देहिषु प्राणैः अर्थैः धिया वाचा श्रेय एव आचरेत् सदा ॥३५॥

देहिनां	शरीर धारियोंका	**प्राणैः अर्थैः**	प्राणोंसे, धनसे,
इह	इस संसारमें	**धिया वाचा**	बुद्धिसे, वाणीसे
देहिषु	शरीरकी	**सदा**	सदा
एतावत्	इतनी ही	**श्रेय एव**	कल्याणकारी ही
जन्म	जन्म लेनेकी	**आचरेत्**	आचरण करे ॥३५॥
साफल्यं	सफलता है कि		

इति प्रवालस्तबकफलपुष्पदलोत्करैः ।
तरूणां नम्रशाखानां मध्येन यमुनां गतः ॥३६॥

इति प्रवाल स्तबक फल पुष्प दल उत्करैः तरूणां नम्र शाखानां मध्येन यमुनां गतः ॥३६॥

इति	इस प्रकार	**नम्र शाखानां**	ऐसे झुकी डालियों
प्रवाल	किसलय,		वाले
स्तबक	पुष्प-गुच्छ,	**तरूणां**	वृक्षोंके
फल पुष्प	फल, पुष्प	**मध्येन**	बीचसे होते
दल उत्	पत्तोंसे मानों	**यमुनां**	यमुना-किनारे
करैः	हाथ उठाये (बुलाते) हों	**गतः**	गये ॥३६॥

तत्र गाः पाययित्वापः सुमृष्टाः शीतलाः शिवाः ।
ततो नृप स्वयं गोपाः कामं स्वादु पपुर्जलम् ॥३७॥

तत्र गाः पाययित्वा अपः सुमृष्टाः शीतलाः शिवाः ततः नृप स्वयं गोपाः कामं स्वादु पपुः जलम् ॥३७॥

नृप	राजन् !	ततः स्वयं	तब स्वयं
तत्र सुमृष्टाः	वहां खूब स्वच्छ	गोपाः	गोपोंने
शीतलाः	शीतल	स्वादु जलं	वह स्वादिष्ट जल
शिवाः	कल्याणकारी	कामं पपुः	इच्छानुसार पिया
अपः गाः	पानी गायोंको		॥३७॥
पाययित्वा	पिलाकर		

तस्या उपवने कामं चारयन्तः पशून् नृप ।
कृष्णरामावुपागम्य क्षुधार्ता इदमब्रुवन् ॥३८॥

तस्या उपवने कामं चारयन्तः पशून् नृप कृष्ण रामाः उप आगम्य क्षुधार्ता इदं अब्रुवन् ॥३८॥*

नृप	राजन् !	कृष्ण	श्रीकृष्ण और
तस्या	उस (यमुना) के	रामाः	बलरामके
उपवने	समीपके वनमें	उप आगम्य	समीप आकर
पशून्	पशुओंको	इदं अब्रुवन्	(गोप) यह कहने
कामं	इच्छानुसार		लगे ॥३८॥
चारयन्तः	चराते हुए		
क्षुधार्ता	भूखसे व्याकुल होनेपर		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे गोपीवस्त्रापहारो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

---

* यहां अध्याय अधूरेमें छूटता लगता है । यदि श्लोक २८ पर जहां 'चीर-हरण' प्रसंग पूरा हुआ, यह अध्याय समाप्त हो जाता और शेष आगे के ये १० श्लोक अगले अध्यायमें दिये जाते तो दोनों अध्यायोंमें पूरे-पूरे प्रसंग रहते ।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

गोपा ऊचुः

राम राम महावीर्य कृष्ण दुष्टनिबर्हण ।
एषा वै बाधते क्षुन्नस्तच्छान्तिं कर्तुमर्हथः ॥१॥

राम राम महावीर्य कृष्ण दुष्ट निबर्हण एषा वै बाधते क्षुत् नः तत् शान्तिं कर्तुं अर्हथः ॥१॥

राम	बलरामजी !	**नः**	हमको
महावीर्य	महापराक्रमी	**बाधते**	पीड़ा दे रही है
राम	बलरामजी ! और	**वै तत्**	निश्चित ही उसकी
दुष्ट निबर्हण	दुष्ट-दलन	**शान्तिं कर्तुं**	(तुम्हें) शान्ति कर
कृष्ण	श्रीकृष्ण !		देना
एषा क्षुत्	यह भूख	**अर्हथः**	चाहिए ॥१॥

श्रीशुक उवाच

इति विज्ञापितो गोपैर्भगवान् देवकीसुतः ।
भक्तायां विप्रभार्यायाः प्रसीदन्निदमब्रवीत् ॥२॥

इति विज्ञापितः गोपैः भगवान् देवकीसुतः भक्तायां विप्रभार्यायाः प्रसीदन् इदं अब्रवीत् ॥२॥

इति गोपैः	इस प्रकार गोपोंके	**भक्तायां**	अपनी भक्त
विज्ञापितः	सूचना देनेपर	**विप्रभार्यायाः**	ब्राह्मण-पत्नियोंपर
भगवान्	भगवान्	**प्रसीदन्**	कृपा करनेके लिए
देवकीसुतः	देवकी-नन्दन	**इदं अब्रवीत्**	यह बोले ॥२॥

प्रयात देवयजनं ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ।
सत्रमाङ्गिरसं नाम ह्यासते स्वर्गकाम्यया ॥३॥

प्रयात देवयजनं ब्राह्मणा ब्रह्म वादिनः सत्रं आङ्गिरसं नाम हि आसते स्वर्ग काम्यया ॥३॥

देवयजनं	देवयज्ञ स्थानमें	काम्यया	इच्छासे
प्रयात	चले जाओ	आङ्गिरसं	आंगिरस
हि	क्योंकि (वहां)	नाम	नामक
ब्रह्म वादिनः	वेदवादी	सत्रं आसते	यज्ञ कर रहे हैं
ब्राह्मणा	ब्राह्मण		॥३॥
स्वर्ग	स्वर्ग पानेकी		

तत्र गत्वौदनं गोपा याचतास्मद्विसर्जिताः ।
कीर्तयन्तो भगवत आर्यस्य मम चाभिधाम् ॥४॥

तत्र गत्वा ओदनं गोपा याचत अस्मत् विसर्जिताः कीर्तयन्तः भगवतः आर्यस्य मम च अभिधाम् ॥४॥

अस्मत्	हमारे	आर्यस्य	बड़े भाईका
विसर्जिताः	भेजनेसे	च मम अभिधां	तथा मेरा भी नाम
गोपा	गोपो,	कीर्तयन्तः	बतलाते हुए
तत्र गत्वा	वहां जाकर	ओदनं	भात
भगवतः	समर्थ	याचत	मांग लाओ ॥४॥

इत्यादिष्टा भगवता गत्वायाचन्त ते तथा ।
कृताञ्जलिपुटा विप्रान् दण्डवत् पतिता भुवि ॥५॥

इति आदिष्टा भगवता गत्वा याचन्त ते तथा कृत अञ्जलि पुटा विप्रान् दण्डवत् पतिता भुवि ॥५॥

भगवता	भगवान्के द्वारा	पतिता	गिरकर (प्रणाम)
इति	इस प्रकार		करके
आदिष्टा	आदेश देनेपर	कृत	हाथ
ते तत्र	उन्होंने वहाँ	अञ्जलि पुटा	हाथ जोड़कर
गत्वा	जाकर	विप्रान्	ब्राह्मणोंसे
दण्डवत्	दण्डके समान	तथा	उसी प्रकार
भुवि	पृथ्वीपर	याचन्त	याचना की ॥५॥

हे भूमिदेवाः शृणुत कृष्णस्यादेशकारिणः ।
प्राप्तान्जानीत भद्रं वो गोपान् नो रामचोदितान् ॥६॥

हे भूमिदेवाः शृणुत कृष्णस्य आदेश कारिणः प्राप्तान् जानीत भद्रं वः गोपान् नः राम चोदितान् ॥६॥

हे भूमिदेवाः	हे भूदेवो !	**आदेश कारिणः**	आज्ञापालक
वः	आप सबका	**नः गोपान्**	हम गोपोंको
भद्रं	कल्याण हो,	**राम**	बलरामजी द्वारा
शृणुत	(हमारी प्रार्थना) सुनिये !	**चोदितान्**	प्रेरित
		जानीत	समझें ॥६॥
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके		

गाश्चारयन्तावविदूर ओदनं
रामाच्युतौ वो लषतो बुभुक्षितौ ।
तयोर्द्विजा ओदनमर्थिनोर्यदि
श्रद्धा च वो यच्छत धर्मवित्तमाः ॥७॥

गाः चारयन्ताः अविदूर ओदनं राम अच्युतौ वः लषतः बुभुक्षितौ तयोः द्विजा ओदनं अर्थिनः यदि श्रद्धा च वः यच्छत धर्मवित् तमाः ॥७॥

अविदूर	समीप ही	**द्विजा**	ब्राह्मणो
गाः चारयन्ताः	गाय चराते हुए	**यदि वः**	यदि आप लोगोंमें
बुभुक्षितौ	भूखे	**श्रद्धा**	श्रद्धा हो तो
राम	बलराम और	**अर्थिनः**	मांगनेवाले (हम लोगोंको)
अच्युतौ	श्रीकृष्ण		
वः ओदनं	आपका भात	**तयोः च**	और उनको भी
लषतः	चाहते हैं	**ओदनं यच्छत**	भात दीजिए ॥७॥
धर्मवित् तमाः	धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ		

दीक्षायाः पशुसंस्थायाः सौत्रामण्याश्च सत्तमाः ।
अन्यत्र दीक्षितस्यापि नान्नमश्नन् हि दुष्यति ॥८॥

दीक्षायाः पशुसंस्थायाः सौत्रामण्याः च सत्तमाः अन्यत्र दीक्षितस्य अपि न अन्नं अश्नन् हि दुष्यति ॥८॥

सत्तमाः हि	सज्जनो ! क्योंकि	**अन्यत्र**	छोड़कर दूसरे किसी
पशुसंस्थायाः	पशु बलि होनेवाले यज्ञोंको		(यज्ञ) के
		दीक्षितस्य	दीक्षितका
दीक्षायाः	दीक्षाको	**अपि**	भी
च	तथा	**अन्नं अश्नन्**	अन्न खानेमें
सौत्रामण्याः	सौत्रमणि नामक यज्ञको	**दुष्यति न**	दोष नहीं है ॥८॥

इति ते भगवद्याच्ञां शृण्वन्तोऽपि न शुश्रुवुः ।
क्षुद्राशा भूरिकर्माणो बालिशा वृद्धमानिनः ॥९॥

इति ते भगवत् याञ्चां शृण्वन्तः अपि न शुश्रुवुः क्षुद्र आशा भूरि कर्माणः बालिशा वृद्ध मानिनः ॥९॥

क्षुद्र आशा	तुच्छ आशासे	**इति**	इस प्रकारकी
भूरि	बहुत	**भगवत्**	भगवानकी
कर्माणः	कर्म करनेवाले	**याञ्चां**	याचनाको
वृद्ध	अपनेको बड़ा	**शृण्वन्तः**	सुनते हुए भी
मानिनः	माननेवाले	**न शुश्रुवुः**	नहीं सुना ॥९॥
ते बालिशा	उन मूर्खोंने		

देशः कालः पृथग् द्रव्यं मन्त्रतन्त्रर्त्विजोऽग्नयः ।
देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ॥१०॥

देशः कालः पृथक् द्रव्यं मन्त्र तन्त्र ऋत्विजः अग्नयः देवता यजमानः च क्रतुः धर्मः च यत् मयः ॥१०॥

देशः कालः	स्थान, समय	**ऋत्विजः**	(यज्ञ करानेवाले)
पृथक् द्रव्यं	अलग-अलग सामग्री		ऋत्विक्
मन्त्र तन्त्र	मन्त्र विधि-विधान	**अग्नयः**	अग्नियां

देवता च	देवता तथा	**धर्मः च**	धर्म भी
यजमानः	यज्ञकर्ता यजमान	**यत् मयः**	जिनका स्वरूप हैं
क्रतुः च	यज्ञ और		॥१०॥

तं ब्रह्म परमं साक्षाद् भगवन्तमधोक्षजम् ।
मनुष्यदृष्ट्या दुष्प्रज्ञा मार्यात्मानो न मेनिरे ॥११॥

तं ब्रह्म परमं साक्षात् भगवन्तं अधोक्षजं मनुष्य दृष्ट्या दुष्प्रज्ञा मर्त्य आत्मानः न मेनिरे ॥११॥

तं साक्षात्	उन साक्षात्	**दुष्प्रज्ञा**	दुष्ट बुद्धि लोगोंने
परमं ब्रह्म	परम ब्रह्म		जो
भगवन्तं	भगवान	**मर्त्य**	मरणधर्मा देहको
अधोक्षजं	इन्द्रियोंके पीछे रहने		ही
	वाले हृषीकेशको।	**आत्मानः**	आत्मा मान रखा है
मनुष्य दृष्ट्या	मनुष्य समझकर	**मेनिरे न**	सम्मानित नहीं
			किया ॥११॥

न ते यदोमिति प्रोचुर्न नेति च परंतप ।
गोपा निराशाः प्रत्येत्य तथोचुः कृष्णरामयोः ॥१२॥

न ते यत् ओम् इति प्रोचुः न न इति च परंतप गोपा निराशाः प्रति एत्य तथा ऊचुः कृष्णरामयोः ॥१२॥

परंतप	शत्रुतापन परीक्षित !	**निराशाः**	निराश
यदा ते	जब उन्होंने	**गोपा**	गोपोंने
ओम् इति	'हां' इस प्रकार	**प्रति एत्य**	लौटकर
न	नहीं और	**कृष्ण-**	श्रीकृष्ण और
न	'नहीं'	**रामयोः**	बलरामसे
इति न	इस प्रकार भी नहीं	**तथा ऊचुः**	वैसा बतला दिया
प्रोचुः	कहा तो		॥१२॥

तदुपाकर्ण्य भगवान् प्रहस्य जगदीश्वरः ।
व्याजहार पुनर्गोपान् दर्शयँल्लौकिकीं गतिम् ॥१३॥

तत् उपाकर्ण्य भगवान् प्रहस्य जगदीश्वरः व्याजहार पुनः गोपान् दर्शयन् लौकिकीं गतिम् ॥१३॥

जगदीश्वरः	संम्पूर्ण संसारके स्वामी	लौकिकीं	सांसारिक
		गतिं	दशा
भगवान्	भगवान्ने	दर्शयन्	दिखलाते हुए
तत् उपाकर्ण्य	उसको सुनकर	व्याजहार	बोले ॥१३॥
प्रहस्य	खुलकर हँसकर		

मां ज्ञापयत पत्नीभ्यः ससंकर्षणमागतम् ।
दास्यन्ति काममन्नं वः स्निग्धा मय्युषिता धिया ॥१४॥

मां ज्ञापयत पत्नीभ्यः ससंकर्षणं आगतं दास्यन्ति कामं अन्नं वः स्निग्धा मयि उषिता धियः ॥१४॥

पत्नीभ्यः	उन (ब्राह्मणों) की पत्नियोंको	धियः	चित्त वाली (वे)
		स्निग्धा	स्नेहमयी
ससङ्कर्षणं	श्रीबलरामजीके साथ	वः कामं	तुम लोगोंको पर्याप्त
मां आगतं	मेरे आनेकी	अन्नं	भोजन
ज्ञापयत	सूचना दो	दास्यन्ति	देंगी ॥१४॥
मयि उषिता	मुझमें लगे		

गत्वाथ पत्नीशालायां दृष्ट्वाऽऽसीनाः स्वलङ्कृताः ।
नत्वा द्विजसतीर्गोपाः प्रश्रिता इदमब्रुवन् ॥१५॥

गत्वा अथ पत्नीशालायां दृष्ट्वा आसीनाः स्वलंकृताः नत्वा द्विजसतीः गोपाः प्रश्रिता इदं अब्रुवन् ॥१५॥

अथ	फिर	आसीनाः	बैठी
पत्नीशालायां	पत्नीशालामें	दृष्ट्वा	देखकर
गत्वा	जाकर	प्रश्रिता	नम्रतापूर्वक
द्विज-	ब्राह्मणोंकी	नत्वा	प्रणाम करके
सतीः	साध्वियोंको	इदं अब्रुवन्	यह बोले ॥१५॥
स्वलंकृताः	अपने आभूषण पहिने		

नमो वो विप्रपत्नीभ्यो निबोधत वचांसि नः ।
इतोऽविदूरे चरता कृष्णेनेहेषिता वयम् ॥१६॥

नमः वः विप्रपत्नीभ्यः निबोधत वचांसि नः इतः अविदूरे चरता कृष्णेन इह ईषिता वयम् ॥१६॥

वः	आप	इतः अविदूरे	यहां से पास ही
विप्रपत्नीभ्यः	ब्राह्मण-पत्नियोंको	चरता	विचरण करते
नमः	नमस्कार	कृष्णेन	श्रीकृष्ण द्वारा
नः वचांसि	हमारी बातें	इह वयं	यहां हम
निबोधत	सुनें	ईषिता	भेजे गये हैं ॥१६॥

गाश्चारयन् स गोपालैः सरामो दूरमागतः ।
बुभुक्षितस्य तस्यान्नं सानुगस्य प्रदीयताम् ॥१७॥

गाः चारयन् स गोपालैः सरामः दूरं आगतः बुभुक्षितस्य तस्य अन्नं स अनुगस्य प्रदीयताम् ॥१७॥

स गोपालैः	गोपालकोंके साथ	स अनुगस्य	अनुचरोंके साथ
गाः चारयन्	गायें चराते हुए	बुभुक्षितस्य	भूखे
सरामः	बलरामजीके संग	तस्य अन्नं	उनको भोजन
दूरं आगतः	दूर चले आये	प्रदीयतां	दीजिए ॥१७॥

श्रुत्वाच्युतमुपायातं नित्यं तद्दर्शनोत्सुकाः ।
तत्कथाक्षिप्तमनसो बभूवुर्जातसम्भ्रमाः ॥१८॥

श्रुत्वा अच्युतं उप आयातं नित्यं तत् दर्शन उत्सुकाः तत् कथा क्षिप्त मनसः बभूवुः जात सम्भ्रमाः ॥१८॥

तत्	उन (श्रीकृष्ण) की	अच्युतं	श्रीकृष्णको
कथा	कथासे	उप आयातं	समीप आया
क्षिप्त मनसः	आकृष्ट चित्ता	श्रुत्वा	सुनकर (उनमें)
नित्यं तत्	सदा उनके	जात सम्भ्रमाः	उतावली उत्पन्न
दर्शन उत्सुकाः	दर्शनको उत्सुका	बभूवुः	हो गयी ॥१८॥

चतुर्विधं बहुगुणमन्नमादाय भाजनैः ।
अभिसस्रुः प्रियं सर्वाः समुद्रमिव निम्नगाः ॥१९॥

चतुर्विधं बहुगुणं अन्नं आदाय भाजनैः अभिसस्रुः प्रियं सर्वाः समुद्रं इव निम्नगाः ॥१९॥

चतुर्विधं	चारों प्रकार का (चर्व, चोष्य, लेह्य, पेय)		बहनेवाली नदियोंके
		इव	समान
		सर्वाः	वे सब
बहुगुणं	बहुत गुणवान	प्रियं	प्रिय (श्रीकृष्ण) की
अन्नं	भोजन		ओर
भाजनैः आदाय	बर्तनोंमें लेकर	अभिसस्रुः	वेगसे चल पड़ीं
समुद्रं	समुद्रकी ओर		॥१९॥
निम्नगाः	नीचेकी ओर		

निषिध्यमानाः पतिभिर्भ्रातृभिर्बन्धुभिः सुतैः ।
भगवत्युत्तमश्लोके दीर्घश्रुतधृताशयाः ॥२०॥

निषिध्यमानाः पतिभिः भ्रातृभिः बन्धुभिः सुतैः भगवति उत्तम श्लोके दीर्घश्रुत धृत आशयाः ॥२०॥

दीर्घ	बहुत समयसे	भ्रातृभिः	भाइयों द्वारा
श्रुत	सुन-सुनकर	बन्धुभिः	सम्बन्धियों द्वारा
उत्तम श्लोके	पवित्र कीर्ति		तथा
भगवति	भगवानमें	सुतैः	पुत्रों द्वारा भी
धृत आशयाः	चित्त लगाये थीं, अतः	निषिध्यमानाः	रोकी जाती भी ॥२०॥
पतिभिः	पति द्वारा		

यमुनोपवनेऽशोकनवपल्लवमण्डिते ।
विचरन्तं वृतं गोपैः साग्रजं ददृशुः स्त्रियः ॥२१॥

यमुना उपवने अशोक नवपल्लव मण्डिते विचरन्तं वृतं गोपैः साग्रजं ददृशुः स्त्रियः ॥२१॥

स्त्रियः	(उन) स्त्रियोंने	गोपैः वृतं	गोपोंसे घिरे
अशोक	अशोकके	साग्रजं	बड़े भाईके साथ
नवपल्लव	नवीन पत्तोंसे	विचरन्तं	विचरण करते
मण्डिते	सुशोभित	ददृशुः	(श्रीकृष्णको) देखा
यमुना	यमुनाके		॥२१॥
उपवने	समीपके वनमें		

श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्ह-
धातुप्रवालनटवेषमनुव्रतांसे ।
विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जं
कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम् ॥ २॥

श्यामं हिरण्य परिधिं वनमाल्य बर्ह धातु प्रवाल नटवेषं अनुव्रत अंसे विन्यस्त हस्तं इतरेण धुनानं अब्जं कर्ण उत्पल अलक कपोल मुखाब्ज हासम् ॥२२॥

श्यामं	श्याम वर्ण	विन्यस्त	रखे हुए
हिरण्य	सुनहले	इतरेण	दूसरे (हाथ) से
परिधि	पीताम्बरसे घिरे,	अब्जं धुनानं	कमल घुमाते हुए
वनमाल्य	वनमालाधारी	कर्ण	कानोंपर
बर्ह धातु	मयूर पिच्छ, वनकी	उत्पल	श्वेत कमल रखे
	धातुओं तथा	कपोल	कपोलोंपर
प्रवाल	नयी कोंपलोंसे	अलक	अलकें आयी हैं
नटवेषं	नट जैसा वेश बनाये	मुखाब्ज	कमल-मुख
अनुव्रत	सखाके	हासम्	हास्य (शोभित) है
अंसे हस्तं	कन्धेपर हाथ		॥२२॥

प्रायः श्रुतप्रियतमोदयकर्णपूरै-
र्यस्मिन् निमग्नमनसस्तमथाक्षिरन्ध्रैः ।
अन्तः प्रवेश्य सुचिरं परिरभ्य तापं
प्राज्ञं यथाभिमतयो विजहुर्नरेन्द्र ॥२३॥

प्रायः श्रुत प्रियतम उदय कर्णपूरैः यस्मिन् निमग्न मनसः तं अथ अक्षिरन्ध्रैः अन्तः प्रवेश्य सुचिरं परिरभ्य तापं प्राज्ञं यथा अभिमतयः विजहुः नरेन्द्र ॥२३॥

नरेन्द्र	महाराज !	सुचिरं	बहुत देर तक
प्रायः	प्रायः (उन)	परिरभ्य	आलिंगन करके
प्रियतम	प्रियतमके	यथा	जैसे
उदय	उत्कर्षको	अभिमतयः	वृत्तियां (जाग्रत स्वप्नमें) अहंता-ममतासे संतप्त सुषुप्तिमें
कर्णपूरैः	कानोंमें भरकर (सुनकर)	प्राज्ञं	प्राज्ञ पुरुषके (पाकर नाम मुक्त हो जाती हैं वैसे ही)
यस्मिन्	जिनमें	तापं	सतापको
मनसः निमग्न	चित्त डूब गया था	विजहुः	सर्वथा त्याग दिया ॥२३॥
अथ तं	अब उनको		
अक्षिरन्ध्रैः	नेत्रोंके छिद्रोंसे		
अन्तः	अन्तःकरणमें		
प्रवेश्य	ले जाकर		

तास्तथा त्यक्तसर्वाशाः प्राप्ता आत्मदिदृक्षया ।
विज्ञायाखिलदृग्द्रष्टा प्राह प्रहसिताननः ॥२४॥

ताः तथा त्यक्त सर्व आशाः प्राप्ता आत्म दिदृक्षया विज्ञाय अखिल दृक् द्रष्टा प्राह प्रहसित आननः ॥२४॥

ताः तथा	उनको इस प्रकार	अखिल	सबके हृदयकी
सर्व आशाः	सब आशा	दृक्	दृष्टि
त्यक्त	त्यागकर	द्रष्टा भगवान्	देखनेवाले भगवान्
आत्म दिदृक्षया	अपने दर्शनार्थ	प्रहसित आननः	हंसते हुए मुखसे
प्राप्ता विज्ञाय	आयी जानकर	प्राह	बोले ॥२४॥

श्रीभगवानुवाच*

स्वागतं वो महाभागा आस्यतां करवाम किम् ।
यन्नो दिदृक्षया प्राप्ता उपन्नमिदं हि वः ॥२५॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

स्वागतं वः महाभागा आस्यतां करवाम किं यत् नः दिदृक्षया प्राप्ता उपपन्नं इदं हि वः ॥२५॥

महाभागा	महाभाग्यवतियो !	**दिदृक्षया**	दर्शनको
वः स्वगतं	तुम्हारा स्वागत है	**प्राप्ता**	आयी हो
आस्यतां	आओ	**वः**	तुम लोगोंका
किं	हम क्या	**इदं**	ऐसा करना
करवाम	स्वागत करें	**उपपन्नं**	उचित ही है ॥२५॥
हि यत् नः	क्योंकि जो हमारे		

नन्वद्धा मयि कुर्वन्ति कुशलाः स्वार्थदर्शनाः ।
अहैतुक्यव्यवहितां भक्तिमात्मप्रिये यथा ॥२६॥

ननु अद्धा मयि कुर्वन्ति कुशलाः स्वार्थ दर्शनाः अहैतुकी अव्यवहितां भक्ति आत्मप्रिये यथा ॥२६॥

ननु	निः सन्देह	**अव्यवहितां**	व्यवधान रहिता
स्वार्थ	अपना सच्चा स्वार्थ	**यथा**	जैसे (अपने)
दर्शिनाः	समझनेवाले	**आत्मप्रिये**	प्रिय आत्मासे
कुशलाः	चतुर पुरुष	**अद्धा भक्ति**	प्रगाढ़ भक्ति
मयि अहैतुकी	मुझमें निष्काम	**कुर्वन्ति**	करते हैं ॥२६॥

प्राणबुद्धिमनः स्वात्मदारापत्यधनादयः ।
यत्सम्पर्कात् प्रिया आसंस्ततः को न्वपरः प्रियः ॥२७॥

प्राण बुद्धि मनः स्व आत्म दारा अपत्य धन आदयः यत् सम्पर्कात् प्रिया आसन् ततः कः नु अपरः प्रियः ॥२७॥

यत् सम्पर्कात्	जिसकी सन्निधिसे	**प्रिया आसन्**	प्रिय बने हैं
प्राण बुद्धि	प्राण, बुद्धि,	**नु कः ततः**	भला कौन उससे
मनः स्व आत्म	मन, अपना शरीर,	**अपरः प्रियः**	भिन्न प्रिय होगा
दारा अपत्य	स्त्री, पुत्र,		॥२७॥
धन आदयः	धन आदि		

तद् यात देवयजनं पतयो वो द्विजातयः ।
स्वसत्रं पारयिष्यन्ति युष्माभिर्गृहमेधिनः ॥२८॥

तत् यात देवयजनं पतयः वः द्विजातयः स्वसत्रं पारयिष्यन्ति युष्माभिः गृहमेधिनः ॥२८॥

तत्	अतः अब	**युष्माभिः**	तुम लोगोंके सहयोग से ही
देवयजनं यात	देवयज्ञ स्थानपर लौटो	**स्वसत्रं**	अपना यज्ञ
वः द्विजातयः	तुम्हारे ब्राह्मण	**पारयिष्यन्ति**	पूर्ण कर सकेंगे ॥२८॥
पतयः	पति		
गृहमेधिनः	गृहस्थ हैं (अत.)		

पत्न्य ऊचुः

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं
सत्यं कुरुष्व निगमं तव पादमूलम् ।
प्राप्ता वयं तुलसिदाम पदावसृष्टं
केशैर्निवोढुमतिलङ्घ्य समस्तबन्धून् ॥२९॥

मा एवं विभो अर्हति भवान् गदितुं नृशंसं सत्यं कुरुष्व निगमं तव पादमूलं प्राप्ता वयं तुलसिदाम पदा अवसृष्टं केशैः निवोढुं अतिलङ्घ्य समस्त बन्धून् ॥२९॥

विभो भवान्	प्रभो ! आपको	**तव पदा**	आपके चरणोंसे
एवं नृशंसं	ऐसी निष्ठुर	**अवसृष्टं**	गिरी हुई
गदितुं	वाणी	**तुलसिदाम**	तुलसीको मालाको
मा अर्हति	नहीं करनी चाहिए	**केशैः**	अपने केशोंमें
निगमं	वेदवाणी	**निवोढुं**	धारण करने
सत्यं कुरुष्व	(कि परमात्माके पास जाकर कोई लौटता नहीं) को सच कीजिए	**समस्त बन्धून्**	सब सम्बन्धियोंकी
		अतिलङ्घ्य	(आज्ञाका) उलंघन करके

पादमूलं	(आपके) चरणोंके समीप	वयं प्राप्ता	हम आयी हैं ॥२९॥

गृह्णन्ति नो न पतयः पितरौ सुता वा
न भ्रातृबन्धुसुहृदः कुत एव चान्ये ।
तस्मात् भवत्प्रपदयोः पतितात्मनां नो
नान्यो भवेद् गतिररिन्दम तद् विधेहि ॥३०॥

गृह्णन्ति नः न पतयः पितरौ सुता वा न भ्रातृ बन्धु सुहृदः कुत एव च अन्ये तस्मात् भवत् प्रपदयोः पतित आत्मनां नः न अन्यः भवेत् गतिः अरिन्दम तत् विधेहि ॥३०॥

नः पतयः	हमको (हमारे) पति	भवत्	आपके
पितरौ	मातापिता	प्रपदयोः	चरणोंके ऊपर
वा सुता न	अथवा पुत्र नहीं	आत्मनां	आकर
न भ्रातृ बन्धु	न भाई-बन्धु	पतित	गिर पड़ी
सुहृदः	सुहृद	नः	हमारा
गृह्णन्ति	स्वीकार करेंगे	अन्यः	दूसरा कोई
च अन्ये	फिर दूसरे तो	गतिः न भवेत्	आश्रय न बने
कुत एव	कहांसे (स्वीकार करेंगे)	अरिन्दम	शत्रु-दमन करनेवाले
तस्मात्	इसलिए	तत् विधेहि	इसकी व्यवस्था कीजिए ॥३०॥

श्रीभगवानुवाच

पतयो नाभ्यसूयेरन् पितृभ्रातृसुतादयः ।
लोकाश्च वो मयोपेता देवा अप्यनुमन्वते ॥३१॥

पतयः न अभ्यसूयेरन् पितृ भ्रातृ सुत आदयः लोकाः च वः मया उपेता देवा अपि अनुमन्वते ॥३१॥

पतयः पितृ	(तुम्हारे) पति, पिता,	आदयः	आदि
भ्रातृ सुत	भाई, पुत्र	च लोकाः	तथा दूसरे लोग

अभ्यसूयेरन्	तुममें दोष	**वः**	तुम लोगोंका
न	नहीं देखेंगे	**देवा अपि**	देवता भी
मया	मेरे	**अनुमन्वते**	बराबर सम्मान
उपेता	समीप आनेके कारण		करेंगे ॥३१॥

न प्रीतयेऽनुरागाय ह्यङ्गसङ्गो नृणामिह ।
तन्मनो मयि युञ्जाना अचिरान्मामवाप्स्यथ ॥३२॥

न प्रीतये अनुरागाय हि अङ्ग सङ्गः नृणां इह तत् मनः मयि युञ्जाना अचिरात् मां अवाप्स्यथ ॥३२॥

हि इह	क्योंकि इस संसारमें	**तत् मयि**	इसलिए मुझमें
नृणां	मनुष्योंका	**मनः युञ्जाना**	चित्त लगाती हुई
अङ्ग सङ्गः	शारीरिक संसर्ग	**अचिरात् मां**	अविलम्ब मुझे
प्रीतये	प्रीति अथवा	**अवाप्स्यथ**	प्राप्त कर लोगी
अनुरागाय	अनुरागका कारण		॥३२॥
न	नहीं है		

श्रीशुक उवाच

इत्युक्ता मुनिपत्न्यस्ता यज्ञवाटं पुनर्गताः ।
ते चानसूयवः स्वाभिः स्त्रीभिः सत्रमपारयन् ॥३३॥

इति उक्ता मुनिपत्न्यः ता यज्ञवाटं पुनः गताः ते च अनसूयवः स्वाभिः स्त्रीभिः सत्रं अपारयन् ॥३३॥

इति	(भगवान्‌के) ऐसा	**अनुसूयवः**	(ब्राह्मण उनमें) दोष
उक्ता	कहनेपर		न देखकर
ता	वे	**स्वाभिः**	अपनी
मुनिपत्न्यः	ब्राह्मण-पत्नियां	**स्त्रीभिः**	पत्नियोंके साथ
पुनः	फिर	**सत्रं**	यज्ञ
यज्ञवाटं गताः	यज्ञशाला चली गयी	**अपारयन्**	पूर्ण करने लगे
च ते	और वे		॥३३॥

तत्रैका विधृता भर्त्रा भगवन्तं यथाश्रुतम् ।
हृदोपगुह्य विजहौ देहं कर्मानुबन्धनम् ॥३४॥

तत्र एका विधृता भर्त्रा भगवन्तं यथा श्रुतं हृदा उपगुह्य विजहौ देहं कर्म अनुबन्धनम् ॥३४॥

तत्र	उनमेंसे	**भगवन्तं**	भगवानका
एका	एक (आते समय)	**हृदा**	हृदयमें
भर्त्रा	पतिके द्वारा	**उपगुह्य**	आलिंगन करके
विधृता	बल पूर्वक पकड़ ली गई थी	**कर्म**	प्रारब्ध कर्मसे
		अनुबन्धनं	प्राप्त
यथा	जैसा	**देह विजहौ**	शरीर त्याग दिया ॥३४॥
श्रुतं	सुना था उस रूपमें		

भगवानपि गोविन्दस्तेनैवान्नेन गोपकान् ।
चतुर्विधेनाशयित्वा स्वयं च बुभुजे प्रभुः ॥३५॥

भगवान् अपि गोविन्दः तेन एव अन्नेन गोपकान् चतुर्विधेन आशयित्वा स्वयं च बुभुजे प्रभु ॥३५॥

भगवान्	भगवान्	**गोपकान्**	गोपकुमारोंको
गोविन्दः अपि	गोविन्दने भी	**आशयित्वा**	भोजन कराके
तेन	उस (ब्राह्मणियोंके लाये)	**प्रभुः**	उन सर्वसमर्थने
		स्वयं च	स्वयं भी
चतुर्विधेन	चारों प्रकारके	**बुभुजे**	भोजन किया ॥३५॥
अन्नेन	भोजनसे		

एवं लीलानरवपुर्नृलोकमनुशीलयन् ।
रेमे गोगोपगोपीनां रमयन् रूपवाक्कृतैः ॥३६॥

एवं लीला नरवपुः नृलोकं अनुशीलयन् रेमे गोः गोप गोपीनां रमयन् रूप वाक् कृतैः ॥३६॥

एवं लीला	इस प्रकार लीलासे	**अनुशीलयन्**	समान आचरण करते हुए
नरवपुः	मनुष्य शरीर द्वारा		
नृलोकं	मनुष्योंके	**रूप**	(अपने) सौन्दर्य

वाक् कृतैः	वचन एवं कर्मोंसे	रमयन्	आनन्दित करते
गोः गोप	गायों-गोपों तथा	रेमे	क्रीड़ा करते रहे
गोपीनां	गोपियोंको		॥३६॥

अथानुस्मृत्य विप्रास्ते अन्वतप्यन् कृतागसः ।
यद् विश्वेश्वरयोश्चाम हन्म नृविडम्बयोः ॥३७॥

अथ अनुस्मृत्य विप्राः ते अन्वतप्यन् कृत आगसः यत् विश्वेश्वरयोः याञ्चां अहन्म नृविडम्बयोः ॥३७॥

अथ ते विप्राः	फिर वे ब्राह्मण	अहन्म	उसे हमने नष्ट
अनुस्मृत्य	यह स्मरण करके कि		किया (नहीं सुना)
नृविडम्बयोः	मनुष्य-लीला करते	कृत आगसः	अपराध करनेके
	हुए		कारण
विश्वेश्वरयोः	जगदीश्वर (बलराम-	अन्वतप्यन्	पश्चाताप करने
	श्रीकृष्णकी)		लगे ॥३७॥
यत् याञ्चां	जो याचना थी		

दृष्ट्वा स्त्रीणां भगवति कृष्णे भक्तिमलौकिकीम् ।
आत्मानं च तया हीनमनुतप्ता व्यगर्हयन् ॥३८॥

दृष्ट्वा स्त्रीणां भगवति कृष्णे भक्ति अलौकिकीं आत्मानं च तया हीनं अनुतप्ता व्यगर्हयन् ॥३८॥

स्त्रीणां	(अपनी) स्त्रियोंकी	आत्मनं	अपनेको (देखकर)
भगवति कृष्णे	भगवान् श्रीकृष्णमें	अनुतप्ता	पछताकर
अलौकिकीं	लोकोत्तरा	व्यगर्हयन्	(अपनी) निन्द करने
भक्ति दृष्ट्वा	भक्ति देखकर		लगे ॥३८॥
च तया हीनं	तथा उससे रहित		

धिग् जन्म नस्त्रिवृद् विद्यां धिग् व्रतं धिग् बहुज्ञताम् ।
धिक् कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे ॥३९॥

धिक् जन्म नः त्रिवृत् विद्यां धिक् व्रतं धिक् बहुज्ञतां धिक् कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये तु अधोक्षजे ॥३९॥

ये तु अधोक्षजे	जो हम तो भगवान् हृषीकेशसे	बहुज्ञतां धिक्	बहुज्ञताको धिक्कार है,
विमुखा	विमुख हैं, अतः	कुलं धिक्	(उत्तम) कुलको धिक्कार है,
त्रिवृत् विद्यां	गायत्री विद्याकी दीक्षासे	क्रियादाक्ष्यं	कर्मकाण्डकी निपुणताको
नः जन्म धिक्	हमारे द्विज होनेको धिक्कार है,	धिक्	धिक्कार है ॥३९॥
व्रतं धिक्	व्रतनिष्ठ होनेको धिक्कार है,		

नूनं भगवतो माया योगिनामपि मोहिनी ।
तद् वयं गुरवो नृणां स्वार्थे मुह्यामहे द्विजाः ॥४०॥

नून भगवतः माया योगिनां अपि मोहिनी यत् वयं गुरवः नृणां स्वार्थे मुह्यामहे द्विजाः ॥४०॥

नून	निःसन्देह	द्विजाः वयं	ब्राह्मण (होकर भी) हम लोग
भगवतः माया	भगवानकी माया	स्वार्थे मुह्यामहे	अपने वास्तविक स्वार्थके प्रति मोहमें पड़ गये ॥४०॥
योगिनां अपि	योगियोंको भी		
मोहिनी	मोहमें डालने वाली है		
यत् नृणां गुरवः	जिससे मनुष्योंके गुरु		

अहो पश्यत नारीणामपि कृष्णे जगद्गुरौ ।
दुरन्तभावं योऽविध्यन्मृत्युपाशान् गृहाभिधान् ॥४१॥

अहो पश्यत नारीणां अपि कृष्णे जगद्गुरौ दुरन्त भावं यः अविध्यन् मृत्युपाशान् गृह अभिधान् ॥४१॥

अहो पश्यत	अरे देखो तो,	जगद्गुरौ	जगद्गुरु
नारीणां अपि	स्त्री होनेपर भी (इनका)	कृष्णे दुरन्त	श्रीकृष्णमें अगाध
		भावं	प्रेम

यः गृह अभिधान्	जिससे घर कह-लानेवाले	अविध्यन्	(इन्होंने) काट दिया ॥४१॥
मृत्युपाशान्	मृत्युके बन्धनोंको		

नासां द्विजातिसंस्कारो न निवासो गुरावपि ।
न तपो नात्ममीमांसा न शौचं न क्रियाः शुभाः ॥४२॥

न आसां द्विजाति सस्कारः न निवासः गुराः अपि न तपः न आत्म-मीमांसा न शौचं न क्रियाः शुभाः ॥४२॥

आसां	इनका	न तपः	(इनमें) न तपस्या है,
द्विजाति	द्विजाति-		
संस्कारः	संस्कार (यज्ञोपवीत)	न आत्म-	न आत्म
न	नहीं हुआ है	मीमांसा	तत्त्वका विवेक,
गुराः निवासः	गुरुकुलमें निवास	न शौच	न पवित्रता,
अपि न	भी नहीं हुआ,	न शुभाः क्रियाः	न कोई पुण्य कर्म ॥४२॥

अथापि ह्युत्तमश्लोके कृष्णे योगेश्वरेश्वरे ।
भक्तिर्दृढा न चास्माकं संस्कारादिमतामपि ॥४३॥

अथ अपि हि उत्तम श्लोके कृष्णे योगेश्वर ईश्वरे भक्तिः दृढा न च अस्माकं संस्कर आदि मतां अपि ॥४३॥

अथ अपि हि	फिर भी क्योंकि	च अस्माकं	और हम लोगोंकी
उत्तम श्लोके	पवित्र कीर्ति	संस्कार आदि	संस्कार आदि
योगेश्वर ईश्वरे	योगेश्वरोंके भी स्वामी	मतां अपि न	सम्पन्न होनेपर भी नहीं है (अतः ये श्रेष्ठ हैं) ॥४३॥
कृष्णे दृढा	श्रीकृष्णमें दृढ़		
भक्तिः	भक्ति है		

ननु स्वार्थविमूढानां प्रमत्तानां गृहेहया ।
अहो नः स्मारयामास गोपवाक्यैः सतां गतिः ॥४४॥

ननु स्वार्थ विमूढानां प्रमत्तानां गृह ईहया अहो नः स्मारयामास गोपवाक्यैः सतां गतिः ॥४४॥

ननु	निःसन्देह	नः	हम लोगोंको
स्वार्थ विमूढानां	अपने वास्तविक स्वार्थके प्रति विमूढ़ हुए,	अहो गोपवाक्यैः	अहो, गोपोंके वचनोंके द्वारा
गृह ईहया	गृहस्थीकी कामनाओंसे	सतां गतिः	(भगवानने) सत्पुरुष गति (अपना)
प्रमत्तानां	प्रमत्त हुए	स्मारयामास	स्मरण कराया था ॥४४॥

अन्यथा पूर्णकामस्य कैवल्याद्याशिषां पतेः ।
ईशितव्यैः किमस्माभिरीशस्यैतद् विडम्बनम् ॥४५॥

अन्यथा पूर्णकामस्य कैवल्य आदि आशिषां पतेः ईशितव्यैः किं अस्माभिः ईशस्य एतत् विडम्बनम् ॥४५॥

अन्यथा	नहीं तो	किं ईशितव्यैः	क्या चाहना हो सकती है,
कैवल्य आदि आशिषां पतेः	मोक्षादि सम्पूर्ण अभिलाषाओंके स्वामी	ईशस्य एतत् विडम्बनं	उन सर्वसमर्थकी यह लीला ही है ॥४५॥
पूर्णकामस्य	पूर्ण कामको		
अस्माभिः	हम लोगोंसे		

हित्वान्यान् भजते यं श्रीः पादस्पर्शाशया सकृत् ।
आत्मदोषापवर्गेण तद्याञ्चा जनमोहिनी ॥४६॥

हित्वा अन्यान् भजते यं श्रीः पादस्पर्श आशया सकृत् आत्मदोष अपवर्गेण तत् याञ्चा जन मोहिनी ॥४६॥

अन्यान् हित्वा	दूसरोंको त्यागकर	अपवर्गेण	छोड़कर
आत्मदोष	अपने (चंचलता रूप) दोषको	सकृत् पादस्पर्श	केवल एक बार चरण-स्पर्श

आशया	पानेकी इच्छासे
श्रीः यं भजते	लक्ष्मी जिनका भजन करती हैं
तत् याञ्चा	उनका याचना करना
जन मोहिनी	लोगोंको मोहमें डालने वाला है ॥४६॥

देशः कालः पृथग्द्रव्यं मन्त्र तन्त्रर्त्विजोऽग्नयः ।
देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ॥४७॥

देशः कालः पृथक् द्रव्यं मन्त्र तन्त्र ऋत्विजः अग्नयः देवता यजमानः च क्रतुः धर्मः च यत् मयः ॥४७॥*

देशः कालः	स्थान, समय
पृथक् द्रव्यं	अलग-अलग पदार्थ,
मन्त्र तन्त्र	मन्त्र, विधि-विधान,
ऋत्विजः	ऋत्विक् ब्राह्मण,
अग्नयः	अग्नियां,
देवता यजमानः	देवता, यजमान,
च क्रतुः धर्मः च	तथा यज्ञ एवं धर्म भी
यत् मयः	जिनका स्वरूप हैं ॥४७॥

स एष भगवान् साक्षाद् विष्णुर्योगेश्वरेश्वरः ।
जातो यदुष्वित्यश्रृण्म ह्यपि मूढा न विद्महे ॥४८॥

स एष भगवान् साक्षात् विष्णुः योगेश्वर ईश जातः यदुषु इति अश्रृण्म हि अपि मूढा न विद्महे ॥४८॥

स एष साक्षात्	वही ये साक्षात्
योगेश्वर	योगेश्वरोंके भी
ईश्वरः	स्वामी
भगवान् विष्णुः	भगवान विष्णु
यदुषु जातः	यदु वंशमें अवतीर्ण हुए हैं
इति अश्रृण्म	ऐसा हमने सुना था
हि मूढा अपि	किन्तु मूर्ख होनेसे
न विद्महे	नहीं जान सके ॥४८॥

* इसी अध्यायके श्लोक १० की यह पुनरावृत्ति है ।

अहो वयं धन्यतमा येषां नस्तादृशीः स्त्रियः ।
भक्त्या यासां मतिर्जाता अस्माकं निश्चला हरौ ॥४६॥

अहो वयं धन्यतमा येषां नः तादृशीः स्त्रियः भक्त्या यासां मतिः जाता अस्माकं निश्चला हरौ ॥४६॥

अहो वयं	अहो, हम लोग	**यासां भक्त्या**	जिनकी भक्ति (के प्रभाव) से
धन्यतमा	परम धन्य हैं	**अस्माकं हरौ**	हम लोगोंकी श्रीहरिमें
येषां नः	जिन हमारी	**निश्चला मतिः**	निश्चला बुद्धि
तादृशीः स्त्रियः	उस प्रकारकी स्त्रियां हैं	**जाता**	उत्पन्न हुई ॥४६॥

नमस्तुभ्यं भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ।
यन्मायामोहितधियो भ्रमामः कर्मवर्त्मसु ॥५०॥

नमः तुभ्यं भगवते कृष्णाय अकुण्ठ मेधसे यत् माया मोहित धियः भ्रमामः कर्मवर्त्मसु ॥५०॥

अकुण्ठ मेधसे	अमोघ संकल्प	**मोहित धियः**	मोहित बुद्धि (होने-से हम)
तुभ्यं भगवते	आप भगवान	**कर्मवर्त्मसु**	कर्म मार्गमें
कृष्णाय नमः	श्रीकृष्णको नमस्कार	**भ्रमामः**	भटक रहे हैं ॥५०॥
यत् माया	जिनकी मायासे		

स वै न आद्यः पुरुषः स्वमायामोहितात्मनाम् ।
अविज्ञातानुभावानां क्षन्तुमर्हत्यतिक्रमम् ॥५१॥

स वै नः आद्यः पुरुषः स्वमाया मोहित आत्मनां अविज्ञात अनुभावानां क्षन्तुं अर्हति अतिक्रमम् ॥५१॥

वै स्वमाया	निश्चय अपनी मायासे	**अतिक्रमं**	अवमाननाको
मोहित आत्मनां	मोहित चित्त	**स आद्यः पुरुषः**	उन आदि पुरुषको
अनुभावानां	अपने प्रभावको	**क्षन्तुं अर्हति**	क्षमा कर देना चाहिए ॥५१॥
अविज्ञात नः	न जाननेवाले हम लोगोंकी		

इति स्वाघमनुस्मृत्य कृष्णे ते कृतहेलनाः ।
दिदृक्षवोऽप्यच्युतयोः कंसाद् भीता न चाचलन् ॥५२॥

इति स्वअघं अनुस्मृत्य कृष्णे ते कृत हेलनाः दिदृक्षवः अपि अच्युतयोः कंसात् भीता न च अचलन् ॥५२॥

इति ते	इस प्रकार वे
कृष्णे	श्रीकृष्णकी
हेलनाः कृत	उपेक्षा करनेवाले (ब्राह्मण)
स्वअघं	अपने अपराधको
अनुस्मृत्य	स्मरण करके
अच्युतयोः	श्रीकृष्ण-बलरामके
दिदृक्षवः अपि	दर्शनेच्छुक होनेपर भी
कंसात् भीता	कंससे डरे होनेसे
न च अचलन्	नहीं ही जा सके ॥५२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे यज्ञपत्न्युद्धरणं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

भगवानपि तत्रैव बलदेवेन संयुतः ।
अपश्यन्निवसन् गोपानिन्द्रयागकृतोद्यमान् ॥१॥

भगवान् अपि तत्र एव बलदेवेन संयुतः अपश्यत् निवसन् गोपान् इन्द्रयाग कृत उद्यमान् ॥१॥

बलदेवेन	बलरामजी के	इन्द्रयाग	इन्द्र यज्ञ
संयुतः	साथ मिलकर	कृत	के लिए
तत्र एव	वहीं (व्रजमें)	उद्यमान्	उद्योग करते
निवसन्	बसते हुए	गोपान्	गोपोंको
भगवान् अपि	भगवान्ने भी	अपश्यत्	देखा ॥१॥

तदभिज्ञोऽपि भगवान् सर्वात्मा सर्वदर्शनः ।
प्रश्रयावनतोऽपृच्छद् वृद्धान् नन्दपुरोगमान् ॥२॥

तत् अभिज्ञः अपि भगवान् सर्व आत्मा सर्वदर्शनः प्रश्रय अवनतः अपृच्छत् वृद्धान् नन्दपुरः अगमान् ॥२॥

सर्व आत्मा	सर्वात्मा	प्रश्रय	नम्रतासे
सर्वदर्शनः	सर्वज्ञ	अवनतः	विनम्र होकर
भगवान्	भगवान्ने	नन्दपुरः अगमान्	नन्द-प्रमुख
तत् अभिज्ञः	उसको जानते हुए	वृद्धान्	बूढ़ोंसे
अपि	भी	अपृच्छत्	पूछा ॥२॥

कथ्यतां मे पितः कोऽयं सम्भ्रमो व उपागतः ।
किं फलं कस्य चोद्देशः केन वा साध्यते मखः ॥३॥

कथ्यतां मे पितः कः अयं सम्भ्रमः वः उपागतः किं फलं कस्य च उद्देशः केन वा साध्यते मखः ॥३॥

पितः मे	पिताजी मुझे	फलं:	फल है ?
कथ्यतां	बतलाइये	च कस्य:	और किस (देवता) के
अयं कः	यह कौन-सी	उद्देशः	उद्देशसे है ?
सम्भ्रमः	हड़बड़ी	वा केन	अथवा किनके द्वारा
वः	आप लोगोंके	साध्यते	किया जाता है
उपागतः	पास आ गयी है ?		॥३॥
मखः कः	इस यज्ञका क्या		

एतद् ब्रूहि महान् कामो मह्यं शुश्रूषवे पितः ।
न हि गोप्यं हि साधूनां कृत्यं सर्वात्मनामिह ॥४॥

एतत् ब्रूहि महान् कामः मह्यं शुश्रूषवे पितः न हि गोप्यं हि साधूनां कृत्यं सर्वात्मनां इह ॥४॥

पितः एतत्	पिताजी यह	सर्वात्मनां	सबको अपना आत्मा
ब्रूहि	बतलाइये		माननेवाले
मह्यं शुश्रूषवे	मुझे सुननेकी	साधूनां	सत्पुरुषोंके लिए
महान्	बहुत	गोप्यं	छिपाने योग्य
कामः	इच्छा हो रही है	इह	इस संसारमें
हि	क्योंकि	कृत्यं	कोई कर्म
		न हि	नहीं है ॥४॥

अस्त्यस्वपरदृष्टीनाममित्रोदास्तविद्विषाम् ।
उदासीनोऽरिवद् वर्ज्य आत्मवत् सुहृदुच्यते ॥५॥

अस्त्य स्व पर दृष्टीनां अमित्र उदास्त विद्विषां उदासीनः अरिवत् वर्ज्यः आत्मवत् सुहृत् उच्यते ॥५॥

स्व पर	अपने-परायेके	उदास्त	उदासीन हैं तथा
दृष्टिनां	भेद देखनेवालों के लिए	विद्विषां	शत्रुओंसे (छिपाने योग्य कर्म)
अमित्र	जो मित्र नहीं हैं,	अस्त्य	होते हैं,

उदासीनः	(इनमें भी) उदासीन	सुहृत् आत्मवत्	सुहृद अपने समान
अरिवत्	शत्रुके समान ही	उच्यते	कहा जाता है ॥५॥
वर्ज्यः	त्याज्य है; किन्तु		

ज्ञात्वाज्ञात्वा च कर्माणि जनोऽयमनुतिष्ठति ।
विदुषः कर्मसिद्धिः स्यात्तथा नाविदुषो भवेत् ॥६॥

ज्ञात्वा अज्ञात्वा च कर्माणि जनः अयं अनुतिष्ठति विदुषः कर्मसिद्धिः स्यात् तथा न अविदुषः भवेत् ॥६॥

अयं जनः	यह संसारी मनुष्य	विदुषः	जाननेवाले को
ज्ञात्वा	जानकर या	कर्मसिद्धिः	कर्ममें सफता
अज्ञात्वा च	बिना जाने भी	स्यात्	होती है
कर्माणि	कर्मोंको	तथा	वैसी
अनुतिष्ठति	करता रहता है (इसमें)	अविदुषः	न जाननेवाले को
		न भवेत्	नहीं होती ॥६॥

तत्र तावत् क्रियायोगो भवतां किं विचारितः ।
अथवा लौकिकस्तन्मे पृच्छतः साधु भण्यताम् ॥७॥

तत्र तावत् क्रियायोगः भवतां किं विचारितः अथवा लौकिकः तत् मे पृच्छतः साधु भण्यताम् ॥७॥

तत्र	इस सम्बन्धमें	लौकिकः	लोकाचारसे है
भवतां	आप लोगोंका	तत् मे	यह मुझ
क्रियायोगः	यह कर्मानुष्ठान	पृच्छतः	पूछनेवाले से
तावत् किं	इस समय क्या	साधु	भली प्रकार
विचारितः	शास्त्र निहित	भण्यतां	समझाकर कहिये ॥७॥
अथवा	अथवा		

नन्द उवाच

पर्जन्यो भगवानिन्द्रो मेघास्तस्यात्ममूर्तयः ।
तेऽभिवर्षन्ति भूतानां प्रीणनं जीवनं पयः ॥८॥

पर्जन्यः भगवान् इन्द्रः मेघाः तस्य आत्ममूर्तयः ते अभिवर्षन्ति भूतानां प्रीणनं जीवनं पयः ॥८॥

भगवान् इन्द्रः	भगवान् इन्द्र	प्रीणनं	पोषण एवं
पर्जन्यः	वर्षा करने वाले हैं,	जीवनं	जीवनदायी
तस्य	उनके	पयः	जलकी
आत्ममूर्तयः	अपने स्वरूप	अभिवर्षन्ति	चारों ओर वर्षा
मेघाः	बादल हैं		करते हैं ॥८॥
ते भूतानां	वे प्राणियोंके लिए		

तं तात वयमन्ये च वार्मुचां पतिमीश्वरम् ।
द्रव्यैस्तद्रेतसा सिद्धैर्यजन्ते क्रतुभिर्नराः ॥९॥

तं तात वयं अन्ये च वारिमुचां पतिं ईश्वरं द्रव्यैः तत् रेतसा सिद्धैः यजन्ते क्रतुभिः नराः ॥९॥

तात	वत्स !	तत् रेतसा	उनके वीर्य (जल) से
वयं च अन्ये	हम और दूसरे भी	सिद्धैः द्रव्यैः	उत्पन्न पदार्थोंसे
तं वारिमुचां	उन बादलोंके	क्रतुभिः यजन्ते	यज्ञ करके
ईश्वरं पतिं	समर्थ स्वामीकी		पूजन करते हैं ॥९॥

तच्छेषेणोपजीवन्ति त्रिवर्गफलहेतवे ।
पुंसां पुरुषकाराणां पर्जन्यः फलभावनः ॥१०॥

तत् शेषेण उपजीवन्ति त्रिवर्ग फल हेतवे पुंसां पुरुष काराणां पर्जन्यः फल भावनः ॥१०॥

त्रिवर्ग	(अर्थ, धर्म, काम) त्रिवर्गके	पुंसां	मनुष्योंके
फल	फलको	पुरुष काराणां	(खेती आदि) उद्योगों के
हेतवे	प्राप्त करनेके लिए	फल भावनः	फल देनेवाले
तत्	उस (यज्ञ) से	वर्जन्यः	वर्षाके देवता ही हैं ॥१०॥
शेषेण	बचे हुए से		
उपजीवन्ति	(सब) जीविका चलाते हैं,		

य एवं विसृजेद् धर्मं पारम्पर्यागतं नरः ।
कामाल्लोभाद् भयाद् द्वेषात् स वै नाप्नोति शोभनम् ॥११॥

यः एवं विसृजेत् धर्मं पारम्पर्या आगतं नरः कामात् लोभात् भयात् द्वेषात् स वै न आप्नोति शोभनम् ॥११॥

यः नरः	जो मनुष्य	पारम्पर्या	कुल परम्परासे
कामात्	कामना	आगतं धर्मं	चले आते धर्मको
लोभात्	लोभ	विसृजेत्	त्यागता है
भयात्	भय या	वै स शोभनं	निश्चय वह मंगल
द्वेषात्	द्वेषसे	न आप्नोति	नहीं पाता ॥११॥
एवं	इस प्रकार		

श्रीशुक उवाच

वचो निशम्य नन्दस्य तथान्येषां व्रजौकसाम् ।
इन्द्राय मन्युं जनयन् पितरं प्राह केशवः ॥१२॥

वचः निशम्य नन्दस्य तथा अन्येषां व्रजौकसां इन्द्राय मन्युं जनयन् पितरं प्राह केशवः ॥१२॥

नन्दस्य तथा	नन्दजी की तथा	मन्युं	क्रोध
अन्येषां	दूसरे भी	जनयन्	उत्पन्न करनेके लिए
व्रजौकसां	व्रजवासियोंकी	केशवः	श्रीकृष्णने
वचः निशम्य	बात सुनकर	पितरं	पितासे
इन्द्राय	इन्द्रको	प्राह	कहा ॥१२॥

श्रीभगवानुवाच

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव विलीयते ।
सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते ॥१३॥

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणा एव विलीयते सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणा एव अभिपद्यते ॥१३॥

जन्तुः	प्राणी अपने	कर्मणा एव	कर्मानुसार ही
कर्मणा	कर्मानुसार	सुखं दुःखं	सुख-दुःख,
जायते	उत्पन्न होता है,	भयं क्षेमं	भय या कुशलता
कर्मणा एव	कर्मके अनुसार ही	अभिपद्यते	प्राप्त करता है
विलीयते	लीन हो जाता (मर जाता) है,		॥१३॥

अस्ति चेदीश्वरः कश्चित् फलरूप्यन्यकर्मणाम् ।
कर्तारं भजते सोऽपि न ह्यकर्तुः प्रभुर्हि सः ॥१४॥

अस्ति चेत् ईश्वरः कश्चित् फल रूपि अन्य कर्मणां कर्तारं भजते सः अपि न हि अकर्तुः प्रभुः हि सः ॥१४॥

अन्य कर्मणां	कर्मोंसे पृथक्	भजते	सेवन करता (फल देता) है
फल रूपि	फल-निरूपक (दाता)	हि सः	क्योंकि वह
चेत् कश्चित्	यदि कोई	अकर्तुः प्रभुः	अकर्ताका स्वामी
ईश्वरः अस्ति	ईश्वर है भी तो	न हि	नहीं है ॥१४॥
सः अपि	वह भी		
कर्तारं	कर्मकर्ताको ही		

किमिन्द्रेणेह भूतानां स्वस्वकर्मानुवर्तिनाम् ।
अनीशेनान्यथा कर्तुं स्वभावविहितं नृणाम् ॥१५॥

किं इन्द्रेण इह भूतानां स्व स्व कर्म अनुवर्तिनां अनीशेन अन्यथा कर्तुं स्वभाव विहितं नृणाम् ॥१५॥

इह	इस संसारमें	स्वभाव	अपने पूर्वकर्मसे
स्व स्व	अपने-अपने	विहितं	प्राप्त भोगोंको
कर्म	कर्मोंके	अन्यथा कर्तुं	उलटा कर देनेमें
अनुवर्तिनां	अनुसार रहनेवाले	अनीशेन	असमर्थ
भूतानां	प्राणियोंका	इन्द्रेण किं	इन्द्रसे क्या प्रयोजन
नृणां	मनुष्योंके		॥१५॥

स्वभावतन्त्रो हि जनः स्वभावमनुवर्तते ।
स्वभावस्थमिदं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥१६॥

स्वभाव तन्त्रः हि जनः स्वभावं अनुवर्तते स्वभावस्थं इदं सर्वं स देव असुर मानुषम् ॥१६॥

हि जनः	क्योंकि मनुष्य	**देव**	देवता,
स्वभाव	स्वभाव (प्रकृति)	**असुर**	असुरोंके और
तन्त्रः	परतन्त्र है,	**स मानुषं**	मनुष्योंके साथ
स्वभावं	अतः स्वभावके	**इदं सर्वं**	यह सब संसार
अनुवर्तते	अनुसार व्यवहार करता है	**स्वभावस्थं**	स्वभावमें स्थित है ॥१६॥

देहानुच्चावचाञ्जन्तुः प्राप्योत्सृजति कर्मणा ।
शत्रुर्मित्रमुदासीनः कर्मैव गुरुरीश्वरः ॥१७॥

देहान् उच्च अवचान् जन्तुः प्राप्य उत्सृजति कर्मणा शत्रुः मित्रं उदासीनः कर्म एव गुरुः ईश्वरः ॥१७॥

जन्तुः	जीव अपने	**शत्रुः मित्रं**	शत्रु-मित्र
कर्मणा	कर्मानुसार	**उदासीनः**	उदासीन बनाता है;
उच्च अवचान्	उत्तम-अधम	**कर्म एव**	कर्म ही
देहान्	शरीरोंको	**गुरुः**	गुरु तथा
प्राप्य	पाकर	**ईश्वरः**	ईश्वर है ॥१७॥
उत्सृजति	फिर त्यागता है तथा		

तस्मात् सम्पूजयेत् कर्म स्वभावस्थः स्वकर्मकृत् ।
अञ्जसा येन वर्तेत तदेवास्य हि दैवतम् ॥१८॥

तस्मात् सम्पूजयेत् कर्म स्वभावस्थः स्वकर्म कृत् अञ्जसा येन वर्तेत तत् एव अस्य हि देवतम् ॥१८॥

तस्मात्	इसलिए	**येन**	जिससे
स्वभावस्थः	स्वभावमें स्थित रहकर	**अञ्जसा**	सुगमतापूर्वक
		वर्तेत	जीविका चलती हो
स्वकर्म	अपना (वर्णाश्रम विहित) कर्म	**हि तत्**	क्योंकि वही
		एव अस्य	उस व्यक्तिका
कृत्	करते हुए	**दैवतं**	आराध्य देव होता है ॥१८॥
कर्म	कर्मका ही		
सम्पूजयेत्	पूरा आदर करना चाहिए		

आजीव्यैकतरं भावं यस्त्वन्यमुपजीवति ।
न तस्माद् विन्दते क्षेमं जारं नार्यसती यथा ॥१९॥

आजीव्य एकतरं भावं यः तु अन्यं उपजीवति न तस्मात् विन्दते क्षेमं जारं नारि असती यथा ॥१९॥

आजीव्य	जीविका देनेवाले	**तस्मात् यथा**	उससे जैसे
एकतरं	एक उत्तम	**असती**	व्यभिचारिणी
भावं	भाव (देवता) के अतिरिक्त	**नारि जारं**	स्त्री दूसरे जो पुरुषसे
यः तु अन्यं	जो कोई दूसरेका	**क्षेमं न**	कुशल नहीं
उपजीवति	सहारा लेता है	**विन्दते**	पाता ॥१९॥

वर्तेत ब्रह्मणा विप्रो राजन्यो रक्षया भुवः ।
वैश्यस्तु वार्तया जीवेच्छूद्रस्तु द्विजसेवया ॥२०॥

वर्तेत ब्रह्मणा विप्रः राजन्यः रक्षया भुवः वैश्यः तु वार्तया जीवेत् शूद्रः तु द्विज सेवया ॥२०॥

ब्रह्मणा विप्रः	वेदोंके द्वारा ब्राह्मण,	**द्विज**	द्विजातियोंकी
भुवः	पृथ्वीकी	**सेवया**	सेवा करके
रक्षया	रक्षा करके	**शूद्रः तु**	शूद्र भी
राजन्यः	क्षत्रिय	**वर्तेत**	व्यवहार करे और
वार्तया तु	व्यापारके द्वारा तो	**जीवेत**	जीविका चलावे ॥२०॥
वैश्यः	वैश्य और		

कृषिवाणिज्यगोरक्षा कुसीदं तुर्यमुच्यते ।
वार्ता चतुर्विधा तत्र वयं गोवृत्तयोऽनिशम् ॥२१॥

कृषि वाणिज्य गोरक्षा कुसीदं तुर्यं उच्यते वार्ता वृत्तिः चतुर्विधा तत्र वयं गोवृत्तयः अनिशम् ॥२१॥

कृषि वाणिज्य	खेती, व्यापार	वार्ता	(वैश्यकी) वार्ता-
गोरक्षा	गोरक्षा तथा	वृत्तिः	वृत्ति है,
तुर्यं कुसीदं	चौथी व्याज लेना	तत्र वयं	इसमें हम लोग
उच्यते	कहा गया है	अनिशं	रात-दिन
इयं	यह	गोवृत्तयः	गो-पालन करनेवाले
चतुर्विधा	चार प्रकार की		हैं ॥२१॥

सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः ।
रजसोत्पद्यते विश्वमन्योन्यं विविधं जगत् ॥२२॥

सत्त्वं रजः तम इति स्थिति उत्पत्ति अन्त हेतवः रजसा उत्पद्यते विश्वं अन्योन्यं विविधं जगत् ॥२२॥

सत्त्वं	सत्व गुण	रजसा विश्वं	रजोगुणसे विश्व
रजः	रजो गुण,	उत्पद्यते	उत्पन्न होता है
तम इति	और तमोगुण ये	अन्योन्यं	फिर एक दूसरेसे
स्थिति	जगत्की स्थिति,	जगत्	संसार
उत्पत्ति	उत्पत्ति और	विविधं	अनेक प्रकारका
अन्त हेतवः	प्रलयके कारण हैं,		हो जाता है ॥२२॥

रजसा चोदिता मेघा वर्षन्त्यम्बूनि सर्वतः ।
प्रजास्तैरेव सिद्ध्यन्ति महेन्द्रः किं करिष्यति ॥२३॥

रजसा चोदिता मेघा वर्षन्ति अम्बूनि सर्वतः प्रजाः तैः एव सिद्ध्यन्ति महेन्द्रः किं करिष्यति ॥२३॥

रजसा	रजोगुणसे	अम्बूनि	जलकी
चोदिता	प्रेरित	वर्षन्ति	वर्षा करते हैं
मेघा सर्वतः	बादल सब कहीं	तैः एव	उसीसे

प्रजाः	प्रजा (अपने उद्योग-में)	नहेन्द्रः	इन्द्र (इस विषयमें)
सिद्ध्यन्ति	सफल होती है	किं करिष्यति	क्या करेंगे ॥२३॥

न नः पुरो जनपदा न ग्रामा न गृहा वयम् ।
नित्यं वनौकसस्तात वनशैलनिवासिनः ॥२४॥

न नः पुरः जनपदा न ग्रामा न गृहा वयं नित्यं वनौकसः तात वन शैल निवासिनः ॥२४॥

तात नः	पिताजी ! हमारे	वयं वन	हम तो वन-
न	न किसी	शैल	पर्वतोंमें
जनपदा	प्रदेशका राज्य है,	निवासिनः	रहनेवाले
न पुरः	न नगर या	नित्यं	सदाके
ग्राम	गांव हैं	वनौकसः	वनवासी हैं ॥२४॥
न गृहा	न (स्थायी) घर हैं		

तस्माद् गवां ब्राह्मणानामद्रेश्चारभ्यतां मखः ।
य इन्द्रयागसम्भारास्तैरयं साध्यतां मखः ॥२५॥

तस्मात् गवां ब्राह्मणानां अद्रेः च आरभ्यतां मखः यः इन्द्र याग सम्भाराः तैः अयं साध्यतां मखः ॥२५॥

तस्मात्	इसलिए	यः	जो
गवां	गायों,	इन्द्र याग	इन्द्र-यज्ञके लिए
ब्राह्मणानां	ब्राह्मणों	सम्भाराः	सामग्री है,
च	तथा	तैः अयं मखः	उसीसे यह यज्ञ
अद्रेः	पर्वतके लिए	साध्यतां	सम्पन्न करें ॥२५॥
मखः आरभ्यतां	यज्ञारम्भ कीजिए		

पच्यन्तां विविधाः पाकाः सूपान्ताः पायसादयः ।
संयावापूपशष्कुल्यः सर्वदोहश्च गृह्यताम् ॥२६॥

पच्यतां विविधाः पाकाः सूप अन्ताः पायस आदयः संयाव अपूप शष्कुल्यः सर्वदोहः च गृह्यताम् ॥२६॥

विविधाः	अनेक प्रकारके	पच्यन्तां	पकाई जाय,
पाकाः	पकवान	संयाव	जमा दही
पायस अपूप	खीर, पुए	च	तथा
शष्कुल्यः	पूड़ी	सर्वदोहः	सब दूध
आदयः	आदि	गृह्यतां	ले लीजिए ॥२६॥
सूप अन्ताः	मूंगकी दाल तक		

हूयन्तामग्नयः सम्यग् ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ।
अन्नं बहुविधं तेभ्यो देयं वो धेनुदक्षिणाः ॥२७॥

हूयन्तां अग्नयः सम्यक् ब्राह्मणैः ब्रह्मवादिभिः अन्नं बहुविधं तेभ्यः देयं वः धेनु दक्षिणाः ॥२७॥

ब्रह्मवादिभिः	ब्रह्मवेत्ता	तेभ्यः	उन (ब्राह्मणों) को
ब्राह्मणैः	ब्राह्मणोंके द्वारा	बहुविधं	अनेक प्रकारका
सम्यक्	विधि पूर्वक	अन्नं धेनु	भोजन, गायें और
अग्नयः	अग्नि होत्र	दक्षिणाः देयं	दक्षिणा देनी
हूयन्तां	किया जाय,		चाहिए ॥२७॥
वः	आप लोगोंको		

अन्येभ्यश्चाश्वचाण्डालपतितेभ्यो यथार्हतः ।
यवसं च गवां दत्त्वा गिरये दीयतां बलिः ॥२८॥

अन्येभ्यः आश्व चाण्डाल पतितेभ्यः यथा अर्हतः यवसं च गवां दत्त्वा गिरये दीयतां बलिः ॥२८॥

अन्येभ्यः	दूसरोंको भी	च गवां	और गायोंको
आश्व	कुत्तोंसे लेकर	यवसं दत्त्वा	हरी घास देकर
चाण्डाल	चाण्डाल,	गिरये	पर्वत (गोवर्धन) को
पतितेभ्यः	तथा पतित लोगोंको	बलिः	उपहार
यथा	जो जिसके	दीयतां	दिया जाय ॥२८॥
अर्हतः	योग्य हैं		

स्वलङ्कृता भुक्तवन्तः स्वनुलिप्ताः सुवाससः ।
प्रदक्षिणं च कुरुत गोविप्रानलपर्वतान् ॥२९॥

स्वलंकृता भुक्तवन्तः स्व अनुलिप्ताः सुवाससः प्रदक्षिणं च कुरुत गो विप्र अनल पर्वतान् ॥२६॥

स्वलंकृता	अपने आभूषण धारण करके,	गो विप्र	गायों, ब्राह्मणों,
भुक्तवन्तः	भोजन करके,	अनल	अग्नि
स्व	अपनेको	च	तथा
अनुलिप्ताः	चन्दनादि लगाकर	पर्वतान्	पर्वत (गोवर्धन) की
सुवाससः	अच्छे वस्त्र पहिनकर	प्रदक्षिणं	प्रदक्षिणा
		कुरुत	कीजिये ॥२६॥

एतन्मम मतं तात क्रियतां यदि रोचते ।
अयं गोब्राह्मणाद्रीणां मह्यं च दयितो मखः ॥३०॥

एतत् मम मतं तात क्रियतां यदि रोचते अयं गो ब्राह्मण अद्रीणां मह्यं च दयितः मखः ॥३०॥

तात	पिताजी !	अयं मखः	यह यज्ञ
एतत् मम	यह मेरी	गो ब्राह्मण	गायों, ब्राह्मणों,
मतं	सम्मति है,	अद्रीणां	गिरिराज (गोवर्धन)
यदि	यदि (आप लोगोंको)	च मह्यं	तथा मुझे भी
रोचते	रुचे तो	दयितः	प्रिय है ॥३०॥
क्रियतां	ऐसा कीजिए,		

श्रीशुक उवाच

कालात्मना भगवता शक्रदर्पं जिघांसता ।
प्रोक्तं निशम्य नन्दाद्याः साध्वगृह्णन्त तद्वचः ॥३१॥

काल आत्मना भगवता शक्रदर्पं जिघांसता प्रोक्तं निशम्य नन्द आद्याः साधु अगृह्णन्त तत् वचः ॥३१॥

शक्रदर्पं	इन्द्रके गर्वको	काल आत्मना	काल स्वरूप
जिघांसता	नष्ट करनेकी इच्छा-वाले	भगवता	भगवान्‌के
		प्रोक्तं	कथनको

निशम्य नन्द	नन्द	साधु	भली प्रकार
आद्याः	आदिने	अगृहणन्त	स्वीकार कर लिया
तत् वचः	उनकी बातको		॥३१॥

तथा च व्यदधुः सर्वं यथाऽऽह मधुसूदनः ।
वाचयित्वा स्वस्त्ययनं तद्द्रव्येण गिरिद्विजान् ॥३२॥

तथा च व्यदधुः सर्वं यथा आह मधुसूदनः वाचयित्वा स्वस्त्ययनं तत् द्रव्येण गिरि द्विजान् ॥३२॥

यत् मधुसूदनः	जो श्रीकृष्णने	वाचयित्वा	करवाकर
आह तथा च	कहा था वैसा ही	तत् द्रव्येण	उसी सामग्रीसे
सर्वं	सब कुछ	गिरि	(गोवर्धन) पर्वत तथा
व्यदधुः	व्यवस्था की,	द्विजान्	ब्राह्मणोंका ॥३२॥
स्वस्त्ययनं	स्वस्ति-पाठ		

उपहृत्य बलीन् सर्वानादृता यवसं गवाम् ।
गोधनानि पुरस्कृत्य गिरिं चक्रुः प्रदक्षिणम् ॥३३॥

उपहृत्य बलीन् सर्वान् आदृता यवसं गवां गोधनानि पुरः कृत्य गिरिं चक्रुः प्रदक्षिणम् ॥३३॥

बलीन् उपहृत्य	भेंट-उपहार देकर	पुरः कृत्य	आगे करके
सर्वान् आदृता	सबका सत्कार करके	गिरिं	गिरिराज (गोवर्धन)
गवां	गायोंको		की
यवसं	हरी घास (खिला-कर)	प्रदक्षिणं	प्रदक्षिणा
		चक्रुः	करने लगे ॥३३॥
गोधनानि	गायोंको		

अनांस्यनड्युक्तानि ते चारुह्य स्वलङ्कृताः ।
गोप्यश्च कृष्णवीर्याणि गायन्त्यः सद्विजाशिषः ॥३४॥

अनांसि अनड्युः युक्तानि ते च आरुह्य स्वलंकृताः गोप्यः च कृष्ण वीर्याणि गायन्त्यः स द्विज आशिषः ॥३४॥

स द्विज	ब्राह्मणोंका	आशिषः	आशीर्वाद लेकर

ते गोप्यः च	वे गोपियां भी	आरुह्य	बैठकर
स्वलंकृताः	अपने आभूषण पहिन कर	च कृष्ण	तथा श्रीकृष्णके
		वीर्याणि	पराक्रमोंको
अनडुः युक्तानि	बैलोंसे जुड़े हुए	गायन्त्यः	गाती हुई (परिक्रमा करती थीं) ॥३४॥
अनांसि	छकड़ोंपर		

कृष्णस्त्वन्यतमं रूपं गोपविश्रम्भणं गतः ।
शैलोऽस्मीति ब्रुवन् भूरि बलिमादद् बृहद्वपुः ॥३५॥

कृष्णः तु अन्यतमं रूपं गोप विश्रम्भणं गतः शैलः अस्मि इति ब्रुवन् भूरि बलिं अदत् बृहत् वपुः ॥३५॥

कृष्णः तु	श्रीकृष्णने तो	गतः	धारण करके
गोप	गोपोंको	शैलः अस्मि	'मैं पर्वत हूँ'
विश्रम्भणं	विश्वास दिलाने-वाला	इति ब्रुवन्	ऐसा कहते हुए
		भूरि बलिं	बहुत-सा उपहार पदार्थ
अन्यतमं	दूसरा ही		
बृहत् वपुः	बड़ा भारी शरीर	अदत्	खाया ॥३५॥

तस्मै नमो व्रजजनैः सह चक्रे आत्मनाऽऽत्मने ।
अहो पश्यत शैलोऽसौ रूपी नोऽनुग्रहं व्यधात् ॥३६॥

तस्मै नमः व्रजजनैः सह चक्रे आत्मना आत्मने अहो पश्यत शैलः असौ रूपी नः अनुग्रहं व्यधात् ॥३६॥

तस्मै	उस	अहो पश्यत	अहो ! देखो तो
आत्मने	अपने स्वरूपको	असौ शैलः	इन पर्वतराजने
व्रजजनैः	व्रजके लोगोंके	रूपी	साक्षात् प्रगट होकर
सह	साथ	नः	हम सबपर
आत्मना	स्वयं	अनुग्रहं	अनुग्रह
नमः चक्रे	नमस्कार किया (और बोले)	व्यधात्	किया है ॥३६॥

एषोऽवजानतो मर्त्यान् कामरूपी वनौकसः ।
हन्ति ह्यस्मै नमस्यामः शर्मणे आत्मनो गवाम् ॥३७॥

एषः अवजानतः मर्त्यान् कामरूपी वनौकसः हन्ति हि अस्मै नमस्यामः शर्मणे आत्मनः गवाम् ॥३७॥

एषः	ये	**हि हन्ति**	क्योंकि मार देते हैं
कामरूपी	इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले		अतः
		आत्मनः	अपनी और
अवजानतः	अपना अपमान करनेवाले	**गवां**	गायोंकी
		शर्मणे	कुशलताके लिए
वनौकसः	वनवासी	**अस्मै**	इनको हम सब
मर्त्यान्	मनुष्योंको	**नमस्यामः**	नमस्कार करेंगे ॥३७॥

इत्यद्रिगोद्विजमखं वासुदेवप्रणोदिताः ।
यथा विधाय ते गोपाः सहकृष्णा व्रजं ययुः ॥३८॥

इति अद्रि गो द्विज मखं वासुदेव प्रणोदिताः यथा विधाय ते गोपाः सहकृष्णा व्रजं ययुः ॥३८॥

इति	इस प्रकार	**द्विज मखं**	ब्राह्मणोंके लिए यज्ञ
वासुदेव	श्रीकृष्ण द्वारा	**यथा**	जैसा कहा गया
प्रणोदिताः	प्रेरित होकर	**विधाय**	वैसा करके
ते गोपाः	उन गोपोंने	**सहकृष्णा**	श्रीकृष्णके साथ
अद्रि गो	पर्वत, गायों तथा	**व्रजं ययुः**	व्रजमें आ गये ॥३८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

अथ पंचविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

इन्द्रस्तदाऽऽत्मनः पूजां विज्ञाय विहतां नृप ।
गोपेभ्यः कृष्णनाथेभ्यो नन्दादिभ्यश्चुकोप सः ॥ १ ॥

इन्द्रः तत् आत्मनः पूजां विज्ञाय विहतां नृप गोपेभ्यः कृष्ण नाथेभ्यः नन्द आदिभ्यः चुकोप सः ॥१॥

नृप	राजन् !	**नन्द आदिभ्यः**	उन नन्द आदि
आत्मनः पूजां	अपनी पूजा	**गोपेभ्यः**	गोपोंपर
विहतां विज्ञाय	बन्द कर दी गयी जानकर	**सः इन्द्रः**	वे इन्द्र
		चुकोप	क्रुद्ध हुए ॥१॥
कृष्ण नाथेभ्यः	जिनके स्वामी श्रीकृष्ण हैं		

गणं सांवतकं नाम मेघानां चान्तकारिणाम् ।
इन्द्रः प्राचोदयत् क्रुद्धो वाक्यं चाहेशमान्युत ॥ २ ॥

गणं सांवर्तकं नाम मेघानां च अन्तकारिणां इन्द्रः प्राचोदयत् क्रुद्धः वाक्यं च आह ईशमानि उत ॥२॥

ईशमानि	अपनेको समर्थ माननेवाले	**मेघानां गणं**	मेघगणोंको
		प्राचोदयत्	तीव्र प्रेरणा भी दी
इन्द्रः क्रुद्धः	इन्द्रने कुपित होकर	**उत वाक्यं**	तथा यह बात
सांवर्तकं नाम	सांवर्तक नामक	**च आह**	भी बोले ॥२॥
अन्तकारिणां	प्रलय करनेवाले		

इन्द्रोवाच*

अहो श्रीमदमाहात्म्यं गोपानां काननौकसाम् ।
कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य ये चक्रुर्देवहेलनम् ॥ ३ ॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अहो श्रीमद् माहात्म्यं गोपानां काननौकसां कृष्णं मर्त्यं उप आश्रित्य ये चक्रुः देव हेलनम् ॥३॥

अहो	अहो !
काननौकसां	वनवासी
गोपानां	गोपोंकी
श्रीमद्	धनमदकी
माहात्म्यं	महिमा !
ये मर्त्यं कृष्णं	जिन्होंने मरणधर्मा श्रीकृष्णका
उप आश्रित्य	सहारा लेकर
देव हेलनं	देवताकी अवहेलना
चक्रुः	किया है ॥३॥

यथादृढैः कर्ममयैः क्रतुभिर्नामनौभिः ।
विद्यामान्वीक्षिकीं हित्वा तितीर्षन्ति भवार्णवम् ॥ ४ ॥

यथा दृढैः कर्ममयैः क्रतुभिः नाम नौभिः विद्यां आन्वीक्षिकीं हित्वा तितीर्षन्ति भव अर्णवम् ॥४॥

यथा दृढैः	जैसे सुदृढ़
आन्वीक्षिकीं	मननात्मक ब्रह्म-
विद्यां	विद्याको
हित्वा	छोड़कर
कर्ममयैः क्रतुभिः	कर्मात्मक यज्ञोंकी
नाम निभैः नौः	नाममात्रकी नौकासे
भव अर्णवं	संसार-सागरको
तितीर्षन्ति	(अज्ञ लोग) पार करना चाहते हैं ॥४॥

वाचालं बालिशं स्तब्धमज्ञं पण्डितमानिनम् ।
कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य गोपा मे चक्रुरप्रियम् ॥ ५ ॥

वाचालं बालिशं स्तब्धं अज्ञं पण्डित मानिनं कृष्णं मर्त्यं उप आश्रित्य गोपाः मे चक्रुः अप्रियम् ॥५॥

वाचालं	बकवादी,
बालिशं	नासमझ,
स्तब्धं	अभिमानी,
अज्ञं	अज्ञानी
पण्डित मानिनं	अपनेको विद्वान माननेवाले
मर्त्यं कृष्णं	मरणधर्मा कृष्णका
उप आश्रित्य	सहारा लेकर
गोपाः मे	गोपोंने मेरा
अप्रियं चक्रुः	अप्रिय किया है ॥५॥

एषां श्रियावलिप्तानां कृष्णेनाध्मायितात्मनाम् ।
धुनुत श्रीमदस्तम्भं पशुन् नयत संक्षयम् ॥ ६ ॥

एषां श्रियाः अवलिप्तानां कृष्णेन आध्मायित आत्मनां धुनुत श्रीमद स्तम्भं पशुन् नयत संक्षयम् ॥६॥

श्रियाः	धनके
अवलिप्तानां	मदमें चूर,
कृष्णेन	कृष्ण द्वारा
आध्मायित	बढ़ाये गये
आत्मनां	चित्तवाले
एषां श्रीमद	इनके लक्ष्मीके गर्वका
स्तम्भं धुनुत	घमण्ड धुन दो,
पशुन् संक्षयं	(इनके) पशुओंको विनाश
नयत	प्राप्त कराओ ॥६॥

अहं चैरावतं नागमारुह्यानुव्रजे व्रजम् ।
मरुद्गणैर्महावीर्यैर्नन्दगोष्ठजिघांसया ॥ ७ ॥

अहं च ऐरावतं नागं आरुह्य अनुव्रजे व्रजं मरुद्गणैः महावीर्यैः नन्द गोष्ठ जिघांसया ॥७॥

नन्द गोष्ठ	नन्दके गोष्ठको
जिघांसया	नष्ट करनेके लिए
महावीर्यैः	अत्यन्त पराक्रमी
मरुद्गणैः	मरुद्गणोंके साथ
अहं च	मैं भी
ऐरावतं नागं	ऐरावत हाथीपर
आरुह्य व्रजम्	चढ़कर व्रजमें
अनुव्रजे	(तुम्हारे) पीछे ही आ रहा हूँ ॥७॥

श्रीशुक उवाच

इत्थं मघवताऽऽज्ञप्ता मेघा निर्मुक्तबन्धनाः ।
नन्दगोकुलमासारैः पीडयामासुरोजसा ॥ ८ ॥

इत्थं मघवता आज्ञप्ता मेघा निर्मुक्त बन्धनाः नन्द गोकुलं आसारैः पीडयामासुः ओजसाः ॥८॥

मघवता	इन्द्र द्वारा
इत्थं आज्ञप्ता	इस प्रकार आज्ञा देकर
बन्धनाः	बन्धनसे
निर्मुक्त	छोड़ दिये गये
मेघा ओजसाः	मेघोंने वेगपूर्वक

आसारैः	वर्षासे	पीडयामासुः	पीड़ा देना प्रारम्भ
नन्द गोकुलं	नन्दके गोष्ठको		किया ॥८॥

विद्योतमाना विद्युद्भिः स्तनन्तः स्तनयित्नुभिः ।
तीव्रैर्मरुद्गणैर्नुन्ना ववृषुर्जलशर्कराः ॥ ९ ॥

विद्योतमाना विद्युत्भिः स्तनन्तः स्तनयित्नुभिः तीव्रैः मरुद्गणैः नुन्ना ववृषुः जल शर्कराः ॥९॥

विद्युत्भिः	बिजलियोंके	तीव्रैः	तीव्र
विद्योतमाना	चमकते हुए,	मरुद्गणैः	आंधियोंके द्वारा
स्तनयित्नुभिः	बादलोंके टकराकर	नुन्ना	प्रेरित
स्तनन्तः	गड़गड़ानेसे तथा	जल शर्कराः	ओले
		ववृषुः	बरसाने लगे ॥९॥

स्थूणास्थूला वर्षधारा मुञ्चत्स्वभ्रेष्वभीक्षणशः ।
जलौघैः प्लाव्यमाना भूर्नादृश्यत नतोन्नतम् ॥१०॥

स्थूणास्थूला वर्षधारा मुञ्चत्सु अभ्रेषु अभीक्षणशः जल ओघैः प्लाव्यमाना भूः न दृश्यत नत उन्नतम् ॥१०॥

स्थूणा स्थूला	खम्भेके समान मोटी	जल ओघैः	पानीकी बाढ़से
वर्षधारा	वर्षाकी धारा	प्लाव्यमाना	डुबायी जाती
अभ्रेषु	बादलोंके	नत उन्नतं भूः	नीची-ऊँची पृथ्वी
अभीक्षणशः	अखण्ड	दृश्यत न	दीखती नहीं थी
मुञ्चत्सु	छोड़नेसे		॥१०॥

अत्यासारातिवातेन पशवो जातवेपनाः ।
गोपा गोप्यश्च शीतार्ता गोविन्दं शरणं ययुः ॥११॥

अति आसार अति वातेन पशवः जातवेपनाः गोपा गोप्यः च शीत आर्ता गोविन्दं शरणं ययुः ॥११॥

अति आसार	अतिवृष्टि तथा	पशवः	पशुओंको
अति वातेन	झंझावातसे	जातवेपनाः	कम्प उत्पन्न हो गया,

गोपा गोप्यः च	गोप-गोपियां भी	**गोविन्दं**	गोविन्दकी
शीत आर्ता	ठण्डसे व्याकुल होकर	**शरणं ययुः**	शरणमें गये ॥११॥

शिरः सुतांश्च कायेन प्रच्छाद्यासारपीडिताः ।
वेपमाना भगवतः पादमूलमुपाययुः ॥१२॥

शिरः सुतान् च कायेन प्रच्छाद्य आसार पीडिताः वेपमाना भगवतः पादमूलं उप आययुः ॥१२॥

आसार	वर्षासे	**कायेन**	अपने शरीरसे
पीडिताः	पीड़ित होकर	**प्रच्छाद्य**	छिपाकर
वेपमाना	काँपते हुए	**भगवतः**	भगवानके
च सुतान्	तथा पुत्रोंके	**पादमूलं**	चरणोंके
शिरः	सिर	**उप आययुः**	समीप आये ॥१२॥

कृष्ण कृष्ण महाभाग त्वन्नाथं गोकुलं प्रभो
त्रातुमर्हसि देवान्नः कुपिताद् भक्तवत्सल ॥१३॥

कृष्ण कृष्ण महाभाग त्वत् नाथं गोकुलं प्रभो त्रातुं अर्हसि देवात् नः कुपितात् भक्तवत्सल ॥१३॥

भक्तवत्सल	(बोले) भक्तवत्सल	**नः**	हमारी
कृष्ण	कृष्ण !	**कुपितात्**	कुपित हुए
महाभाग	महाभाग	**देवात्**	देवतासे
कृष्ण	कृष्ण !	**त्रातुं**	तुमको रक्षा
त्वत्	जिसके तुम्हीं	**अर्हसि**	करनी चाहिए ॥१३॥
नाथं	स्वामी हो उस		
गोकुलं	गौओंकी तथा		

शिलावर्षनिपातेन हन्यमानमचेतनम् ।
निरीक्ष्य भगवान् मेने कुपितेन्द्रकृतं हरिः ॥१४॥

शिलावर्ष निपातेन हन्यमानं अचेतनं निरीक्ष्य भगवान् मेने कुपित इन्द्र कृतं हरिः ॥१४॥

शिलावर्ष	ओलोंकी वर्षाके	भगवान् हरिः	भगवान श्रीहरिने
निपातेन	जोरसे होनेसे	कुपित इन्द्र	क्रुद्ध इन्द्रकी
हन्यमानं	पीटे जाते	कृतं	करतूत
अचेतनं	मूर्छितसे	मेने	(इसे) मान लिया
निरीक्ष्य	(उन लोगोंको) देखकर		॥१४॥

अपर्त्वत्युल्बणं वर्षमतिवातं शिलामयम् ।
स्वयागे विहतेऽस्माभिरिन्द्रो नाशाय वर्षति ॥१५॥

अपर्ति अति उल्बणं वर्ष अतिवातं शिलामयं स्वयागे विहते अस्माभिः इन्द्रः नाशाय वर्षति ॥१५॥

अति उल्वणं	(समझ लिया) बहुत घोर	अस्माभिः	हम लोगों द्वारा
		स्वयागे	अपना यज्ञ
वर्ष	वर्षा	विहते	भंग कर देनेसे
अतिवातं	झंझावात तथा	इन्द्रः	इन्द्र (हमारा)
शिलामयं	ओलोंसे भरी	नाशाय	विनाश करनेके लिए
अर्पति	हो रही है (इससे स्पष्ट है कि)	वर्षति	वर्षा कर रहा है ॥१५॥

तत्र प्रतिविधिं सम्यगात्मयोगेन साधये ।
लोकेशमानिनां मौढ्याद्धरिष्ये श्रीमदं तमः ॥१६॥

तत्र प्रतिविधिं सम्यक् आत्मयोगेन साधये लोक ईश मानिनां मौढ्यात् हरिष्य श्रीमदं तमः ॥१६॥

तत्र	इसका	ईश मानिनां	स्वामी माननेवाले (इन्द्र) का
आत्मयोगेन	योगमाया द्वारा		
सम्यक्	पूरा	श्रीमदं	ऐश्वर्यके गर्वका
प्रतिविधिं	प्रतिकार	तमः	अज्ञान
साधये	सिद्ध कर दूंगा,	हरिष्ये	हरण कर लूंगा ॥१६॥
मौढ्यात्	मूर्खतावश		
लोक	अपनेको लोकोंका		

न हि सद्भावयुक्तानां सुराणामीशविस्मयः ।
मत्तोऽसतां मानभङ्गः प्रशमायोपकल्पते ॥१७॥

न हि सत् भाव युक्तानां सुराणां ईश विस्मयः मत्तः असतां मानभङ्गः प्रशमाय उपकल्पते ॥१७॥

सत्भाव	सत्त्वगुण	असतां मत्तः	दुष्टोंका मेरे द्वारा
युक्तानां	युक्त	मानभङ्गः	मान भंग होना
सुराणां	देवताओंके	प्रशमाय	उनको शान्ति
ईश	स्वामीके लिए भी	उपकल्पते	दायक होता है ॥१७॥
विस्मयः	यह आश्चर्य जनक		
न हि	नहीं ही है और		

तस्मान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम् ।
गोपाये स्वात्मयोगेन सोऽयं मे व्रत आहितः ॥१८॥

तस्मात् मत् शरणं गोष्ठं मत् नाथं मत् परिग्रहं गोपाये स्व आत्म योगेन सः अयं मे व्रत आहितः ॥१८॥

तस्मात्	इसलिए	गोपाये	रक्षा करूँगा
मत् शरणं	मेरी शरणमें आये,	सः अयं	यह (शरणागत रक्षा)
मत् नाथं	मुझे ही स्वामी माननेवाले,	मे व्रत	मेरा व्रत
मत् परिग्रहं	मेरे द्वारा स्वीकृत	आहितः	(उसकी रक्षाका समय) आ गया है ॥१८॥
गोष्ठं स्व	गोष्ठकी अपनी		
आत्म योगेन	अपनी योगमाया द्वारा		

इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धनाचलम् ।
दधार लीलया कृष्णश्छत्राकमिव बालकः ॥१९॥

इति उक्त्वा एकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धन अचलं दधार लीलया कृष्णः छत्राकं इव बालकः ॥१९॥

इति उक्त्वा	ऐसा कहकर	गोवर्धन अचलं	गोवर्धन पर्वतको
एकेन हस्तेन	एक ही हाथपर	कृत्वा	उठाकर

कृष्णः	श्रीकृष्णने	बालकः इव	बालकके समान
लीलया	खेलमें	दधार	धारण कर लिया
छत्राकं	बरसाती छत्तेको		॥१९॥

अथाह भगवान् गोपान् हेऽम्ब तात व्रजौकसः ।
यथोपजोषं विशत गिरिगर्तं सगोधनाः ॥२०॥

अथ आह भगवान् गोपान् हे अम्ब तात व्रजौकसः यथा उपजोषं विशत गिरिगर्तं स गोधनाः ॥२०॥

अथ भगवान्	फिर भगवान्ने	गिरिगर्तं	पर्वतके नीचे
गोपान् आह	गोपोंसे कहा	यथा उपजोषं	अपनी
हे अम्ब तात	हे मैया ! बाबा !		सुविधानुसार
व्रजौकसः	व्रजवासियों !	विशत	प्रवेश कर जाओ
स गोधनाः	गायोंके साथ		॥२०॥

न त्रास इह वः कार्यो मद्धस्ताद्रिनिपातने ।
वातवर्षभयेनालं तत्त्राणं विहितं हि वः ॥२१॥

न त्रास इह वः कार्यः मत् हस्तात् अद्रि निपातने वात वर्ष भयेन अलं तत् त्राणं विहितं हि वः ॥२१॥

इह वः	यहां तुम लोगोंको	वात वर्ष	आंधी और वर्षका
मत् हस्तात्	मेरे हाथसे	भयेन अलं	भय भी बन्द करो
अद्रि	पर्वत	हि वः	क्योंकि तुम लोगोंकी
निपातने	गिरा देनेका	तत् त्राणं	उससे रक्षाकी
त्रासः न	भय नहीं	विहितं	व्यवस्था कर दी
कार्यः	करना चाहिए		गयी है ॥२१॥

तथा निर्विविशुर्गर्तं कृष्णाश्वासितमानसाः ।
यथावकाशं सधनाः सव्रजाः सोपजीविनः ॥२२॥

तथा निर्विविशुः गर्तं कृष्णेन आश्वासित मानसाः यथा अवकाशं सधनाः सव्रजाः स उपजीविनः ॥२२॥

तथा	इस प्रकार	**स प्रजाः**	अपनी सन्तानोंके साथ
कृष्णेन	श्रीकृष्ण द्वारा	**स**	जिनकी
आश्वासित	आश्वासन प्राप्त	**उपजीविनः**	जीविका अपनेपर निर्भर है उन (सेवक-पुरोहितादि) के साथ
मानसाः	चित्त		
यथा अवकाशं	सुविधाके स्थानके अनुसार		
सधनाः	अपनी सम्पत्तिके साथ,	**गर्तं**	(पर्वतके) गड्ढेमें
		निर्विविशुः	प्रवेश कर गये ॥२२॥

क्षुत्तृड्व्यथां सुखापेक्षां हित्वा तैर्व्रजवासिभिः ।
वीक्ष्यमाणो दधावद्रिं सप्ताहं नाचलत् पदात् ॥२३॥

क्षुत् तृट् व्यथां सुख अपेक्षां हित्वा तैः व्रजवासिभिः वीक्ष्यमाणः दधाः अद्रिं सप्ताहं न अचलत् पदात् ॥२३॥

क्षुत् तृट्	भूख-प्यासकी	**वीक्ष्यमाणः**	देखे जाते हुए
व्यथां	पीड़ा	**सप्ताहं**	एक सप्ताह तक
सुख	तथा सुख-सुविधाकी	**अद्रिं दधाः**	पर्वत धारण किये रहे
अपेक्षां	अपेक्षा		
हित्वा	त्यागकर	**पदात्**	अपने स्थानसे
तैः	उन	**अचलत् न**	हिले नहीं ॥२३॥
व्रजवासिभिः	व्रजवासियों द्वारा		

कृष्णयोगानुभावं तं निशाम्येन्द्रोऽतिविस्मितः ।
निःस्तम्भो भ्रष्टसङ्कल्पः स्वान् मेघान् संन्यवारयत् ॥२४॥

कृष्ण योग अनुभावं तं निशाम्य इन्द्रः अतिविस्मितः निःस्तम्भः भ्रष्ट सङ्कल्पः स्वान् मेघान् संन्यवारयत् ॥२४॥

तं कृष्ण	उस श्रीकृष्णके	**भ्रष्ट सङ्कल्पः**	उनका संकल्प नष्ट हो गया
योग अनुभावं	योगके प्रभावको		
निशाम्य	देखकर	**स्वान् मेघान्**	अपने मेघोंको
इन्द्रः	इन्द्र	**संन्यवारयत्**	पूर्णतः रोक दिया ॥२४॥
अतिविस्मितः	बहुत चकित हुए		
निःस्तम्भः	गर्व रहित हो गये,		

खं व्यभ्रमुदितादित्यं वातवर्षं च दारुणम् ।
निशाम्योपरतं गोपान् गोवर्धनधरोऽब्रवीत् ॥२५॥

खं व्यभ्रं उदित आदित्यं वात वर्षं च दारुणं निशाम्य उपरतं गोपान् गोवर्धनधरः अब्रवीत् ॥२५॥

दारुणं वात	घोर वायु और	**उदित**	निकला
वर्षं	वर्षाके	**निशाम्य**	देखकर
उपरतं	रुक जानेपर	**गोपान्**	गोपोंसे
खं व्यभ्रं	आकाशको मेघहीन	**गोवर्धनधरः**	गोवर्धनधारी
च आदित्यं	तथा सूर्यको	**अब्रवीत्**	बोले ॥२५॥

निर्यात त्यजत त्रासं गोपाः सस्त्रीधनार्भकाः ।
उपारतं वातवर्षं व्युदप्रायाश्च निम्नगाः ॥२६॥

निर्यात त्यजत त्रासं गोपाः स स्त्री धन अर्भकाः उपारतं वात वर्षं व्युदप्रायाः च निम्नगाः ॥२६॥

गोपाः	गोपो !	**वात वर्षं**	आंधी-वर्षा
त्रासं त्यजत	भय छोड़ दो,	**उपारतं**	रुक गयी है
स्त्री धन	स्त्रियों, सम्पति,	**च निम्नगाः**	तथा नदियोंका
अर्भकाः स	बच्चोंके साथ	**व्युदप्रायाः**	जल प्रायः उतर
निर्यात	(बाहर) निकल जाओ,		गया है ॥२६॥

ततस्ते निर्ययुर्गोपाः स्वं स्वमादाय गोधनम् ।
शकटोढोपकरणं स्त्रीबालस्थविराः शनैः ॥२७॥

ततः ते निर्ययुः गोपाः स्वं स्वं आदाय गोधनं शकट ऊढ उपकरणं स्त्री बाल स्थविराः शनैः ॥२७॥

ततः ते	तब वे	**स्त्री बाल**	स्त्री, बच्चे
गोपाः स्वं स्वं	गोप अपनी-अपनी	**स्थविराः**	वृद्धोंको
गोधनं	गायोंको तथा	**आदाय**	लेकर
शकट ऊढ	छकड़ोंपर लदी	**शनैः निर्ययुः**	धीरेसे निकल गये
उपकरणं	सामग्री,		॥२७॥

भगवानपि तं शैलं स्वस्थाने पूर्ववत् प्रभुः ।
पश्यतां सर्वभूतानां स्थापयामास लीलया ॥२८॥

भगवान् अपि तं शैलं स्व स्थाने पूर्ववत् प्रभुः पश्यतां सर्वभूतानां स्थापयामास लीलया ॥२८॥

प्रभुः	समर्थ	**तं शैलं**	उस पर्वतको
भगवान् अपि	भगवान्ने भी	**पूर्ववत्**	पहिलेके समान
सर्वभूतानां	सब प्राणियोंके	**स्थापयामास**	स्थापित कर दिया
पश्यतां	देखते हुए		॥२८॥
लीलया	लीला पूर्वक		

तं प्रेमवेगान्निभृता व्रजौकसो
यथा समीयुः परिरम्भणादिभिः ।
गोप्यश्च सस्नेहमपूजयन् मुदा
दध्यक्षताद्भिर्युयुजुः सदाशिषः ॥२९॥

तं प्रेमवेगात् निभृता व्रजौकसः यथा समीयुः परिरम्भण आदिभिः गोप्यः च सस्नेहं अपूजयन् मुदा दधि अक्षत् आदिभिः युयुजुः सत् आशिषः ॥२९॥

व्रजौकसः	व्रजवासी भी	**सस्नेहं**	स्नेह पूर्वक
प्रेमवेगात्	प्रेमावेशसे	**मुदा**	प्रसन्न होकर
परिरम्भण	आलिंगन	**दधि अक्षत्**	दही, अक्षत
आदिभिः	आदिके द्वारा	**आदिभिः**	आदिसे
तं समीयुः	उनसे भली प्रकार मिले,	**अपूजयन्**	सत्कार करके
		सत् आशिषः	उत्तम आशीर्वाद
च गोप्यः	तथा गोपियोंने	**युयुजुः**	दिये ॥२९॥

यशोदा रोहिणी नन्दो रामश्च बलिनां वरः ।
कृष्णमालिङ्ग्य युयुजुराशिषः स्नेहकातराः ॥३०॥

यशोदा रोहिणी नन्दः रामः च बलिनां वरः कृष्णं आलिंग्य युयुजुः आशिषः स्नेह कातराः ॥३०॥

स्नेह कातराः	स्नेह कातर	रामः	बलरामजीने
यशोदा	यशोदा,	कृष्णं	श्रीकृष्णका
रोहिणी	रोहिणी,	आलिंग्य	आलिंगन करके
नन्दः च	नन्द तथा	आशिषः	आशीर्वाद
बलिनां वरः	बलवानोंमें श्रेष्ठ	युयुजुः	दिये ॥३०॥

दिवि देवगणाः साध्याः सिद्धगन्धर्वचारणाः ।
तुष्टुवुर्मुमुचुस्तुष्टाः पुष्पवर्षाणि पार्थिव ॥३१॥

दिवि देवगणाः साध्याः सिद्ध गन्धर्व चारणाः तुष्टुवुः मुमुचुः तुष्टाः पुष्प वर्षाणि पार्थिव ॥३१॥

पार्थिव	राजन् !	चारणाः	चारणोंने
तुष्टाः	सन्तुष्ट	दिवि	आकाशसे
देवगणाः	देवताओं	तुष्टुवुः	स्तुति की तथा
साध्याः	साध्य गणों,	पुष्प वर्षाणि	पुष्पोंकी वर्षा
सिद्ध गन्धर्व	सिद्धों, गन्धर्वों तथा	मुमुचुः	छोड़ी ॥३१॥

शङ्खदुन्दुभयो नेदुर्दिवि देवप्रणोदिताः ।
जगुर्गन्धर्वपतयस्तुम्बुरुप्रमुखा नृप ॥३२॥

शंख दुन्दुभयः नेदुः दिवि देव प्रणोदिताः जगुः गन्धर्वपतयः तुम्बरु प्रमुखा नृप ॥३२॥

नृप	राजन् !	तुम्बरु	तुम्बरू आदि
देव	देवताओं द्वारा	प्रमुखा	मुख्य
प्रणोदिताः	बजायी जाती	गन्धर्वपतयः	गन्धर्वराज
शंख दुन्दुभयः	शंख और नगाड़े	जगुः	गाने लगे ॥३२॥
दिवि नेदुः	आकाशमें बजने लगे		

ततोऽनुरक्तैः पशुपैः परिश्रितो
राजन् स गोष्ठं सबलोऽव्रजद्धरिः ।
तथाविधान्यस्य कृतानि गोपिका
गायन्त्य ईयुर्मुदिता हृदिस्पृशः ॥३३॥

ततः अनुरक्तैः पशुपैः परिश्रितः राजन् स गोष्ठं सबलः आव्रजत् हरिः तथा विधानि अस्य कृतानि गोपिका गायन्त्य ईयुः मुदिता हृदि स्पृशः ॥३३॥

राजन्	राजन् !	**तथा विधानि**	इस प्रकारके
ततः	इसके बाद	**हृदि स्पृशः**	हृदय स्पर्शी
अनुरक्तैः	अपने प्रेमी	**अस्य कृतानि**	इनके कर्मोंको
पशुपैः	गोपालकोंसे	**गायन्त्य**	गाती हुई
परिश्रितः	चारों ओरसे घिरे	**मुदिता**	आनन्दित
हरिः	श्रीकृष्ण	**गोपिका**	गोपियां भी
सबलः	बलरामजीके साथ	**ईयुः**	(व्रजमें) आयीं
स गोष्ठं	गोष्ठकी ओर		॥३३॥
आव्रजत्	चल पड़े		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

एवं विधानि कर्माणि गोपाः कृष्णस्य वीक्ष्य ते ।
अतद्वीर्यविदः प्रोचुः समभ्येत्य सुविस्मिताः ॥१॥

एवं विधानि कर्माणि गोपाः कृष्णस्य वीक्ष्य ते अतत् वीर्यविदः प्रोचुः सम् अभ्येत्य सुविस्मिताः ॥१॥

एवं विधानि	इस प्रकारके	विदः	न जाननेवाले
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके	गोपाः	गोपोंने
कर्माणि	कर्मोंको	सम् अभ्येत्य	एकत्र आकर
वीक्ष्य ते	देखकर उन	प्रोचुः	कहने लगे ॥१॥
अतत् वीर्य	उनके पराक्रमको		

बालकस्य यदेतानि कर्माण्यत्यद्भुतानि वै ।
कथमर्हत्यसौ जन्म ग्राम्येष्वात्मजुगुप्सितम् ॥२॥

बालकस्य यत् एतानि कर्माणि अति अद्भुतानि वै कथं अर्हति असौ जन्म ग्राम्येषु आत्म जुगुप्सितम् ॥२॥

यत्	क्योंकि (इस)	जुगुप्सितं	निन्दनीय
बालकस्य	बालकके	ग्राम्येषु	हम ग्रामीणोंमें
एतानि	ये	असौ	इसका
कर्माणि	कर्म	जन्म कथं	जन्म कैसे
वै अति	निश्चय अत्यन्त	अर्हति	होना उचित है
अद्भुतानि	अद्भुत हैं		॥२॥
आत्म	अतः अपने लिए		

यः सप्तहायनो बालः करेणैकेन लीलया ।
कथं बिभ्रद् गिरिवरं पुष्करं गजराडिव ॥३॥

यः सप्तहायनः बालः करेण एकेन लीलया कथं बिभ्रत् गिरिवरं पुष्करं गजराट् इव ॥३॥

यः	(कहां तो) यह	गजराट् इव	गजराजके समान
सप्तहायनः	सात वर्षका	लीलया	खेलमें
बालः	बच्चा है फिर	गिरिवरं	गिरिराजको
एकेन करेण	एक ही हाथसे	कथं	कैसे
पुष्करं	कमलको	बिभ्रत्	उठाये रहा ॥३॥

तोकेनामीलिताक्षेण पूतनाया महौजसः ।
पीतः स्तनः सह प्राणैः कालेनेव वयस्तनोः ॥४॥

तोकेन अमीलित अक्षेण पूतनाया महा ओजसः पीतः स्तनः सह प्राणैः कालेन इव वयसः तनोः ॥४॥

महा ओजसः	महान् ओजस्वी	अमीलित	बन्द किये ही
कालेन	कालके द्वारा	पूतनाया	पूतनाका
तनोः वयसः	शरीरकी आयुके	स्तनः	स्तन उसके
इव	समान	प्राणैः सह	प्राणोंके साथ
तोकेन	नन्हें शिशु रहते ही	पीतः	पिया था ॥४॥
अक्षेण	नेत्र		

हिन्वतोऽधः शयानस्य मास्यस्य चरणावुदक् ।
अनोऽपतद् विपर्यस्तं रुदतः प्रपदाहतम् ॥५॥

हिन्वतः अधः शयानस्य मास्यस्य चरणाः उदक् अनः अपतत् विपर्यस्तं रुदतः प्रपद आहतम् ॥५॥

मास्यस्य	एक महीनेका था तभी	उदक् हिन्वतः	ऊपर उछालनेसे
		प्रपद	पैरोंके ऊपरी भागसे
अधः	(छकड़ेके) नीचे	आहतं	टकराकर
शयानस्य	सोते हुएके	अनः विपर्यस्तं	छकड़ा उलटकर
रुदतः चरणाः	रोते हुए पैरोंको	अपतत्	गिर पड़ा ॥५॥

एकहायन आसीनो ह्रियमाणो विहायसा ।
दैत्येन यस्तृणावर्तमहन् कण्ठग्रहातुरम् ॥६॥

एक हायन आसीनः ह्रियमाणः विहायसा दैत्येन यः तृणावर्तं अहन् कण्ठग्रह आतुरम् ॥६॥

एक हायन	एक वर्षका था जब	**यः**	जो वह
आसीनः	बैठा था तब	**तृणावर्तं**	तृणावर्त नामक था
दैत्येन	दैत्यके द्वारा	**कण्ठग्रह**	गला पकड़नेसे
ह्रियमाणः	हरण करके	**आतुरं**	व्याकुल करके
विहायसा	आकाशमें (ले जाने-पर)	**अहन्**	मार दिया ॥.॥

क्वचिद्धैयङ्गवस्तैन्ये मात्रा बद्ध उलूखले ।
गच्छन्नर्जुनयोर्मध्ये बाहुभ्यां तावपातयत् ॥७॥

क्वचित् हैयङ्गवस्तैन्ये मात्रा बद्ध उलूखले गच्छन् अर्जुनयोः मध्ये बाहुभ्यां ताः अपातयत् ॥७॥

क्वचित्	कभी	**मध्ये**	बीचमें-से
हैयङ्गवस्तैन्ये	माखन चुरानेपर	**गच्छन् ताः**	निकलते हुए उनको
मात्रा	मैयाके द्वारा	**बाहुभ्यां**	अपनी भुजाओंसे
उलूखले	ऊखलमें	**अपातयत्**	(इसने) गिरा दिया ॥७॥
बद्ध	बाँधे जानेपर		
अर्जुनयोः	दोनों अर्जुन वृक्षोंके		

वने सञ्चारयन् वत्सान् सरामो बालकैर्वृतः ।
हन्तुकामं बकं दोर्भ्यां मुखतोऽरिमपाटयत् ॥८॥

वने सञ्चारयन् वत्सान् सरामः बालकैः वृतः हन्तुकामं बकं दोर्भ्यां मुखतः अरिं अपाटयत् ॥८॥

सरामः	बलरामके साथ	**सञ्चारयन्**	चराते समय
बालकैः वृतः	बालकोंसे घिरकर	**हन्तुकामं**	मारनेकी इच्छासे आये
वने वत्सान्	वनमें बछड़ोंको		

अरिं बकं	शत्रु बकासुरको	**मुखतः**	चोंच पकड़कर
दोर्भ्यां	हाथोंसे	**अपाटयत्**	चीर डाला ॥८॥

वत्सेषु वत्सरूपेण प्रविशन्तं जिघांसया ।
हत्वा न्यपातयत्तेन कपित्थानि च लीलया ॥९॥

वत्सेषु वत्सरूपेण प्रविशन्तं जिघांसया हत्वा न्यपातयत् तेन कपित्थानि च लीलया ॥९॥

वत्सरूपेण	बछड़ेके रूपमें आकर	**तेन**	उसी (के शरीर) से
जिघांसया	मारनेकी इच्छासे	**लीलया**	खेल करके
वत्सेषु	बछड़ोंमें	**कपित्थानि च**	कैथ भी
प्रविशन्तं	मिलते हुए (दैत्य) को	**न्यपातयत्**	गिराये ॥९॥
हत्वा	मारकर		

हत्वा रासभदैतेयं तद्बन्धूंश्च बलान्वितः ।
चक्रे तालवनं क्षेमं परिपक्वफलान्वितम् ॥१०॥

हत्वा रासभदैतेयं तत् बन्धून् च बल अन्वितः चक्रे तालवनं क्षेमं परिपक्व फल अन्वितम् ॥१०॥

बल	बलरामके साथ	**हत्वा**	मारकर
अन्वितः	मिलकर	**परिपक्व**	खूब पके हुए
रासभदैतेयं	गधा बने दैत्य (धेनुक) को	**फल अन्वितं**	फलोंसे युक्त
		तालवनं	ताड़ोंके वनको
च तत्	तथा उसके	**क्षेमं चक्रे**	निरापद बना दिया
बन्धून्	सम्बन्धियोंको		॥१०॥

प्रलम्बं घातयित्वोग्रं बलेन बलशालिना ।
अमोचयद् व्रजपशून् गोपांश्चारण्यवह्नितः ॥११॥

प्रलम्बं घातयित्वा उग्रं बलेन बलशालिना अमोचयत् व्रज पशून् गोपान् च अरण्यवह्नितः ॥११॥

बलशालिना	बलवान	**उग्रं प्रलम्बं**	क्रूर प्रलम्बासुरको
बलेन	बलराम द्वारा	**घातयित्वा**	मरवाकर

व्रज पशून्	व्रजके पशुओं	अरण्यवह्नितः	वनमें लगी अग्निसे
च गोपान्	तथा गोपोंको	अमोचयत्	छुड़ा लिया ॥११॥

आशीविषतमाहीन्द्रं दमित्वा विमदं ह्रदात् ।
प्रसह्योद्वास्य यमुनां चक्रेऽसौ निर्विषोदकाम् ॥१२॥

आशी विषतम अहीन्द्रं दमित्वा विमदं ह्रदात् प्रसह्य उद्वास्य यमुनां चक्रे असौ निर्विष उदकम् ॥१२॥

आशी	सर्प विषसे	प्रसह्य	बल पूर्वक
विषतम	अत्यन्त विषैले	ह्रदात्	दहसे
अहीन्द्रं	नागराज (कालिय) को	उद्वास्य	निर्वासित करके
		असौ यमुनां	इसने यमुनाको
दमित्वा	दमन करके	निर्विष उदकं	विषहीन जलवाली
विमदं	गर्वहीन करके	चक्रे	बना दिया ॥१२॥

दुस्त्यजश्चानुरागोऽस्मिन् सर्वेषां नो व्रजौकसाम् ।
नन्दते तनयेऽस्मासु तस्याप्यौत्पत्तिकः कथम् ॥१३॥

दुस्त्यजः च अनुरागः अस्मिन् सर्वेषां नः व्रजौकसां नन्द ते तनये अस्मासु तस्य अपि औत्पत्तिकः कथम् ॥१३॥

नन्द ते	नन्द तुम्हारे	च अस्मासु	तथा हम लोगोंसे
अस्मिन् तनये	इस पुत्रमें	तस्य अपि	उसका भी है
नः सर्वेषां	हम सब	औत्पत्तिकः	जन्मसे ही (ये गुण इसमें)
व्रजौकसां	व्रजवासियोंका		
दुस्त्यजः	दुस्त्याज्य	कथं	कैसे हैं ॥१३॥
अनुरागः	स्नेह है		

क्व सप्तहायनो बालः क्व महाद्रिविधारणम् ।
ततो नो जायते शङ्का व्रजनाथ तवात्मजे ॥१४॥

क्व सप्तहायनः बालः क्व महा अद्रि विधारणं ततः नः जायते शङ्का व्रजनाथ तव आत्मजे ॥१४॥

क्व	कहां तो	ततः व्रजनाथ	इसलिए व्रजराज
सप्तहायनः	सात वर्षका	तव	तुम्हारे
बालः	बालक और	आत्मजे	पुत्रके सम्बन्ध
क्व महा अद्रि	कहां बड़े पर्वतको	नः शङ्का	हमको शङ्का
विधारणं	उठाये रखना	जायते	होती है ॥१४॥

नन्द उवाच

श्रूयतां मे वचो गोपा व्येतु शङ्का च वोऽर्भके ।
एनं कुमारमुद्दिश्य गर्गो मे यदुवाच ह ॥१५॥

श्रूयतां मे वचः गोपा व्येतु शङ्का च वः अर्भके एनं कुमारं उद्दिश्य गर्गः मे यत् उवाच ह ॥१५॥

गोपा	गोपो !	मे वचः	मेरी बात
एनं कुमारं	इस बालकको	श्रूयतां	सुनो (जिससे)
उद्दिश्य	लक्षित करके	अर्भके वः	बच्चेके सम्बन्धमें आप सबकी
गर्गः	महर्षि गर्गाचार्यने		
मे	मुझसे	शङ्का व्येतु	शङ्का नष्ट हो जाय
यत् ह	जो निश्चय		॥१५॥
उवाच	पूर्वक कहा था, वह		

वर्णास्त्रयः किलास्यासन् गृह्णतोऽनुयुगं तनूः ।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥१६॥

वर्णाः त्रयः किल अस्य आसन् गृह्णतः अनुयुगं तनूः शुक्लः रक्तः तथा पीतः इदानीं कृष्णतां गतः ॥१६॥

अनुयुगं	प्रत्येक युगमें	शुक्लः रक्तः	श्वेत, लाल
तनूः गृह्णतः	शरीर धारण करते हुए	तथा पीतः	तथा पीला,
		इदानीं	इस समय
अस्य त्रयः	इसके तीन	कृष्णतां गतः	श्यामता प्राप्त हुआ है ॥१६॥
वर्णाः आसन्	रंग हुए थे		

प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः ।
वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः सम्प्रचक्षते ॥१७॥

प्राक् अयं वसुदेवस्य क्वचित् जातः तव आत्मजः वासुदेव इति श्रीमान् अभिज्ञाः सम्प्रचक्षते ॥१७॥

अयं तव	यह तुम्हारा	अभिज्ञाः	(अतः इसे) जानने-वाले
आत्मजः	पुत्र	श्रीमान्	श्रीमान्
प्राक् क्वचित्	पहिले कभी	वासुदेव	वासुदेव
वसुदेवस्य	वसुदेवजीके यहां	इति	इस प्रकार
जातः	उत्पन्न हुआ है	सम्प्रचक्षते	कहेंगे ॥१७॥

बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ।
गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥१८॥

बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते गुण कर्म अनुरूपाणि तानि अहं वेद नो जनाः ॥१८॥

ते सुतस्य	तुम्हारे पुत्रके	च रूपाणि सन्ति	तथा रूप हैं,
गुण कर्म	गुण और कर्मोंके	तानि अहं वेद	उनको मैं जानता हूँ
अनुरूपाणि	अनुकूल	जनाः	दूसरे लोग
बहूनि नामानि	बहुतसे नाम	नो	नहीं (जानते) ॥१८॥

एष वः श्रेय आधास्यद् गोपगोकुलनन्दनः ।
अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमञ्जस्तरिष्यथ ॥१९॥

एष वः श्रेय आधास्यत् गोप गोकुल नन्दनः अनेन सर्वदुर्गाणि यूयं अञ्जः तरिष्यथ ॥१९॥

एष गोप	यह गोप तथा	वः	तुम लोगोंका
गोकुल	गोकुलको	श्रेय आधास्यत्	कल्याण करेगा
नन्दनः	आनन्दित करने-वाला	सर्वदुर्गाणि	सब संकटोंको
		अनेन यूयं	इसके द्वारा तुम लोग

अञ्जः	सरलतासे	तरिष्यथ	पारकर जाओगे ॥१९॥

पुरानेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः ।
अराजकेरक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून् समेधिताः ॥२०॥

पुरा अनेन व्रजपते साधवः दस्यु पीडिताः अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युः दस्यून् समेधिताः ॥२०॥

व्रजपते	व्रजराज !	रक्ष्यमाणा	रक्षित होकर
पुरा	पहिले	समेधिताः	भली प्रकार समृद्ध होकर
अराजके	अराजकताके समय		
दस्यु पीडिताः	डाकुओंसे उत्पीड़ित	दस्यून्	डाकुओंको
साधवः	सत्पुरुषोंने	जिग्युः	जीत लिया था ॥२०॥
अनेन	इसके द्वार		

य एतस्मिन् महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः ।
नारयोऽभिभवन्त्येतान् विष्णुपक्षानिवासुराः ॥२१॥

यः एतस्मिन् महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः न अरयः अभिभवन्ति एतान् विष्णु पक्षान् इव असुराः ॥२१॥

यः	जो	पक्षान्	पक्षमें रहने वालोंको
महाभागाः	महाभाग्यवान्	असुराः इव	असुरोंके समान
मानवाः	मनुष्य	अरयः एतान्	शत्रु उनको
एतस्मिन्	इससे	अभिभवन्ति न	दबा नहीं सकेंगे ॥२१॥
प्रीतिं कुर्वन्ति	प्रीति करेंगे,		
विष्णु	भगवान् विष्णुके		

तस्मान्नन्द कुमारोऽयं नारायणसमो गुणैः ।
श्रिया कीर्त्यानुभावेन तत्कर्मसु न विस्मयः ॥२२॥

तस्मात् नन्द कुमारः अयं नारायण समः गुणैः श्रिया कीर्त्या अनुभावेन तत् कर्मसु न विस्मयः ॥२२॥

तस्मात् नन्द	इसलिए नन्द !	नारायण	नारायणके
अयं कुमारः	यह बालक	समः	समान है,
गुणैः श्रिया	गुणों, धन,	तत् कर्मसु	उसके कर्मोंमें
कीर्त्या	यश और	विस्मयः न	आश्चर्य मत करना
अनुभावेन	प्रभावमें		॥२२॥

इत्यद्धा मां समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते ।
मन्ये नारायणस्यांशं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥२३॥

इति अद्धा मां सम आदिश्य गर्गे च स्वगृहं गते मन्ये नारायणस्य अंशं कृष्णं अक्लिष्ट कारिणम् ॥२३॥

इति मां	इस प्रकार मुझे	अक्लिष्ट	क्लेशहीन
अद्धा	पूर्ण रूपसे	कारिणं	करनेवाले
सम आदिश्य	समझाते हुए आदेश	कृष्णं	श्रीकृष्णको
	देकर	नारायणस्य	नारायणका
गर्गे	गर्गाचार्यके	अंशं मन्ये	अंश मानता हूँ
स्वगृहं	अपने घर		॥२३॥
गते च	चले जानेपर		

श्रीशुक उवाच*

इति नन्दवचः श्रुत्वा गर्गगीतं व्रजौकसः ।
दृष्टश्रुतानुभावास्ते कृष्णस्यामिततेजसः ।
मुदिता नन्दमानर्चुः कृष्णं च गतविस्मयाः ॥२४॥

इति नन्दवचः श्रुत्वा गर्ग गीतं व्रजौकसः दृष्ट श्रुत अनुभावाः ते कृष्णस्य अमित तेजसः मुदिता नन्दं आनर्चुः कृष्णं च गत विस्मयाः ॥२४॥

इति	इस प्रकार	गर्ग गीतं	गर्गजी का कहा गया
नन्दवचः	नन्दजीके वर्णनसे	श्रुत्वा ते	सुनकर उन

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

व्रजौकसः	व्रजवासियोंका	मुदिताः	प्रसन्न होकर
गत विस्मयाः	आश्चर्य दूर हो गया,	नन्दं	नन्दजी
अमित तेजसः	अपार तेजस्वी	च कृष्णं	तथा श्रीकृष्णका
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके	आनर्चुः	सत्कार किया
अनुभावाः	प्रभावोंको		॥२४॥
दृष्ट श्रुत	(उन्होंने) देखा-सुना था, अतः		

देवे वर्षति यज्ञविप्लवरुषा
वज्राश्मपर्षानिलै.
सीदत्पालपशुस्त्रि आत्मशरणं
दृष्ट्वानुकम्प्युत्स्मयन् ।
उत्पाट्यैककरेण शैलमबलो
लीलोच्छिलीन्ध्रं यथा
बिभ्रद् गोष्ठमपान्महेन्द्रमदभित्
प्रीयान्न इन्द्रो गवाम् ॥२५॥

देवे वर्षति यज्ञ विप्लव रुषा वज्र अश्म पर्षा अनिलैः सीदत् पाल पशु स्त्रि आत्मशरणं दृष्ट्वा अनुकम्प्य उत्स्मयन् उत्पाट्य एक करेण शैलं अबलः लीला उच्छिलीन्ध्रं यथा बिभ्रत् गोष्ठं अपात् महेन्द्र मदभित् प्रीयात् नः इन्द्रः गवाम् ॥२५॥

यज्ञ	(अपना) यज्ञ	पाल पशु	गोप, गायें
विप्लव	भंग होनेसे	स्त्रि	तथा गोपियोंको
रुषा	कुपित होकर	सीदत्	कष्ट पाते हुए
देवे	इन्द्रदेवके	आत्मशरणं	अपनी शरण आये
वर्षति	वर्षा करनेपर	दृष्ट्वा	देखकर
वज्र अश्म	वज्रपात्, ओलों तथा	अनुकम्प्य	उनपर कृपा करके
पर्षा अनिलैः	प्रचण्ड आंधीसे	उत्स्मयन्	मुसकराते हुए
		एक करेण	एक ही हाथसे

अबलः	निर्बल बालक (या बलरामके अकेले ही)	**अपात्**	रक्षा कर ली
		महेन्द्र	वे इन्द्रका
लीला	खेलमें	**मदभित्**	घमण्ड चूर करने-वाले
यथा	जैसे		
उच्छिलीन्ध्रः	बरसाती छत्ता हो	**गवां इन्द्रः**	गोविन्द
शैलं उत्पाटच	पर्वत उखाड़कर	**नः**	हमपर
बिभ्रत्	धारण करके	**प्रीयात्**	प्रसन्न हों ॥२५॥
गोष्ठं	व्रजकी		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

गोवर्धने धृते शैल आसाराद् रक्षिते व्रजे ।
गोलोकादाव्रजत् कृष्णं सुरभिः शक्र एव च ॥१॥

गोवर्धने धृते शैल आसारात् रक्षिते व्रजे गोलोकात् आव्रजत् कृष्णं सुरभिः शक्र एव च ॥१॥

शैल	गिरिराज	**गोलोकात्**	गोलोकसे
गोवर्धने	गोवर्धनको	**सुरभिः**	कामधेनु
धृते	धारण करके	**च**	तथा (स्वर्गसे)
आसारात्	वर्षासे	**एव शक्र**	इन्द्र भी
व्रजे रक्षिते	व्रजकी रक्षा कर लेनेपर	**कृष्णं**	श्रीकृष्णके
		आव्रजत्	पास आये ॥१॥

विविक्त उपसङ्गम्य व्रीडितः कृतहेलनः ।
पस्पर्श पादयोरेनं किरीटेनार्कवर्चसा ॥२॥

विविक्त उपसङ्गम्य व्रीडितः कृत हेलनः पस्पर्श पादयोः एनं किरीटेन अर्कवर्चसा ॥२॥

कृत हेलनः	अवहेलना करनेसे	**अर्कवर्चसा**	सूर्यके समान कान्तिवाले
व्रीडितः	लज्जित		
विविक्त	एकान्तमें	**किरीटेन**	मुकुटके द्वारा
उपसङ्गम्य	समीप आकर	**एनं पादयोः**	इनके चरणोंका
		पस्पर्श	स्पर्श किया ॥२॥

दृष्टश्रुतानुभावोऽस्य कृष्णस्यामिततेजसः ।
नष्टत्रिलोकेशमद इन्द्र आह कृताञ्जलिः ॥३॥

दृष्ट श्रुत अनुभावः अस्य कृष्णस्य अमित तेजसः नष्ट त्रिलोक ईश मदः इन्द्र आह कृताञ्जलिः ॥३॥

अस्य	इन	मदः	होनेका गर्व
अमित तेजसः	अपार तेजस्वी	नष्ट	नष्ट हो चुका था
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके	इन्द्र	(अतः) इन्द्र
अनुभावः	प्रभावको	कृताञ्जलिः	हाथ जोड़कर
दृष्ट श्रुत	देख-सुनकर	आह	बोले ॥३॥
त्रिलोक ईश	त्रिलोकीके स्वामी		

इन्द्र उवाच

विशुद्धसत्त्वं तव धाम शान्तं
तपोमयं ध्वस्तरजस्तमस्कम् ।
मायामयोऽयं गुणसम्प्रवाहो
न विद्यते तेऽग्रहणानुबन्धः ॥४॥

विशुद्ध सत्त्वं तव धाम शान्तं तपः मयं ध्वस्त रजः तमस्कं मायामयः अयं गुण सम्प्रवाहः न विद्यते ते अग्रहण अनुबन्धः ॥४॥

तव धाम	आपका स्वरूप	गुण	गुणोंका
रजः	रजो गुण तथा	सम्प्रवाहः	प्रवाह रूप संसार
तमस्कं	तमोगुणको	ते न विद्यते	आपमें नहीं है
ध्वस्त	नष्ट कर देनेवाला	अग्रहण	आपका ग्रहण न होनेसे
विशुद्ध सत्त्वं	शुद्ध सत्व गुणमय		
तपः मयं	ज्योतिर्मय (ज्ञान स्वरूप) है	अनुबन्धः	(इसके होनेका) आग्रह है ॥४॥
अयं मायामयः	यह मायामय		

कुतो नु तद्धेतव ईश तत्कृता
लोभादयो येऽबुधलिङ्गभावाः ।
तथापि दण्डं भगवान् बिभर्ति
धर्मस्य गुप्त्यै खलनिग्रहाय ॥५॥

कुतः नु तत् हेतव ईश तत् कृता लोभ आदयः ये अबुध लिङ्ग भावाः तथा अपि दण्डं भगवान् बिभर्ति धर्मस्य गुप्त्यै खल निग्रहाय ॥५॥

नु तत्	भला फिर उस	तथा अपि	ऐसा होनेपर भी
हेतव	(अज्ञान) के कारण	भगवान्	भगवान् आप
तत् कृता	तथा उससे उत्पन्न	धर्मस्य	धर्मकी
ये लोभ आदयः	जो लोभ अदि	गुप्त्यै	रक्षाके लिए तथा
भावाः	भाव	खल निग्रहाय	दुष्ट-दमनके लिए
अबुध लिङ्ग	अज्ञानीके लक्षण हैं	दण्डं बिभर्ति	दण्ड-धारण करते
ईश	आप सर्वेशमें		(देते) हैं ॥५॥
कुतः	कहांसे होंगे,		

पिता गुरुस्त्वं जगतामधीशो
दुरत्ययः काल उपात्तदण्डः ।
हिताय स्वेच्छातनुभिः समीहसे
मानं विधुन्वञ्जगदीशमानिनाम् ॥६॥

पिता गुरुः त्वं जगतां अधीशः दुरत्ययः काल उपात्त दण्डः हिताय स्व इच्छातनुभिः समीहसे मानं विधुन्वन् जगदीश मानिनाम् ॥६॥

त्वं जगतां	आप सम्पूर्ण विश्वके	इच्छातनुभिः	इच्छासे अवतार
पिता गुरुः	पिता, गुरु तथा		रूपोंके द्वारा
अधीशः	स्वामी हैं,	जगदीश	अपनेको जगतका
उपात्त दण्डः	दण्ड उठाये		स्वामी
दुरत्ययः काल	दुष्पार काल हैं,	मानिनां	माननेवालोंका
हिताय	(संसारके) हितके	मानं	मान-मर्दन
	लिए	विधुन्वन्	करते हुए
स्व	अपनी	समीहसे	चेष्टा (लीला) करते
			रहते हैं ॥६॥

ये मद्विधाज्ञा जगदीशमानिन-
स्त्वां वीक्ष्य कालेऽभयमाशु तन्मदम् ।

हित्वाऽऽर्यमार्गं प्रभजन्त्यपस्मया
ईहा खलानामपि तेऽनुशासनम् ॥७॥

ये मत्विध अज्ञा जगत् ईश मानिनः त्वां वीक्ष्य काले अभयं आशु तत् मदं हित्वा आर्यं मार्गं प्रभजन्ति अपस्मया ईहा खलानां अपि ते अनुशासनम् ॥७॥

ये मत्विध	जो मेरे समान
जगत्	अपनेको जगत्का
ईश	स्वामी
मानिनः	माननेवाले
अज्ञा	अज्ञानी हैं
काले त्वां	समयपर आपको
अभयं वीक्ष्य	निर्भय देखकर
आशु तत्	शीघ्र उस
मदं	(अपने) गर्वको
हित्वा	त्यागकर
अपस्मया	गर्वहीन होकर
आर्यं	श्रेष्ठ पुरुषोंके
मार्गं	पथ
प्रभजन्ति	आ जाते हैं,
खलानां अपि	दुष्टोंके लिए भी
ते ईहा	आपकी चेष्टा
अनुशासनं	अनुशासित (नियन्त्रित) करनेवाली है ॥७॥

स त्वं ममैश्वर्यमदप्लुतस्य
कृतागसस्तेऽविदुषः प्रभावम् ।
क्षन्तुं प्रभोऽथार्हसि मूढचेतसो
मैवं पुनर्भून्मतिरीश मेऽसती ॥८॥

स त्वं मम ऐश्वर्य मद आप्लुतस्य कृतागसः ते अविदुषः प्रभावं क्षन्तुं प्रभो अथ अर्हसि मूढ चेतसः मा एवं पुनः भूत् मतिः ईश मे असती ॥८॥

ऐश्वर्य मद	ऐश्वर्यके मदमें
आप्लुतस्य	डूबे हुए
ते प्रभावं	आपके प्रभावको
अविदुषः	न जाननेके कारण
कृतागसः	अपराध करनेवाले
प्रभो	प्रभो !
अथ	अतः अब
स त्वं	उस आपको
मूढ चेतसः	मूढ़ बुद्धि
मम क्षन्तुं	मुझे क्षमा
अर्हसि	कर देना चाहिए
ईश पुनः	स्वामी ! फिर
एवं	इस प्रकारकी
मे असती मतिः	मेरी कुबुद्धि
मा भूत	न होवे ॥८॥

तवावतारोऽयमधोक्षजेह

स्वयम्भराणामुरुभारजन्मनाम् ।

चमूपतीनामभवाय देव

भवाय युष्मच्चरणानुवर्तिनाम् ॥६॥

तव अवतारः अयं अधोक्षज इह स्वयं भराणां उरुभार जन्मनां चमूपतीनां अभवाय देव भवाय युष्मत् चरण अनुवर्तिनाम् ॥६॥

देव अधोक्षज	देव ! हृषीकेश !	जन्मनां	जन्म लेनेवाले
इह अयं	इस जगत्में यह	चमूपतीनां	सेनापतियोंके
तव अवतारः	आपका अवतार	अभवाय	विनाशके लिए तथा
स्वयं	अपना ही	युष्मत् चरण	आपके चरणोंके
भराणां	पेट-पालन करनेवाले	अनुवर्तिनां	अनुयायियोंके
उरुभार	(पृथ्वीके) भारी भाररूप	भवाय	उत्कर्षके लिए है ॥६॥

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ।

वासुदेवाय कृष्णाय सात्वतां पतये नमः ॥१०॥

नमः तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने वासुदेवाय कृष्णाय सात्वतां पतये नमः ॥१०॥

भगवते	भगवान्	सात्वतां पतये	भक्तोंके स्वामी
पुरुषाय	परम पुरुष	वासुदेवाय	वासुदेव
महात्मने	ब्रह्मरूप	कृष्णाय	श्रीकृष्णको
तुभ्यं नमः	आपको नमस्कार,	नमः	नमस्कार ॥१०॥

स्वच्छन्दोपात्तदेहाय विशुद्धज्ञानमूर्तये ।

सर्वस्मै सर्वबीजाय सर्वभूतात्मने नमः ॥११॥

स्वच्छन्द उपात्त देहाय विशुद्ध ज्ञानमूर्तये सर्वस्मै सर्व बीजाय सर्वभूत आत्मने नमः ॥११॥

स्वच्छन्द	स्वतन्त्रतासे	सर्वस्मै	सर्वस्वरूप,
उपात्त देहाय	शरीर स्वीकार करने वाले	सर्व बीजाय	सर्व कारण,
		सर्वभूत	सब प्राणियोंके
विशुद्ध	विशुद्ध	आत्मने	आत्मा
ज्ञानमूर्तये	ज्ञान स्वरूप (चिन्मय विग्रह)	नमः	आपको नमस्कार ॥११॥

मयेदं भगवान् गोष्ठनाशायासारवायुभिः ।
चेष्टितं विहते यज्ञे मानिना तीव्रमन्युना ॥१२॥

मया इदं भगवन् गोष्ठ नाशाय आसार वायुभिः चेष्टितं विहते यज्ञे मानिना तीव्र मन्युना ॥१२॥

भगवन्	भगवन् !	विहते	नष्ट होनेपर
आसार	तीव्र वर्षा और	मानिना	अभिमानी
वायुभिः	वायु द्वारा	तीव्र मन्युना	तीव्र क्रोधी
गोष्ठ नाशाय	व्रजके नाशकी	मया	मेरे द्वारा (की गयी)
इदं चेष्टितं	यह चेष्टा		॥१२॥
यज्ञे	अपने यज्ञके		

त्वयेशानुगृहीतोऽस्मि ध्वस्तस्तम्भो वृथोद्यमः ।
ईश्वरं गुरुमात्मानं त्वामहं शरणं गतः ॥१३॥

त्वयि ईश अनुगृहीतः अस्मि ध्वस्त स्तम्भः वृथा उद्यमः ईश्वरं गुरुं आत्मानं त्वां अहं शरणं गतः ॥१३॥

ईश	स्वामी !	ध्वस्त स्तम्भः	(मेरा) गर्व नष्ट हो गया,
त्वयि	आपके द्वारा		
अनुगृहीतः	अनुग्रह किया गया	ईश्वरं गुरुं	स्वामी, गुरु,
अस्मि	हूँ, (क्योंकि)	आत्मानं त्वां	आत्मा रूप आपकी
वृथा उद्यमः	प्रयत्न नष्ट होनेसे	अहं शरणं गतः	मैं शरणमें हूँ ॥१३॥

श्रीशुक उवाच

एवं सङ्कीर्तितः कृष्णो मघोना भगवानमुम् ।
मेघगम्भीरया वाचा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥१४॥

एवं सङ्कीर्तितः कृष्णः मघोना भगवान् असुं मेघगम्भीरया वाचा प्रहसन् इदं अब्रवीत् ॥१४॥

मघोना	इन्द्रके द्वारा	**प्रहसन्**	हँसते हुए
एवं	इस प्रकार	**मेघगम्भीरया**	मेघ-गम्भीर
सङ्कीर्तितः	स्तुति करनेपर	**वाचा असुं**	वाणीसे उनसे
भगवान् कृष्णः	भगवान् श्रीकृष्णने	**इदं अब्रवीत्**	यह बोले ॥१४॥

श्रीभगवानुवाच

मया तेऽकारि मघवन् मखभङ्गोऽनुगृह्णता ।
मदनुस्मृतये नित्यं मत्तस्येन्द्र श्रिया भृशम् ॥१५॥

मया ते अकारि मघवन् मख भङ्गः अनुगृह्णता मत् अनुस्मृतये नित्यं मत्तस्य इन्द्र श्रिया भृशम् ॥१५॥

इन्द्र श्रिया	इन्द्रत्वके ऐश्वर्यसे	**भङ्गः अकारि**	भंग कर दिया,
भृशं मत्तस्य	अत्यन्त मतवालेपर	**नित्यं मत्**	(जिससे) सदा मेरी
अनुगृह्णता	अनुग्रह करनेके लिए	**अनुस्मृतये**	बराबर स्मृति
मघवन्	इन्द्र !		बनी रहे ॥१५॥
मया ते मख	मैंने तुम्हारे यज्ञको		

मामैश्वर्यश्रीमदान्धो दण्डपाणिं न पश्यति ।
तं भ्रंशयामि सम्पद्भ्यो यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम् ॥१६॥

मां ऐश्वर्य श्रीमद अन्धः दण्डपाणिं न पश्यति तं भ्रंशयामि सम्पद्भ्यः यस्य च इच्छामि अनुग्रहम् ॥१६॥

ऐश्वर्य	ऐश्वर्य	**यस्य च**	जिसपर भी
श्रीमद	तथा लक्ष्मीके मदसे	**अनुग्रहं**	कृपा
अन्धः	अन्धा हुआ (पुरुष)	**इच्छामि**	करना चाहता हूँ
दण्डपाणिं	दण्ड हस्त (कालरूप)	**तं सम्पद्भ्यः**	उसे सम्पत्तियोंसे
मां	मुझे	**भ्रंशयामि**	गिरा देता हूँ ॥१६॥
न पश्यति	नहीं देखता (उनमें)		

गम्यतां शक्र भद्रं वः क्रियतां मेऽनुशासनम् ।
स्थीयतां स्वाधिकारेषु युक्तैर्वः स्तम्भवर्जितैः ॥१७॥

गम्यतां शक्र भद्रं वः क्रियतां मे अनुशासनं स्थीयतां स्व अधिकारेषु युक्तैः वः स्तम्भ वर्जितैः ॥१७॥

शक्र वः	इन्द्र तुम्हारा
भद्रं	कल्याण हो,
गम्यतां	(अब) जाओ,
मे अनुशासनं	मेरी आज्ञाका
क्रियतां	पालन करो
वः	तुम्हारे लिए
स्तम्भ वर्जितैः	गर्वहीन रहना
युक्तैः	उपयुक्त है
स्व	अपने
अधिकारेषु	अधिकारपर
स्थीयतां	स्थित रहो ॥१७॥

श्रीशुक उवाच*

अथाह सुरभिः कृष्णमभिवन्द्य मनस्विनी ।
स्वसन्तानैरुपामन्त्य गोपरूपिणमीश्वरम् ॥१८॥

अथ आह सुरभिः कृष्णं अभिवन्द्य मनस्विनी स्वसन्तानैः उप आमन्त्य गोपरूपिणं ईश्वरम् ॥१८॥

अथ	इसके बाद
मनस्विनी	मनस्विनी
सुरभिः	कामधेनु
स्वसन्तानैः	अपनी सन्तानोंके साथ
गोपरूपिणं	गोपरूपधारी
ईश्वरं कृष्णं	परमेश्वर श्रीकृष्णका
अभिवन्द्य	अभिनन्दन करके
उप	उनको
आमन्त्य	सम्बोधित करके
आह	बोली ॥१८॥

सुरभिरुवाच

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वसम्भव ।
भवता लोकनाथेन सनाथा वयमच्युत ॥१९॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्व आत्मन् विश्व सम्भव भवता लोक नाथेन सनाथा वयं अच्युत ॥१६॥

कृष्ण	कृष्ण !	**लोक नाथेन**	लोकोंके स्वामी
महोगिन् कृष्ण	महायोगी कृष्ण !	**भवता**	आपके द्वारा
विश्व आत्मन्	विश्वात्मा,	**अच्युत**	हे अच्युत !
विश्व	विश्वको	**वयं सनाथा**	हम सनाथ हैं ॥१६॥
सम्भव	उत्पन्न करनेवाले		

त्वं नः परमकं दैवं त्वं न इन्द्रो जगत्पते ।
भवाय भव गोविप्रदेवानां ये च साधवः ॥२०॥

त्वं नः परमकं दैवं त्वं नः इन्द्रः जगत्पते भवाय भव गोविप्र देवानां ये च साधवः ॥२०॥

जगत्पते	जगत्के स्वामी	**साधवः**	सत्पुरुष हैं
त्वं नः	आप हमारे	**भवाय**	उनके अभ्युत्थानके लिए
परमकं दैवं	परम आराध्य देव हैं	**नः इन्द्रः**	हमारे इन्द्र
गोविप्र	गाय, ब्राह्मण,	**भव**	बन जाओ ॥२०॥
देवानां	देवता		
च ये	तथा जो		

इन्द्रं नस्त्वाभिषेक्ष्यामो ब्रह्मणा नोदिता वयम् ।
अवतीर्णोऽसि विश्वात्मन् भूमेर्भारापनुत्तये ॥२१॥

इन्द्रं नः त्वां अभिषेक्ष्यामः ब्रह्मणा नोदिता वयं अवतीर्णः असि विश्वात्मन् भूमेः भार अपनुत्तये ॥२१॥

वयं ब्रह्मणा	हम ब्रह्माजी द्वारा	**भूमेः भार**	पृथ्वीका भार
नोदिता त्वां	प्रेरिता आपको	**अपनुत्तये**	दूर करनेके लिए
नः इन्द्रं	अपने इन्द्रके रूपमें	**अवतीर्णः**	(आपने) अवतार
अभिषेक्ष्यामः	अभिषेक करेंगी,	**असि**	लिया है ॥२१॥
विश्वात्मन्	विश्वात्मन् !		

श्रीशुक उवाच—

एवं कृष्णमुपामन्त्र्य सुरभिः पयसाऽऽत्मनः ।
जलैराकाशगङ्गाया ऐरावतकरोद्धृतैः ॥२२॥

एवं कृष्णं उप आमन्त्र्य सुरभिः पयसा आत्मनः जलैः आकाश गङ्गायाः ऐरावत कर उद्धृतैः ॥२२॥

एवं	इस प्रकार	ऐरावत कर	ऐरावतकी सूंड़से
कृष्णं	श्रीकृष्णसे	उद्धृतैः	उठाये गये
उप आमन्त्र्य	अनुमति लेकर	आकाश	आकाश
आत्मनः पयसा	अपने दूधसे	गङ्गायाः	गंगाके
सुरभिः	कामधेनुने तथा	जलैः	जलसे ॥२२॥

इन्द्रः सुरर्षिभिः साकं नोदितो देवमातृभिः ।
अभ्यषिञ्चत दाशार्हं गोविन्द इति चाभ्यधात् ॥२३॥

इन्द्रः सुर ऋषिभिः साकं नोदितः देवमातृभिः अभ्यषिञ्चत दाशार्हं गोविन्द इति च अभ्यधात् ॥२३॥

इन्द्रः	इन्द्रने	दाशार्हं	दशार्ह वंशीय श्रीकृष्णका
देवमातृभिः	देवमाता अदिति द्वारा	अभ्यषिञ्चत्	अभिषेक किया
नोदितः	प्रेरित होकर	च गोविन्द इति	तथा गोविन्द इस
सुर	देवताओं तथा	अभ्यधात्	नामसे सम्बोधित किया ॥२३॥
ऋषिभिः	ऋषियोंके		
साकं	साथ		

तत्रागतास्तुम्बुरुनारदादयो
गन्धर्वविद्याधरसिद्धचारणाः ।

जगुर्यशो लोकमलापहं हरेः
सुराङ्गनाः संननृतुर्मुदान्विताः ॥२४॥

तत्र आगताः तुम्बुरु नारद आदयः गन्धर्व विद्याधर सिद्ध चारणाः जगुः यशः लोकमल अपहं हरेः सुर अङ्गनाः संननृतुः मुद अन्विताः ॥२४॥

तत्र तुम्बुरु	वहां तुम्बुरु	अपहं	निवारक
नारद आदयः	नारद आदि	हरेः	श्रीहरिका
आगताः	आकर	यशः जगुः	सुयश गाने लगे,
गन्धर्व	गन्धर्व,	मुद अन्विताः	आनन्दके साथ
विद्याधर	विद्याधर	सुर अङ्गनाः	देव-स्त्रियां
सिद्ध चारणाः	सिद्ध, चारण,	संननृतुः	साथ-साथ नाचने
लोकमल	संसारके दोषोंके		लगीं ॥२४॥

तं तुष्टुवुर्देवनिकायकेतवो
व्यवाकिरंश्चाद्भुतपुष्पवृष्टिभिः ।
लोकाः परां निर्वृतिमाप्नुवंस्त्रयो
गावस्तदा गामनयन् पयोद्रुताम् ॥२५॥

तं तुष्टुवुः देव निकाय केतवः व्यवाकिरन् च अद्भुत पुष्पवृष्टिभिः लोकाः परां निर्वृतिं आप्नुवन् त्रयः गावः तदा गां अनयन् पयः द्रुताम् ॥२५॥

देव निकाय	देव-समूहके	त्रयः लोकाः	तीनों लोकोंने
केतवः	ध्वजाके समान	परां निर्वृतिं	परमानन्द
तं	(श्रेष्ठ देवता) उनकी	आप्नुवन्	प्राप्त किया
तुष्टुवुः	स्तुति करने लगे,	तदा गावः	उस समय गायोंने
च अद्भुत	तथा अद्भुत	गां पयः	पृथ्वीको दूधसे
पुष्पवृष्टिभिः	पुष्पोंको वर्षासे	द्रुतां	गीली
व्यवाकिरन्	(उनको) चारों ओर से ढकने लगे,	अनयन्	कर दिया ॥२५॥

नानारसौघाः सरितो वृक्षा आसन् मधुस्रवाः ।
अकृष्टपच्यौषधयो गिरयोऽबिभ्रदुन्मणीन् ॥२६॥

नाना रस ओघाः सरितः वृक्षाः आसन् मधुस्रवाः अकृष्ट पच्या औषधयः गिरयः अबिभ्रत् उत् मणीन् ॥२६॥

सरितः	सरिताएं	पच्या	पकनेवाली
नाना	अनेक प्रकारके	आसन्	हो गयीं
रस ओघाः	रसोंकी बाढ़ वाली,	गिरयः	पर्वतोंने
वृक्षाः	वृक्ष	उत् मणीन्	ऊपर ही मणियोंको
मधुस्रवाः	मधु बहानेवाले	अबिभ्रत्	धारण कर लिया
औषधयः	(अन्नादि) औषधियां		॥२६॥
अकृष्ट	बिना जोते		

कृष्णेऽभिषिक्त एतानि सत्त्वानि कुरुनन्दन ।
निर्वैराण्यभवंस्तात क्रूराण्यपि निसर्गतः ॥२७॥

कृष्णे अभिषिक्त एतानि सत्त्वानि कुरुनन्दन निर्वैराणि अभवन् तात क्रूराणि अपि निसर्गतः ॥२७॥

तात कुरुनन्दन	तात परीक्षित !	क्रूराणि अपि	क्रूर भी
कृष्णे	श्रीकृष्णका	सत्त्वानि	प्राणी
अभिषिक्त	अभिषेक होनेपर	निर्वैराणि	शत्रुताहीन
एतानि निसर्गतः	ये प्रकृतिसे	अभवन्	हो गये ॥२७॥

इति गोगोकुलपतिं गोविन्दमभिषिच्य सः ।
अनुज्ञातो ययौ शक्रो वृतो देवादिभिर्दिवम् ॥२८॥

इति गो गोकुलपतिं गोविन्दं अभिषिच्य सः अनुज्ञातः ययौ शक्रः वृतः देवादिभिः दिवम् ॥२८॥

इति	इस प्रकार	**सः शक्रः**	वे इन्द्र
गो	गायों तथा	**अनुज्ञातः**	अनुमति पाकर
गोकुलपतिं	गोकुलके स्वामी	**देवादिभिः**	देवतादिसे
गोविन्दं	गोविन्दका	**वृतः**	घिरे हुए
अभिषिच्य	अभिषेक करके	**दिवं ययौ**	स्वर्ग चले गये ॥२८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे
पूर्वार्धे इन्द्रस्तुतिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अथ अष्टविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम् ।
स्नातुं नन्दस्तु कालिन्द्या द्वादश्यां जलमाविशत् ॥१॥

एकादश्यां निराहारः सम अभ्यर्च्य जनार्दनं स्नातुं नन्दः तु कालिन्द्यां द्वादश्यां जलं आविशत् ॥१॥

एकादश्यां	एकादशीको	नन्दः तु	नन्दजी तो
निराहारः	निराहार रहकर	द्वादश्यां	द्वादशीको
जनार्दनं	भगवान जनार्दनकी	स्नातुं	स्नान करनेके लिए
सम	भली प्रकार	जलं	(यमुना) जलमें
अभ्यर्च्य	पूजा करके	आविशत्	प्रविष्ट हुए ॥१॥

तं गृहीत्वानयद् भृत्यो वरुणस्यासुरोऽन्तिकम् ।
अविज्ञायासुरीं वेलां प्रविष्टमुदकं निशि ॥२॥

तं गृहीत्वा अनयत् भृत्यः वरुणस्य असुरः अन्तिकं अविज्ञाय आसुरीं वेलां प्रविष्टं उदकं निशि ॥२॥

आसुरीं वेलां	आसुरी समय	असुरः भृत्यः	असुर सेवक
अविज्ञाय	न जानकर	गृहीत्वा	पकड़कर
निशि उदकं	रात्रिमें जलमें	अन्तिकं	उनके पास
प्रविष्टं तं	प्रवेश किये उनको	अनयत्	ले गया ॥२॥
वरुणस्य	वरुणका		

चुक्रुशुस्तमपश्यन्तः कृष्ण रामेति गोपकाः ।
भगवांस्तदुपश्रुत्य पितरं वरुणाहृतम् ।
तदन्तिकं गतो राजन् स्वानामभयदो विभुः ॥३॥

चुक्रुशुः तं अपश्यन्तः कृष्ण राम इति गोपकाः भगवान् तत् उपश्रुत्य पितरं वरुण आहृतं तत् अन्तिकं गतः राजन् स्वानां अभयदः विभुः ॥३॥

राजन्	राजन् !	**आहृतं**	हरण किया गया
तं	उन (नन्दजी) को	**उपश्रुत्य**	सुनकर
अपश्यन्तः	न देखकर	**स्वानां**	अपनोंको
कृष्ण	'हे कृष्ण !	**अभयदः**	अभय देनेवाले
राम	हे बलराम !'	**विभुः**	सबके स्वामी
इति	इस प्रकार	**भगवान्**	भगवान्
गोपकाः चुक्रुशुः	गोप पुकारने लगे,	**तत् अन्तिकं**	उन (वरुण) के समीप
तत् पितरं	वह पिताको	**गतः**	गये ॥३॥
वरुण	वरुण द्वारा		

प्राप्तं वीक्ष्य हृषीकेशं लोकपालः सपर्यया ।
महत्या पूजयित्वाऽऽह तद्दर्शनमहोत्सवः ॥४॥

प्राप्तं वीक्ष्य हृषीकेशं लोकपालः सपर्यया महत्या पूजयित्वा आह तत् दर्शन महोत्सवः ॥४॥

हृषीकेशं	भगवान् हृषीकेशको	**महत्या**	बहुत बड़ी
प्राप्तं वीक्ष्य	आया देखकर	**सपर्यया**	पूजा सामग्रीसे
तत् दर्शन	उनके दर्शनसे	**पूजयित्वा आह**	पूजन करके बोले ॥४॥
महोत्सवः	महान् आनन्दसे		
लोकपालः	लोकपाल वरुण		

वरुण उवाच

अद्य मे निभृतो देहोऽद्यैवार्थोऽधिगतः प्रभो ।
त्वत्पादभाजो भगवन्नवापुः पारमध्वनः ॥५॥

अद्य मे निभृतः देहः अद्य एव अर्थः अधिगतः प्रभो त्वत् पाद भाजः भगवान् अवापुः पारं अध्वनः ॥५॥

प्रभो	प्रभो !	**निभृतः**	सफल हो गया,
अद्य मे देहः	आज मेरा शरीर धारण	**अद्य एव**	आज ही
		अर्थः	परमार्थ

अधिगतः	प्राप्त हो गया	अध्वनः	संसारकी यात्राका
त्वत् पाद	आपकी चरण सेवाका	पारं	पार
भाजः	भाजन होकर	अवापुः	मिल जाता है ॥५॥

नमस्तुभ्यं भगवते ब्रह्मणे परमात्मने ।
न यत्र श्रूयते माया लोकसृष्टिविकल्पना ॥६॥

नमः तुभ्यं भगवते ब्रह्मणे परमात्मने न यत्र श्रूयते माया लोक सृष्टि विकल्पना ॥६॥

लोक सृष्टि	लोकोंकी सृष्टि	ब्रह्मणे	परंब्रह्म
विकल्पना	की कल्पना करने वाली	परमात्मने	परमात्मा
		भगवते	भगवान
माया यत्र	माया जिनमें	तुभ्यं नमः	आपको नमस्कार
न श्रूयते	नहीं सुनी जाती उन		॥६॥

अजानता मामकेन मूढेनाकार्यवेदिना ।
आनीतोऽयं तव पिता तद् भवान् क्षन्तुमर्हति ॥७॥

अजानता मामकेन मूढेन अकार्य वेदिना आनीतः अयं तव पिता तत् भवान् क्षन्तुं अर्हति ॥७॥

मूढेन	नासमझ	आनीतः	लाये गये
अकार्य वेदिना	कर्तव्यको न जानने-वाले	भवान् तत्	आपको इसे
		क्षन्तुं अर्हति	क्षमा कर देना चाहिए ॥७॥
मामकेन	मेरे सेवक द्वारा		
अयं तव पिता	ये आपके पिताजी		

ममाप्यनुग्रहं कृष्ण कर्तुमर्हस्यशेषदृक् ।
गोविन्द नीयतामेष पिता ते पितृवत्सल ॥८॥

मम अपि अनुग्रहं कृष्ण कर्तुं अर्हसि अशेष दृक् गोविन्द नीयतां एष पिता ते पितृवत्सल ॥८॥

अशेष दृक्	सर्वसाक्षी	पितृवत्सल	पितापर प्रेम रखने-
कृष्ण	श्रीकृष्ण !		वाले
मम अपि	मुझ (सेवक) पर भी	गोविन्द	गोविन्द !
अनुग्रहं	(आपको) कृपा	एष ते पिता	ये आपके पिताजी हैं
कर्तुं अर्हसि	करनी चाहिए,	नीयतां	(इनको) ले जाइये
			॥८॥

श्रीशुक उवाच

एवं प्रसादितः कृष्णो भगवानीश्वरेश्वरः ।
आदायागात् स्वपितरं बन्धूनां चावहन् मुदम् ॥९॥

एवं प्रसादितः कृष्णः भगवान् ईश्वर ईश्वरः आदाय अगात् स्वपितरं बन्धूनां च आवहन् मुदम् ॥९॥

एवं	इस प्रकार	स्वपितरं	अपने पिताको
प्रसादितः	(वरुण द्वारा) प्रसन्न	आदाय अगात्	लेकर लौट आये,
	किये जानेपर	च	तथा
ईश्वर	लोकपालोंके भी	बन्धूनां	सम्बन्धियोंको
ईश्वरः	स्वामी	मुदं	आनन्दित
भगवान् कृष्णः	भगवान श्रीकृष्ण	आवहन्	किया ॥९॥

नन्दस्त्वतीन्द्रियं दृष्ट्वा लोकपालमहोदयम् ।
कृष्णे च सन्नतिं तेषां ज्ञातिभ्यो विस्मितोऽब्रवीत् ॥१०॥

नन्दः तु अति इन्द्रियं दृष्ट्वा लोकपाल महा उदयं कृष्णे च सन्नतिं तेषां ज्ञातिभ्यः विस्मितः अब्रवीत् ॥१०॥

नन्दः तु	नन्दजी तो	सन्नतिं	प्रति विनम्रता
अति इन्द्रियं	इन्द्रियातीत	दृष्ट्वा	देखकर
लोकपाल	लोकपाल (वरुण)	विस्मितः	चकित हो गये,
	का	ज्ञातिभ्यः	(आकर) जाति
महा उदयं	महान ऐश्वर्य		भाइयोंसे
च तेषां	तथा उनकी	अब्रवीत्	बतलाया ॥१०॥
कृष्णे	श्रीकृष्णके		

ते त्वौत्सुक्यधियो राजन् मत्वा गोपास्तमीश्वरम् ।
अपि नः स्वगतिं सूक्ष्मामुपाधास्यदधीश्वरः ॥११॥

ते तु औत्सुक्य धियः राजन् मत्वा गोपाः तं ईश्वरं अपि नः स्वगतिं सूक्ष्मां उप आधास्यत् अधीश्वरः ॥११॥

राजन्	राजन् !	अधीश्वरः	सर्वेश्वर (श्रीकृष्ण)
ते तु गोपाः	उन गोपोंने तो	सूक्ष्मां	अपना सूक्ष्म (माया-तीत)
तं	उनको	स्वगतिं	स्वरूप
ईश्वरं	परमेश्वर	अपि	क्या कभी
मत्वा	मान लिया तो	नः उप	हमारे समीप
औत्सुक्य धियः	उनके चित्तमें उत्कण्ठा हो गयी	आधास्यत्	प्रकट करेंगे ॥११॥

इति स्वानां स भगवान् विज्ञायाखिलदृक् स्वयम् ।
सङ्कल्पसिद्धये तेषां कृपयैतदचिन्तयत् ॥१२॥

इति स्वानां स भगवान् विज्ञाय अखिल दृक् स्वयं सङ्कल्प सिद्धये तेषां कृपया एतत् अचिन्तयत् ॥१२॥

स अखिल दृक्	उन सर्वसाक्षी	तेषां सङ्कल्प	उनके संकल्पको
भगवान्	भगवान्ने	सिद्धये	पूर्ण करनेके लिए
स्वानां	अपने (जनों) की	कृपया एतत्	कृपा करके यह
इति	इस प्रकार (उत्सुकता)	स्वयं	स्वयं
		अचिन्तयत्	सोचा ॥१२॥
विज्ञाय	जानकर		

जनो वै लोक एतस्मिन्नविद्याकामकर्मभिः ।
उच्चावचासु गतिषु न वेद स्वां गतिं भ्रमन् ॥१३॥

जनः वै लोक एतस्मिन् अविद्या काम कर्मभिः उच्च अवचासु गतिषु न वेद स्वां गतिं भ्रमन् ॥१३॥

वै जनः	निश्चय यह प्राणी	काम	कामनाओंसे
एतस्मिन् लोक	इस लोकमें	कर्मभिः	कर्म करता हुआ
अविद्या	अविद्याजन्य	उच्च अवचासु	बड़ी-छोटी

गतिषु	दशाओंमें	गतिं	स्थान (स्वरूप) को
भ्रमन्	भटकता हुआ	न वेद	नहीं जानता ॥१३॥
स्वां	अपने (वास्तविक)		

इति सञ्चिन्त्य भगवान् महाकारुणिको हरिः ।
दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम् ॥१४॥

इति सञ्चिन्त्य भगवान् महा कारुणिकः हरिः दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम् ॥१४॥

इति सञ्चिन्त्य	ऐसा सोचकर	तमसः	मायान्धकारसे
महा	अतिशय	परं	अतीत
कारुणिकः	करुणामय	स्वं लोकं	अपना परमधाम
भगवान् हरिः	भगवान् श्रीहरिने	दर्शयामास	दिखलाया ॥१४॥
गोपानां	गोपोंको		

सत्यं ज्ञानमनन्तं यद् ब्रह्म ज्योतिः सनातनम् ।
यद्धि पश्यन्ति मुनयो गुणापाये समाहिताः ॥१५॥

सत्यं ज्ञानं अनन्तं यत् ब्रह्म ज्योतिः सनातनं यत् हि पश्यन्ति मुनयः गुण अपाये समाहिताः ॥१५॥

यत् सत्यं	जो सत्य,	गुण अपाये	गुणातीत होनेपर
ज्ञानं अनन्तं	ज्ञान, अनन्त,	समाहिताः	समाधिमें स्थित
ज्योतिः	ज्योति स्वरूप,	मुनयः	मुनि
सनातनं	सनातन	पश्यन्ति	देखते हैं (उस रूपको
ब्रह्म	ब्रह्म है,		दिखलाया) ॥१५॥
यत् हि	जिसे कि		

ते तु ब्रह्महृदं नीता मग्नाः कृष्णेन चोद्धृताः ।
ददृशुर्ब्रह्मणो लोकं यत्राक्रूरोऽध्यगात् पुरा ॥१६॥

ते तु ब्रह्म ह्रदं नीता मग्नाः कृष्णेन च उद्धृताः ददृशुः ब्रह्मणः लोकं यत्र अक्रूरः अध्यगात् पुरा ॥१६॥

ते तु	वे (गोपगण) तो	यत्र अक्रूरः	जहां अक्रूरने
ब्रह्म ह्रदं	ब्रह्म ह्रदमें	पुरा	पहिले
नीता	ले जाये जानेपर	अध्यगात्	साक्षात्कार पाया
मग्नाः	निमग्न हो गये		था उस
च कृष्णेन	फिर श्रीकृष्ण द्वारा	ब्रह्मणः लोकं	ब्रह्मलोक (वैकुण्ठ)*
उद्धृताः	(वहांसे) निकाले		का
	जाकर	ददृशुः	दर्शन किया ॥१६॥

नन्दादयस्तु तं दृष्ट्वा परमानन्दनिर्वृताः ।
कृष्णं च तत्रच्छन्दोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः ॥१७॥

नन्द आदयः तु तं दृष्ट्वा परमानन्द निर्वृताः कृष्णं च तत्र छन्दोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः ॥१७॥

नन्द आदयः तु	नन्द आदि (गोप) तो	दृष्ट्वा	देखकर बहुत
तं च	उस लोकको	सुविस्मिताः	चकित हुए और
तत्र	तथा वहां	परमानन्द	परमानन्दमें
छन्दोभिः	वेदों द्वारा	निर्वृताः	निमग्न हो गये
कृष्ण	श्रीकृष्णकी		॥१७॥
स्तूयमानं	स्तुति होती		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

---

* अक्रूरको कभी पहिले ब्रह्मलोक स्थित वैकुण्ठका दर्शन हुआ था—वही व्रजसे लौटते भी हुआ। उसीका दर्शन गोपोंको भगवानने कराया

अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥१॥

भगवान्, अपि, ताः, रात्रीः, शरदोत्फुल्लमल्लिकाः, वीक्ष्य, रन्तुम्, मनः, चक्रे, योगमायाम्, उपाश्रित ॥१॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—

भगवान्	भगवान् (ऐश्वर्य-वीर्यादि छः गुणोंसे युक्त)	**ताः**	उन
		रात्रीः	रात्रियोंको
		वीक्ष्य	देखकर
अपि	भी	**योगमायाम्**	योगमायाको
शरदोत्फुल्ल-मल्लिकाः	विकसित शारदीय मल्लिका पुष्पोंसे परिशोभित	**उपाश्रितः**	प्रकट करके
		रन्तुम्	रमण करनेके लिये
		मनः चक्रे	सकल्प किया ॥१॥

ऐश्वर्यवीर्य आदि षड्विध महान् गुणोंसे युक्त भगवान् श्रीकृष्णने वस्त्रहरणके समय गोपकुमारियोंको दिये हुए वचनके अनुसार शरत्कालीन विकसित मल्लिका—चमेली आदि पुष्पोंसे परिशोभित उन रात्रियोंको देखकर योगमाया नामक अपनी अचिन्त्य महाशक्तिको प्रकट किया और गोपरमणियोंके साथ विहार करनेकी इच्छा की ॥१॥

तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं
प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शंतमैः ।
स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन्
प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ॥२॥

विशेष—गीताप्रेस गोरखपुरसे मुद्रित [गोलोकवासी] सम्मान्य गोस्वामी चिम्मनलालजी महाराज द्वारा प्रकाशित, पदच्छेद, अन्वय, शब्दार्थ टीका तथा [नित्यलीलालीन] भाई जी श्रीहनुमान प्रसाद पोद्दार द्वारा श्लोकोंके भावार्थ सहित छपी रासपञ्चाध्यायको ही दिया जा रहा है। उसके आगेका ग्रन्थका भाग जैसे अब तक चला आ रहा है, वैसा ही है। —सं०

तदा, उडुराजः, ककुभः, करैः, मुखम्, प्राच्याः, विलिम्पन्, अरुणेन, शंतमैः, सः, चर्षणीनाम्, उदगात्, शुचः, मृजन्, प्रियः, प्रियायाः, इव, दीर्घदर्शनः ॥२॥

तदा	तब (जिस प्रकार)	**करैः**	किरणरूपी हाथके द्वारा
दीर्घदर्शनः	बहुत दिनोंके पश्चात् दिखायी देनेवाला	**अरुणेन**	उदयरागसे
प्रियः	प्रिय	**विलिम्पन्**	रञ्जित करता हुआ लाल बनाता हुआ (तथा)
प्रियायाः	(अपनी) प्रियाका		
(मुखम् शंतमैन	(मुख अपने अत्यन्त	**चर्षणीनाम्**	जगत्के प्राणियोंका
करेण	सुखद हाथों द्वारा	**शुचः**	संताप
अरुणेन	केसरसे	**मृजन्**	दूर करता हुआ
विलिम्पन्)	रंग दे,	**सः**	वह (सर्वविदित)
इव	उसी प्रकार	**उडुराजः**	ताराओंका राजा (चन्द्रमा)
प्राच्याः	पूर्व		
ककुभः	दिशाके	**उदगात्**	उदय हुआ ॥२॥
मुखम्	मुखको (अपनी)		
शंतमैः	अत्यन्त सुखकर		

जब भगवान्‌ने विहार करनेकी इच्छा की, तब उसी क्षण—दीर्घ प्रवासके पश्चात् घरमें आया हुआ प्रियतम जैसे अपने अत्यन्त सुखद हाथोंसे अपनी प्रेयसीका मुख-कमल अरुणवर्ण केसरसे रंग दे, वैसे ही नक्षत्रपति चन्द्रमाने गगन-मण्डलमें उदित होकर अपने सुखमय सुस्निग्ध किरणरूपी कर-कमलों द्वारा पूर्वदिशारूप वधूका मुख अरुण वर्ण केसरसे रंग दिया। इससे जगत्के प्राणियोंका शरत्कालीन सूर्यकी प्रखर किरणोंसे उत्पन्न संताप दूर हो गया ॥२॥

दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं
रमाननाभं नवकुङ्कुमारुणम् ।
वनं च तत्कोमलगोभिरञ्जितं
जगौ कलं वामदृशां मनोहरम् ॥३॥

दृष्ट्वा, कुमुद्वन्तम्, अखण्डमण्डलम्, रमाननाभम्, नवकुङ्कुमारुणम्, वनम्, च, तत्कोमलगोभिः, अञ्जितम्, जगौ, कलम्, वामदृशाम्, मनोहरम् ॥३॥

फिर—

रमाननाभम्	लक्ष्मीके मुखमण्डल-की शोभा धारण करनेवाले	**वनम्**	वनको
		दृष्ट्वा	देखकर
		वामदृशाम्	(श्रीकृष्णने) सुन्दर नेत्रोंवाली व्रज-सुन्दरियोंका
नवकुङ्कु-मारुणम्	नवकुङ्कुमकी भाँति अरुण वर्ण		
अखण्डमण्डलम्	पूर्ण प्रकाशयुक्त	**मनोहरम्**	मन हर लेनेवाला
कुमुद्वन्तम्	चन्द्रमाको	**कलम्**	मधुर (सुललित स्वरसे)
च	तथा		
तत्कोमलगोभिः	उस (चन्द्र) की कोमल किरणोंसे	**जगौ**	गायन (वेणुवादन) किया ॥३॥
अञ्जितम्	उद्भासित		

रासलीलाके इच्छुक भगवान् श्रीकृष्णने जब देखा कि कुमुदिनीको विकसित करनेवाला पूर्णचन्द्र आकाश-मण्डलमें उदित हो गया है, लक्ष्मीजी-के मुखकमलकी भाँति उसकी किरणप्रभा सुशोभित है तथा नवीन कुङ्कुम-के समान वह अरुणवर्ण हो रहा है और उसकी कोमल किरणोंसे समस्त वन प्रकाशित एवं सुरञ्जित हो उठा है, तब इसी समयको रासक्रीड़ाके लिये उपयुक्त दिव्य उज्ज्वल रसके उद्दीपनकी पूर्ण सामग्रीसे युक्त समझकर उन्होंने सुन्दर नेत्रोंवाली व्रजसुन्दरियोंके मनको हरण करनेवाला सुललित स्वरोंमें मधुर मुरलीका वादन किया ॥३॥

निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनं
व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः ।
आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोद्यमाः
स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः ॥४॥

निशम्य, गीतम्, तत्, अनङ्गवर्धनम्, व्रजस्त्रियः, कृष्णगृहीतमानसाः, आजग्मुः, अन्योन्यम्, अलक्षितोद्यमाः, सः, यत्र, कान्तः, जवलोलकुण्डलाः ॥४॥

तत्	उस	**जवलोल-**	(द्रुतगतिके कारण)
अनङ्गवर्धनम्	प्रेमवर्द्धन करनेवाले	**कुण्डलाः**	हिलते हुए कर्ण-
गीतम्	(वेणु-) गीतको		कुण्डलोंसे विभूषित
निशम्य	सुनकर		होकर (वहाँ)
कृष्णगृहीत-	श्रीकृष्णके द्वारा	**आजग्मुः**	चली आयीं,
मानसाः	(पहलेसे ही) आकृष्ट	**यत्र**	जहाँ
	चित्तवाली	**सः**	वे
व्रजस्त्रियः	व्रजसुन्दरियाँ	**कान्तः**	कान्त (प्रियतम
अन्योन्यम्	परस्पर एक दूसरीके		श्रीकृष्ण) (थे)
अलक्षितोद्यमाः	(प्रियतमके समीप)		॥४॥
	गमनोद्योगको न		
	जानती हुई		

व्रजसुन्दरियोंका मन तो पहलेसे ही श्यामसुन्दरने अपने वशमें कर रखा था। अब उस मिलन-लालसा—प्रेम बढ़ानेवाले वेणुगीतको सुनकर तो वे सर्वथा विमुग्ध हो गयीं। उनकी भय, संकोच, मर्यादा, धैर्य आदि सभी वृत्तियाँ विलुप्त हो गयीं और वे जहाँ प्रियतम मुरली बजा रहे थे, वहाँ शीघ्रतासे जा पहुँचीं। उनमें किसीने भी परस्पर किसी को जानेकी सूचनातक नहीं दी। बड़े वेगसे चलनेके कारण उस समय उनके कानोंके कुण्डल नाच रहे थे ॥४॥

दुहन्त्योऽभिययुः काश्चिद् दोहं हित्वा समुत्सुकाः।
पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः ॥५॥

दुहन्त्यः, अभिययुः, काः, चित् दोहम्, हित्वा, समुत्सुकाः, पयः, अधिश्रित्य, संयावम्, अनुद्वास्य, अपराः, ययुः ॥५॥

समुत्सुकाः	(श्रीकृष्णसे मिलनेके	**चित्**	तो
	लिये सदा) परम	**दुहन्त्यः**	दूध दुहती हुई
	उत्सुक		(बीचमें ही)
काः	कुछ (गोपियाँ)	**दोहम्**	दुहना

हित्वा	छोड़कर	**(अभिययुः)**	उसी ओर चल पड़ीं
(अभिययुः)	वेणुनादकी ओर लक्ष्य करके चली गयीं	**अपराः**	कुछ अन्य (गोपिकाएँ)
(काश्चित्)	कुछ	**संयावम्**	हलुआ (तैयार होनेपर भी, कूल्हेसे)
पयः	दूधको	**अनुद्वास्य**	उतारे बिना ही
अधिश्रित्य	चूल्हेपर रखकर (ही)	**ययुः**	चली गयीं ॥५॥

श्रीकृष्णका वंशीनाद सुनते ही— प्रियतम भगवान्‌का आह्वान सुनते ही उनकी ऐसी दशा हुई कि श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये सदा ही समुत्सुक रहनेवाली कुछ गोपियाँ जो दूध दुह रही थीं, वे दुहना बीचमें ही छोड़कर चल दीं। कुछ चूल्हेपर दूध औटा रही थीं, वे दूध उफनता हुआ छोड़कर तथा कुछ दूसरी गोपियाँ हलुआ पका रही थीं, वे तैयार हुए हलुएको चूल्हेसे बिना उतारे ही ज्यों-की-त्यों छोड़कर चली गयीं ॥५॥

परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा पाययन्त्यः शिशून् पयः ।

शुश्रूषन्त्यः पतीन् काश्चिदश्नन्त्योऽपास्य भोजनम् ॥६॥

परिवेषयन्त्यः तत्, हित्वा, पाययन्त्यः, शिशून्, पयः, शुश्रूषन्त्यः, पतीन्, काः, चित्, अश्नन्त्यः, अपास्यः, भोजनम् ॥६॥

परिवेषयन्त्यः	(कुछ) परोसती हुई	**काः चित्**	कुछ तो (अपने)
तत्	(अपना) वह (परोसना)	**पतीन्**	पतियोंकी
हित्वा	छोड़कर (चली गयीं)	**शुश्रूषन्त्यः**	सेवा करती हुई (सेवा छोड़कर चली गयीं,)
शिशून्	(कुछ) बच्चोंको	**अश्नन्त्यः**	(कुछ) भोजन करती हुई
पयः	दूध	**भोजनम्**	भोजन
पाययन्त्यः	पिलाती हुई (पिलाना छोड़कर चली गयीं,)	**अपास्य**	छोड़कर (चल पड़ीं) ॥६॥

कुछ अपने पति-पुत्रादिको भोजन परोस रही थीं, वे परोसना छोड़कर, कुछ छोटे बालकोंको दूध पिला रही थीं, वे दूध पिलाना छोड़कर

चल दीं। कुछ अपने पतियोंकी सेवा-शुश्रूषा कर रही थीं, वे सेवा-शुश्रूषा छोड़कर और कुछ स्वयं भोजन कर रही थीं, वे भोजन करना छोड़कर प्रियतम श्रीकृष्णके पास चल पड़ीं ॥६॥

लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अञ्जन्त्यः काश्च लोचने ।
व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः ॥७॥

लिम्पन्त्यः, प्रमृजन्त्यः, अन्याः, अञ्जन्त्यः, काः, च, लोचने, व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः, काः, चित्, कृष्णान्तिकम्, ययुः ॥७॥

अन्याः	(कुछ) दूसरी	**अञ्जन्त्यः**	आँजती हुई (अञ्जन लगाना छोड़कर चल पड़ीं) (तथा)
लिम्पन्त्यः	अंगराग लगाती हुई (उसे छोड़कर) (कुछ)	**काः**	कुछ (गोपिकाएँ)
प्रमृजन्त्यः	उबटन आदि लगाती हुई (उबटना छोड़कर)	**चित्**	तो
		व्यत्यस्त-वस्त्राभरणाः	उलटे-सीधे वस्त्र-आभूषण पहनकर विचित्र शृंगार किये)
च	और		
काः	कुछ		
लोचने	नेत्र	**कृष्णान्तिकम्**	श्रीकृष्णके समीप
		ययुः	चली गयीं ॥७॥

कुछ दूसरी गोपियाँ अपने शरीरमें अंगराग—केसर-चन्दनादि लगा रही थीं, वे उसे छोड़कर, कुछ उबटन लगा रही थीं, वे उबटना छोड़कर और कुछ आँखोंमें अञ्जन लगा रही थीं, वे अञ्जन लगाना छोड़कर चल दीं। कुछ गोपांगनाएँ वस्त्र-अलंकार पहन रही थीं, वे उलटे-पलटे वस्त्राभूषण धारणकर—जैसे ओढ़नीको कमरमें बाँधकर, लहँगा ओढ़कर, गलेका हार कमरमें पहनकर और करधनीको गलेमें डालकर—प्रियतम श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये पागलकी तरह उनके पास दौड़ पड़ीं ॥७॥

ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः ।
गोविन्दापहृतात्मानो न न्यवर्तन्त मोहिताः ॥८॥

ताः, वार्यमाणाः, पतिभिः, पितृभिः, भ्रातृबन्धुभिः, गोविन्दापहृतात्मानः, न, न्यवर्तन्त, मोहिताः ॥८॥

गोविन्दा-	श्रीगोविन्दके द्वारा	**पतिभिः**	अपने पति,
पहृतात्मानः	हरे हुए अन्तःकरण-वाली (एवं इसी-लिये)	**पितृभिः**	पिता (अथवा)
		भ्रातृबन्धुभिः	भाई-बन्धुओंके द्वारा
		वार्यमाणाः	रोकी जानेपर भी
मोहिताः	विवेक शून्य हुई	**न**	नहीं
ताः	वे (गोपियाँ)	**न्यवर्तन्त**	लौटीं ॥८॥

श्रीगोपांगनाओंका आत्मा—मन श्रीगोविन्दके द्वारा हर लिया गया था; इसलिये वे ऐसी सर्वथा मोहित—बाह्यविवेकसे शून्य हो गयीं कि अपने पति, पिता तथा भाई-बन्धुओंके द्वारा रोकी जानेपर भी मुड़ीं नहीं। वे अपने-आपको भूलकर श्रीकृष्ण-संगकी प्राप्तिके लिये दौड़ पड़ीं ॥८॥

अन्तर्गृहगताः काश्चिद् गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः ।
कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलितलोचनाः ॥९॥

अन्तर्गृहगताः, काः चित्, गोप्यः, अलब्धविनिर्गमाः, कृष्णम्, तद्भावनायुक्ताः, दध्युः, मीलितलोचनाः ॥९॥

अन्तर्गृहगताः	घरके भीतर गयी हुई (तथा पतियोंके द्वारा द्वार बन्द कर दिये जानेके कारण किसी भी प्रकार)	**गोप्यः**	गोपियाँ
		तद्भावना-युक्ताः	उन (प्रियतम) की भावनासे भावित हुई
		मीलितलोचनाः	नेत्र बन्द किये (वहींसे)
अलब्ध-विनिर्गमाः	बाहर निकलनेका मार्ग नहीं पा सकने-वाली	**कृष्णम्**	श्रीकृष्णका
		दध्युः	ध्यान करने लगीं ॥९॥
काः चित्	कुछ		

श्रीगोपांगनाएँ दो प्रकारकी थीं—नित्यसिद्धा और साधनसिद्धा। श्रीराधा तो भगवान्‌की आह्लादिनी शक्ति ही थीं। ललिता, विशाखा, रूपमञ्जरी, अनंगमञ्जरी आदि सखी-सहचरी नित्यसिद्धा थीं। उन्हें तो कोई

रोक ही नहीं सकता था। दण्डकारण्यवासी महर्षि आदि जो गोपी देहको प्राप्त थे, वे साधनसिद्धा गोपियाँ थीं। उनमेंसे कुछ गोपांगनाओंकी साधना अभी पूर्ण नहीं हुई थी, इसलिये उनकी श्रीकृष्णके मिलनकी रीति दूसरी थी। अतएव वे उस समय घरके भीतर गयी हुई थीं। पतियोंने घरोंके दरवाजे बन्द कर दिये; इसलिये उनको बाहर निकलनेका मार्ग ही न मिला। तब वे आँखें मूँदकर उन प्रियतम श्रीकृष्णकी भावनासे भावित होकर बड़ी तन्मयतासे उनके सौन्दर्य-माधुर्य और उनकी मधुरतम लीलाओं-का ध्यान करने लगीं ॥९॥

दुस्सहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः ।
ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्या क्षीणमङ्गलाः ॥१०॥
तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्यापि संगताः ।
जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबन्धनाः ॥११॥

दुस्सहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः, ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्या, क्षीणमङ्गलाः ॥१०॥

तम् एव, परमात्मानम्, जारबुद्ध्या, अपि, संगताः, जहुः, गुणमयम्, देहम्, सद्यः, प्रक्षीणबन्धनाः ॥११॥

फिर तो इनका भी समस्त व्यवधान दूर हो गया—

दुस्सहप्रेष्ठ-	(श्रीकृष्णके साक्षात्	**च्युताश्लेष-**	अच्युत (श्रीकृष्ण) के
विरहतीव्र-	मिलनेमें बाधा पड़ते	**निर्वृत्या**	आलिंगनजनित
तापधुताशुभाः	ही उसी क्षण जिनमें		आनन्दके द्वारा
	विरहाग्नि धधक	**क्षीणमङ्गलाः**	जिनके समस्त शुभ
	उठी और उस		प्रारब्ध (भी) क्षीण
	दुस्सह श्रीकृष्ण		हो गये, (उन
	विरहकी तीव्र ज्वाला		गोपियोंने)
	से जिनके समस्त	**तम् एव**	उन्हीं
	अशुभ धुल गये	**परमात्मानम्**	परमात्मा (श्रीकृष्ण)
	(तथा साथ ही)		को
ध्यानप्राप्ता-	ध्यानमें उतरे हुए	**जारबुद्ध्या**	पर-पुरुषज्ञानसे

अपि	भी (केवल ध्यानमें ही)	**गुणमयम्**	गुणमय (प्राकृत)
संगताः	प्राप्तकर	**देहम्**	शरीरको
प्रक्षीणबन्धनाः	समस्त बन्धनोंसे रहित होकर	**जहुः**	छोड़ दिया (और वे परमात्मा श्रीकृष्णसे जा मिलीं)
सद्यः	उसी क्षण		॥१०-११॥

परम प्रियतम श्रीकृष्णके साक्षात् मिलनेमें जब यों बाधा पड़ गयी, तब उसी क्षण उनके हृदयोंमें असह्य विरहकी तीव्र ज्वाला धधक उठी—इतनी भयानक जलन हुई कि उनके अंदर अशुभ संस्कारोंका जो कुछ लेश मात्र शेष था, वह सारा भस्म हो गया। फिर तुरन्त ही वे श्रीकृष्णके ध्यानमें निमग्न हो गयीं। ध्यानमें प्राप्त हुए श्रीकृष्णके आलिंगनसे उन्हें इतना सुख मिला कि उनके सबके-सब पुण्यके संस्कार भी एक ही साथ समूल नष्ट हो गये। यद्यपि गोपियोंने उस समय उन श्रीकृष्णको जार-भावसे ही केवल ध्यानमें प्राप्त किया था, फिर भी वे थे तो साक्षात् परमात्मा ही, चाहें किसी भी भावसे उनका आलिंगन प्राप्त हुआ हो; अतएव उन्होंने पाप और पुण्यरूप बन्धनसे रहित होकर उसी क्षण प्राकृत (हाड़-मांससे बने) शरीरको छोड़ दिया और भगवान्‌की लीलामें प्रवेश करने योग्य दिव्य अप्राकृत देहको प्राप्तकर वे प्रियतम श्रीकृष्णसे जा मिलीं ॥१०-११॥

राजोवाच

कृष्णं विदुः परं कान्तं न तु ब्रह्मतया मुने।
गुणप्रवाहोपरमस्तासां गुणधियां कथम् ॥१२॥

कृष्णम्, विदुः परम्, कान्तम्, न, तु, ब्रह्मतया, मुने, गुणप्रवाहोपरमः, तासाम्, गुणधियाम्, कथम् ॥१२॥

मुने	हे (श्रीकृष्णलीला-मनग-परायण शुकदेवजी !)	**कृष्णम्**	श्रीकृष्णको
		परम्	केवल
	(गोपियाँ तो)	**कान्तम्**	प्रियतम (रूपसे)
		विदुः	जानती थीं

ब्रह्मतया	परब्रह्मरूपसे (तो)
न तु	नहीं ही (अनुभव करती थीं) (फिर)
गुणधियाम्	(श्रीकृष्णके सौन्दर्य-माधुर्य आदि) गुणोंमें ही बुद्धि रखनेवाली
तासाम्	उन (गोपियों) का
गुणप्रवाहोपरमः	(अभी आपके श्रीमुखसे वर्णित) गुणमय देहादिरूप प्रवाहकी निवृत्ति
कथम्	कैसे (हो गयी) ॥१२॥

श्रीकृष्णलीलामाधुरीका नित्य मनन करनेवाले श्रीशुकदेवजी ! गोपियाँ तो श्रीकृष्णको केवल परम प्रियतमरूपसे ही जानती थीं; वे साक्षात् परब्रह्म हैं, ऐसा अनुभव तो वे करती नहीं थीं। उनकी बुद्धि तो श्रीकृष्णके सौन्दर्य-माधुर्य-लावण्य आदि गुणोंमें ही लगी हुई थी। ऐसी स्थितिमें वे त्रिगुणमय देहादि संसारके प्रवाहसे मुक्त कैसे हो गयीं ? वे संसारसे मुक्त होकर परमात्मा श्रीकृष्णसे कैसे जा मिलीं ॥१२॥

श्रीशुक उवाच

उक्तं पुरस्तादेतत्ते चैद्यः सिद्धिं यथा गतः ।
द्विषन्नपि हृषीकेशं किमुताधोक्षजप्रियाः ॥१३॥

उक्तम्, पुरस्तात्, एतत्, ते, चैद्यः, सिद्धिम्, यथा, गतः, द्विषन्, अपि, हृषीकेशम्, किम्, उत, अधोक्षजप्रियाः ॥१३॥

एतत्	यह (बात तो)
ते	तुम्हें
पुरस्तात्	पहले (सप्तम स्कन्ध-में) ही (मैंने)
उक्तम्	कह दी थी
यथा	कि जिस प्रकार
हृषीकेशम्	सभी इन्द्रियोंके स्वामी श्रीकृष्णके प्रति
द्विषन्	(सदा) द्वेष करता हुआ
अपि	भी
चैद्यः	चेदिराज शिशुपाल
सिद्धिम्	(पार्षदगतिरूप) सिद्धिको
गतः	प्राप्त हो गया; (फिर)
अधोक्षजप्रियाः	श्रीकृष्णकी प्रिया गोपियोंके सम्बन्धमें तो)
किम् उत	कहना ही क्या है ॥१३॥

परीक्षित् ! मैं तुमसे पहले ही (सातवें स्कन्धमें) कह चुका हूँ कि चेदिराज शिशुपाल सभी इन्द्रियोंके स्वामी भगवान् श्रीकृष्णसे द्वेष रखने-पर भी प्राकृत शरीरको त्यागकर अप्राकृत पार्षददेहरूप सिद्धिको प्राप्त हो गया था। फिर जो सम्पूर्ण प्रकृति और उसके गुणोंसे अतीत श्रीकृष्णकी प्रिया हैं और उनमें अनन्य प्रेम करती हैं, वे गोपियाँ उनको प्राप्त कर लें—इसमें कौन आश्चर्यकी बात है ॥१३॥

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप ।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥१४॥

नृणाम्, निःश्रेयसार्थाय, व्यक्तिः, भगवतः, नृप, अव्ययस्य, अप्रमेयस्य, निर्गुणस्य, गुणात्मनः ॥१४॥

नृप	राजन् ! (सुनो,)	**निर्गुणस्य**	(मायिक) गुणोंसे अतीत
नृणाम्	जीवमात्रके	**गुणात्मनः**	गुणोंका नियन्त्रण करनेवाले
निःश्रेयसार्थाय	कल्याणके लिये	**भगवतः**	भगवान् श्रीकृष्णका
अव्ययस्य	जन्मादि षड्विकारों-से रहित	**व्यक्तिः**	आविर्भाव (होता है) ॥१४॥
अप्रमेयस्य	अपरिच्छिन्न		

राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण जन्म-मृत्यु आदि षड्विकारोंसे रहित अविनाशी परब्रह्म हैं, वे अपरिच्छिन्न हैं, मायिक गुणोंसे अथवा गुण-गुणी-भावसे रहित हैं और अचिन्त्यानन्त अप्राकृत परमकल्याणरूप दिव्य गुणोंके परम आश्रय तथा सम्पूर्ण गुणोंका नियन्त्रण करनेवाले हैं, वे तो जीवोंके परम कल्याणके लिये ही आविर्भूत होते हैं ॥१४॥

कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च ।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥१५॥

कामम्, क्रोधम्, भयम्, स्नेहम्, ऐक्यम्, सौहृदम्, एव, च, नित्यम्, हरौ, विदधतः, यान्ति, तन्मयताम्, हि, ते ॥१५॥

इसीलिये—

हरौ	सभी दोषोंको हरनेवाले हरि श्रीकृष्णमें
नित्यम्	सदा
कामम्	काम,
क्रोधम्	क्रोध,
भयम्	भय,
स्नेहम्	स्नेह,
ऐक्यम्	एकात्मता
च	तथा
सौहृदम्	सौहार्द (आदि)
एव	ही
विदधतः	करते हुए (जो जीवन व्यतीत करते हैं,)
ते	वे
हि	निश्चय ही (भगवान्‌में)
तन्मयताम्	तन्मयता
यान्ति	प्राप्त कर लेते हैं ॥१५॥

इसीलिये जो व्यक्ति किसी भी सम्बन्धसे अपने जीवनको उन सर्व-दोषहारी भगवान्‌से जोड़ देते हैं, वह सम्बन्ध चाहे सदा कामका हो, क्रोधका हो, भयका हो अथवा स्नेह, एकात्मता या सौहार्दका हो, वे निश्चय ही भगवान्‌में तन्मय हो जाते हैं ॥१५॥

न चैवं विस्मयः कार्यो भवता भगवत्यजे ।
योगेश्वरेश्वरे कृष्णे यत एतद् विमुच्यते ॥१६॥

न, च, एवम्, विस्मयः, कार्यः, भवता, भगवति, अजे, योगेश्वरेश्वरे, कृष्णे, यतः, एतत्, विमुच्यते ॥१६॥

भवता	तुम्हें
अजे	(इन) अजन्मा
योगेश्वरेश्वरे	योगेश्वरोंके भी ईश्वर
भगवति	समस्त ऐश्वर्य आदि-के निकेतन भगवान्
कृष्णे	(नन्दनन्दन) श्रीकृष्णमें
एवम्	(उनके सम्पर्कमात्रसे गोपियोंका गुणमय देहसे सम्बन्ध कैसे छूट गया) इस रूपमें
विस्मयः	आश्चर्य
च	भी
न	नहीं

कार्यः	करना चाहिये; (क्योंकि)	**एतत्**	यह (स्थावर आदि समस्त जगत् संसार-बन्धनसे)
यतः	श्रीकृष्णके सम्बन्धसे तो	**विमुच्यते**	मुक्त हो जाता है। ॥१६॥

अतएव तुम-सरीखे भागवतको जन्मादि रहित, योगेश्वरोंके भी परम ईश्वर, ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्यके परम निकेतन भगवान् नन्दनन्दन श्रीकृष्णके सम्बन्धसे केवल परमप्रियतम माननेवाली गोपियोंकी गुणमय देहसे मुक्ति कैसे हो गयी—इस रूपमें तनिक भी आश्चर्य नहीं करना चाहिये। गोपियोंकी तो बात ही क्या, श्रीकृष्णके सम्बन्धसे तो स्थावर आदि समस्त जगत् संसार-बन्धनसे मुक्त हो सकता है ॥१६॥

ता दृष्ट्वान्तिकमायाता भगवान् व्रजयोषितः।
अवदद् वदतां श्रेष्ठो वाचःपेशैर्विमोहयन् ॥१७॥

ताः, दृष्ट्वा, अन्तिकम्, आयाताः, भगवान्, व्रजयोषितः, अवदत्, वदताम्, श्रेष्ठः, वाचःपेशैः, विमोहयन् ॥१७॥

वदताम्	वक्ताओंके	**आयाताः**	आयी हुई
श्रेष्ठः	सिरमौर	**दृष्ट्वा**	देखकर
भगवान्	भगवान् श्रीकृष्ण	**वाचःपेशैः**	मोहक वचनोंसे (उन्हें)
ताः	उन	**विमोहयन्**	विमोहित करते हुए
व्रजयोषितः	व्रजरमणियोंको	**अवदत्**	बोले ॥१७॥
अन्तिकम्	अपने निकट		

अस्तु, अब आगे क्या हुआ, यह सुनो! वक्ताओंमें सर्वश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णने जब यह देखा कि व्रजसुन्दरियाँ मेरे अत्यन्त समीप आ गयी हैं, तब उन्होंने अपनी मनोहर वाक्चातुरीसे उनको सर्वथा मोहित करते हुए कहा ॥१७॥

श्रीभगवानुवाच

स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः।
व्रजस्यानामयं कच्चिद् ब्रूतागमनकारणम् ॥१८॥

स्वागतम्, वः, महाभागाः, प्रियम्, किम्, करवाणि, वः, व्रजस्य, अनामयम्, कच्चित्, ब्रूत, आगमनकारणम् ॥१८॥

महाभागाः	महाभागाओ !	**व्रजस्य**	व्रजकी
वः	तुम्हारा	**कच्चित्**	क्या
स्वागतम्	आना बड़ा अच्छा रहा (मैं)	**अनामयम्**	कुशल (तो है ?) (मेरे पास)
वः	तुम लोगोंका		
किम्	कौन-सा	**आगमन-**	आनेका
प्रियम्	प्रिय (कार्य)	**कारणम्**	कारण (तो)
करवाणि	करूँ (यह आज्ञा करो ।)	**ब्रूत**	बताओ ॥१८॥

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाभाग्यवती गोपियो ! तुम भले आयी, तुम आज्ञा दो, तुम लोगोंको प्रिय लगनेवाला मैं कौन-सा कार्य करूँ ? व्रजमें सब कुशल-मंगल तो है न ? इस समय तुमलोग यहाँ मेरे पास किस प्रयोजनसे पधारीं—यह तो बताओ ॥१८॥

रजन्येषा घोररूपा घोरसत्त्वनिषेविता ।
प्रतियात व्रजं नेह स्थेयं स्त्रीभिः सुमध्यमाः ॥१९॥

रजनी, एषा, घोररूपा, घोरसत्त्वनिषेविता, प्रतियात, व्रजम्, न, इह, स्थेयम्, स्त्रीभिः, सुमध्यमाः ॥१९॥

किन्तु तुम लोगोंने इस समय आकर भारी भूल की है—

एषा	यह	**सुमध्यमाः**	सुन्दरियो ! (तुम लोग)
रजनी	रात्रि (का समय है और इसलिये स्वभावतः)	**व्रजम्**	व्रजको (तुरन्त)
		प्रतियात	लौट जाओ
घोररूपा	भयदायक (है)	**इह**	इस (वनमें)
घोरसत्त्व-	(व्याघ्र-सिंह आदि)	**स्त्रीभिः**	स्त्रियोंको
निषेविता	भयंकर हिंस्र प्राणियोंसे संकुल (है) (अतएव)	**न**	नहीं
		स्थेयम्	ठहरना चाहिये ॥१९॥

इस बातको सुनकर गोपियाँ लज्जायुक्त होकर मुस्कराने लगीं, तब उन्हें भय दिखाकर उनके प्रेमकी परीक्षा लेते हुए भगवान्‌ने फिर कहा—अरी सुन्दरियो ! यह रात्रिका समय है; जो स्वभावतः ही बड़ा भयानक है; फिर इस वनमें बाघ-सिंह आदि हिंसक प्राणी भरे हुए हैं। अतः तुम सब तुरन्त व्रजको लौट जाओ। रातके समय इस घोर वनमें स्त्रियोंका ठहरना उचित नहीं है ॥१९॥

मातरः पितरः पुत्रा भ्रातरः पतयश्च वः ।
विचिन्वन्ति ह्यपश्यन्तो मा कृढ्वं बन्धुसाध्वसम् ॥२०॥

मातरः, पितरः, पुत्राः, भ्रातरः, पतयः, च, वः, विचिन्वन्ति, हि, अपश्यन्तः, मा, कृढ्वम्, बन्धुसाध्वसम् ॥२०॥

	(तुम्हारे)	**विचिन्वन्ति**	ढूँढ़ रहे हैं,
मातरः	माता	**हि**	ऐसा मेरा अनुमान है (इसलिये)
पितरः	पिता		
पुत्राः	पुत्र	**बन्धुसा-**	बन्धुओंके मनमें
भ्रातरः	भाई	**ध्वसम्**	तुम्हारे अनिष्ट-सम्बन्धी भय
च	और		
पतयः	पति (—सभी)	**मा**	मत
वः	तुम्हें (घरमें)	**कृढ्वम्**	उत्पन्न करो ॥२०॥
अपश्यन्तः	न देखकर (इधर-उधर)		

जब भयका उनपर कोई असर नहीं हुआ, तब भगवान्‌ने उन्हें अपने घरवालोंकी दुश्चिन्ताका स्मरण दिलाया और कहा—देखो, तुम्हारे माता-पिता, पुत्र, भाई और पति तुम्हें घरमें न देखकर इधर-उधर ढूँढ़ रहे होंगे। उन आत्मीय स्वजनोंके मनमें यह भय मत उत्पन्न होने दो कि पता नहीं, तुम्हारा क्या अनिष्ट हो रहा होगा ॥२०॥

दृष्टं वनं कुसुमितं राकेशकररञ्जितम् ।
यमुनानिललीलैजत्तरुपल्लवशोभितम् ॥२१॥

दृष्टम्, वनम्, कुसुमितम्, राकेशकररञ्जितम्, यमुनानिललीलैजत्तरुपल्लवशोभितम् ॥२१॥

कुसुमितम्	(विविध) कुसुमोंसे परिशोभित	**तरुपल्लव शोभितम्**	समीरकी मन्द गतिकेकारण नाचते हुए तरु-पल्लवोंसे सुशोभित
राकेशकर-रञ्जितम्	पूर्ण चन्द्रकी किरणोंसे उद्भासित (तथा)	**वनम्**	(इस) वृन्दावनको भी
यमुना-निललीलैज-	यमुना-तटपर बहनेवाले शीतल	**दृष्टम्**	देख चुकीं ॥२१॥

(उपर्युक्त तीन श्लोकोंके द्वारा भगवान्‌ने गोपियोंके अनन्य प्रेम-भावकी परीक्षा की। अनन्य—एकनिष्ठ प्रेम हुए बिना भगवान् कभी प्रेमास्पद रूपसे प्राप्त नहीं होते। जब भगवान्‌की ऐसी बातें सुनकर भी गोपियाँ कुछ बोलीं नहीं तथा प्रणय-कोपके वश होकर दूसरी ओर देखने लगीं, तब भगवान् उन्हें वनशोभाकी बात कहकर सतीरूपसे पतिसेवा करने तथा वात्सल्यभावसे बालक-वत्सोंकी सँभालनेका कर्तव्य दिखाते हुए फिर कहने लगे—)

कदाचित् तुम सब वनकी शोभा देखने आयी होगी तो तुम लोगोंने भाँति-भाँतिके रंगोंवाले परम विचित्र सुगन्धिसे सम्पन्न पुष्पोंसे परिशोभित, पूर्णचन्द्रमाकी किरणप्रभासे प्रभासित तथा यमुनाजलका स्पर्श करके बहने-वाले शीतल पवनकी मन्द-मन्द गतिसे नाचते हुए वृक्षोंके पत्तोंसे विभूषित वृन्दावनको भी देख लिया ॥२१॥

तद् यात माचिरं गोष्ठं शुश्रूषध्वं पतीन् सतीः ।
क्रन्दन्ति वत्सा बालाश्च तान् पाययत दुह्यत ॥२२॥

तत्, यात, मा, चिरम्, गोष्ठम्, शुश्रूषध्वम्, पतीन्, सतीः, क्रन्दन्ति, वत्साः, बालाः, च, तान्, पाययत, दुह्यत ॥२२॥

तत्	इसलिये	**मा चिरम्**	अविलम्ब
सतीः	सतियो !	**गोष्ठम्**	गोष्ठको

यात	चली जाओ (और अपने)	**बालाः**	बच्चे
पतीन्	पतियोंकी	**क्रन्दन्ति**	रो रहे हैं
शुश्रूषध्वम्	सेवा करो (देखो, तुम्हारे)	**तान्**	उनको
वत्साः	बछड़े	**पायय**	दूध पिलाओ, (तथा बच्चोंके लिये)
च	और	**दुह्यत**	दूध भी दुह लो ॥२२॥

इसलिये हे सतियो ! अब देर मत करो, बहुत शीघ्र व्रजको लौट जाओ। घर जाकर अपने-अपने पतियोंकी सेवा करो। देखो, तुम्हारे घरके बछड़े और छोटे-छोटे बच्चे रो रहे हैं, जाकर उन्हें दूध पिलाओ तथा बछड़ोंके लिये गौएँ भी दुहो ॥२२॥

अथवा मदभिस्नेहाद् भवत्यो यन्त्रिताशयाः ।
आगता ह्युपपन्नं वः प्रीयन्ते मयि जन्तवः ॥२३॥

अथवा, मदभिस्नेहात्, भवत्यः, यन्त्रिताशयाः, आगताः, हि, उपपन्नम्, वः, प्रीयन्ते, मयि, जन्तवः ॥२३॥

अथवा	अथवा	**वः**	तुम्हारे लिये
मदभिस्नेहात्	मेरे प्रति अतिशय स्नेहके कारण	**उपपन्नम्**	उचित ही है
यन्त्रिताशयाः	वशीभूत चित्त हुई	**हि**	क्योंकि
भवत्यः	आप लोग (मेरे पास)	**जन्तवः**	सभी प्राणी
आगताः	आयी हो (तो यह)	**मयि**	मुझपर
		प्रीयन्ते	प्रेम करते हैं (ही) ॥२३॥

भगवान्‌की इस बातको सुनकर गोपियोंके मनमें बड़ा क्षोभ हुआ, तब भगवान् उनको आश्वासन देते हुए सती स्त्रियोंके परमधर्म पतिसेवा तथा जार-सेवनके दुष्परिणामका स्मरण कराकर बोले—'अथवा यदि तुम लोग मेरे प्रति अत्यन्त प्रेमपरवश होकर आयी हो तो यह तुम्हारे योग्य ही है; क्योंकि प्राणिमात्र (पशु-पक्षीतक) मुझसे प्रेम करते हैं ॥२३॥

भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो ह्यमायया ।
तद्बन्धूनां च कल्याण्यः प्रजानां चानुपोषणम् ॥२४॥

भर्तुः, शुश्रूषणम्, स्त्रीणाम्, परः धर्मः, हि, अमायया, तद्बन्धूनाम्, च, कल्याण्यः, प्रजानाम्, च, अनुपोषणम् ॥२४॥

फिर भी अपने धर्मकी ओर तुम्हें देखना चाहिये—

हि	क्योंकि	**शुश्रूषणम्**	सेवा
कल्याण्यः	साध्वियो !	**च**	तथा
अमायया	निष्कपट (शुद्ध) भावसे	**प्रजानाम्**	पुत्र-भृत्य आदिका
		अनुपोषणम्	लालन-पालन (ही)
भर्तुः	पतिकी	**स्त्रीणाम्**	स्त्रियोंका
च	और	**परः**	परम
तद्बन्धूनाम्	उनके बन्धुओं (माता-पिता आदि) की	**धर्मः**	धर्म (है) ॥२४॥

परन्तु हे कल्याणी सतियो ! यह सब होते हुए भी स्त्रियोंका परम धर्म तो यही है कि वे निष्कपट भावसे पति और उसके भाई-बन्धुओंकी सेवा करें तथा पुत्र-कन्यादिका और सेवक आदिका पालन-पोषण करें ॥२४॥

दुश्शीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा ।
पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी ॥२५॥

दुश्शीलः, दुर्भगः, वृद्धः, जडः, रोगी, अधनः, अपि, वा, पतिः, स्त्रीभिः, न, हातव्यः, लोकेप्सुभिः, अपातकी ॥२५॥

लोकेप्सुभिः	लोक-परलोककी इच्छा रखनेवाली	**जडः**	मूर्ख
		रोगी	रोगी
स्त्रीभिः	स्त्रियोंको	**अपि वा**	अथवा
दुश्शीलः	दुर्गुणभरे	**अधनः**	निर्धन
दुर्भगः	बुरे भाग्यवाले	**पतिः**	पति (को भी यदि वह)
वृद्धः	बूढ़े		

अपातकी	महापातकसे रहित (है तो)	**हातव्यः**	छोड़ना चाहिये ॥२५॥
न	नहीं		

जिन स्त्रियोंको इस लोकमें कीर्ति और मृत्युके पश्चात् श्रेष्ठ लोक प्राप्त करनेकी इच्छा हो, वे दुर्गुणोंसे भरे—बुरे स्वभाववाले, भाग्यहीन, वृद्ध, मूर्ख, रोगी एवं निर्धन पतिका भी कभी त्याग न करें, यदि वह महापापी (भगवान्‌का द्रोही) न हो ॥२५॥

अस्वर्ग्यमयशस्यं च फल्गु कृच्छ्रं भयावहम् ।
जुगुप्सितं च सर्वत्र औपपत्यं कुलस्त्रियाः ॥२६॥

अस्वर्ग्यम्, अयशस्यम्, च, फल्गु, कृच्छ्रम्, भयावहम्, जुगुप्सितम्, च, सर्वत्र, औपपत्यम्, कुलस्त्रियाः ॥२६॥

कुलस्त्रियाः	कुलवती रमणियोंके लिये (तो)	**भयावहम्**	(इस लोकमें स्वजनोंका, परलोकमें नरकका) भय देनेवाली
औपपत्यम्	परपुरुषसे प्रीति		
अस्वर्ग्यम्	स्वर्गसे वञ्चित करनेवाली	**च**	तथा
अयशस्यम्	यशका अपहरण करनेवाली	**सर्वत्र**	(स्वदेश, परदेश, व्यवहार, परमार्थ, इहलोक, परलोकमें) सर्वत्र
च	और		
फल्गु	तुच्छ		
कृच्छ्रम्	कष्टकर	**जुगुप्सितम्**	अत्यन्त निन्दित (है) ॥२६॥

अच्छे कुलकी स्त्रियोंके लिये जारपुरुषकी सेवा स्वदेश-परदेश, व्यवहार-परमार्थ, इहलोक-परलोक—सर्वत्र अत्यन्त निन्दनीय है। उसके कारण स्वर्गसे वञ्चित होना पड़ता है, संसारमें अपयश होता है, इस लोकमें स्वजनोंका तथा परलोकमें नरकयन्त्रणाका भय प्राप्त होता है। वह कुकर्म अत्यन्त तुच्छ—क्षणिक सुख देनेवाला है और कष्टदायक है ॥२६॥

श्रवणाद् दर्शनाद् ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात् ।
न तथा संनिकर्षेण प्रतियाम ततो गृहान् ॥२७॥

श्रवणात्, दर्शनात्, ध्यानात्, मयि, भावः, अनुकीर्तनात्, न, तथा, संनिकर्षेण, प्रतियात, ततः, गृहान् ॥२७॥

श्रवणात्	(नाम-गुण आदिके) श्रवणसे	**भावः**	प्रेम (होता है)
		तथा	वैसा
दर्शनात्	(दूरसे ही मुझे) देखनेसे	**संनिकर्षेण**	अत्यन्त समीप रहनेसे
ध्यानात्	(निरन्तर मेरे रूप आदिके) चिन्तनसे	**न**	नहीं (होता)
		ततः	इसलिये (तुम लोग अपने)
अनुकीर्तनात्	(निरन्तर मेरी) चर्चा करनेसे		
		गृहान्	घरको
मयि	मुझमें	**प्रतियात**	लौट जाओ ॥२७॥

इसपर भी जब गोपियोंको चुप और अपनी अनन्यतापर दृढ़ देखा, तब उपदेश करते हुए बोले—

फिर मेरे नाम-गुण-लीला आदिके श्रवणसे, दूरसे ही मेरा दर्शन करनेसे, निरन्तर मेरे रूपका चिन्तन-ध्यान करनेसे और मेरे नाम-गुणोंकी चर्चासे मेरे प्रति जैसा प्रेम उमड़ता है, वैसा प्रेम अत्यन्त समीप रहनेसे नहीं होता; इसलिये तुम लोग अपने-अपने घर लौट जाओ ॥२७॥

श्रीशुक उवाच

इति विप्रियमाकर्ण्य गोप्यो गोविन्दभाषितम् ।
विषण्णा भग्नसंकल्पाश्चिन्तामापुर्दुरत्ययाम् ॥२८॥

इति, विप्रियम्, आकर्ण्य, गोप्यः, गोविन्दभाषितम्, विषण्णाः भग्नसंकल्पाः, चिन्ताम्, आपुः, दुरत्ययाम् ॥२८॥

इति	(इस प्रकार) उपर्युक्त	**गोविन्दभाषितम्**	श्रीकृष्ण-वचको
		आकर्ण्य	सुनकर
विप्रियम्	अप्रिय लगनेवाले	**विषण्णाः**	खिन्न (एवं)

भग्नसंकल्पाः	भग्न मनोरथ हुई	**आपुः**	प्राप्त हुई (अर्थात्
गोप्यः	गोपियाँ		चिन्तासागरमें
दुरत्ययाम्	अपार		निमग्न हो गयीं)
चिन्ताम्	अनिष्ट-आशङ्काको		॥२८॥

परीक्षित ! गोविन्दकी उपर्युक्त अत्यन्त अप्रिय बातें सुनकर गोपियाँ खिन्न हो गयीं, उनकी आशा टूट गयी और वे भीषण चिन्ताके अथाह समुद्रमें डूब गयीं ॥२८॥

कृत्वा मुखान्यव शुचः श्वसनेन शुष्यद्-
बिम्बाधराणि चरणेन भुवं लिखन्त्यः ।
अस्रैरुपात्तमषिभिः कुचकुङ्कुमानि
तस्थुर्मृजन्त्य उरुदुःखभराः स्म तूष्णीम् ॥२९॥

कृत्वा, मुखानि, अव, शुचः, श्वसनेन, शुष्यद्बिम्बाधराणि, चरणेन, भुवम्, लिखन्त्यः, अस्रैः, उपात्तमषिभिः, कुचकुङ्कुमानि, तस्थुः, मृजन्त्यः, उरुदुःखभराः, स्म, तूष्णीम् ॥२९॥

उरुदुःखभराः	अतिशय दुःखभारसे पीड़ित (व्रज-सुन्दरियाँ)	**चरणेन**	चरण (के नखों) से
		भुवम्	पृथ्वीको
		लिखन्त्यः	कुरेदती हुई (एवं)
शुचः	शोकसे (उद्भूत)	**उपात्तमषिभिः**	काजलसे सने हुए
श्वसनेन	(उष्ण दीर्घ) श्वासके कारण	**अस्रैः**	आँसुओंसे
		कुचकुङ्कुमानि	हृदयपर लगे हुए कुङ्कुमको
शुष्यद्-	सूखते हुए		
बिम्बाधराणि	बिम्बसदृश ओठोंसे युक्त (अपने)	**मृजन्त्यः**	धोती हुई
		तूष्णीम्	चुपचाप
मुखानि	मुखको	**तस्थुः स्म**	खड़ी रह गयीं
अव	नीचे		॥२९॥
कृत्वा	करके (तथा)		

उनका हृदय दुःखसे भर गया, उनके लाल-लाल पके हुए बिम्ब-फलसे अधर शोकके कारण चलनेवाले लंबे तथा गरम श्वासोंके तापसे सूख

गये, उन्होंने अपने मुख नीचेकी ओर लटका लिये और पैरोंके नखोंसे वे पृथ्वीको कुरेदने लगीं। उनके नेत्रोंसे काजलसे सने आँसू बह-बहकर वक्षःस्थलपर पहुँच गये और वहाँ लगी हुई केसरको धोने लगे। वे चुपचाप खड़ी रह गयीं, कुछ भी बोल न सकीं ॥२९॥

प्रेष्ठं प्रियेतरमिव प्रतिभाषमाणं
कृष्णं तदर्थविनिवर्तितसर्वकामाः ।
नेत्रे विमृज्य रुदितोपहते स्म किंचित्
संरम्भगद्गदगिरोऽब्रुवतानुरक्ताः ॥३०॥

प्रेष्ठम्, प्रियेतरम्, इव, प्रतिभाषमाणम्, कृष्णम्, तदर्थविनिवर्तितसर्वकामाः, नेत्रे, विमृज्य, रुदितोपहते, स्म, किंचित्संरम्भगद्गदगिरः, अब्रुवत, अनुरक्ताः ॥३०॥

तदर्थ-	उन (श्रीकृष्ण)के	**नेत्रे**	दोनों नेत्रोंको
विनिवर्तित-	लिए (उनकी सेवाके	**विमृज्य**	पोंछकर
सर्वकामाः	अतिरिक्त अन्य) समस्त अभिलाषाओं का सर्वथा त्याग कर चुकनेवाली (तथा)	**किंचित्-**	किंचित् (प्रणय-)
		संरम्भगद्-	कोपावेशके कारण
		गदगिरः	गद्गदवाणीसे युक्त होकर
		प्रियेतरम्	अप्रिय (रुखे मनुष्य) की
अनुरक्ताः	(एकमात्र उन्हींमें) अनुराग रखनेवाली (व्रजसुन्दरियाँ)	**इव**	भाँति
		प्रतिभाष-	(उपेक्षापूर्ण)
रुदितोपहते	लगातार रोनेके कारण रुंधे हुए अपने	**माणम्**	वचन बोलनेवाले
		प्रेष्ठम्	प्रियतम
		कृष्णम्	श्रीकृष्णसे
		अब्रुवत स्म	बोलीं ॥३०॥

उन गोपियोंका मन एकमात्र श्रीकृष्णमें ही अनन्य भावसे अनुरक्त था। वे उनके लिये—उनकी सेवाके अतिरिक्त सभी भोगोंका, सभी कामनाओंका सर्वथा त्याग कर चुकी थीं। जब उन्होंने अपने प्रियतम श्रीकृष्ण-

के मुखसे प्रेमशून्य व्यक्तिकी-सी निष्ठुरतासे भरी उपेक्षायुक्त वाणी सुनी, तब उन्हें बड़ी ही मर्मवेदना हुई। रोते-रोते उनकी आँखें रुँध गयीं, फिर उन्होंने धीरज धारण करके अपनी आँखोंके आँसू पोंछे और पुनः रोती हुई प्रणय-कोपके कारण गद्गद्वाणीसे कहने लगी ॥३०॥

गोप्य ऊचुः

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं
संत्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम् ।
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्
देवो यथाऽऽदिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥३१॥

मा, एवम्, विभो, अर्हति, भवान्, गदितुम् नृशंसम्, संत्यज्य, सर्वविषयान्, तव, पादमूलम्, भक्ताः, भजस्व, दुरवग्रह, मा, त्यज, अस्मान्, देवः, यथा, आदिपुरुषः, भजते, मुमुक्षून् ॥३१॥

विभो	हे सर्वसमर्थ
दुरवग्रह	हे स्वच्छन्द
भवान्	आप
एवम्	इस प्रकार
नृशंसम्	कठोर
गदितुम्	बोलनेके लिये
मा अर्हति	योग्य नहीं हैं (आपको ऐसा कठोर नहीं बोलना चाहिये)
सर्वविषयान्	समस्त विषयोंको
संत्यज्य	सर्वथा छोड़कर
तव	तुम्हारे
पादमूलम्	चरणतलका (ही)
भक्ताः	भजन करनेवाली
अस्मान्	हम सबको
मा	मत
त्यज	छोड़ो
आदिपुरुषः	भगवान्
देवः	श्रीनारायण
मुमुक्षून्	संसार-बन्धनसे छूटनेकी इच्छा रखने वालोंका
यथा	जिस प्रकार
भजते	भजन करते हैं— उनका मनोरथ पूर्ण करते हैं (उसी प्रकार तुम भी हम लोगोंका)
भजस्व	भजन करो— तुम्हारी चरणसेवाकी जो हमारे अन्दर वासना है, उसे पूर्ण करो ॥३१॥

हे सर्वसमर्थ प्रभो ! हमारे प्राणवल्लभ ! हे स्वच्छन्द-विहारी ! आप परम कोमल स्वभाव होकर भी इस प्रकारके निष्ठुरता भरे वचन क्यों बोल रहे हैं ? ऐसा तो आपको नहीं चाहिये । हम धर्म-लज्जा-पति-स्वजनादि समस्त विषयोंको सर्वथा त्यागकर यहाँ आयी हैं । हम तुम्हारे चरणतलोंकी सेविकाएँ हैं । हम लोगोंका परित्याग मत करो । जैसे आदिदेव भगवान नारायण संसार-बन्धनसे छूटनेकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंका मनोरथ पूर्ण करते हैं, वैसे ही तुम भी हमारे अन्दर जाग्रत् हुई तुम्हारी चरणसेवा-वासनाको पूर्ण करके हमें कृतार्थ करो ॥३१॥

यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग
स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् ।
अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे
प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा ॥३२॥

यत्, पत्यपत्यसुहृदाम्, अनुवृत्तिः, अङ्ग, स्त्रीणाम्, स्वधर्मः, इति, धर्मविदा, त्वया, उक्तम्, अस्तु, एवम्, एतत्, उपदेशपदे, त्वयि, ईशे, प्रेष्ठः, भवान्, तनुभृताम्, किल, बन्धुः, आत्मा ॥३२॥

अङ्ग	हे प्यारे !	**एतत्**	यह (तुम्हारा
पत्यपत्य-	पति, पुत्र एवं		उपदेश-वाक्य)
सुहृदाम्	(अन्य) स्वजनोंका	**उपदेशपदे**	उपदेश देनेवाले
अनुवृत्तिः	अनुवर्तन—उनकी	**त्वयि**	तुम
	यथायोग्य सेवा	**ईशे**	परमेश्वरके प्रति
	(ही)		(ही ठीक)
स्त्रीणाम्	स्त्रियोंका	**एवम्**	इसी प्रकार
स्वधर्मः	अपना धर्म (है)		(हमारी ओरसे)
इति	यह	**अस्तु**	(चरितार्थ) हो जाय
यत्	जो (बात)		(क्योंकि)
धर्मविदा	धर्मके जाननेवाले	**भवान्**	आप
त्वया	तुमने	**किल**	ही (तो)
उक्तम्	कही	**तनुभृताम्**	शरीरधारियोंके

प्रेष्ठः	प्रियतम	आत्मा	आत्मा (हैं) ॥३२॥
बन्धुः	बन्धु (एवं)		

हे प्यारे ! तुम सब धर्मोंका रहस्य जानते हो। तुमने पति, पुत्र एवं अन्य स्वजनोंकी यथायोग्य सेवा करना ही स्त्रियोंका अपना धर्म है, जो यह उपदेश दिया, सो तुम्हारा यह उपदेश तुम उपदेश करनेवालेके प्रति ही हमारी ओरसे चरितार्थ हो जाय; क्योंकि तुम ईश्वर हो—नहीं, नहीं तुम्ही तो प्राणिमात्रके प्रियतम, बन्धु और आत्मा हो। अर्थात् पति-पुत्रादि में जब तुम्हीं आत्मारूपसे स्थित हो, अतः उनकी देहमें भी सेव्य तुम्ही हो—वे ही तुम जब साक्षात् हमें प्राप्त हो, तब एकमात्र तुम्हारी सेवा ही उन सबकी सेवा है; तुम्हारे उपदेशकी सच्ची चरितार्थता तुम्हारी सेवासे ही होती है ॥३२॥

कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन्
नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः किम् ।
तन्नः प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिन्द्या
आशां भृतां त्वयि चिरादरविन्दनेत्र ॥३३॥

कुर्वन्ति, हि, त्वयि, रतिम्, कुशलाः, स्वे, आत्मन्, नित्यप्रिये, पतिसुतादिभिः, आर्तिदैः, किम्, तत्, नः, प्रसीद, परमेश्वर, मा, स्म, छिन्द्याः, आशाम्, भृताम्, त्वयि, चिरात्, अरविन्दनेत्र ॥३३॥

हि	यह प्रसिद्ध है कि	कुर्वन्ति	करते हैं
कुशलाः	(सार-असारको जाननेवाले) चतुर पुरुष	आर्तिदैः	(वास्तवमें देखें तो) दुःख देनेवाले
स्वे	बन्धुरूप,	पतिसुतादिभिः	पति-पुत्र आदिसे
आत्मन्	सबके आत्मा,	किम्	प्रयोजन (भी) क्या है ?
नित्यप्रिये	सनातन (सहज) प्रेमास्पदरूप	तत्	इसलिये
त्वयि	तुमसे (ही)	परमेश्वर	हे परमेश्वर
रतिम्	प्रीति	नः	हम लोगोंपर
		प्रसीद	प्रसन्न हो जाओ

अरविन्दनेत्र	हे कमल-नयन !	**आशाम्**	आशाको
चिरात्	चिरकालसे	**मा**	मत
त्वयि	तुममें	**छिन्द्याः स्म**	काट डालो ॥३३॥
धृताम्	लगी हुई (हमारी)		

प्रियतम ! तुम्हीं सबके परम बन्धु, आत्मा और नित्यप्रिय सनातन—सहज प्रेमास्पद हो, इसलिये सार-आसारको समझनेवाले चतुर पुरुष तुम्हीं से प्रेम करते हैं। संसारके पति-पुत्रादि तो अपनी ममतामें फँसाकर वस्तुतः नाना प्रकारसे दुःख ही, देनेवाले हैं उनसे हमारा कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होगा ? अतएव हे परमेश्वर ! तुम हम लोगोंपर रीझ जाओ। कमल-नयन ! चिरकालसे पाली-पोसी हुई हमारी सेवाभिलाषारूप लताको यों निष्ठुरतासे काट न दो ॥३३॥

चित्तं सुखेन भवतापहृतं गृहेषु
यर्न्निविशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये ।
पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद्
यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा ॥३४॥

चित्तम्, सुखेन, भवता, अपहृतम्, गृहेषु, यत्, निविशति, उत, करौ, अपि, गृह्यकृत्ये, पादौ, पदम्, न, चलतः, तव, पादमूलात्, यामः, कथम्, व्रजम्, अथो, करवाम, किम्, वा ॥३४॥

यत्	(हम लोगोंका) जो	**उत**	तथा
चित्तम्	चित्त (अबतक)	**गृह्यकृत्ये**	गृहकार्यमें लगे हुए
गृहेषु	गृहमें	**करौ**	दोनों हाथोंको
निविशति	मजेमें लगता था (उसे)	**अपि**	भी (आपने अपनी ओर आकर्षित कर लिया तथा आपके द्वारा आकृष्ट ये हमारे)
भवता	आपने		
सुखेन	अनायास (ही)		
अपहृतम्	लूट लिया		

पादौ	दोनों चरण (भी)	**कथम्**	किस प्रकार
तव	आपके	**व्रजम्**	व्रजको
पादमूलात्	चरणतलसे (दूर हटनेके लिये)	**यामः**	जायँ
		वा	अथवा (वहाँ जाकर भी)
पदम्	एक पग (भी)		
न	नहीं	**किम्**	क्या
चलतः	चल रहे हैं	**करवाम**	करें ? ॥३४॥
अथो	इसलिये (अब हम लोग)		

श्रीकृष्ण ! हम लोगोंका जो चित्त अबतक घरमें मजेमें लग रहा था, उसको आपने सहज ही लूट लिया है तथा घरके कामोंमें लगे हुए हमारे दोनों हाथोंको भी आपने अपनी ओर खींच लिया है। इधर आपके द्वारा खींचे हुए हमारे ये दोनों चरण भी अब आपके चरणतलसे दूर हटकर एक पग भी जानेके लिये तैयार नहीं है। तब आप ही बताओ, हम लोग कैसे व्रजको लौटकर जायँ और वहाँ जाकर भी क्या करें ॥३४॥

सिञ्चाङ्ग नस्त्वदधरामृतपूरकेण
हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम् ।
नो चेद् वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा
ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते ॥३५॥

सिञ्च, अङ्ग, नः, त्वदधरामृतपूरकेण, हासावलोककलगीत-जहृच्छयाग्निम्, नो, चेत्, वयम्, विरहजाग्न्युपयुक्तदेहाः, ध्यानेन, याम, पदयोः, पदवीम्, सखे, ते ॥३५॥

अङ्ग	हे प्यारे	**हृच्छयाग्निम्**	उत्पन्न हुई प्रेमाग्नि को
नः	हम लोगोंको (तुम्हारे ही)	**त्वदधरामृत-**	अपने अधरामृतके
हासावलोक-	हास्य युक्त, दृष्टि	**पूरकेण**	प्रवाहसे
कलगीतज-	एवं मधुर वेणुनादसे	**सिञ्च**	सींच दो, बुझा दो

नो चेत्	यदि ऐसा नहीं करते तो	**ध्यानेन**	ध्यान (रूप साधन) से ही
सखे	हे सखे !	**ते**	तुम्हारे
विरहजाग्न्यु-	विरहकी अग्निसे	**पदयोः**	चरणोंका
पयुक्तदेहाः	दग्ध हुए शरीरवाली	**पदवीम्**	सामीप्य
वयम्	हम सब (तुम्हारे)	**याम**	प्राप्त करेंगी ॥३५॥

प्राणवल्लभ ! तुम्हारी मनोहर मुसकान, प्रेम-सुधामयी दृष्टि और मुरलीकी मधुरतम तानने हमारे हृदयमें तुम्हारे प्रेमकी अग्निको धधका दिया है। उसे अपने अधरोंकी सुधा-धाराके प्रवाहसे बुझा दो। ऐसा न करोगे तो प्यारे सखा ! हम सब तुम्हारे विरहकी प्रचण्ड अग्निसे अपने शरीरको जला देंगी और ध्यानके द्वारा तुम्हारे चरणकमलोंके समीप जा पहुँचेंगी ॥३५॥

यर्ह्यम्बुजाक्ष तव पादतलं रमाया
दत्तक्षणं क्वचिदरण्यजनप्रियस्य ।
अस्प्राक्ष्म तत्प्रभृति नान्यसमक्षमङ्ग
स्थातुं त्वयाभिरमिता बत पारयामः ॥३६॥

यर्हि, अम्बुजाक्ष, तव, पादतलम्, रमायाः, दत्तक्षणम्, क्वचित्, अरण्यजनप्रियस्य, अस्प्राक्ष्म, तत्प्रभृति, न, अन्यसमक्षम्, अङ्ग, स्थातुम्, त्वया, अभिरमिताः, बत, पारयामः ॥३६॥

अम्बुजाक्ष	हे कमलनयन !	**अरण्यजन-**	वनवासियोंसे
यर्हि	जबसे	**प्रियस्य**	प्यार करनेवाले
क्वचित्	(गोवर्द्धन आदि कुञ्ज-स्थलमें) कहींपर	**तव**	तुम्हारे
		पादतलम्	चरणतलका (जो)
		रमायाः	श्रीनारायण-पत्नी लक्ष्मीको (भी)
त्वया	तुम्हारे द्वारा		
अभिरमिताः	आनन्दित किये जाकर	**दत्तक्षणम्**	सुख देनेवाले हैं,
		अस्प्राक्ष्म	स्पर्श किया
(वयम्)	हम लोगोंने	**तत्प्रभृति**	तबसे

अङ्ग	हे प्यारे !	**न**	नहीं
बत	ओह !	**पारयामः**	समर्थ हो रही हैं (सेवा करना तो अत्यन्त दूर है) ॥३६॥
अन्यसमक्षम्	(किसी) दूसरेके समीप		
स्थातुम्	खड़ी होनेके लिये (भी)		

हे कमललोचन ! तुम्हारे चरणतल वनवासियोंको बड़े प्रिय हैं; और तो और नारायणकी प्रिया लक्ष्मीदेवीको भी सुख देनेवाले हैं; उन चरणोंका गोवर्धन आदि कुञ्ज-स्थलोंमें हमें जिस क्षण स्पर्श प्राप्त हुआ और तुमने हमें सेवाके लिये स्वीकार करके आनन्दित किया, उसी क्षणसे प्यारे ! हम किसी दूसरेके पास एक पलके लिये खड़ी भी नहीं हो सकतीं, पति-पुत्रादिकी सेवा करना तो दूरकी बात है ॥३६॥

श्रीर्यत्पदाम्बुजरजश्चकमे तुलस्या
लब्ध्वापि वक्षसि पदं किल भृत्यजुष्टम् ।
यस्याः स्ववीक्षणकृतेऽन्यसुरप्रयास-
स्तद्वद् वयं च तव पादरजः प्रपन्नाः ॥३७॥

श्रीः, यत्पदाम्बुजरजः, चकमे, तुलस्या, लब्ध्वा, अपि, वक्षसि, पदम्, किल, भृत्यजुष्टम्, यस्याः, स्ववीक्षणकृते, अन्यसुरप्रयासः, तद्वत्, वयम्, च, तव, पादरजः, प्रपन्नाः ॥३७॥

यस्याः	जिन (लक्ष्मी) के सम्बन्धमें	**श्रीः**	लक्ष्मीने (भी)
स्ववीक्षणकृते	लक्ष्मी मेरी ओर कृपा दृष्टि करे' इसके लिये	**वक्षसि**	श्रीनारायणके वक्षःस्थलपर
अन्यसुरप्रयासः	अन्य देवताओंका प्रयास होता है (उन)	**पदम्**	स्थान
		लब्ध्वा	पाकर
		अपि	भी
		तुलस्या	तुलसीके सहित
		भृत्यजुष्टम्	भृत्यपरिसेवित

यत्पदाम्बुज-	तुम्हारी चरण-	तद्वत्	उन्हींकी भाँति
रजः	कमल-रजकी	तव	तुम्हारी
चकमे	कामना की (है)	पादरजः	चरणरजकी
वयम्	हमलोग	किल	निश्चय ही
च	भी	प्रपन्नाः	शरण (हैं) ॥३७॥

जिन लक्ष्मीजीकी कृपादृष्टि प्राप्त करनेके लिये ब्रह्मादि बड़े-बड़े देवता प्रयास करते रहते हैं, वे लक्ष्मीजी भी श्रीनारायणके वक्षःस्थलपर नित्य स्थान प्राप्त कर लेनेपर भी तुलसीजीके साथ तुम्हारे चरण-कमलकी उस रजको पानेके लिये लालायित रहती हैं, जो तुम्हारे सेवकोंको सहज प्राप्त है; श्रीकृष्ण ! हमलोग भी उन्हींकी भाँति सर्वत्याग करके तुम्हारी चरणरजकी शरणमें आयी हैं ॥३७॥

तन्नः प्रसीद वृजिनार्दन तेऽङ्घ्रिमूलं
प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः ।
त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षणतीव्रकाम-
तप्तात्मनां पुरुषभूषण देहि दास्यम् ॥३८॥

तत्, नः, प्रसीद, वृजिनार्दन, ते, अङ्घ्रिमूलम्, प्राप्ताः, विसृज्य, वसतीः, त्वदुपासनाशाः त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षणतीव्रकामतप्तात्मनाम्, पुरुषभूषण, देहि, दास्यम् ॥३८॥

वृजिनार्दन	हे सर्वदुःखहारिन् !	प्रसीद	प्रसन्न हो जाओ
त्वदुपासनाशाः	तुम्हारी चरणसेवा-	पुरुषभूषण	हे पुरुषरत्न !
	की आशा रखने-	त्वत्सुन्दर-	तुम्हारी सुन्दर
	वाली	स्मितनिरी-	मुसुकानयुक्त
	(हम सब अपने)	क्षणतीव्रकाम-	कटाक्षजनित
वसतीः	घरोंको	तप्तात्मनाम्	तीव्र प्रेमके
विसृज्य	छोड़कर		तापसे तप्त हुए
ते	तुम्हारे		मनवाली
अङ्घ्रिमूलम्	चरणोंके निकट	नः	हम सबको
प्राप्ताः	आ पहुँची हैं	दास्यम्	सेवाका अधिकार
तत्	इसलिये (अब)	देहि	दे दो ॥३८॥

भगवन् ! तुम सबके सम्पूर्ण दुःखोंका नाश करनेवाले हो, हम सब तुम्हारे चरणोंकी सेवा करनेकी आशासे ही घर-कुटुम्बादि सब कुछ त्यागकर तुम्हारे चरणोंकी शरणमें आयी हैं; अब तुम हमपर प्रसन्न होओ। हे पुरुषरत्न ! तुम्हारी मधुर मुसुकान तथा तिरछी चितवनने हमारे देह तथा मनको प्रेम—मिलन-लालसाकी तीव्र अग्निसे संतप्त कर दिया है, अब तुम हम लोगोंको दासीके रूपमें स्वीकारकर सेवाका सौभाग्य प्रदान करो ॥३८॥

वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुण्डलश्री-
गण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम् ।
दत्ताभयं च भुजदण्डयुगं विलोक्य
वक्षः श्रियैकरमणं च भवाम दास्यः ॥३९॥

वीक्ष्य, अलकावृतमुखम्, तव, कुण्डलश्रीगण्डस्थलाधरसुधम्, हसितावलोकम्, दत्ताभयम्, च, भुजदण्डयुगम्, विलोक्य, वक्षः, श्रियैकरमणम्, च, भवाम, दास्यः ॥३९॥

कुण्डलश्री-	कुण्डलोंकी	**च**	तथा
गण्डस्थला-	शोभासे मण्डित	**दत्ताभयम्**	अभयप्रद
धरसुधम्	कपोलवाले एवं अधरोंमें अमृत धारण करनेवाले (तथा)	**भुजदण्डयुगम्**	बाहुयुगलको
		च	एवं
		श्रियैकरमणम्	लक्ष्मीके एकमात्र रतिप्रद
हसितावलोकम्	मधुर मुसुकानयुक्त दृष्टिसे (शोभित)	**वक्षः**	वक्षस्थलको
		विलोक्य	निहारकर (हम सब तुम्हारी)
तव	तुम्हारे		
अलकावृत-	अलकावलीसे	**दास्यः**	दासी
मुखम्	घिरे हुए मुखको	**भवाम**	बन चुकी हैं ॥३९॥
वीक्ष्य	निरखकर		

प्रियतम ! तुम्हारे मुखकमलको, जो घुँघराली अलकोंके भीतरसे झलक रहा है, जिसके कमनीय कपोलोंपर कुण्डलोंकी छवि छा रही है, जिसके मधुर अधर अमृतमय हैं तथा जो हृदयको हर लेनेवाली तिरछी

चितवन तथा मधुर मुसकानसे समन्वित है, निरखकर तथा अभयदान देने-वाली दोनों भुजाओंको एवं सौन्दर्यकी एकमात्र मूर्ति श्रीलक्ष्मीजीके नित्य रतिप्रद वक्षःस्थलको निहारकर हम सब तुम्हारी सदाके लिये बिना मोल-की दासी बन चुकी हैं ॥३६॥

का स्त्यङ्ग ते कलपदायतमूर्च्छितेन
सम्मोहिताऽऽर्यचरितान्न चलेत्त्रिलोक्यम् ।
त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं
यद् गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन् ॥४०॥

का, स्त्री, अङ्ग, ते, कलपदायतमूर्च्छितेन, सम्मोहिता, आर्यचरितात्, न, चलेत्, त्रिलोक्याम्, त्रैलोक्यसौभगम्, इदम्, च, निरीक्ष्य, रूपम्, यत्, गोद्विजद्रुममृगाः, पुलकानि, अबिभ्रन् ॥४०॥

अङ्ग	हे प्यारे
त्रिलोक्याम्	(पृथ्वी आदि) तीनोंलोकोंमें (ऐसी)
का	कौन (सी)
स्त्री	स्त्री (है जो)
ते	तुम्हारे
कलपदाय-तमूर्च्छितेन	सुन्दर पदावली, दीर्घ स्वर एवं आलोपभेदवाले (वेणु-) गानसे
च	तथा
त्रैलोक्य-सौभगम्	त्रिभुवनके सौभाग्यरूप
इदम्	इस
रूपम्	रूपको
निरीक्ष्य	देखकर
सम्मोहिता	सर्वथा मोहित हुई
आर्यचरितात्	अपने धर्मसे
न चलेत्	विचलित न हो जाय। (अरे! स्त्रियोंकी बात दूर रहे, तुम्हारा यह वंशीगान एवं रूप इतना मोहक है)
यत्	कि (इनसे तो)
गोद्विज-द्रुममृगाः	गाय, पक्षी, वृक्ष, एवं मृगगण (तक)ने
पुलकानि	पुलकावली
अबिभ्रन्	धारण कर ली है ॥४०॥

प्रियतम ! तीनों लोकोंमें ऐसी कौन-सी रमणी है, जो तुम्हारे मधुर-मधुर पद और आरोह-अवरोह क्रमसे विभिन्न प्रकारकी मूर्च्छनाओंसे समन्वित मुरली-संगीतको सुनकर तथा त्रिभुवनके सौभाग्यरूप इस त्रिभंग-ललित श्यामसुन्दर-रूपको देखकर सर्वथा मोहित हो अपनी आर्यमर्यादासे विचलित न हो जाय। स्त्रियोंकी तो बात ही क्या है, तुम्हारा त्रिभुवन-मन-मोहन रूप तथा मुरली-संगीत ऐसा मोहक है कि इसे देख-सुनकर गौ, पक्षी, वृक्ष और मृग आदि प्राणी भी परमानन्दसे पुलकित हो गये हैं ॥४०॥

व्यक्तं भवान् व्रजभयार्तिहरोऽभिजातो
देवो यथाऽऽदिपुरुषः सुरलोकगोप्ता ।
तन्नो निधेहि करपङ्कजमार्तबन्धो
तप्तस्तनेषु च शिरस्सु च किंकरीणाम् ॥४१॥

व्यक्तम्, भवान्, व्रजभयार्तिहरः, अभिजातः, देवः, यथा, आदिपुरुषः, सुरलोकगोप्ता, तत्, नः, निधेहि, करपङ्कजम्, आर्तबन्धो, तप्तस्तनेषु, च, शिरस्सु, च, किंकरीणाम् ॥४१॥

आर्तबन्धो	हे दुखियोंके बन्धु !	**व्यक्तम्**	प्रसिद्ध है
आदिपुरुषः	भगवान्	**तत्**	इसलिये
देवः	श्रीनारायण देव	**नः**	हम
यथा	जिस प्रकार	**किंकरीणाम्**	दासियोंके
सुरलोकगोप्ता	सुरलोकके रक्षक (हैं) (उसी प्रकार)	**तप्तस्तनेषु**	जलते हुए वक्षः-स्थलोंपर
भवान्	आप	**च**	और
व्रजभयार्तिहरः	व्रजके भय एवं दुःख-को हरनेवाले	**शिरस्सु**	मस्तकोंपर
अभिजातः	आविर्भूत हुए हैं, (यह बात व्रजमें)	**च**	भी (अपना)
		करपङ्कजम्	कर-कमल
		निधेहि	रख दें ॥४१॥

दयामय ! आप आर्तोंके बन्धु हैं और यह प्रसिद्ध है कि जिस प्रकार आदिदेव भगवान् श्रीनारायण देवताओंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप भी व्रजमण्डलके भयको दूर करनेके लिये ही प्रकट हुए हैं। हम भी

आपके मिलन-मनोरथकी अग्निसे संतप्त, अत्यन्त आर्त हैं। अतएव आप हम किंकरियोंके वक्षःस्थलोंपर और सिरपर अपने कमल-कोमल हाथ रखकर हमें दुःखमुक्त कर दें ॥४१॥

श्रीशुक उवाच

इति विक्लवितं तासां श्रुत्वा योगेश्वरेश्वरः।
प्रहस्य सदयं गोपीरात्मारामोऽप्यरीरमत् ॥४२॥

इति, विक्लवितम्, तासाम्, श्रुत्वा, योगेश्वरेश्वरः, प्रहस्य, सदयम्, गोपीः, आत्मारामः, अपि, अरीरमत् ॥४२॥

	(राजन् ! फिर तो)	**प्रहस्य**	(उनपर प्रसन्न होनेके कारण) शुद्ध मनसे हँसकर
योगेश्वरेश्वरः	योगेश्वरोंके भी ईश्वर श्रीकृष्ण		
आत्मारामः	आत्माराम (होनेपर)	**सदयम्**	करुणावश
अपि	भी	**गोपीः**	गोपियोंके साथ
तासाम्	उन व्रजसुन्दरियोंके	**अरीरमत्**	रमण करने लगे—गोपियोंको अपना स्वरूप भूत आनन्द देने लगे ॥४२॥
इति	इस प्रकारके		
विक्लवितम्	विलाप-वचनको		
श्रुत्वा	सुनकर		

परीक्षित् ! सनकादि-शिवादि योगेश्वरोंके भी ईश्वर नित्य आत्म-स्वरूपमें रमण करनेवाले भगवान्‌ने जब व्रजगोपियोंकी इस प्रकार मार्मिक व्यथा और व्याकुलतासे पूर्ण वाणीको सुना, तब उनका हृदय दयासे द्रवित हो गया और शुद्ध मनसे हँसकर वे अपने कर-कमलोंसे उनके आँसू पोंछकर उनके साथ विलास-विहार करने लगे—उन्हें अपना स्वरूपभूत आनन्द देने लगे ॥४२॥

ताभिः समेताभिरुदारचेष्टितः
प्रियेक्षणोत्फुल्लमुखीभिरच्युतः ।
उदारहासद्विजकुन्ददीधिति-
र्व्यरोचतैणाङ्क इवोडुभिर्वृतः ॥४३॥

ताभिः, समेताभिः, उदारचेष्टितः प्रियेक्षणोत्फुल्लमुखीभिः, अच्युतः, उदारहासद्विजकुन्ददीधितिः, व्यरोचत, एणाङ्कः, इव, उडुभिः, वृतः ॥४३॥

समेताभिः	अत्यन्त निकट आयी हुई, (अपने)
प्रियेक्षणोत्फुल्लमुखीभिः	प्रियतमके दर्शनसे प्रसन्न हुए मुखवाली
ताभिः	(उन) व्रजसुन्दरियोंसे
वृतः	परिवेष्टित (होकर)
उदारचेष्टितः	उदार चेष्टावाले (तथा)
उदारहास-द्विजकुन्द-	मुखपर छाये हुए उदार हास्यसे विक-
दीधितिः	सित दन्तपंक्तियोंपर खिले हुए कुन्दपुष्पों-जैसी उज्ज्वल शोभा धारण करनेवाले (एवं)
अच्युतः	अपने स्वरूपसे कभी च्युत न होनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण
उडुभिः	ताराओंसे (परि-वेष्टित)
एणाङ्कः	पूर्णचन्द्र (की)
इव	भाँति
व्यरोचत	सुशोभित हुए ॥४३॥

प्रियतमकी अत्यन्त समीपता प्राप्त करनेसे गोपरमणियोंका विरह-दुःख तथा प्रणयकोप शान्त हो गया और श्रीकृष्णके दर्शन तथा उनकी प्रेमभरी चितवनके आनन्दसे उनका मुख-कमल प्रफुल्लित हो उठा। वे जब हँसते थे, तब उनकी उज्ज्वल दन्तपंक्तियोंपर कुन्दपुष्पों-जैसी शोभा छा जाती थी। उस समय उनकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो ताराओंसे घिरे हुए पूर्ण चन्द्रमा हों। श्रीकृष्ण इस प्रकार व्रजबालाओंको सुख देकर भी अपने सच्चिदानन्दघन स्वरूपसे जरा भी च्युत नहीं हुए थे। अर्थात् गोपरमणियोंके साथ उनका यह क्रीड़ा-विहार सच्चिदानन्दमयी दिव्यलीला थी ॥४३॥

उपगीयमान उद्गायन् वनिताशतयूथपः।
मालां बिभ्रद् वैजयन्तीं व्यचरन्मण्डयन् वनम् ॥४४॥

उपगीयमानः, उद्गायन्, वनिताशतयूथपः, मालाम्, बिभ्रत्, वैजयन्तीम्, व्यचरत् मण्डयन्, वनम् ॥४४॥

उपगीयमानः	(व्रजसुन्दरियों द्वारा) गाये जाते हुए (तथा स्वयं)	वैजयन्तीम्	वैजयन्ती
		मालाम्	माला
		बिभ्रत्	धारण किये
उद्गायन्	उच्च स्वरसे गायन करते हुए	वनम्	श्रीवृन्दावनको
		मण्डयन्	अलंकृत करते हुए
वनिताशत-यूथपः	व्रजवनिताओंके सैकड़ों यूथके नायक (श्रीकृष्ण)	व्यचरत्	विचरण करने लगे ॥४४॥

उस समय व्रजगोपियाँ अपने प्रियतम श्रीकृष्णके गुण, रूप तथा लीला आदिका मधुर स्वरसे गान करने लगीं, उधर श्रीकृष्ण भी उच्च स्वरसे उनके प्रेम और सौन्दर्यके गीत गाने लगे। इस प्रकार व्रजसुन्दरियों-के सैकड़ों यूथोंके नायक श्रीकृष्ण वैजयन्ती माला धारण किये श्रीवृन्दावन-की शोभाको बढ़ाते हुए विचरण करने लगे ॥४४॥

नद्याः पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुकम् ।
रेमे तत्तरलानन्दकुमुदामोदवायुना ॥४५॥

नद्याः, पुलिनम्, आविश्य, गोपीभिः, हिमवालुकम्, रेमे, तत्, तरलानन्दकुमुदामोदवायुना ॥४५॥

फिर—

नद्याः	(यमुना) नदीके	हिमवालुकम्	शीतल वालुकासे युक्त (था)
तत्	उस		
पुलिनम्	पुलिनपर (जो)	आविश्य	जाकर (अपनी ही स्वरूपभूता)
तरलानन्द-कुमुदामोद-वायुना	(नदीकी) तरल तरंगोंसे शीतल हुए, (मन्द-मन्द प्रवाहित होनेके कारण) आनन्ददायी एवं कुमुदिनीके सौरभसे सुवासित वायुके द्वारा (परिसेवित) (तथा)	गोपीभिः	गोपियोंके साथ
		रेमे	रमण करने लगे ॥४५॥

तदनन्तर गोपांगनाओंके साथ भगवान् श्रीकृष्णने यमुनाके उस परम रमणीय पुलिनपर पदार्पण किया। वह पुलिन यमुनाजीकी तरल तरंगोंके स्पर्शसे शीतल हो रहा था और कुमुदिनीकी सुन्दर सुगन्धसे युक्त मन्द-मन्द वायुके द्वारा परिसेवित था। वहाँ बर्फके समान उज्ज्वल तथा शीतल बालू बिछी हुई थी। इस प्रकारके आनन्दप्रद पुलिनपर भगवान् अपनी स्वरूपभूता गोपियोंके साथ क्रीड़ा करने लगे ॥४५॥

बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरु-
नीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः ।
क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणा-
मुत्तम्भयन् रतिपतिं रमयांचकार ॥४६॥

बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरुनीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः, क्ष्वेल्या, अवलोकहसितैः, व्रजसुन्दरीणाम्, उत्तम्भयन्, रतिपतिम्, रमयांचकार ॥४६॥

बाहुप्रसार-	भुजा फैलाकर
परिरम्भकरा-	आलिंगन करना.
लकोरुनीवी-	हाथ, अलकावली,
स्तनालभ-	जङ्घा, नीवी, वक्षः-
ननर्मनखा-	स्थलका स्पर्श
ग्रपातैः	करना, विनोद करना, नखक्षत करना—इन समस्त (चेष्टाओं) से तथा
क्ष्वेल्या	विविध क्रीडा
अवलोक-	कटाक्षनिक्षेप एवं
हसितैः	मधुर हास्यके द्वारा
व्रजसुन्दरीणाम्	व्रजसुन्दरियोंके
रतिपतिम्	काम-विशुद्ध प्रेमका
उत्तम्भयन्	उद्दीपन करते हुए
रमयांचकार	रमण किया (अपने स्वरूपानन्दका वितरणकर व्रज-सुन्दरियोंको तृप्त किया) ॥४६॥

हाथ फैलाकर आलिंगन करना, हाथ, चोटी, जङ्घा, लँहगे और वक्षःस्थलका स्पर्श करना, विनोद करना, नखक्षत करना, विनोदपूर्ण चितवनसे देखना, मुसकाना—इन सब चेष्टाओंके द्वारा गोपरमणियोंके दिव्य कामरस—विशुद्ध प्रेमका उद्दीपन करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण क्रीड़ाके द्वारा उन्हें आनन्द देने लगे—अपने दिव्य स्वरूपानन्दका वितरण करके उनको तृप्त करने लगे ॥४६॥

एवं भगवतः कृष्णाल्लब्धमाना महात्मनः ।
आत्मानं मेनिरे स्त्रीणां मानिन्योऽभ्यधिकं भुवि ॥४७॥

एवम्, भगवतः, कृष्णात्, लब्धमानाः, महात्मनः, आत्मानम्, मेनिरे, स्त्रीणाम्, मानिन्यः, अभ्यधिकम्, भुवि ॥४७॥

एवं	इस प्रकार	मानिन्यः	प्रणयजनित मानके वशीभूत (हो गयीं तथा)
महात्मनः	सर्व-नायक शिरोमणि परमोदार		
भगवतः	स्वयं भगवान्	भुवि	पृथ्वीपर (वर्तमान)
कृष्णात्	श्रीकृष्णसे	स्त्रीणाम्	समस्त स्त्रियोंमें
लब्धमानाः	आदर पायी हुई (व्रजसुन्दरियाँ सब)	आत्मानम्	अपनेको ही
		अभ्यधिकम्	सर्वोत्कृष्ट
		मेनिरे	मानने लगीं ॥४७॥

परम उदारशिरोमणि सच्चिदानन्द भगवान् श्रीकृष्णने जब गोपियोंका इस प्रकार सम्मान किया, तब उनके मनमें ऐसा प्रेमाभिमान आ गया कि पृथ्वीभरकी समस्त स्त्रियोंमें हमीं सबसे श्रेष्ठ हैं ॥४७॥

तासां तत् सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः ।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥४८॥

तासाम्, तत्, सौभगमदम्, वीक्ष्य, मानम्, च, केशवः, प्रशमाय, प्रसादाय, तत्र, एव, अन्तरधीयत ॥४८॥

	(तब)	मानम्	(अकस्मात् समुदित) प्रणयजन्य मानको
तासाम्	उन (व्रजसुन्दरियों) के	वीक्ष्य	देखकर
तत्	उस	केशवः	श्रीकृष्ण (उस गर्वको)
सौभगमदम्	सौभाग्यवर्गको		
च	तथा		

प्रशमाय	शान्त करनेके लिये (तथा मानका)	**तत्र एव**	वहीं
प्रसादाय	प्रसन्न करनेके लिये	**अन्तरधीयत**	अन्तर्धान हो गये ॥४८॥

तब उन व्रजसुन्दरियोंके उस सौभाग्यके गर्वको तथा अकस्मात् उदय हुए प्रणय-अभिमानको देखकर उस गर्वको शान्त करने तथा मानको दूरकर उन्हें प्रसन्न करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण वहीं उनके बीचमें ही अन्तर्धान हो गये। रहे वहीं, पर उनको दीखने बन्द हो गये ॥४८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भगवतो रासक्रीडावर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजाङ्गनाः ।
अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम् ॥ १ ॥

अन्तर्हिते, भगवति, सहसा, एव, व्रजाङ्गनाः, अतप्यन्, तम्, अचक्षाणाः, करिण्यः, इव, यूथपम् ॥१॥

भगवति	भगवान् श्रीकृष्णके	**करिण्यः**	हथिनियाँ (अपने)
सहसा	अकस्मात्	**यूथपम्**	दलके स्वामी (हाथीको)
एव	ही		(न देखकर व्याकुल
अन्तर्हिते	अन्तर्धान हो जानेपर		हो जाती हैं)
तम्	उन्हें	**इव**	उस प्रकार (विरहसे)
अचक्षाणाः	न देखती हुई	**अतप्यन्**	संतप्त हो गयीं ॥१॥
व्रजाङ्गनाः	व्रजसुन्दरियाँ (जैसे)		

भगवान् श्रीकृष्ण अकस्मात् अन्तर्धान हो गये, उन्हें न देखकर व्रज-सुन्दरियोंकी वैसी ही विकल दशा हो गयी, जैसी दलके स्वामी गजराजको न देखकर हथिनियोंकी हो जाती है। उनके हृदयमें विरहकी ज्वाला प्रज्वलित हो उठी ॥१॥

गत्यानुरागस्मितविभ्रमेक्षितै-
र्मनोरमालापविहारविभ्रमैः ।
आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापते-
स्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः ॥ २ ॥

गत्या, अनुरागस्मितविभ्रमेक्षितैः, मनोरमालापविहारविभ्रमैः, आक्षिप्तचिताः, प्रमदाः, रमापतेः, ताः, ताः, विचेष्टाः, जगृहुः, तदात्मिकाः ॥ २ ॥

रमापतेः	श्रीकृष्णचन्द्रके	तदात्मिकाः	श्रीकृष्णचन्द्रमें ही तन्मय हुई
गत्या	चलनेकी भंगीसे (उनकी)	प्रमदाः	व्रजसुन्दरियाँ (श्रीकृष्णकी)
अनुराग-	अनुरागपूर्ण मधुर	ताः	उन
स्मितविभ्रमे-	हँसी, अत्यन्त मधुर	ताः	उन
क्षितेः	भ्रू-संचालन आदि चेष्टाओं तथा प्रेम-भरी दृष्टिसे,	विचेष्टाः	विविध चेष्टाओंका (ही)
मनोरमा-	मनोरम आलाप	जगृहुः	ध्यान करने लगीं ॥२॥
लापविहार-	एवं सुन्दर लीला-		
विभ्रमैः	विलाससे		
आक्षिप्तचिता	आकृष्टचित्त हुई, (एवं)		

रमापति श्रीकृष्णकी ललित गति, प्रेमभरी सुमधुर मुसकान, अत्यन्त मधुर तिरछी भ्रुकुटी प्रीतिभरी चितवन, मनोरम प्रेमालाप तथा अन्यान्य विविध लीला-विलास एवं शृंगारकी भावभंगियोंसे उनका चित्त खिंचकर श्रीकृष्णमें लगा हुआ था। वे व्रजगोपियाँ श्रीकृष्णमें ही तन्मय हो गयीं और फिर श्रीकृष्णकी ही विभिन्न चेष्टाओंका ध्यान करने लगीं ॥२॥

गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु
प्रियाः प्रियस्य प्रतिरूढमूर्तयः ।
असावहं त्वित्यबलास्तदात्मिका
न्यवेदिषुः कृष्णविहारविभ्रमाः ॥ ३ ॥

गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु, प्रियाः, प्रियस्य, प्रतिरूढमूर्तयः, असौ, अहम्, तु, इति, अबलाः, तदात्मिकाः, न्यवेदिषुः, कृष्णविहारविभ्रमाः ॥३॥

प्रियस्य	प्रियतम (श्री-कृष्णचन्द्रकी)	भाषणादिषु	वचन आदिमें (उनकी देह तक डूबने लगी—उन-उन चेष्टाओंका
गतिस्मित-	गति, मन्द हँसी,		
प्रेक्षण-	दृष्टिसंचार,		

प्रतिरूढ-	उनकी देहमें	**प्रियाः**	प्रिय
मूर्तयः	आवेश हो गया (तथा इस तरह)	**अबलाः**	व्रजसुन्दरियाँ
		अहम्	मैं
कृष्णविहार-	श्रीकृष्णलीलाके	**तु**	तो
विभ्रमाः	(स्मरणजन्य) महान् उन्मादभाव-से उन्मादिनी हुई (तथा)	**असौ**	वह (श्रीकृष्ण हूँ)
		इति	इस प्रकार (एक दूसरेको अपना)
तदात्मिकाः	उन्हींमें लीन हुई (उनकी)	**न्यवेदिषुः**	परिचय देने लगीं ॥३॥

इससे प्रियतम श्रीकृष्णकी ललित गति, मधुर हास, मनोरम चितवन, अमृतमय वचन आदिमें वे श्रीकृष्णकी प्यारी व्रजसुन्दरियाँ उनके समान ही बन गयीं। उनके शरीरमें भी वैसी ही चेष्टाओंका प्राकट्य हो गया और वे श्रीकृष्णलीला-विलासके स्मरणजनित भावसे उन्मादिनी होकर श्रीकृष्णस्वरूप ही बन गयीं तथा 'मैं श्रीकृष्ण ही हूँ' परस्पर इस प्रकार अपना परिचय देने लगीं ॥३॥

गायन्त्य उच्चैरमुमेव संहता
विचिक्युरुन्मत्तकवद् वनाद् वनम् ।
पप्रच्छुराकाशवदन्तरं बहि-
र्भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन् ॥४॥

गायन्त्यः, उच्चैः, अमुम्, एव, संहताः, विचिक्युः, उन्मत्तकवत्, वनात्, वनम्, पप्रच्छुः, आकाशवत्, अन्तरम्, बहिः, भूतेषु, सन्तम्, पुरुषम्, वनस्पतीन् ॥४॥

	(पहले तो)	**गायन्त्यः**	गीत गाती हुई(एक)
संहताः	सभी मिलकर	**वनात्**	वनसे (दूसरे)
अमुम्	उन (श्रीकृष्ण) का	**वनम्**	वनमें
एव	ही	**उन्मत्तकवत्**	पगलीकी भाँति
उच्चैः	उच्च (स्वर) से		(उन्हें)

विचिक्युः	ढूँढने लगीं	**पुरुषम्**	पुरुषकी—श्रीकृष्णचन्द्रकी (बात)
आकाशवत्	आकाशके समान		
भूतेषु	समस्त भूतोंमें		
अन्तरम्	भीतर	**वनस्पतीन्**	वनकी वृक्षलताओंके (निकट जा-जाकर)
बहिः	बाहर (सर्वत्र व्याप्त होकर)	**पप्रच्छुः**	पूछने लगीं ॥४॥
सन्तम्	स्थित रहनेवाले		

जब उनका यह श्रीकृष्णावेश कुछ शिथिल हुआ, तब भाव बदला और वे सब मिलकर ऊँचे स्वरसे श्रीकृष्णके गुणोंका गान करने लगीं तथा प्रेममें पागल-सी होकर एक वनसे दूसरे वनमें उन्हें ढूँढ़ने लगीं। भगवान् श्रीकृष्ण जड़-चेतन सभी पदार्थोंके अन्दर और उनके बाहर भी सदा आकाशके सदृश एक रस तथा व्याप्त हैं। वे कहीं गये नहीं थे, परन्तु गोपियाँ उन्हें अपने बीचमें न देखकर वनस्पतियोंसे—वृक्ष-लताओंसे उनके समीप जा-जाकर प्रियतमका पता पूछने लगीं ॥४॥

दृष्टो वः कच्चिदश्वत्थ प्लक्ष न्यग्रोध नो मनः ।
नन्दसूनुर्गतो हृत्वा प्रेमहासावलोकनैः ॥ ५ ॥

दृष्टः, वः, कच्चित्, अश्वत्थ, प्लक्ष, न्यग्रोध, नः, मनः, नन्दसूनुः, गतः, हृत्वा, प्रेमहासावलोकनैः ॥५॥

अश्वत्थ	हे पीपलके वृक्ष	**हृत्वा**	चुराकर (कहीं)
प्लक्ष	हे पाकर !		
न्यग्रोध	हे वट !	**गतः**	गये हुए
प्रेमहासा-वलोकनैः	प्रेम एवं हास्य-समन्वित दृष्टि-संचारसे	**नन्दसूनुः**	नन्दपुत्र
		वः	तुम सबोंको
		दृष्टः	दीख पड़े
नः	हमलोगोंका	**कच्चित्**	क्या ? ॥५॥
मनः	मन		

व्रजसुन्दरियोंने पहले बड़े-बड़े वृक्षोंके पास जाकर उनसे पूछा—'हे पीपल, पाकर, वट ! नन्दनन्दन श्यामसुन्दर अपनी प्रेमभरी मुसकान

तथा चितवनसे हमलोगोंके मन चुराकर कहीं चले गये हैं, क्या तुम लोगोंने उनको देखा है ? ॥५॥

कच्चित् कुरबकाशोकनागपुंनागचम्पकाः ।
रामानुजो मानिनीनामितो दर्पहरस्मितः ॥ ६ ॥

कच्चित्, कुरबकाशोकनागपुंनागचम्पकाः, रामानुजः, मानिनीनाम्, इतः, दर्पहरस्मितः ॥६॥

कुरबकाशोक-	हे कुरबक ! हे	**दर्पहरस्मितः**	दर्पको चूर्ण कर
नागपुंनाग-	अशोक ! हे		देनेवाली मुस्कानसे
चम्पकाः	नाग, पुंनाग		विभूषित हैं (वे)
	चम्पक ! (जो)	**रामानुजः**	बलरामजीके छोटे
मानिनीनाम्	मानवती		भाई (श्रीकृष्णचन्द्र)
	(रमणियों)के	**इतः**	इस ओरसे गये हैं
		कच्चित्	क्या ? ॥६॥

हे कुरबक ! अशोक ! नागकेशर ! पुंनाग ! चम्पक ! जिनकी मधुरतम मुस्कान मात्रसे बड़ी-बड़ी मानिनी रमणियोंका दर्प चूर्ण हो जाता है, वे बलरामजीके छोटे भाई श्रीकृष्णचन्द्र इधरसे गये हैं क्या ? ॥६॥

कच्चित्तुलसि कल्याणि गोविन्दचरणप्रिये ।
सह त्वालिकुलैर्बिभ्रद् दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ॥ ७ ॥

कच्चित्, तुलसि, कल्याणि, गोविन्दचरणप्रिये, सह, त्वा, अलिकुलैः, बिभ्रत्, दृष्टः, ते, अतिप्रियः, अच्युतः ॥७॥

कल्याणि	हे कल्याणमयी	**सह**	सहित
गोविन्द-	गोविन्द-चरणोंको	**त्वा**	तुम्हें
चरणप्रिये	प्यार करनेवाली		(मालारूपमें
तुलसि	तुलसी !		हृदयपर)
	(तुमपर उमड़ते हुए)	**बिभ्रत्**	धारण किये हुए
अलिकुलैः	भ्रमर समूहोंके	**ते**	तुम्हारे

अतिप्रियः	प्रियतम	**कच्चित्**	क्या (तुमने इस
अच्युतः	अच्युत (श्रीकृष्ण		ओरसे जाते)
	चन्द्र) को	**दृष्टः**	देखा है ? ॥७॥

जब इन पुरुषजातीय वृक्षोंसे उत्तर नहीं मिला, तब उन्होंने स्त्री-जातिके पौधोंसे पूछा—'बहिन तुलसी ! तुम तो कल्याणमयी हो, सबका कल्याण चाहती हो। तुम्हारा श्रीगोविन्दके चरणोंमें बड़ा प्रेम है और वे भी तुमसे प्रेम करते हैं; इसीलिये भ्रमरोंसे घिरी हुई तुम्हारी मालाको सदा हृदयपर धारण करते हैं। उन अपने प्रियतम अच्युत—जो अपने प्रेम-स्वभावसे कभी च्युत नहीं होते—श्यामसुन्दरको क्या तुमने इधरसे जाते देखा है ? ॥७॥

मालत्यदर्शि वः कच्चिन्मल्लिके जाति यूथिके ।
प्रीतिं वो जनयन् यातः करस्पर्शेन माधवः ॥ ८ ॥

मालति, अदर्शि, वः, कच्चित्, मल्लिके, जाति, यूथिके, प्रीतिम्, वः, जनयन्, यातः, करस्पर्शेन, माधवः ॥८॥

मालति	हे मालती	**जनयन्**	विधान करते हुए
मल्लिके	हे चमेली		(इस ओरसे)
जाति	हे जाती !	**यातः**	गये हुए
यूथिके	हे जूही ! (तुम्हारे	**माधवः**	माधव
	पुष्पोंको चयन	**वः**	तुम सबको
	करते समय, अपने)	**कच्चित्**	क्या
करस्पर्शेन	करस्पर्श (के दान)से	**अदर्शि**	दृष्टिगोचर हुए हैं ?
वः	तुम लोगोंका		॥८॥
प्रीतिम्	आनन्द		

गोपियोंने समझा तुलसी श्रीकृष्णको अति प्यारी है, इसको उनका अवश्य पता होगा। पर जब उसने भी कोई उत्तर नहीं दिया, तब वे सुगन्धित पुष्पोंवाले पौधोंसे पूछने लगीं—सोचा कि श्रीकृष्णको इनके पुष्प बहुत प्रिय लगते हैं, अतः इनको पता होगा। हे मालती ! चमेली ! जाती ! जूही ! तुम्हारे सुन्दर सुगन्धित पुष्पोंका चयन करते समय अपने कोमल करोंसे

स्पर्श करके तुम्हें आनन्द देते हुए क्या हमारे प्रियतम माधवको तुमने इधरसे जाते देखा है ? ॥८॥

चूतप्रियालपनसासनकोविदार-
जम्ब्वर्कबिल्वबकुलाम्रकदम्बनीपाः ।
येऽन्ये परार्थभवका यमुनोपकूलाः
शंसन्तु कृष्णपदवीं रहितात्मनां नः ॥ ९ ॥

चूतप्रियालपनसासनकोविदारजम्ब्वर्कबिल्वबकुलाम्रकदम्बनीपाः, ये, अन्ये, परार्थभवकाः, यमुनोपकूलाः, शंसन्तु, कृष्णपदवीम्, रहितात्मनाम्, नः ॥९॥

चूतप्रियाल-	हे रसाल, प्रियाल,	**यमुनोपकूलाः**	यमुना-तीरवासी (तुम हो, उन तुम
पनसासन	पनस, पीतशाल,		सबसे प्रार्थना है—)
कोविदार-	कचनार, जामुन,	**रहितात्मनाम्**	शून्यहृदया
जम्ब्वर्क-	आक, वेल, मौलसिरी,	**नः**	हम सबोंको
बिल्वबकुलाम्र	आम, कदम्ब, नीप	**कृष्णपदवीम्**	श्रीकृष्णका पता
कदम्बनीपाः	(एवं)	**शंसन्तु**	बता दो ॥९॥
अन्ये	अन्य वृक्षो !		
ये	जो		
परार्थभवकाः	परोपकारके लिये ही जीवन धारण करनेवाले (तथा)		

पुष्पलताओंसे भी जब उत्तर नहीं मिला, तब यह सोचकर कि बड़े-छोटे सभी वृक्ष दीन-दुखियोंके उपकारमें ही सदा लगे रहते हैं, हम सब दुःखसंतप्त हैं, अतः इनके स्वभावकी स्मृति कराते हुए इन वृक्षोंसे पूछें, वे उनसे बोलीं—हे रसाल, प्रियाल, कटहल, पीतशाल, कचनार, जामुन, आक, बेल, मौलसिरी, आम, कदम्ब, नीप और यमुनातटपर विराजमान अन्यान्य तरुवरो ! तुमने तो केवल परोपकारके लिये ही जीवन धारण किया है। हमारा हृदय श्रीकृष्णके बिना सूना हो रहा है; अतएव हम तुम लोगोंसे प्रार्थना करती हैं कि तुम कृपा करके श्रीकृष्णका पता हमें बता दो ॥९॥

किं ते कृतं क्षिति तपो बत केशवाङ्घ्रि-
स्पर्शोत्सवोत्पुलकिताङ्गरुहैर्विभासि ।
अप्यङ्घ्रिसम्भव उरुक्रमविक्रमाद् वा
आहो वराहवपुषः परिरम्भणेन ॥१०॥

किम्, ते, कृतम्, क्षिति, तपः, बत, केशवाङ्घ्रिस्पर्शोत्सवा, उत्पुलकिता, अङ्गरुहैः, विभासि, अपि, अङ्घ्रिसम्भवः, उरुक्रमविक्रमात्, वा, आहो, वराहवपुषः, परिरम्भणेन ॥१०॥

क्षिति	हे पृथ्वी !
ते	तुम्हारे द्वारा (ऐसा)
किम्	कौन-सा
तपः	तप
कृतम्	आचरित हुआ है (कि जो तुम)
बत	आह !
केशवाङ्घ्रिस्पर्शोत्सवा	केशवके चरणस्पर्श-जन्य आनन्दकी भागिनी बन गयी । (इसीलिये तुम आनन्दवश)
अङ्गरुहैः	अंगोंपर खड़े हुए तृणाङ्कुरों (के रूप) में
उत्पुलकिता	रोमाञ्चित हुई
विभासि	शोभा पा रही हो (बताओ)
अपि	क्या (तुम्हारा यह आनन्द अभी-अभी श्रीकृष्णके)
अङ्घ्रि-	चरणोंके स्पर्शसे
सम्भवः	प्रकट हुआ है
वा	या (इससे पूर्व बलिको छलते समय)
उरुक्रम-	त्रिविक्रम भगवान्के
विक्रमात्	चरणनिक्षेप (का स्पर्श पाने) से
आहो	अथवा (इससे भी पूर्व तुम्हारे उद्धारके समय)
वराहवपुषः	वाराह मूर्तिके
परिरम्भणे	आलिंगनसे (तुम्हें यह आनन्द मिला है ॥१०॥

वृक्षोंसे भी जब कोई उत्तर नहीं मिला, तब उन्मादिनी व्रज-सुन्दरियोंने पृथ्वीको सम्बोधन करके कहा—'भगवान्की प्रियतमे पृथ्वी-

देवि ! तुमने ऐसा कौन-सा तप किया है जो तुम श्रीकृष्णके चरणारविन्दका स्पर्श प्राप्त करके आनन्दसे उत्फुल्ल हो रही हो और तृण-अङ्कुर आदिके रूपमें रोमाञ्चित होकर शोभा पा रही हो ? तुम्हारा यह आनन्दोल्लास अभी-अभी श्रीकृष्णके चरणस्पर्शके कारण है । अथवा बलिको छलते समय वामनावतारमें विराट्रूपसे अपने चरणोंके द्वारा उन्होंने तुमको नापा था, उसके कारण है ? या उससे भी पूर्व जब तुम्हारा उद्धार करनेके लिये उन्होंने तुमसे वाराहरूपसे आलिंगन किया था, उसके कारण तुम्हें इतना आनन्द हो रहा है ? ॥१०॥

अप्येणपत्न्युपगतः प्रिययेह गात्रै-
स्तन्वन् दृशां सखि सुनिर्वृतिमच्युतो वः ।
कान्ताङ्गसङ्गकुचकुङ्कुमरञ्जितायाः
कुन्दस्रजः कुलपतेरिह वाति गन्धः ॥११॥

अपि, एणपत्नि, उपगतः, प्रियया, इह, गात्रैः, तन्वन्, दृशाम्, सखि, सुनिर्वृतिम्, अच्युतः, वः, कान्ताङ्गसङ्गकुचकुङ्कुम रञ्जितायाः, कुन्दस्रजः, कुलपतेः, इह, वाति, गन्धः ॥११॥

एणपत्नि	हे हरिणि !	**उपगतः**	(तुम्हारे) समीप आये हैं (हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि अवश्य आये हैं; क्योंकि)
सखि	हे सखि ! (अपनी)		
प्रियया	प्रियाके सहित		
अच्युतः	अच्युत श्रीकृष्णचन्द्र (अपने सुन्दर)		
गात्रैः	अंगोंसे	**इह**	इस स्थानपर
वः	तुम लोगोंके	**कुलपतेः**	गोकुलनाथके (हृदयपर झूलती हुई)
दृशाम्	नेत्रोंको		
सुनिर्वृतिम्	निरतिशय आनन्द		
तन्वन्	प्रदान करते हुए	**कान्ताङ्ग-**	प्रियाके आलिंगनके
इह	यहाँ (इस वनमें)	**सङ्गकुच-**	कारण उनके वक्षः-
अपि	क्या	**कुङ्कुम-**	स्थलपर लगे हुए

रञ्जितायाः	कुङ्कुमसे रञ्जित	**गन्धः**	गन्ध
कुन्दस्रजः	कुन्द कुसुमोंकी मालाकी	**वाति**	आ रही है ॥११॥

तदनन्तर हरिणियोंकी दृष्टिको प्रसन्न देखकर गोपांगनाओंने सोचा, इन्होंने श्रीकृष्णको देखा होगा और उनसे कहने लगीं—'सखी हरिणियो ! अपने प्रेममय स्वभावमें नित्य स्थित श्यामसुन्दर अपनी प्राणप्रियाके साथ अपने मनोहर अंगोंके सौन्दर्य-माधुर्यसे तुम्हारे नेत्रोंको निरतिशय आनन्द प्रदान करते हुए तुम्हारे समीपसे तो नहीं गये हैं ? हमें तो ऐसा लगता है, वे यहाँ अवश्य आये हैं; क्योंकि यहाँ गोकुलनाथ (या हमारे गोपीसमुदायके स्वामी) श्रीकृष्णके हृदयपर झूलती हुई उस कुन्दकुसुमोंकी मालाकी मनोरम सुगन्ध आ रही है, जो उनकी परमप्रेयसीके आलिंगनके कारण लगी हुई उसके वक्षःस्थलकी केसरसे अनुरञ्जित रहती है ॥११॥

बाहुं प्रियांस उपधाय गृहीतपद्मो
रामानुजस्तुलसिकालिकुलैर्मदान्धैः ।
अन्वीयमान इह वस्तरवः प्रणामं
किं वाभिनन्दति चरन् प्रणयावलोकैः ॥१२॥

बाहुम्, प्रियांसे, उपधाय, गृहीतपद्मः, रामानुजः, तुलसिकालिकुलैः, मदान्धैः, अन्वीयमानः, इह, वः, तरवः, प्रणामम्, किम्, वा, अभिनन्दति, चरन्, प्रणयावलोकैः ॥१२॥

तरवः	हे वृक्षो !	**गृहीतपद्मः**	कमल-पुष्प धारण किये हुए हैं (वे)
मदान्धैः	(मालामें पिरोयी हुई तुलसी-मञ्जरी-के) मधुपानसे मत्त	**रामानुजः**	बलरामजीके अनुज श्रीकृष्णचन्द्र
तुलसिका-लिकुलैः	तुलसी-वनके भौंरे	**प्रियांसे**	प्रियाके कंधेपर (अपनी बायीं)
अन्वीयमानः	(जिनके) पीछे-पीछे उड़ रहे हैं, (जो अपने दाहिने हाथमें)	**बाहुम्**	भुजा
		उपधाय	रखकर
		इह	इस वनमें

चरन्	घूमते हुए (यहाँ आये हैं क्या ?)	**वः**	तुम्हारे
		प्रणामम्	प्रणामका
(वा)	तथा (आकर उन्होंने)	**अभिनन्दति**	अभिनन्दन किया है
प्रणयावलोकैः	सप्रेम दृष्टिसे	**किम् वा**	क्या ॥१२॥

हरिणियोंको निस्तब्ध देखकर उन्होंने सोचा, एक बार पुनः वृक्षोंसे पूछ देखें; अतः वे बोलीं—'पवित्र तरुवरो ! तुलसी-मञ्जरीके मधुपानसे मत्त हुए भ्रमर जिनके पीछे-पीछे मँडराते चले जा रहे हैं, जो अपने दाहिने हाथमें लीलाकमल धारण किये हुए हैं और बायें हाथको प्रियतमाके कंधेपर रखे हुए हैं, ऐसे श्रीबलरामजीके छोटे भाई हमारे प्रियतम श्यामसुन्दर इधरसे विचरते हुए निकले थे क्या ? तुम जो प्रणाम करनेकी तरह झुके हुए हो, सो क्या उन्होंने प्रेमपूर्ण दृष्टिसे तुम्हारे इस प्रणामका अभिनन्दन किया था ?' ॥१२॥

पृच्छतेमा लता बाहूनप्याश्लिष्टा वनस्पतेः ।
नूनं तत्करजस्पृष्टा बिभ्रत्युत्पुलकान्यहो ॥१३॥

पृच्छत, इमाः, लताः, बाहून्, अपि, आश्लिष्टाः, वनस्पतेः, नूनम्, तत्करजस्पृष्टाः बिभ्रति, उत्पुलकानि, अहो ॥१३॥

	(सखियो !)	**अहो**	ओह ! (अपने पतिसे आश्लिष्ट रहनेपर भी)
वनस्पतेः	वनस्पतिकी—वृक्षोंकी		
बाहून्	भुजाओंको—शाखाओंसे	**नूनम्**	निश्चय ही (इन्हें)
आश्लिष्टाः	लिपटी हुई	**तत्करज-**	उन (श्रीकृष्णचन्द्र)
इमाः	इन	**स्पृष्टाः**	के नखोंका स्पर्श प्राप्त हो गया है; (क्योंकि नवाङ्कुरोंके रूपमें ये)
लताः	लताओंसे		
अपि	भी		
पृच्छत	पूछो (देखो इनका भाग्य)	**उत्पुलकानि**	पुलकावलि
		बिभ्रति	धारण किये हुए हैं ॥१३॥

कुछ गोपियोंने कहा—अरी सखियो ! वृक्षोंसे क्या पूछ रही हो। इन लताओंसे भी पूछो, जो अपने पति वृक्षोंकी भुजाओं—शाखाओंसे लिपटी हुई हैं। पर इनके शरीरमें जो नये-नये अङ्कुरोंके उद्गमरूपमें पुलकावलि छायी हुई है, यह अवश्य ही इनके पति—वृक्षोंसे लिपटी रहनेके कारण नहीं है। यह तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके नखोंके स्पर्शका ही परिणाम है। अहो ! इनका कैसा सौभाग्य है ॥१३॥

इत्युन्मत्तवचोगोप्यः कृष्णान्वेषणकातराः ।
लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः ॥१४॥

इति, उन्मत्तवचोगोप्यः, कृष्णान्वेषणकातराः, लीलाः, भगवतः, ताः, ताः, हि, अनुचक्रुः, तदात्मिकाः ॥१४॥

इति	उपर्युक्त प्रकारसे	**हि**	क्योंकि
उन्मत्तवचो-गोप्यः	उन्मादिनीके समान वचन बोलनेवाली गोपियाँ (अब विरह-दुःखके कारण)	**तदात्मिकाः**	उनमें तन्मय हो गयी थीं (इसलिये)
		भगवतः	भगवान्‌की
		ताः	उन
कृष्णान्वेषण-कातराः	श्रीकृष्णचन्द्रको ढूँढ़नेमें भी कातर—असमर्थ हो गयीं (तथा असमर्थ होकर पुनः श्रीकृष्णलीलाका गान करने लगीं साथ ही)	**ताः**	उन
		लीलाः	लीलाओंका
		अनुचक्रुः	अनुकरण (भी) करने लगीं ॥१४॥

परीक्षित् ! इस प्रकार पागलोंकी भाँति प्रलाप करती हुई व्रजसुन्दरियाँ भगवान् श्रीकृष्णको ढूँढ़ती हुई विरहदुःखके कारण कातर और असमर्थ हो गयीं। तब उनकी कृष्णतन्मयता फिर बढ़ी और वे अपनेको भगवान् श्रीकृष्ण ही मानकर भगवान्‌की विभिन्न लीलाओंका अनुकरण करने लगीं ॥१४॥

कस्याश्चित् पूतनायन्त्याः कृष्णायन्त्यपिबत् स्तनम् ।
तोकायित्वा रुदत्यन्या पदाहञ्छकटायतीम् ॥१५॥

कस्याः, चित्, पूतनायन्त्याः, कृष्णायन्ती, अपिबत्, स्तनम्, तोकायित्वा, रुदती, अन्या, पदा, अहन्, शकटायतीम् ॥१५॥

कृष्णायन्ती	कृष्णका अनुकरण करनेवाली (कोई गोपी)	**तोकायित्वा**	बालक-सा बनाकर
		रुदती	बालककेसमान रोनेका भाव दिखाकर
पूतनायन्त्याः	पूतनाका भाव दिखानेवाली	**शकटायतीम्**	छकड़ेका अनुकरण करनेवाली किसी गोपीके प्रति
कस्याःचित्	किसी (अन्य)गोपीका		
स्तनम्	स्तन		
अपिबत्	पान करने लगी	**पदा**	चरणसे
अन्या	एक दूसरी (अपनेको)	**अहन्**	ठोकर दे बैठी ॥१५॥

श्रीकृष्णलीलाका अनुकरण करनेवाली एक गोपी पूतना बन गयी, दूसरी श्रीकृष्ण बनकर उसका स्तनपान करने लगी। एक गोपी छकड़ा बन गयी तो दूसरी बालकृष्ण बनकर रोते हुए उसको चरणकी ठोकर मारकर उलट दिया ॥१५॥

दैत्यायित्वा जहारान्यामेका कृष्णार्भभावनाम् ।
रिङ्गयामास काप्यङ्घ्री कर्षन्ती घोषनिःस्वनैः ॥१६॥

दैत्यायित्वा, जहार, अन्याम्, एका, कृष्णार्भभावनाम्, रिङ्गयामास, का, अपि, अङ्घ्री, कर्षन्ती, घोषनिःस्वनैः ॥१६॥

एका	एक (दूसरी गोपी अपनेको)		समान बनाकर
		कृष्णार्भ-भावनाम्	बालकृष्णकी भावना करनेवाली
दैत्यायित्वा	तृणावर्त दैत्यके	**अन्याम्**	दूसरी (गोपी) को

अहार	हर ले चली—हरण करनेका भाव दिखाने लगी (तथा अपनी)	**का अपि**	कोई एक (गोपी) (अपने)
घोषनिःस्वनैः	पायजेब आदिके मधुर शब्दोंसे (श्रीकृष्ण-किङ्किणी-ध्वनिकी कल्पना करके)	**अङ्घ्री कर्षन्ती रिङ्गयामास**	दोनों चरणोंको भूमिपर घसीटती हुई रेंगने लगी—रिंगण-लीलाका अनुकरण करने लगी ॥१६॥

कोई एक गोपी तृणावर्त दैत्य बन गयी और बालकृष्ण बनी हुई दूसरी गोपीको हरण करनेका भाव दिखाने लगी। किसी गोपीने अपने पैरोंकी पायजेबकी मधुर ध्वनिको श्रीकृष्णकी किङ्किणी-ध्वनि समझकर अपनेको शिशु कृष्ण मान लिया और दोनों चरणोंको भूमिपर घसीट-घसीटकर रेंगने लगी—भगवान्‌की मधुर बकैयाँ चलनेकी लीलाका अनुकरण करने लगी ॥१६॥

कृष्णरामायिते द्वे तु गोपायन्त्यश्च काश्चन ।
वत्सायतीं हन्ति चान्या तत्रैका तु बकायतीम् ॥१७॥

कृष्णरामायिते, द्वे, तु, गोपायन्त्यः, च, काः, चन, वत्सायतीम्, हन्ति, च, अन्या तत्र, एका, तु, बकायतीम् ॥१७॥

द्वे	दो गोपियाँ	**गोपायन्त्यः**	गोपबालकोंके समान बनकर (क्रीड़ा करने लगीं; तथा कुछ बछड़ोंका अनुकरण करने लगीं)
तु	तो		
कृष्णरामायिते	कृष्ण-रामके समान भाव दिखाकर (खेल करने लगीं)		
च	तथा	**तत्र**	वहाँ
काः चन	कुछ	**एका**	एक (कृष्ण बनी हुई गोपी)

तु	तो
वत्सायतीम्	वत्सासुरका भाव दिखानेवाली (अन्य गोपीको)
हन्ति	मारने चली—वत्सासुरवधका दृश्य दिखाने लगी
च	तथा
अन्या	एक दूसरी
बकायतीम्	बकासुरका अनुकरण करनेवाली (किसी और गोपी) को (चीर डालनेका भाव दिखाने लगी) ॥१७॥

दो गोपियाँ श्रीकृष्ण और बलराम बनकर उनके-जैसे खेल करने लगीं। कुछ गोपियाँ गोप-बालकोंके समान बनकर क्रीड़ा करने लगीं, कुछ बछड़ोंका अनुकरण करने लगीं। एक गोपी वत्सासुर बन गयी, दूसरी श्रीकृष्ण बनकर उसे मारनेकी लीला करने लगी। इसी प्रकार एक गोपी बकासुर बनी और दूसरी श्रीकृष्ण बनकर उसे चीर डालनेका भाव दिखाने लगी ॥१७॥

आहूय दूरगा यद्वत् कृष्णस्तमनुकुर्वतीम् ।
वेणुं क्वणन्तीं क्रीडन्तीमन्याः शंसन्ति साध्विति ॥१८॥

आहूय, दूरगाः, यद्वत्, कृष्णः, तम्, अनुकुर्वतीम्, वेणुम्, क्वणन्तीम्, क्रीडन्तीम् अन्याः, शंसन्ति, साधु, इति ॥१८॥

कृष्णः	श्रीकृष्ण
यद्वत्	जिस प्रकार
दूरगाः	दूर गयी हुई (गायोंको) (बंशी बजाकर बुलाते हैं, ठीक उसी प्रकार वंशीनादका दृश्य दिखाकर गायोंको)
आहूय	बुलाकर—बुलानेका भाव दिखाकर
तम्	श्रीकृष्णका
अनुकुर्वतीम्	अनुकरण करनेवाली
वेणुम्	वंशी
क्वणन्तीम्	बजाने (की मुद्रा धारणकर)
क्रीडन्तीम्	क्रीड़ा करनेवाली (एक गोपीकी लीला देखकर कुछ)
अन्याः	अन्य (गोपियाँ)
साधु	वाह ! वाह ! बहुत सुन्दर !
इति	इस प्रकार (उसकी)
शंसन्ति	प्रशंसा करने लगीं ॥१८॥

जिस प्रकार श्रीकृष्ण वनमें दूर गये हुए गाय-बछड़ोंको वंशी बजा-बजाकर बुलाया करते थे, वैसे ही एक गोपी अपनेको श्रीकृष्ण समझकर वंशीध्वनिके द्वारा गायोंको बुलानेका भाव दिखाने लगी। उस गोपीकी इस वंशी बजानेकी लीलाको देखकर दूसरी कुछ गोपियाँ 'वाह-वाह ! तुम बहुत ही मधुर मुरली बजा रहे हो' यों कहकर उसकी प्रशंसा करने लगीं ॥१८॥

कस्यांचित् स्वभुजं न्यस्य चलन्त्याहापरा ननु ।
कृष्णोऽहं पश्यत गतिं ललितामिति तन्मनाः ॥१९॥

कस्याम्, चित्, स्वभुजम्, न्यस्य, चलन्ती, आह, अपरा, ननु, कृष्णः, अहम्, पश्यत, गतिम्, ललिताम्, इति, तन्मनाः ॥१९॥

तन्मनाः	श्रीकृष्णचन्द्रमें आविष्टचित्त हुई	**ननु**	अरे सखाओ !
अपरा	एक दूसरी (गोपी)	**अहम्**	मैं
कस्याम् चित्	किसी अन्य (गोपी) पर	**कृष्णः**	कृष्ण हूँ (मेरी)
		ललिताम्	सुन्दर
स्वभुजम्	अपनी भुजा	**गतिम्**	चाल (तो)
न्यस्य	रखकर	**पश्यत**	देखो—
चलन्ती	चलती हुई	**इति**	इस प्रकार
		आह	बोल उठी ॥१९॥

श्रीकृष्णके साथ एकमन हुई एक दूसरी गोपी अपनेको श्रीकृष्ण मानकर दूसरी किसी गोपीके गलेमें बाँह डालकर चलने लगी और कहने लगी—अरे सखाओ ! मैं श्रीकृष्ण हूँ, तुम मेरी यह मनोहर चाल तो देखो ॥१९॥

मा भैष्ट वातवर्षाभ्यां तन्त्राणं विहितं मया ।
इत्युक्त्वैकेन हस्तेन यतन्त्युन्निदधेऽम्बरम् ॥२०॥

मा, भैष्ट, वातवर्षाभ्याम्, तन्त्राणम्, विहितम्, मया, इति, उक्त्वा, एकेन, हस्तेन, यतन्ती, उन्निदधे, अम्बरम् ॥२०॥

	(देखो)
वातवर्षाभ्याम्	आँधी एवं वर्षासे
मा भैष्ट	मत डरो
मया	मेरे द्वारा
तत्त्राणम्	उनसे रक्षा (की व्यवस्था)
विहितम्	कर दी गयी है
इति	इस प्रकार
उक्त्वा	कहकर
यतन्ती	(गोवर्धन-धारणके) प्रयत्नका अनुकरण करती हुई (एक गोपी) ने
एकेन	एक
हस्तेन	हाथसे (अपने उत्तरीय)
अम्बरम्	वस्त्रको
उन्निदधे	ऊपर उठा लिया तथा ऊपर ही उसे धारण किये रही ॥२०॥

एक गोपी श्रीकृष्ण बनकर कहने लगी—तुमलोग आँधी-पानीसे मत डरो, मैंने उससे बचनेकी सारी व्यवस्था कर दी है। यों कहकर वह गोपी गोवर्द्धन-धारणका अनुकरण करती हुई एक हाथसे अपनी ओढ़नीको ऊपर उठाकर उसे तानकर खड़ी हो गयी ॥२०॥

आरुह्यैका पदाऽऽक्रम्य शिरस्याहापरां नृप ।
दुष्टाहे गच्छ जातोऽहं खलानां ननु दण्डधृक् ॥२१॥

आरुह्य, एका, पदा, आक्रम्य, शिरसि, आह, अपराम्, नृप, दुष्ट, अहे, गच्छ, जातः, अहम्, खलानाम्, ननु, दण्डधृक् ॥२१॥

नृप	राजा परीक्षित् !
एका	एक गोपी
अपराम्	किसी दूसरीके प्रति (जो कालिय सर्प-का भाव दिखा रही थी)
पदा	पैरसे
आक्रम्य	आघात कर (तथा उसके)
शिरसि	सिरपर
आरुह्य	चढ़कर
आह	बोली—
ननु	अरे
दुष्ट	दुष्ट
अहे	सर्प (यहाँसे)
गच्छ	चला जा (तू जान ले)
खलानाम्	खलोंके लिये

दण्डधृक्	दण्ड-विधान करने-वाला	**जातः**	आविर्भूत हो चुका हूँ ॥२१॥
अहम्	मैं		

राजा परीक्षित् ! एक गोपी कालिय नाग बनी तो दूसरी कोई गोपी श्रीकृष्ण बनकर पैरसे ठोकर मारकर और उसके सिरपर चढ़कर बोली—'अरे दुष्ट सर्प ! तू यहाँसे चला जा। मैं दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये ही आविर्भूत हुआ हूँ ॥२१॥

तत्रैकोवाच हे गोपा दावाग्निं पश्यतोल्बणम्।
चक्षूंष्याशवपिदध्वं वो विधास्ये क्षेममञ्जसा ॥२२॥

तत्र, एका, उवाच, हे, गोपाः, दावाग्निम्, पश्यत, उल्बणम्, चक्षूंषि, आशु, अपिदध्वम्, वः, विधास्ये, क्षेमम्, अञ्जसा ॥२२॥

तत्र	वहाँ (श्रीकृष्ण-भावनासे युक्त)	**उल्बणम्**	(नेत्रोंको चौंधिया देनेवाले इस) विचित्र
एका	एक (गोपी) (दावानलसे भीत हुए गोपोंका अनुकरण करने-वाली कतिपय गोपियोंसे)	**दावाग्निम्**	दावानलको
		पश्यत	देखो (किन्तु भय-भीत न होकर)
		आशु	शीघ्र
उवाच	बोली	**चक्षूंषि**	(अपने) नेत्रोंको
हे	हे	**अपिदध्वम्**	मूँद लो
गोपाः	गोपो !	**वः**	तुम लोगोंकी
		क्षेमम्	रक्षा
		अञ्जसा	अनायास ही (मैं)
		विधास्ये	कर दूँगा ॥२२॥

उसी समय एक गोपी श्रीकृष्ण बनकर दावानलसे डरे हुए गोपोंका अनुकरण करनेवाली कई गोपियोंसे बोली—हे गोपो ! देखो वनमें भयंकर दावानल जल उठा है; पर तुमलोग डरो मत, तुरन्त अपनी आँखें मूँद लो। मैं अनायास ही तुमलोगोंकी रक्षा कर लूँगा ॥२२॥

बद्धान्यया स्रजा काचित् तन्वी तत्र उलूखले ।
भीता सुदृक् पिधायास्यं भेजे भीतिविडम्बनम् ॥२३॥

बद्धा, अन्यया, स्रजा, काचित्, तन्वी, तत्र, उलूखले, भीता, सुदृक्, पिधाय, आस्यम्, भेजे, भीतिविडम्बनम् ॥२३॥

तत्र	वहाँ (व्रजेश्वरीका अनुकरण करनेवाली	**भीता**	डरी हुई-सी (बनकर)
अन्यया	किसी दूसरी (गोपी) के द्वारा	**सुदृक्**	सुन्दर नेत्रोंवाले (अपने)
स्रजा	मालाके द्वारा	**आस्यम्**	मुखको (हाथोंसे)
उलूखले	ऊखल (का भाव दिखानेवाली एक गोपी) के साथ	**पिधाय**	ढककर (जैसे जननी-के द्वारा बाँधे हुए श्रीकृष्ण भयभीत हो गये थे, ठीक उस प्रकार रुदन आदि)
बद्धा	बाँधी (जाकर)		
काचित्	कोई एक (कृष्णभाव-भावित)		
तन्वी	कृशांगी (व्रज-सुन्दरी)	**भीति-विडम्बनम्**	भय (की चेष्टाओं) का अनुकरण
		भेजे	करने लगी ॥२३॥

इतनेमें एक गोपीने व्रजेश्वरी श्रीयशोदाजीका भाव ग्रहण किया, दूसरी एक गोपी श्रीकृष्णके भावसे भावित हुई। यशोदा बनी गोपीने फूलोंकी मालासे श्रीकृष्ण बनी गोपीको ऊखलसे बाँधनेकी भाँति बाँध दिया। तब वह श्रीकृष्ण बनी हुई व्रजसुन्दरी डरी हुई-सी अपने सुन्दर नेत्रोंवाले मुखको हाथोंसे ढँककर, जिस प्रकार श्रीकृष्ण यशोदा मैयाके द्वारा बाँधे जानेपर भयभीत हो गये थे, ठीक उसी प्रकार रुदन आदि भयकी चेष्टाओंका अनुकरण करने लगी ॥२३॥

एवं कृष्णं पृच्छमाना वृन्दावनलतास्तरून् ।
व्यचक्षत वनोद्देशे पदानि परमात्मनः ॥२४॥

एवम्, कृष्णम्, पृच्छमानाः, वृन्दावनलताः, तरून्, व्यचक्षत, वनोद्देशे, पदानि, परमात्मनः ॥२४॥

एवम्	इस प्रकार	**वनोद्देशे**	वन प्रदेशमें (अचानक)
वृन्दावन	वृन्दावनकी	**परमात्मनः**	परमात्मा (श्रीकृष्ण-चन्द्र) के
लताः	लताओं (एवं)	**पदानि**	पद (चिह्नोंको)
तरून्	वृक्षोंको	**व्यचक्षत**	देखा ॥२४॥
कृष्णम्	श्रीकृष्ण (के सम्बन्धमें)		
पृच्छमानाः	पूछती हुई व्रज-सुन्दरियोंने) (उस)		

इस प्रकार वृन्दावनके वृक्ष-लताओंसे श्रीकृष्णका पता पूछती हुई वे वनमें एक ऐसे स्थानपर पहुँचीं, जहाँ उन्हें अकस्मात् परमात्मा श्रीकृष्ण-चन्द्रके चरणचिह्न दिखायी पड़े ॥२४॥

पद चिह्न देखकर वे बोलीं—

पदानि व्यक्तमेतानि नन्दसूनोर्महात्मनः ।
लक्ष्यन्ते हि ध्वजाम्भोजवज्राङ्कुशयवादिभिः ॥२५॥

पदानि, व्यक्तम्, एतानि, नन्दसूनोः, महात्मनः, लक्ष्यन्ते, हि, ध्वजाम्भोजवज्राङ्कुशयवादिभिः ॥२५॥

एतानि	ये	**ध्वजाम्भोज-**	ध्वजा, कमल, वज्र,
पदानि	पदचिह्न	**वज्राङ्कुश-**	अंकुश, यव
व्यक्तम्	निश्चित ही	**यवादिभिः**	आदि (के चिह्नों) से (युक्त ये)
महात्मनः	पुरुषोत्तम	**लक्ष्यन्ते**	दीख पड़ रहे हैं ॥२५॥
नन्दसूनोः	नन्दनन्दनके (हैं, दूसरेके नहीं)		
हि	क्योंकि		

चरणचिह्नोंको देखकर वे परस्पर कहने लगीं—ये चरणचिह्न निश्चय ही महात्मा पुरुषोत्तम नन्दनन्दन श्रीश्यामसुन्दरके हैं; क्योंकि

इनमें ध्वजा, कमल, वज्र, अङ्कुश, जौ आदिके चिह्न स्पष्ट दिखायी दे रहे हैं ॥२५॥

तैस्तैः पदैस्तत्पदवीमन्विच्छन्त्योऽग्रतोऽबलाः ।
वध्वाः पदैः सुपृक्तानि विलोक्यार्ताः समब्रुवन् ॥२६॥

तैः, तैः, पदैः, तत्पदवीम्, अन्विच्छन्त्यः, अग्रतः, अबलाः, वध्वाः, पदैः, सुपृक्तानि, विलोक्य, आर्ताः, समब्रुवन् ॥२६॥

अबलाः	व्रजसुन्दरियाँ	**पदैः**	पदचिह्नोंसे (श्रीकृष्णपद-चिह्नोंको)
तैः	उन	**सुपृक्तानि**	मिला हुआ (पाया । फिर तो यह)
तैः	उन	**विलोक्य**	देखकर
पदैः	पदचिह्नोंसे	**आर्ताः**	दुःखसे पीड़ित हुई (कुछ गोपियाँ)
तत्पदवीम्	श्रीकृष्णका अस्तित्व	**समब्रुवन्**	कहने लगीं ॥२६॥
अन्विच्छन्त्यः	खोजती हुई— (उन्हींके पीछे-पीछे आगे बढ़ीं; पर तुरन्त ही)		
अग्रतः	सामने		
वध्वाः	(किसी अन्यगोप) व[illegible]के		

उन चरण-चिह्नोंके सहारे प्रियतम श्रीकृष्णको ढूँढ़ती हुई वे व्रज-सुन्दरियाँ आगे बढ़ीं तो उन्हें सामने श्रीकृष्णके चरण-चिह्नोंके साथ ही किसी व्रजवधूके भी चरणचिह्न दिखायी दिये। उन्हें देखकर वे अत्यन्त पीड़ित हुई और परस्पर कहने लगीं ॥२६॥

कस्याः पदानि चैतानि यातायां नन्दसूनुना ।
अंसन्यस्तप्रकोष्ठायाः करेणोः करिणा यथा ॥२७॥

कस्याः, पदानि, च, एतानि, यातायाः, नन्दसूनुना, अंसन्यस्त-प्रकोष्ठायाः, करेणोः, करिणा, यथा ॥२७॥

	(ओह !)
यथा	जैसे
	(अपने स्वामी)
करिणा	गजराजके साथ
करेणोः	(किसी) हथिनीका (मिलन हो, गजेन्द्र उस हथिनीके कंधे-पर अपनी सूँड़ रख दे और वे दोनों सटे हुए चलें, उसी प्रकार)
अंसन्यस्त-प्रकोष्ठायाः	अपने कंधेपर श्री-कृष्णचन्द्रकी भुजा-को धारण किये
नन्दसूनुना	श्रीकृष्णके साथ-साथ
यातायाः	चलकर गयी हुई
कस्याः	किस (व्रज-सुन्दरी) के
एतानि	ये
च	और (दूसरे)
पदानि	पदचिह्न (दीख रहे हैं ?) ॥२७॥

ओह ! जैसे हथिनी अपने प्रियतम गजराजके साथ जाती हो और गजराज उस हथिनीके कंधेपर अपनी सूँड़ रख दे और दोनों मिलकर चलें, वैसे ही अपने कंधेपर श्रीश्यामसुन्दरकी भुजाको धारण किये हुए उनके साथ-साथ चलनेवाली किस सौभाग्यवती व्रजसुन्दरीके ये दूसरे चरण-चिह्न हैं ॥२७॥

अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः ।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद् रहः ॥२८॥

अनयाः, आराधितः, नूनम्, भगवान्, हरिः, ईश्वरः, यत्, नः, विहाय, गोविन्दः, प्रीतः, याम्, अनयत्, रहः ॥२८॥

अनया	इस (बड़भागिनी गोपी)के द्वारा
नूनम्	निश्चय ही
हरिः	श्रीहरि (सबका मन हरण करने-वाले)
ईश्वरः	सर्वशक्तिमान्
भगवान्	भगवान् श्रीकृष्णकी
आराधितः	भली-भाँति आराधना हुई है,
यत्	जिससे
प्रीतः	प्रसन्न हुए

गोविन्दः	श्रीकृष्णचन्द्र	**याम्**	यह जो (भाग्यवती
नः	हमलोगोंको		गोपी) है, इसको
	(तो वनमें)		(अपने साथ)
विहाय	छोड़कर	**रहः**	एकान्त (स्थान) में
		अनयत्	ले आये ॥२८॥

निश्चय ही यह हमलोगोंका मन हरण करनेवाले सर्वशक्तिमान् श्रीकृष्णकी आराधना करनेवाली—उनसे परम प्रेम करनेवाली आराधिका—(श्रीराधिका) होगी। उस परमप्रेमके फलस्वरूप ही इसपर रीझकर गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्र इस बड़भागिनीको एकान्तमें ले गये हैं और हम लोगोंको वनमें छोड़ दिया है ॥२८॥

धन्या अहो अमी आल्मो गोविन्दांघ्रयब्जरेणवः ।
यान् ब्रह्मेशो रमा देवी दधुर्मूर्ध्न्यघनुत्तये ॥२९॥

धन्याः, अहो, अमी, आल्यः, गोविन्दांघ्रयब्जरेणवः, यान्, ब्रह्मा, ईशः, रमा, देवी, दधुः, मूर्ध्नि, अघनुत्तये ॥२९॥

कुछ गोपवनिताओंने कहा—

आल्यः	सखियो !	**अघनुत्तये**	(विरह आदि)
अहो	अहा !		दुःखोंके नाशके
अमी	ये		लिये
गोविन्दांघ्रय-	श्रीकृष्णचरणार-	**मूर्ध्नि**	सिरपर
ब्जरेणवः	विन्दोंके रजःकण	**दधुः**	धारण कर चुके हैं।
धन्याः	अत्यन्त पवित्र		(इन रजःकणोंको
	(हैं, इसलिये तो)		सिरपर चढ़ाकर
यान्	इन (रजःकणों)को		क्या हम उन्हें
ब्रह्मा	ब्रह्मा		नहीं पा सकतीं ?)
ईशः	शंकर		॥२९॥
रमा देवी	भगवती लक्ष्मी		
	(भी)—तीनों		

कुछ व्रजसुन्दरियोंने कहा—प्रिय सखियो ! अहा ! ये श्रीकृष्ण-चरणारविन्दोंके रजःकण धन्य हैं। ये अत्यन्त पवित्र हैं; क्योंकि श्रीकृष्णके पद-कमलोंसे इनका स्पर्श हो चुका है। इसीलिये तो ब्रह्मा, शंकर और लक्ष्मी आदि भी अपने-अपने अशुभों—दुःखोंका नाश करनेके लिये इन्हें मस्तकपर धारण करते हैं। आओ, हम भी इन रजःकणोंको सिरपर चढ़ायें, ये रजःकण अवश्य ही हमारे श्रीकृष्ण वियोगरूप अशुभको दूर कर देंगे। ॥२९॥

तस्या अमूनि नः क्षोभं कुर्वन्त्युच्चैः पदानि यत् ।
यैकापहृत्य गोपीनां रहो भुङ्क्तेऽच्युताधरम् ॥३०॥

तस्याः, अमूनि, नः, क्षोभम्, कुर्वन्ति, उच्चैः, पदानि, यत्, या, एका, अपहृत्य, गोपीनाम्, रहः, भुङ्क्ते, अच्युताधरम् ॥३०॥

कुछ गोपियोंने कहा—

	(सखियो !)	एका	अकेली (ही)
तस्याः	उस (गोपी)के		(हम सभी)
अमूनि	ये	गोपीनाम्	गोपियोंकी
पदानि	पदचिह्न		(सार-सर्वस्व वस्तु)
नः	हमलोगोंके	अच्युताधरम्	श्रीकृष्णके अधरा-
	(हृदयमें)		मृतको(हमसे)
उच्चैः	अत्यधिक	अपहृत्य	छीनकर
क्षोभम्	(ईर्ष्याजनित) जलन	रहः	एकान्तमें
कुर्वन्ति	उत्पन्न कर रहे हैं		(जाकर उसका)
यत्	कारण कि	भुङ्क्ते	उपभोग कर रही है
या	(वह) जो		॥३०॥

कुछ गोपियाँ बोलीं—सखियो ! यह तो ठीक है; परन्तु वह जो सखी श्रीकृष्णको एकान्तमें ले जाकर हम सब गोपियोंकी सार-सर्वस्व वस्तु उनके मधुर अधरामृत-रसको हमसे छीनकर अकेली ही उसका पान कर रही है, उसके ये उभरे हुए चरणचिह्न हम सबके हृदयोंमें अत्यधिक जलन उत्पन्न कर रहे हैं ॥३०॥

न लक्ष्यन्ते पदान्यत्र तस्या नूनं तृणांकुरैः ।
खिद्यत्सुजाताङ्घ्रितलामुन्निन्ये प्रेयसीं प्रियः ॥३१॥

न, लक्ष्यन्ते, पदानि, अत्र, तस्याः, नूनम्, तृणांकुरैः, खिद्यत्सुजाताङ्घ्रितलाम्, उन्निन्ये, प्रेयसीम्, प्रियः ॥३१॥

	(सखियो ! देखो)	खिद्यत्सु-	जिसके सुकुमार
अत्र	यहाँ	जाताङ्घ्रि-	तलवोंको पीड़ा
तस्याः	उस गोपीके	तलाम्	हो रही थी,
पदानि	चरण-चिह्न		(अपनी) उस
न	नहीं	प्रेयसीम्	प्रियाको
लक्ष्यन्ते	दीख पड़ रहे हैं		(अब आगे)
	(अतः)	उन्निन्ये	कंधेपर चढ़ाकर ले
नूनम्	निश्चय ही		गये हैं ॥३१॥
प्रियः	प्रिय श्रीकृष्णने		
तृणांकुरैः	घासकी कठोर		
	नोकोंसे		

कुछ आगे बढ़नेपर जब गोपियोंको उस गोपीके चरणचिह्न नहीं दिखलायी दिये, तब वे बोलीं—अरी सखियो ! देखो, यहाँ तो उस गोपीके चरण-चिह्न नहीं दिखायी पड़ रहे हैं। जान पड़ता है, प्यारे श्यामसुन्दरने देखा होगा कि हमारी प्रेयसीके सुकुमार तलवोंमें घासकी कठोर नोक गड़ रही है; इसलिये वे हो-न-हो उसको अपने कन्धेपर चढ़ाकर ले गये होंगे। ॥३१॥

इमान्यधिकमग्नानि पदानि वहतो वधूम् ।
गोप्यः पश्यत कृष्णस्य भाराक्रान्तस्य कामिनः ॥३२॥

इमानि, अधिकमग्नानि, पदानि, वहतः, वधूम्, गोप्यः, पश्यत, कृष्णस्य, भाराक्रान्तस्य, कामिनः ॥३२॥

गोप्यः	गोपियो !	वधूम्	वधूको
	(यह लो, अपनी प्रेम-		(कंधेपर चढ़ाये)
	पात्री उस गोप-)	वहतः	ले जाते हुए (तथा)

भाराक्रान्तस्य	उसके भारसे दबे हुए (परम)	**मग्नानि**	धँसे हुए
कामिनः	प्रेमी	**इमानि**	इन
कृष्णस्य	श्रीकृष्णचन्द्रके	**पदानि**	चरण-चिह्नोंको
अधिक	(भूमि) अधिक	**पश्यत**	देखो ॥३२॥

उससे कुछ आगे बढ़नेपर उनमेंसे एकने कहा—अरी गोपियो! देखो तो यहाँ श्रीकृष्णके चरण-कमल पृथ्वीमें गहरे धँसे हुए दिखायी देते हैं। निश्चय ही वे प्रेमविह्वल श्यामसुन्दर उस गोपवधूको अपने कन्धेपर चढ़ाकर ले गये हैं, उसीके भारसे उनके ये चरण जमीनमें धँस गये हैं ॥३२॥

अत्रावरोपिता कान्ता पुष्पहेतोर्महात्मना ।
अत्र प्रसूनावचयः प्रियार्थे प्रेयसा कृतः ।
प्रपदाक्रमणे एते पश्यतासकले पदे ॥३३॥

अत्र, अवरोपिता, कान्ता, पुष्पहेतोः, महात्मना, अत्र, प्रसूनावचयः, प्रियार्थे, प्रेयसा, कृतः, प्रपदाक्रमणे, एते, पश्यत, असकले, पदे ॥३३॥

महात्मना	परम उदार-हृदय (श्रीकृष्णचन्द्रने)	**प्रसूनावचयः**	फूलोंका चयन
पुष्पहेतोः	पुष्प-चयन करनेके लिये	**कृतः**	किया है; (पुष्प चयनके समय)
अत्र	यहाँ (इस स्थानपर तो)	**प्रपदाक्रमणे**	चरणोंके अग्रभाग- (पर वे जब खड़े हुए हैं, उस समय चरणाग्र) से भूमि-पर अङ्कित हुए
कान्ता	अपनी प्रियाको (कंधेसे)		
अवरोपिता	नीचे उतार दिया है; (तथा यह देखो)	**एते**	इन
अत्र	यहाँपर	**असकले पदे**	असम्पूर्ण चरण-चिह्नोंको (दोनों पैरोंके आधे-आधे भागके चिह्नोंको)
प्रेयसा	उन प्रेमी श्रीकृष्ण-चन्द्रने		
प्रियार्थे	प्रिया (का शृंगार करने) के लिये	**पश्यत**	देखो ॥३३॥

सखियो ! महात्मा (नित्य कामविजयी) श्यामसुन्दरने प्रेमवश यहाँ पुष्प चयन करनेके लिये अपनी प्रेयसीको कन्धेसे नीचे उतार दिया है और उन परमप्रेमी व्रज राजकुमारने अपनी प्रियाका शृंगार करनेके लिये उचक-उचककर पुष्पोंका चयन किया है, इससे उनके चरणोंके पंजोंके ही चिह्न पृथ्वीपर उभर पाये हैं। देखो तो यहाँ वे अधूरे चरण चिह्न दिखायी दे रहे हैं ॥३३॥

केशप्रसाधनं त्वत्र कामिन्याः कामिना कृतम् ।
तानि चूडयता कान्तामुपविष्टमिह ध्रुवम् ॥३४॥

केशप्रसाधनम्, तु, अत्र, कामिन्याः, कामिना, कृतम्, तानि, चूडयता, कान्ताम्, उपविष्टम्, इह, ध्रुवम् ॥३४॥

अत्र	यहाँपर	**तानि**	उन (पुष्पों) को (लेकर उनसे)
तु	तो		
कामिना	प्रेमी श्रीकृष्णचन्द्रने	**कान्ताम्**	प्रियाका
कामिन्याः	उस प्रेमिकाके	**चूडयता**	शिरोभूषण निर्मित करते हुए (वे)
केशप्रसाधनम्	केशोंकी रचना		
कृतम्	की है (तथा चयन किये हुए)	**इह**	यहाँपर
		ध्रुवम्	निश्चय ही
		उपविष्टम्	बैठे हैं ॥३४॥

देखो ! यहाँ उन प्रेमी श्रीश्यामसुन्दरने उस प्रेमिकाके केश सँवारे हैं और निश्चय ही यहाँ बैठकर उन्होंने अपने कर-कमलों द्वारा चुने हुए पुष्पों द्वारा अपनी कान्ताको चूडामणिसे सजाया है ॥३४॥

रेमे तया चात्मरत आत्मारामोऽप्यखण्डितः ।
कामिनां दर्शयन् दैन्यं स्त्रीणां चैव दुरात्मताम् ॥३५॥

रेमे, तया, च, आत्मरतः, आत्मारामः, अपि, अखण्डितः, कामिनाम्, दर्शयन्, दैन्यम्, स्त्रीणाम्, च, एव, दुरात्मताम् ॥३५॥

आत्मरतः	आत्मामें ही संतुष्ट रहनेवाले	**आत्मारामः**	आत्मामें ही रमण करनेवाले (श्रीकृष्णचन्द्र)
च	और		

अखण्डितः	स्त्री-विलाससे सर्वथा अनाकृष्ट रहनेपर	**दर्शयन्**	दिखलाते हुए (जगत्के जीवोंको शिक्षा देते हुए जिसे वे अपने साथ ले आये थे)
अपि	भी		
कामिनाम्	स्त्री-कामुकोंकी		
दैन्यम्	दीनता		
च	एवं	**तया**	उस (व्रजसुन्दरी) के साथ
स्त्रीणाम्	स्त्रियोंकी		
दुरात्मताम्	कुटिलता (की लीला)	**एव**	ही
		रेमे	विहार कर रहे थे ॥३५॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! श्रीकृष्ण नित्य अपने स्वरूपमें ही सन्तुष्ट और पूर्ण हैं, वे नित्य-निरन्तर आत्मामें ही रमण करनेवाले हैं, वे अखण्ड हैं—उनके सिवा और कोई है ही नहीं; अतः कामिनियोंका कोई भी विलास उनको कभी अपनी ओर नहीं खींच सकता। इतनेपर भी वे कामियोंकी दीनता—स्त्रीपरवशता और स्त्रियोंकी कुटिलता दिखलाते हुए उस व्रजसुन्दरीके साथ एकान्तमें (अपने आत्माराम स्वरूपसे सर्वथा अच्युत तथा उसमें नित्यप्रतिष्ठित रहते हुए ही) विहार कर रहे थे ॥३५॥

इत्येवं दर्शयन्त्यस्ताश्च रुगोप्यो विचेतसः ।
यां गोपीमनयत् कृष्णो विहायान्याः स्त्रियो वने ॥३६॥

सा च मेने तदाऽऽत्मानं वरिष्ठं सर्वयोषिताम् ।
हित्वा गोपीः कामयाना मामसौ भजते प्रियः ॥३७॥

इति, एवम्, दर्शयन्त्यः, ताः, चेरुः, गोप्यः, विचेतसः, याम्, गोपीम्, अनयत्, कृष्णः, विहाय, अन्याः, स्त्रियः, वने ॥३६॥

सा, च, मेने, तदा, आत्मानम्, वरिष्ठम्, सर्वयोषिताम्, हित्वा, गोपीः, कामयानाः, माम्, असौ, भजते, प्रियः ॥३७॥

किन्तु उन व्रजसुन्दरियोंको कुछ पता नहीं था कि नन्दनन्दन कहाँ, किस स्थानपर हैं।

ताः	वे	**अनयत्**	ले गये थे
गोप्यः	गोपियाँ (तो)	**सा**	वह
इति एवम्	उपर्युक्त प्रकारसे (उनके पदचिह्न एवं अपनी प्रियाके केशप्रसाधन आदिके चिह्नोंको परस्पर)	**च**	भी—(जब श्रीकृष्णसे उसे अत्यधिक प्रेम मिला)
		तदा	तब—(मानिनी होकर)
दर्शयन्त्यः	दिखलाती हुई	**आत्मानम्**	अपनेको
विचेतसः	व्याकुल-चित्त हुई (इस वनसे उस वनमें)	**सर्वयोषिताम्**	समस्त स्त्रियोंकी (अपेक्षा अधिक)
		वरिष्ठम्	श्रेष्ठ
चेरुः	घूम रही थीं (पर इसी बीचमें इधर एक और लीला हो गयी)	**मेने**	मानने लगी (क्योंकि उसने सोचा)
		असौ	ये
कृष्णः	श्रीकृष्णचन्द्र	**प्रियः**	प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र (उन्हें)
अन्याः	अन्य	**कामयानाः**	चाहनेवाली (और सभी)
स्त्रियः	(ब्रज) वनिताओंको	**गोपीः**	गोपियोंको
वने	वनमें	**हित्वा**	छोड़कर (केवल)
विहाय	छोड़कर	**माम्**	मुझे (ही)
याम्	जिस	**भजते**	भज रहे हैं
गोपीम्	गोपिकाको (अपने साथ)		॥३६-३७॥

वे गोप-सुन्दरियाँ श्रीश्यामसुन्दरमें तन्मय होकर एक-दूसरीको श्रीश्यामसुन्दरके तथा उनकी प्रियाके चरण-चिह्नोंको दिखलाती हुई उन्हें ढूँढ़नेके लिये व्याकुल हृदय होकर वन-वन भटक रही थीं। इस बीचमें उधर यह लीला हुई कि श्रीकृष्णचन्द्र दूसरी व्रजवनिताओंको वनमें छोड़कर जिस भाग्यवती गोपीको एकान्तमें ले गये थे, उसके मनमें यह अभिमानका भाव आ गया कि 'मैं ही समस्त गोपियोंसे श्रेष्ठ हूँ। इसीलिये प्यारे श्यामसुन्दर सब गोपियोंको छोड़कर एकमात्र मुझको ही चाहते हैं और मुझको ही भज रहे हैं—मुझसे ही सुख प्राप्त कर रहे हैं' ॥३६-३७॥

ततो गत्वा वनोद्देशं दृप्ता केशवमब्रवीत् ।
न पारयेऽहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः ॥३८॥

ततः, गत्वा, वनोद्देशम्, दृप्ता, केशवम्, अब्रवीत्, न, पारये, अहम्, चलितुम्, नय, माम्, यत्र, ते, मनः ॥३८॥

ततः	ऐसा मान उदय होनेके पश्चात्	**चलितुम्**	चल
		न	नहीं
वनोद्देशम्	वनके एक स्थानपर	**पारये**	पा रही हूँ;
गत्वा	जाकर	**यत्र**	जहाँ
दृप्ता	गर्वित हुई (वह गोपी)	**ते**	तुम्हारी
		मनः	इच्छा हो (वहीं)
केशवम्	श्रीकृष्णचन्द्रके प्रति	**माम्**	मुझे (उठाकर)
अब्रवीत्	बोली	**नय**	ले चलो ॥३८॥
अहम्	मैं (अब)		

इस प्रकार अभिमानका आविर्भाव होनेपर वह गोपी वनमें एक स्थानपर जाकर सौभाग्यमदसे मतवाली हो गयी और श्रीकृष्णसे—जो ब्रह्मा और शंकरके भी शासक हैं—कहने लगी—'अब तो मुझसे चला नहीं जाता। मेरे कोमल चरण थक गये हैं, अतः तुम जहाँ चलना चाहो, मुझे अपने कंधेपर चढ़ाकर वहाँ ले चलो ॥३८॥

एवमुक्तः प्रियामाह स्कन्ध आरुह्यतामिति ।
ततश्चान्तर्दधे कृष्णः सा वधूरन्वतप्यत ॥३९॥

एवम्, उक्तः, प्रियाम्, आह, स्कन्धे, आरुह्यताम्, इति, ततः, च, अन्तर्दधे, कृष्णः, सा, वधूः, अन्वतप्यत ॥३९॥

एवम्	इस प्रकार	**स्कन्धे**	कन्धेपर
उक्तः	कहे जानेपर	**आरुह्यताम्**	चढ़ लो—
कृष्णः	श्रीकृष्णचन्द्रने (अपनी)	**इति**	यह
		आह	कहा
प्रियाम्	प्रियाको— अच्छा प्यारी ! तुम अब मेरे)	**च ततः**	और इसके पश्चात् (वे)

अन्तर्दधे	अन्तर्धान हो गये (फिर तो)	वधूः	(गोप) वधू
		अन्वतप्यत	अविराम विलाप
सा	वह		करने लगी ॥३९॥

अपनी प्रियतमाकी गर्वभरी वाणी सुनकर श्रीश्यामसुन्दरने उससे कहा—'अच्छा प्रिये ! अब तुम मेरे कंधेपर चढ़ जाओ।' यह सुनकर ज्यों ही वह गोपी कंधेपर चढ़ने लगी, त्यों ही भगवान् अन्तर्धान हो गये; तब तो उन्हें न देखकर वह गोप-वधू अविरत रोने-कलपने लगी ॥३९॥

हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज ।
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय संनिधिम् ॥४०॥

हा, नाथ, रमण, प्रेष्ठ, क्व, असि, क्व, असि, महाभुज, दास्याः, ते, कृपणायाः, मे, सखे, दर्शय, संनिधिम् ॥४०॥

हा	हा	असि	हो
नाथ	प्राणेश्वर !	सखे	हे (मेरे प्राण-) सखा !
रमण	(हा) रमण !		
प्रेष्ठ	(हा) प्रियतम !	ते	तुम्हारी (इस)
महाभुज	(हा) महाबाहो ! (तुम)	कृपणायाः	दीन
		दास्याः	दासी
क्व	कहाँ	मे	मुझको (अपना)
असि	हो,	संनिधिम्	सांनिध्य
क्व	कहाँ	दर्शय	दिखा दो ॥४०॥

वह कातर कण्ठसे बोली—'हा प्राणनाथ ! हा रमण ! हा प्रियतम ! हा महाबाहो ! तुम कहां हो, कहां हो ? हे मेरे प्राणसखा ! मैं तुम्हारी अत्यन्त दीन दासी हूँ। शीघ्र ही मुझे अपने सांनिध्यका दर्शन कराओ, मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दो ॥४०॥

अन्विच्छन्त्यो भगवतो मार्गं गोप्योऽविदूरतः ।
ददृशुः प्रियविश्लेषमोहितां दुःखितां सखीम् ॥४१॥

अन्विच्छन्त्यः, भगवतः, मार्गम्, गोप्यः, अविदूरतः, ददृशुः, प्रियविश्लेषमोहिताम्, दुःखिताम्, सखीम् ॥४१॥

राजा परीक्षित् ! इतनेमें ही—

भगवतः	भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रके	**प्रियविश्लेष मोहिताम्**	प्रिय-वियोगसे मूर्छित हुई
मार्गम्	(गमन-) पथको	**दुःखिताम्**	(अत्यन्त) दुःखिनी (अपनी) इस
अन्विच्छन्त्यः	ढूँढ़ती हुई (अन्य)	**सखीम्**	सखीको
गोप्यः	गोपियाँ (इस ओर आ पहुँचीं तथा)	**ददृशुः**	देख लिया ॥४१॥
अविदूरतः	अत्यन्त निकटसे (उन्होंने)		

परीक्षित् ! इसी बीच भगवान् श्रीकृष्णके चरण-चिह्नोंके सहारे उनके जानेके मार्गको ढूँढ़ती हुई गोपियाँ वहाँ आ पहुँचीं और उन्होंने बहुत ही समीप आकर देखा कि उनकी भाग्यवती सखी अपने प्रियतमके वियोगसे अत्यन्त दुखी होकर मूर्छित पड़ी है ॥४१॥

तया कथितमाकर्ण्य मानप्राप्तिं च माधवात् ।
अवमानं च दौरात्म्याद् विस्मयं परमं ययुः ॥४२॥

तया, कथितम्, आकर्ण्य, मानप्राप्तिम्, च, माधवात्, अवमानम्, च, दौरात्म्यात्, विस्मयम्, परमम्, ययुः ॥४२॥

	(श्रीकृष्णविरहिणी)	**अवमानम्**	(परित्याग रूप) अपमान पानेकी
तया	उस (गोपसुन्दरीके मुख) से	**च**	दोनों ही (घटनाओं-को)
कथितम्	वर्णित—	**आकर्ण्य**	सुनकर (वे)
माधवात्	माधवके द्वारा	**परमम्**	परम
मानप्राप्तिम्	आदर पानेकी	**विस्मयम्**	विस्मयको
च	एवं (अपनी ही)	**ययुः**	प्राप्त हुईं ॥४२॥
दौरात्म्यात्	कुटिलताके कारण		

तब उन्होंने और भी समीप आकर प्रयत्न करके उसको मूर्छासे जगाया। जागनेपर प्रियतम श्रीश्यामसुन्दरके विरहमें कातर हुई उस गोपसुन्दरीने भगवान् माधवके द्वारा उसे जो प्रेम तथा सम्मान प्राप्त हुआ

था, वह सुनाया तथा यह भी बतलाया कि फिर 'मैंने ही गर्वमें भरकर कुटिलतावश उनका अपमान किया, तब वे मुझे छोड़कर अन्तर्धान हो गये।' इन दोनों विचित्र घटनाओंको सुनकर गोपियोंको परम आश्चर्य हुआ ॥४२॥

ततोऽविशन् वनं चन्द्रज्योत्स्ना यावद् विभाव्यते ।
तमःप्रविष्टमालक्ष्य ततो निववृतुः स्त्रियः ॥४३॥

ततः, अविशन्, वनम्, चन्द्रज्योत्स्ना, यावत्, विभाव्यते, तमः, प्रविष्टम्, आलक्ष्य, ततः, निववृतुः, स्त्रियः ॥४३॥

ततः	तदनन्तर	**तमः**	अत्यन्त
स्त्रियः	समस्त (व्रजगोपिकाएँ)	**प्रविष्टम्**	अन्धकारमय (गहन वन)
यावत्	जहाँ तक	**आलक्ष्य**	देखकर (और यह सोचकर कि हमें देखकर श्रीकृष्णचन्द्र और भी छिप जायँगे और हमें नहीं मिलेंगे, वे उधरसे)
चन्द्रज्योत्स्ना	चन्द्रमाकी किरणें		
विभाव्यते	परिलक्षित हो रही थीं, (वहाँ तक श्रीकृष्णचन्द्रको ढूँढ़ती हुई)		
वनम्	वनमें		
अविशन्	चली गयीं; (किन्तु)	**निववृतुः**	लौट पड़ीं ॥४३॥
ततः	इससे आगे		

तदनन्तर वनमें जहाँ तक चन्द्रमाकी किरणें छिटक रही थीं, वहाँ तक तो वे समस्त व्रजगोपियाँ श्यामसुन्दरको ढूँढ़ती हुई चली गयीं; परन्तु आगे जब उन्होंने अत्यन्त अन्धकारमय गहन वन देखा, तब यह सोचा कि यदि हम इस अन्धकारमें उन्हें ढूँढ़ती हुई चली जायँगी तो वे और भी घने अन्धकारमय वनमें जा छिपेंगे और हमें नहीं मिलेंगे, इसलिये वे उधरसे वापस चली आयीं ॥४३॥

तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः ।
तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरुः ॥४४॥

तन्मनस्काः, तदालापाः, तद्विचेष्टाः, तदात्मिकाः तद्गुणान्, एव, गायन्त्यः, न, आत्मागाराणि, सस्मरुः ॥४४॥

तन्मनस्काः	उन (श्रीकृष्णचन्द्र) में ही मनवाली	**गायन्त्यः**	गान करती हुई (ऐसी तन्मय हो रही थीं कि वे अपने)
तदालापाः	उनकी ही चर्चामें रत हुई	**आत्मागाराणि**	देह-गेहकी (भी)
तद्विचेष्टाः	उनके निमित्त ही समस्त चेष्टाएँ करनेवाली	**न सस्मरुः**	स्मृति न कर सकीं (अपने आपके सहित घर-बार, सब कुछ वे भूल गयी थीं) ॥४४॥
तदात्मिकाः	उन्हींमें घुली-मिली (गोपियाँ)		
तद्गुणान् एव	उनके गुणोंका ही		

उन सब गोपियोंका मन श्रीकृष्णचन्द्रके मनवाला हो रहा था, उनकी वाणी केवल श्रीकृष्णकी ही चर्चामें लगी हुई थी, उनके शरीर-से होनेवाली प्रत्येक चेष्टा केवल श्रीकृष्णके लिये और श्रीकृष्णकी ही थी। वे श्रीकृष्णमें ही सर्वथा घुल-मिल गयी थीं, श्रीकृष्णके गुणोंका ही गान कर रही थीं। वे इतनी तन्मय हो रही थीं कि उन्हें अपने देह-गेहकी भी सुध नहीं थी, फिर घर-बारकी स्मृति तो होती ही कैसे ॥४४॥

पुनः पुलिनमागत्य कालिन्द्याः कृष्णभावनाः।
समवेता जगुः कृष्णं तदागमनकाङ्क्षिताः ॥४५॥

पुनः, पुलिनम्, आगत्य, कालिन्द्याः, कृष्णभावनाः, समवेताः, जगुः, कृष्णम्, तदागमनकाङ्क्षिताः ॥४५॥

कृष्णभावनाः	श्रीकृष्णकी भावनासे युक्त	**समवेताः**	एकत्र हुई (वे गोपियां)
तदागमन-काङ्क्षिताः	उनके आगमनकी आकाङ्क्षा लिये	**पुनः**	पुनः
		कालिन्द्याः	कालिन्दीके

पुलिनम्	पुलिनपर (चली आयीं तथा वहां)	**कृष्णम्**	श्रीकृष्णचन्द्रका (ही)
आगत्य	आकर	**जगुः**	(गुण-) गान करने लगीं ॥४५॥

श्रीकृष्णके शीघ्र ही आगमनकी आकाङ्क्षासे एकत्र होकर श्रीकृष्णकी भावनासे ही तन्मय हुई वे सब भाग्यवती व्रजसुन्दरियाँ फिर श्रीयमुनाजीके पावन पुलिनपर लौट आयीं और वहाँ सब मिलकर प्रियतम श्रीकृष्णकी लीलाओंका मधुर गान करने लगीं ॥४५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे
पूर्वार्धे रासक्रीडायां कृष्णान्वेषणं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

अथ एकत्रिंशोऽध्यायः

गोपा ऊचुः

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः
श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावका-
स्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥१॥

जयति, ते, अधिकम्, जन्मना, व्रजः, श्रयते, इन्दिरा, शश्वत्, अत्र, हि, दयित, दृश्यताम्, दिक्षु, तावकाः, त्वयि, धृतासवः, त्वाम्, विचिन्वते ॥१॥

दयित	हे प्रिय !		गोपियां तुम्हारे
ते	तुम्हारे		विरहकी ज्वालामें
जन्मना	जन्मसे (यह)		जल रही हैं)
व्रजः	व्रज (समस्त लोकों-	त्वयि	तुममें
	की अपेक्षा—और	धृतासवः	अपने प्राण समर्पित
	तो क्या, वैकुण्ठसे		किये हुई (हम सब)
	भी)	तावकाः	तुम्हारी (प्रिय
अधिकम्	अधिक		गोपियां)
जयति	श्रेष्ठ बन गया है	त्वाम्	तुम्हें
हि	क्योंकि	दिक्षु	सब ओर
इन्दिरा	लक्ष्मी	विचिन्वते	ढूँढ़ रही हैं
शश्वत्	सदा		(इसीलिये जीवित
अत्र	यहीं		बची हुई हैं, अन्यथा
श्रयते	(व्रजको अलंकृत		विरहकी आगमें
	करती हुई) निवास		कभी की भस्म हो
	कर रही हैं (किन्तु		जातीं, पर अब तो)
	ऐसे महासुखपूर्ण	दृश्यताम्	दीख जाओ ॥१॥
	व्रजमें हम सब		

श्रीकृष्णके विरहमें व्याकुल वे प्रेममयी गोपियाँ गाने लगीं—'हे प्रियतम ! तुम्हारे प्रकट होनेके कारण इस व्रजका गौरव वैकुण्ठ आदि दिव्य-लोकोंसे भी अधिक हो गया है; तभी तो अखिल सौन्दर्य-माधुर्यकी दिव्य मूर्ति श्रीलक्ष्मीजी अपने नित्य निवास वैकुण्ठको छोड़कर इस व्रजको सुशोभित करती हुई यहाँ निरन्तर निवास कर रही हैं। इस महान् सुखसे पूर्ण सौभाग्यमय व्रजमें हम गोपियाँ ही ऐसी हैं, जो तुम्हारी होकर भी, तुममें अपने प्राणोंको पूर्णरूपसे समर्पण करके भी वन-वन भटककर सब ओर तुम्हें ढूँढ़ रही हैं, पर तुम मिल नहीं रहे हो। विरह ज्वालासे जलती हुई भी इसी आशासे हम सर्वथा भस्म नहीं हो रही हैं कि तुम शीघ्र मिलोगे ! अतएव अब तुम तुरन्त दीख जाओ ॥१॥

शरदुदाशये साधुजातसत्-
सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा ।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका
वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥२॥

शरदुदाशये, साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा, दृशा, सुरतनाथ, ते, अशुल्कदासिकाः, वरद, निघ्नतः, न, इह, किम्, वधः ॥२॥

सुरतनाथ	हे रसेश्वर !	**अशुल्कदा-**	बिना मोलकी
वरद	हे वरद !	**सिकाः**	दासियाँ (हम सब)
शरदुदाशये	शरत्कालीन सरोवरमें		को
		निघ्नतः	मार डालनेवाले
साधुजात-	सुन्दर प्रकारसे	**ते**	(निर्दयी) तुम्हारी
सत्सर-	उत्पन्न उत्कृष्ट		(यह चेष्टा)
सिजोदर-	जातिके विकसित	**किम्**	क्या
श्रीमुषा	कमलकोशोंकी शोभा अपहरण करनेवाले	**इह**	इस जगत्में
		वधः	वध
		न	नहीं (कहा जायगा) ॥२॥
दृशा	(अपने) नेत्रसे		

हे हमारे रसेश्वर ! हे वर देनेवालोंमें श्रेष्ठ ! हम तुम्हारी बिना मोलकी दासियाँ हैं। तुम शरद्ऋतुके सरोवरमें खिले हुए उत्कृष्ट जातिके परमसुन्दर कमलकोशोंकी कर्णिकाकी सौन्दर्य-सुषमाको चुरानेवाले अपने नेत्रोंकी मारसे हमें मार चुके हो। इस जगत्में इस प्रकार नेत्रोंसे किसीको मार डालना क्या वध नहीं है ॥२॥

विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद्
वर्षमारुताद् वैद्युतानलात् ।
वृषमयात्मजाद् विश्वतोभया-
दृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥३॥

विषजलाप्ययात्, व्यालराक्षसात्, वर्षमारुतात्, वैद्युतानलात्, वृषमयात्मजात्, विश्वतः, भयात्, ऋषभ, ते, वयम्, रक्षिताः, मुहुः ॥३॥

ऋषभ	हे पुरुष श्रेष्ठ	**त्मजात्**	मयके पुत्र व्योमा-
विषजला-	(कालियह्रदके)		सुरसे (तथा ऐसे-
प्ययात्	विषमय जलपानके		ऐसे)
	कारण होनेवाली	**विश्वतः**	सब प्रकारके अनेक
	मृत्युसे	**भयात्**	भयोंसे
व्यालराक्षसात्	अघासुरसे	**ते**	तुम्हारे द्वारा
वर्षमारुतात्	इन्द्रकृत वर्षा, घोर	**वयम्**	हम सब (की)
	आँधी अथवा बवंडर-	**मुहुः**	बार-बार
	का रूप धारण किये	**रक्षिताः**	रक्षा हुई है (किन्तु
	हुए तृणावर्त दैत्यसे		आज जब हम सब
वैद्युतानलात्	इन्द्रके वज्रपातसे,		तुम्हारे विरहमें भस्म
	दावानलसे,		होने जा रही हैं, तब
वृषमया-	अरिष्टासुर एवं		तुम उपेक्षा क्यों कर
			रहे हो) ॥३॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! कालियह्रदके विषमय जलपानके कारण होनेवाली मृत्युसे, अघासुरसे, इन्द्रकी वर्षा, आंधी अथवा तृणावर्त दैत्यसे, तथा वज्रपातसे, भीषण दावानलसे, अरिष्ठासुर और मयके पुत्र व्योमासुर आदिसे

और इसी प्रकारके अनेक भयोंसे तुमने ही तो बार-बार हमारी रक्षा की थी। फिर आज तुम्हीं अपनी विरहज्वालासे हमें क्यों भस्म कर रहे हो ॥३॥

न खलु गोपिकानन्दनो भवा-
नखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये
सख उदेयिवान् सात्वतां कुले ॥४॥

न, खलु, गोपिकानन्दनः, भवान्, अखिलदेहिनाम्, अन्तरात्मदृक्, विखनसा, अर्थितः, विश्वगुप्तये, सखे, उदेयिवान्, सात्वताम्, कुले ॥४॥

सखे	हे सखे !	**विश्वगुप्तये**	विश्वकी रक्षाके लिये
भवान्	आप	**अर्थितः**	प्रार्थना किये जानेपर
खलु	निश्चय ही	**सात्वताम्**	यादवोंके
गोपिका-	यशोदाके पुत्र	**कुले**	कुलमें
नन्दनः	(मात्र)	**उदेयिवान्**	आविर्भूत हुए हैं (अतः सबकी रक्षा-
न	नहीं हैं (अपितु)		के लिये अवतीर्ण
अखिल-	समस्त		हुए आपकी हमारे
देहिनाम्	प्राणियोंके		प्रति ऐसी निर्दय
अन्तरात्मदृक्	अन्तरात्मा— (अन्तःकरण) के साक्षी हैं (आप तो)		चेष्टा तो सर्वथा अनुचित है) ॥४॥
विखनसा	ब्रह्माके द्वारा		

हम जानती हैं कि आप निश्चय ही केवल यशोदा मैयाके लाला ही नहीं हैं, अपितु समस्त प्राणियोंके अन्तरात्माके साक्षी हैं। ब्रह्माजीकी प्रार्थना सुनकर विश्वकी रक्षाके लिये ही आप यदुकुलमें आविर्भूत हुए हैं। इस प्रकार विश्वभरकी रक्षाके लिये अवतीर्ण होकर भी आप हमारे प्रति इतने निर्दय होकर हमें क्यों मार रहे हैं ॥४॥

विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते
चरणमीयुषां संसृतेर्भयात् ।
करसरोरुहं कान्त कामदं
शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥५॥

विरचिताभयम्, वृष्णिधुर्य, ते, चरणम्, ईयुषाम्, संसृतेः, भयात्, करसरोरुहम्, कान्त, कामदम्, शिरसि, धेहि, नः, श्रीकरग्रहम् ॥५॥

वृष्णिधुर्यकान्त	हे यादव श्रेष्ठ ! हे प्रिय !	**श्रीकरग्रहम्**	लक्ष्मीके करपल्लव-को धारण करनेवाले
संसृतेः	संसारके	**कामदम्**	सबकी अभीष्टपूर्ति करनेवाले (अपने)
भयात्	भयसे	**करसरोरुहम्**	कर-कमल
ते	तुम्हारे	**नः**	हम लोगोंके
चरणम्	चरणकी शरणमें	**शिरसि**	सिरपर (भी)
ईयुषाम्	आये (प्राणियोंको)	**धेहि**	रख दो ॥५॥
विरचिताभयम्	अभय देनेवाले		

हे यादवोंमें श्रेष्ठ ! संसारसे—जन्म-मरणके चक्रसे भयभीत होकर जो प्राणी तुम्हारे चरणोंकी शरणमें आ जाते हैं, तुम्हारे कर-कमल उनको अभय कर देते हैं। श्रीलक्ष्मीजीके कर-कमलको धारण करनेवाला तथा सबकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला वह अपना कर-कमल हमारे सिरपर रख दो—शीघ्र दर्शन देकर हमें भी अभय कर दो ॥५॥

व्रजजनार्तिहन् वीर योषितां
निजजनस्मयध्वंसनस्मित ।
भज सखे भवत्किंकरीः स्म नो
जलरुहाननं चारु दर्शय ॥६॥

व्रजजनार्तिहन्, वीर, योषिताम्, निजजनस्मयध्वंसनस्मित, भज, सखे, भवत्किंकरीः, स्म, नः, जलरुहाननम्, चारु, दर्शय ॥६॥

व्रजजना-	व्रजवासियोंके	**भवत्किंकरीः**	आपकी अपनी ही
तिहन्	दुःख मिटानेवाले		दासी
वीर	हे वीर !	**नः**	हम सबका (अब)
निजजनस्मय-	अपने जनोंके गर्वको	**भज स्म**	निश्चय ही स्मरण
ध्वंसनस्मित	ध्वंस कर देनेवाली		सुधि लो; (तथा
	मन्द मुसकान		अपना)
	(अधरोंपर) धारण	**चारु**	सुन्दर
	करनेवाले !	**जलरुहाननम्**	मुख-कमल (हम)
सखे	हे जीवन-सखा !	**योषिताम्**	अबलाओंके (समक्ष)
		दर्शय	प्रकट कर दो ॥६॥

हे व्रजवासियोंके दुःखोंका नाश करनेवाले वीरशिरोमणि ! तुम्हारी मधुर मन्द मुसकान तुम्हारे प्रेमीजनोंके गर्वका ध्वंस करनेवाली है। हे हमारे प्राणसखा ! हम सब तुम्हारी दासियाँ हैं, हमें अवश्य प्रेमदान दो और हम अबलाओंको अपना मनोहर मुखकमल दिखलाकर सुखी करो ॥६॥

प्रणतदेहिनां पापकर्शनं
तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ।
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं
कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम् ॥७॥

प्रणतदेहिनाम्, पापकर्शनम्, तृणचरानुगम्, श्रीनिकेतनम्, फणिफणार्पितम्, ते, पदाम्बुजम्, कृणु, कुचेषु, नः, कृन्धि, हृच्छयम् ॥७॥

	(मेरे प्रियतम !)	**फणिफणार्पितम्**	कालियके फणपर
प्रणत-	शरणागत		स्थापित हुए (तथा)
देहिनाम्	मनुष्योंके	**श्रीनिकेतनम्**	लक्ष्मीके आश्रयभूत
पापकर्शनम्	पापोंको नष्ट कर	**ते**	अपने
	देनेवाले	**पदाम्बुजम्**	चरणारविन्दको
तृणचरानुगम्	तृणचर पशुओंके	**नः**	हम सबोंके
	पीछे-पीछे चलनेवाले	**कुचेषु**	वक्षःस्थलपर

कृणु	रख दो (तथा इस प्रकार हमारे)	**हृच्छयम्**	हृदयकी जलन
		कृन्धि	मिटा दो ॥७॥

तुम्हारे जो चरण-कमल शरणमें आये हुए मनुष्योंके समस्त पापोंको नष्ट कर डालते हैं, जो समस्त सौन्दर्यश्रीके धाम हैं—श्रीलक्ष्मीजीके परम आश्रयभूत हैं, जो घास चरनेवाले गौ-वत्सोंके पीछे-पीछे चलते हैं तथा जिन्होंने कालियनागके फणोंपर चढ़कर नृत्य किया था, उन अपने चरण-सरोजोंको हमारे वक्षःस्थल रख दो। हमारे हृदय तुम्हारे विरहकी ज्वालासे जल रहे हैं, इस प्रकार चरण-सरोजोंको रखकर उस जलनको मिटा दो ॥७॥

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया
बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण ।
विधिकरीरिमा वीर मुह्यती-
रधरसीधुनाऽऽप्याययस्व नः ॥८॥

मधुरया, गिरा, वल्गुवाक्यया, बुधमनोज्ञया, पुष्करेक्षण, विधिकरीः, इमाः, वीरः, मुह्यतीः, अधरसीधुना, आप्याययस्व, नः ॥८॥

पुष्करेक्षण	हे कमल-नयन !	**गिरा**	वाणी
वीर	हे दानवीर ! (तुम्हारी)	**मुह्यतीः**	मोहित हुई
		इमाः	इन
मधुरया	मधुर	**नः**	हम सब
वल्गुवाक्यया	मनोहर पदोंसे युक्त (एवं)	**विधिकरीः**	किंकरियोंको
		अधरसीधुना	अधरोंके मादक मधुसे
बुधमनोज्ञया	गाम्भीर्यके कारण पण्डितोंको भी आनन्द देनेवाली	**आप्याययस्व**	आप्यायित कर जीवनदान दो ॥८॥

हे कमलनयन ! तुम्हारे वचन बड़े ही मधुर हैं, उनका एक-एक पद परम मनोहर है। बड़े-बड़े पण्डित भी उनके गाम्भीर्यपर मुग्ध हो जाते हैं। उन वचनोंसे हम सब गोपियाँ मोहित हो रही हैं। हम सभी तुम्हारे

चरणोंकी किंकरियाँ हैं। हमारे प्राण निकले जा रहे हैं। हे दानवीर! तुम अपनी दिव्य मधुर अधर-सुधा पिलाकर हम सबको आप्यायित करो और जीवनदान दो ॥८॥

तव कथामृतं तप्तजीवनं
कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥९॥

तव, कथामृतम्, तप्तजीवनम्, कविभिः, ईडितम्, कल्मषापहम्, श्रवणमङ्गलम्, श्रीमत्, आततम्, भुवि, गृणन्ति, ते, भूरिदाः, जनाः ॥९॥

	(हे प्राणेश्वर! जो मनुष्य)	**कथामृतम्**	लीला-कथारूप अमृतका
तप्तजीवनम्	जलते हुए प्राणियों-को जीवनदान करनेवाले	**भुवि**	पृथ्वीपर
		गृणन्ति	कीर्तन करते हैं
कविभिः	ब्रह्मज्ञ पुरुषोंके द्वारा (भी)	**ते**	वे (जगत्में)
		भूरिदाः	बहुत बड़े दानी
ईडितम्	स्तुत	**जनाः**	लोग हैं (यह तो तुम्हारी लीला-कथाका माहात्म्य है, तुम्हारे दर्शनकी महिमा कौन बताये। इसीलिये हमारी प्रार्थना है कि परमदुर्लभ दर्शन देकर हमें कृतार्थ करो) ॥९॥
कल्मषा-	(समस्त) पापोंके		
पहम्	नाशक		
श्रवणमङ्गलम्	सुनने मात्रसे परम मंगलदायक		
श्रीमत्	प्रेमरूपी परम सम्पत्तिदायक (एवं)		
आततम्	(अत्यन्त) विस्तृत		
तव	तुम्हारे		

हे प्राणेश्वर! तुम्हारी लीला-कथा अमृतमयी है। वह जलते हुए प्राणियोंको जीवनदान करती है, बड़े-बड़े ब्रह्मज्ञानी कवियोंने उसका गान तथा स्तवन किया है, उसके श्रवण-कीर्तनसे सब पापोंका नाश होता है। जो श्रवणमात्रसे ही प्रेमरूपी परम सम्पत्तिका दान करती है, ऐसी अत्यन्त

विस्तृत कथाका पृथ्वीपर जो कीर्तन—गान करते हैं, वे जगत्में सबसे बड़े दानी लोग हैं। यह तुम्हारी लीला-कथाकी महिमा है। तुम्हारे दर्शनकी महिमा तो अवर्णनीय है ॥९॥

प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं
विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम् ।
रहसि संविदो या हृदिस्पृशः
कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि ॥१०॥

प्रहसितम्, प्रिय, प्रेमवीक्षणम्, च, ते, ध्यानमङ्गलम्, रहसि, संविदः, याः, हृदिस्पृशः, कुहक, नः, मनः, क्षोभयन्ति, हि ॥१०॥

कुहक	अरे छलिया !	**हृदिस्पृशः**	हृदयस्पर्शी (विनोद तथा प्रेमभरी)
प्रिय	ओ प्यारे !	**संविदः**	संकेत-चेष्टाएँ हैं, (वे सभी बातें इस समय)
ध्यानमङ्गलम्	ध्यानमात्रसे परम आनन्द देनेवाले	**नः**	हमारे
ते	तुम्हारे	**मनः**	मनको
प्रहसितम्	हास्य	**हि**	निश्चय ही
प्रेमवीक्षणम्	प्रीतिभरी दृष्टि	**क्षोभयन्ति**	क्षुब्ध कर रही हैं ॥१०॥
विहरणम्	(हमारे साथ) बिहार		
च	तथा		
याः	जो		
रहसि	एकान्तकी		

हमारे प्यारे श्यामसुन्दर ! तुम्हारे ध्यानमात्रसे ही परम आनन्द प्राप्त होता है। फिर हमें तो तुमने अपनी मधुर हँसी, प्रेमभरी दृष्टि तथा लीलाविहार सुख प्रदान किया था; एकान्तमें हमारे साथ हृदयस्पर्शी विनोद तथा प्रेमभरी संकेत-चेष्टाएँ की थीं। अरे छलिया ! आज वे ही तुम हमलोगोंसे छिप गये। तुम्हारी वे सभी प्रेमभरी बातें इस समय याद आ रही हैं और हमारे मनको क्षुब्ध कर रही हैं ॥१०॥

चलसि यद् व्रजाच्चारयन् पशून्
नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम् ।

शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः
कलिलतां मनः कान्त गच्छति ॥११॥

चलसि, यत्, व्रजात्, चारयन्, पशून्, नलिनसुन्दरम्, नाथ, ते, पदम्, शिलतृणाङ्कुरैः, सीदति, इति, नः, कलिलताम्, मनः, कान्त, गच्छति ॥११॥

नाथ	हे नाथ !
कान्त	हे कान्त !
यत्	जब (तुम)
पशून्	(गौ आदि) पशुओं-को
चारयन्	चराते हुए
व्रजात्	व्रजसे (वनकी ओर)
चलसि	चलकर आते हो, (उस समय)
नलिन-सुन्दरम्	(अरुणिमा, मृदुता एवं सौरभमें) पद्मके समान सुन्दर
ते	तुम्हारे
पदम्	चरण
शिल-तृणाङ्कुरैः	धान्यके अग्रभाग, घास एवं अंकुरोंसे
सीदति	व्यथित हो रहे हैं,
इति	इस (भावनासे)
नः	हम लोगोंका
मनः	मन
कलिलताम्	पीड़ित होने लगता
गच्छति	है (यह अवस्था दिनमें वनगमनके समय होती है। अभी तो रात्रि है। इस समय तुम्हारे सुकोमल चरणोंको कितना कष्ट हो रहा होगा—इस चिन्तासे हम मरी जा रही हैं, आकर हमें बचा लो) ॥११॥

हमारे प्राणनाथ, जीवन सर्वस्व ! तुम्हारे चरण अरुणिमा, मृदुता तथा दिव्य सुगन्धमें कमलके समान अत्यन्त सुन्दर हैं; जिस समय तुम गौओंको चराते हुए व्रजसे वनकी ओर आते हो, उस समय यह सोचकर कि तुम्हारे उन अत्यन्त मृदु चरण-कमलोंमें कुश, काँटे, अंकुर तथा कंकड़ आदि गड़ते होंगे और बड़ी पीड़ा होती होगी, हम लोगोंके मनमें बड़ी ही व्यथा होती है। यह दशा तो दिनमें वनगमनके समय होती है। इस रात्रिके समय तो

उन मृदुल चरणोंमें विशेष पीड़ा हो रही होगी—इस चिन्तासे हमारे प्राण निकले जा रहे हैं। तुम तुरन्त यहाँ आकर उनकी रक्षा करो ॥११॥

दिनपरिक्षये नीलकुन्तलै-
र्वनरुहाननं बिभ्रदावृतम् ।
धनरजस्वलं दर्शयन् मुहु-
र्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ॥१२॥

दिनपरिक्षये, नीलकुन्तलैः, वनरुहाननम्, बिभ्रत्, आवृतम्, धनरजस्वलम्, दर्शयन्, मुहुः, मनसि, नः स्मरम्, वीर, यच्छसि ॥१२॥

वीर	हे वीर !	**मुहुः**	पुनः-पुनः (हमें)
दिनपरिक्षये	सायंकालमें	**दर्शयन्**	दर्शन कराते हुए (तुम)
नीलकुन्तलैः	नील केशपाशसे	**नः**	हम लोगोंके
आवृतम्	आच्छादित,	**मनसि**	मनमें
धनरजस्वलम्	गोधनकी धूलिसे धूसरित,	**स्मरम्**	प्रेमका
वनरुहाननम्	मुखारविन्दको	**यच्छसि**	संचार कर देते हो ॥१२॥
बिभ्रत्	धारण करते हुए (तथा उसका)		

हमारे हृदयोंको प्रेमबाणसे बींध देनेमें तुम बड़े ही शूरवीर हो। संध्याके समय जब तुम वनसे लौटते हो, तब हम देखती हैं कि तुम्हारे मुख-सरोजपर नीली घुँघराली अलकावली छायी हुई है और वह गोधूलिसे धूसरित हो रहा है। उस समय तुम अपनी उस मुख-माधुरीके हमें बार-बार दर्शन कराकर हमारे मनमें प्रेम-व्यथाका संचार कर देते हो। इस प्रकार नित्य ही तुम हमारे हृदयोंको प्रेम बाणसे बींधा करते हो; पर आज तो उसकी चरम सीमा हो गयी है—पहले तो हमें वेणुगान करके अपने पास बुलाया, हमारे साथ लीला-विहार किया और फिर यों छोड़कर चले गये ॥१२॥

प्रणतकामदं पद्मजार्चितं
धरणिमण्डनं ध्येयमापदि ।

चरणपङ्कजं शंतमं च ते
रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥१३॥

प्रणतकामदम्, पद्मजार्चितम्, धरणिमण्डनम् ध्येयम् आपदि, चरणपङ्कजम्, शंतमम्, च, ते रमण, नः, स्तनेषु, अर्पय, आधिहन् ॥१३॥

	(अतः)	**ध्येयम्**	ध्यान किये जाने योग्य—ध्यान मात्रसे विपत्ति हर लेनेवाले
आधिहन्	हे मनकी व्यथा हरनेवाले !		
रमण	रमण ! (बहुत हो चुका, अब छल-कपट छोड़कर हमारी प्रार्थना सुन लो)	**शंतमम्**	(सेवाके समय भी) परम सुखदायक
		च	तथा
		धरणिमण्डनम्	पृथ्वीके भूषणरूप
प्रणत-	शरणागत प्राणियोंके	**ते**	तुम्हारे—अपने
कामदम्	समस्त अभीष्ट पूर्ण करनेवाले,	**चरणपङ्कजम्**	चरणारविन्दको
		नः	हम सबोंके
पद्मजार्चितम्	ब्रह्माके द्वारा (नित्य) पूजित	**स्तनेषु**	वक्षःस्थलपर
		अर्पय	स्थापित कर दो ॥१३॥
आपदि	विपत्तिके समय		

परन्तु प्रियतम ! हमारे मनकी सारी व्यथाका हरण करनेवाले भी एकमात्र तुम्हीं हो। तुम्हारे चरण-कमल शरणमें आये हुए मनुष्योंके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले हैं। स्वयं ब्रह्माजी उनका नित्य पूजन करते हैं। विपत्तिके समय ध्यानमात्रसे ही वे समस्त विपत्तियोंका नाश कर देते हैं और पृथ्वीके तो वे भूषण ही हैं। उन अपने चरण-सरोजोंको, हे विहार-सुख देनेवाले प्रियतम ! हमारे वक्षःस्थलपर रखकर हृदयकी सारी व्यथाका नाश कर दो ॥१३॥

सुरतवर्धनं शोकनाशनं
स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम् ।
इतररागविस्मारणं नृणां
वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥१४॥

सुरतवर्धनम्, शोकनाशनम्, स्वरितवेणुना, सुष्ठु, चुम्बितम्, इतररागविस्मारणम् नृणाम्, वितर, वीर, नः, ते, अधरामृतम् ॥१४॥

वीर	हे वीर !	नृणाम्	मनुष्य (मात्र) की
सुरतवर्धनम्	दिव्य सम्भोगरस-को बढ़ानेवाली	इतरराग	अन्य समस्त इच्छा-ओंकी
शोकनाशनम्	समस्त शोकोंका शमन कर देनेवाली	विस्मारणम्	विस्मृति करा देने-वाली
स्वरितवेणुना	नादित हुए वेणुके द्वारा	ते	अपनी
सुष्ठु	सुन्दर रूपसे	अधरामृतम्	अधर सुधाका
चुम्बितम्	स्पृष्ट हुई	नः	हमें (भी)
		वितर	दान करो ॥१४॥

हृदयकी व्यथाका हरण करनेमें समर्थ वीर शिरोमणे ! तुम्हारी अधरसुधा दिव्य सम्भोग-रसको बढ़ानेवाली है, तुरन्त ही समस्त शोक-संतापोंका शमन करनेवाली है, सुन्दर स्वरोंमें गान करनेवाली बाँसुरी उसे सदा भलीभाँति चूमती रहती है। जिसने एक क्षणके लिये एक बिन्दु-मात्र भी कभी उसका पान कर लिया, उसकी अन्य समस्त आसक्तियाँ तथा कामनाएँ सदाके लिये विस्मृत हो जाती हैं, ऐसी अपनी वह अधरसुधा हम लोगोंमें वितरण कर दो—हम सबको पिलाकर कृतार्थ करो ॥१४॥

अटति यद् भवानह्नि काननं
त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते
जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम् ॥१५॥

अटति, यत्, भवान्, अह्नि, काननम्, त्रुटिः, युगायते, त्वाम्, अपश्यताम्, कुटिलकुन्तलम्, श्रीमुखम्, च, ते, जडः, उदीक्षताम्, पक्ष्मकृत्, दृशाम् ॥१५॥

	(हमारे प्रियतम !)	अह्नि	दिनके समय
यत्	जब		(गोचारणके लिये)
भवान्	तुम	काननम्	वनकी ओर

अटति	चले जाते हो, (उस समय)	**श्रीमुखम्**	श्रीमुखका
त्वाम्	तुम्हें	**उदीक्षताम्**	दर्शन करनेवाली हम सबकी (यह धारणा बन जाती है, निमेष पलक गिरनेके) कालका तुम्हारा अदर्शन असह्य होकर हमें यह प्रतीत होने लगता है कि)
अपश्यताम्	न देख पानेवाली (हम गोपियोंके लिये)		
त्रुटिः	आधे क्षणका समय (भी)		
युगायते	युगके समान बन जाता है		
च	तथा (संध्याके समय वनसे लौटते हुए)	**दृशाम्**	नेत्रोंकी
ते	तुम्हारे	**पक्ष्मकृत्**	बरुनी (पलकें) बनानेवाला (ब्रह्मा)
कुटिल-कुन्तलम्	कुञ्चित केश-समन्वित	**जडः**	मूर्ख है ॥१५॥

प्रियतम ! दिनके समय जब तुम गौएँ चरानेके लिये वनमें चले जाते हो, तब तुम्हें देखे बिना हमारा आधे क्षणका समय भी युग बन जाता है। फिर जब संध्याके समय तुम वनसे लौटते हो, तब तुम्हारे घुँघराले केशोंसे सुशोभित श्रीमुखका हम दर्शन करती हैं। उस समय पलकोंका गिरना हमें असह्य हो जाता है; क्योंकि उतने समय तक तुम्हारे दर्शनसे नेत्र वञ्चित रहते हैं। इसलिये हमें जान पड़ता है कि नेत्रोंपर पलकें बनानेवाला विधाता मूर्ख है ॥१५॥

पतिसुताम्वयभ्रातृबान्धवा-
नतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागताः ।
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः
कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥१६॥

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवान्, अतिविलङ्घ्य, ते, अन्ति, अच्युत, आगताः, गतिविदः, तव, उद्गीतमोहिताः, कितव, योषितः, कः, त्यजेत्, निशि ॥१६॥

अच्युत	हे अच्युत !	अन्ति	निकट
गतिविदः	(हमारे) आगमनका कारण जाननेवाले (परम चतुर)	आगताः	आयी हैं (फिर भी तुम हमें छोड़कर चले गये)
तव	तुम्हारे	कितव	हे कपटी !
उद्गीत-	उच्च वेणुगीतसे	निशि	रात्रिके समय (इस
मोहिताः	मोहित हुई (हम सब अपने)		प्रकार शरणमें आयी)
पतिसुतान्वय-	पति, पुत्र,	योषितः	कामिनियोंको
भ्रातृबान्धवान्	स्वजन, भाई, बन्धुगणको		(तुम्हारे अतिरिक्त और)
अतिविलङ्घ्य	अतिक्रम—	कः	कौन
	परित्याग करके	त्यजेत्	छोड़ सकता है
ते	तुम्हारे		(कोई नहीं) ॥१६॥

प्रियतम ! तुम कभी अपने प्रेममय स्वभावसे च्युत नहीं होते। तुम चतुर-शिरोमणि भलीभाँति जानते हो कि हम सब तुम्हारे मधुरतम मुरलीगानसे मोहित होकर अपने पति-पुत्र, भाई-बन्धु, कुल-परिजन—सबका त्याग करके उनकी इच्छाका अतिक्रमण करके तुम्हारे पास आयी हैं। फिर भी तुम हमें छोड़कर चले गये। अरे कपटी ! इस प्रकारकी घोर रात्रिके समय शरणमें आयी हुई तरुणियोंको तुम्हारे अतिरिक्त और कौन त्याग सकता है ॥१६॥

रहसि संविदं हृच्छयोदयं
प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम् ।
बृहदुरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते
मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः ॥१७॥

रहसि, संविदम्, हृच्छयोदयम्, प्रहसिताननम्, प्रेमवीक्षणम्, बृहत्, उरः, श्रियः, वीक्ष्य, धाम, ते, मुहुः, अतिस्पृहा, मुह्यते, मनः ॥१७॥

ते	तुम्हारा	वीक्ष्य	देखकर—(स्मरण करके) (तुमसे मिलनेकी)
रहसि	एकान्तमें होनेवाला		
संविदम्	प्रेमालाप (तुम्हारा)		
हृच्छयोदयम्	प्रेमसंचारक	अतिस्पृहा	अतिशय लालसा बढ़ गयी है (और इसलिये हमारे प्रियतम ! हमारा)
प्रहसिताननम्	हास्य समन्वित मुख		
प्रेमवीक्षणम्	प्रेमभरी चितवन		
श्रियः	रमाका		
धाम	निवासभूत (तुम्हारा)	मनः	मन
बृहत्	विशाल	मुहुः	बारम्बार
उरः	वक्षःस्थल (इन सबको)	मुह्यते	मुग्ध हो रहा है ॥१७॥

प्रियतम ! तुमने एकान्तमें हमसे प्रेमभरी बातें की हैं, तुम्हारा वह प्रेमालाप, प्रेमकी कामनाको उद्दीप्त करनेवाला तुम्हारा मुसकाता हुआ मुखकमल, तुम्हारी प्रेमभरी तिरछी चितवन, लक्ष्मीजीका नित्य निवासधाम तुम्हारा विशाल वक्षःस्थल—इन सभीको देखकर, इनका स्मरण करके हमारी तुमसे मिलनेकी लालसा अत्यन्त बढ़ गयी है और हमारा मन अधिकाधिक मुग्ध हो रहा है ॥१७॥

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते
वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम् ।
त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां
स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥१८॥

व्रजवनौकसाम्, व्यक्तिः, अङ्ग, ते, वृजिनहन्त्री, अलम्, विश्वमङ्गलम्, त्यज, मनाक्, च, नः, त्वत्स्पृहात्मनाम्, स्वजनहृद्रुजाम्, यत्, निषूदनम् ॥१८॥

अङ्ग	हे श्रीकृष्णचन्द्र !	वृजिनहन्त्री	दुःखको मिटानेवाला है
ते	तुम्हारा		
व्यक्तिः	आविर्भाव	अलम्	(सबके लिये)
व्रजवनौकसाम्	व्रजवासियोंके		

विश्वमङ्गलम्	परममंगल स्वरूप है। (इसलिये)	मनाक्	किञ्चिन्मात्र (वह वस्तु)
त्वत्स्पृहात्मनाम्	एकमात्र तुममें ही अपनी समस्त इच्छाओंको केन्द्रित कर देनेवाली	त्यज	दो
		यत्	जो
		स्वजन-	तुम्हारे स्वजनोंके
		हृदुजाम्	समस्त हृद्रोगोंको
नः	हम (सबों) को	निषूदनम्	नष्ट करनेवाली है
च	भी		॥१८॥

प्रियतम श्यामसुन्दर ! तुम्हारा यह व्रजमें आविर्भाव व्रजवासियोंके समस्त दुःखोंका नाश करने और विश्वका परम कल्याण करनेके लिये है। हमारे हृदयके समस्त मनोरथ एकमात्र तुम्हींमें केन्द्रित हो गये हैं, हम तुम्हारे सिवा और कुछ चाहती ही नहीं। हम तुम्हारी अपनी ही हैं; हमें अब थोड़ी-सी वह वस्तु दो, जो तुम्हारे निजजनोंके हृदयरोगोंको सर्वथा नष्ट कर दे ॥१८॥

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ।
तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्विदये
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥१९॥

यत्, ते, सुजातचरणाम्बुरुहम्, स्तनेषु, भीताः, शनैः, प्रिय, दधीमहि, कर्कशेषु, तेन, अटवीम्, अटसि, तत्, व्यथते, न, किम्, स्वित्, कूर्पादिभिः, भ्रमति, धीः, भवदायुषाम्, नः ॥१९॥

प्रिय	मेरे प्रियतम ! (तुम्हारे चरणोंमें कहीं व्यथा न हो जाय, इस आशङ्का-से)	सुजातचरणा-म्बुरुहम्	अति सुकुमार चरण-कमलोंको (अपने)
		कर्कशेषु	कठोर
		स्तनेषु	वक्षःस्थलपर
भीताः	डरी हुई (हम सब)	शनैः	धीरेसे
ते	तुम्हारे	दधीमहि	धारण किया करती हैं;
यत्	जिन		

तेन	उन्हीं सुकुमार चरणके द्वारा (तुम आज)	**भवदायुषाम्**	तुम्हींको अपना जीवन स्वरूप अनुभव करनेवाली
अटवीम्	वनमें	**नः**	हम (सबों) की
अटसि	घूम रहे हो (तुम्हारे)	**धीः**	बुद्धि
तत्	वे (सुकुमार चरण-पद्म)	**भ्रमति**	चक्कार खा रही है (यह कहकर प्रेमसे अतिशय विह्वल हुई गोपसुन्दरियाँ उच्च कण्ठसे रोने लगीं) ॥१६॥
कूर्पादिभिः	छोटे-छोटे कंकड़ आदिसे		
किम् स्वित्	क्या		
न व्यथते	पीड़ित नहीं हो रहे हैं (अवश्य हो रहे हैं। तथा इसी चिन्तासे)		

प्रियतम ! तुम्हारे चरणकमल अत्यन्त सुकुमार हैं, हम उन्हें अपने उरोजोंपर भी बहुत ही धीरेसे रखती हैं; हमें डर लगता रहता है कि हमारे कठोर उरोजोंसे उन कोमल पद-कमलोंको कहीं चोट न लग जाय। उन्हीं सुकुमार चरणोंसे आज हमसे छिपकर तुम वन-वन भटक रहे हो। कंकड़-पत्थरोंकी नोक लगकर उनमें बड़ी पीड़ा हो रही होगी। हमारी बुद्धि इसी चिन्तासे व्याकुल होकर चक्कर खा रही है। प्यारे ! हमारे जीवनके जीवन तो एकमात्र तुम्हीं हो ॥१६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडायां गोपीगीतं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा ।
रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः ॥१॥

इति, गोप्यः, प्रगायन्त्यः, प्रलपन्त्यः, च, चित्रधा, रुरुदुः, सुस्वरम्, राजन्, कृष्णदर्शनलालसाः ॥१॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—

राजन्	हे राजा (परीक्षित्) !	**कृष्णदर्शन-**	श्रीकृष्णको देखनेकी
गोप्यः	गोपियाँ	**लालसाः**	लालसासे (युक्त होकर)
इति	इस प्रकार		
चित्रधा	अनेक तरहसे	**सुस्वरम्**	करुणापूर्ण सुस्वरसे फूट-फूटकर
प्रगायन्त्यः	गाती		
च	और	**रुरुदुः**	रोने लगीं ॥१॥
प्रलपन्त्यः	प्रलाप करती हुई		

राजा परीक्षित् ! भगवान् श्यामसुन्दरके विरहमें गोपियाँ इस प्रकार विविध भाँतिसे गाती और प्रलाप करती हुई, प्राण-मनको सर्वथा आकर्षित कर लेनेवाले उन प्रियतमके दर्शनकी लालसा लिये हुए करुणापूर्ण मधुर स्वरसे फूट-फूटकर रोने लगीं ॥१॥

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥२॥

तासाम्, आविरभूत्, शौरिः, स्मयमानमुखाम्बुजः, पीताम्बरधरः, स्रग्वी, साक्षात्, मन्मथमन्मथः ॥२॥

साक्षात्	स्वयं	स्रग्वी	वनमाला पहने हुए
मन्मथ-	कामदेवके भी मनको	स्मयमान-	मधुर मुसकान-
मन्मथः	मथित करनेवाले	मुखाम्बुजः	युक्त मुख-कमलसे
शौरिः	शूरसेनके वंशज (भगवान् श्रीकृष्ण)	तासाम्	उनके बीचमें (उसी समय)
पीताम्बर-	पीताम्बर धारण	आविरभूत्	प्रकट हो गये ॥२॥
धरः	किये (तथा)		

उसी समय उनके बीचमें शूरसेनके वंशज भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। उनके मुख-सरोजपर मधुर मुसकान खेल रही थी, वे गलेमें वनमाला और शरीरपर पीताम्बर धारण किये हुए थे। उनका रूप-सौन्दर्य सबके मनको मथ डालनेवाले स्वयं कामदेवके मनको भी मथ डालनेवाला था ॥२॥

तं विलोक्यागतं प्रेष्ठं प्रीत्युत्फुल्लदृशोऽबलाः।
उत्तस्थुर्युगपत् सर्वास्तन्वः प्राणमिवागतम् ॥३॥

तम्, विलोक्य, आगतम्, प्रेष्ठम्, प्रीत्युत्फुल्लदृशः, अबलाः, उत्तस्थुः, युगपत्, सर्वाः, तन्वः, प्राणम्, इव, आगतम् ॥३॥

तम्	उन	युगपत्	एक साथ
प्रेष्ठम्	प्रियतम (श्रीकृष्ण) को	उत्तस्थुः	(उसी प्रकार) उठ खड़ी हुई,
आगतम्	आया हुआ	इव	जैसे
विलोक्य	देखकर	तन्वः	शरीर
प्रीत्युत्फुल्ल-	आनन्दसे खिले हुए	आगतम्	लौटे हुए
दृशः	नेत्रोंवाली	प्राणम्	प्राणको (देखकर)
अबलाः	(वे) गोपियाँ		(उठ खड़े हों) ॥३॥
सर्वाः	सब-की-सब		

उन सौन्दर्य-माधुर्य-निधि प्रियतम श्यामसुन्दरको अपने बीचमें आया देख गोपियोंके नेत्र प्रेमानन्दसे खिल उठे। वे गोपियाँ सब-की-सब

एक साथ ही इस प्रकार उठ खड़ी हुई, जैसे प्राणहीन शरीर प्राणोंके लौटते ही उठ खड़ा हो ॥३॥

काचित् कराम्बुजं शौरेर्जगृहेऽञ्जलिना मुदा ।
काचिद्दधार तद्बाहुमंसे चन्दनरूषितम् ॥ ४ ॥

काचित्, कराम्बुजम्, शौरेः, जगृहे, अञ्जलिना, मदा, काचित्, दधार, तद्बाहुम्, अंसे, चन्दनरूषितम् ॥४॥

काचित्	(उनमेंसे) किसीने	**जगृहे**	पकड़ लिया
मुदा	आनन्दसे	**काचित्**	किसीने
शौरेः	भगवान् श्रीकृष्णके	**चन्दनरूषितम्**	चन्दनसे चर्चित
कराम्बुजम्	हस्त-कमलको	**तद्बाहुम्**	उनकी भुजा
अञ्जलिना	(अपने) जुड़े हुए हाथोंसे	**अंसे**	(अपने) कंधेपर
		दधार	रख ली ॥४॥

उनमेंसे किसी गोपीने प्रमुदित होकर भगवान् श्यामसुन्दरके कर-कमलको अपने हाथोंमें ले लिया । किसीने उनकी चन्दनसे चर्चित भुजाको अपने कंधेपर रख लिया ॥४॥

काचिदञ्जलिनागृह्णात् तन्वी ताम्बूलचर्वितम् ।
एका तदङ्घ्रिकमलं संतप्ता स्तनयोरधात् ॥ ५ ॥

काचित्, अञ्जलिना, अगृह्णात्, तन्वी, ताम्बूलचर्वितम्, एका, तदङ्घ्रिकमलम्, संतप्ता, स्तनयोः, अधात् ॥५॥

काचित्	किसी	**संतप्ता**	(विरहसे) तप्त हुई बालाने
तन्वी	कृशांगीने	**तदङ्घ्रि-कमलम्**	उनके चरण-कमलको
ताम्बूलचर्वितम्	उनका चबाया हुआ पान	**स्तनयोः**	(अपने) कुचोंपर
अञ्जलिना	दोनों हाथोंमें	**अधात्**	रख लिया ॥५॥
अगृह्णात्	ले लिया		
एका	(और किसी) एक		

किसी सुन्दर गोपीने उनका चबाया हुआ पान अपने दोनों हाथोंमें ले लिया और किसी एक गोपीने, जिसके हृदयमें विरहकी आग धधक रही थी, उसे शान्त करनेके लिये भगवान्‌के चरण-कमलको अपने वक्षःस्थलपर रख लिया ॥५॥

एका भ्रुकुटिमाबध्य प्रेमसंरम्भविह्वला ।
धनतीवैक्षत् कटाक्षेपैः संदष्टदशनच्छदा ॥ ६ ॥

एका, भ्रुकुटिम् आबध्य, प्रेमसंरम्भविह्वला, धनती, इव, ऐक्षत्, कटाक्षेपैः, संदष्टदशनच्छदा ॥६॥

एका	एक (गोपी)	**संदष्ट-**	(दाँतोंसे) होठ
प्रेमसंरम्भ-	प्रणय-कोपके	**दशनच्छदा**	दबाकर
विह्वला	वशीभूत होकर	**कटाक्षेपैः**	कटाक्षोंसे
भ्रुकुटिम्	(धनुषके समान टेढी) भौंहोंको	**धनती इव**	बींधती हुई-सी
		ऐक्षत्	(उनकी ओर)
आबध्य	चढ़ाकर		देखने लगी ॥६॥

एक व्रजसुन्दरी प्रणयकोपसे विह्वल होकर, अपनी धनुषके समान टेढ़ी भौंहोंको चढ़ाकर और दाँतोंसे होठ दबाकर अपने कटाक्षरूपी बाणोंसे बींधती हुई-सी उनकी ओर ताकने लगी ॥६॥

अपरानिमिषद्दृग्भ्यां जुषाणा तन्मुखाम्बुजम् ।
आपीतमपि नातृप्यत् सन्तस्तच्चरणं यथा ॥७ ॥

अपरा, अनिमिषद्दृग्भ्याम्, जुषाणा, तन्मुखाम्बुजम्, आपीतम्, अपि, न, अतृप्यत्, सन्तः, तच्चरणम्, यथा ॥७॥

अपरा	(एक) और गोपी	**अनिमिष-**	अपलक
आपीतम्	बार-बार सब ओरसे (दृष्टि द्वारा) पान किये हुए	**दृग्भ्याम्**	नेत्रोंसे
		जुषाणा	निहारती हुई
तन्मुखाम्बुजम्	उन (भगवान्)के मुख-कमलको	**अपि**	भी
		न	नहीं
		अतृप्यत्	तृप्त होती थी

यथा	जैसे	**तच्चरणम्**	उनके चरणोंका
सन्तः	संतलोग (शान्त एवं दासभक्त)		दर्शन करके (तृप्त होते) ॥७॥

एक गोपी नेत्ररूपी प्यालोंसे श्रीकृष्णके मुख-कमल-मकरन्दका पान करके भी—भगवान्‌के सुन्दर वदन-सरोजको बार-बार देखकर भी फिर अपलक नेत्रोंसे वैसे ही अतृप्त होकर देखने लगी, जैसे शान्त एवं दासभक्त भगवान्‌के श्रीचरणोंका बार-बार दर्शन करनेपर भी तृप्त नहीं होते और उन्हें निरन्तर देखते ही रहना चाहते हैं ॥७॥

तं काचिन्नेत्ररन्ध्रेण हृदिकृत्य निमील्य च ।
पुलकाङ्ग्युपगुह्यास्ते योगीवानन्दसम्प्लुता ॥ ८ ॥

तम्, काचित्, नेत्ररन्ध्रेण, हृदिकृत्य, निमील्य, च, पुलकाङ्गी, उपगुह्य, आस्ते, योगी, इव, आनन्दसम्प्लुता ॥८॥

काचित्	कोई एक (व्रज-बाला)	**उपगुह्य**	भीतर ही भीतर (उन्हें) छातीसे लगाकर
तम्	उन (भगवान्)को	**योगी इव**	योगीकी भाँति
नेत्ररन्ध्रेण	नेत्रोंके छिद्र (द्वार)से	**आनन्दसम्प्लुता**	परमानन्दमें निमग्न
हृदिकृत्य	हृदयमें ले जाकर	**पुलकाङ्गी**	(एवं) रोमाञ्चित
च	और	**आस्ते**	हो गयी ॥८॥
निमील्य	नेत्रोंको बंद करके		

कोई एक व्रजसुन्दरी नेत्रोंके मार्गसे श्यामसुन्दरको अपने हृदयमें ले गयी और फिर नेत्रोंको बन्द करके भीतर-ही-भीतर उनको हृदयसे लगाकर वैसे ही परमानन्दमें निमग्न एवं रोमाञ्चित हो गयी, जैसे योगी अपने इष्ट परमात्माको ध्यानके द्वारा प्राप्तकर उसमें निमग्न हो जाते हैं ॥८॥

सर्वास्ताः केशवालोकपरमोत्सवनिर्वृताः ।
जहुर्विरहजं तापं प्राज्ञं प्राप्य यथा जनाः ॥ ९ ॥

सर्वाः, ताः, केशवालोकपरमोत्सवनिर्वृताः, जहुः, विरहजम्, तापं प्राज्ञं, प्राप्य, यथा, जनाः ॥९॥

केशवालोक-परमोत्सव	श्रीकृष्णदर्शनके परमोल्लाससे	जहुः	परित्याग कर दिया
निर्वृताः	आनन्दित होकर	यथा	जैसे
ताः	उन	जनाः	(मुमक्षु) जन
सर्वाः	सब (गोपबालाओं)ने	प्राज्ञं	परमप्राज्ञ (ब्रह्म)को
विरहजम्	विरहसे उत्पन्न	प्राप्य	प्राप्तकर (संसार-तापसे मुक्त हो जाते हैं) ॥९॥
तापं	तापको		

जैसे मुमुक्षु साधक ब्रह्मको प्राप्त करके समस्त संसार-तापसे सर्वथा मुक्त हो जाते हैं, वैसे ही वे सब व्रजसुन्दरियाँ श्रीकृष्णके मधुर दर्शनसे परम उल्लास और दिव्य आनन्दको प्राप्त हो गयीं तथा उन्होंने विरहसे उत्पन्न संतापका सर्वथा परित्याग कर दिया ॥९॥

ताभिर्विधूतशोकाभिर्भगवानच्युतो वृतः ।
व्यरोचताधिकं तात पुरुषः शक्तिभिर्यथा ॥१०॥

ताभिः विधूतशोकाभिः, भगवान्, अच्युतः, वृतः, व्यरोचत, अधिकं, तात, पुरुषः, शक्तिभिः यथा ॥१०॥

विधूतशोकाभिः	शोकसे मुक्त हुई	अधिकं	(उसी प्रकार) अत्यन्त
ताभिः	उन गोप-रमणियोंसे	व्यरोचत	सुशोभित हुए
वृतः	घिरे हुए	यथा	जैसे
भगवान्	भगवान् (षडैश्वर्यसम्पन्न)	शक्तिभिः	शक्तियोंसे (घिरे हुए)
अच्युतः	अपने स्वरूपमें सदा स्थित रहनेवाले (श्रीकृष्ण)	पुरुष	परात्पर पुरुष (परमात्मा) सुशोभित होते हैं ॥१०॥
तात	प्यारे (परीक्षित्) !		

अपने दिव्य-सौन्दर्य-माधुर्ययुक्त सच्चिदानन्दघन स्वरूपमें नित्य स्थित, षडैश्वर्यसम्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण आज विरह-विषादसे मुक्त गोपियोंके बीचमें और भी विशेष सुशोभित होने लगे, जैसे परात्पर पुरुष

परमात्मा प्रत्यक्षरूपमें अपनी ज्ञान, बल आदि शक्तियोंसे घिरकर सुशोभित होते हैं ॥१०॥

ताः समादाय कालिन्द्या निर्विश्य पुलिनं विभुः ।
विकसत्कुन्दमन्दारसुरभ्यनिलषट्पदम् ॥११॥

ताः, समादाय, कालिन्द्याः, निर्विश्य, पुलिनम्, विभुः, विकसत्कुन्द-मन्दारसुरभ्यनिलषट्पदम् ॥११॥

विभुः	भगवान् (श्रीकृष्ण)
ताः	उन (समस्त गोपललनाओं) को
समादाय	साथ लेकर
कालिन्द्याः	यमुनाजीके
पुलिनम्	(उस) तीरपर
निर्विश्य	आ विराजे
विकसत्कुन्द-मन्दारसुरभ्य-निलषट्पदम्	जहाँ खिले हुए कुन्द और मदारके पुष्पोंसे सुगन्धित वायु चल रही थी और उससे प्रेरित होकर भौंरे उड़ रहे थे ॥११॥

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण उन समस्त गोप-ललनाओंको साथ लेकर यमुनाजीके पावन पुलिनपर आ विराजे । उस समय वहाँ खिले हुए कुन्द और मन्दारके पुष्पोंकी सुगन्धिको लिये वायु चल रही थी और उससे मत-वाले हुए भ्रमर सर्वत्र उड़ रहे थे ॥१॥

शरच्चन्द्रांशुसंदोहध्वस्तदोषातमः शिवम् ।
कृष्णाया हस्ततरलाचितकोमलवालुकम् ॥१२॥

शरच्चन्द्रांशुसंदोहध्वस्तदोषातमः, शिवम्, कृष्णायाः, हस्ततरला-चितकोमलवालुकम् ॥१२॥

शरच्चन्द्रांशु-संदोहध्वस्त-दोषातमः	शारदीय चन्द्रमाके किरणजालोंसे रात्रिका अन्धकार दूर हो जानेके कारण
शिवम्	जो मंगलमय हो रहा था, तथा
कृष्णायाः	श्रीयमुनाजीके
हस्ततरला-चितकोमल-वालुकम्	तरंगरूपी हाथोंसे जहाँ कोमल बालुका बिछायी हुई थी ॥१२॥

शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाकी किरणें सब ओर छिटक रही थीं, इससे रात्रिका अन्धकार सर्वथा मिट गया था और सारा वातावरण मंगलमय हो रहा था। श्रीयमुनाजीने भगवान्‌की मधुरलीलाके लिये अपने तरंगरूपी हाथोंसे वहाँ सुकोमल बालुका बिछा रखी थी ॥१२॥

तद्दर्शनाह्लादविधूतहृद्रुजो
मनोरथान्तं श्रुतयो यथा ययुः ।
स्वैरुत्तरीयैः कुचकुङ्कुमाङ्कितै-
रचीक्लृपन्नासनमात्मबान्धवे ॥१३॥

तद्दर्शनाह्लादविधूतहृद्रुजः, मनोरथान्तम्, श्रुतयः, यथा, ययुः, स्वैः, उत्तरीयैः, कुचकुङ्कुमाङ्कितैः, अचीक्लृपन्, आसनम्, आत्मबान्धवे ॥१३॥

तद्दर्शनाह्लाद-विधूतहृद्रुजः	उन (भगवान् श्रीकृष्ण) के दर्शन-जनित आनन्दसे जिनके हृदयकी पीड़ा शान्त हो गयी थी (ऐसी वे गोपियाँ)
मनोरथान्तम्	(उसी प्रकार)
ययुः	पूर्णकाम हो गयीं
यथा	जैसे
श्रुतयः	(ज्ञानकाण्डकी) श्रुतियाँ (पूर्णकाम हो गयीं)
आत्मबन्धवे	(और उन्होंने) अपने प्रिय बन्धु (भगवान् श्रीकृष्णके बैठनेके लिये)
कुच-कुंकुमाङ्कितैः	कुचोंपर लेप की हुई केसरके चिह्नोंसे युक्त
स्वैः	अपनी
उत्तरीयैः	ओढ़नेकी चादरोंसे
आसनम्	आसन
अचीक्लृपन्	बनाया ॥१३॥

भगवान् श्यामसुन्दरके दर्शनसे उन गोपसुन्दरियोंको इतना महान् आनन्द हुआ कि उनके हृदयकी सारी व्यथा मिट गयी। वे गोपियाँ भगवानको पाकर उसी प्रकार पूर्णकाम हो गयीं, जिस प्रकार श्रुतियाँ कर्मकाण्डके वर्णनके अनन्तर ज्ञानकाण्डका प्रतिपादन करके पूर्णकाम हो जाती हैं। अब उन्होंने वक्षःस्थलपर लगी हुई केसर से चिह्नित अपनी

ओढ़नीको अपने परम प्रियतम भगवान श्रीकृष्णके विराजनेके लिये वहाँ बिछा दिया ॥१३॥

तत्रोपविष्टो भगवान् स ईश्वरो
योगेश्वरान्तर्हृदि कल्पितासनः ।
चकास गोपीपरिषद्गतोर्चित-
स्त्रैलोक्यलक्ष्म्येकपदं वपुर्दधत् ॥१४॥

तत्र, उपविष्टः, भगवान्, सः, ईश्वरः, योगेश्वरान्तर्हृदि, कल्पितासनः, चकास, गोपीपरिषद्गतः, अर्चितः, त्रैलोक्यलक्ष्म्येकपदम्, वपुः, दधत् ॥१४॥

योगेश्वरा-	योगेश्वरोंके अन्तः-	गतः	घिरकर
न्तर्हृदि	करण (हृदय-कमल)	उपविष्टः	बैठे हुए
	में	अर्चितः	(तथा उनसे) पूजित
कल्पितासनः	भावनासे स्थिर		होकर
	किया जाता है	त्रैलोक्य-	त्रिलोकीकी
सः	वे	लक्ष्म्येक-	शोभाके एकमात्र
ईश्वरः	सर्वसमर्थ—सर्वेश्वर	पदम्	आश्रयरूप
भगवान्	श्रीकृष्ण	वपुः	शरीरको
तत्र	वहाँ (यमुनापुलिन-	दधत्	धारण किये हुए
	की वालुकामें)	चकास	सुशोभित हुए
गोपीपरिषद्-	गोपियोंके समाजसे		॥१४॥

बड़े-बड़े योगेश्वर अपने विशुद्ध हृदय-कमलमें जिन भगवान्‌के आसनकी कल्पना किया करते हैं, पर बैठा नहीं पाते, वे ही सर्वसमर्थ सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण यमुना-तटकी वालुकामें गोपियोंकी ओढ़नीपर बैठ गये। गोपियोंने उन्हें सब ओरसे घेर लिया और उनकी पूजा करने लगीं। त्रिलोकीकी समस्त सौन्दर्य-शोभाके जो एकमात्र परम आश्रय हैं, ऐसे अनन्त-सौन्दर्य-माधुर्यमय दिव्य विग्रहको धारण किये उस समय वे अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे ॥१४॥

सभाजयित्वा तमनङ्गदीपनं
सहासलीलेक्षणविभ्रमभ्रुवा ।
संस्पर्शनेनाङ्ककृताङ्घ्रिहस्तयोः
संस्तुत्य ईषत्कुपिता बभाषिरे ॥१५॥

सभाजयित्वा, तम्, अनङ्गदीपनम्, सहासलीलेक्षणविभ्रमभ्रुवा, संस्पर्शनेन, अङ्ककृताङ्घ्रिहस्तयोः, संस्तुत्य, ईषत्कुपिताः, बभाषिरे ॥१५॥

सहास-	मुसकान युक्त	**अनङ्ग-**	(अपने अन्दर)
लीलेक्षण-	लीला-कटाक्ष तथा	**दीपनम्**	विशुद्ध काम—प्रेम-
विभ्रमभ्रुवा	भौंहोंकी मटकसे (एवं)		का उद्दीपन करने-वाले
अङ्ककृता-	(अपनी) गोदमें	**तम्**	उन (श्रीकृष्ण) का
ङ्घ्रिहस्तयोः	रक्खे हुए उनके चरणों तथा हाथोंके	**सभाजयित्वा**	सम्मान करके
संस्पर्शनेन	स्पर्शसे	**संस्तुत्य**	(तथा) उनकी प्रशंसा करके
ईषत्कुपिताः	किंचित् प्रणयकोप दिखाते हुए	**बभाषिरे**	(वे गोपियाँ) बोलीं ॥१५॥

भगवान् श्रीकृष्णने अपनी सौन्दर्य-सुधा पिलाकर जिनके मनमें विशुद्ध काम—भगवत्प्रेमको उद्दीप्त कर दिया था, वे गोपियाँ अपनी मधुर मुसकान, विलासपूर्ण कटाक्ष तथा भौंहोंकी मटकसे एवं अपनी गोदमें रक्खे हुए भगवान्‌के चरण-कमलों और कर-कमलोंको सहलाकर उनका सम्मान करती हुई आनन्दातिरेकसे उनके रूप-गुणोंकी प्रशंसा करने लगीं। फिर उनके अन्तर्धान होनेकी बात याद आते ही किंचित् प्रणय-कोप दिखाती हुई वे बोलीं ॥१५॥

गोप्य ऊचुः

भजतोऽनुभजन्त्येक एक एतद्विपर्ययम् ।
नोभयांश्च भजन्त्येक एतन्नो ब्रूहि साधु भोः ॥१६॥

भजतः, अनुभजन्ति, एके, एके, एतद्विपर्ययम्, न, उभयान्, च, भजन्ति, एके, एतत्, नः, ब्रूहि, साधु, भोः ॥१६॥

एके	कुछ लोग (तो)	एके	कुछ (तीसरे प्रकार-के) लोग
भजतः	प्रेम करनेवालोंसे		
अनुभजन्ति	बदलेमें प्यार करते हैं	उभयान्	(प्रेम करनेवाले और न करनेवाले) दोनोंसे (ही)
एके	(और) कुछ लोग		
एतद्	इसके विपरीत	न भजन्ति	प्रेम नहीं करते,
विपर्ययम्	आचरण करते हैं (अर्थात् प्रेम न करनेवालोंसे भी प्रेम करते हैं)	भोः	हे प्यारे
		एतत्	इस (विषय) को
		नः	हमसे
च	और	साधु	भलीभाँति
		ब्रूहि	कहो ॥१६॥

कुछ लोग तो प्रेम करनेवालोंसे ही बदलेमें प्रेम करते हैं; कुछ लोग इसके विपरीत, प्रेम न करनेवालोंसे प्रेम करते हैं और कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो प्रेम करनेवाले तथा न करनेवाले—दोनोंसे ही प्रेम नहीं करते। प्रियतम! इन तीनोंके विषयमें हमें समझाकर बतलाओ। यह बतलाओ कि तुम इनमेंसे किसको अच्छा समझते हो और तुम कौन-से हो ॥१६॥

श्रीभगवानुवाच

मिथो भजन्ति ये सख्यः स्वार्थैकान्तोद्यमा हि ते ।
न तत्र सौहृदं धर्मः स्वार्थार्थं तद्धि नान्यथा ॥१७॥

मिथः, भजन्ति, ये, सख्यः, स्वार्थैकान्तोद्यमाः, हि, ते, न, तत्र, सौहृदम्, धर्मः, स्वार्थार्थम्, तत्, हि, न, अन्यथा ॥१७॥

सख्यः	हे सखियो!	हि	निस्संदेह
ये	जो लोग	स्वार्थैका-न्तोद्यमाः	केवल स्वार्थके लिये ही प्रेमकी चेष्टा करते हैं
मिथः	परस्पर (दूसरेके प्रेमके बदलेमें)		
भजन्ति	प्रेम करते हैं	तत्र	उनमें
ते	वे (तो)	न	न (तो)

सौहृदम्	सौहार्द (होता है)	**स्वार्थार्थम्**	स्वार्थके हेतु
धर्मः	(न) धर्म (कर्तव्य-का भाव ही होता है)	**हि**	ही (होती है)
		अन्यथा	और किसी हेतुसे
		न	नहीं ॥१७॥
तत्	(उनकी) वह (प्रेमकी चेष्टा)		

प्रिय सखियो ! जो लोग प्रेम करनेपर ही बदलेमें प्रेम करते हैं, उनका तो सारा उद्यम केवल स्वार्थके लिये ही है। उनमें न तो सौहार्द है और न धर्म या कर्तव्यका भाव ही है। उनकी तो वह प्रेम-चेष्टा केवल स्वार्थके हेतुसे ही होती है, उनका और कोई प्रयोजन नहीं होता ॥१७॥

भजन्त्यभजतो ये वै करुणाः पितरो यथा।
धर्मो निरपवादोऽत्र सौहृदं च सुमध्यमाः ॥१८॥

भजन्ति, अभजतः, ये, वै, करुणाः, पितरः, यथा, धर्मः, निरपवादः, अत्र, सौहृदम्, च, सुमध्यमाः ॥१८॥

सुमध्यमाः	(और) हे सुन्दरियो !	**पितरः**	(और) माता-पिता,
ये	जो लोग	**अत्र**	(उनके) इस (व्यवहार) में
अभजतः	प्रेम न करनेवालोंसे	**निरपवादः**	निर्दोष
वै	भी	**धर्मः**	धर्म
भजन्ति	प्रेम करते हैं	**च**	और
यथा	जैसे	**सौहृदम्**	प्रेम (भी होता है) ॥१८॥
करुणाः	(स्वभावसे) ही करुण-हृदय सज्जन		

सुन्दरियो ! जो लोग प्रेम न करनेवालोंसे प्रेम करते हैं, जैसे स्वभावसे ही करुण-हृदय पुरुष एवं माता-पिता प्रेम करते हैं, उनके इस बर्तावमें कोई दोष नहीं होता, और पूर्ण धर्म तथा सौहार्द ही भरा रहता है ॥१८॥

भजतोऽपि न वै केचिद् भजन्त्यभजतः कुतः।
आत्मारामा ह्याप्तकामा अकृतज्ञा गुरुद्रुहः ॥१९॥

भजतः, अपि, न, वै, केचित्, भजन्ति, अभजतः, कुतः, आत्मारामाः, हि आप्तकामाः, अकृतज्ञाः, गुरुद्रुहः ॥१९॥

केचित्	कुछ लोग	**आप्तकामाः**	(दूसरे वे) जिनकी कामनाएँ पूर्ण हो चुकी हैं (जो कृतार्थ हो गये हैं)
अभजतः	प्रेम न करनेवालोंसे		
वै	तो		
कुतः	दूर रहा		
भजतः	प्रेम करनेवालोंसे	**अकृतज्ञाः**	(तीसरे वे) जो कृतघ्न हैं—किये हुए प्रेम या उपकारका स्मरण नहीं करते
अपि	भी		
न	नहीं		
भजन्ति	प्रेम करते (ऐसे लोग चार प्रकारके होते हैं—एक तो वे)	**हि**	और (चौथे वे)
		गुरुद्रुहः	जो (हित करनेवाले) गुरुजनोंसे भी वैर रखते हैं ॥१९॥
आत्मारामाः	जो आत्म स्वरूपमें ही नित्य रमण करते हैं,		

कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो प्रेम करनेवालोंसे भी प्रेम नहीं करते, फिर प्रेम न करनेवालोंसे प्रेम करनेकी तो बात ही क्या है। ऐसे लोग चार प्रकारके होते हैं—एक तो वे, जो नित्य अपने आत्मस्वरूपमें ही रमण करते हैं; दूसरे वे, जिनके सब कामनाएँ पूर्ण हो चुकी हैं; तीसरे वे, जो कृतघ्न हैं, किये गये उपकार तथा प्रेमका स्मरण भी नहीं करते; और चौथे वे, जो अपना सहज हित करनेवाले गुरुजनोंसे भी द्रोह करते हैं ॥१९॥

नाहं तु सख्यो भजतोऽपि जन्तून्
भजाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्तये ।
यथाधनो लब्धधने विनष्टे
तच्चिन्तयान्यन्निभृतो न वेद ॥२०॥

न, अहम्, तु, सख्यः, भजतः, अपि, जन्तून्, भजामि, अमीषाम्, अनुवृत्तिवृत्तये, यथा, अधनः, लब्धधने, विनष्टे, तच्चिन्तया, अन्यत्, निभृतः, न, वेद ॥२०॥

अहम्	(यदि तुम मेरी बात जानना चाहती हो तो) मैं	**यथा**	**जैसे**
		अधनः	निर्धन (मनुष्य)
		लब्धधने	पाये हुए धनके
तु	तो	**विनष्टे**	खो जानेपर
सख्यः	हे सखियो !	**तच्चिन्तया**	उसकी चिन्तासे
भजतः	प्रेम करनेवाले	**निभृतः**	व्याप्त (होकर)
जन्तून्	जीवोंसे	**अन्यत्**	दूसरी किसी वस्तु-को
अपि	भी		
अमीषाम्	उनकी	**न**	नहीं
अनुवृत्ति-वृत्तये	चित्तवृत्ति निरन्तर (मुझमें) लगाये रखनेके लिये	**वेद**	याद रखता (वही दशा मेरी उदासीनताको देखकर मुझे न पाकर उन लोगोंकी होती है) ॥२०॥
न	नहीं		
भजामि	प्रेम करता (उदासीन-सा हो जाता हूँ)		

सखियो ! यदि तुम मेरी बात जानना चाहती हो तो मैं तो प्रेम करनेवाले प्राणियोंसे भी वैसा प्रेम नहीं करता; उनकी चित्तवृत्ति निरन्तर मुझसें लगी रहे, इसलिये कभी-कभी उनसे उदासीन-सा हो जाता हूँ। जैसे निर्धन मनुष्यको कभी बहुत-सा धन मिल जाय और फिर वह खो जाय तो उसके हृदयमें खोये हुए धनकी ही चिन्ता छायी रहती है, वह दूसरी वस्तुका स्मरण ही नहीं करता, इसी प्रकार मैं भी मिल-मिलकर छिप जाया करता हूँ, जिससे मेरा चिन्तन नित्य-निरन्तर बना रहे ॥२०॥

एवं मदर्थोज्झितलोकवेद-
स्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः ।
मया परोक्षं भजता तिरोहितं
मासूयितुं मार्हथ तत्प्रियं प्रियाः ॥२१॥

एवम्, मदर्थोज्झितलोकवेदस्वानाम्, हि, वः, मयि, अनुवृत्तये, अबलाः, मया, परोक्षम्, भजता, तिरोहितम्, मा, असूयितुम्, मा, अर्हथ, तत्, प्रियम्, प्रियाः ॥२१॥

अबलाः	हे अबलाओ ! (ललनाओ !)	**परोक्षम्**	तुम लोगोंकी दृष्टि बचाकर
एवम्	इस प्रकार	**भजता**	तुम्हारे प्रेमका रस लेते हुए
मदर्थो-	जिन्होंने मेरे लिये		
ज्झितलोकः	लोक मर्यादा, वेद-	**मया**	मैं
वेदस्वानाम्	मार्ग एवं आत्मीय जनोंका भी परि- त्याग कर दिया,	**तिरोहितम्**	छिप गया था;
		तत्	इसलिये
		प्रियाः	हे प्रियाओ !
वः	(ऐसी) तुम लोगों- की	**प्रियम्**	अपने प्रेमास्पद
		मा	मुझमें
मयि	मुझमें (अपने अंदर)	**असूयितुम्**	दोष देखना
अनुवृत्तये	चित्तवृत्ति लगाये रखनेके लिये	**मा अर्हथ**	तुम्हारे लिये उचित नहीं ॥२१॥
हि	ही		

गोपललनाओ ! तुम लोगोंने मेरे लिये सारी लोक-मर्यादा, वेदमार्ग और आत्मीय स्वजनोंका भी परित्याग कर दिया। इस स्थितिमें तुम्हारी मनोवृत्ति मेरे द्वारा प्राप्त होनेवाले किसी सुखमें लगकर मुझे छोड़ न दे, केवल मुझमें ही लगी रहें, इसीलिये ही मैं तुम लोगोंसे दृष्टि बचाकर तुम्हारे प्रेमरसका पान करता हुआ ही यहाँ छिप रहा था। मेरी गोपियो ! तुम मेरी अत्यन्त प्रिया हो और मैं तुम्हारा परम प्रियतम हूँ, अतः तुमलोग मुझमें दोष मत देखो ॥२१॥

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ।
या मा भजन् दुर्जरगेहश्रृङ्खलाः
संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना ॥२२॥

न, पारये, अहम्, निरवद्यसंयुजाम्, स्वसाधुकृत्यम्, विबुधायुषा, अपि, वः, याः, मा, अभजन्, दुर्जरगेहश्रृंखलाः, संवृश्च्य, तद्, वः, प्रतियातु, साधुना ॥२२॥

याः	जिन्होंने
दुर्जरगेह-	कठिनतासे टूटने-
श्रृंखलाः	वाली गृहस्थीकी बेड़ियोंको
संवृश्च्य	भली प्रकारसे काटकर
मा	मुझसे
अभजन्	प्रेम किया है
निरवद्यसं-	(तथा) जिनका मेरे
युजाम्	साथ मिलन सर्वथा निर्दोष है,
वः	(ऐसी) तुम लोगोंके
स्वसाधु-	मेरे प्रति किये गये
कृत्यम्	प्रेम, सेवा और उपकारका
विबुधायुषा	देवताकी आयुमें
अपि	भी
अहम्	मैं
न	नहीं
पारये	बदला चुका सकता
तत्	वह (तुम्हारा ऋण)
वः	तुम्हारी
साधुना	साधुता (सौजन्य, कृपा) से (ही)
प्रतियातु	उतर सकता है (मैं उसे उतारनेमें अपनेको सर्वथा असमर्थ पाता हूँ) ॥२२॥

प्रियाओ ! प्रयत्न करनेवाले साधकोंसे भी जो घर-गृहस्थीकी बेड़ियाँ नहीं टूटतीं तुमने उनको भलीभाँति तोड़कर मुझमें यथार्थ प्रेम किया है। मेरे साथ तुम्हारा यह मिलन सर्वथा निर्दोष—निज सुखके इच्छालेशसे भी रहित परम पवित्र है। तुम लोगोंने केवल मुझको सुख देनेके लिये ही इतना त्याग किया है। मेरे प्रति किये जानेवाले तुम्हारे इस प्रेम, सेवा और उपकारका बदला मैं देवताओंकी लम्बी आयुमें भी सेवा करके नहीं चुका सकता। तुम अपनी साधुता, सौजन्यसे ही चाहो तो मुझे उऋण कर सकती हो। मैं तो तुम्हारा ऋण चुकानेमें सर्वथा असमर्थ हूँ ॥२२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडायां गोपीसान्त्वनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

इत्थं भगवतो गोप्यः श्रुत्वा वाचः सुपेशलाः ।
जहुर्विरहजं तापं तदङ्गोपचिताशिषः ॥ १ ॥

इत्थम्, भगवतः, गोप्यः, श्रुत्वा, वाचः, सुपेशलाः, जहुः, विरहजम्, तापं, तदङ्गोपचिताशिषः ॥१॥

इत्थम्	इस प्रकार	**तदङ्गोप-**	(और) उनके अंग-
गोप्यः	गोपियोंने	**चिताशिषः**	संगसे पूर्णकाम (होकर)
भगवतः	भगवान् (श्री-कृष्ण) की	**विरहजं**	उनके विरहसे उत्पन्न
सुपेशलाः	सुमधुर	**तापं**	तापको
वाचः	उक्तियोंको	**जहुः**	त्याग दिया (उससे छूट गयीं) ॥१॥
श्रुत्वा	सुनकर		

परीक्षित् ! इस प्रकार गोपियाँ प्रेमसमुद्र भगवान्‌की सुमधुर वाणी सुनकर और उन सौन्दर्य-माधुर्य-निधि प्रियतमके अंग-संगसे पूर्णकाम होकर उनके विरहजनित संतापसे मुक्त हो गयीं ॥१॥

तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीडामनुव्रतैः ।
स्त्रीरत्नैरन्वितः प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभिः ॥ २ ॥

तत्र, आरभत, गोविन्दः, रासक्रीडाम्, अनुव्रतैः, स्त्रीरत्नैः, अन्वितः, प्रीतैः, अन्योन्याबद्धबाहुभिः ॥२॥

तत्र	(फिर) वहाँ	**प्रीतैः**	(परम) प्रसन्न (तथा)
गोविन्दः	श्रीकृष्णने	**अन्योन्या-**	एक दूसरेकी बाँहमें
अनुव्रतैः	(अपने सर्वथा) अनुगत	**बद्धबाहुभिः**	बाँह डाले हुए

स्त्रीरत्नैः	(उन) स्त्रीरत्नोंके	**रासक्रीडाम्**	रासलीला
अन्वितः	साथ मिलकर	**आरभत**	आरम्भ की ॥२॥

तदनन्तर यमुनातटपर भगवान श्रीकृष्णकी रुचिके अनुसार चलने-वाली उनकी परम प्रेयसी गोपियाँ एक दूसरेकी बाँहमें बाँह डालकर खड़ी हो गयीं और भगवान् श्रीकृष्णने उन स्त्रीरत्नोंके साथ मिलकर परम रस-मयी रासलीला आरम्भ की ॥२॥

रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः ।
योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः ।
प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः ॥ ३ ॥

यं मन्येरन् नभस्तावद् विमानशतसंकुलम् ।
दिवौकसां सदाराणामौत्सुक्यापहृतात्मनाम् ॥ ४ ॥

रासोत्सवः, सम्पवृत्तः, गोपीमण्डलमण्डितः, योगेश्वरेण, कृष्णेन, तासाम्, मध्ये, द्वयोः, द्वयोः, प्रविष्टेन, गृहीतानाम्, कण्ठे, स्वनिकटम्, स्त्रियः ॥३॥

यम्, मन्येरन्, नभः, तावत्, विमानशतसंकुलम्, दिवौकसाम्, सदाराणाम्, औत्सुक्यापहृतात्मनाम् ॥४॥

कण्ठे	जिनके गलेमें	**मण्डितः**	सुशोभित
गृहीतानाम्	उन्होंने बाँह डाल रखी थी	**रासोत्सवः**	रास-नृत्यका समारोह
तासाम्	उन (गोपियों) मेंसे	**सम्प्रवृत्तः**	प्रारम्भ किया
द्वयोः द्वयोः	दो-दोके	**यम्**	जिन (भगवान् श्रीकृष्ण)को
मध्ये	बीचमें	**स्त्रियः**	(वे सभी) गोपियाँ
प्रविष्टेन	खड़े हुए	**स्वनिकटम्**	अपने पार्श्वमें स्थित
योगेश्वरेण	योगेश्वरेश्वर	**मन्येरन्**	समझ रही थीं
कृष्णेन	(भगवान्) श्रीकृष्णने	**तावत्**	इतनेमें ही
गोपी-	गोपियोंके	**नभः**	आकाश
मण्डल-	मण्डलसे		

औत्सुक्या-	जिनका मन	**सदाराणाम्**	पत्नियोंके सहित
पहृता-	उत्सुकताके कारण	**दिवौकसाम्**	(उन) देवताओंके
त्मनाम्	अपने वशमें नहीं रहा था	**विमानशत-**	सैकड़ों विमानोंसे
		संकुलम्	भर गया ॥३-४॥

योगेश्वरेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण दो-दो गोपियोंके बीचमें अनेक रूपोंमें प्रकट होकर, उनके गलेमें बाँह डालकर खड़े हो गये। अब सहस्रों गोपियोंके बीच-बीचमें शोभायमान श्रीभगवान्ने दिव्य रासोत्सव प्रारम्भ किया। प्रत्येक गोपी यही समझ रही थी कि मेरे प्रियतम श्रीकृष्ण तो मेरे ही पार्श्वमें स्थित है। भगवान्के द्वारा प्रारम्भ किये गये उस रसमय रासोत्सवको देखनेकी उत्सुकतासे जिनका मन अपने वशमें नहीं रह गया था, वे सभी देवता अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ वहाँ आ पहुँचे। सारा आकाश देवताओंके विमानोंसे भर गया ॥३-४॥

ततो दुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः।
जगुर्गन्धर्वपतयः सस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम् ॥ ५ ॥

ततः, दुन्दुभयः, नेदुः, निपेतुः, पुष्पवृष्टयः, जगुः, गन्धर्वपतयः, सस्त्रीकाः, तद्यशः, अमलम् ॥५॥

ततः	उस समय	**सस्त्रीकाः**	अपनी पत्नियोंके साथ
दुन्दुभयः	स्वर्गके नगारे	**अमलम्**	निर्मल
नेदुः	बजने लगे	**तद्यशः**	उन (भगवान् श्रीकृष्ण) का यश
पुष्पवृष्टयः	पुष्पोंकी बौछारें	**जगुः**	गाने लगे ॥५॥
निपेतुः	गिरने लगीं		
गन्धर्वपतयः	(और) गन्धर्वोंके नायक		

उस समय स्वर्गकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं, दिव्य पुष्पोंकी वृष्टि होने लगी और गन्धर्वोंके स्वामी अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ भगवान् श्रीकृष्णका निर्मल यशोगान करने लगे ॥५॥

वलयानां नूपुराणां किङ्किणीनां च योषिताम्।
सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रासमण्डले ॥ ६ ॥

वलयानाम्, नूपुराणां, किङ्किणीनां, च, योषिताम्, सप्रियाणाम्, अभूत, शब्दः, तुमुलः, रासमण्डले ॥६॥

रासमण्डले	रासमण्डलमें (भी)	**नूपुराणाम्**	पायजेबोंका
सप्रियाणाम्	(अपने) प्रियतम (श्रीकृष्ण) के साथ (नृत्य करती हुई)	**च**	और
		किङ्किणीनाम्	करधनियोंका
		तुमुलः	मिश्रित
योषिताम्	गोपियोंके	**शब्दः**	शब्द
वलयानां	कङ्कणोंका	**अभूत**	हुआ ॥६॥

रासमण्डलमें सभी गोपियाँ अपने प्रियतम श्रीकृष्णके साथ नृत्य करने लगीं। उस समय वहाँ भी उन सहस्रों गोपियोंके हाथोंके कङ्कण, पैरोंकी पायजेब तथा कटिकी करधनियाँ बजने लगीं, जिनकी मिश्रित मधुर ध्वनि सर्वत्र छा गयी ॥६॥

तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान् देवकीसुतः ।
मध्ये मणीनां हैमानां महामरकतो यथा ॥ ७ ॥

तत्र, अतिशुशुभे, ताभि, भगवान्, देवकीसुतः, मध्ये, मणीनां, हैमानां, महामरकतः, यथा ॥७॥

तत्र	उस (रासमण्डल)में	**यथा**	जैसे
ताभिः	उन (गोपियों)के साथ	**हैमानां**	सोनेकी बनी हुई
		मणीनां	मणियोंके
भगवान्	परम ऐश्वर्यशाली	**मध्ये**	बीचमें
देवकीसुतः	देवकीनन्दन (श्रीकृष्ण) (उसी प्रकार)	**महामरकतः**	प्रभामयी मरकत मणि (सुशोभित हो) ॥७॥
अतिशुशुभे	अत्यन्त सुशोभित हुए		

उस रासमण्डलमें व्रजसुन्दरियोंके साथ षडैश्वर्यसम्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे, जैसे स्वर्णमयी मणियोंके बीचमें प्रभामयी नीलमणि सुशोभित हो ॥७॥

पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासैः
भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः ।
स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो
गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः ॥८॥

पादन्यासैः, भुजविधुतिभिः सस्मितैः, भ्रूविलासैः, भज्यन्मध्यैः, चलकुचपटैः, कुण्डलैः, गण्डलोलैः, स्विद्यन्मुख्यः, कबररशनाग्रन्थयः, कृष्णवध्वः, गायन्त्यः, तम्, तडितः, इव, ताः, मेघचक्रे, विरेजुः ॥८॥

स्विद्यन्मुख्यः	जिनके मुखोंपर पसीनेकी बूँदें झलक रही हैं	**भुजविधुतिभिः**	बाहु-विक्षेपोंसे
		सस्मितैः	मन्द मुसकानसे युक्त
		भ्रूविलासैः	भौंहोंकी मटकसे
कबररशना-ग्रन्थयः	जिनकी वेणियाँ और कमरके बन्धन कसकर बाँधे हुए हैं	**भज्यन्मध्यैः**	लचकते हुए कटि-प्रदेशोंसे
		चलकुचपटैः	कुचोंपरसे खिसकते हुए वस्त्रोंसे (तथा)
ताः	वे		
कृष्णवध्वः	श्रीकृष्णकी प्रियतमा (गोपिकाएँ)	**गण्डलोलैः**	कपोलोंपर हिलते हुए
तम्	उन (भगवान् श्रीकृष्ण) की	**कुण्डलैः**	कुण्डलोंके कारण
		मेघचक्रे	मेघ मण्डलमें
गायन्त्यः	(मधुर) लीलाओंका गान करती हुई		(कौंधती हुई)
		तडितः इव	बिजलियोंकी भाँति
पादन्यासैः	(विचित्र) पाद-विन्यासोंसे	**विरेजुः**	सुशोभित हुईं ॥८॥

श्रीकृष्णकी परम प्रेयसी गोपसुन्दरियाँ अति मधुर स्वरसे प्रियतमकी मधुर लीलाओंका गान करती हुई नृत्य कर रही थीं। उस समय, वे मस्तककी वेणीकी और कमरके लहँगेकी डोरीको कसकर बाँधे हुए भाँति-भाँतिसे पैरोंको नचा रही थीं, चरणोंकी गतिके अनुसार भुजाओंसे कला पूर्ण भाव प्रकट कर रही थीं, मंद-मंद मुसकरा रही थीं और भौंहोंको मटका रही थीं। नाचनेमें कभी-कभी पतली कमर लचक जाती थी, उनके

स्तनोंके वस्त्र उड़े जा रहे थे, कानोंके कुण्डल हिल-हिलकर अपनी प्रभासे उनके कपोलोंको और भी चमका रहे थे। नाचनेके श्रमसे उनके मुखोंपर पसीनेकी बूँदें झलक रही थीं। उस समय वे व्रजसुन्दरियाँ ऐसी असीम शोभा पा रही थीं मानो नील बादलोंके बीच-बीचमें स्वर्णवर्णा बिजलियाँ चमक रही हों ॥८॥

उच्चैर्जगुर्नृत्यमाना रक्तकण्ठ्यो रतिप्रियाः ।
कृष्णाभिमर्शमुदिता यद्गीतेनेदमावृतम् ॥९॥

उच्चैः, जगुः, नृत्यमानाः, रक्तकण्ठ्यः, रतिप्रियाः, कृष्णाभिमर्श-मुदिताः, यद्गीतेन, इदम्, आवृतम् ॥९॥

रतिप्रियाः	क्रीडामें आसक्त	**उच्चैः**	उच्च स्वरसे
रक्तकण्ठ्यः	वे सुन्दर कण्ठवाली कामिनियाँ	**जगुः**	गान करने लगीं
कृष्णाभिमर्श-मुदिताः	भगवान् श्रीकृष्णके संस्पर्शसे आनन्दित होकर	**यद्गीतेन**	जिनके (उस) गानसे
		इदम्	यह (सम्पूर्ण जगत्)
		आवृतम्	व्याप्त हो गया (गूँज उठा) ॥९॥
नृत्यमानाः	नाचती हुई		

श्रीकृष्णके साथ क्रीड़ामें आसक्त वे सुन्दर कण्ठवाली व्रजरमणियाँ भगवान् श्रीकृष्णका संस्पर्श प्राप्तकर आनन्दमग्न हो रही थीं। वे नाचती हुई ऊँचे स्वरसे परम मधुर गान कर रही थीं। उनकी संगीत-ध्वनिसे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो रहा था ॥९॥

काचित् समं मुकुन्देन स्वरजातीरमिश्रिताः ।
उन्निन्ये पूजिता तेन प्रीयता साधु साध्विति ।
तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्यै मानं च बह्वदात् ॥१०॥

काचित्, समम्, मुकुन्देन, स्वरजातीः, अमिश्रिताः, उन्निन्ये, पूजिता, तेन, प्रीयता, साधु, साधु, इति, तत्, एव, ध्रुवम्, उन्निन्ये, तस्यै, मानम्, च, बहु, अदात् ॥१०॥

काचित्	कोई (गोपी)	**इति**	यों (कहकर)
मुकुन्देन	भगवान् श्रीकृष्णके	**पूजिता**	उस गोपीका सम्मान
समम्	साथ		(अभिनन्दन) किया
अभिश्रिताः	उनके स्वरोंसे	**तत् एव**	उसी (राग) को
	विलक्षण		(एक दूसरी सखीने)
स्वरजातीः	स्वरोंको	**ध्रुवम्**	ध्रुपदतालमें
उन्निन्ये	उठाकर गाने लगी	**उन्निन्ये**	उठाया
प्रीयता	(जिसपर) प्रसन्न	**च**	और
	होकर	**तस्यै**	उसे (भगवान्‌ने)
तेन	उन्होंने	**बहु**	बहुत
साधु	बहुत अच्छा	**मानम्**	आदर
साधु	बहुत अच्छा	**अदात्**	दिया ॥१०॥

कोई गोपी भगवान् श्रीकृष्णके स्वरकी अपेक्षा भी विलक्षण ऊँचे स्वरसे गान करने लगी। उसके विलक्षण मधुर गानको सुनकर भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हुए और 'बहुत अच्छा', 'बहुत अच्छा' कहकर उसकी प्रशंसा करने लगे। उसी रागको एक दूसरी गोपीने ध्रुपद् तालमें उठाकर गाया और भगवान्‌ने उसको भी बड़ा आदर दिया ॥१०॥

काचिद्रासपरिश्रान्ता पार्श्वस्थस्य गदाभृतः।
जग्राह बाहुना स्कन्धं श्लथद्वलयमल्लिकाः ॥११॥

काचित्, रासपरिश्रान्ता, पार्श्वस्थस्य, गदाभृतः, जग्राह, बाहुना, स्कन्धम्, श्लथद्वलयमल्लिका ॥११॥

काचित्	कोई (तीसरी सखी)	**बाहुना**	(अपनी) भुजासे
रास-	रासमें नृत्य करते-	**पार्श्वस्थस्य**	अपनी बगलमें खड़े
परिश्रान्ता	करते थक गयी		हुए
श्लथद्वलय-	उसके हाथोंसे कंगन	**गदाभृतः**	श्यामसुन्दरके
मल्लिका	तथा वेणीमें बँधे हुए	**स्कन्धम्**	कंधेको
	बेलेके फूल खिसकने	**जग्राह**	(सहारेके लिये)
	लगे (अतः उसने)		पकड़ लिया ॥११॥

कोई एक सखी रासमें प्रियतम श्रीश्यामसुन्दरके साथ नृत्य करते-करते थक गयी। उसके हाथोंके कंगन तथा वेणियोंमें बँधे हुए बेलेके पुष्प खिसकने लगे। तब वह अपने पार्श्वमें ही स्थित श्यामसुन्दरके कंधेको पकड़कर उसके सहारे खड़ी हो गयी ॥११॥

तत्रैकांसगतं बाहुं कृष्णस्योत्पलसौरभम् ।
चन्दनालिप्तमाघ्राय हृष्टरोमा चुचुम्ब ह ॥१२॥

तत्र, एका, अंसगतम्, बाहुम्, कृष्णस्य, उत्पलसौरभम्, चन्दनालिप्तम्, आघ्राय, हृष्टरोमा, चुचुम्ब, ह ॥१२॥

तत्र	वहाँ	**चन्दना-**	परम सुगन्धित
एका	एक (गोपी) ने	**लिप्तम्**	चन्दनसे चर्चित
अंसगतम्	(अपने) कंधेपर रखी हुई	**बाहुम्**	भुजाको
		आघ्राय	सूँघकर
कृष्णस्य	भगवान् श्रीकृष्णकी	**हृष्टरोमा**	पुलकित (हो)
उत्पल-	कमलके-से	**चुचुम्ब ह**	चूम लिया ॥१२॥
सौरभम्	गन्धवाली (तथा)		

वहाँ एक गोपीने श्रीकृष्णका कोमल कर-कमल अपने कंधेपर रख लिया। भगवान्‌के उस हाथसे स्वाभाविक ही कमलकी-सी दिव्य सुगन्ध आ रही थी और उसपर अत्यन्त सुगन्धित चन्दन लगा हुआ था। भगवान्‌के भुजस्पर्श और उनके दिव्य अंग-गन्धसे उस गोपीके आनन्दसे रोमाञ्च हो आया और उसने झट् भगवान्‌के हाथको चूम लिया ॥१२॥

कस्याश्चिन्नाट्यविक्षिप्तकुण्डलत्विषमण्डितम् ।
गण्डं गण्डे संदधत्या अदात्ताम्बूलचर्वितम् ॥१३॥

कस्याश्चित्, नाट्यविक्षिप्तकुण्डलत्विषमण्डितम्, गण्डम्, गण्डे, संदधत्याः, अदात्, ताम्बूलचर्वितम् ॥१३॥

नाट्यविक्षिप्त-	नाचनेके कारण	**मण्डितम्**	कुण्डलकी आभासे सुशोभित
कुण्डलत्विष-	हिलते हुए		

गण्डम्	(अपने) कपोलको	**कस्याश्चित्**	किसी (गोपी) को
गण्डे	(भगवान् श्रीकृष्णके) कपोलसे		(उन्होंने)
		ताम्बूल-	अपना चबाया
संदधत्याः	सटा देनेवाली	**चर्वितम्**	हुआ पान
		अदात्	दे दिया ॥१३॥

एक दूसरी गोपी रासमें नाच रही थी, इससे कानोंके कुण्डल हिल रहे थे और उन कुण्डलोंकी झलक उसके कपोलोंपर चमक रही थी। उस गोपीने अपने कपोलको भगवान्‌के कपोलसे सटा दिया। तब भगवान्‌ने बड़े प्रेमसे अपना चबाया हुआ पान उसके मुखमें दे दिया ॥१३॥

नृत्यन्ती गायती काचित् कूजन्नूपुरमेखला।
पार्श्वस्थाच्युतहस्ताब्जं श्रान्ताधात् स्तनयोः शिवम् ॥१४॥

नृत्यन्ती, गायती, काचित्, कूजन्नूपुरमेखला, पार्श्वस्थाच्युतहस्ताब्जम्, श्रान्ता, अधात्, स्तनयोः, शिवम् ॥१४॥

काचित्	कोई (गोपी)		वह) थक गयी (तब
कूजन्नूपुर-	पाजेब एवं करधनी की झनकार	**शिवम् पार्श्व**	बगलमें खड़े हुए
		स्थाच्युतहस्ता-	भगवान् श्रीकृष्णके
मेखला	करती हुई	**ब्जम्**	शान्तिदायक कर-कमलको
नृत्यन्ती	नाच रही (और)		
गायती	गा रही थी	**स्तनयोः**	(अपने) स्तनोंपर
श्रान्ता	(नाचते-नाचते जब उसने)	**अधात्**	रख लिया ॥१४॥

कोई एक गोपी अपने पैरोंकी पाजेब तथा करधनीके घुँघुरुओंको मधुरस्वरसे झनकारती हुई नाच-गा रही थी। वह जब थक गयी और उसका हृदय धड़कने लगा, तब उसने अपने बगलमें ही खड़े हुए श्यामसुन्दरके शीतल सुकोमल कर-कमलको अपने दोनों स्तनोंपर रख लिया ॥१४॥

गोप्यो लब्ध्वाच्युतं कान्तं श्रिय एकान्तवल्लभम्।
गृहीतकण्ठ्यस्तद्दोर्भ्यां गायन्त्यस्तं विजह्निरे ॥१५॥

गोप्यः, लब्ध्वा, अच्युतम्, कान्तम्, श्रियः, एकान्तवल्लभम्, गृहीतकण्ठ्यः, तद्दोर्भ्याम्, गायन्त्यः, तम्, विजह्रिरे ॥१५॥

श्रियः	(साक्षात्) श्रीलक्ष्मीजीके	**गोप्यः**	गोपियाँ
एकान्त-	एकमात्र	**तद्दोर्भ्याम्**	जिनके गलेमें
वल्लभम्	प्रियतम	**गृहीतकण्ठ्यः**	उन्होंने बाँह डाल रखी थी
अच्युतम्	भगवान् अपने तत्त्व-स्वरूपसे कभी विलचित न होने-वाले	**तम्**	उन (श्रीकृष्ण) की
		गायन्त्यः	प्रेमलीलाका गान करती हुई (उनके साथ)
कान्तम्	कान्तरूपमें	**विजह्रिरे**	विहार करने लगीं ॥१५॥
लब्ध्वा	पाकर		

साक्षात् श्रीलक्ष्मीके एकमात्र परम प्रियतम तथा सदा अपने तत्त्व-स्वरूपमें ही प्रतिष्ठित भगवान् श्रीकृष्णको अपने कान्त—हृदयेश्वरके रूपमें प्राप्त कर गोपसुन्दरियाँ उनके गलोंमें अपनी भुजाएँ डालकर उन प्रियतम-की प्रेमलीलाका गान करती हुई उनके साथ विहार करने लगीं ॥१५॥

कर्णोत्पलालकविटङ्ककपोलघर्म-
वक्त्रश्रियो वलयनूपुरघोषवाद्यैः ।
गोप्यः समं भगवता ननृतुः स्वकेश-
स्रस्तस्रजो भ्रमरगायकरासगोष्ट्याम् ॥१६॥

कर्णोत्पलालकविटङ्ककपोलघर्मवक्त्रश्रियः, वलयनूपुरघोषवाद्यैः, गोप्यः, समम्, भगवता, ननृतुः, स्वकेशस्रस्तस्रजः, भ्रमरगायकरासगोष्ठ्याम् ॥१६॥

कर्णोत्पला-	कानोंमें खोंसे हुए		बूँदोंसे जिनके
लकविटङ्क-	कमल-पुष्पों,		मुखारविन्दकी
कपोलघर्म-	अलकावलीसे		अपूर्व शोभा हो
वक्त्रश्रियः	अलंकृत कपोलों तथा पसीनेकी		रही थी,
		गोप्यः	(वे) गोपियाँ

भ्रमरगायक-	भ्रमर ही जिसमें
रासगोष्ठ्याम्	गायक बने हुए थे, उस रासमण्डलमें
वलयनूपुर-	कङ्कण एवं
घोषवाद्यैः	नूपुरोंके शब्दरूप बाजोंके साहचर्यमें
भगवता	भगवान् श्रीकृष्ण-
समम्	के साथ
ननृतुः	नाचने लगीं
स्वकेश-	(उस समय) उनके
स्रस्तस्रजः	केशपाशोंसे फूलोंकी मालाएँ खिसकती जाती थीं ॥१६॥

उन गोपसुन्दरियोंके कानोंमें कमलके पुष्प सुशोभित थे। घुँघुराली लटें गालोंको विभूषित कर रही थीं। पसीनेकी बूँदोंसे उनके मुख-सरोजोंकी अपूर्व शोभा हो रही थी। वे रासमण्डलमें भगवान् श्रीकृष्णके साथ नृत्य कर रही थीं। उस नृत्यके साथ उनके हाथोंके कंगन और पैरोंकी पाजेबोंके बाजे बज रहे थे और भ्रमरोंके दल सुर-में-सुर मिलाकर मधुर गान कर रहे थे। उस समय उनकी वेणियोंमें गुँथे हुए पुष्प खिसक-खिसककर गिरे जा रहे थे ॥१६॥

एवं परिष्वङ्गकराभिमर्शस्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः ।
रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः ॥१७॥

एवम्, परिष्वङ्गकराभिमर्शस्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः, रेमे, रमेशः, व्रजसुन्दरीभिः, यथा, अर्भकः, स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः ॥१७॥

यथा	जैसे
अर्भकः	छोटा शिशु
स्वप्रतिबिम्ब-	अपनी परछाईके
विभ्रमः	साथ खेलता है
एवम्	उसी प्रकार
रमेशः	लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णने
परिष्वङ्गकरा-	आलिंगन, हाथोंसे
भिमर्शस्निग्धे-	अंगस्पर्श, प्रेमयुक्त
क्षणोद्दाम-	कटाक्ष एवं उन्मुक्त
विलासहासैः	विलासपूर्ण हासके द्वारा
व्रजसुन्दरीभिः	व्रजसुन्दरियोंके साथ
रेमे	रमण किया ॥१७॥

जैसे छोटा-सा शिशु निर्विकारभावसे अपनी परछाईके साथ खेलता है, वैसे ही रमानाथ भगवान् श्रीकृष्ण कभी उन गोपियोंका आलिंगन करते,

कभी हाथोंसे उनका अंगस्पर्श करते, कभी प्रेमभरी तिरछी चितवनसे उनकी ओर निहारते और कभी विलासपूर्ण रीतिसे खिलखिलाकर हँस पड़ते। इस प्रकार उन्होंने उन निजस्वरूपभूता व्रजसुन्दरियोंके साथ रमण किया। (वस्तुतः भगवान् श्रीकृष्णकी यह स्वरूपभूता लीला थी। गोपियाँ तत्त्वतः श्रीकृष्णसे अभिन्न थीं; पर जैसे बालक अपना मुख स्वयं न देख पाने-के कारण उसके साथ खेल नहीं सकता, परन्तु दर्पणादिमें अपनी परछाई देखकर विचित्र भाव-भंगिमाओंसे उसके साथ खेलकर आनन्दका अनुभव करता है, वैसे ही श्रीभगवान् भी अपने साथ आप क्रीड़ा नहीं कर सकते। इसीलिये वे अपनी ही परछाईं रूपा ह्लादिनी शक्तिकी विकसित मूर्त्तियों-श्रीव्रजसुन्दरियोंके साथ विविध विलास करके निर्मल दिव्य रसानन्दका अनुभव करते हैं। अपने अलौकिक अनुपमेय प्रतिक्षणवर्धमान सौन्दर्य-माधुर्य-सुधारसका अनुभव करनेके लिये ही वे निजस्वरूपा व्रजसुन्दरियोंके साथ लीला करके उसका रसास्वादन करते हैं) ॥१७॥

तदङ्गसङ्गप्रमुदाकुलेन्द्रियाः
केशान् दुकूलं कुचपट्टिकां वा।
नाञ्जः प्रतिव्योढुमलं व्रजस्त्रियो
विस्रस्तमालाभरणाः कुरूद्वह ॥१८॥

तदङ्गसङ्गप्रमुदाकुलेन्द्रियाः, केशान्, दुकूलम्, कुचपट्टकाम्, वा, न, अञ्जः, प्रतिव्योढुम्, अलम्, व्रजस्त्रियः, विस्रस्तमालाभरणाः, कुरूद्वह ॥१८॥

कुरूद्वह	हे कुरुनन्दन !	**विस्रस्तमाला-**	जिनके गलेके पुष्प-
तदङ्गसङ्ग-	उन (भगवान्	**भरणाः**	हार एवं आभूषण
प्रमुदा-	श्रीकृष्ण) के अंग-		च्युत हो गये थे,
कुलेन्द्रियाः	संगसे होनेवाले	**व्रजस्त्रियः**	(वे) व्रजबालाएँ
	परमानन्दके कारण	**केशान्**	अपने केशपाशको
	जिनकी इन्द्रियाँ	**दुकूलम्**	ओढ़नेके वस्त्रको
	विह्वल हो गयी थीं,	**वा**	अथवा
	(अतएव)	**कुचपट्टिकाम्**	चोलीको (भी)

अञ्जः	जल्दी	**अलम्**	समर्थ
प्रतिव्योढुम्	सँभालनेमें	**न**	नहीं हुईं ॥१८॥

परीक्षित् ! प्रियतम भगवान्‌के अंगोंका संस्पर्श पाकर गोपियोंकी इन्द्रियाँ प्रेमानन्दसे विह्वल हो गयीं। उनके कण्ठोंमें पड़े हुए पुष्पहार टूट गये। उनके आभूषण अस्त-व्यस्त हो गये। सजाये हुए केश बिखर गये। वे अपनी ओढ़नी तथा चोलीको भी जल्दीसे सँभालनेमें असमर्थ हो गयीं ॥१८॥

कृष्णविक्रीडितं वीक्ष्य मुमुहुः खेचरस्त्रियः।
कामार्दिताः शशाङ्कश्च सगणो विस्मितोऽभवत् ॥१९॥

कृष्णविक्रीडितम्, वीक्ष्य, मुमुहुः, खेचरस्त्रियः, कामार्दिताः, शशाङ्कः, च, सगणः, विस्मितः, अभवत् ॥१९॥

कृष्णा-	भगवान् श्रीकृष्णकी	**च**	और
विक्रीडितम्	(उस) रासक्रीडाको	**शशाङ्कः**	चन्द्रमा
वीक्ष्य	देखकर	**सगणः**	अपने गणों (नक्षत्रों)
खेचरस्त्रियः	आकाशमें स्थित		सहित
	देवांगनाएँ	**विस्मितः**	आश्चर्य चकित
कामार्दिताः	कामातुर (होकर)	**अभवत्**	हो गया ॥१९॥
मुमुहुः	मोहित हो गयीं		

भगवान् श्रीकृष्णकी इस प्रेममयी रासक्रीड़ाको देखकर आकाशमें विमानोंमें बैठी देवांगनाएँ भी मिलनकी इच्छासे मोहित हो गयीं और चन्द्रमा अपने गणों—नक्षत्रों तथा तारोंके साथ आश्चर्यचकित हो गया ॥१९॥

कृत्वा तावन्तमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः।
रेमे स भगवांस्ताभिरात्मारामोऽपि लीलया ॥२०॥

कृत्वा, तावन्तम्, आत्मानम्, यावतीः, गोपयोषितः, रेमे, सः, भगवान्, ताभिः, आत्मारामः, अपि, लीलया ॥२०॥

भगवान्	भगवान् (श्रीकृष्ण)	**गोपयोषितः**	गोप रमणियाँ थीं,
आत्मारामः	आत्माराम (अपने स्वरूपमें ही रमण करनेवाले) हैं,	**आत्मानम्**	अपनेको
		तावन्तम्	उतने ही रूपोंमें
		कृत्वा	प्रकट करके
अपि	फिर भी	**लीलया**	लीलासे
सः	उन्होंने	**ताभिः**	उनके साथ
यावतीः	जितनी	**रेमे**	रमण किया ॥२०॥

भगवान् श्रीकृष्ण आत्माराम हैं, नित्य स्वभावसे आत्मस्वरूपमें ही रमण करते हैं। फिर भी उन्होंने, जितनी गोपरमणियाँ थीं, उतने ही रूपोंमें अपनेको प्रकट करके अपनी लीलासे ही—किसी कामना वासनासे नहीं—उनके साथ रमण किया ॥२०॥

तासामतिविहारेण श्रान्तानां वदनानि सः।
प्रामृजत्करुणः प्रेम्णा शंतमेनाङ्ग पाणिना ॥२१॥

तासाम्, अतिविहारेण, श्रान्तानाम्, वदनानि, सः, प्रामृजत्, करुणः, प्रेम्णा, शंतमेन, अङ्ग, पाणिना ॥२१॥

अङ्ग	हे तात ! (परीक्षित्)	**सः**	उन (भगवान् श्रीकृष्ण) ने
अतिविहारेण	(तब) अत्यधिक विहारके कारण	**प्रेम्णा**	प्रेमपूर्वक (अपने)
		शंतमेन	परम शान्तिदायक
श्रान्तानाम्	थकी हुई	**पाणिना**	कर-कमलसे
तासाम्	उन (गोपियों) के	**प्रामृजत्**	भलीभाँति पोंछ दिया ॥२१॥
वदनानि	मुखकोंको		
करुणः	करुणामय (भक्तवत्सल)		

प्रिय परीक्षित् ! यों बहुत देरतक नृत्य, गान, विहार आदि करनेके कारण अत्यधिक श्रमसे जब सारी गोपियाँ थक गयीं, तब करुणामय भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं अपने परम शान्तिदायक कोमल कर-कमलोंके द्वारा बड़े ही प्रेमसे उनके मुख-कमलोंको पोंछ दिया ॥२१॥

गोप्यः स्फुरत्पुरटकुण्डलकुन्तलत्विड्-
गण्डश्रिया सुधितहासनिरीक्षणेन ।
मानं दधत्य ऋषभस्य जगुः कृतानि
पुण्यानि तत्कररुहस्पर्शप्रमोदाः ॥२२॥

गोप्यः, स्फुरत्पुरटकुण्डलकुन्तलत्विड्गण्डश्रिया, सुधितहास-निरीक्षणेन, मानम्, दधत्यः, ऋषभस्य, जगुः, कृतानि, पुण्यानि, तत्कररुह-स्पर्शप्रमोदाः ॥२२॥

तत्कररुह-	उन (भगवान्
स्पर्श-	श्रीकृष्ण)के नख-
प्रमोदाः	स्पर्शसे प्रमुदित हुई
गोप्यः	गोपियाँ
स्फुरत्पुरट-	झिलमिलाते हुए
कुण्डल-	सुवर्णमय कुण्डलों-
कुन्तल-	की आभासे मण्डित
त्विड्गण्ड-	और घुँघराली
श्रिया	अलकोंसे सुशोभित
	कपोलोंकी सुन्दरतासे
	(तथा)
सुधितहास-	सुधा-मधुर
निरीक्षणेन	मुसकानसे युक्त
	कटाक्षोंसे
मानम्	सम्मान
दधत्यः	करती हुई
ऋषभस्य	(उन) पुरुषश्रेष्ठके
पुण्यानि	पावन
कृतानि	चरित्रोंको
जगुः	गाने लगीं ॥२२॥

भगवान् श्यामसुन्दरके कर-कमलों और नखोंके स्पर्शसे गोपियाँ प्रमुदित हो गयीं। उन्होंने अपने कपोलोंकी सुन्दरतासे, जिनपर झिल-मिलाते हुए सुवर्णमय कुण्डलोंकी आभा छिटक रही थी तथा घुँघराले केशोंकी लटें लहरा रही थीं एवं अपनी सुधामयी मधुर मुसकानसे युक्त प्रेममयी चितवनसे उन पुरुषोत्तम भगवान्का सम्मान किया और फिर वे उनकी परमपवित्र प्रेमसुधामयी लीलाओंका गान करने लगीं ॥२२॥

ताभिर्युतः श्रममपोहितुमङ्गसङ्ग-
घृष्टस्रजः स कुचकुंकुमरञ्जितायाः ।
गन्धर्वपालिभिरनुद्रुत आविशद् वाः
श्रान्तो गजीभिरिभराडिव भिन्नसेतुः ॥२३॥

ताभिः, युतः, श्रमम्, अपोहितुम्, अङ्गसङ्गघृष्टस्रजः, सः, कुचकुंकुमरञ्जितायाः, गन्धर्वपालिभिः, अनुद्रुतः, आविशत्, वाः, श्रान्तः, गजीभिः, इभराट्, इव, भिन्नसेतुः ॥२३॥

श्रान्तः	(इसके बाद) थके हुए
सः	वे (श्रीकृष्ण)
भिन्नसेतुः	लोक और वेदकी मर्यादाको तोड़कर
श्रमम्	अपनी थकानको
अपोहितुम्	दूर करनेके लिये
ताभिः	उन (गोपियों)के
युतः	साथ
वाः	(श्रीयमुनाजीके) जलमें
आविशत्	घुस गये
इभराट् इव	ठीक जिस प्रकार गजराज
गजीभिः	हथिनियोंके साथ बाँधको तोड़कर जलमें घुस जाय)
कुचकुंकुमरञ्जितायाः	उस समय उन व्रजबालाओंके कुचोंपर लेप किये हुए केसर से रँगी हुई (तथा)
अङ्गसङ्गघृष्टस्रजः	उनके अंगोंकी रगड़से मर्दित वनमालासे आकृष्ट
गन्धर्वपालिभिः	एवं गन्धर्वपतियोंके समान गान करते हुए भ्रमर
अनुद्रुतः	उनका पीछा कर रहे थे ॥२३॥

तदनन्तर जैसे विलास-क्रियासे थका हुआ गजराज बाँधको तोड़ता हुआ हथिनियोंके साथ जलमें प्रवेश करके विविध प्रकारसे क्रीड़ा करता है, वैसे ही थके हुए भगवान् श्रीकृष्ण लोक और वेदकी मर्यादाका भंग करके अपनी थकानको दूर करने के लिये उन गोप-सुन्दरियोंको लेकर श्रीयमुनाजीके जलमें घुस गये। उस समय भगवान्‌के गलेकी उस वनमालासे, जो गोप-सुन्दरियोंके अंगोंकी रगड़से कुछ मसली गयी थी और जो उनके वक्षःस्थलके केसरसे केसरी रंगकी हो रही थी, खिंचकर भ्रमरोंके दल-के-दल उनके पीछे-पीछे मधुर गुंजार करते हुए उड़े आ रहे थे, मानो गन्धर्वगण उनकी लीलाओंका सुमधुर गान करते हुए पीछे-पीछे चल रहे हों ॥२३॥

सोऽम्भस्यलं युवतिभिः परिषिच्यमानः
प्रेम्णेक्षितः प्रहसतीभिरितस्ततोऽङ्ग ।

वैमानिकैः कुसुमवर्षिभिरीड्यमानो
रेमे स्वयं स्वरतिरत्र गजेन्द्रलीलः ॥२४॥

सः, अस्भसि, अलम्, युवतिभिः, परिषिच्यमानः, प्रेम्णा, ईक्षितः, प्रहसतीभिः, इतः, ततः, अङ्ग, वैमानिकैः, कुसुमवर्षिभिः, ईड्यमानः, रेमे, स्वयम्, स्वरतिः, अत्र, गजेन्द्रलीलः ॥२४॥

अङ्ग	हे तात (परीक्षित्)	**परिषिच्यमानः**	जल उलीचने लगीं
अम्भसि	(श्रीयमुनाजीके) जलमें	**वैमानिकैः**	(तथा) विमानोंपर बैठे हुए देवता
युवतिभिः	व्रजयुवतियाँ	**कुसुमवर्षिभिः**	फूल बरसाते हुए
प्रेम्णा	प्रेम (भरी चितवन) से	**ईड्यमानः**	उनकी स्तुति करने लगे (इस प्रकार)
ईक्षितः	उनकी ओर देखती हुई	**स्वयम्**	साक्षात्
प्रहसतीभिः	खिलखिलाकर हँसती हुई	**स्वरतिः**	आत्मामें रमण करनेवाले (भगवान्)
इतः ततः	सब ओरसे	**अत्र**	वहाँ
सः	उन (भगवान् श्रीकृष्ण) पर	**गजेन्द्रलीलः**	गजराजकी-सी लीला करते हुए
अलम्	खूब	**रेमे**	(जल-) विहार करने लगे ॥२४॥

परीक्षित् ! यमुनाजीके जलमें वे व्रजतरुणियाँ प्रेमयमी चितवनसे श्रीकृष्णकी ओर देखती हुई तथा खिलखिलाकर हँसती हुई उनपर चारों ओरसे खूब जल उलीचने लगीं। इस दृश्यको देखकर विमानोंपर बैठे हुए देवता फूल बरसाकर उनकी स्तुति करने लगे। इस प्रकार अपने-आपमें ही नित्य रमण करनेवाले भगवान् स्वयं गजराजकी भाँति यमुनाजलमें गोपांगनाओंके साथ जल-विहारकी लीला करने लगे ॥२४॥

ततश्च कृष्णोपवने जलस्थल-
प्रसूनगन्धानिलजुष्टदिक्तटे ।

चचार भृङ्गप्रमदागणवृतो
यथा मदच्युद् द्विरदः करेणुभिः ॥२५॥

ततः, च, कृष्णोपवने, जलस्थलप्रसूनगन्धानिलजुष्टदिक्तटे, चचार, भृङ्गप्रमदागणावृतः, यथा, मदच्युत्, द्विरदः, करेणुभिः ॥२५॥

च	और	**चचार**	(इस प्रकार) विचरने लगे
ततः	फिर		
भृङ्गप्रमदा-	भौंरों और युवतियों-	**यथा**	जैसे
गणावृतः	के समूहसे घिरे हुए (भगवान्)	**मदच्युत्**	मद चुवाता हुआ
		द्विरदः	गजराज
कृष्णोपवने	यमुनातटके उस उपवनमें	**करेणुभिः**	हथिनियोंके साथ (घूम रहा हो) ॥२५॥
जलस्थल-	जहाँ सब ओर जल		
प्रसूनगन्धा-	और भूमिपर खिले		
निलजुष्ट-	हुए पुष्पोंकी गन्धसे		
दिक्तटे	सुवासित वायु बह रही थी,		

इसके पश्चात् यमुनाजीसे निकलकर भ्रमरों तथा व्रजयुवतियोंसे घिरे हुए भगवान् उस रमणीय उपवनमें गये, जहाँ सब ओर जल और स्थलमें सुन्दर सुगन्धयुक्त पुष्प खिले हुए थे और उनकी सुगन्धका प्रसार करती हुई मन्द मनोहर वायु चल रही थी। उस उपवनमें भगवान् उसी प्रकार विचरने लगे, जैसे मद चुवाता हुआ गजराज हथिनियोंके साथ घूम रहा हो ॥२५॥

एवं शशाङ्कांशुविराजिता निशाः
स सत्यकामोऽनुरताबलागणः।
सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः
सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः ॥२६॥

एवम्, शशांकांशुविराजिताः, निशाः, सः, सत्यकामः, अनुरता-बलागणः, सिषेवे, आत्मनि, अवरुद्धसौरतः, सर्वाः, शरत्काव्यकथारसाश्रयाः
॥२६॥

शशाङ्कांशु-	चन्द्रमाकी
विराजिताः	किरणोंसे सुशोभित
शरत्काव्य-	काव्योंमें वर्णित
कथारसा-	शरत्कालोचित
श्रयाः	सम्पूर्ण रस-सामग्रियोंसे युक्त
सर्वाः	(उन) सब
निशाः	रात्रियोंमें
सत्यकामः	सत्यसंकल्प (एवं)
अवरुद्धसौरतः	अस्खलितवीर्य
सः	उन (भगवान्)ने
आत्मनि	अपने प्रति अनुरक्त
अनुरता-	उन गोपबालाओंके
बलागणः	साथ
एवम्	इस (पूर्वोक्त) प्रकार
सिषेवे	विहार किया

॥२६॥

शरद्की वह रात्रि अनेक रात्रियोंसे समन्वित होकर बड़ी ही शोभा पा रही थी। चन्द्रमाकी किरण-ज्योत्स्ना सब ओर छिटक रही थी। काव्योंमें शरत्कालकी जिन रस-सामग्रियोंका विवेचन किया गया है, वे सम्पूर्ण उसमें विद्यमान थीं। उस रात्रिमें सत्यसंकल्प भगवान श्यामसुन्दरने अपनी परमप्रेयसी निजस्वरूपा चिन्मयी गोपरमणियोंके साथ चिन्मय लीला-विहार किया। भगवान्‌की सत्तासे ही कामदेवमें सत्ता आती है, इसलिये कामदेवका उनपर कोई भी वश नहीं चल सकता। अतएव वह यहाँ भी सर्वदा पराजित रहा। भगवान सर्वथा अस्खलितवीर्य बने रहे
॥२६॥

राजोवाच

संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च।
अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः ॥२७॥

स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्ताभिरक्षिता।
प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् ॥२८॥

आप्तकामो यदुपतिः कृतवान् वै जुगुप्सितम्।
किमभिप्राय एतं नः संशयं छिन्धि सुव्रत ॥२९॥

संस्थापनाय, धर्मस्य, प्रशमाय, इतरस्य, च, अवतीर्णः, हि, भगवान्, अंशेन, जगदीश्वरः सः, कथम्, धर्मसेतूनाम्, वक्ता, कर्ता, अभिरक्षिता, प्रतीपम्, आचरत्, ब्रह्मन्, परदाराभिमर्शनम्, आप्तकामः, यदुपतिः, कृतवान्, वै, जुगुप्सितम्, किमभिप्रायः, एतत्, नः, संशयम्, छिन्धि, सुव्रत ॥२७-२९॥

जगदीश्वरः	जगत्के स्वामी
भगवान्	भगवान् श्रीकृष्णने
धर्मस्य	धर्मकी
संस्थापनाय	सुदृढ़ स्थापनाके लिये
च	तथा
इतरस्य	अधर्मके
प्रशमाय	विनाशके लिये
हि	ही
अंशेन	अपने अंश (बलरामजी) के साथ
अवतीर्णः	अवतार लिया था
ब्रह्मन्	हे विप्रवर !
धर्मसेतूनाम्	धर्मकी मर्यादाओंके
वक्ता	उपदेशक
कर्ता	रचनेवाले (तथा)
अभिरक्षिता	पालक (होकर) भी
सः	उन (भगवान् श्रीकृष्ण)ने
परदाराभिमर्शनम्	परस्त्रियोंके अंग-स्पर्श (-जैसा)
प्रतीपम्	धर्मविरुद्ध आचरण
कथम्	कैसे, क्योंकर
आचरत्	किया
आप्तकामः	पूर्णकाम
यदुपतिः	यादवपति भगवान् श्रीकृष्णने
वै	ऐसा
जुगुप्सितम्	गर्हित (कर्म)
किमभिप्रायः	किस अभिप्रायसे
कृतवान्	किया
सुव्रत	हे उत्तम निष्ठावाले मुनिवर !
नः	हमारे
एतत्	इस
संशयम्	संदेहको
छिन्धि	दूर कीजिये ॥२८-२९॥

इसी बीचमें राजा परीक्षित् भगवान्‌की चिन्मयी लीलाका रहस्य पूरी तरहसे न समझनेके कारण लौकिकभावसे शङ्का करते हुए श्रीशुकदेवजीसे प्रश्न कर बैठे। उन्होंने कहा—

भगवन् ! भगवान् श्रीकृष्ण तो सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं, उन्होंने अपने अंश श्रीबलरामजीके साथ धर्मकी स्थापना और अधर्मके विनाशके लिये ही परिपूर्णरूपमें अवतार ग्रहण किया था। ब्रह्मन् ! वे स्वयं धर्म-

मर्यादाओंकी रचना करनेवाले, उनकी रक्षा करनेवाले तथा उपदेशक थे। फिर, उन भगवान्‌ने स्वयं धर्मके विपरीत परस्त्रियोंका अंगस्पर्श कैसे और क्यों किया ? भगवान् श्रीकृष्ण तो नित्य पूर्णकाम हैं, उनके मनमें कभी कोई कामना जागती ही नहीं; फिर यादवेन्द्र भगवान्‌ने किस अभिप्रायसे ऐसा निन्दनीय कर्म किया ? उत्तम निष्ठावाले श्रीशुकदेवजी ! आप कृपा-पूर्वक मेरे इस संदेहको दूर कीजिये ॥२७-२९॥

श्रीशुक उवाच

धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम् ।
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥३०॥

धर्मव्यतिक्रमः, दृष्टः, ईश्वराणाम्, च, साहसम्, तेजीयसाम् न, दोषाय, वह्नेः, सर्वभुजः, यथा ॥३०॥

ईश्वराणाम्	ईश्वरकोटिके समर्थ देवताओं द्वारा	**दोषाय**	दोषकी बात
		न	नहीं (मानी जाती)
धर्मव्यतिक्रमः	धर्मका उल्लंघन	**यथा**	जैसे
च	तथा	**सर्वभुजः**	सब कुछ भक्षण करनेवाले
साहसम्	साहसके कार्य (होते)		
दृष्टः	देखे गये हैं	**वह्नेः**	अग्निका (यह कार्य दोषयुक्त नहीं होता) ॥३०॥
तेजीयसाम्	परन्तु तेजस्वी देवोंकी (ऐसी चेष्टा)		

परीक्षित्‌के इस संदेहयुक्त प्रश्नसे विरक्तशिरोमणि शुकदेवजीके द्वारा प्रवाहित लीलारसका प्रवाह रुक गया और वे परीक्षित्‌का सन्देह दूर करनेके लिये लौकिक युक्तिपूर्ण वचन बोले—

परीक्षित् ! कर्मकी अधीनतासे मुक्त ईश्वरकोटिके समर्थ महान् तेजस्वी देवताओं द्वारा कभी-कभी धर्मका उल्लंघन तथा ऐसे परम साहसके कार्य होते देखे जाते हैं। परन्तु उन कार्योंसे उन तेजस्वी देवताओंका कोई दोष नहीं माना जाता। जैसे अग्नि शवदेहादिपर्यन्त सब कुछ खा जाता है, परन्तु उसके उस कार्यको कोई भी दोषयुक्त नहीं मानता ॥३०॥

नैतत् समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः ।
विनश्यत्याचरन् मौढ्याद्यथारुद्रोऽब्धिजं विषम् ॥३१॥

न, एतत्, समाचरेत्, जातु, मनसा, अपि, हि, अनीश्वरः, विनश्यति, आचरन्, मौढ्यात्, यथा, अरुद्रः, अब्धिजम्, विषम् ॥३१॥

अनीश्वरः	(किंतु) जो समर्थ नहीं है (जीवभावमें स्थित है) वह	**आचरन्**	इस प्रकारका आचरण करनेवाला
मनसा	मनसे	**विनश्यति**	(वैसे ही) नष्ट हो जायगा
अपि	भी (शरीरसे तो बात ही क्या)	**यथा**	जैसे
जातु	कदापि	**अरुद्रः**	जो शिवजीके समान समर्थ नहीं है, वह (उनकी देखा-देखी)
एतत्	ऐसी (धर्मविरुद्ध) चेष्टा	**अब्धिजम्**	समुद्रसे उत्पन्न हुए
न	नहीं	**विषम्**	विषको (पीने जाकर नष्ट हो जायगा) ॥३१॥
समाचरेत्	करे;		
हि	क्योंकि		
मौढ्यात्	मूर्खतावश		

परन्तु जो अनीश्वर हैं, समर्थ नहीं हैं, अजितेन्द्रिय तथा देहाभिमानी हैं, उन्हें, शरीरसे तो दूर रहा, कभी मनसे भी ऐसी चेष्टा नहीं करनी चाहिये। यदि कोई मूर्खतावश ईश्वरकी इस लीलाका अनुकरण करके इस प्रकारका आचरण कर बैठेगा तो वह नष्ट—पतित हो जायगा। भगवान् शिवजीने समुद्रसे उत्पन्न हलाहल विष पी लिया था; पर उनकी देखा-देखी दूसरा कोई पियेगा तो वह निश्चय ही जलकर भस्म हो जायगा ॥३१॥

ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित् ।
तेषां यत् स्ववचोयुक्तं बुद्धिमांस्तत्समाचरेत् ॥३२॥

ईश्वराणाम्, वचः, सत्यम्, तथा, एव, आचरितम्, क्वचित्, तेषाम्, यत्, स्ववचोयुक्तम्, बुद्धिमान्, तत्, समाचरेत् ॥३२॥

ईश्वराणाम्	समर्थ देवताओंका	**तेषाम्**	उनका
वचः	वचन (आदेश)	**यत्**	जो (आचरण)
सत्यम्	यथार्थ (पालनीय) होता है	**स्ववचोयुक्तम्**	उनके अपने उपदेश-के अनुकूल हो
तथा एव	उसी प्रकार	**तत्**	उसीका
क्वचित्	कहीं-कहीं	**बुद्धिमान्**	बुद्धिमान् पुरुषको
आचरितम्	आचरण (भी आदर्श) होता है	**समाचरेत्**	अनुकरण करना चाहिये ॥३२॥

इसलिये श्रीशंकरके सदृश समर्थ देवताओंके वचनोंका ही अधिकारानुसार यथार्थ रूपसे पालन करना चाहिये, उनके स्वच्छन्द आचरणोंका नहीं। कहीं-कहीं उनके आचरणोंका भी अनुकरण किया जा सकता है, परन्तु बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि उनके उसी आचरणका अनुकरण करे, जो उनके उपदेशके सर्वथा अनुकूल हो ॥३२॥

कुशलाचरितेनैषामिह स्वार्थो न विद्यते ।
विपर्ययेण वानर्थो निरहंकारिणां प्रभो ॥३३॥

कुशलाचरितेन, एषाम्, इह, स्वार्थः, न, विद्यते, विपर्ययेण, वा, अनर्थः, निरहंकारिणाम्, प्रभो ॥३३॥

प्रभो	हे राजन् !	**विपर्ययेण**	विपरीत (लोक-दृष्टिमें अशुभ) आचरणसे
इह	इस संसारमें	**अनर्थः**	(कोई) हानि नहीं होती (क्योंकि ये लाभ हानि तथा शुभ-अशुभसे ऊपर उठे रहते हैं) ॥३३॥
निरहंकारिणाम्	अहंकारशून्य		
एषाम्	इन लोगोंका		
कुशलाचरितेन	शुभकर्मसे (तो)		
स्वार्थः	(कोई) अपना लाभ		
न	नहीं		
विद्यते	है		
वा	अथवा		

राजा परीक्षित् ! इस संसारमें ऐसे समर्थ ईश्वर सर्वथा अहंकारशून्य होते हैं। शुभ कर्म करनेसे उनका कोई स्वार्थसाधन—लाभ नहीं होता

और उसके विपरीत लोकदृष्टिमें अशुभ कर्मसे उनकी कोई हानि नहीं होती। वे स्वार्थ या अनर्थ अर्थात् लाभ-हानि और शुभ-अशुभसे ऊपर उठे होते हैं ॥३३॥

किमुताखिलसत्त्वानां तिर्यङ्मर्त्यदिवौकसाम् ।
ईशितुश्चेशितव्यानां कुशलाकुशलान्वयः ॥३४॥

किम्, उत, अखिलसत्त्वानाम्, तिर्यङ्मर्त्यदिवौकसाम्, ईशितुः, च, ईशितव्यानाम्, कुशलाकुशलान्वयः ॥३४॥

च	फिर	**सत्त्वानाम्**	जीवोंके
तिर्यङ्मर्त्य-दिवौकसाम्	पशु-पक्षी, कीट-पतंगादि तिर्यक् योनियोंके जीवों, मनुष्यों तथा देवताओं (आदि)	**ईशितुः**	(एक मात्र) शासक (प्रभु श्रीकृष्ण) का
		उत	तो
ईशि-	शासन	**कुशला-**	शुभ एवं अशुभके
तव्यानाम्	करनेयोग्य	**कुशला-**	साथ (किसी)
अखिल-	समस्त	**न्वयः**	प्रकारका) सम्बन्ध
		किम्	हो ही कैसे सकता है ॥३४॥

यह तो ईश्वर कोटिके समर्थ देवताओं तथा पुरुषोंकी बात है। भगवान् श्रीकृष्ण तो पशु-पक्षी, कीट-पतंग, मनुष्य-देवता आदि समस्त चराचर जीवोंके एकमात्र नियन्ता—शासक प्रभु, सर्वलोक महेश्वर हैं। उनके साथ किसी लौकिक शुभ और अशुभसे किसी भी प्रकारका सम्बन्ध हो ही कैसे सकता है ॥३४॥

यत्पादपंकजपरागनिषेवतृप्ता
योगप्रभावविधुताखिलकर्मबन्धाः ।
स्वैरं चरन्ति मुनयोऽपि न नह्यमाना-
स्तस्येच्छयाऽऽत्तवपुषः कुत एव बन्धः ॥३५॥

यत्पादपंकजपरागनिषेवतृप्ताः, योगप्रभावविधुताखिलकर्मबन्धाः, स्वैरम्, चरन्ति, मुनयः, अपि, न, नह्यमानाः, तस्य, इच्छया, आत्तवपुषः, कुतः, एव, बन्धः ॥३५॥

यत्पादपंकज-	जिनके चरण-कमलोंकी रजके	**चरन्ति**	विचरते हैं (किसी प्रकारका नियन्त्रण नहीं मानते)
जपराग-			
निषेवतृप्ताः	सेवनसे पूर्णकाम (भक्तजन)	**इच्छया**	अपनी इच्छासे—लीलासे ही
योगप्रभाव-	अथवा योग साधनके		
विधुताखिल	प्रभावसे जिनके सारे	**आत्तवपुषः**	देह धारण किये हुए
कर्मबन्धाः	कर्मबन्धन टूट गये हैं;	**तस्य**	उन (पूर्ण पुरुषोत्तम कर्तुं अकर्तुम् अन्यथाकर्तुम् समर्थ) भगवान्‌पर
मुनयः अपि	ऐसे योगिजन भी		
न नह्यमानाः	विधि-निषेधरूप सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त होकर	**बन्धः**	(किसी प्रकारका) बन्धन
		कुतः एव	हो ही कैसे सकता है ॥३५॥
स्वैरम्	स्वच्छन्दता पूर्वक		

जिनके चरण-कमलोंकी रजका सेवन करके भक्तजन पूर्णकाम हो जाते हैं, जिनके साथ मनका योग हो जानेके प्रभावसे योगी मुनिजनोंके समस्त कर्मबन्धन कट जाते हैं, वे किसी भी विधि-निषेधको न मानकर स्वेच्छानुसार नियन्त्रणरहित स्वच्छन्द आचरण करते हुए भी बन्धनसे सर्वथा मुक्त रहते हैं, वे ही साक्षात् भगवान्, जो कर्मबन्धनसे पांञ्चभौतिक देहको प्राप्त न होकर अपनी लीलासे ही सच्चिदानन्दमय विग्रह रूपमें प्रकट हुए हैं, उन कर्तुं-अकर्तुं-अन्यथा कर्तुं समर्थ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्‌में किसी प्रकारके कर्मबन्धनकी कल्पना ही कैसे हो सकती है ॥३५॥

गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम् ।
योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्षः क्रीडनेनेह देहभाक् ॥३६॥

गोपीनाम्, तत्पतीनाम्, च, सर्वेषाम्, एव, देहिनाम्, यः, अन्तः, चरति, सः, अध्यक्षः, क्रीडनेन, इह, देहभाक् ॥३६॥

यः	जो (भगवान्)	**च**	तथा
गोपीनाम्	गोपियोंके	**सर्वेषाम् एव**	सभी
तत्पतीनाम्	उनके पतियोंके	**देहिनाम्**	प्राणियोंके

अन्तः	भीतर (हृदयमें)	**इह**	इस (भूलोक) में
चरित	(अन्तर्यामीरूपसे) विहार करते हैं	**क्रीडनेन**	लीलासे
सः	वे	**देहभाक्**	शरीर धारण करके प्रकट हुए हैं ॥३६॥
अध्यक्षः	सर्वसाक्षी (परमेश्वर ही)		

जो भगवान् गोपियोंके, उनके पतियोंके तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें अन्तर्यामी आत्मारूपसे विहार करते हैं, वे सबके साक्षी परमपति परमेश्वर ही दिव्य चिन्मय देह धारण करके यहाँ लीला कर रहे हैं ॥३६॥

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः ।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥३७॥

अनुग्रहाय, भूतानाम्, मानुषम्, देहम् आस्थितः, भजते, तादृशीः, क्रीडाः, याः, श्रुत्वा, तत्परः, भवेत् ॥३७॥

भूतानाम्	जीवोंपर	**क्रीडाः**	लीलाएँ
अनुग्रहाय	कृपा करनेके लिये (ही)	**भजते**	करते हैं
मानुषम्	मनुष्यकी (सी)	**याः**	जिन्हें
देहम्	देह	**श्रुत्वा**	सुनकर (मनुष्य)
आस्थितः	धारण करके (भगवान्)	**तत्परः**	उन (भगवान्) के परायण
तादृशीः	वैसी	**भवेत्**	हो जाता है ॥३७॥

जीवोंपर कृपा करनेके लिये ही भगवान् अपने सच्चिदानन्द घनस्वरूपको मनुष्यदेहके रूपमें प्रकट करके वैसी ही लीलाएँ करते हैं, जिन्हें सुनकर मनुष्य उन भगवान्‌की इस दिव्य भावमयी लीलामें तनिक भी संदेह नहीं करना चाहिये ॥३७॥

नासूयन् खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायया ।
मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान् स्वान् स्वान् दारान् व्रजौकसः ३८

न, असूयन्, खलु, कृष्णाय, मोहिताः, तस्य, मायया, मन्यमानाः, स्वपार्श्वस्थान्, स्वान्, स्वान्, दारान्, व्रजौकसः ॥३८॥

व्रजौकसः	(इधर) व्रजवासी गोपोंने	**कृष्णाय**	भगवान् श्रीकृष्णके प्रति
स्वान्	अपनी	**खलु**	तनिक भी
स्वान्	अपनी	**न असूयन्**	दोष दृष्टि नहीं की
दारान्	पत्नियोंको	**तस्य**	(क्योंकि वे) उनकी
स्वपार्श्व-	अपने	**मायया**	मायासे
स्थान्	समीपवर्ती	**मोहिताः**	मोहित हो रहे थे ॥३८॥
मन्यमानाः	समझकर		

यह भावमयी दिव्य लीला थी, जिसके कारण व्रजवासी गोपोंने भगवान्‌की योगमायासे मोहित होकर ऐसा अनुभव किया कि हमारी पत्नियाँ हमारे पास ही सोयी हैं और इससे उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके प्रति तनिक भी दोषदृष्टि नहीं की ॥३८॥

ब्रह्मरात्र उपावृत्ते वासुदेवानुमोदिताः ।
अनिच्छन्त्यो ययुर्गोप्यः स्वगृहान् भगवत्प्रियाः ॥३९॥

ब्रह्मरात्रे, उपावृत्ते, वासुदेवानुमोदिताः, अनिच्छन्त्यः, ययुः, गोप्यः, स्वगृहान्, भगवत्प्रियाः ॥३९॥

ब्रह्मरात्रे	फिर ब्राह्ममुहूर्तके	**वासुदेवानु-**	भगवान्‌की आज्ञा
उपावृत्ते	आनेपर	**मोहिताः**	पाकर
भगवत्प्रियाः	भगवान् श्रीकृष्णकी प्यारी	**अनिच्छन्त्यः**	न चाहनेपर भी
गोप्यः	गोपियाँ	**स्वगृहान्**	अपने-अपने घरोंको
		ययुः	चली गयीं ॥३९॥

फिर जब ब्राह्ममुहूर्त आ गया, तब भगवान्‌की अत्यन्त प्यारी वे गोपसुन्दरियाँ अपने-अपने घरोंको लौट गयीं। यद्यपि उनकी लौटकर जानेकी तनिक भी इच्छा नहीं थी, तथापि वे अपनी प्रत्येक क्रियासे भगवान् श्रीकृष्णको ही सुखी करना चाहती थीं, उनमें श्रीकृष्ण-सुखसे पृथक् किसी निजसुखकी कामना तो थी नहीं, इसलिये वे भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञा होते ही चली गयीं ॥३९॥

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद्यः ।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥४०॥

विक्रीडितम्, व्रजवधूभिः, इदम्, च, विष्णोः, श्रद्धान्वितः, अनुशृणुयात्, अथ, वर्णयेत्, यः, भक्तिम्, पराम्, भगवति, प्रतिलभ्य, कामम्, हृद्रोगम्, आशु, अपहिनोति, अचिरेण, धीरः ॥४०॥

व्रजवधूभिः	व्रजांगनाओंके साथ	भगवति	(उन) भगवान् श्रीकृष्णकी
विष्णोः	भगवान् श्रीकृष्णकी	पराम्	सर्वश्रेष्ठप्रेमस्वरूपा
इदम्	इस	भक्तिम्	भक्तिको
विक्रीडितम्	रासक्रीडा (के वर्णन) को	प्रतिलभ्य	प्राप्तकर
यः	जो	हृद्रोगम्	हृदयके विकाररूप (लौकिक)
श्रद्धान्वितः	श्रद्धासे युक्त (होकर)	कामम्	कामसे
अनुशृणुयात्	बार-बार सुनेगा	अचिरेण	अविलम्ब
अथ च	अथवा	अपहिनोति	मुक्त हो जायगा ॥४०॥
वर्णयेत्	कहेगा		
धीरः	(वह) धीर पुरुष		
आशु	शीघ्र ही		

जो धीर पुरुष व्रजललनाओंके साथ भगवान् श्रीकृष्णकी इस दिव्य भावमय चिन्मय रासक्रीडाका श्रद्धाके साथ बार-बार श्रवण और वर्णन करेगा, वह शीघ्र ही भगवान् श्रीकृष्णकी पराभक्तिको—सर्वश्रेष्ठ प्रेम-स्वरूपा भक्तिको प्राप्त हो जायगा तथा तुरन्त हृदयके विकाररूप लौकिक कामसे सर्वथा मुक्त हो जायगा ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे
पूर्वार्धे रासक्रीडावर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

एकदा देवयात्रायां गोपाला जातकौतुकाः ।
अनोभिरनडुद्युक्तैः प्रययुस्तेऽम्बिकावनम् ॥१॥

एकदा देवयात्रायां गोपाला जातकौतुकाः अनोभिः अनडुद् युक्तैः प्रययुः ते अम्बिका वनम् ॥१॥

एकदा	एक बार	अनडुद् युक्तैः	बैलोंसे जुते हुए
देवयात्रायां	देवयात्रा (शिवरात्रि-की यात्रा) के समय	अनोभिः	छकड़ोंके द्वारा
		ते अम्बिका	उन्होंने वे अम्बिका
गोपाला	गोपगण	वनं	वन
जातकौतुकाः	कौतूहल उत्पन्न होनेसे	प्रययुः	चल पड़े ॥१॥

तत्र स्नात्वा सरस्वत्यां देवं पशुपतिं विभुम् ।
आनर्चुरर्हणैर्भक्त्या देवीं च नृपतेऽम्बिकाम् ॥२॥

तत्र स्नात्वा सरस्वत्यां देवं पशुपतिं विभुं आनर्चुः अर्हणैः भक्त्या देवीं च नृपते अम्बिकाम् ॥२॥

नृपते	राजन् !	विभुं	प्रभु
तत्र सरस्वत्यां	वहां सरस्वतीमें	पशुपतिं देवं	भगवान् पशुपतिकी
स्नात्वा	स्नान करके	च	तथा
अर्हणैः	पूजा सामग्रीसे	अम्बिकां देवीं	अम्बिकादेवी की
भक्त्या	भक्ति पूर्वक	आनर्चुः	पूजा की ॥२॥

गावो हिरण्यं वासांसि मधु मध्वन्नमाहृताः ।
ब्राह्मणेभ्यो ददुः सर्वे देवो नः प्रीयतामिति ॥३॥

गावः हिरण्यं वासांसि मधु मधु अन्नं आदृताः ब्राह्मणेभ्यः ददुः सर्वे देवः नः प्रीयतां इति ॥३॥

देवः नः	महादेवजी हमपर	**गावः हिरण्यं**	गायें, सोना,
प्रीयतां	प्रसन्न हों	**वासांसि मधु**	वस्त्र, शहद,
इति	इस संकल्पसे	**मधु अन्नं**	मधुर अन्न
सर्वे ब्राह्मणेभ्यः	सबने ब्राह्मणोंको	**ददुः**	दिया ॥३॥
आदृताः	आदर पूर्वक		

ऊषुः सरस्वतीतीरे जलं प्राश्य धृतव्रताः ।
रजनीं तां महाभागा नन्दसुनन्दकादयः ॥४॥

ऊषुः सरस्वती तीरे जलं प्राश्य धृतव्रताः रजनीं तां महाभागा नन्द सुनन्दक आदयः ॥४॥

धृतव्रताः	व्रत किए हुए	**जलं प्राश्य**	केवल जल पीकर
महाभागा	महान् भाग्यवान	**तां रजनीं**	उस रात
नन्द सुनन्दक	नन्द सुनन्द	**सरस्वती तीरे**	सरस्वतीके किनारे
आदयः	आदि	**ऊषुः**	सो गये ॥४॥

कश्चिन्महानहिस्तस्मिन् विपिनेऽतिबुभुक्षितः ।
यदृच्छयाऽऽगतो नन्दं शयानमुरगोऽग्रसीत् ॥५॥

कश्चित् महान् अहिः तस्मिन् विपिने अति बुभुक्षितः यदृच्छया आगतः नन्दं शयानं उरगः अग्रसीत् ॥५॥

तस्मिन् विपिने	उस वनमें	**यदृच्छया**	संयोगवश
अति बुभुक्षितः	बहुत भूखा	**उरगः आगतः**	उस सर्पने आकर
कश्चित्	कोई	**शयानं नन्दं**	सोते नन्दजीको
महान् अहिः	अजगर था,	**अग्रसीत्**	पकड़ लिया ॥५॥

स चुक्रोशाहिना ग्रस्तः कृष्ण कृष्ण महानयम् ।
सर्पो मां ग्रसते तात प्रसन्नं परिमोचय ॥६॥

स चुक्रोश अहिना ग्रस्तः कृष्ण कृष्ण महान् अयं सर्पः मां ग्रसते तात प्रपन्नं परिमोचय ॥६॥

अहिना ग्रस्तः	सर्प द्वारा पकड़े जानेपर	मां अयं	मुझे यह
		महान् सर्पः	अजगर
स चुक्रोश	वे चिल्लाने लगे—	ग्रसते	निगल रहा है
कृष्ण तात	'कृष्ण ! बेटा	प्रपन्नं	(मुझ) शरणागतको
कृष्ण	कृष्ण !	परिमोचय	छुड़ाओ' ॥६॥

तस्य चाक्रन्दितं श्रुत्वा गोपालाः सहसोत्थिताः ।
ग्रस्तं च दृष्ट्वा विभ्रान्ताः सर्पं विव्यधुरुल्मुकैः ॥७॥

तस्य च आक्रन्दितं श्रुत्वा गोपालाः सहसा उत्थिताः ग्रस्तं च दृष्ट्वा विभ्रान्ताः सर्पं विव्यधुः उल्मुकैः ॥७॥

तस्य	उनका	च	तथा
आक्रन्दितं	उच्च स्वरसे चिल्लाना	ग्रस्तं	(उनको) पकड़ा गया
		दृष्ट्वा	देखकर
श्रुत्वा च	सुनते ही	विभ्रान्ताः	घबड़ाकर
गोपालाः	गोप लोग	सर्पं	सर्पकी
सहसा	अचानक	उल्मुकैः	जलती लकड़ियोंसे
उत्थिताः	उठ गये	विव्यधुः	मारने लगे ॥७॥

अलातैर्दह्यमानोऽपि नामुञ्चत्तमुरङ्गमः ।
तमस्पृशत् पदाभ्येत्य भगवान् सात्वतां पतिः ॥८॥

अलातैः दह्यमानः अपि न अमुञ्चत् तं उरङ्गमः तं अस्पृशत् पदा अभ्येत्य भगवान् सात्वतां पतिः ॥८॥

अलातैः	जलती लकड़ियोंसे	भगवान्	भगवान्के पास
दह्यमानः अपि	जलाये जानेपर भी	अभ्येत्य	आकर
उरङ्गमः	सर्पने	तं	उसको (अपने)
तं न	उनको नहीं	पदा	चरणसे
अमुञ्चत्	छोड़ा तब	अस्पृशत्	छू दिया ॥८॥
सात्वतां पतिः	सत्पुरुषोंके स्वामी		

स वै भगवतः श्रीमत्पादस्पर्शहताशुभः ।
भेजे सर्पवपुर्हित्वा रूपं विद्याधरार्चितम् ॥९॥

स वै भगवतः श्रीमत् पादस्पर्श हत अशुभः भेजे सर्प वपुः हित्वा रूपं विद्याधर अर्चितम् ॥९॥

वै भगवतः	निश्चय भगवानके	हित्वा	त्यागकर
श्रीमत्	ऐश्वर्यशाली	स विद्याधर	उसने विद्याधरोंसे
पादस्पर्श	चरणोंके स्पर्शसे	अर्चितं रूपं	पूजित रूप
हत अशुभः	पाप नष्ट हो जानेसे	भेजे	प्राप्त कर लिया
सर्प वपुः	सर्प शरीर		॥९॥

तमपृच्छद्धृषीकेशः प्रणतं समुपस्थितम् ।
दीप्यमानेन वपुषा पुरुषं हेममालिनम् ॥१०॥

तं अपृच्छत् हृषीकेशः प्रणतं समुपस्थितं दीप्यमानेन वपुषा पुरुषं हेममालिनम् ॥१०॥

दीप्यमानने	ज्योतिमान	प्रणतं तं	प्रणाम करते उस
वपुषा	शररवाले	पुरुषं	पुरुषसे
हेममालिनं	स्वर्ण मालाधारी	हृषीकेशः	श्रीकृष्णने
समुपस्थितं	सम्मुख आकर	अपृच्छत्	पूछा ॥१०॥

को भवान् परया लक्ष्म्या रोचतेऽद्भुतदर्शनः ।
कथं जुगुप्सितामेतां गतिं वा प्रापितोऽवशः ॥११॥

कः भवान् परया लक्ष्म्या रोचते अद्भुत दर्शनः कथं जुगुप्सितां एतां गतिं वा प्रापितः अवशः ॥११॥

परया लक्ष्म्या	परम शोभासे	वा एतां	अथवा इस
रोचते	सुशोभित होते	जुगुप्सितां	निन्दित
अद्भुत	अद्भुत	गतिं अवशः	दशाको विवश होकर
दर्शनः	दीखनेवाले	कथं प्रापितः	कैसे पहुँचा दिये
भवान् कः	तुम कौन हो ?		गये ॥११॥

पुरुषोवाच*

अहं विद्याधरः कश्चित् सुदर्शन इति श्रुतः ।
श्रिया स्वरूपसम्पत्त्या विमानेनाचरं दिशः ॥१२॥

अहं विद्याधरः कश्चित् सुदर्शन इति श्रुतः श्रिया स्वरूप सम्पत्त्या विमानेन अचरं दिशः ॥१२॥

सुदर्शन	सुदर्शन	**सम्पत्त्या**	सम्पत्तिवान होकर
इति श्रुतः	इस नामसे प्रसिद्ध	**विमानेन**	विमान द्वारा
अहं कश्चित्	मैं कोई	**दिशः**	दिशाओंमें
विद्याधरः	विद्याधर था,	**अचरं**	घूमता था ॥१२॥
श्रिया स्वरूप	धन, सौन्दर्य,		

ऋषीन् विरूपानङ्गिरसः प्राहसं रूपदर्पितः ।
तैरिमां प्रापितो योनिं प्रलब्धैः स्वेन पाप्मना ॥१३॥

ऋषीन् विरूपान् अङ्गिरसः प्राहसं रूपदर्पितः तैः इमां प्रापितः योनिं प्रलब्धैः स्वेन पाप्मना ॥१३॥

अङ्गिरसः	अंगिरा गोत्रीय	**पाप्मना**	पापसे
विरूपान्	कुरूप	**प्रलब्धैः**	उपहास किये गये
ऋषीन्	ऋषियोंकी	**तैः इमां**	उन लोगों द्वारा इस
रूपदर्पितः	सौन्दर्यके घमण्डमें	**योनिं**	(अजगर) योनिमें
प्राहसं	(मैंने) हँसी उड़ाई	**प्रापितः**	पहुँचाया गया ॥१३॥
स्वेन	इस अपने ही		

शापो मेऽनुग्रहायैव कृतस्तैः करुणात्मभिः ।
यदहं लोकगुरुणा पदा स्पृष्टो हताशुभः ॥१४॥

शापः मे अनुग्रहाय एव कृतः तैः करुण आत्मभिः यत् अहं लोक गुरुणा पदा स्पृष्टः हत अशुभः ॥१४॥

---

* दूसरी प्रतियोंमें यहां 'सर्प उवाच' है; किन्तु बोलनेवाला तो अब सर्प रहा नहीं है ।

तैः करुण	उन दयालु	**यत् अहं**	जिससे मैं
आत्मभिः	हृदय (ऋषियों) द्वारा	**लोक**	सम्पूर्ण लोकोंके
मे	मुझपर	**गुरुणा**	गुरु (आप) द्वारा
अनुग्रहाय	कृपा करनेके लिए	**पदा स्पृष्टः**	चरण-स्पर्श देनेसे (मेरे)
एव	ही	**हत अशुभः**	अशुभ नष्ट हो गये ॥१४॥
शापः कृतः	शाप दिया गया		

तं त्वाहं भवभीतानां प्रपन्नानां भयापहम् ।
आपृच्छे शापनिर्मुक्तः पादस्पर्शादमीवहन् ॥१५॥

तं तु अहं भवभीतानां प्रपन्नानां भय अपहं आपृच्छे शापनिर्मुक्तः पादस्पर्शात् अमीवहन् ॥१५॥

भवभीतानां	संसार (जन्म-मृत्यु) से डरे हुए	**शापनिर्मुक्तः**	शापसे छूटा हुआ
प्रपन्नानां	शरणागतोंके	**अहं तु**	मैं तो
भय अपहं	भयको नष्ट करने-वाले (प्रभो)	**अमीवहन्**	अपने अमृतमय लोक-में जानेकी
पादस्पर्शात्	चरण-स्पर्शसे	**आपृच्छे**	अनुमति चाहता हूँ ॥१५॥
तं	उस		

प्रपन्नोऽस्मि महायोगिन् महापुरुष सत्पते ।
अनुजानीहि मां देव सर्वलोकेश्वरेश्वर ॥१६॥

प्रपन्नः अस्मि महायोगिन् महापुरुष सत्पते अनुजानीहि मां देव सर्व लोक ईश्वर ईश्वर ॥१६॥

महायोगिन्	योगेश्वर,	**ईश्वर देव**	स्वामी देव !
महापुरुष	पुरुषोत्तम,	**प्रपन्नः**	(मैं आपकी) शरण
सत्पते	सत्पुरुषोंके स्वामी,	**अस्मि**	हूँ
सर्व	समस्त	**मां**	मुझे
लोक ईश्वर	लोकपालोंके	**अनुजानीहि**	आज्ञा दीजिये ॥१६॥

ब्रह्मदण्डाद् विमुक्तोऽहं सद्यस्तेऽच्युत दर्शनात् ।
यन्नाम गृह्णन्नखिलान् श्रोतॄनात्मानमेव च ।
सद्यः पुनाति किं भूयस्तस्य स्पृष्टः पदा हि ते ॥१७॥

ब्रह्मदण्डात् विमुक्तः अहं सद्यः ते अच्युत दर्शनात् यत् नाम गृह्णन् अखिलान् श्रोतॄन् आत्मानं एव च सद्यः पुनाति किं भूयः तस्य स्पृष्टः पदा हि ते ॥१७॥

अच्युत	अच्युत !	**च आत्मानं**	तथा अपनेको
ते दर्शनात्	आपके दर्शनसे	**एव**	भी
अहं सद्यः	मैं तत्काल	**सद्यः**	तुरन्त
ब्रह्मदण्डात्	ब्राह्मणोंके दण्ड (शाप) से	**पुनाति**	पवित्र कर देता है
		तस्यते	उस आपके
विमुक्तः	छूट गया,	**पदा**	चरणोंसे
हि यत् नाम	क्योंकि जिनका नाम	**स्पृष्टः**	स्पर्श प्राप्त की
गृह्णन्	उच्चारण करनेसे	**भूयः किं**	फिर क्या बात ॥१७॥
अखिलान्	समस्त		
ओतॄन्	श्रोताओंको		

इत्यनुज्ञाप्य दाशार्हं परिक्रम्याभिवन्द्य च ।
सुदर्शनो दिवं यातः कृच्छ्रान्नन्दश्च मोचितः ॥१८॥

इति अनुज्ञाप्य दाशार्हं परिक्रम्य अभिवन्द्य च सुदर्शनः दिवं यातः कृच्छ्रात् नन्दः च मोचितः ॥१८॥

इति	इस प्रकार	**सुदर्शनः**	सुदर्शन
दाशार्हं	श्रीकृष्णकी	**दिवं यातः**	स्वर्ग चला गया
परिक्रम्य	परिक्रमा करके	**नन्दः**	तथा नन्दजी
अभिवन्द्य	प्रणाम करके	**कृच्छ्रात्**	सकटसे
च	तथा	**मोचितः**	छुड़ा दिये गये ॥१८॥
अनुज्ञाप्य	अनुमति लेकर		

निशाम्य कृष्णस्य तदात्मवैभवं
व्रजौकसो विस्मितचेतसस्ततः ।
समाप्य तस्मिन् नियमं पुनर्व्रजं
नृपाययुस्तत् कथयन्त आदृताः ॥१६॥

निशाम्य कृष्णस्य तत् आत्मवैभवं व्रजौकसः विस्मितचेतसः ततः समाप्य तस्मिन् नियमं पुनः व्रजं नृप आययुः तत् कथयन्त आदृताः ॥१६॥

नृप	राजन् !	नियमं	नियम
तत् कृष्णस्य	वह श्रीकृष्णका	समाप्य	पूरे करके
आत्मवैभवं	अपना ऐश्वर्य	आदृताः	आदर पूर्वक
निशाम्य	देखकर	तत्	उस (लीला) का
विस्मितचेतसः	विस्मित चित्त	कथयन्त	वर्णन करते
व्रजौकसः	व्रजवासियोंने	पुनः व्रजं	फिर व्रजमें
तस्मिन्	वहां के (पूजनादि)	आययुः	लौट आये ॥१६॥

कदाचिदथ गोविन्दो रामश्चाद्भुतविक्रमः ।
विजह्रतुर्वने रात्र्यां मध्यगौ व्रजयोषिताम् ॥२०॥

कदाचित् अथ गोविन्दः रामः च अद्भुत विक्रमः विजह्रतुः वने रात्र्यां मध्यगौ व्रजयोषिताम् ॥२०॥

अथ	तदनन्तर	रात्र्यां वने	रात्रिको वनमें
कदाचित्	किसी समय	व्रजयोषितां	व्रजस्त्रियोंके
गोविन्दः	गोविन्द	मध्यगौ	बीचमें चलते हुए
च अद्भुत	तथा अद्भुत	विजह्रतुः	क्रीड़ा कर रहे थे ॥२०॥
विक्रमः	पराक्रमी		
रामः	बलरामजी		

उपगीयमानौ ललितं स्त्रीजनैर्बद्धसौहृदैः ।
स्वलङ्कृतानुलिप्ताङ्गौ स्रग्विणौ बिरजोऽम्बरौ ॥२१॥

उपगीयमानौ ललितं स्त्रीजनैः बद्ध सौहृदैः स्वलङ्कृतौ अनुलिप्त अङ्गौ स्रग्विणौ विरजः अम्बरौ ॥२१॥

विरजः अम्बरौ	निर्मल वस्त्रधारी,	स्त्रीजनैः	स्त्रियोंके द्वारा
अङ्गौ	शरीरमें	ललितं	ललित स्वरमें
अनुलिप्त	अंगराग लगाये	उपगीयमानौ	उनका ही यश
स्वलङ्कृतौ	अपने आभूषण पहिने		गाया जा रहा था
स्रग्विणौ	मालाएँ पहिने		॥२१॥
बद्ध सौहृदैः	दृढ़ प्रेम करनेवाली		

निशामुखं मानयन्तावुदितोडुपतारकम् ।
मल्लिकागन्धमत्तालि जुष्टं कुमुदवायुना ॥२२॥

निशामुखं मानयन्तौ उदित उडुपतारकं मल्लिकागन्ध मत्त अलि जुष्टं कुमुद वायुना ॥२२॥

निशामुखं	सन्ध्याका समय था,	कुमुद जुष्टं	कुमुदिनीसे लगकर
उडुपतारकं	चन्द्रमा तथा तारे		आती
उदित	उदय हो गये थे	वायुना	वायु चल रही थी
अलि	भौंरे	मानयन्तौ	(इस वातावरणका)
मल्लिकागन्ध	चमेलीकी सुगन्धसे		सम्मान करते हुए
मत्त	मतवाले हो रहे थे,		॥२२॥

जगतुः सर्वभूतानां मनःश्रवणमङ्गलम् ।
तौ कल्पयन्तौ युगपत् स्वरमण्डलमूर्च्छितम् ॥२३॥

जगतुः सर्वभूतानां मनःश्रवण मङ्गलं तौ कल्पयन्तौ युगपत् स्वर मण्डल मूर्च्छितम् ॥२३॥

सर्वभूतानां	संसारके सब प्राणियोंके लिए	मूर्च्छितं	मूर्छनाओंको
		कल्पयन्तौ	व्यक्त करते हुए
मनःश्रवण	मन तथा कानोंके लिए	तौ युगपत्	वे दोनों भाई एक साथ
मङ्गलं	मंगल स्वरूप	जगतुः	आलाप लेते गाने
स्वरमंडल	स्वर समूहकी		लगे ॥२३॥

गोप्यस्तद्गीतमाकर्ण्य मूर्च्छिता नाविदन् नृप ।
स्रंसद्दुकूलमात्मानं स्रस्तकेशस्रजं ततः ॥२४॥

गोप्यः तत् गीतं आकर्ण्य मूर्च्छिता न अविदन् नृप स्रंसत् दुकूलं आत्मानं स्रस्त केशस्रजं ततः ॥२४॥

नृप	राजन् !	स्रंसत्	सरक गये तथा
तत् गीतं	उनका गायन	केशस्रजं	जूड़ेमें लगी मालाको
आकर्ण्य	सुनकर	स्रस्त ततः	गिरी उस समय
गोप्यः	गोपियां	न अविदन्	नहीं जान सकीं
मूर्च्छिता	मोहित हो गयीं		॥२४॥
आत्मानं दूकूलं	अपने दुपट्टेको		

एवं विक्रीडतोः स्वैरं गायतोः सम्प्रमत्तवत् ।
शङ्खचूड इति ख्यातो धनदानुचरोऽभ्यगात् ॥२५॥

एवं विक्रीडतोः स्वैरं गायतः सम्प्रमत्तवत् शंखचूड इति ख्यातः धनद अनुचरः अभ्यगात् ॥२५॥

एवं स्वैरं	इस प्रकार स्वच्छन्द	शंखचूड	शंखचूड़
विक्रीडतोः	क्रीडा करते हुए तथा	इति ख्यातः	इस नामसे प्रसिद्ध
सम्प्रमत्तवत्	अच्छे खासे पागलोंके समान	धनद अनुचरः	कुबेरका सेवक
		अभ्यगात्	समीप आ गया
गायतः	(दोनों भाइयोंके) गाते समय		॥२५॥

तयोर्निरीक्षतो राजंस्तन्नाथं प्रमदाजनम् ।
क्रोशन्तं कालयामास दिश्युदीच्यामशङ्कितः ॥२६॥

तयोः निरीक्षतः राजन् तत् नाथं प्रमदाजनं क्रोशन्तं कालयामास दिशि उदीच्यां अशङ्कितः ॥२६॥

राजन्	राजन् !	तत्	जिनके वही
तयोः	उन दोनों भाइयोंके	नाथं	स्वामी हैं उन
निरीक्षतः	देखते हुए	क्रोशन्तं	चिल्लाती हुई

प्रमदाजनं	नारियोंको	उदीच्यां दिशि	उत्तर दिशामें
अशङ्कितः	बेखटके	कालयामास	भगा ले चला ॥२६॥

क्रोशन्तं कृष्ण रामेति विलोक्य स्वपरिग्रहम् ।
यथा गा दस्युना ग्रस्ता भ्रातरावन्वधावताम् ॥२७॥

क्रोशन्तं कृष्ण राम इति विलोक्य स्वपरिग्रहं यथा गा दस्युना ग्रस्ता भ्रातराः अनु अधावताम् ॥२७॥

यथा दस्युना	जैसे डाकुओं द्वारा	स्वपरिग्रहं	अपनी प्रेयसियोंको
ग्रस्ता गा	पकड़ी गयी गायें हों	विलोक्य	देखकर
कृष्ण राम	'कृष्ण ! बलराम !'	भ्रातराः	दोनों भाई
इति	इस प्रकार	अनु अधावतां	उसके पीछे दौड़
क्रोशन्तं	चिल्लाती		पड़े ॥२७॥

मा भैष्टेत्यभयारावौ शालहस्तौ तरस्विनौ ।
आसेदतुस्तं तरसा त्वरितं गुह्यकाधमम् ॥२८॥

मा भैष्ट इति अभया रावौ शालहस्तौ तरस्विनौ आसेदुः तं तरसा त्वरितं गुह्यक अधमम् ॥२८॥

मा भैष्ट	'डरो मत'	तरसा त्वरितं	वेगसे दौड़ते
इति अभया	यह अभयदायी	तं अधमं	उस अधम
रावौ	शब्द कहते	गुह्यकं	यक्षके
शालहस्तौ	हाथोंमें शाल-वृक्ष लिए	आसेदुः	समीप पहुँच गये ॥२८॥
तरस्विनौ	अत्यन्त वेगवान (दोनों भाई)		

स वीक्ष्य तावनुप्राप्तौ कालमृत्यू इवोद्विजन् ।
विसृज्य स्त्रीजनं मूढः प्राद्रवज्जीवितेच्छया ॥२९॥

स वीक्ष्य तौ अनुप्राप्तौ कालमृत्यु इव उद्विजन् विसृज्य स्त्रीजनं मूढः प्राद्रवत् जीवित इच्छया ॥२९॥

कालमृत्यु	काल और मृत्युके	स्त्रीजनं	स्त्रियोंको
इव	समान	विसृज्य	छोड़कर
ताः अनुप्राप्तौ	उनको पीछे पहुँचा	जीवित	जीवित रहनेकी
वीक्ष्य स मूढः	देखकर वह मूर्ख	इच्छया	इच्छासे
उद्विजन्	व्याकुल होकर	प्राद्रवत्	भागा ॥२९॥

तमन्वधावद् गोविन्दो यत्र यत्र स धावति ।
जिहीर्षुस्तच्छिरोरत्नं तस्थौ रक्षन् स्त्रियो बलः ॥३०॥

तं अनु अधावत् गोविन्दः यत्र यत्र स धावति जिहीर्षुः तत् शिरः रत्नं तस्थौ रक्षन् स्त्रियः बलः ॥३०॥

स यत्र यत्र	वह जहां-जहां	अधावत्	दौड़ते गये
धावति	दौड़ता था	स्त्रियः	और स्त्रियोंकी
तत् शिरः	उसके सिरमें लगे	रक्षन्	रक्षा करते हुए
रत्नं	रत्नको	बलः	बलरामजी
जिहीर्षुः	छीन लेनेके लिए	तस्थौ	(उनके पास) खड़े
गोविन्दः	गोविन्द		रहे ॥३०॥
तं अनु	उसके पीछे		

अविदूर इवाभ्येत्य शिरस्तस्य दुरात्मनः ।
जहार मुष्टिनैवांग सहचूडामणिं विभुः ॥३१॥

अविदूर इव अभि एत्य शिरः तस्य दुरात्मनः जहार मुष्टिना अङ्ग सहचूड़ा मणिं विभुः ॥३१॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !	सहचूड़ा	उसके सिरमें लगी
अविदूर	जैसे समीप	मणिं	मणिके साथ
इव	ही हो (ऐसे)	मुष्टिना	मुट्ठी द्वारा
अभि एत्य	पास पहुँचकर	विभुः	समर्थ श्रीकृष्णने
तस्य दुरात्मनः	उस दुष्ट चित्तका	जहार	छीन लिया ॥३१॥
शिरः	सिर		

शङ्खचूडं निहत्यैवं मणिमादाय भास्वरम् ।
अग्रजायाददात् प्रीत्या पश्यन्तीनां च योषिताम् ॥३२॥

शंखचूडं निहत्य एवं मणिं आदाय भास्वरं अग्रजाय अददात् प्रीत्या पश्यन्तीनां च योषिताम् ॥३२॥

एवं शंखचूडं	इस प्रकार शंखचूड़-को	**योषितां**	स्त्रियोंके
		पश्यन्तीनां च	देखते हुए ही
निहत्य	मारकर	**प्रीत्या**	प्रेम पूर्वक
भास्वरं मणिं	प्रकाशमान मणि	**अग्रजाय**	बड़े भाईको
आदाय	ले आकर	**अददात्**	दे दिया ॥३२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे
पूर्वार्धे शंखचूडवधो नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

अथ पंचत्रिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रुतचेतसः ।
कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान् ॥१॥

गोप्यः कृष्णं वनं याते तं अनु द्रुत चेतसः कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यः निन्युः दुःखेन वासरान् ॥१॥

कृष्णं	श्रीकृष्णके	**कृष्णलीलाः**	श्रीकृष्णकी लीलाएँ
वनं याते	वनमें चले जानेपर	**प्रगायन्त्यः**	गाती हुई
तं अनु	उनके पीछे	**दुःखेन**	बड़े कष्टसे
द्रुत	भाग गये	**वासरान् निन्युः**	दिन बिताती थीं ॥१॥
चेतसः	चित्तवाली		
गोप्यः	गोपियां		

गोप्य ऊचुः

वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम् ।
कोमलाङ्गुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ।२।

वामबाहु कृत वाम कपोलः वल्गित भ्रूः अधर अर्पित वेणुः कोमल अङ्गुलिभिः आश्रित मार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ॥२॥*

गोप्य	गोपियो !	**अधर वेणुः**	अधरपर वंशी
वामबाहु	बाईं भुजापर	**अर्पित**	रखकर
वाम	बायां	**कोमल**	अपनी कोमल
कपोलः कृत	कपोल रखकर	**अङ्गुलिभिः**	अंगुलियों द्वारा
वल्गित भ्रूः	भौंहें नचाते हुए	**मार्गं**	उसके छिद्रोंका

---

* इस युगल गीतके दो-दो श्लोकोंका अर्थ मिलाकर पूरा होता है ।

आश्रित	सहारा लेकर	ईरयति	(उसे) प्रेरित करते (बजाते) हैं ॥२॥
यत्र मुकुन्दः	जहाँ मुकुन्द		

व्योमयानवनिताः सह सिद्धै-
विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः ।
काममार्गणसमर्पितचित्ताः
कश्मलं ययुरपस्मृतनीव्यः ॥३॥

व्योमयान वनिताः सह सिद्धैः विस्मिताः तत् उपधार्य सलज्जाः काम मार्गण समर्पित चित्ताः कश्मलं ययुः अपस्मृत नीव्यः ॥३॥

व्योमयान	आकाशगामी विमानोंमें बैठी	विस्मिताः	चकित हो जाती हैं
सिद्धैः सह	सिद्धोंके साथ	काम मार्गण	कामके बाणोंको
वनिताः	उनकी पत्नियां	समर्पित चित्ता	चित्तार्पण करके
सलज्जाः	लज्जावती (होनेपर भी)	नीव्यः	साड़ीकी सुधि
		अपस्मृत	भूलकर
तत्	उस (वंशी ध्वनि)	कश्मलं ययुः	मूर्छित हो जाती हैं ॥३॥
उपधार्य	सुनकर		

हन्त चित्रमबलाः शृणुतेदं
हारहास उरसि स्थिरविद्युत् ।
नन्दसूनुरयमार्तजनानां
नर्मदो यर्हि कूजितवेणुः ॥४॥

हन्त चित्रं अबलाः शृणुत इदं हार हास उरसि स्थिर विद्युत् नन्दसूनुः अयं आर्तजनानां नर्मदः यर्हि कूजित वेणुः ॥४॥

हन्त अबलाः	अरी नारियो !	हार हास	(इनकी) हंसी हार
इदं चित्रं	यह विचित्र बात		बन जाती है (मोती-
शृणुत	सुनो !		सी चमकती है)

उरसी	वक्षस्थलपर (श्रीवत्सके रूपमें)	नर्मदः	शान्ति देनेवाले
		अयं नन्दसूनुः	ये नन्दनन्दन
स्थिर विद्युत	स्थिर बिजली है	यर्हि वेणुः	जब वंशी
आर्तजनानां	दुःखी लोगोंको	कूजित	बजाने लगते हैं ॥४॥

वृन्दशो व्रजवृषा मृगगावो
वेणुवाद्यहृतचेतस आरात् ।
दन्तदष्टकवला धृतकर्णा
निद्रिता लिखितचित्रमिवासन् ॥५॥

वृन्दशः व्रजवृषा मृगगावः वेणुवाद्य हृतचेतस आरात् दन्तदष्ट कवला धृत कर्णा निद्रिता लिखितचित्रं इव आसन् ॥५॥

वृन्दशः	तब झुंडके झुंड	कवला	कौर दबाये
व्रजवृषा	व्रजके बैल	आरात्	समीप आकर
मृगगावः	हिरन, गायें	निद्रिता	सोये हुए या
वेणुवाद्य	वंशी बजनेसे	लिखितचित्रं	चित्रमें बनाये गये
हृतचेतस	चुराये चित्तवाले	इव आसन्	के समान हो जाते हैं ॥५॥
दन्तदष्ट	दांतोंमें घासके		

बर्हिणस्तबकधातुपलाशै-
र्बद्धमल्लपरिबर्हविडम्बः ।
कर्हिचित् सबल आलि स गोपै-
र्गाः समाह्वयति यत्र मुकुन्दः ॥६॥

बर्हिणः स्तबक धातु पलाशैः बद्धमल्ल परिबर्ह विडम्बः कर्हिचित् सबल-आलि स गोपैः गाः सम आह्वयति यत्र मुकुन्दः ॥६॥

आलि	सखी !	पलाशैः	पल्लवोंके
बर्हिणः	मयूर पिच्छ,	परिबर्ह	उपकरणोंसे
स्तबक	पुष्प गुच्छ,	बद्धमल्ल	पहलवानों जैसा
धातु	वनकी (गैरिकादि) धातुओं तथा	विडम्बः	वेश बनाकर
		कर्हिचित्	किसी समय

सबल	बलरामजीके साथ-तथा	**यत्र मुकुन्दः**	जहां मुकुन्द
		गाः समं	गायोंको जोरसे
स गोपैः	गोपोंके साथ	**आह्वयति**	पुकारते हैं ॥६॥

तर्हि भग्नगतयः सरितो वै
तत्पदाम्बुजरजोऽनिलनीतम् ।
स्पृहयतीर्वयमिवाबहुपुण्याः
प्रेमवेपितभुजाः स्तिमितापः ॥७॥

तर्हि भग्न गतयः सरितः वै तत् पदाम्बुजरजः अनिलनीतं स्पृहयतीः वयं इव अबहुपुण्याः प्रेमवेपित भुजाः स्तिमित आपः ॥७॥

वै तर्हि	निश्चय तब	**वयं इव**	हम लोगोंकी समान
सरितः	नदियोंकी	**स्पृहयतीः**	पाना चाहती हैं
गतयः भग्न	गति रुक जाती है,	**प्रेम**	प्रेमके कारण (लहर रूपी)
अनिलनीतं	वायुके द्वारा लायी गयी	**भुजाः वेपित**	भुजाएँ कांपने लगती हैं और
तत्	उनके		
पदाम्बुज रजः	चरण-कमलोंकी धूलि	**स्तिमित आपः**	जल (का वेग) रुक जाता है ॥७॥
अबहुपुण्याः	अल्प पुण्यवाली		

अनुचरैः समनुवर्णितवीर्य
आदिपूरुष इवाचलभूतिः ।
वनचरो गिरितटेषु चरन्ती-
र्वेणुनाऽऽह्वयति गाः स यदा हि ॥८॥

अनुचरैः सम् अनुवर्णित वीर्य आदि पूरुष इव अचल भूतिः वनचरः गिरितटेषु चरन्तीः वेणुना आह्वयति गाः स यदा हि ॥८॥

अचल भूतिः	अविचल ऐश्वर्य	**इव**	(नारायण) के समान
आदि पूरुष	आदि पुरुष	**अनुचरैः**	अनुयायियों द्वारा

सम्	अच्छी प्रकार	चरन्तीः गाः	चरती हुई गायोंको
अनुवर्णित	बार-बार वर्णित	यदा हि	जब कभी
वीर्यं स	पराक्रम वे	वेणुना	वंशीके द्वारा
वनचरः	वनमें घूमते हुए	आह्वयति	बुलाते हैं ॥८॥
गिरितटेषु	पर्वतके किनारे		

वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं
व्यञ्जयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः ।
प्रणतभारविटपा मधुधाराः
प्रेमहृष्टतनवः ससृजुः स्म ॥९॥

वनलताः तरव आत्मनि विष्णुं व्यञ्जयन्त्य इव पुष्पफल आढ्याः प्रणत भार विटपा मधुधाराः प्रेमहृष्ट तनवः ससृजुः स्म ॥९॥

वनलताः	(उस समय) वनकी लताएँ और	भार	उनके भारसे
तरवः	वृक्ष	विटपा	शाखाएँ
आत्मनि	अपने भीतर	प्रणत	झुकाकर
विष्णुं	विष्णु भगवानको	प्रेमहृष्ट	प्रेमसे हर्षित होकर
व्यञ्जयन्त्य इव	प्रगट करते हुए से	तनवः	तनोंसे
पुष्पफल	पुष्प और फलोंसे	मधुधाराः	मधुकी धाराएँ
आढ्याः	सम्पन्न होकर	ससृजुः स्म	उत्पन्न कर देते हैं ॥९॥

दर्शनीयतिलको वनमाला-
दिव्यगन्धतुलसीमधुमत्तैः ।
अलिकुलैरलघुगीतमभीष्ट-
माद्रियन् यर्हि संधितवेणुः ॥१०॥

दर्शनीय तिलकः वनमाला दिव्यगन्ध तुलसी मधुमत्तैः अलिकुलैः लघुगीतं अभीष्टं आद्रियन् यर्हि सन्धित वेणुः ॥१०॥

दर्शनीय	देखने ही योग्य	अभीष्टं	अपने प्रिय
तिलकः	तिलकवाले,	लघुगीतं	गुंजारका
वनमाला	वनमालामें लगी	आद्रियन्	आदर करते हुए
दिव्यगन्ध	दिव्य सुगन्धिकी	यर्हि सन्धित	जब बजाने लगते हैं
तुलसी	तुलसीके	वेणुः	वंशी ॥१०॥
मधुमत्तैः	मधुसे मतवाले		
अलिकुलैः	भ्रमर समूहके		

सरसि सारसहंसविहङ्गा-
श्चारुगीतहृतचेतस एत्य ।
हरिमुपासत ते यतचित्ता
हन्त मीलितदृशो धृतमौनाः ॥११॥

सरसि सारस हंस विहङ्गाः चारुगीत हृत चेतस एत्य हरिं उपासत ते यतचित्ता हन्त मीलित दृशः धृतमौनाः ॥११॥

सरसि सारस	सरोवरके सारस,	चित्ता	चित्त होकर
हंस विहङ्गाः	हंस आदि पक्षी	मीलित दृशः	नेत्र बन्द करके
चारु	उस सुन्दर	धृतमौनाः	मौन धारण करके
गीत	गायनसे	हरिं	श्रीहरिकी
हृत चेतस	चित्त चुराये जानेसे	उपासत	उपासना करते हैं
हन्त एत्य	अहो, (पास) आकर		॥११॥
ते यत	वे संयम		

सहबलः स्रगवतंसविलासः
सानुषु क्षितिभृतो व्रजदेव्यः ।
हर्षयन् यर्हि वेणुरवेण
जातहर्ष उपरम्भति विश्वम् ॥१२॥

सहबलः स्रक् अवतंस विलासः सानुषुः क्षितिभृतः व्रजदेव्यः हर्षयन् यर्हि वेणुरवेण जातहर्ष उपरम्भति विश्वम् ॥१२॥

व्रजदेव्यः	व्रजकी देवियो !
विलासः	लीला पूर्वक
स्रक्	मालाका
अवतंस	कुण्डल बनाये
सहबलः	बलरामजीके साथ
क्षितिभृतः	पर्वतके
सानुषु	शिखरपर जब
जातहर्ष	प्रसन्न होकर
वेणुरवेण	वंशी-ध्वनिसे
विश्वं हर्षयन्	संसारको प्रसन्न करते हुए
उपरम्भति	आलिंगित करते हैं ॥१२॥

महदतिक्रमणशङ्कितचेता
मन्दमन्दमनुगर्जति मेघः ।
सुहृदमभ्यवर्षत् सुमनोभि-
श्छायया च विदधत् प्रतपत्रम् ॥१३॥

महत् अतिक्रमण शङ्कितचेता मन्दमन्दं अनुगर्जति मेघः सुहृदं अभ्यवर्षत् सुमनोभिः छायया च विदधत् प्रतपत्रम् ॥१३॥

महत्	(तब) महात्मा (श्रीकृष्ण) का
अतिक्रमण	अपराध न हो
शंकितचेता	चित्तमें यह आशंका करके
मेघः मन्दमन्दं अनुगर्जति	मेघ धीरे-धीरे साथ-साथ (स्वर मिलाकर) गर्जना करता है
सुहृदं	और हमारे सखा (श्रीकृष्ण) पर
सुमनोभिः	नन्हीं फुहियोंकी
अभ्यवर्षत्	भली प्रकार वर्षा करता है
च छायया	तथा अपनी छायासे
प्रतपत्रं	छातेका
विदधत्	काम करता है ॥१३॥

विविधगोपचरणेषु विदग्धो
वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षाः ।
तव सुतः सति यदाधरबिम्बे
दत्तवेणुरनयत् स्वरजातीः ॥१४॥

विविध गोपचरणेषु विदग्धः वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षाः तव सुतः सति यदा अधर बिम्बे दत्तवेणुः अनयत् स्वरजातीः ॥१४॥

सति	साध्वी (यशोदा !)	**उरुधा**	नाना प्रकारकी कला
तव सुतः	आपके पुत्र,		(जानते हैं) अतः
विविध	अनेक	**यदा बिम्बे**	जब बिम्बा फल जैसे
गोपचरणेषु	सम्मानित गोपोंमें भी	**अधर**	(लाल) ओष्ठपर
विदग्धः	सबसे निपुण हैं,	**दत्तवेणु**	वंशी रखकर
निजशिक्षाः	अपने आप (बिना	**स्वरजातीः**	अनेक स्वर जातियाँ
	सिखाये) सीखो	**अनयत्**	उसमें ले आते हैं
वेणुवाद्य	वंशी बजानेकी		॥१४॥

सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः
शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः ।
कवय आनतकन्धरचित्ताः
कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥१५॥

सवनशः तत् उपधार्य सुरेशाः शक्र शर्व परमेष्ठि पुरोगाः कवय आनत कन्धर चित्ताः कश्मलं ययुः अनिश्चित तत्त्वाः ॥१५॥

तत्	उस	**तत्त्वाः**	तत्त्व
सवनशः	श्रुतिमयी ध्वनिको	**अनिश्चित**	निश्चय न कर
उपधार्य	सुनकर		पानेके कारण
सुरेशाः शक्र	देवश्रेष्ठ इन्द्र,	**चित्ताः**	चित्तमें
शर्व परमेष्ठि	शिव, ब्रह्मादि	**कश्मलं**	खेदका (अपनी
पुरोगाः कवय	सर्वज्ञोंमें भी अग्रणी		अल्पज्ञताका)
आनत कन्धर	सिर झुकाकर	**ययुः**	अनुभव करते हैं
	(उस स्वर लहरीका)		॥१५॥

निजपदाब्जदलैर्ध्वजवज्र-
नीरजांकुशविचित्तललामैः ।

व्रजभुवः शमयन् खुरतोदं
वर्ष्मधुर्यगतिरीडितवेणुः ॥१६॥

निज पदाब्ज दलैः ध्वज वज्र नीरज अंकुश विचित्र ललामैः व्रजभुवः शमयन् खुरतोदं वर्ष्मधुर्य गतिः ईडित वेणुः ॥१६॥

व्रजभुवः	व्रजभूमिका	ललामैः	अंकित सुन्दर
खुरतोदं	(गायोंके) खुरोंसे खूंदनेकी पीड़ा	निज	अपने
		पदाब्ज दलैः	कमल चरण पल्लवोंसे
शमयन्	शान्त करते हुए	वर्ष्मधुर्य	मत्त गयन्द
ध्वज वज्र	ध्वजा, वज्र	गतिः	गतिसे चलते
नीरज अंकुश	पद्म, अंकुश	ईडित वेणुः	वंशी बजाते हुए ॥१६॥
विचित्र	आदि अनेक चिह्नोंसे		

व्रजति तेन वयं सविलास-
वीक्षणार्पितमनोभववेगाः ।
कुजगतिं गमिता न विदामः
कश्मलेन कबरं वसनं वा ॥१७॥

व्रजति तेन वयं सविलास वीक्षण अर्पित मनोभव वेगाः कुजगतिं गमिता न विदामः कश्मलेन कबरं वसनं वा ॥१७॥

व्रजति	(इधरसे) जाते हैं	गमिता	(निश्चेष्ट) हो जाती है
तेन सविलास	तब उनके लीला पूर्वक	कश्मलेन	सम्मोहिता होनेके कारण
वीक्षण	देखनेसे		
मनोभव वेगाः	कामवेगको	कबरं वा	अपने जूड़े अथवा
अर्पित वयं	समर्पिता हम सब	वसनं	वस्त्र (की दशा) को
कुजगतिं	जड़ वृक्षोंके समान	न विदामः	नहीं जान पातीं ॥१७॥

मणिधरः क्वचिदागणयन् गा
मालया दयितगन्धतुलस्याः ।
प्रणयिनोऽनुचरस्य कदांसे
प्रक्षिपन् भुजमगायत यत्र ॥१८॥

मणिधरः क्वचित् आगणयन् गा मालया दयित गन्ध तुलस्याः प्रणयिनः अनुचरस्य कदा अंसे प्रक्षिपन् भुजं अगायत यत्र ॥१८॥

क्वचित्	कभी	अनुचरस्य	सेवक (सखा) के
मणिधरः	मणिमाला लेकर	अंसे भुजं	कन्धेपर भुजा
गा	चारों ओर (खड़ी) गायें	प्रक्षिपन्	फैलाकर
आगणयन्	गिनते हैं,	यत्र अगायत	जहां गाने लगते हैं ॥१८॥
कदा प्रणयिनः	कभी अपने प्रिय		

क्वणितवेणुरववञ्चितचित्ताः
कृष्णमन्वसत कृष्णगृहिण्यः ।
गुणगणार्णमनुगत्य हरिण्यो
गोपिका इव विमुक्तगृहाशाः ॥१९॥

क्वणितवेणु रववञ्चित चित्ताः कृष्णं अन्वसत कृष्ण गृहिण्यः गुणगण अर्णं अनुगत्य हरिण्यः गोपिका इव विमुक्त गृह आशाः ॥१९॥

क्वणितवेणु	बजती वंशीकी	कृष्णं	श्रीकृष्णके पास
रववञ्चित	ध्वनिसे ठगे गये	अनुगत्य	आकर
चित्ताः	चित्तवाली	गृह	घरोंकी
कृष्ण	काले	आशाः विमुक्त	आशा त्यागे
गृहिण्यः	मृगोंकी पत्नियां	गोपिका इव	गोपियोंके समान
हरिण्यः	हरिणियाँ	अन्वसत	वहीं रुकी रहती हैं ॥१९॥
गुणगण अर्णं	गुणगणोंके सागर		

कुन्ददामकृतकौतुकवेषो
गोपगोधनवृतो यमुनायाम् ।
नन्दसूनुरनघे तव वत्सो
नर्मदः प्रणयिनां विजहार ॥२०॥

कुन्ददाम कृतकौतुक वेषः गोप गोधनवृतः यमुनायां नन्दसूनुः अनघे तव वत्सः नर्मदः प्रणयिनां विजहार ॥२०॥

अनघे	निष्पाप यशोदाजी !	**कृतकौतुकवेषः**	विचित्र वेश बनाकर
तव वत्स	तुम्हारे ये लाल		
प्रणयिनां	अपने प्रेमियोंको	**गोप**	गोपों और
नर्मदः	आनन्द देनेवाले	**गोधनवृतः**	गायोंसे घिरे
नन्दसूनुः	नन्द-नन्दन	**यमुनायां**	(जब) यमुनामें
कुन्ददाम	कुन्दकी मालासे	**विजहार**	क्रीड़ा करने लगते हैं ॥२०॥

मन्दवायुरुपवात्यनुकूलं
मानयन् मलयजस्पर्शेन ।
वन्दिनस्तमुपदेवगणा ये
वाद्यगीतबलिभिः परिवव्रुः ॥२१॥

मन्द वायुः उपवाति अनुकूलं मानयन् मलयज स्पर्शेन वन्दिनः तं उपदेव गणा ये वाद्यगीत बलिभिः परिवव्रुः ॥२१॥

मानयन्	(तब उनका) सम्मान करते हुए	**ये उपदेव गणा**	और जो उपदेवता गण (गन्धर्वादि) हैं वे
अनुकूलं	अनुकूल		
स्पर्शेन	स्पर्शदायिनी	**वन्दिनः**	बन्दीजनोंके समान
मन्द	मन्द	**वाद्यगीत**	बजाने-गाने रूपी
मलयज वायु	मलयानिल	**बलिभिः**	उपहार देकर
उपवाति	उनके समीप चलती है	**परिवव्रुः**	उनका गुणगान करते हैं ॥२१॥

वत्सलो व्रजगवां यदगध्रो
वन्द्यमानचरणः पथि वृद्धैः ।
कृत्स्नगोधनमुपोह्य दिनान्ते
गीतवेणुरनुगेडितकीर्तिः ॥२२॥

वत्सलः व्रजगवां यत् अगध्रः वन्द्यमान चरणः पथि वृद्धैःकृत्स्न गोधनं उपोह्य दिन अन्ते गीत वेणुः अनुग ईडित कीर्तिः ॥२२॥

व्रजगवां	व्रजकी गायोंसे	पथि	मार्गमें
वत्सलः	बहुत प्रेम करते हैं	वृद्धैः	बड़े-वृद्धों द्वारा
यत्	क्योंकि (उनके लिए)	चरणः	(इनके) चरणोंकी
अगध्रः	पर्वत धारण किया था,	वन्द्यमान	वन्दना होती है,
		अनुग	अनुचरों (ग्वाल-बालों) द्वारा
दिन अन्ते	सायं-काल	ईडित कीर्तिः	कीर्तिगान होते ॥२२॥
कृत्स्नं गोधनं	समस्त गायोंको		
उपोह्य	लौटाकर		

उत्सवं श्रमरुचापि दृशीना-
मुन्नयन् खुररजश्छुरितस्रक् ।
दित्सयैति सुहृदाशिष एष
देवकीजठरभूरुडुराजः ॥२३॥

उत्सवं श्रमरुचा अपि दृशीनां उन्नयन् खुररजः छुरित स्रक् दित्सय एति सुहृद आशिष एष देवकी जठर भूः उडुराजः ॥२३॥

श्रमरुचा अपि	थके होनेपर भी	सुहृद	सम्बन्धियोंकी (साक्षात्)
दृशीनां	(हमारे) नेत्रोंको	आशिष	अभिलाषा
उत्सवं उन्नयन्	आनन्द देते हुए	एष देवकी	यह देवकी (यशोदा) की
खुररजः	(गायोंके) खुरोंसे		
स्रक्	उड़ी धूलि पड़ी वनमाला	जठर	कोखसे
		भूः उडुराजः	उत्पन्न चन्द्रमा
दित्सय	(पहिने) देखो	एति	आ रहे हैं ॥२३॥

मदविघूर्णितलोचन ईषन्
मानदः स्वसुहृदां वनमाली ।
बदरपाण्डुवदनो मृदुगण्डं
मण्डयन् कनककुण्डललक्ष्म्या ॥२४॥

मद विघूर्णित लोचन ईषन् मानदः स्वसुहृदां वनमाली बदर पाण्डु वदनः मृदुगण्डं मण्डयन् कनककुण्डल लक्ष्म्या ॥२४॥

ईषन् लोचन	नेत्र तनिक
मद विघूर्णित	मदसे चढ़े हैं,
स्वसुहृदां	अपने सखाओंको
मानदः	सम्मान देनेवाले
वनमाली	ये वनमालाधारी
बदर	(अधपके) बेरके समान
पाण्डुवदनः	पीताभ मुखके
मृदुगण्डं	कोमल कपोलोंको
कनक कुण्डल	स्वर्ण कुण्डलोंकी
लक्ष्म्या	शोभासे
मण्डयन्	भूषित किये ॥२४॥

यदुपतिर्द्विरदराजविहारो
यामिनीपतिरिवैष दिनान्ते ।
मुदितवक्त्र उपयाति दुरन्तं
मोचयन् व्रजगवां दिनतापम् ॥२५॥

यदुपतिः द्विरदराज विहारः यामिनीपतिः इव एष दिनान्ते मुदित वक्त्र उपयाति दुरन्तं मोचयन् व्रजगवां दिन तापम् ॥२५॥

द्विरदराज	गजराजके समान
विहारः	गतिसे
एष यदुपतिः	ये यदुनाथ
मुदित वक्त्र	प्रसन्न मुख
व्रजगवां	व्रजकी गायों (हम लोगों) का
दुरन्तं दिन	दुष्पार दिनका
तापं	(वियोगजन्य) सन्ताप
मोचयन्	दूर करते हुए
दिनान्ते	सन्ध्या-समय
यामिनीपतिः	निशानाथ (चन्द्र) के
इव	समान
उपयाति	समीप आ रहे हैं ॥२५॥

श्रीशुक उवाच

एवं व्रजस्त्रियो राजन् कृष्णलीला नु गायतीः ।
रेमिरेऽहःसु तच्चित्तास्तन्मनस्का महोदयाः ॥२६॥

एवं व्रजस्त्रियः राजन् कृष्ण लीला नु गायतीः रेमे अहःसु तत् चित्ताः तत् मनस्काः महोदयाः ॥२६॥

राजन्	राजन् !	**एवं नु**	इसी प्रकारकी
तत् चित्ताः	उन्हींमें चित्त लगाये	**कृष्ण**	श्रीकृष्णकी
तत्	उन्हींका	**लीलाः**	लीलाओंका
मनस्काः	चिन्तन करनेवाली	**गायतीः**	(परस्पर) वर्णन करती हुई
महोदयाः	परम सौभाग्य शालिनी	**अहःसु रेमे**	दिनमें मग्न रहती थीं ॥२६॥
व्रजस्त्रियः	व्रजकी स्त्रियाँ		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे वृन्दावनक्रीडायां गोकिकायुगलगीतं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

अथ तर्ह्यागतो गोष्ठमरिष्टो वृषभासुरः ।
महीं महाककुत्कायः कम्पयन् खुरविक्षताम् ॥ १ ॥

अथ तर्हि आगतः गोष्ठं अरिष्टः वृषभ असुरः महीं महाककुत् कायः कम्पयन्, खुरविक्षताम् ॥१॥

अथ तर्हि	फिर (श्रीकृष्ण जब प्रवेश कर रहे थे) उसी समय	**खुरविक्षतां**	खुरोंसे खोदी
		महीं कम्पयन्	पृथ्वीको कंपाता हुआ
अरिष्टः असुरः	अरिष्टासुर	**गोष्ठं आगतः**	व्रजमें आया ॥१॥
वृषभ	सांड़के रूपमें		
महाककुत्	बड़े डील (थुआ)		
कायः	तथा शरीरवाला		

रम्भमाणः खरतरं पदा च विलिखन् महीम् ।
उद्यम्य पुच्छं वप्राणि विषाणाग्रेण चोद्धरन् ॥ २ ॥

रम्भमाणः खरतरं पदा च विलिखन् महीं उद्यम्य पुच्छं वप्राणि विषाण अग्रेण च उद्धरन् ॥२॥

खरतरं	बहुत उग्र स्वरमें	**विषाण अग्रेण**	सींगोंकी नोकसे
रम्भमाणः	हुँकड़ता हुआ	**वप्राणि च**	चहार दीवारीको भी
च पदा महीं	तथा पैरोंसे पृथ्वी		
विलिखन्	खुरचता हुआ	**उद्धरन्**	उठाकर फेंकता (आया) ॥२॥
पुच्छं उद्यम्य	पूंछ ऊपर उठाये		

किञ्चित् किञ्चिच्चलकृन्मुञ्चन् मूत्रयन् स्तब्धलोचनः ।
यस्य निर्ह्रादितेनाङ्ग निष्ठुरेण गवां नृणाम् ॥ ३ ॥

किञ्चित् किञ्चित् शकृत् मुञ्चन् मूत्रयन् स्तब्धलोचनः यस्य निर्ह्रादितेन अङ्ग निष्ठुरेण गवां नृणाम् ॥३॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !	**स्तब्धलोचनः**	फटे से स्थिर नेत्रों-वाला
किञ्चित्	थोड़ा-	**यस्य निष्ठुरेण**	जिसके निष्ठुर
किञ्चित्	थोड़ा-सा	**निर्ह्रादितेन**	हंकड़नेसे
शकृत् मुञ्चन्	गोबर त्यागता,	**गवां नृणां**	गायों तथा मनुष्यों-का ॥३॥
मूत्रयन्	तथा पेशाब करता		

पतन्त्यकालतो गर्भाः स्रवन्ति स्म भयेन वै ।
निर्विशन्ति घना यस्य ककुद्यचलशङ्कया ॥ ४ ॥

पतन्ति अकालतः गर्भाः स्रवन्ति स्म भयेन वै निर्विशन्ति घना यस्य ककुदि अचल शङ्कया ॥४॥

वै भयेन	निश्चय भयके कारण	**यस्य ककुदि**	जिसके डील (थुए) पर
अकालतः	असमय ही	**अचल शङ्कया**	पर्वत समझकर
गर्भाः पतन्ति	गर्भ गिर जाता था या	**घना**	मेघ
		निर्विशन्ति	उतर आते थे ॥४॥
स्रवन्ति स्म	(थोड़े समयका हो तो) स्रवित हो जाता था,		

तं तीक्ष्णशृङ्गमुद्वीक्ष्य गोप्यो गोपाश्च तत्रसुः ।
पशवो दुद्रुवुर्भीता राजन् संत्यज्य गोकुलम् ॥ ५ ॥

तं तीक्ष्ण शृङ्गं उद्वीक्ष्य गोप्यः गोपाः च तत्रसुः पशवः दुद्रुवुः भीता राजन् संत्यज्य गोकुलम् ॥५॥

राजन्	राजन् !	**उद्वीक्ष्य**	दूरसे देखकर
तं तीक्ष्ण शृङ्गं	उस तीक्ष्ण सींगवाले को	**गोप्यः च गोपाः**	गोपियां तथा गोप
		तत्रसुः	भयभीत हो गये,

भीता पशवः	डरे हुए पशु	दुद्रुवुः	भागने लगे ॥५॥
गोकुलं संत्यज्य	गोष्ठ छोड़कर		

कृष्ण कृष्णेति ते सर्वे गोविन्दं शरणं ययुः ।
भगवानपि तद् वीक्ष्य गोकुलं भयविद्रुतम् ॥ ६ ॥

कृष्ण कृष्ण इति ते सर्वे गोविन्दं शरणं ययुः भगवान् अपि तत् वीक्ष्य गोकुलं भय विद्रुतम् ॥६॥

कृष्ण कृष्ण	'कृष्ण ! कृष्ण !'	भगवान् अपि	भगवान्ने भी
इति	इस प्रकार पुकारते	गोकुलं	गायोंके समूहको
ते सर्वे	वे सब	भय विद्रुतम्	भयसे इधर-उधर भागता
गोविन्दं शरणं	गोविन्दकी शरणमें		
ययुः	गये,	वीक्ष्य	देखकर ॥६॥

मा भैष्टेति गिराऽऽश्वास्य वृषासुरमुपाह्वयत् ।
गोपालैः पशुभिर्मन्द त्रासितैः किमसत्तम ॥ ७ ॥

मा भैष्ट इति गिरा आश्वास्य वृषासुरं उप आह्वयत् गोपालैः पशुभिः मन्द त्रासितैः किं असत्तम ॥७॥

मा भैष्ट	'डरो मत !'	मन्द असत्तम	मूर्ख ! महादुष्ट !
इति गिरा	ऐसा कहकर	गोपालैः पशुभिः	गोपों और पशुओं-को
आश्वास्य	आश्वासन देकर		
वृषासुरं	वृषभासुरको	त्रासितैः किं	डरानेसे क्या होगा ॥७॥
उप आह्वयत्	ललकारा,		

बलदर्पहाहं दुष्टानां त्वद्विधानां दुरात्मनाम् ।
इत्यास्फोट्याच्युतोऽरिष्टं तलशब्देन कोपयन् ॥८॥

बल दर्पह अहं दुष्टानां त्वत् विधानां दुःआत्मनां इति आस्फोट्य अच्युतः अरिष्टं तल शब्देन कोपयन् ॥८॥

त्वत्, विधानां	तेरे समान	बल दर्पह अहं	बल देनेवाला मैं हूँ
दुः आत्मनां	दुष्ट चित्तोंका	इति आस्फोट्य	इस प्रकार ललकार कर

अच्युतः अरिष्टं	श्रीकृष्ण अरिष्टासुरको	**कोपयन्**	कुपित करते हुए ॥८॥
तल शब्देन	ताली बजाकर		

सख्युरंसे भुजाभोगं प्रसार्यावस्थितो हरिः ।
सोऽप्येवं कोपितोऽरिष्टः खुरेणावनिमुल्लिखन् ।
उद्यत्पुच्छभ्रमन्मेघः क्रुद्धः कृष्णमुपाद्रवत् ॥ ९ ॥

सख्युः अंसे भुजा भोगं प्रसार्य अवस्थितः हरिः सः अपि एवं कोपितः अरिष्टः खुरेण अवनिं उल्लिखन् उद्यत् पुच्छ भ्रमन् मेघः क्रुद्धः कृष्णं उप अद्रवत् ॥९॥

हरिः सख्युः	श्रीकृष्ण सखाके	**खुरेण**	खुरोंसे
अंसे	कन्धेपर	**अवनिं**	पृथ्वी
भुजा भोगं	लम्बी भुजाको	**उल्लिखन्**	खुरचता हुआ
प्रसार्य	फैलाकर	**उद्यत् पुच्छ**	उठी पूंछसे
अवस्थितः	खड़े हो गये,	**भ्रमन् मेघः**	मेघोंको तितर-बितर करता
सः अरिष्टः	वह अरिष्टासुर		
अपि	भी	**क्रुद्धः**	क्रोधमें भरकर
एवं कोपितः	इस प्रकार क्रोध दिलानेपर	**कृष्णं उप अद्रवत्**	श्रीकृष्णकी ओर दौड़ा ॥९॥

अग्रन्यस्तविषाणाग्रः स्तब्धासृग्लोचनोऽच्युतम् ।
कटाक्षिप्याद्रवत्तूर्णमिन्द्रमुक्तोऽशनिर्यथा ॥१०॥

अग्रन्यस्त विषाण अग्रः स्तब्ध असृक् लोचनः अच्युतं कटा आक्षिप्य अद्रवत् तूर्णं इन्द्रमुक्तः अशनिः यथा ॥१०॥

विषाण अग्रः	सींगोंकी नोक	**यथा इन्द्रमुक्तः**	जैसे इन्द्रका छोड़ा
अग्रन्यस्त	आगे करके	**अशनिः**	वज्र हो
स्तब्ध असृक्	स्थिर रक्तके समान लाल	**अच्युतं तूर्णं**	श्रीकृष्णकी ओर बड़े वेगसे
लोचनः	नेत्रोंसे	**अद्रवत्**	झपटा ॥१०॥
कटा आक्षिप्य	तिरछे देखता हुआ		

गृहीत्वा शृङ्गयोस्तं वा अष्टादश पदानि सः ।
प्रत्यपोवाह भगवान् गजः प्रतिगजं यथा ॥११॥

गृहीत्वा शृङ्गयोः तं वा अष्टादश पदानि सः प्रति अपोवाह भगवान् गजः प्रतिगजं यथा ॥११॥

सः भगवान्	वे भगवान्	गजः	हाथी (ठेले)
तं	उसके	अष्टादश	अठारह
शृङ्गयोः वा	सींगोंको ही	पदानि	पद तक
गृहीत्वा	पकड़कर	प्रति अपोवाह	पीछे ठेल दिया ॥११॥
यथा	जैसे		
प्रतिगजं	प्रतिद्वन्दी हाथीको		

सोऽपविद्धो भगवता पुनरुत्थाय सत्वरः ।
आपतत् स्विन्नसर्वाङ्गो निःश्वसन् क्रोधमूर्च्छितः ॥१२॥

सः अपविद्धः भगवता पुनः उत्थाय सत्वरः आपतत् स्विन्न सर्वाङ्गः निःश्वसन् क्रोधमूर्च्छितः ॥१२॥

भगवता	भगवानके द्वारा	क्रोध-	क्रोधसे
अपविद्धः	पीछे फेंका गया	मूर्च्छितः	अचेतप्राय
सः सत्वरः	वह झटपट	निःश्वसन्	लम्बी श्वास छोड़ता (फुफकारता)
उत्थाय	उठकर	पुनः आपतत्	फिर झपटा ॥१२॥
स्विन्न	पसीनेसे		
सर्वाङ्गः	पूरा शरीर भींगा		

तमापतन्तं स निगृह्य शृङ्गयोः
पदा समाक्रम्य निपात्य भूतले ।
निष्पीडयामास यथाऽऽर्द्रमम्बरं
कृत्वा विषाणेन जघान सोऽपतत् ॥१३॥

तं आपतन्तं स निगृह्य शृंगयोः पदा सम आक्रम्य निपात्य भूतले निष्पीडयामास यथा आर्द्रं अम्बरं कृत्वा विषाणेन जघान सः अपतत् ॥१३॥

तं	उस	अम्बरं	कपड़ा हो ऐसे
आपतन्तं	अपनी ओर झपटते को	निष्पीडयामास	निचोड़ा (गर्दन घुमायी)
शृंगयोः निगृह्य	सींग पकड़कर	विषाणेन	फिर सींग
स पदा सम	उन्होंने पैरसे ठीक	कृत्वा	उखाड़ करके
आक्रम्य	आक्रमण करके	जघान	पीटा (जिससे)
भूतले निपात्य	पृथ्वीपर गिराकर	सः अपतत्	वह गिरा ही रहा ॥१३॥
यथा आर्द्रं	जैसे गीला		

असृग् वमन् मूत्रशकृत् समुत्सृजन्
क्षिपंश्च पादाननवस्थितेक्षणः ।
जगाम कृच्छ्रं निर्ऋतेरथ क्षयं
पुष्पैः किरन्तो हरिमीडिरे सुराः ॥१४॥

असृक् वमन् मूत्र शकृत् समुत् सृजन् क्षिपन् च पादान् अनवस्थित ईक्षणः जगाम कृच्छ्रं निर्ऋतेः अथ क्षयं पुष्पैः किरन्तः हरिं ईडिरे सुराः ॥१४॥

असृक्	रक्तकी	क्षयं निर्ऋतेः	मरकर मृत्युके पास
वमन्	उलटी करते	जगाम	गया,
मूत्र शकृत्	मूत्र-गोवर	अथ सुराः	फिर देवता
समुत्सृजन्	बहुत-सा त्यागता	पुष्पैः	पुष्प वर्षा
पादान् क्षिपन्	पैर पछाड़ते	किरन्तः	करते हुए
च अनवस्थित	तथा उलटे हुए	हरिं	श्रीकृष्णकी
ईक्षणः	नेत्रवाला	ईडिरे	स्तुति करने लगे ॥१४॥
कृच्छ्रं	बड़े कष्टसे		

एवं ककुद्मिनं हत्वा स्तूयमानः स्वजातिभिः ।
विवेश गोष्ठं सबलो गोपीनां नयनोत्सवः ॥१५॥

एवं ककुद्मिनं हत्वा स्तूयमानः स्वजातिभिः विवेश गोष्ठं सबलः गोपीनां नयन उत्सवः ॥१५॥

गोपीनां	गोपियोंके	**स्वजातिभिः**	अपनी जातिके लोग द्वारा
नयन उत्सवः	नयनानन्द दाता (श्रीकृष्ण)	**स्तूयमानः**	प्रशंसित होते
एवं	इस प्रकार	**सबलः**	बलरामजीके साथ
ककुद्मिनं	सांड़को	**गोष्ठं विवेश**	गोष्ठमें प्रविष्ट हुए ॥१५॥
हत्वा	मारकर		

अरिष्टे निहते दैत्ये कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ।
कंसायाथाह भगवान् नारदो देवदर्शनः ॥१६॥

अरिष्टे निहते दैत्ये कृष्णेन अद्भुत कर्मणा कंसाय अथ आह भगवान् नारदः देवदर्शनः ॥१६॥

अद्भुत कर्मणा	अद्भुतकर्मा	**दर्शनः**	दर्शन करानेवाले
कृष्णेन	श्रीकृष्ण द्वारा	**भगवान् नारदः**	भगवान नारद
अरिष्टे दैत्ये	अरिष्टासुरके	**अथ कंसाय**	फिर कंससे
निहते	मारे जानेपर	**आह**	बोले ॥१६॥
देव-	भगवान्का		

यशोदायाः सुतां कन्यां देवक्याः कृष्णमेव च ।
रामं च रोहिणीपुत्रं वसुदेवेन बिभ्यता ॥१७॥

यशोदायाः सुतां कन्यां देवक्याः कृष्णं एव च रामं च रोहिणीपुत्रं वसुदेवेन बिभ्यता ॥१७॥

कन्यां	कन्या (जो तुम्हारे हाथसे भी छूट गयी	**देवक्याः एव**	देवकीका ही (पुत्र)
		च रामं	तथा बलरामजीको
यशोदायाः	यशोदाकी	**रोहिणीपुत्रं**	रोहिणीजीके पुत्र हैं
सुतां	पुत्री थी	**बिभ्यता**	(तुमसे) डरकर
च कृष्णं	तथा श्रीकृष्णको	**वसुदेवेन**	वसुदेवजीने ॥१७॥

न्यस्तौ स्वमित्रे नन्दे वै याभ्यां ते पुरुषा हताः ।
निशम्य तद् भोजपतिः कोपात् प्रचलितेन्द्रियः ॥१८॥

न्यस्तौ स्वमित्रे नन्दे वै याभ्यां ते पुरुषा हताः निशम्य तत् भोजपतिः कोपात् प्रचलित इन्द्रियः ॥१८॥

वै स्वमित्रे	निश्चय अपने मित्र	तत् निशम्य	इसे सुनकर
नन्दे न्यस्तौ	नन्दजीके यहां रख छोड़ा है	भोजपतिः	कंसकी
याभ्यां ते	जिनके द्वारा तुम्हारे	कोपात्	क्रोधसे
पुरुषा हताः	सेवक मारे गये'	इन्द्रियः	इन्द्रियां
		प्रचलित	कोपने लगीं ॥१८॥

निशातमसिमादत्त वसुदेवजिघांसया ।
निवारितो नारदेन तत्सुतौ मृत्युमात्मनः ॥१९॥

निशातं असि आदत्त वसुदेव जिघांसया निवारितः नारदेन तत् सुतौ मृत्युं आत्मनः ॥१९॥

वसुदेव	वसुदेवजीको	नारदेन	नारदजी द्वारा
जिघांसया	मारनेके लिए (उसने)	निवारितः	रोक दिये जानेपर
निशातं असि	तीक्ष्ण तलवार	तत्	उन (वसुदेव) के
आदत्त	उठाया; किन्तु	सुतौ	पुत्रोंसे
		आत्मनः मृत्युं	अपनी मौत ॥१९॥

ज्ञात्वा लोहमयैः पाशैर्बबन्ध सह भार्यया ।
प्रतियाते तु देवर्षौ कंस आभाष्य केशिनम् ॥२०॥

ज्ञात्वा लोहमयैः पाशैः बबन्ध सह भार्यया प्रतियाते तु देवर्षौ कंस आभाष्य केशिनम् ॥२०॥

ज्ञात्वा	जानकर	देवर्षौ	देवर्षिके
लोहमयैः	लोहेसे बने	प्रतियाते तु	चले जानेपर तुरन्त
पाशैः	फन्दोंसे	केशिनं	केशीको (बुलाकर)
भार्यया सह	पत्नीके साथ	आभाष्य	समझाया ॥२०॥
बबन्ध	(वसुदेवजीको) बांध दिया और		

प्रेषयामास हन्येतां भवता रामकेशवौ ।
ततो मुष्टिकचाणूरशलतोशलकादिकान् ॥२१॥

प्रेषयामास हन्येतां भवता रामकेशवौ ततः मुष्टिक चाणूर शल तोशलक आदिकान् ॥२१॥

प्रेषयामास	(व्रजमें) भेजा कि	**मुष्टिक**	मुष्टिक
भवता राम-	तुम बलराम और	**चाणूर शल**	चाणूर, शल,
केशवौ	श्रीकृष्णको	**तोशलक**	तोशल
हन्येतां	मार देना	**आदिकान्**	आदिको ॥२१॥
ततः	फिर (उसके चले जानेपर)		

अमात्यान् हस्तिपांश्चैव समाहूयाह भोजराट् ।
भो भो निशम्यतामेतद् वीरचाणूरमुष्टिकौ ॥२२॥

अमात्यान् हस्तिपान् च एव सम आहूय आह भोजराट् भो भो निशम्यतां एतत् वीर चाणूर मुष्टिकौ ॥२२॥

अमात्यान्	मन्त्रियोंको,	**भो भो वीर**	हे हे वीरो !
च हस्तिपान्	तथा महावतोंको	**चाणूर-**	चाणूर और
एव	भी	**मुष्टिकौ**	मुष्टिक
सम	एक साथ	**एतत्**	यह बात
आहूय	बुलाकर	**निशम्यतां**	सुनो ॥२२॥
भोजराट्	भोजराज (कंसने)		
आह	कहा		

नन्दव्रजे किलासाते सुतावानकदुन्दुभेः ।
रामकृष्णौ ततो मह्यं मृत्युः किल निदर्शितः ॥२३॥

नन्दव्रजे किल आसाते सुताः आनक दुन्दुभेः रामकृष्णौ ततः मह्यं मृत्युः किल निदर्शितः ॥२३॥

किल नन्दव्रजे	अरे नन्द-व्रजमें	**सुताः**	पुत्र
आनक दुन्दुभेः	वसुदेवजीके	**रामकृष्णौ**	बलराम-श्रीकृष्ण

आसाते	रहते हैं	मृत्युः	मृत्यु
किल ततः	अरे उनके द्वारा	निदर्शितः	बतलायी जाती
मह्यं	मेरी		है ॥२३॥

भवद्भ्यामिह सम्प्राप्तौ हन्येतां मल्ललीलया ।
मञ्चाः क्रियन्तां विविधा मल्लरङ्गपरिश्रिताः ।
पौरा जानपदाः सर्वे पश्यन्तु स्वैरसंयुगम् ॥२४॥

भवद्भ्यां इह सम्प्राप्तौ हन्येतां मल्ललीलया मञ्चाः क्रियन्तां विविधा मल्लरंग परि श्रिताः पौरा जानपदाः सर्वे पश्यन्तु स्वैर संयुगम् ॥२४॥

इह सम्प्राप्तौ	यहां आनेपर (उन दोनोंको)	विविधामाञ्चा	बहुतसे मञ्च
		क्रियन्तां	बनाओ,
मल्ललीलया	कुश्ती लड़नेकी क्रीड़ामें	पौरा	नगरवासी तथा
		जानपदाः	देशके लोग
भवद्भ्यां	तुम दोनों द्वारा	श्रिताः	उनपर बैठकर
हन्येतां	मार दिया जाना चाहिए	स्वैर संयुगं	स्वच्छन्दं (नियम हीन) दंगल
मल्लरंग	अखाड़ेके		
परि	चारों ओर	पश्यन्तु	देखें ॥२४॥

महामात्र त्वया भद्र रङ्गद्वार्युपनीयताम् ।
द्विपः कुवलयापीडो जहि तेन ममाहितौ ॥२५॥

महामात्र त्वया भद्र रंग द्वारि उपनीयतां द्विपः कुवलयापीडः जहि तेन मम अहितौ ॥२५॥

भद्र महामात्र	कुशल महावत !	उपनीयतां	समीप ले आना
त्वया रंग	तुम मल्लशालाके	तेन मम	उसके द्वारा मेरे
द्वारि	द्वारपर	अहितः	शत्रुओंको
कुवलयापीडः	कुवलयापीड	जहि	मार दो ॥२५॥
द्विपः	हाथीको		

आरभ्यतां धनुर्याग्श्चतुर्दश्यां यथाविधि ।
विशसन्तु पशून् मेध्यान् भूतराजाय मीढुषे ॥२६॥

आरभ्यतां धनुः यागः चतुर्दश्यां यथाविधि विशसन्तु पशून् मेध्यान् भूतराजाय मीढुषे ॥२६॥

चतुर्दश्यां	चतुर्दशी (शिवरात्रि) को	मीढुषे	वरदानी
		भूतराजाय	भूतेश्वर भैरवको
यथाविधि	विधिपूर्वक	मेध्यान् पशून्	पवित्र पशुओंकी
धनुः यागः	धनुष-यज्ञ	विशसन्तु	बलि दो ॥२६॥
आरभ्यतां	प्रारम्भ कर दो		

इत्याज्ञाप्यार्थतत्त्वज्ञ आहूय यदुपुङ्गवम् ।
गृहीत्वा पाणिना पाणिं ततोऽक्रूरमुवाच ह ॥२७॥

इति आज्ञाप्य अर्थ तत्त्वज्ञः आहूय यदुपुंगवं गृहीत्वा पाणिना पाणिं ततः अक्रूरं उवाच ह ॥२७॥

इति	इस प्रकार (उनको)	तत्त्वज्ञः	जाननेवाला (कंस)
आज्ञाप्य	आज्ञा देकर	पाणिना	(अपने) हाथसे
ततः यदुपुंगवं	फिर यदुश्रेष्ठ	पाणिं	(उनका) हाथ
अक्रूरं	अक्रूरको	गृहीत्वा	पकड़कर
आहूय	बुलाकर	ह उवाच	निश्चित स्वरमें
अर्थ	(केवल अपना) स्वार्थ		बोला ॥२७॥

कंस उवाच*

भो भो दानपते मह्यं क्रियतां मैत्रमादृतः
नान्यस्त्वत्तो हिततमो विद्यते भोजवृष्णिषु ॥२८॥

भो भो दानपते मह्यं क्रियतां मैत्रं आदृतः न अन्यः त्वत्तः हिततमः विद्यते भोज वृष्णिषु ॥२८॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

भो भो	हे अहो
दानपते	दानाध्यक्षजी !
आदृतः	आप (मेरे) आदरणीय हैं
मह्यं मैत्रं	मेरे लिए मित्रोचित (काम)
क्रियतां	कर दीजिये
भोज	भोज तथा
वृष्णिषु	वृष्णि वंशियोंमें
त्वत्तः अन्यः	आपको छोड़कर (दूसरा)
हितकृत्तमः	(मेरा) अत्यन्त हितैषी
न विद्यते	(कोई) नहीं है ॥२८॥

अतस्त्वामाश्रितः सौम्य कार्यगौरवसाधनम् ।
यथेन्द्रो विष्णुमाश्रित्य स्वार्थमध्यगमद् विभुः ॥२९॥

अतः त्वां आश्रितः सौम्य कार्य गौरव साधनं यथा इन्द्रः विष्णुं आश्रित्य स्वार्थं अध्यगमत् विभुः ॥२९॥

सौम्य अतः	सौम्य! इसलिए
कार्य गौरव	बड़े कार्यको
साधनं	सम्पन्न करनेके लिए
त्वां आश्रितः	(मैंने) आपका सहारा लिया है,
यथा विभुः इन्द्रः	जैसे समर्थ इन्द्र
विष्णुं	विष्णुका
आश्रित्य	आश्रय लेकर
स्वार्थं	अपना प्रयोजन
अध्यगमत्	प्राप्त करते हैं ॥२९॥

गच्छ नन्दव्रजं तत्र सुतावानकदुन्दुभेः ।
आसाते ताविहानेन स्थेनानय मा चिरम् ॥३०॥

गच्छ नन्दव्रजं तत्र सुतौ आनक दुन्दुभेः आसाते तौ इह अनेन रथेन आनय मा चिरम् ॥३०॥

नन्दव्रजं गच्छ	नन्दव्रज चले जाइये,
तत्र	वहां
आनक दुन्दुभेः	वसुदेवके
सुतौ आसाते	दो पुत्र रहते हैं
तौ इह	उनको यहां
अनेन रथेन	इस रथसे ही
आनय	ले आइये,
मा चिरं	विलम्ब मत कीजिए ॥३०॥

निसृष्टः किल मे मृत्युर्देवैर्वैकुण्ठसंश्रयैः ।
तावानय समं गोपैर्नन्दाद्यैः साभ्युपायनैः ॥३१॥

निसृष्टः किल मे मृत्युः देवैः वैकुण्ठ संश्रयैः ताः आनय समं गोपैः नन्द आद्यैः स अभ्युपायनैः ॥३१॥

वैकुण्ठ	विष्णुके	ताः	उनको और
संश्रयैः	आश्रयमें रहनेवाले	नन्द आद्यैः	नन्द आदि
देवैः किल	देवताओंने अरे,	गोपैः	गोपोंको
मे मृत्युः	(उनके द्वारा) मेरी मृत्यु	स	बड़े
निसृष्टः	निश्चित की है (अतः)	अभ्युपायनैः	उपहारोंके साथ
		आनय	ले आइये ॥३१॥

घातयिष्य इहानीतौ कालकल्पेन हस्तिना ।
यदि मुक्तौ ततो मल्लैर्घातये वैद्युतोपमैः ॥३२॥

घातयिष्य इह आनीतौ कालकल्पेन हस्तिना यदि मुक्तौ ततः मल्लैः घातये वैद्युत उपमैः ॥३२॥

इह आनीतौ	यहां ले आनेपर (उनको)	यदि मुक्तौ	यदि (उससे) छूट गये तो
कालकल्पेन	कालके समान	वैद्युत उपमैः	बिजलीके समान
हस्तिना	हाथीके द्वारा	मल्लैः	पहलवानोंसे
घातयिष्य	मरवा दूंगा	घातये	मरवाऊंगा ॥३२॥

तयोर्निहतयोस्तप्तान् वसुदेवपुरोगमान् ।
तद्बन्धून् निहनिष्यामि वृष्णिभोजदशार्हकान् ॥३३॥

तयोः निहतयोः तप्तान् वसुदेव पुरः अगमान् तत् बन्धून् निहनिष्यामि वृष्णि भोज दशार्हकान् ॥३३॥

तयोः निहतयोः	उनके मारे जानेसे	वसुदेव	वसुदेव
तप्तान्	संतप्त	पुरः अगमान्	जिनके अग्रणी हैं उन

वृष्णि भोज	वृष्णि, भोज	तत् बन्धून्	उनके सम्बन्धियोंको
दशार्हकान्	दशार्हवंशीय	निहनिष्यामि	मैं मार दूँगा ॥३३॥

उग्रसेनं च पितरं स्थविरं राज्यकामुकम् ।
तद्भ्रातरं देवकं च ये चान्ये विद्विषो मम ॥३४॥

उग्रसेनं च पितरं स्थविरं राज्य कामुकं तत् भ्रातरं देवकं च ये च अन्ये विद्विषः मम ॥३४॥

राज्य कामुकं	राज्य चाहनेवाले	च ये अन्ये	और जो दूसरे
स्थविरं पितरं	अपने बूढ़े पिता	मम	मेरे
उग्रसेनं च	उग्रसेनको भी	विद्विषः	द्वेषी हैं (उन सबको
च तत् भ्रातरं	तथा उनके भाई		मार दूंगा) ॥३४॥
देवकं	देवकको		

ततश्चैषा मही मित्र भवित्री नष्टकण्टका ।
जरासंधो मम गुरुर्द्विविदो दयितः सखा ॥३५॥

ततः च एषा मही मित्र भवित्री नष्टकण्टका जरासन्धः मम गुरुः द्विविदः दयितः सखा ॥३५॥

मित्र	मित्र !	जरासन्धः	जरासन्ध
ततः च एषा	तब तो यह	मम गुरुः	मेरे बड़े (स्वसुर)
मही	पृथ्वी		और
नष्टकण्टका	निष्कण्टक	द्विविदः	द्विविद
भवित्री	हो जायगी (क्योंकि)	दयितः सखा	प्यारे मित्र हैं ॥३५॥

शम्बरो नरको बाणो मय्येव कृतसौहृदाः ।
तैरहं सुरपक्षीयान् हत्वा भोक्ष्ये महीं नृपान् ॥३६॥

शम्बरः नरकः बाणः मयि एव कृत सौहृदाः तैः अहं सुरपक्षीयान् हत्वा भोक्ष्ये महीं नृपान् ॥३६॥

शम्बरः	शम्बरासुर	कृत सौहृदाः	मैत्री करते हैं,
नरकः	नरकासुर और	तैः अहं	उनके साथ (मिल-
बाणः	बाणासुर		कर) मैं
मयि एव	मुझसे ही	सुर-	देवताओंके

पक्षीयान्	पक्षपाती	भोक्ष्ये	उपभोग करूँगा
नृपान् हत्वा	राजाओंको मारकर		॥३६॥
महीं	पृथ्वीका		

एतज्ज्ञात्वाऽऽनय क्षिप्रं रामकृष्णाविहार्भकौ ।
धनुर्मखनिरीक्षार्थं द्रष्टुं यदुपुरश्रियम् ॥३७॥

एतत् ज्ञात्वा आनय क्षिप्रं रामकृष्णाः इह अर्भकौ धनुः मख निरीक्षार्थं द्रष्टुं यदुपुर श्रियम् ॥३७॥

एतत् ज्ञात्वा	यह जानकर	यदुपुर	यादव राजधानी (मथुरा) की
अर्भकौ	बालक		
राम-	बलराम और	श्रियं द्रष्टुं	शोभा देखनेके लिए (कहकर)
कृष्णाः	श्रीकृष्णको		
धनुः मख	धनुष-यज्ञ	इह क्षिप्रं	यहां शीघ्र
निरीक्षार्थं	देखनेके लिए (तथा उस समय)	आनय	ले आइये ॥३७॥

अक्रूर उवाच

राजन् मनीषितं सध्र्यक् तव स्वावद्यमार्जनम् ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समं कुर्याद् दैवं हि फलसाधनम् ॥३८॥

राजन् मनीषितं सध्र्यक् तव स्व अवद्य मार्जनं सिद्ध्य असिद्ध्योः समं कुर्यात् दैवं हि फलसाधनम् ॥३८॥

राजन्	राजन् !	असिद्ध्योः	असफलतामें
स्व अवद्य	अपने अरिष्टको	समं	समान भाव रखकर
मार्जनं	मिटानेके लिए	कुर्यात्	कर्म करना चाहिए
तव मनीषितं	आपका सोचना	हि दैवं	क्योंकि दैव ही
सध्र्यक्	ठीक ही है; किन्तु	फलसाधनं	फल देनेवाला है ॥३८॥
सिद्ध्य	सफलता		

मनोरथान् करोत्युच्चैर्जनो दैवहतानपि ।
युज्यते हर्षशोकाभ्यां तथाप्याज्ञां करोमि ते ॥३९॥

मनोरथान् करोति उच्चैः जनः दैव हतान् अपि युज्यते हर्ष शोकाभ्यां तथा अपि आज्ञां करोमि ते ॥३९॥

दैव	दैवके द्वारा	**हर्ष शोकाभ्यां**	हर्ष या शोकसे
हतान्	नष्ट किये होनेपर	**युज्यते**	जुड़ता है
अपि	भी	**तथा अपि**	फिर भी
जनः उच्चैः	मनुष्य बड़े-बड़े	**ते**	आपकी
मनोरथान्	मनोरथ	**आज्ञां**	आज्ञाका पालन
करोति	करता है, इससे	**करोमि**	करूँगा ॥३९॥

श्रीशुक उवाच–

एवमादिश्य चाक्रूरं मन्त्रिणश्च विसृज्य सः ।
प्रविवेश गृहं कंसस्तथाक्रूरः स्वमालयम् ॥४०॥

एवं आदिश्य च अक्रूरं मन्त्रिणः च विसृज्य सः प्रविवेश गृहं कंसः तथा अक्रूरः स्वं आलयम् ॥४०॥

एवं	इस प्रकार	**सः कंसः**	वह कंस
अक्रूरं	अक्रूरको	**स्व गृहं**	अपने भवनमें
आदिश्य	आदेश देकर	**तथा अक्रूरः**	तथा अक्रूर
च मन्त्रिणः च	तथा मन्त्रियोंको भी	**स्वं आलयं**	अपने घरमें
विसृज्य	विदा करके	**प्रविवेश**	प्रविष्ट हुए ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धेऽक्रूरसंप्रेषणं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

केशी तु कंसप्रहितः खुरैर्महीं
महाहयो निर्जरयन् मनोजवः ।
सटावधूताभ्रविमानसंकुलं
कुर्वन् नभो हेषितभीषिताखिलः ॥१॥

केशी तु कंसप्रहितः खुरैः महीं महाहयः निर्जरयन् मनोजवः सटा अवधूत अभ्र विमान सङ्कुलं कुर्वन् नभः हेषित भीषित अखिलः ॥१॥

महाहयः	बड़ा भारी घोड़ा	विमान	विमानोंको
केशी तु	केशी तो	नभः	आकाशमें
कंसप्रहितः	कंसके भेजनेसे	सङ्कुलं कुर्वन्	तितर-बितर करता
खुरैः	अपनी टापोंसे	हेषित	हिन-हिनाहटसे
महीं	पृथ्वीको	अखिलः	सबको
निर्जरयन्	खोदता हुआ,	भीषित	डराता
सटा	गर्दनके बालोंके	मनोजवः	मनके वेगसे (दौड़ा)
अवधूत	झटकेसे		॥१॥
अभ्र	बादलों और		

विशालनेत्रो विकटास्यकोटरो
बृहद्गलो नीलमहाम्बुदोपमः ।
दुराशयः कंसहितं चिकीर्षु-
र्व्रजं स नन्दस्य जगाम कम्पयन् ॥२॥

विशाल नेत्रः विकट आस्य कोटरः बृहत् गलः नील महा अम्बुद उपमः दुराशयः कंसहितं चिकीर्षुः व्रजं सः नन्दस्य जगाम कम्पयन् ॥२॥

विशाल नेत्रः	बड़े नेत्रोंवाला,	दुराशयः	दुरभिप्राय,
विकट	डरावने वृक्षके	कंसहितं	कंसका भला करनेकी
आस्य कोटरः	खोडर समान मुख-वाला,	चिकीर्षुः	इच्छासे
		सः	वह
बृहत् गलः	लम्बी गर्दनवाला,	नन्दस्य व्रजं	नन्दके व्रजको
नील	काले	कम्पयन्	कम्पित करता
महा अम्बुद	बड़े मेघके	जगाम	पहुँचा ॥२॥
उपमः	समान		

तं त्रासयन्तं भगवान् स्वगोकुलं
तद्धेषितैर्वालविधूणिताम्बुदम् ।
आत्मानमाजौ मृगयन्तमग्रणी-
रुपाह्वयत् स व्यनदन्मृगेन्द्रवत् ॥३॥

तं त्रासयन्तं भगवान् स्व गोकुलं तत् हेषितैः वाल विधूणित अम्बुदं आत्मानं आजौ मृगयन्तं अग्रणीः उपाह्वयत् स व्यनदन् मृगेन्द्रवत् ॥३॥

हेषितैः	हिन-हिनाहटसे	भगवान्	भगवान्ने
तं स्वगोकुलं	उसे अपने गोकुलको	आत्मानं	अपनेको
त्रासयन्तं	भयभीत करता और	मृगयन्तं	ढूँढ़ता (देखकर)
तत्	उसके (पूँछके)	स अग्रणीः	वे आगे बढ़कर
वाल	बालोंसे	मृगेन्द्रवत्	सिंहके समान
विधूणित	छितराते हुए	व्यनदन्	गर्जना करके
अम्बुदं	बादलोंको	उपाह्वयत्	अपने समीप पुकारा ॥३॥
आजौ	अजन्मा,		

स तं निशाम्याभिमुखो मुखेन खं
पिबन्निवाभ्यद्रवदत्यमर्षणः ।
जघान पद्भ्यामरविन्दलोचनं
दुरासदश्चण्डजवो दुरत्ययः ॥४॥

स तं निशाम्य अभिमुखः मुखेन खं पिबन् इव अभ्यद्रवत् अति अमर्षणः जघान पद्भ्यां अरविन्द लोचनं दुरासदः चण्डजवः दुरत्ययः ॥४॥

स तं	उसने उनको	दुरत्ययः	उसपर विजयपाना
अभिमुखः	अपनी ओर आता		कठिन था,
निशाम्य	देखकर	चण्डजवः	प्रचण्ड वेगसे
मुखेन खं	मुख फाड़कर		(आकर)
	आकाशको	अरविन्द-	कमल-
पिबन् इव	पीते हुएके समान	लोचनं	लोचन श्रीकृष्णको
अभ्यद्रवत्	उनकी ओर दौड़ा,	पद्भ्यां	(उसने) पैरोंसे
दुरासदः	उसे पकड़ना कठिन	जघान	(दुलत्ती) मारा
	था; क्योंकि		॥४॥

तद् वञ्चयित्वा तमधोक्षजो रुषा
प्रगृह्य दोर्भ्यां परिविध्य पादयोः ।
सावज्ञमुत्सृज्य धनुःशतान्तरे
यथोरगं तार्क्ष्यसुतो व्यवस्थितः ॥५॥

तत् वञ्चयित्वा तं अधोक्षजः रुषा प्रगृह्य दोर्भ्यां परिविध्य पादयोः सावज्ञं उत्सृज्य धनुः शत अन्तरे यथा उरगं तार्क्ष्य सुतः व्यवस्थितः ॥५॥

अधोक्षजः	इन्द्रियातीत	प्रगृह्य	पकड़कर
	(भगवान)	तं सावज्ञं	उसे उपेक्षापूर्वक
तत् वञ्चयित्वा	उस (दुलत्ती) को	धनुः शत	सौ धनुष
	बचा गये	अन्तरे	(चार सौ हाथ) दूर
रुषा दोर्भ्यां	क्रोध करके हाथोंसे	उत्सृज्य	फेंककर
पादयोः	(उसके) पैरोंको	व्यवस्थितः	स्थिर खड़े हो गये
परिविध्य	जकड़ कर		॥५॥

स लब्धसंज्ञः पुनरुत्थितो रुषा
व्यादाय केशी तरसाऽऽपतद्धरिम् ।
सोऽप्यस्य वक्त्रे भुजमुत्तरं स्मयन्
प्रवेशयामास यथोरगं बिले ॥६॥

स लब्धसंज्ञः पुनः उत्थितः रुषा व्यादाय केशी तरसा आपतत् हरिं सः अपि अस्य वक्त्रे भुजं उत्तरं स्मयन् प्रवेशयामास यथा उरगं बिले ॥६॥

स केशी	वह केशी	**सः अपि**	उन्होंने भी
लब्धसंज्ञः	होशमें आनेपर	**स्मयन्**	मुस्कराते हुए
पुनः उत्थितः	फिर उठकर	**उत्तरं भुजं**	अपना बांया हाथ
रुषा	क्रोधसे	**अस्य वक्त्रे**	इसके मुखमें
व्यादाय	मुख फाड़कर	**यथा उरगं**	जैसे सांप
तरसा	वेगसे	**बिले**	बिलमें (जाय)
हरिं	श्रीकृष्णकी ओर	**प्रवेशयामास**	डाल दिया ॥६॥
आपतत्	झपटा		

दन्ता निपेतुर्भगवद्भुजस्पृश-
स्ते केशिनस्तप्तमयः स्पृशो यथा ।
बाहुश्च तद्देहगतो महात्मनो
यथाऽऽमयः संववृधे उपेक्षितः ॥७॥

दन्ता निपेतुः भगवत् भुजस्पृशः ते केशिनः तप्तं अयः स्पृशः यथा बाहुः च तत् देहगतः महात्मनः यथा आमयः संववृधे उपेक्षितः ॥७॥

ते केशिनः	वे केशीके	**महात्मनः**	उन पुरुषोत्तमकी
दन्ता	दांत	**बाहुः च**	भुजा भी
भगवत्	भगवानकी	**तत्**	उसके
भुजस्पृशः	भुजाके स्पर्शसे	**देहगतः**	शरीरमें जाकर
यथा तप्तं	जैसे तपाये	**यथा**	जैसे
अयः	लोहेसे	**उपेक्षितः**	उपेक्षा करनेपर
स्पृशः	छू गये हों	**आमयः**	रोग (बढ़ता है)
निपेतुः	(एक साथ) गिर पड़े,	**संववृधे**	बहुत बढ़ गयी ॥७॥

समेधमानेन स कृष्णबाहुना
निरुद्धवायुश्चरणांश्च विक्षिपन् ।

प्रस्विन्नगात्रः परिवृत्तलोचनः
पपात लेण्डं विसृजन् क्षितौ व्यसुः ॥८॥

समेधमानेन स कृष्णबाहुना निरुद्ध वायुः चरणान् च विक्षिपन्
प्रस्विन् गात्रः परिवृत्त लोचनः पपात लेण्डं विसृजन् क्षितौ व्यसुः ॥८॥

कृष्णबाहुना	श्रीकृष्णकी भुजाके		लथपथ हो गया,
समेधमानेन	बहुत बढ़ते जानेसे	लोचनः	नेत्र
निरुद्ध वायुः	(उसकी) श्वास रुक गयी	परिवृत्त	निकल आये
		लेण्डं विसृजन्	मल-त्याग करता
स चरणान् च	वह पैरोंको भी	व्यसुः	निष्प्राण होकर
विक्षिपन्	ऊपर उछालने लगा,	क्षितौ पपात	पृथ्वीपर गिर पड़ा
गात्रः प्रस्विन्	शरीर पसीनेसे		॥८॥

तद्देहत· कर्कटिकाफलोपमाद्
व्यसोरपाकृष्य भुजं महाभुजः ।
अविस्मितोऽयत्नहतारिरुत्स्मयैः
प्रसूनवर्षैर्दिविषद्भिरीडितः ॥९॥

तत् देहतः कर्कटिका फल उपमात् व्यसोः अपाकृष्य भुजं महाभुजः
अविस्मितः अयत्न हत अरिः उत्स्मयैः प्रसून वर्षैः दिविषत्भिः ईडितः ॥९॥

कर्कटिका	पकी ककड़ीके	अयत्न	बिना प्रयत्नके
फल	फल (फूट) के	हत अरिः	शत्रुको मारकर
उपमात्	समान (कटे)	अविस्मितः	चकित नहीं हुए; किन्तु
तत् देहतः	उसके शरीरसे		
भुजं	(अपनी) भुजा	उत्स्मयैः	आश्चर्य चकित
अपाकृष्य	बाहर निकाल कर	दिविषत्भिः	देवताओं द्वारा
महाभुजः	विशाल बाहु श्रीकृष्ण	प्रसून वर्षैः	पुष्प वर्षा करते हुए
		ईडितः	स्तुत हुए ॥९॥

देवर्षिरुपसङ्गम्य भागवतप्रवरो नृप ।
कृष्णमक्लिष्टकर्माणं रहस्येतदभाषत ॥१०॥

देवर्षिः उपसङ्गम्य भागवतप्रवरः नृप कृष्णं अक्लिष्ट कर्माणं रहसि एतत् अभाषत ॥१०॥

नृप	राजन् !	**उपसङ्गम्य**	समीप आकर
अक्लिष्ट	अक्लिष्ट	**भागवत-**	भगवद् भक्तोंमें
कर्माणं	कर्मा	**प्रवरः**	श्रेष्ठ
कृष्णं	श्रीकृष्णके	**देवर्षिः**	देवर्षि नारदजी
रहसि	एकान्तमें	**एतत् अभाषत**	यह बोले ॥१०॥

नारद उवाच*

कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन् योगेश जगदीश्वर ।
वासुदेवाखिलावास सात्वतां प्रवर प्रभो ॥११॥

कृष्ण कृष्ण अप्रमेय आत्मन् योगेश जगदीश्वर वासुदेव अखिल आवास सात्वतां प्रवर प्रभो ॥११॥

प्रभो कृष्ण	प्रभो कृष्ण !	**वासुदेव**	वासुदेव !
योगेश कृष्ण	योगेश्वर कृष्ण !	**अखिल आवास**	जगन्मय !
अप्रमेय	प्रमाणातीत	**सात्वतां प्रवर**	यदुवंश शिरोमणि ॥११॥
आत्मन्	स्वरूप !		
जगदीश्वर	जगदीश्वर !		

त्वमात्मा सर्वभूतानामेको ज्योतिरिवैधसाम् ।
गूढो गुहाशयः साक्षी महापुरुष ईश्वरः ॥१२॥

त्वं आत्मा सर्वभूतानां एकः ज्योतिः इव एधसां गूढः गुहाशयः साक्षी महापुरुष ईश्वरः ॥१२॥

सर्वभूतानां	सब प्राणियोंके	**एधसां**	ईंधनमें
त्वं आत्मा	तुम आत्मा हो,	**ज्योतिः इव**	अग्निके समान
एकः	अद्वितीय (होनेपर भी)	**गूढः**	छिपे सबके
		गुहाशयः	हृदय निवासी,

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

साक्षी	साक्षी,	ईश्वरः	सर्वसमर्थ हो
महापुरुष	पुरुषोत्तम		॥१२॥

आत्मनाऽऽत्माश्रयः पूर्वं मायया ससृजे गुणान् ।
तैरिदं सत्यसंकल्पः सृजस्यत्स्यवसीश्वरः ॥१३॥

आत्मना आत्माश्रयः पूर्वं मायया ससृजे गुणान् तैः इदं सत्यसङ्कल्पः सृजसि अवत्ससि अवसि ईश्वरः ॥१३॥

आत्मना	अपने द्वारा	तैः	उन (गुणों) से
आत्माश्रयः	अपने ही में स्थित रहकर	इदं	इस संसारकी
		सृजसि	उत्पत्ति करते हैं
पूर्वं	पहिले अपनी	अवत्ससि	प्रलय करते हैं,
मायया	मायासे	पासि	रक्षा करते हैं,
गुणान्	त्रिगुणोंको	ईश्वरः	आप परमेश्वर हैं
ससृजे	उत्पन्न किया,		॥१३॥
सत्यसङ्कल्पः	सत्य संकल्प आपने		

स त्वं भूधरभूतानां दैत्यप्रमथरक्षसाम् ।
अवतीर्णो विनाशाय सेतूनां रक्षणाय च ॥१४॥

स त्वं भूधरभूतानां दैत्य प्रमथ रक्षसां अवतीर्णः विनाशाय सेतूनां रक्षणाय च ॥१४॥

स त्वं	वही आप	च	तथा (धर्मकी)
भूधरभूतानां	पर्वत जैसे भारी बने	सेतूनां	मर्यादाकी
दैत्य प्रमथ	दैत्य, पिशाच और	रक्षणाय	रक्षा करनेके लिए
रक्षसां	राक्षसोंके	अवतीर्णः	अवतरित हुए हैं
विनाशाय	विनाशके लिए		॥१४॥

दिष्ट्या ते निहतो दैत्यो लीलयायं हयाकृतिः ।
यस्य हेषितसंत्रस्तास्त्यजन्त्यनिमिषा दिवम् ॥१५॥

दिष्ट्या ते निहतः दैत्यः लीलया अयं हय आकृतिः यस्य हेषित संत्रस्ताः त्यजन्ति अनिमिषा दिवम् ॥१५॥

यस्य	जिसकी	अयं हय	यह घोड़ेके
हेषित	हिनहिनाहटसे	आकृतिः	रूपवाला
संत्रस्ताः	भयभीत होकर	दैत्यः	दैत्य
अनिमिषा दिवं	देवता स्वर्ग	लीलया	खेलमें
त्यजन्ति	छोड़कर (भाग) जाते थे,	निहतः	मार दिया गया ॥१५॥
दिष्ट्या ते	सौभाग्यसे आपके द्वारा		

चाणूरं मुष्टिकं चैव मल्लानन्यांश्च हस्तिनम् ।
कंसं च निहतं द्रक्ष्ये परश्वोऽह्नि ते विभो ॥१६॥

चाणूरं मुष्टिकं च एव मल्लान् अन्यान् च हस्तिनं कंसं च निहतं द्रक्ष्ये परश्वः अह्नि ते विभो ॥१६॥

विभो	प्रभो !	च अन्यान्	तथा दूसरे
परश्वः अह्नि	परसोंके दिन	मल्लान्	पहलवानोंको,
ते निहतं	आपके द्वारा मारे गये	च हस्तिनं	एवं हाथीको
		च कंसं एव	और कंसको भी
चाणूरं मुष्टिकं	चाणूर, मुष्टिक,	द्रक्ष्ये	देखूंगा ॥१६॥

तस्यानु शङ्खयवनमुराणां नरकस्य च ।
पारिजातापहरणमिन्द्रस्य च पराजयम् ॥१७॥

तस्य अनु शंख यवन मुराणां नरकस्य च पारिजात अपहरणं इन्द्रस्य च पराजयम् ॥१७॥

तस्य अनु	उसके बाद	पारिजात	कल्पवृक्षका
शंख यवन	शंखासुर, कालयवन,	अपहरणं	हरण करना
मुराणां	मुर तथा	च इन्द्रस्य	तथा इन्द्रकी
नरकस्य च	नरकासुरका भी (मारा जाना)	पराजयं	पराजय (देखूंगा) ॥१७॥

उद्वाहं वीरकन्यानां वीर्यशुल्कादिलक्षणम् ।
नृगस्य मोक्षणं पापाद् द्वारकायां जगत्पते ॥१८॥

उद्वाहं वीर कन्यानां वीर्य शुल्क आदि लक्षणं नृगस्य मोक्षणं पापात् द्वारकायां जगत्पते ॥१८॥

जगत्पते	जगदीश्वर !	**उद्वाहं**	विवाह तथा
वीर्यशुल्क	पराक्रमका मूल्य देने	**द्वारकायां**	द्वारिकामें
आदि	आदि	**पापात् नृगस्य**	पापसे नृगको
लक्षणं	लक्षणोंवाले	**मोक्षणं**	छुटकारा देना
वीर	वीरोंकी		(देखूंगा) ॥१८॥
कन्यानां	कन्याओंसे (आपका)		

स्यमन्तकस्य च मणेरादानं सह भार्यया ।
मृतपुत्रप्रदानं च ब्राह्मणस्य स्वधामतः ॥१९॥

स्यमन्तकस्य च मणेः आदानं सह भार्यया मृतपुत्र प्रदानं च ब्राह्मणस्य स्वधामतः ॥१९॥

स्यमन्तकस्य	स्यमन्तक	**स्वधामतः**	अपने धामसे (ले
मणेः	मणिको		आकर)
भार्यया सह	पत्नी (जाम्बवती)	**ब्राह्मणस्य**	ब्राह्मणको
	के साथ	**मृतपुत्र**	(उसके) मरे पुत्रोंको
आदानं	ले आना	**प्रदानं च**	लौटाना भी
च	और		(देखूगा) ॥१९॥

पौण्ड्रकस्य वधं पश्चात् काशिपुर्याश्च दीपनम् ।
दन्तवक्त्रस्य निधनं चैद्यस्य च महाक्रतौ ॥२०॥

पौण्ड्रकस्य वधं पश्चात् काशिपुर्याः च दीपनं दन्तवक्त्रस्य निधनं चैद्यस्य च महाक्रतौ ॥२०॥

पौण्ड्रकस्य	पौण्ड्रकका	**पश्चात्**	उसके पीछे
वधं	मारा जाना,	**काशिपुर्याः**	काशीपुरीका

दीपनं च	जलाया जाना भी,	चैद्यस्य	शिशुपालका
दन्तवक्त्रस्य	दन्तवक्रका	निधनं	मारा जाना भी
च	तथा		॥२०॥
महाक्रतौ	महायज्ञ राजसूयमें		

यानि चान्यानि वीर्याणि द्वारकामावसन् भवान् ।
कर्ता द्रक्ष्याम्यहं तानि गेयानि कविभिर्भुवि ॥२१॥

यानि च अन्यानि वीर्याणि द्वारकां आवसन् भवान् कर्ता द्रक्ष्यामि अहं तानि गेयानि कविभिः भुवि ॥२१॥

च	तथा	तानि कविभिः	उन कवियों द्वारा
यानि अन्यानि	जो दूसरे	भुवि	पृथ्वीके
वीर्याणि	पराक्रम	गेयानि	गायी जानेवाली
भवान् द्वारकां	आप द्वारिकामें		(लीलाओं) का
आवसन् कर्ता	रहते हुए करनेवाले हैं	अहं द्रक्ष्यामि	मैं दर्शन करूँगा ॥२१॥

अथ ते कालरूपस्य क्षपयिष्णोरमुष्य वै ।
अक्षौहिणीनां निधनं द्रक्ष्याम्यर्जुनसारथेः ॥२२॥

अथ ते कालरूपस्य क्षपयिष्णोः अमुष्य वै अक्षौहिणीनां निधनं द्रक्ष्यामि अर्जुन सारथेः ॥२२॥

वै अमुष्य	निश्चय इस (भूमि) का	सारथेः	सारथि द्वारा
		अथ	फिर अनेक
क्षपयिष्णोः	(भार) दूर करनेकी इच्छावाले	अक्षौहिणीनां	अक्षौहिणी सेनाओं-को
ते कालरूपस्य	आप कालस्वरूप	निधनं	मारा जाना
अर्जुन	अर्जुनके	द्रक्ष्यामि	देखूंगा ॥२२॥

विशुद्धविज्ञानघनं स्वसंस्थया
समाप्तसर्वार्थममोघवाञ्छितम् ।

स्वतेजसा नित्यनिवृत्तमाया-
गुणप्रवाहं भगवन्तमीमहि ॥२३॥

विशुद्ध विज्ञानघनं स्वसंस्थया सम आप्त सर्व अर्थं अमोघवाञ्छितं स्वतेजसा नित्यनिवृत्त माया गुणप्रवाहं भगवन्तं ईमहि ॥२३॥

विशुद्ध	विशुद्ध	माया	मायाकी
विज्ञानघनं	विज्ञानघन,	गुणप्रवाहं	गुण-धारासे
स्वसंस्थया	अपने स्वरूपमें	नित्यनिवृत्त	सदा निवृत्त (मायातीत)
सर्वं अर्थं	सब पदार्थोंको	भगवन्तं	भगवान्‌की मैं
सम आप्त	पूर्ण प्राप्त किए (पूर्ण काम)	ईमहि	शरण-ग्रहण करता हूँ ॥२३॥
अमोघवाञ्छितं	अमोघ संकल्प		
स्वतेजसा	अपने तेजसे		

त्वामीश्वरं स्वाश्रयमात्ममायया
विनिर्मिताशेषविशेषकल्पनम् ।
क्रीडार्थमद्यात्तमनुष्यविग्रहं
नतोऽस्मि धुर्यं यदुवृष्णिसात्वताम् ॥२४॥

त्वां ईश्वरं स्व आश्रयं आत्ममायया विनिर्मित अशेष विशेष कल्पनं क्रीडा अर्थं उपात्त मनुष्यविग्रहं नतः अस्मि धुर्यं यदुवृष्णि सात्वताम् ॥२४॥

त्वां ईश्वरं	आप सबके नियन्ता,	क्रीडा	क्रीड़ाके
स्व	अपनेपर ही	अर्थं	लिए (इस समय)
आश्रयं	अवलम्बित (परम स्वतन्त्र)	मनुष्यविग्रहं	मनुष्य शरीर
आत्ममायया	अपनी मायासे	उपात्त	धारण किये
अशेष	सम्पूर्ण	यदुवृष्णि	यदु, वृष्णि,
विशेष	विशेषताओं (भेद) की	सात्वतां	सात्वत वंशियोंके
कल्पनं	कल्पनाको	धुर्यं	शिरोमणि आपको
विनिर्मित	उत्पन्न करनेवाले,	नतः अस्मि	मैं नमस्कार करता हूँ ॥२४॥

श्रीशुक उवाच

एवं यदुपतिं कृष्णं भागवतप्रवरो मुनिः ।
प्रणिपत्याभ्यनुज्ञातो ययौ तद्दर्शनोत्सवः ॥२५॥

एवं यदुपतिं कृष्णं भागवत प्रवरः मुनिः प्रणिपत्याभ्य अनुज्ञातः ययौ तत् दर्शन उत्सवः ॥२५॥

एवं	इस प्रकार	**प्रणिपत्याभ्य**	प्रणाम करके
भागवत	भगवद् भक्तोंमें	**अनुज्ञातः**	उनकी अनुमति
प्रवरः	श्रेष्ठ		पाकर
मुनिः	मुनि नारदजी	**तत् दर्शन**	उनके दर्शनसे
यदुपतिं	यदुपति	**उत्सवः**	आनन्दित होकर
कृष्णं	श्रीकृष्णको	**ययौ**	चले गये ॥२५॥

भगवानपि गोविन्दो हत्वा केशिनमाहवे ।
पशूनपालयत् पालैः प्रीतैर्व्रजसुखावहः ॥२६॥

भगवान् अपि गोविन्दः हत्वा केशिनं आहवे पशून् अपालयत् पालैः प्रीतैः व्रज सुख आवहः ॥२६॥

व्रज	व्रजवासियोंको	**केशिनं हत्वा**	केशीको मारकर
सुख आवहः	आनन्द देनेवाले	**प्रीतैः**	प्रसन्न हुए
भगवान्	भगवान्	**पालैः**	गोपालकोंके साथ
गोविन्दः अपि	गोविन्द भी	**पशून्**	पशु-पालन
आहवे	युद्धमें	**अपालयत्**	करने लगे ॥२६॥

एकदा ते पशून् पालाश्चारयन्तोऽद्रिसानुषु ।
चक्रुर्निलायनक्रीडाश्चोरपालापदेशतः ॥२७॥

एकदा ते पशून् पालाः चारयन्तः अद्रिसानुषु चक्रुः निलायन क्रीडाः चोरपाल अपदेशतः ॥२७॥

एकदा	एक बार	**अद्रिसानुषु**	पर्वतके शिखरपर
ते पालाः	वे पशुपालक	**पशून् चारयन्तः**	पशु चराये हुए

चोरपाल	चोर और पालकके	निलायन क्रीडाः	छिपनेका खेल
अपदेशतः	बहानेसे	चक्रुः	करने लगे ॥२७॥

तत्रासन् कतिचिच्चोराः पालाश्च कतिचिन्नृप ।
मेषायिताश्च तत्रैके विजह्रुरकुतोभयाः ॥२८॥

तत्र आसन् कतिचित् चोराः पालाः च कतिचित् नृप मेषायिताः च तत्र एके विजह्रुः अकुतः भयाः ॥२८॥

नृप	राजन् !	मेषायिताः	भेड़ बने
तत्र	उस (खेल) में	आसन्	थे (इस प्रकार)
कतिचित्	कुछ (बालक)	अकुतः भयाः	सब ओरसे निर्भय होकर
चोराः	चोर,	विजह्रुः	क्रीड़ा कर रहे थे ॥२८॥
कतिचित्	कुछ		
पालाः	पालक (रक्षक)		
च तत्र एके	तथा उसमें दूसरे		

मयपुत्रो महामायो व्योमो गोपालवेषधृक् ।
मेषायितानपोवाह प्रायश्चोरायितो बहून् ॥२९॥

मयपुत्रः महामायः व्योमः गोपाल वेष धृक् मेषायितान् अपोवाह प्रायः चोरायितः बहून् ॥२९॥

महामायः	महामायावी	मेषायितान्	भेड़ बने (बालकों) को तथा
मयपुत्रः	मयदानवका पुत्र	प्रायः बहून्	प्रायः बहुतसे
व्योमः	व्योमासुर	चोरायितः	चोर बने हुओंको भी
गोपाल	गोप बालकका	अपोवाह	चुरा ले गया ॥२९॥
वेष धृक्	रूप बनाकर		

गिरिदर्यां विनिक्षिप्य नीतं नीतं महासुरः ।
शिलया पिदधे द्वारं चतुःपञ्चावशेषिताः ॥३०॥

गिरिदर्यां विनिक्षिप्य नीतं नीतं महा असुरः शिलया पिदधे द्वारं चतुः पञ्च अवशेषिताः ॥३०॥

महा असुरः	वह महा दानव,	**द्वारं शिलया**	उसके द्वारको चट्टानसे
नीतं नीतं	बार-बार लाये (बालकों) को	**पिदधे**	बन्द कर देता था
गिरिदर्यां	पर्वतकी कन्दरामें	**चतुः पञ्च**	(इस प्रकार) चार-पांच (बालक)
विनिक्षिप्य	फेंककर	**अवशेषिताः**	बच रहे ॥३०॥

तस्य तत् कर्म विज्ञाय कृष्णः शरणदः सताम् ।
गोपान् नयन्तं जग्राह वृकं हरिरिवौजसा ॥३१॥

तस्य तत् कर्म विज्ञाय कृष्णः शरणदः सतां गोपान् नयन्तं जग्राह वृकं हरिः इव ओजसा ॥३१॥

सतां	सत्पुरुषोंके	**गोपान् नयन्तं**	गोपोंको ले जाते समय
शरणदः	शरणदाता	**वृकं हरिः**	भेड़ियेको सिंहके
कृष्णः	श्रीकृष्णने	**इव**	समान
तस्य तत्	उसके उस	**ओजसा**	बलपूर्वक
कर्म	कर्मको	**जग्राह**	पकड़ लिया ॥३१॥
विज्ञाय	जानकर		

स निजं रूपमास्थाय गिरीन्द्रसदृशं बली ।
इच्छन् विमोक्तुमात्मानं नाशक्नोद् ग्रहणातुरः ॥३२॥

स निजं रूपं आस्थाय गिरीन्द्र सदृशं बली इच्छन् विमोक्तुं आत्मानं न अशक्नोत् ग्रहण आतुरः ॥३२॥

ग्रहण	पकड़े जानेसे	**आत्मानं**	अपनेको
आतुरः	व्याकुल होकर	**विमोक्तुं**	छुड़ाना
गिरीन्द्र सदृशं	पर्वतराजके समान	**इच्छन्**	चाहा; किन्तु
निजं रूपं	अपना रूप	**अशक्नोत् न**	समर्थ नहीं हुआ ॥३२॥
आस्थाय	धारण करके		
स बली	उस बलवानने		

तं निगृह्याच्युतो दोर्भ्यां पातयित्वा महीतले ।
पश्यतां दिवि देवानां पशुमारममारयत् ॥३३॥

तं निगृह्य अच्युतः दोर्भ्यां पातयित्वा महीतले पश्यतां दिवि देवानां पशुमारं अमारयत् ॥३३॥

अच्युतः तं	श्रीकृष्णने उसे	**देवानां**	देवताओंके
दोर्भ्यां	दोनों हाथोंसे	**पश्यतां**	देखते हुए
निगृह्य	जकड़कर	**पशुमारं**	पशुकी भांति (गला घोंटकर)
महीतले	पृथ्वीपर	**अमारयत्**	मार डाला ॥३३॥
पातयित्वा	पटककर		
दिवि	आकाशसे		

गुहापिधानं निर्भिद्य गोपान् निःसार्य कृच्छ्रतः ।
स्तूयमानः सुरैर्गोपैः प्रविवेश स्वगोकुलम् ॥३४॥

गुहा पिधानं निर्भिद्य गोपान् निःसार्य कृच्छ्रतः स्तूयमानः सुरैः गोपैः प्रविवेश स्वगोकुलम् ॥३४॥

गुहा	गुफाके	**सुरैः**	देवताओं द्वारा
पिधानं	ढक्कनको	**स्तूयमानः**	स्तुत होते
निर्भिद्य	तोड़कर	**गोपैः**	गोपोंके साथ
गोपान्	गोपोंको	**स्वगोकुलं**	अपने गोष्ठमें
कृच्छ्रतः	उस संकटसे	**प्रविवेश**	प्रविष्ट हुए ॥३४॥
निःसार्य	निकालकर		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे व्योमासुरवधो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

अथ अष्टत्रिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

अक्रूरोऽपि च तां रात्रिं मधुपुर्यां महामतिः ।
उषित्वा रथमास्थाय प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥१॥

अक्रूरः अपि च तां रात्रिं मधुपुर्यां महामतिः उषित्वा रथं आस्थाय प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥१॥

महामतिः	परम बुद्धिमान	च	तथा
अक्रूरः अपि	अक्रूर भी	रथं	(सबेरे) रथपर
तां रात्रिं	वह रात	आस्थाय	बैठकर
मधुपुर्यां	मथुरामें	नन्दगोकुलं	नन्द-व्रजको
उषित्वा	बिताकर	प्रययौ	चल पड़े ॥१॥

गच्छन् पथि महाभागो भगवत्यम्बुजेक्षणे ।
भक्तिं परामुपगत एवमेतदचिन्तयत् ॥२॥

गच्छन् पथि महाभागः भगवति अम्बुज ईक्षणे भक्तिं परां उपगतः एवं एतत् अचिन्तयत् ॥२॥

महाभागः	वे परम भाग्यवान	परां भक्तिं	परम भक्तिमें
पथि गच्छन्	मार्गमें जाते हुए	उपगतः	मग्न होकर
अम्बुज ईक्षणे	कमल-लोचन	एतत् एवं	यह इस प्रकार
भगवति	भगवानमें	अचिन्तयत्	सोचने लगे ॥२॥

किं मयाऽऽचरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः ।
किं वाथाप्यर्हते दत्तं यद् द्रक्ष्याम्यद्य केशवम् ॥३॥

किं मया आचरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः किं वा अथ अपि अर्हते दत्तं यत् द्रक्ष्यामि अद्य केशवम् ॥३॥

मया किं	मैंने ऐसा कौन-सा	**अर्हते अपि**	किसी पूजनीयको भी
भद्रं आचरितं	शुभकर्म किया है,	**किं दत्तं**	क्या दिया है
किं परमं	कौन-सी उत्तम	**यत् अद्य**	जिससे आज
तपः	तपस्या	**केशवं**	भगवान् श्रीकृष्णका
तप्तं	की है,	**द्रक्ष्यामि**	दर्शन करूँगा ॥३॥
वा अथ	अथवा फिर		

ममैतद् दुर्लभं मन्य उत्तमश्लोकदर्शनम् ।
विषयात्मनो यथा ब्रह्मकीर्तनं शूद्रजन्मनः ॥४॥

मम एतत् दुर्लभं मन्य उत्तम श्लोक दर्शनं विषय आत्मनः यथा ब्रह्मकीर्तनं शूद्रजन्मनः ॥४॥

यथा	जैसे	**एतत्**	यह
शूद्रजन्मनः	शूद्र जातिमें उत्पन्नके लिए	**उत्तम श्लोक**	पवन कीर्ति (श्रीकृष्ण) का
ब्रह्मकीर्तनं	वेद-पाठ (ऐसे)	**दर्शनं**	दर्शन
मम विषय	मुझ विषयी	**दुर्लभं मन्य**	दुर्लभ मानता हूँ ॥४॥
आत्मनः	चित्तके लिए		

मैवं ममाधमस्यापि स्यादेवाच्युतदर्शनम् ।
ह्रियमाणः कालनद्या क्वचित्तरति कश्चन ॥५॥

मा एवं मम अधमस्य अपि स्यात् एव अच्युत दर्शनं ह्रियमाणः कालनद्या क्वचित् तरति कश्चन ॥५॥

मा एवं	ऐसा नहीं,	**कालनद्या**	कालरूपी नदीमें
मम	मुझ	**ह्रियमाणः**	बहाया जाता हुआ
अधमस्य अपि	अधमको भी	**क्वचित् कश्चन**	कभी कोई (जीव)
अच्युत	भगवान् श्रीकृष्णका	**तरति**	पार भी हो जाता है ॥५॥
दर्शनं	दर्शन		
स्यात् एव	होगा ही; क्योंकि		

ममाद्यामङ्गलं नष्टं फलवांश्चैव मे भवः ।
यन्नमस्ये भगवतो योगिध्येयाङ्घ्रिपङ्कजम् ॥६॥

मम अद्य अमङ्गलं नष्टं फलवान् च एव मे भवः यत् नमस्ये भगवतः योगिध्येय अङ्घ्रि पङ्कजम् ॥६॥

अद्य मम	आज मेरे	**योगिध्येय**	योगियोंके ध्यानके विषय
अमङ्गलं	सब अमंगल	**भगवतः**	भगवान्‌के
नष्टं	नष्ट हो गये	**अङ्घ्रि पङ्कजं**	चरण-कमलोंको
च मे	तथा मेरा	**नमस्ये**	नमस्कार करूँगा ॥६॥
भवः	जन्म लेना		
फलवान् एव	सफल ही हो गया		
यत्	जो		

कंसो बताद्याकृत मेऽत्यनुग्रहं
द्रक्ष्येऽङ्घ्रिपद्मं प्रहितोऽमुना हरेः ।
कृतावतारस्य दुरत्ययं तमः
पूर्वेऽतरन् यन्नखमण्डलत्विषा ॥७॥

कंसः बत अद्य अकृत मे अति अनुग्रहं द्रक्ष्ये अङ्घ्रि पद्मं प्रहितः अमुना हरेः कृत अवतारस्यः दुरत्ययं तमः पूर्वे अतरन् यत् नखमण्डल त्विषा ॥७॥

बत कंसः	अरे कंसने तो	**द्रक्ष्ये**	दर्शन करूँगा
अद्य	आज	**यत्**	जिनके
मे	मुझपर	**नखमण्डल**	नख-मंडलकी
अति अनुग्रहं	बड़ी भारी कृपा	**त्विषा**	ज्योतिसे
अकृत	की है; क्योंकि	**पूर्वे**	पहिले हुए
अमुना प्रहितः	उसीके भेजनेसे	**दुरत्ययं**	महापुरुष दुष्पार
कृत अवतारस्य	अवतार धारण किये	**तमः**	अज्ञानान्धकारको
हरेः	श्रीहरिके	**अतरन्**	पार हो गये हैं ॥७॥
अङ्घ्रि पद्मं	(उन) चरण-कमलों-का		

यदर्चितं ब्रह्मभवादिभिः सुरैः
श्रिया च देव्या मुनिभिः ससात्वतैः ।
गोचारणायानुचरैश्चरद्वने
यद् गोपिकानां कुचकुङ्कुमाङ्कितम् ॥८॥

यत् अर्चितं ब्रह्म भव आदिभिः सुरैः श्रिया च देव्या मुनिभिः स सात्वतैः गोचारणाय अनुचरैः चरद् वने यत् गोपिकानां कुचकुङ्कुम अङ्कितम् ॥८॥

यत् ब्रह्म	जो (चरण) ब्रह्मा,	गोचारणाय	गायें चरानेके लिए
भव आदिभिः	शिवादि	अनुचरैः	अनुचरोंके साथ
सुरैः	देवताओं द्वारा,	वने	वनमें
देव्या श्रिया	देवी लक्ष्मी द्वारा	चरत्	घूमते हैं और
च	तथा	यत् गोपिकानां	जो गोपियोंके
ससात्वतैः	भगवद्भक्तोंके साथ	कुचकुङ्कुम	वक्षपर लगे कुंकुमसे
मुनिभिः	मुनियों द्वारा	अङ्कितं	चिह्नित हैं ॥८॥
अर्चितं	पूजित होते हैं,		

द्रक्ष्यामि नूनं सुकपोलनासिकं
स्मितावलोकारुणकञ्जलोचनम् ।
मुखं मुकुन्दस्य गुडालकावृतं
प्रदक्षिणं मे प्रचरन्ति वै मृगाः ॥९॥

द्रक्ष्यामि नूनं सुकपोल नासिकं स्मित अवलोक अरुण कञ्चलोचनं मुखं मुकुन्दस्य गुड अलक आवृतं प्रदक्षिणं मे प्रचरन्ति वै मृगाः ॥९॥

नूनं	निश्चय	अवलोक	साथ देखते
सुकपोल	सुन्दर कपोल,	अरुण	अरुण
नासिकं	नासिकावाले	कञ्जलोचनं	कमलसे नेत्रोंवाले
स्मित	मुस्कराहटके	गुड	घुंघराली

अलक आवृतं	अलकोंसे घिरे	वै मृगाः मे	क्योंकि ये मृग मेरे
मुकुन्दस्य मुखं	मुकुन्दके श्रीमुखका	प्रदक्षिणं	दाहिने
द्रक्ष्यामि	दर्शन करूँगा	प्रचरन्ति	चल रहे हैं ॥९॥

अप्यद्य विष्णोर्मनुजत्वमीयुषो
भारावताराय भुवो निजेच्छया ।
लावण्यधाम्नो भवितोपलम्भनं
मह्यं न न स्यात् फलमञ्जसा दृशः ॥१०॥

अपि अद्य विष्णोः मनुजत्वं ईयुषोः भार अवताराय भुवः निज इच्छया लावण्य धाम्नः भविता उपलम्भनं मह्यं न न स्यात् फलं अञ्जसा दृशः ॥१०॥

भुवः भार	पृथ्वीका भार	मह्यं अञ्जसा	मुझे सरलतापूर्वक
अवताराय	उतारनेके लिए	अपि उपलम्भनं	क्या साक्षात्कार
निज इच्छया	स्वेच्छा पूर्वक	भविता	होगा ?
मनुजत्वं	मनुष्य रूप	दृशः	दृष्टि (मिलने) का
ईयषोः	धारण किये	फलं न	जिनके अतिरिक्त
विष्णोः	श्रीहरिके		दूसरा फल
लावण्य धाम्नः	सौन्दर्य धाम (श्रीविग्रह) का	न स्यात्	नहीं है ॥१०॥

य ईक्षिताहंरहितोऽप्यसत्सतोः
स्वतेजसापास्ततमोभिदाभ्रमः ।
स्वमायया ऽऽत्मन् रचितैस्तदीक्षया
प्राणाक्षधीभिः सदनेष्वभीयते ॥११॥

यः ईक्षिता अहं रहितः अपि असत् सतोः स्वतेजसा अपास्त तमः भिदाभ्रमः स्वमायया आत्मन् रचितैः तत् ईक्षया प्राण अक्षधीभिः सदनेषु अभीयते ॥११॥

असत् सतोः	सदमत् रूपा
तमः	मायाके
भिदाभ्रमः	भेदभ्रमको
स्वतेजसा	अपने तेजसे
अपास्त	मिटाकर
यः अहं रहितः	जो अहंकार रहित
अपि	होनेपर भी
ईक्षिता	उसके द्रष्टा हैं,
स्वमायया	अपनी मायासे
आत्मन्	अपने भीतर ही
रचितैः	निर्मित (जगत) को
तत्	उसके
ईक्षया	द्रष्टा (अन्तर्यामी) होनेके कारण
प्राण	प्राण,
अक्षधीभिः	नेत्रादि इन्द्रय, बुद्धिके द्वारा
सदनेषु	उनके घरों (गोलकों) में
अभीयते	(चेतन रूपसे) प्रतीत होते हैं ॥११॥

यस्याखिलामीवहभिः सुमङ्गलै-
र्वाचो विमिश्रा गुणकर्मजन्मभिः ।
प्राणन्ति शुम्भन्ति पुनन्ति वै जगद्
यास्तद्विरक्ताः शवशोभना मताः ॥१२॥

तस्य अखिल अमी बहुभिः सुमङ्गलैः वाचः विमिश्रा गुणकर्म जन्मभिः प्राणन्ति शुम्भन्ति पुनन्ति वै जगत् याः तत् विरक्ताः शव शोभना मताः ॥१२॥

अमी अखिल	यह सम्पूर्ण
वाचः	(शास्त्र) वाणी
तस्य बहुभिः	उनके बहुतसे
सुमङ्गलैः	मंगलमय
गुणकर्म	गुणों, चरितों,
जन्मभिः	अवतार-वर्णन
विमिश्रा	से युक्त होकर
वै जगत्	निश्चय संसारको
प्राणन्ति	स्फूर्तिवान्
शुम्भन्ति	मंगलमय,
पुनन्ति	पवित्र (पाप हीन) बनाती है
याः तत्	जो उनसे
विरक्ता	रहित (वाणी) है
शोभना	सुन्दर होनेपर भी
शव मताः	निष्प्राण मानी जाती है ॥१२॥

स चावतीर्णः किल सात्वतान्वये
स्वसेतुपालामरवर्यशर्मकृत् ।
यशो वितन्वन् व्रज आस्त ईश्वरो
गायन्ति देवा यदशेषमङ्गलम् ॥१३॥

स च अवतीर्णः किल सात्वत अन्वये स्वसेतुपाल अमरवर्य शर्मकृत् यशः वितन्वन् व्रज आस्त ईश्वरः गायन्ति देवा यत् अशेष मङ्गलम् ॥१३॥

स्वसेतुपाल	अपनी मर्यादाओंके रक्षक	यशः	अपने यशका
		वितन्वन्	विस्तार करते
अमरवर्य	देव श्रेष्ठ	व्रज आस्त	(इस समय) व्रजमें हैं
शर्मकृत्	परमानन्द दाता	यत् अशेष	जिनके सम्पूर्ण
स च ईश्वरः	वही परमेश्वर	मङ्गलं	मंगलमय चरितोंका
किल	अहो,	देवा गायन्ति	देवता वर्णन करते हैं ॥१३॥
सात्वत अन्वये	सात्वत वंशमें		
अवतीर्णः	अवतरित हुए हैं		

तं त्वद्य नूनं महतां गतिं गुरुं
त्रैलोक्यकान्तं दृशिमन्महोत्सवम् ।
रूपं दधानं श्रिय ईप्सितास्पदं
द्रक्ष्ये ममासन्नुषसः सुदर्शनाः ॥१४॥

तं तु अद्य नूनं महतां गतिं गुरुं त्रैलोक्य कान्तं दृशिमत् महोत्सवं रूपं दधानं श्रिय ईप्सित आस्पदं द्रक्ष्ये मम आसन् उषसः सुदर्शनाः ॥१४॥

महतां	महात्माओंकी	आस्पदं	आधार स्वरूप
गतिं गुरुं	परम गति तथा गुरु	रूपं दधानं	रूप धारण किये
त्रैलोक्य कान्तं	त्रिभुवन मोहन	अद्य तं तु	आज उनका तो
दृशिमत्	नेत्रवालोंको	नूनं द्रक्ष्ये	निश्चय दर्शन करूँगा
महोत्सवं	परमानन्द-दायक	मम सुदर्शनाः	मुझे शुभ शकुन
श्रिय ईप्सित	लक्ष्मीकी अभिलाषा-का	उषसः	सबेरेसे ही
		आसन्	हो रहे हैं ॥१४॥

अथावरूढः सपदीशयो रथात्
प्रधानपुंसोश्चरणं स्वलब्धये ।
धिया धृतं योगिभिरप्यहं ध्रुवं
नमस्य आभ्यां च सखीन् वनौकसः ॥१५॥

अथ अवरूढः सपदि ईशयोः रथात् प्रधानपुंसोः चरणं स्वलब्धये धिया धृतं योगिभिः अपि अहं ध्रुवं नमस्य आभ्यां च सखीन् वनौकसः ॥१५॥

स्वलब्धये	आत्म प्राप्तिके लिए	वनौकसः	वनवासी
योगिभिः	योगियों द्वारा	सखीन्	सखाओंका
धिया	चित्तमें (जिनका)	चरणं	चरणोंमें
धृतं	चिन्तन किया जाता है	अथ रथात्	फिर रथसे
		सपदि अवरूढः	झटपट कूदकर
प्रधानपुंसोः	उन प्रधान पुरुष	ध्रुवं अहं अपि	निश्चय मैं भी
ईशयोः	समर्थ दोनों भाइयोंके	नमस्य	प्रणाम करूँगा
च आभ्यां	तथा इनके		॥१५॥

अप्यङ्घ्रिमूले पतितस्य मे विभुः
शिरस्यधास्यन्निजहस्तपङ्कजम् ।
दत्ताभयं कालभुजङ्गरंहसा
प्रोद्वेजितानां शरणैषिणां नृणाम् ॥१६॥

अपि अङ्घ्रिमूले पतितस्य मे विभुः शिरसि अधास्यत् निज हस्त पङ्कजं दत्त अभयं काल भुजङ्ग रंहसा प्रोद्वेजितानां शरण ईषिणां नृणाम् ॥१६॥

अङ्घ्रिमूले	चरणोंपर	काल भुजङ्ग	कालरूपी सर्पके
पतितस्य मे	गिरे हुए मेरे	रंहसा	वेगसे
शिरसि अपि	सिरपर भी	प्रोद्वेजितानां	उद्विग्न
विभुः	वे प्रभु,	शरण ईषिणां	शरण चाहनेवाले

नृणां	मनुष्योंको	पङ्कजं	कमल
दत्त अभयं	अभय देनेवाले	अधास्यत्	रखेंगे ॥१६॥
निज हस्त	अपना हस्त-		

समर्हणं यत्र निधाय कौशिक-
स्तथा बलिश्चाप जगत्त्रयेश्वरताम् ।
यद् वा विहारे व्रजयोषितां श्रमं
स्पर्शेन सौगन्धिकगन्ध्यपानुदत् ॥१७॥

सम अर्हणं यत्र निधाय कौशिकः तथा बलिः च आप जगत् त्रय इन्द्रतां यत् वा विहारे व्रजयोषितां श्रमं स्पर्शेन सौगन्धिक गन्धि उपानुदत् ॥१७॥

सम अर्हणं	पूजाकी भेंट	गन्धि	सुगन्धितवाले
यत्र निधाय	जिन (करों) में देकर	स्पर्शेन	(करोंके) स्पर्शसे
कौशिकः च	इन्द्र और	विहारे	रासक्रीड़ाके समय
बलिः	बलिने	व्रजयोषितां	व्रजस्त्रियोंकी
जगत् त्रय	त्रिलोकीका	श्रमं	थकावट
इन्द्रतां आप	इन्द्रत्व प्राप्त किया	उपानुदत्	दूर हो गयी थी ॥१७॥
वा यत्	अथवा जिन		
सौगन्धिक	दिव्य कमलोंकी		

न मय्युपैष्यत्यरिबुद्धिमच्युतः
कंसस्य दूतः प्रहितोऽपि विश्वदृक् ।
योऽन्तर्बहिश्चेतस एतदीहितं
क्षेत्रज्ञ ईक्षत्यमलेन चक्षुषा ॥१८॥

न मयि उप एष्यति अरि बुद्धि अच्युतः कंसस्य दूतः प्रहितः अपि विश्वदृक् यः अन्तः बहिः चेतस एतत् ईहितं क्षेत्रज्ञ ईक्षति अमलेन चक्षुषा ॥१८॥

यः क्षेत्रज्ञ	जो क्षेत्रज्ञ रूपसे
अमलेन चक्षुषा	अपने निर्मल नेत्रोंसे
एतत् अन्तः	इसके चित्तके
चेतस	भीतर
बहिः ईहितं	तथा बाहर चेष्टा
ईक्षति	देखते रहते हैं
विश्वदृक्	वे सर्वज्ञ
अच्युतः	श्रीकृष्ण
कंसस्य प्रहितः	कंसका भेजा हुआ
दूतः अपि	दूत होनेपर भी
अरि बुद्धि	शत्रु भावसे
मयि न	मेरे समीप नहीं
उप एष्यति	आवेंगे ॥१८॥

अप्यङ्घ्रिमूलेऽवहितं कृताञ्जलिं
मामीक्षिता सस्मितमार्द्रया दृशा ।
सपद्यपध्वस्तसमस्तकिल्बिषो
वोढा मुदं वीतविशङ्क ऊर्जिताम् ॥१९॥

अपि अङ्घ्रिमूले अवहितं कृत अञ्जलिं माम् ईक्षिता सस्मितं आर्द्रया दृशा सपदि अपध्वस्त समस्त किल्बिषः वोढा मुदं वीतविशङ्क ऊर्जिताम् ॥१९॥

अङ्घ्रिमूले	(अपने) चरणोंके समीप
कृत अञ्जलि	हाथ जोड़े
अवहितं मां	खड़े मुझे
अपि	भी
सस्मितं	मुस्कराते
आर्द्रया	(कृपा पूर्ण) स्निग्ध
दृशा ईक्षिता	दृष्टिसे देखेंगे
सपदि	(तब) तत्काल
समस्त	सम्पूर्ण
किल्बिषः	पापोंके
अपध्वस्त	नष्ट हो जानेपर
वीतविशङ्क	निःशंक होकर मैं
ऊर्जितां मुदं	प्रवृद्ध आनन्दको
वोढा	ढोऊँगा (प्राप्त करूँगा) ॥१९॥

सुहृत्तमं ज्ञातिमनन्यदैवतं
दोर्भ्यां बृहद्भ्यां परिरप्स्यतेऽथ माम् ।
आत्मा हि तीर्थीक्रियते तदैव मे
बन्धश्च कर्मात्मक उच्छ्वसित्यतः ॥२०॥

सुहृत्तमं ज्ञातिं अनन्य दैवतं दोर्भ्यां बृहद्भ्यां परिरप्स्यते अथ मां आत्मा हि तीर्थी क्रियते तत् एव मे बन्धः च कर्म आत्मक उच्छ्वसति इतः ॥२०॥

हि	क्योंकि (उनका) निकट	बृहद्भ्यां	अपनी विशाल
		दोर्भ्यां	भुजाओंसे
सुहृत्तमं	सम्बन्धी हूँ,	परिरप्स्यते	आलिंगन करेंगे
ज्ञातिं	जातिका हूँ,	हि तत् एव	फिर तो उसी समय
अनन्य	उनके अतिरिक्त	मे आत्मा	मेरा अन्तःकरण
दैवतं	दूसरा कोई मेरा आराध्य देवता नहीं है,	तीर्थी क्रियते	पवित्र हो जायगा
		च कर्म आत्मक	तथा कर्मजन्य
		बन्धः इतः	बन्धन यहांसे
अथ मां	अतः मेरा	उच्छ्वसति	टूट जायगा ॥२०॥

लब्धाङ्गसङ्गं प्रणतं कृताञ्जलिं
मां वक्ष्यतेऽक्रूर ततेत्युरुश्रवाः ।
तदा वयं जन्मभृतो महीयसा
नेवादृतो यो धिगमुष्य जन्म तत् ॥२१॥

लब्ध अङ्गसङ्गं प्रणतं कृत अञ्जलिं मां वक्ष्यते अक्रूर तत् इति उरुश्रवाः तदा वयं जन्मभृतां महीयसा न एव आदृतः यः धिक् अमुष्य जन्म तत् ॥२१॥

अङ्गसङ्गम्	आलिंगन	तदा वयं	उसी समय मैं
लब्ध्व	प्राप्त करके	जन्मभृतां	सब जन्म लेनेवालों में
तत्	फिर		
कृत अञ्जलि	हाथ जोड़कर	महीयसा	महान हो जाऊँगा,
मां प्रणतं	मुझे प्रणाम करते हुए	यः	जो (उनके द्वारा)
उरुश्रवाः	वे अनन्त कीर्ति	न आदृतः	सम्मानित नहीं हुआ
मां	मुझे	अमुष्य तत्	उसके उस
अक्रूर	(चाचा) अक्रूर	जन्म धिक्	जन्मको धिक्कार है ॥२१॥
इति	इस प्रकार		
वक्ष्यते	कहेंगे		

न तस्य कश्चिद्दयितः सुहृत्तमो
न चाप्रियो द्वेष्य उपेक्ष्य एव वा ।
तथापि भक्तान् भजते यथा तथा
सुरद्रुमो यद्वदुपाश्रितोऽर्थदः ॥२२॥

न तस्य कश्चित् दयितः सुहृत्तमः न च अप्रियः द्वेष्य उपेक्ष्य एव वा तथा अपि भक्तान् भजते यथा तथा सुरद्रुमः यद्वत् उपाश्रितः अर्थदः ॥२२॥

तस्य कश्चित्	उनका कोई	सुरद्रुमः	कल्पवृक्ष
दयितः न	प्रिय नहीं है,	उपाश्रितः	अपने समीप आयेका
सुहृत्तमः	घनिष्ट सम्बन्धी	अर्थदः	प्रयोजन देता (पूर्ण करता) है
अप्रियः	अप्रिय,	यथा भक्तान्	जो जैसा भक्त है
द्वेष्य वा	शत्रु अथवा	तथा	उसीके अनुसार
उपेक्ष्य एव	उपेक्षणीय भी	भजते	(भगवान उससे)
च न	नहीं है		मिलते हैं ॥२२॥
तथा अपि	ऐसा होनेपर भी		
यद्वत्	जैसे कि		

किञ्चाग्रजो मावनतं यदूत्तमः
स्मयन् परिष्वज्य गृहीतमञ्जलौ ।
गृहं प्रवेश्याप्तसमस्तसत्कृतं
संप्रक्ष्यते कंसकृतं स्वबन्धुषु ॥२३॥

किञ्च अग्रजः मा अवनतं यदूत्तमः स्मयन् परिष्वज्य गृहीतं अञ्जलौ गृहं प्रवेश्य आप्त समस्त सत्कृतं संप्रक्ष्यते कंसकृतं स्वबन्धुषु ॥२३॥

किञ्च	अधिक क्या	मा अवनतं	मुझ विनम्रका
यदूत्तमः	यदु श्रेष्ठ	स्मयन्	मुस्करा कर
अग्रजः	उनके बड़े भाई बलरामजी	परिष्वज्य	आलिंगन करके
		गृहीतं अञ्जलौ	दोनों हाथ पकड़कर

गृहं प्रवेश्य	घरमें ले जाकर	स्वबन्धुषु	अपने सम्बन्धियोंके साथ
समस्त सत्कृतं	सम्पूर्ण सत्कार		
आप्त	प्राप्त कर लेनेके पश्चात्	कंसकृतं	कंसका व्यवहार
		सम्प्रक्ष्यते	पूछेंगे ॥२३॥

श्रीशुक उवाच*

इति सञ्चिन्तयन् कृष्णं श्वफल्कतनयोऽध्वनि ।
रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिं नृप ॥२४॥

इति सञ्चिन्तयन् कृष्णं श्वफल्कतनयः अध्वनि रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यः च अस्त गिरिं नृप ॥२४॥

नृप	राजन् !	रथेन गोकुलं	रथसे गोकुल
श्वफल्कतनयः	श्वफल्क-पुत्र अक्रूर	प्राप्तः	(व्रज) पहुँचे
इति	इस प्रकार	च सूर्यः	तथा सूर्य
अध्वनि	मार्गमें	अस्त गिरिं	अस्ताचल (पहुँचे) ॥२४॥
कृष्णं	श्रीकृष्ण-		
सञ्चिन्तयन्	चिन्तन करते हुए		

पदानि तस्याखिललोकपाल-
किरीटजुष्टामलपादरेणोः ।
ददर्श गोष्ठे क्षितिकौतुकानि
विलक्षितान्यब्जयवाङ्कुशाद्यैः ॥२५॥

पदानि तस्य अखिल लोकपाल किरीट जुष्ट अमल पादरेणुः ददर्श गोष्ठे क्षिति कौतुकानि विलक्षित अन्य अब्जयव अङ्कुश आद्यैः ॥२५॥

---

* श्लोक ३ से श्लोक २३ तक 'अक्रूरोवाच' तो नहीं है; किन्तु 'अक्रूर-चिन्तन' होनेके कारण यहां फिरसे 'श्रीशुक उवाच' प्रायः सब प्रतियोंमें है।

अखिल	सम्पूर्ण
लोकपाल	लोकपालोंके
किरीट जुष्ट	मुकुटोंपर लगनेवाली
तस्य पदानि	उनके चरणोंकी
अमल पादरेणुः	निर्मल चरण-रज
क्षिति	पृथ्वीकी
कौतुकानि	आभरण रूपा
अब्जयव	कमल, यव
अङ्कुश	अंकुश
आद्यैः	आदि चिह्नोंसे
अन्य	दूसरों (के चरण चिह्नोंसे)
विलक्षित	पृथक पहिचानी जानेवाली
गोष्ठे ददर्श	गोष्ठमें (अक्रूरने) देखा ॥२५॥

तद्दर्शनाह्लादविवृद्धसम्भ्रमः
प्रेम्णोर्ध्वरोमाश्रुकलाकुलेक्षणः ।
रथादवस्कन्द्य स तेष्वचेष्टत
प्रभोरमून्यङ्घ्रिरजांस्यहो इति ॥२६॥

तत् दर्शन आह्लाद विवृद्ध सम्भ्रमः प्रेम्णा ऊर्ध्वरोमा अश्रुकला आकुल ईक्षणः रथात् अवस्कन्द्य स तेषु अचेष्टत प्रभोः अमूनि अङ्घ्रि-रजांसि अहो इति ॥२६॥

तत् दर्शन	उसको देखनेसे
विवृद्ध	अकुलाहट
सम्भ्रमः	बढ़ जानेसे
प्रेम्णा	प्रेमके मारे
उर्ध्वरोमा	रोम खड़े हो गये,
अश्रु कला	आंसुओंसे
आकुल ईक्षणः	नेत्र व्याकुल हो गये
अहो अमूनि	अहो यह
प्रभोः	मेरे स्वामीकी
अङ्घ्रिरजांसि	चरण-रज है
इति	इस भावसे
रथात्	रथसे
अवस्कन्द्य	कूदकर
स तेषु	वे उस (धूलि) में
अचेष्टत	लोटने लगे ॥२६॥

देहंभृतामियानर्थो हित्वा दम्भं भियं शुचम् ।
संदेशाद् यो हरेर्लिङ्गदर्शनश्रवणादिभिः ॥२७॥

देहं भृतां इयान् अर्थत हित्वा दम्भंभियं शुचं सदेशात् यः हरेः लिंग दर्शन श्रवण आदिभिः ॥२७॥

देहं	देह	लिङ्गं	चिह्न (मूर्ति आदि)
भृतां	धारण करनेवाले (जीव मात्र) का		के
		दर्शन श्रवण	दर्शन (लीला) श्रवण
इयान्	इतना ही	आदिभिः	आदिके द्वारा
अर्थः	परम स्वार्थ है कि	सन्देशात् यः	(कंसके) सन्देशसे
दम्भं भियं	दम्भ, भय,		जो (भाव अक्रूरमें
शुचं हित्वा	शोक त्यागकर		आया उसे प्राप्त
हरेः	श्रीहरिके		करें) ॥२७॥

ददर्श कृष्णं रामं च व्रजे गोदोहनं गतौ ।
पीतनीलाम्बरधरौ शरदम्बुरुहेक्षणौ ॥२८॥

ददर्श कृष्णं रामं च व्रजे गोदोहनं गतौ पीत नीलाम्बरधरौ शरत् अम्बुरुह ईक्षणौ ॥२८॥

व्रजे	व्रजमें	अम्बुरुह	कमलके समान
गोदोहनं	गोदोहनके लिए	ईक्षणौ	नेत्रोंवाले
गतौ	गये	कृष्णं च	श्रीकृष्ण तथा
पीत	पीताम्बर-	रामं	बलरामको
नीलाम्बधरौ	नीलाम्बर पहिने	ददर्श	(उन्होंने) देखा
शरत्	शरद-कालीन		॥२८॥

किशोरौ श्यामलश्वेतौ श्रीनिकेतौ बृहद्भुजौ ।
सुमुखौ सुन्दरवरौ बालद्विरदविक्रमौ ॥२९॥

किशोरौ श्यामलश्वेतौ श्रीनिकेतौ बृहत् भुजौ सुमुखौ सुन्दरवरौ बालद्विरद विक्रमौ ॥२९॥

श्यामलश्वेतौ	श्याम-गौर (दोनों भाई)	सुमुखौ	सुन्दर मुख
		सुन्दरवरौ	अत्यन्त सुन्दर
किशोरौ	किशोरावस्थाके	बालद्विरद	बाल गजके
श्रीनिकेतौ	शोभाधाम,		समान
बृहद् भुजौ	प्रलम्ब बाहु	विक्रमौ	चल रहे थे ॥२९॥

ध्वजवज्राङ्कुशाम्भोजैश्चिह्नितैरङ्घ्रिभिर्व्रजम् ।
शोभयन्तौ महात्मानावनुक्रोशस्मितेक्षणौ ॥३०॥

ध्वज वज्र अङ्कुश अम्भोजैः चिह्नितैः अङ्घ्रिभिः व्रजं शोभयन्तौ महात्मानौ अनुक्रोश स्मित ईक्षणौ ॥३०॥

ध्वज वज्र	ध्वजा, वज्र,	शोभयन्तौ	सुशोभित करते
अङ्कुश	अङ्कुश,	महात्मानौ	पुरुषोत्तम
अम्भोजैः	कमलके	अनुक्रोश	दया पूर्ण
चिह्नितैः	चिह्नोंसे युक्त	स्मित	मुसकराहटसे
अङ्घ्रिभिः	चरणोंसे	ईक्षणौ	देख रहे थे ॥३०॥
व्रजं	व्रजभूमिको		

उदाररुचिरक्रीडौ स्रग्विणौ वनमालिनौ ।
पुण्यगन्धानुलिप्ताङ्गौ स्नातौ विरजवाससौ ॥३१॥

उदार रुचिर क्रीडौ स्रग्विणौ वनमालिनौ पुण्यगन्ध अनुलिप्त अङ्गौ स्नातौ विरजवाससौ ॥३१॥

उदार	उदारतापूर्ण	पुण्य गन्ध	पवित्र गन्ध (चन्दन) से
रुचिर क्रीडौ	सुन्दर क्रीड़ा करने-वाले	अनुलिप्त अंगौ	सर्वांग लिप्त,
स्रग्विणौ	(मुक्ता) मालाधारी,	स्नातौ	स्नान करके
वनमालिनौ	वनमाला पहिने,	विरजवाससौ	निर्मल वस्त्र पहिने थे ॥३१॥

प्रधानपुरुषावाद्यौ जगद्धेतू जगत्पती ।
अवतीर्णौ जगत्यर्थे स्वांशेन बलकेशवौ ॥३२॥

प्रधान पुरुषाः आद्यौ जगत् हेतुः जगत् पतिः अवतीर्णौ जगति अर्थे स्व अंशेन बलकेशवौ ॥३२॥

जगत् हेतुः	जगत्के कारण	पुरुषाः	पुरुष स्वरूप
जगत् पतिः	जगत्के स्वामी	बल-	बलराम तथा
जगति	संसारके	केशवौ	श्रीकृष्ण रूपमें
अर्थे	(कल्याण) के लिए	स्व अंशेन	अपने अंश सहित
आद्यौ	आदि पुरुप ही	अवतीर्णौ	अवतरित हुए हैं
प्रधान	प्रकृति-		॥३२॥

दिशो वितिमिरा राजन् कुर्वाणौ प्रभया स्वया ।
यथा मारकतः शैलो रौप्यश्च कनकाचितौ ॥३३॥

दिशः वितिमिरा राजन् कुर्वाणौ प्रभया स्वया यथा मारकतः शैलः रौप्यः च कनक आचितौ ॥३३॥

राजन्	राजन	यथा कनक	जैसे स्वर्ण
स्वया प्रभया	अपनी कान्तिसे	आचितौ	जड़ित
दिशः	दिशाओंको	मारकतः	मरकत-मणिका
वितिमिरा	अन्धकार रहित	च रौप्यः	तथा चांदीके
कुर्वाणौ	कर रहे	शैलः	पर्वत हों ॥३३॥

रथात्तूर्णमवप्लुत्य सोऽक्रूरः स्नेहविह्वलः ।
पपात चरणोपान्ते दण्डवद् रामकृष्णयोः ॥३४॥

रथात् तूर्णं अवप्लुत्य सः अक्रूरः स्नेह विह्वलः पपात चरण उपान्ते दण्डवत् रामकृष्णयोः ॥३४॥

स्नेह विह्वलः	स्नेह-विह्वल	राम-	बलराम-
सः अक्रूरः	वे अक्रूरजी	कृष्णयोः	श्रीकृष्णके
रथात्	रथसे	चरण उपान्ते	चरणोंके समीप
तूर्णं	शीघ्रता पूर्वक	दण्डवत्	दण्डवत
अवप्लुत्य	कूदकर	पपात्	गिर पड़े ॥३४॥

भगवद्दर्शनाह्लादबाष्पपर्याकुलेक्षणः ।
पुलकाचितांग औत्कण्ठ्यात् स्वाख्याने नाशकन् नृप ॥३५॥

भगवत् दर्शन आह्लाद बाष्पपरि आकुल ईक्षणः पुलक आचित अंग औत्कण्ठ्यात् स्व आख्याने न अशकन् नृप ॥३५॥

नृप	राजन् !	अंग	शरीर
भगवत्	भगवान्के	औत्कण्ठ्यात्	गला भर आनेसे
दर्शन	दर्शनके	स्व	अपना नाम
आह्लाद	आनन्दसे	आख्याने	बतलानेमें
बाष्पपरि	अश्रु परिपूर्ण	अशकन्	समर्थ
आकुल ईक्षणः	चंचल नेत्र,	न	नहीं हुए ॥३५॥
पुलक आचित	रोमाञ्चित		

भगवांस्तमभिप्रेत्य रथांगाङ्कितपाणिना ।
परिरेभेऽभ्युपाकृष्य प्रीतः प्रणतवत्सलः ॥३६॥

भगवान् तं अभिप्रेत्य रथांग अङ्कित पाणिना परिरेभे अभ्य उप आकृष्य प्रीतः प्रणत वत्सलः ॥३६॥

प्रणत	शरणागत	अङ्कित	चिह्नित
वत्सलः	वत्सल	पाणिना	हाथोंसे
भगवान् तं	भगवान्ने उनके	उप आकृष्य	अपने समीप खींच-कर
अभिप्रेत्य	अभिप्रायको जान-कर	परिरेभे अभ्य	आलिंगन किया ॥३६॥
प्रीतः	प्रसन्न होकर		
रथांग	चक्रके चिह्नसे		

संकर्षणश्च प्रणतमुपगुह्य महामनाः ।
गृहीत्वा पाणिना पाणी अनयत् सानुजो गृहम् ॥३७॥

सङ्कर्षणः च प्रणतं उपगुह्य महामनाः गृहीत्वा पाणिना पाणी अनयत् सानुजः गृहम् ॥३७॥

सङ्कर्षणः	बलरामजीने	उपगुह्य	(उनका) आलिंगन करके
च	भी		
प्रणतं	प्रणाम करते	सानुजः	छोटे भाईके साथ

पाणिना	हाथसे दोनों	गृहं अनयत्	घरमें ले आये
पाणी	हाथ पकड़कर		॥३७॥
महामनाः	अत्यन्त उत्साह पूर्वक		

पृष्ट्वाथ स्वागतं तस्मै निवेद्य च वरासनम् ।
प्रक्षाल्य विधिवत् पादौ मधुपर्कार्हणमाहरत् ॥३८॥

पृष्ट्वा अथ स्वागतं तस्मै निवेद्य च वर आसनं प्रक्षाल्य विधिवत् पादौ मधुपर्क अर्हणं आहरत् ॥३८॥

अथ	फिर	विधिवत्	विधिपूर्वक
स्वागतं पृष्ट्वा	कुशल पूछकर	पादौ प्रक्षाल्य	पैर धोकर
तस्मै च	उनको तो	अर्हणं	सत्कारके लिए
वर आसनं	श्रेष्ठ आसन	मधुपर्कं	मधुपर्क
निवेद्य	निवेदन (दे) करके,	आहरत्	प्रदान किया ॥३८॥

निवेद्य गां चातिथये संवाह्य श्रान्तमादृतः ।
अन्नं बहुगुणं मेध्यं श्रद्धयोपाहरद् विभुः ॥३९॥

निवेद्य गां च अतिथये संवाह्य श्रान्तं आदृतः अन्नं बहुगुणं मेध्यं श्रद्धया उप आहरत् विभुः ॥३९॥

अतिथये	अतिथि अक्रूरको	मेध्यं	पवित्र
गां च निवेद्य	गाय भी देकर	अन्नं	भोजन समर्थ
श्रान्तं	थके (अक्रूर) का	विभुः	श्रीकृष्णने
आदृतः	आदरपूर्वक	उप	उनके समीप
संवाह्य	पैर दबाकर	आहरत्	उपस्थित किया ॥३९॥
श्रद्धया	श्रद्धा सहित		
बहुगुणं	बहुत गुणवान		

तस्मै भुक्तवते प्रीत्या रामः परमधर्मवित् ।
मुखवासैर्गन्धमाल्यैः परां प्रीतिं व्यधात् पुनः ॥४०॥

तस्मै भुक्तवते प्रीत्या रामः परम धर्मवित् मुखावासैः गन्ध माल्यैः परां प्रीतिं व्यधात् पुनः ॥४०॥

तस्मै	उनके	गन्ध	चन्दन
भुक्तवते	भोजन कर लेनेपर	माल्यैः	मालादि द्वारा
परम धर्मवित्	परम धर्मज्ञ	पुनः परां	फिर परम
रामः	बलरामजीने	प्रीतिं	प्रसन्नताका
प्रीत्या	प्रेमपूर्वक	व्यधात्	विधान किया
मुखवासैः	(ताम्बूलादि) मुख-वास		॥४०॥

पप्रच्छ सत्कृतं नन्दः कथं स्थ निरनुग्रहे ।
कंसे जीवति दाशार्ह सौनपाला इवावयः ॥४१॥

पप्रच्छ सत्कृतं नन्दः कथं स्थ निः अनुग्रहे कंसे जीवति दाशार्ह सौनपाला इव अवयः ॥४१॥

सत्कृतं	सत्कार हो जानेपर	अवयः इव	भेड़ोंके समान
नन्दः पप्रच्छ	नन्दजीने पूछा	दाशार्ह	अक्रूरजी !
निः अनुग्रहे	निर्दय	कथं	(आप लोग) कैसे
कंसे जीवति	कंसके जीते जी	स्थ	रहते हैं ॥४१॥
सौनपाला	कसाई द्वारा पाली हुई		

योऽवधीत् स्वस्वसुस्तोकान् क्रोशन्त्या असुतृप् खलः ।
किं नु स्वित्तत्प्रजानां वः कुशलं विमृशामहे ॥४२॥

यः अवधीत् स्वस्वसुः तोकान् क्रोशन्त्या असुतृप् खलः किं नु तत् प्रजानां वः कुशलं विमृशामहे ॥४२॥

यः असुतृप्	जिस इन्द्रियाराम	नु तत् प्रजानां	भला उसकी प्रजा
खलः	दुष्टने	वः	आप लोगोंकी
क्रोशन्त्या	चिल्लाती हुई	किं कुशलं	क्या कुशल
स्वस्वसुः	अपनी बहिनके	विमृशामहे	हम सोच सकते
तोकान्	नन्हें बच्चोंको		हैं ॥४२॥
अवधीत्	मार दिया		

इत्थं सूनृतया वाचा नन्देन सुसभाजितः ।
अक्रूरः परिपृष्टेन जह्यावध्वपरिश्रमम् ॥४३॥

इत्थं सूनृतया वाचा नन्देन सुसभाजितः अक्रूरः परिपृष्टेन जह्यः अध्वपरिश्रमं ॥४३॥

इत्थं	इस प्रकार	सुसभाजितः	भली प्रकार सम्मानित किये गये
नन्देन	नन्दजी द्वारा	अक्रूरः	अक्रूरने
सूनृतया	सत्य तथा	अध्वपरिश्रमः	मार्गकी थकावट
वाचा	मधुर वाणीसे	जह्यः	त्याग दी ॥४३॥
परिपृष्टेन	पूछकर		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धेऽक्रूरागमनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

अथ एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

सुखोपविष्टः पर्यङ्के रामकृष्णोरुमानितः ।
लेभे मनोरथान् सर्वान् पथि यान् स चकार ह ॥१॥

सुख उपविष्टः पर्यङ्के राम कृष्ण उरुमानितः लेभे मनोरथान् सर्वान् पथि यान् स चकार ह ॥१॥

पर्यङ्के	पलंगपर	**स पथि यान्**	उन्होंने मार्गमें जो
सुख	सुख पूर्वक	**मनोरथान्**	अभिलाषाएँ
उपविष्टः	बैठकर	**चकार सर्वान्**	की थीं उन सबको
राम	बलरामजी तथा	**ह लेभे**	पूर्णतः प्राप्त कर
कृष्ण	श्रीकृष्ण द्वारा		लिया ॥१॥
उरुमानितः	बहुत सम्मानित होकर		

किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने ।
तथापि तत्परा राजन्न हि वाञ्छन्ति किञ्चन ॥२॥

किं अलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने तथा अपि तत् परा राजन् न हि वाञ्छन्ति किञ्चन ॥२॥

राजन्	राजन् !	**तथा**	फिर भी
श्रीनिकेतने	श्रीनिवास	**अपि तत् परा**	उनके परायण भक्त
भगवति	भगवानके	**किञ्चन हि**	(उनसे) कुछ भी
प्रसन्ने किं	प्रसन्न होनेपर क्या	**न वाञ्छन्ति**	नहीं चाहते ॥२॥
अलभ्यं	अप्राप्त रहता है,		

सायंतनाशनं कृत्वा भगवान् देवकीसुतः ।
सुहृत्सु वृत्तं कंसस्य पप्रच्छान्यच्चिकीर्षितम् ॥३॥

सायंतन अशनं कृत्वा भगवान् देवकीसुतः सुहृत्सु वृत्तं कंसस्य पप्रच्छ अन्य चिकीर्षितम् ॥३॥

सायंतन	सायं कालीन	वृत्तं	समाचार तथा
अशनं कृत्वा	भोजन करके	कंसस्य	कंसकी
भगवान्	भगवान	अन्य	और जो
देवकी सुतः	देवकीनन्दनने	चिकीर्षितं	करनेकी इच्छा हो
सुहृत्सु	सम्बन्धियोंका	पप्रच्छ	पूछा ॥३॥

श्रीभगवानुवाच

तात सौम्यागतः कच्चित् स्वागतं भद्रमस्तु वः ।
अपि स्वज्ञातिबन्धूनामनमीवमनामयम् ॥४॥

तात सौम्य आगतः कच्चित् स्वागतं भद्रं अस्तु वः अपि स्व ज्ञाति बन्धूनां अनमीवं अनामयम् ॥४॥

तात	चाचाजी !	वः भद्रं अस्तु	आपका मंगल हो
सौम्य	सकुशल	स्वज्ञाति	हमारी
कच्चित्	ही तो आये हैं,	बन्धूनां	जाति-भाई
आगतः	कहीं कुछ संकट तो नहीं	अनमीवं अपि	सकुशल और
		अनामयं	स्वस्थ तो हैं ॥४॥
स्वागतं	(आपका) स्वागत है		

किं नु नः कुशलं पृच्छे एधमाने कुलामये ।
कंसे मातुलनाम्न्यङ्ग स्वानां नस्तत्प्रजासु च ॥५॥

किं नु नः कुशलं पृच्छे एधमाने कुल आमये कंसे मातुल नाम्नि अङ्ग स्वानां नः तत् प्रजासु च ॥५॥

अङ्ग	प्रिय चाचाजी !	नः स्वानां	हमारे अपनों
मातुल नाम्नि	मामा नामक	च तत्	तथा उसकी
कुल	कुलके लिए	प्रजासु	प्रजाका
आमये	रोग रूपसे	नु नः	भला हम
कंसे	कंसके	किं	क्या
एधमाने	बढ़ते हुए	कुशलं पृच्छे	कुशल पूछें ॥५॥

अहो अस्मदभूद् भूरि पित्रोर्वृजिनमार्ययोः ।
यद्धेतोः पुत्रमरणं यद्धेतोर्बन्धनं तयोः ॥६॥

अहो अस्मत् अभूत् भूरि पित्रोः वृजिनं आर्ययोः यत् हेतोः पुत्र मरणं यत् हेतोः बन्धनं तयोः ॥६॥

अहो अस्मत्	खेद है कि हमारे	पुत्र	(उनके) पुत्रोंकी
आर्ययोः	पूज्य	मरणं	मृत्यु हुई,
पित्रोः	माता-पिताको	यत् हेतोः	जिस (मेरे) कारण
भूरि वृजिनं	बहुत संकट (मेरे कारण)	तयोः	उनको
		बन्धन	बन्धनमें पड़ना पड़ा ॥६॥
अभूत्	प्राप्त हुआ		
यत् हेतोः	जिस (मेरे) कारण		

दिष्ट्याद्य दर्शनं स्वानां मह्यं वः सौम्य काङ्क्षितम् ।
सञ्जातं वर्ण्यतां तात तवागमनकारणम् ॥७॥

दिष्ट्या अद्य दर्शनं स्वानां मह्यं वः सौम्य काङ्क्षितं सञ्जातं वर्ण्यतां तात तव आगमन कारणम् ॥७॥

सौम्य	शान्त स्वभाव	मह्यं दर्शनं	मुझे दर्शन
तात	चाचाजी	सञ्जातं	हुआ
काङ्क्षितं	बहुत दिनोंसे अभिलषित	तव	आप
		आगमन	अपने आनेका
दिष्ट्या अद्य	सौभाग्यवश आज	कारणं वर्ण्यतां	बतलाइये ॥७॥
वः स्वानां	आप अपनेका		

श्रीशुक उवाच

पृष्टो भगवता सर्वं वर्णयामास माधवः ।
वैरानुबन्धं यदुषु वसुदेववधोद्यमम् ॥८॥

पृष्टः भगवता सर्वं वर्णयामास माधवः वैर अनुबन्धं यदुषु वसुदेव वध उद्यमम् ॥८॥

एवं	इस प्रकार	वैर अनुबन्धं	दृढ़ शत्रुता
भगवता	भगवान्‌के द्वारा	वसुदेव	तथा वसुदेवजीको
पृष्टः	पूछे जानेपर	वध	मारनेका
माधवः	मधुवंशी अक्रूरने	उद्यमं	प्रयत्न
यदुषु	(कंसकी) यदुवंशियों से	वर्णयामास	बतलाया ॥८॥

यत्संदेशो यदर्थं वा दूतः संप्रेषितः स्वयम् ।
यदुक्तं नारदेनास्य स्वजन्मानकदुन्दुभे ॥९॥

यत् संदेशः यत् अर्थं वा दूतः संप्रेषितः स्वयं यत् उक्तं नारदेन अस्य स्वजन्म आनकदुन्दुभेः ॥९॥

यत्	(कंसका) जो	सम्प्रेषितः	भेजा था,
सन्देशः	सन्देशका	यत् अस्य	जो इस (कंस) को
वा यत्	अथवा जिस	स्वजन्म	अपना (श्रीकृष्णका) जन्म
अर्थं	प्रयोजनसे		
स्वयं	अपनेको	आनक दुन्दुभेः	वसुदेवजीसे
दूतः	दूत बनाकर	उक्तं	बतलाया था ॥९॥

श्रुत्वाक्रूरवचः कृष्णो बलश्च परवीरहा ।
प्रहस्य नन्दं पितरं राज्ञाऽऽदिष्टं विजज्ञतुः ॥१०॥

श्रुत्वा अक्रूरवचः कृष्णः बलः च परवीरहा प्रहस्य नन्दं पितरं राज्ञा आदिष्टं विजज्ञतुः ॥१०॥

अक्रूरवचः	अक्रूरकी बात	बलः प्रहस्य	बलरामजीने हंसकर
श्रुत्वा	सुनकर	पितरं नन्दं	पिता नन्दजीको
कृष्णः च	श्रीकृष्ण तथा	राज्ञा आदिष्टं	राजाका आदेश
परवीरहा	शत्रु-वीरोंके नाशक	विजज्ञतुः	बतला दिया ॥१०॥

गोपान् समादिशत् सोऽपि गृह्यतां सर्वगोरसः ।
उपायनानि गृह्णीध्वं युज्यन्तां शकटानि च ॥११॥

गोपान् सम आदिशत् सः अपि गृह्यतां सर्वगोरसः उपायनानि गृह्णीध्वं युज्यन्तां शकटानि च ॥११॥

सः अपि	उन्होंने भी	गृह्यतां	(सबसे) ले लो,
गोपान्	गोपोंको	उपायनानि	उपहार सामग्री
सम	समझाकर	गृह्णीध्वं	साथ लो
आदिशत्	आदेश दिया	शकटानि युज्यन्तां	छकड़े जोत लो ॥११॥
सर्वगोरसः	सब गोरस		

यास्यामः श्वो मधुपुरीं दास्यामो नृपते रसान् ।
द्रक्ष्यामः सुमहत् पर्व यान्ति जानपदाः किल ।
एवमाघोषयत् क्षत्त्रा नन्दगोपः स्वगोकुले ॥१२॥

यास्यामः श्वः मधुपुरीं दास्यामः नृपते रसान् द्रक्ष्यामः सुमहत् पर्व यान्ति जानपदाः किल एवं आघोषयत् क्षत्त्रा नन्दगोपः स्वगोकुले ॥१२॥

श्वः	कल (हम लोग)	जानपदाः	दूसरे स्थानोंके लोग भी
मधुपुरीं	मथुरा	यान्ति	जा रहे हैं
यास्यामः	जायँगे,	एवं	इस प्रकार
नृपतेः	राजाको (भेंटमें)	क्षत्त्रा	कोतवाल द्वारा
रसान्	गोरस	नन्दगोपः	गोपराज नन्दने
दास्यामः	देंगे	स्वगोकुले	अपने पूरे व्रजमें
सुमहत् पर्व	बड़ा भारी उत्सव (वहां)	आघोषयत्	घोषणा (मुनादी) करवा दी ॥१२॥
द्रक्ष्यामः	देखेंगे		
किल	अरे,		

गोप्यस्तास्तदुपश्रुत्य बभूवुर्व्यथिता भृशम् ।
रामकृष्णौ पुरीं नेतुमक्रूरं व्रजमागतम् ॥१३॥

गोप्यः ताः तत् उपश्रुत्य बभूवुः व्यथिता भृशं रामकृष्णौ पुरीं नेतुं अक्रूरं व्रजं आगतम् ॥१३॥

तत् राम-	वह बलराम और	आगतं	आनेकी बात
कृष्णौ	श्रीकृष्णको	उपश्रुत्य	सुनकर
पुरीं	मथुरा पुरी	ताः गोप्यः	वे गोपियां
नेतुं	ले जानेके लिए	भृशं व्यथिता	बहुत दुःखी
अक्रूरं	अक्रूरको	बभूवुः	हो गयीं ॥१३॥
व्रजं	व्रजमें		

काश्चित्तत्कृतहृत्तापश्वासम्लानमुखश्रियः ।
स्रंसद्दुकूलवलयकेशग्रन्थ्यश्च काश्चन ॥१४॥

काः चित् तत् कृत हृत् ताप श्वासम्लान मुखश्रियः स्रंसत् दुकूल वलय केशग्रन्थ्यः च काश्चन ॥१४॥

काः चित	किसीकी	श्वासम्मान	निश्वाससे मलिन
तत्	उन (राम-कृष्ण)		हो गयी
कृत्	के लिए	च काश्चन	तथा किसीका
हृत्	हृदयमें (वियोगा-	वलय	कंकण और
	शंकासे)	दुकूल	दुपट्टा
ताप	संताप होनेसे	स्रंसत्	गिर गया
मुखश्रियः	मुखकी शोभा	केशग्रन्थ्यः	जूड़ा (खुल गया) ॥१४॥

अन्याश्च तदनुध्याननिवृत्ताशेषवृत्तयः ।
नाभ्यजानन्निमं लोकमात्मलोकं गता इव ॥१५॥

अन्याः च तत् अनुध्यान निवृत्ता अशेष वृत्तयः न अभिजानन् इमं लोकं आत्मलोकं गता इव ॥१५॥

अन्याः च	दूसरी तो	इव	समान
तत्	उन (भगवान्) के	इमं लोकं	इस लोक (शरीर
अनुध्यान	बराबर ध्यानसे		और संसार) को
अशेष	सम्पूर्ण	न	नहीं
वृत्तयः	वृत्तियोंके	अभिजानन्	जानती (विस्मृत हो
निवृत्ता	निरुद्ध हो जानेसे		गयी) थी ॥१५॥
आत्मलोकं गता	समाधिस्थ होनेके		

स्मरन्त्यश्चापराः शौरेरनुरागस्मितेरिताः ।
हृदिस्पृशश्चित्रपदा गिरः संमुमुहुः स्त्रियः ॥१६॥

स्मरन्त्यः च अपराः शौरेः अनुराग स्मित ईरिताः हृदि स्पृशः चित्रपदा गिरः संमुमुहुः स्त्रियः ॥१६॥

अपराः स्त्रियः	दूसरी स्त्रियां (गोपियां)	हृदि स्पृशः	हृदयस्पर्शी
		चित्रपदा	विचित्र वाक्योंवाली
शौरेः	श्रीकृष्णका	गिरः	वाणीका
अनुराग	प्रेम,	स्मरन्त्यः	स्मरण करती हुईं
स्मित	मुसकान,	संमुमुहुः	मूर्छिता हो गयीं ॥१६॥
ईरिताः	चेष्टाएँ		

गतिं सुललितां चेष्टां स्निग्धहासावलोकनम् ।
शोकापहानि नर्माणि प्रोद्दामचरितानि च ॥१७॥

गतिं सुललितां चेष्टां स्निग्धहास अवलोकनं शोक अपहानि नर्माणि प्रोद्दाम चरितानि च ॥१७॥

सुललितां	अत्यन्त सुन्दर	शोक अपहानि	शोक दूर कर देने-वाले
गतिं	चाल,		
चेष्टां	चेष्टा	नर्माणि	परिहास
स्निग्धहास	प्रेम भरी मुसकान सहित	च प्रोद्दाम	तथा स्वच्छन्द
		चरितानि	लीलाओंका ॥१७॥
अवलोकनं	देखना		

चिन्तयन्त्यो मुकुन्दस्य भीता विरहकातराः ।
समेताः सङ्घशः प्रोचुरश्रुमुख्योऽच्युताशयाः ॥१८॥

चिन्तयन्त्यः मुकुन्दस्य भीता विरह कातराः समेताः संघशः प्रोचुः अश्रुमुख्यः अच्युत आशयाः ॥१८॥

अच्युत	श्रीकृष्णमें लगे	चिन्तयन्त्यः	(चेष्टाओंको) स्मरण करती हुई
आशयाः	चित्तवाली		
मुकुन्दस्य	मुकुन्दकी	विरह भीता	वियोगसे भयभीत

कातराः	व्याकुल होकर	अश्रुमुख्यः	मुखपर आंसू ढुलकाती
संघशः	यूथकी यूथ		
समेताः	इकट्ठी होकर	प्रोचुः	बोलीं ॥१८॥

गोप्य ऊचुः

अहो विधातस्तव न क्वचिद् दया
संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः ।
तांश्चाकृतार्थान् वियुनङ्क्ष्यपार्थकं
विक्रीडितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा ॥१९॥

अहो विधातः तव न क्वचित् दया संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः तान् च अकृतार्थान् वियुनङ्क्षि अपार्थकं विक्रीडितं ते अर्भक चेष्टितं यथा ॥१९॥

अहो विधातः	हे विधाता !	तान च	उनको तो
तव क्वचित्	तुझमें तनिक भी	अपार्थकं	व्यर्थ
दया न	दया नहीं है ? कि	वियुनङ्क्षि	पृथक कर देते हो,
प्रणयेन	प्रेमपूर्ण	ते	तुम्हारी
मैत्र्या	मित्रतासे	विक्रीडितं	लीला तो
देहिनः	प्राणियोंको	यथा	जैसे छोटे
संयोज्य	मिलाकर	अर्भक	बालकका
अकृतार्थान्	अभिलाषा पूरी हुए बिना ही	चेष्टितं	(निरुद्देश) खेल हो ॥१९॥

यस्त्वं प्रदर्श्यासितकुन्तलावृतं
मुकुन्दवक्त्रं सुकपोलमुन्नसम् ।
शोकापनोदस्मितलेशसुन्दरं
करोषि पारोक्ष्यमसाधु ते कृतम् ॥२०॥

यः त्वं प्रदर्श्य असितकुन्तल आवृतं मुकुन्द वक्त्रं सुकपोलं उन्नसं शोक अपनोद स्मितलेश सुन्दरं करोषि पारोक्ष्यं असाधु ते कृतम् ॥२०॥

असितकुन्तल	काली अलकोंसे	मुकुन्द	मुकुन्दके
आवृतं	घिरे हुए	वक्त्रं	श्रीमुखको
सुकपोलं	सुन्दर कपोल तथा	यः प्रदर्श्य	जो दिखलाकर
उन्नसं	उठी नासिकावाले	पारोक्ष्यं	आँखोंसे ओझल
शोक अपनोद	शोकापहारी	करोषि	कर रहे हो
स्मितलेश	हल्की मुस्कराहटसे	ते कृतं	यह तुम्हारा काम
सुन्दरं	सुन्दर	असाधु	बहुत बुरा है ॥२०॥

क्रूरस्त्वमक्रूरसमाख्यया स्म न-
श्चक्षुर्हि दत्तं हरसे बताज्ञवत् ।
येनैकदेशेऽखिलसर्गसौष्ठवं
त्वदीयमद्राक्ष्म वयं मधुद्विषः ॥२१॥

क्रूरः त्वं अक्रूर सम आख्यया स्म नः चक्षुः हि दत्तं हरसे बत अज्ञवत् येन एकदेशे अखिल सर्ग सौष्ठवं त्वदीयं अद्राक्ष्म वयं मधुद्विषः ॥२१॥

अक्रूर	अक्रूरका	येन	जिससे
सम आख्यया	नाम धारण करके	मधुद्विषः	मधुसूदनके
त्वं	(आये विधाता) तुम	एकदेशे	एक-एक अंगमें
क्रूरः स्म	क्रूर हो,	त्वदीयं	तुम्हारी
हि नः	क्योंकि हमें (अपने)	अखिल सर्ग	सम्पूर्ण सृष्टिका
दत्तं चक्षुः	दिये नेत्र	सौष्ठवं	सौन्दर्य
बत	अहो,	वयं अद्राक्ष्म	हम देखती थीं ॥२१॥
अज्ञवत्	अज्ञानीके समान		
हरसे	हरण कर रहे हो,		

न नन्दसूनुः क्षणभङ्गसौहृदः
समीक्षते नः स्वकृतातुरा बत ।
विहाय गेहान् स्वजनान् सुतान् पतीं-
स्तद्दास्यमद्धोपगता नवप्रियः ॥२२॥

न नन्दसूनुः क्षणभङ्ग सौहृदः समीक्षते नः स्वकृत आतुरा बत विहाय गेहान् स्वजनान् सुतान् पतीन् तत् दास्यं अद्धा उपगता नवप्रियः ॥२२॥

बत गेहान्	अहो, घर	**भङ्ग सौहृदः**	सौहार्द्र नष्ट कर देनेवाले
स्वजनान्	कुटुम्बी,	**नन्दसूनुः**	(ये) नन्दनन्दन
सुतान् पतीन्	पुत्र-पतिको	**स्वकृत**	अपने लिए
विहाय	छोड़कर	**आतुरा**	व्याकुला
अद्धा	सम्पूर्ण रूपसे	**नः**	हमारी ओर
तत् दास्यं	उनकी दासी	**समीक्षते**	भली प्रकार देखते
उपगता	बन गयीं; किन्तु		भी
नवप्रियः	नई-नईसे प्रेम करने वाले	**न**	नहीं ॥२२॥
क्षण	एक क्षणमें		

सुखं प्रभाता रजनीयमाशिषः
सत्या बभूवुः पुरयोषितां ध्रुवम् ।
याः संप्रविष्टस्य मुखं व्रजस्पतेः
पास्यन्त्यपाङ्गोत्कलितस्मितासवम् ॥२३॥

सुखं प्रभाता रजनी इयं आशिषः सत्या बभूवुः पुर योषितां ध्रुवं याः संप्रविष्टस्य मुखं व्रजः पतेः पास्यन्ति अपाङ्ग उत्कलित स्मित आसवम् ॥२३॥

ध्रुवं	निश्चय	**याः**	जो
पुर	(मथुरा) नगरकी	**व्रजः पतेः**	व्रजराजके
योषितां	नारियोंकी	**मुखं**	श्रीमुखकी
इयं रजनी	यह रात्रि	**अपाङ्ग**	तिरछी
सुखं प्रभाता	सुप्रभातवाली होगी,	**उत्कलित**	चितवनसे खिली
आशिषः	(उनकी) अभिलाषाएँ	**स्मित आसवं**	स्मित सुधाका
सत्या बभूवुः	सत्य (सफल) होंगी	**पास्यन्ति**	पान करेंगी ॥२३॥

तासां मुकुन्दो मधुमञ्जुभाषितै-
गृहीतचित्तः परवान् मनस्व्यपि ।
कथं पुनर्नः प्रतियास्यतेऽबला
ग्राम्याः सलज्जस्मितविभ्रमैर्भ्रमन् ॥२४॥

तासां मुकुन्दः मधुमञ्जु भाषितैः गृहीत चित्तः परवान् मनस्वि अपि कथं पुनः नः प्रतियास्यते अबलाः ग्राम्याः सलज्जस्मित विभ्रमैः भ्रमन् ॥२४॥

तासां	उनकी	अपि	भी
मधुमञ्जु	मीठी मनोहर	गृहीत चित्तः	आकर्षित चित्त
भाषितैः	बातोंसे तथा	मुकुन्दः	मुकुन्द
सलज्जस्मित	लज्जाभरी मुस्क-	परवान्	परवश होकर
	राहट और	नः ग्राम्याः	हम ग्रामीण
विभ्रमैः भ्रमन्	हाव-भावके फेरमें	अबलाः	स्त्रियोंके पास
	पड़कर	पुनः कथं	फिर कैसे
मनस्वि	मनस्वी होनेपर	प्रतियास्यते	लौट आवेंगे ॥२४॥

अद्य ध्रुवं तत्र दृशो भविष्यते
दाशार्हभोजान्धकवृष्णिसात्वताम् ।
महोत्सवः श्रीरमणं गुणास्पदं
द्रक्ष्यन्ति ये चाध्वनि देवकीसुतम् ॥२५॥

अद्य ध्रुवं तत्र दृशः भविष्यते दाशार्ह भोज अन्धक वृष्णि सात्वतां महोत्सवः श्रीरमणं गुण आस्पदं द्रक्ष्यन्ति ये च अध्वनि देवकीसुतम् ॥२५॥

अद्य ध्रुवं	आज निश्चय	सात्वतां	सात्वत वंशके लोगों-
तत्र	वहां		के
दाशार्ह भोज	दाशार्ह, भोज,	च ये श्रीरमणं	तथा जो रमारमण
अन्धक वृष्णि	अन्धक, वृष्णि	गुण आस्पदं	गुणधाम

देवकीसुतं	देवकी-नन्दनको	महोत्सवं	परमानन्द मिलोका अवसर
अध्वनि	मार्गमें		
द्रक्ष्यन्ति	देखेंगे	भविष्यते	प्राप्त होगा ॥२५॥
दृशः	नेत्रोंको		

मैतद्विधस्याकरुणस्य नाम भू-
दक्रूर इत्येतदतीव दारुणः ।
योऽसावनाश्वास्य सुदुःखितं जनं
प्रियात्प्रियं नेष्यति पारमध्वनः ॥२६॥

मा एतत् विधस्य अकरुणस्य नाम भूत् अक्रूर इति एतत् अतीव दारुणः यः असाः अनाश्वास्य सुदुःखितं जनं प्रियात् प्रियं नेष्यति पारं अध्वनः ॥२६॥

एतत् विधस्य	इस प्रकारके	जनं	जनोंको
अकरुणस्य	निष्ठुरका	अनाश्वास्य	आश्वासन भी न देकर
अक्रूर इति	अक्रूर यह		
नाम मा	नाम नहीं	प्रियात्	प्रियजनोंसे
भूत्	होना चाहिए,	प्रियं	उनके प्रियतमको
एतत् अतीव	यह तो अत्यन्त	अध्वनः	(नेत्र) मार्गके
दारुणः	क्रूर है,	पारं	उसपार
यः सुदुःखितं	जो अत्यन्त दुःखी	नेष्यति	ले जायगा ॥२६॥

अनार्द्रधीरेष समास्थितो रथं
तमन्वमी च त्वरयन्ति दुर्मदाः ।
गोपा अनोभिः स्थविरैरुपेक्षितं
दैवं च नोऽद्य प्रतिकूलमीहते ॥२७॥

अनार्द्रधीः एष सम आस्थितः रथं तं अनु अमी च त्वरयन्ति दुर्मदाः गोपा अनोभिः स्थविरैः उपेक्षितं दैवं च नः अद्य प्रतिकूलं ईहते ॥२७॥

अनार्द्रधीः	निष्ठुर चित्त	त्वरयन्ति	शीघ्रता कर रहे हैं,
एष	ये (श्यामसुन्दर भी)	स्थविरैः	बड़े-बूढ़ोंने भी (मना न करके)
रथं	रथपर		
सम आस्थितः	जमकर बैठ गये हैं,	उपेक्षितं	उपेक्षा कर दी है,
तं अनु अमी	उनके पीछे ये	अद्य दैवं च	आज भाग्य भी
दुर्मदाः गोपा	मतवाले गोप	नः प्रतिकूलं	हमारे विपरीत
अनोभिः	छकड़ोंसे (जानेके लिए)	ईहते	चेष्टा कर रहा है ॥२७॥

निवारयामः समुपेत्य माधवं
किं नोऽकरिष्यन् कुलवृद्धबान्धवाः ।
मुकुन्दसङ्गान्निमिषार्धदुस्त्यजाद्
दैवेन विध्वंसितदीनचेतसाम् ॥२८॥

निवारयामः सम उपेत्य माधवं किं नः अकरिष्यन् कुलवृद्ध बान्धवाः मुकुन्दसङ्ग अनिमिष अर्ध दुस्त्यजात् दैवेन विध्वंसित दीन चेतसाम् ॥२८॥

मुकुन्दसङ्ग	मुकुन्दका साथ	नः	हमारा
अर्ध अनिमिष	आधे क्षणको भी (जिनको)	कुलवृद्ध	कुलके बड़े-बूढ़े
		बान्धवाः	सम्बन्धी
दुस्त्यजात्	दुस्त्याज्य था,	किं अकरिष्यन्	क्या कर लेंगे ?
दैवेन	दैवके द्वारा	सम उपेत्य	सब समीप जाकर
विध्वंसित	(वह सौभाग्य) नष्ट करनेसे	माधवं	श्रीकृष्णको (हमी)
		निवारयामः	रोकें ॥२८॥
दीन चेतसां	दीन चित्त हुई		

यस्यानुरागललितस्मितवल्गुमन्त्र-
लीलावलोकपरिरम्भणरासगोष्ठ्याम् ।
नीताः स्म नः क्षणमिव क्षणदाविना तं
गोप्यः कथं न्वतितरेम तमो दुरन्तम् ॥२९॥

यस्य अनुराग ललित स्मित वल्गु मन्त्र लीला अवलोक परिरम्भण रासगोष्ठ्यां नीताः स्म नः क्षणं इव क्षणदा विना तं गोप्यः कथं नु अतितरेम तमः दुरन्तम् ॥२९॥

रासगोष्ठ्यां	रास गोष्ठीमें	**नः तं क्षणदा**	हम वे रात्रियां
यस्य अनुराग	जिनके प्रेम भरे	**क्षणं इव**	क्षणकी भांति
ललित	सुन्दर	**नीताः स्म**	बितायी हैं
स्मित	मुस्कान युक्त	**गोप्यः**	गोपियो !
वल्गु	मनोहर	**विना**	(उनके) बिना हम
मन्त्र	वचन तथा	**नु दुरन्तं**	भला दुष्पार
लीला	कटाक्ष पूर्वक	**तमः**	वियोगान्धकार
अवलोक	देखते हुए	**कथं**	कैसे
परिरम्भण	आलिंगनसे	**अतितरेम**	पार करेंगी ॥२९॥

योऽह्नः क्षये व्रजमनन्तसखः परीतो
गोपैर्विशन् खुररजश्छुरितालकस्रक् ।
वेणुं क्वणन् स्मितकटाक्षनिरीक्षणेन
चित्तं क्षिणोत्यमुऋते नु कथं भवेम ॥३०॥

यः अह्नः क्षये व्रजं अनन्त सखः परीतः गोपैः विशन् खुररजः छुरित अलक स्रक् वेणुं क्वणन् स्मित कटाक्ष निरीक्षणेन चित्तं क्षिणोति अमुं ऋते नु कथं भवेम ॥३०॥

यः अह्नः	जो दिनके	**छुरित अलक**	सनी अलकों तथा
क्षये	अन्तमें	**स्रक्**	वनामाला (से शोभित)
अनन्त	बलरामजी तथा		
सखः गोपैः	अपने गोप सखाओंसे	**वेणुं क्वणन्**	बंशी बजाते हुए
परीतः	घिरे हुए	**स्मित**	मुस्कराहट युक्त
व्रजं	व्रजमें	**कटाक्ष**	कटाक्षसे
विशन्	प्रवेश करते समय	**निरीक्षणे न**	देखने द्वारा
खुररजः	(गायोंके) खुरोंसे उड़ी धूलिसे	**चित्तं**	(हमारा) चित्त
		क्षिणोति	छीन लेते थे,

अमुं ऋते नु	इनके बिना भला	कथं भवेम	(हम) कैसे जीयेंगी ॥३०॥

श्रीशुक उवाच

एवं ब्रुवाणा विरहातुरा भृशं
व्रजस्त्रियः कृष्णविषक्तमानसाः ।
विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं
गोविन्द दामोदर माधवेति ॥३१॥

एवं ब्रुवाणा विरह आतुरा भृशं व्रजस्त्रियः कृष्ण विषक्त मानसाः विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं गोविन्द दामोदर माधव इति ॥३१॥

एवं ब्रुवाणा	ऐसा कहती हुई	गोविन्द	गोविन्द !
भृशं	अत्यन्त	दामोदर	दामोदर !
विरह आतुरा	विरह-व्याकुला	माधव	माधव !
कृष्ण	श्रीकृष्ण द्वारा	इति	इस प्रकार (नाम लेकर)
विषक्त मानसाः	व्याकुल चित्ता		
व्रजस्त्रियः	व्रजकी स्त्रियां (गोपियां)	सुस्वरं	उच्च स्वरसे
		रुरुदुः स्म	रोने लगीं ॥३१॥
लज्जां विसृज्य	लज्जा त्यागकर		

स्त्रीणामेवं रुदन्तीनामुदिते सवितर्यथ ।
अक्रूरश्चोदयामास कृतमैत्रादिको रथम् ॥३२॥

स्त्रीणां एवं रुदन्तीनां उदिते सवितः अथ अक्रूरः चोदयामास कृत मैत्र आदिकः रथम् ॥३२॥

स्त्रीणां	स्त्रियोंके	मैत्र आदिकः	सन्ध्यादि
एवं	इस प्रकार	कृत अथ	करनेके पश्चात्
रुदन्तीनां	रोते समय ही	अक्रूरः रथं	अक्रूरने रथको
सवितः	सूर्योदय	चोदयामास	हांक दिया ॥३२॥
उदिते	हो जानेपर		

गोपास्तमन्वसज्जन्त नन्दाद्याः शकटैस्ततः ।
आदायोपायनं भूरि कुम्भान् गोरससम्भृतान् ॥३३॥

गोपाः तं अनु सज्जन्त नन्द आद्याः शकटैः ततः आदाय उपायनं भूरि कुम्भान् गोरस सम्भृतान् ॥३३॥

ततः तं अनु	फिर उनके पीछे	**कुम्भान्**	घड़ोंका
नन्द आद्याः	नन्द आदि	**भूरि उपायनं**	बहुत-सा उपहार
गोपाः	गोपोंने	**आदाय**	लेकर
गोरस	गोरससे	**शकटैः**	छकड़ोंको
सम्भृतान्	भरे हुए	**सज्जन्त**	सजाया ॥३३॥

गोप्यश्च दयितं कृष्णमनुव्रज्यानुरञ्जिताः ।
प्रत्यादेशं भगवतः काङ्क्षन्त्यश्चावतस्थिरे ॥३४॥

गोप्यः च दयितं कृष्णं अनुव्रज्य अनुरञ्जिताः प्रत्यादेशं भगवतः काङ्क्षन्त्यः च अवतस्थिरे ॥३४॥

अनुरञ्जिताः	अनुरागके रंगसे रंगी	**भगवतः**	भगवान्‌का
गोप्यः च	गोपियां भी	**प्रत्यादेशं**	सन्देश
दयितं	अपने प्रियतम	**काङ्क्षन्त्यः च**	चाहती हुई ही
कृष्णं	श्रीकृष्णके	**अवतस्थिरे**	खड़ी रह गयीं ॥३४॥
अनुव्रज्य	पीछे जाकर		

तास्तथा तप्यतीर्वीक्ष्य स्वप्रस्थाने यदूत्तमः ।
सान्त्वयामास सप्रेमैरायास्य इति दौत्यकैः ॥३५॥

ताः तथा तप्यतीः वीक्ष्य स्वप्रस्थाने यदूत्तमः सान्त्वयामास सप्रेमैः आयास्य इति दौत्यकैः ॥३५॥

स्वप्रस्थाने	अपने जाते समय	**यदूत्तमः**	यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्णने
ताः तथा	उनको इस प्रकार	**दौत्यकैः**	दूतके द्वारा (सन्देश देकर)
तप्यतीः	सन्तप्त होती		
वीक्ष्य	देखकर	**सप्रेमैः**	प्रेम पूर्वक

आयास्य	'आऊँगा'	सान्त्वयामास	आश्वासन दिलाया
इति	ऐसा (कहलाकर)		॥३५॥

यावदालक्ष्यते केतुर्यावद् रेणू रथस्य च ।
अनुप्रस्थापितात्मानो लेख्यानीवोपलक्षिताः ॥३६॥

यावत् आलक्ष्यते केतुः यावत् रेणू रथस्य च अनुप्रस्थापित आत्मानः लेख्यानि इव उपलक्षिताः ॥३६॥

आत्मानः	अपने चित्तको	आलक्ष्यते	दीखती रही (तब तक)
अनुप्रस्थापितः	उनके पीछे भेजकर	लेख्यानि	चित्रोंके समान
यावत् रथस्य	जब तक रथकी	इव	(निश्चल)
केतुः	ध्वजा या	उपलक्षिताः	(वे) दीखती थीं
यावत्	जब तक (उससे उड़ती)		॥३६॥
रेणूः	धूलि		

ता निराशा निववृतुर्गोविन्दविनिवर्तने ।
विशोका अहनी निन्युर्गायन्त्यः प्रियचेष्टितम् ॥३७॥

ता निराशा निववृतुः गोविन्द विनिवर्तने विशोका अहनी निन्युः गायन्त्यः प्रियचेष्टितम् ॥३७॥

गोविन्द	गोविन्दके	गायन्त्यः	गाती हुई
विनिवर्तने	लौटनेके सम्बन्धमें	अहनी	दिन-रात
ता निराशा	वे निराश होकर	विशोका	शोक कम करती
निववृतुः	लौट आयीं और	निन्युः	बिताने लगीं ॥३७॥
प्रियचेष्टितं	अपने (उन) प्रियतम-की लीलाएँ		

भगवानपि सम्प्राप्तो रामाक्रूरयुतो नृप ।
रथेन वायुवेगेन कालिन्दीमघनाशिनीम् ॥३८॥

भगवान् अपि सम्प्राप्तः राम अक्रूर युतः नृप रथेन वायुवेगेन कालिन्दीं अघनाशिनीम् ॥३८॥

नृप	राजन् !	भगवान् अपि	भगवान भी
वायुवेगेन	(उस) वायुवेगवाले	अघनाशिनीं	पाप-नाशिनी
रथेन	रथसे	कालिन्दीं	यमुनाके
राम	बलरामजी तथा	सम्प्राप्तः	पास पहुँचे ॥३८॥
अक्रूर युतः	अक्रूरके साथ		

तत्रोपस्पृश्य पानीयं पीत्वा मृष्टं मणिप्रभम् ।
वृक्षषण्डमुपव्रज्य सरामो रथमाविशत् ॥३९॥

तत्र उपस्पृश्य पानीयं पीत्वा मृष्टं मणिप्रभं वृक्षषण्डं उपव्रज्य सरामः रथं आविशत्ः ॥३९॥

तत्र मृष्टं	वहां स्वच्छ	पीत्वा	पीकर
मणिप्रभं	मणिके समान कान्तिमान्	वृक्षषण्डं	वृक्षके नीचे
		उपव्रज्य	पहुँचकर
पानीयं	जलसे	सरामः	बलरामजीके साथ
उपस्पृश्य	आचमन करके	रथं आविशत्ः	रथमें बैठ गये ॥३९॥

अक्रूरस्तावुपामन्त्र्य निवेश्य च रथोपरि ।
कालिन्द्या ह्रदमागत्य स्नानं विधिवदाचरत् ॥४०॥

अक्रूरः ताः उपामन्त्र्य निवेश्य च रथ उपरि कालिन्द्या ह्रदं आगत्य स्नानं विधिवत् आचरत् ॥४०॥

ताः	उन दोनों भाइयोंसे	अक्रूरः	अक्रूरने
उपामन्त्र्य	अनुमति लेकर	कालिन्द्यां ह्रदं	यमुनाके ह्रदमें
च	तथा (उन्हें)	आगत्य	आकर
रथ उपरि	रथके ऊपर	विधिवत् स्नानं	विधिवत् स्नान
निवेश्य	चढ़ाकर	आचरत्	किया ॥४०॥

निमज्ज्य तस्मिन् सलिले जपन् ब्रह्म सनातनम् ।
तावेव ददृशेऽक्रूरो रामकृष्णौ समन्वितौ ॥४१॥

निमज्य तस्मिन् सलिले जपन् ब्रह्म सनातनं ताः एव ददृशे अक्रूरः रामकृष्णौ समन्वितौ ॥४१॥

तस्मिन् सलिले	उस जलमें	अक्रूरः	अक्रूरने
निमज्य	डुबकी लगाकर	ताः एव	उन्हीं
सनातनं	सनातन	रामकृष्णौ	बलराम-श्रीकृष्णको
ब्रह्म	ब्रह्म (गायत्री) का	समन्वितौ	एक साथ पहुँचा
जपन्	जप करते हुए	ददृशे	देखा ॥४१॥

तौ रथस्थौ कथमिह सुतावानकदुन्दुभेः ।
तर्हि स्वित् स्यन्दने न स्त इत्युन्मज्ज्य व्यचष्ट सः ॥४२॥

तौ रथस्थौ कथं इह सुताः आनकदुन्दुभेः तर्हि स्वित् स्यन्दने न स्त इति उन्मज्ज्य व्यचष्ट सः ॥४२॥

तौ	वे	तर्हि स्वित्	फिर तो
आनकदुन्दुभेः	वसुदेवजीके	स्यन्दने न स्त	रथपर नहीं होंगे
रथस्थौ	रथपर बैठे	इति	ऐसा सोचकर
सुताः	दोनों पुत्र	उन्मज्ज्य	ऊपर निकलकर
इह कथं	यहां कैसे आये ?	सः व्यचष्ट	उन्होंने देखा ॥४२॥

तत्रापि च यथापूर्वमासीनौ पुनरेव सः ।
न्यमज्जद् दर्शनं यन्मे मृषा किं सलिले तयोः ॥४३॥

तत्र अपि च यथा पूर्वं आसीनौ पुनः एव सः न्यमज्जत् दर्शनं यत् मे मृषा किं सलिले तयोः ॥४३॥

तत्र अपि च	वहां भी	यत् मे	जो मुझे
यथा पूर्वं	पहिले समान ही	तयोः	उन दोनोंका
आसीनौ	(वे दोनों भाई) बैठे थे,	सलिले	जलमें
		दर्शनं	दर्शन हुआ था
सः पुनः	उन (अक्रूर) ने	किं मृषा	क्या (वह) झूठा
एव	फिरसे		है ॥४३॥
न्यमज्जत्	(यह सोचकर) डुबकी लगाई कि		

भूयस्तत्रापि सोऽद्राक्षीत् स्तूयमानमहीश्वरम् ।
सिद्धचारणगन्धर्वैरसुरैर्नतकन्धरैः ॥४४॥

भूयः तत्र अपि सः अद्राक्षीत् स्तूयमानं अहीश्वरं सिद्ध चारण गन्धर्वैः असुरैः नतकन्धरैः ॥४४॥

सः भूयः अपि	उन्होंने फिरसे भी	असुरैः	असुरों द्वारा
तत्र	वहां	स्तूयमानं	स्तुत होते
सिद्ध चारण	सिद्ध, चारण	अहीश्वरं	शेष भगवान्को
गन्धर्वैः	गन्धर्वों तथा	अद्राक्षीत्	देखा ॥४४॥
नतकन्धरैः	सिर झुकाये		

सहस्रशिरसं देवं सहस्रफणमौलिनम् ।
नीलाम्बरं बिसश्वेतं शृङ्गैः श्वेतमिव स्थितम् ॥४५॥

सहस्र शिरसं देव सहस्रफण मौलिनं नीलाम्बरं बिसश्वेतं शृंगैः श्वेतं इव स्थितम् ॥४५॥

सहस्र	उन सहस्र	बिसश्वेतं	कमल तन्तुके समान
शिरसं	सिरवाले		श्वेत
देवं	देवके	श्वेतं शृङ्गैः	श्वेत पर्वतके
सहस्रफण	सहस्र-फणोंपर	इव स्थितं	समान स्थित हैं
मौलिनं	मुकुट हैं,		॥४५॥
नीलाम्बरं	वे नील-वस्त्र पहिने		

तस्योत्सङ्गे घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।
पुरुषं चतुर्भुजं शान्तं पद्मपत्रारुणेक्षणम् ॥४६॥

तस्य उत्सङ्गे घनश्यामं पीत कौशेय वाससं पुरुषं चतुर्भुजं शान्तं पद्मपत्र अरुण ईक्षणम् ॥४६॥

तस्य उत्सङ्गे	उनकी गोदमें	पद्मपत्र	कमल-दलके समान
घनश्यामं	मेघश्याम	अरुण ईक्षणं	लाल नेत्रोंवाले
पीत कौशेय	पीले रेशमी		
वाससं	वस्त्र पहिने	पुरुषं	परम पुरुषको
चतुर्भुजं शान्तं	चतुर्भुज, शान्त		(देखा) ॥४६॥

चारुप्रसन्नवदनं चारुहासनिरीक्षणम् ।
सुभ्रून्नसं चारुकर्णं सुकपोलारुणाधरम् ॥४७॥

चारु प्रसन्नवदनं चारुहास निरीक्षणं सुभ्रू उन्नसं चारुकर्णं सुकपोल अरुण अधरम् ॥४७॥

चारु	(उनका) सुन्दर	सुभ्रू उन्नसं	सुन्दर भौंहें, उठी
प्रसन्नवदनं	प्रसन्न मुख है,		नासिका
चारुहास	सुन्दर हास्य सहित	चारुकर्णं	सुन्दर कान,
निरीक्षणं	देखते हैं,	सुकपोल	सुन्दर कपोल और
		अरुण अधरं	लाल ओष्ठ हैं ॥४७॥

प्रलम्बपीवरभुजं तुङ्गांसोरःस्थलश्रियम् ।
कम्बुकण्ठं निम्नाभिं वलिमत्पल्लवोदरम् ॥४८॥

प्रलम्ब पीवर भुजं तुङ्ग अंस उरः स्थल श्रियं कम्बु कण्ठं निम्न नाभिं वलिमत् पल्लव उदरम् ॥४८॥

प्रलम्ब पीवर	लम्बी मोटी	निम्न नाभिं	गहरी नाभि तथा
भुजं	भुजाओंवाले,	वलिमत्	त्रिवली युक्त
तुङ्ग अंस	ऊँचा कन्धा	पल्लव उदरं	पल्लवके समान
उरः स्थल	वक्ष स्थलपर		(पतला) पेट है
श्रियं	लक्ष्मीका स्थान है,		॥४८॥
कम्बु कण्ठं	शंखके समान गला		

बृहत्कटितटश्रोणिकरभोरुद्वयान्वितम् ।
चारुजानुयुगं चारुजङ्घायुगलसंयुतम् ॥४९॥

बृहत् कटितटश्रोणि करभ उरुद्वय अन्वितं चारु जानुयुगं चारु जङ्घा युगल संयुतम् ॥४६॥

कटितटश्रोणि	कमरके नीचेके नितम्ब	चारु जानुयुगं	दोनों घुटने सुन्दर हैं,
बृहत्	विशाल है,	चारु	सुन्दर
करभ उरुद्वय	हाथीकी सूंके समान दोनों जांघों	जङ्घा युगल	दोनों पण्डलियों
अन्वितं	से युक्त हैं,	संयुतं	वाले हैं ॥४६॥

तुङ्गगुल्फारुणनखव्रातदीधितिभिर्वृतम् ।
नवाङ्गुल्यङ्गुष्ठदलैर्विलसत्पादपङ्कजम् ॥५०॥

तुङ्ग गुल्फ अरुण नखव्रात दीधितिभिः वृतं नव अङ्गुलि अङ्गुष्ठ दलैः विलसत् पाद पङ्कजम् ॥५०॥

तुङ्ग गुल्फ	टखने उभड़े हैं,	अङ्गुलि	अंगुलियों तथा
अरुण	लाल	अङ्गुष्ठ	अंगूठे
नखव्रात	नख-मण्डल	दलैः	रूपी दलोंसे
दीधितिभिः	ज्योति किरणोंसे	पाद पङ्कजं	चरण-कमल
वृतं	घिरा है,	विलसत्	सुशोभित हैं ॥५०॥
नव	नवीन		

सुमहार्हमणिव्रातकिरीटकटकाङ्गदैः ।
कटिसूत्रब्रह्मसूत्रहारनूपुरकुण्डलैः ॥५१॥

सुमहार्हं मणिव्रात किरीट कटक अङ्गदैः कटिसूत्र ब्रह्मसूत्र हार नूपुर कुण्डलैः ॥५१॥

सुमहार्हं	अत्यन्त बहुमूल्य	ब्रह्मसूत्र	यज्ञोपवीत,
मणिव्रात	मणि समूहसे जटित	हार नूपुर	हार, नूपुर,
किरीट कटक	मुकुट, कंकण,	कुण्डलैः	कुण्डलोंसे (सुशोभित
अङ्गदैः	अंगदसे (आभूषित)		हैं) ॥५१॥
कटिसूत्र	करधनी,		

भ्राजमानं पद्मकरं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥५२॥

भ्राजमानं पद्म करं शंख चक्र गदाधरं श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत् कौस्तुभं वनमालिनम् ॥५२॥

करं पद्म	हाथोंमें पद्म	**श्रीवत्स**	श्रीवत्स-चिह्न
शंख चक्र	शंख, चक्र	**भ्राजत्**	सुशोभित है,
गदाधरं	गदा लिए	**कौस्तुभं**	कौस्तुभ-मणि एवं
भ्राजमानं	देदीप्यमान हैं,	**वनमालिनं**	वन-मालाधारी हैं
वक्षसं	वक्षस्थलपर		॥५२॥

सुनन्दनन्दप्रमुखैः पार्षदैः सनकादिभिः ।
सुरेशैर्ब्रह्मरुद्राद्यैर्नवभिश्च द्विजोत्तमैः ॥५३॥

सुनन्द नन्द प्रमुखैः पार्षदैः सनक आदिभिः सुर ईशैः ब्रह्म रुद्र आद्यैः नवभिः च द्विज उत्तमैः ॥५३॥

सुनन्द नन्द	सुनन्द, नन्द	**आद्यैः**	आदिसे,
प्रमुखैः	प्रमुख	**च द्विज**	तथा ब्राह्मण
पार्षदैः	पार्षदोंसे,	**उत्तमैः**	श्रेष्ठ (प्रजापति)
सनक	सनक	**नवभिः**	नौ (मरीचि, अत्रि,
आदिभिः	आदि (कुमारों) से,		अंगिरा, पुलस्त्य,
सुर ईशैः	देवताओंके स्वामी	**पुलह 'क्रतु'**	भृगु, वशिष्ठ, दक्ष)
ब्रह्म रुद्र	ब्रह्मा, रुद्र		से ॥५३॥

प्रह्लादनारदवसुप्रमुखैर्भागवतोत्तमैः ।
स्तूयमानं पृथग्भावैर्वचोभिरमलात्मभिः ॥५४॥

प्रह्लाद नारद वसु प्रमुखैः भागवत उत्तमैः स्तूयमानं पृथक् भावैः वचः भिः अमल आत्मभिः ॥५४॥

प्रह्लाद नारद	प्रह्लाद, नारद,	**प्रमुखैः**	मुख्य-मुख्य
वसु	आठो वसु,	**भागवत उत्तमैः**	श्रेष्ठ भगवद्-भक्त

अमल	निर्मल	वचः भिः	वेद-वाणीसे
आत्मभिः	चित्तों द्वारा	स्तूयमानं	स्तुत हो रहे हैं
पृथक्	अलग-अलग अपने		॥५४॥
भावैः	भावोंके अनुसार		

श्रिया पुष्टया गिरा कान्त्या कीर्त्या तुष्ट्येलयोर्जया ।
विद्ययाविद्यया शक्त्या मायया च निषेवितम् ॥५५॥

श्रिया पुष्टया गिरा कान्त्या कीर्त्या तुष्ट्या इलया जया विद्यया अविद्यया शक्त्या मायया च निषेवितम् ॥५५॥

श्रिया पुष्टया	लक्ष्मी, पुष्टि,	अविद्यया	अविद्या,
गिरा कान्त्या	सरस्वती, कान्ति	शक्त्या च	शक्ति तथा
कीर्त्या तुष्टया	कीर्ति, तुष्टि,	मायया	माया द्वारा
इलया जया	पृथ्वी, जया,	निषेवितं	सेवित हो रहे ॥५५॥
विद्यया	विद्या,		

विलोक्यसुभृशं प्रीतो भक्त्या परमया युतः ।
हृष्यत्तनूरुहो भावपरिक्लिन्नात्मलोचनः ॥५६॥

विलोक्य सुभृशं प्रीतः भक्त्या परमया युतः हृष्यत् तनूरुहः भाव परिक्लिन्न आत्म लोचनः ॥५६॥

विलोक्य	(इस रूपका) दर्शन करके	हृष्यत् तनूरुहः	रोम हर्षसे खड़े हो गये
सुभृशं प्रीतः	अत्यधिक प्रसन्नता हुई	भाव	भावनासे
परमया भक्त्या	परमा भक्तिसे	परिक्लिन्न	आर्द्र
युतः	सम्पन्न होनेके कारण	आत्म लोचनः	चित्त और नेत्र हो गये ॥५६॥

गिरा गद्गदयास्तौषीत् सत्त्वमालम्ब्य सात्वतः ।
प्रणम्य मूर्ध्नावहितः कृताञ्जलिपुटः शनैः ॥५७॥

गिरा गद्गदया अस्तौषीत् सत्त्वं आलम्ब्य सात्वतः प्रणम्य मूर्ध्ना अवहितः कृत अञ्जलि पुटः शनैः ॥५७॥

सात्वतः	सात्वत वंशीय अक्रूर	अञ्जलिपुटः	हाथ जोड़
		कृत	कर
शनैः	धीरे-धीरे	अवहितः	एकाग्र होकर
सत्त्वं	धैर्य	गद्गदया गिरा	गद्गद् वाणीसे
आलम्ब्य	धारण करके	अस्तौषीत्	स्तुति करने लगे ॥५७॥
मूर्ध्ना	सिर झुकाकर		
प्रणम्य	प्रणाम करके		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धेऽक्रूरप्रतियाने एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

अक्रूर उवाच

नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं
नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम् ।
यन्नाभिजातादरविन्दकोशाद्
ब्रह्माऽऽविरासीद् यत एष लोकः ॥ १ ॥

नतः अस्मि अहं त्वां अखिलहेतु हेतुं नारायणं पूरुषं आद्यं अव्ययं यत् नाभि जातात् अरविन्द कोशात् ब्रह्मा आविः आसीत् यत एष लोकः ॥१॥

अखिल हेतु	सर्वकारण	यत् नाभि	जिनकी नाभिसे
हेतुं	कारण	जातात्	उत्पन्न
नारायणं	नारायण	अरविन्द	पद्म
आद्यं पूरुषं	आदिपुरुष	कोशात्	कोशसे
अव्ययं त्वां	अविनाशी आपको	ब्रह्मा आविः	ब्रह्मा प्रकट
अहं नतः अस्मि	मैं नमस्कार करता हूँ,	आसीत्	हुए
		यत एष लोकः	जिनसे ये सब लोक (उत्पन्न) हुए ॥१॥

भूस्तोयमग्निः पवनः खमादि
र्महानजादिर्मन इन्द्रियाणि ।
सर्वेन्द्रियार्था विबुधाश्च सर्वे
ये हेतवस्ते जगतोऽङ्गभूताः ॥ २ ॥

भूः तोयं अग्निः पवनः खं आदिः महान् अज आदिः मन इन्द्रियाणि सर्व इन्द्रिय अर्था विबुधाः च सर्वे ये हेतवः ते जगतः अङ्ग भूताः ॥२॥

भूः तोयं	पृथ्वी, जल,
अग्निः पवनं	अग्नि, वायु,
खं आदिः	आकाश, अहंकार,
महान् अज	महत्तत्त्व, प्रकृति,
आदिः मन	पुरुष, मन,
इन्द्रियाणि	इन्द्रियां,
सर्वे इन्द्रिय	इन्द्रियोंके सब
अर्था	(शब्दादि) विषय,
च सर्वे विबुधाः	तथा सब देवता,
ये जगतः हेतवः	जो जगत्के कारण हैं
ते अङ्ग भूताः	वे सब आपके अंग रूप हैं ॥२॥

नैते स्वरूपं विदुरात्मनस्ते
ह्यजादयोऽनात्मतया गृहीताः ।
अजोऽनुबद्धः स गुणैरजाया
गुणात् परं वेद न ते स्वरूपम् ॥३॥

न एते स्वरूपं विदुः आत्मनः ते हि अज आदयः अनात्मतया गृहीताः अजः अनुबद्ध स गुणैः अजाया गुणात् परं वेद न ते स्वरूपम् ॥३॥

हि अजा आदयः	क्योंकि प्रकृति आदि
अनात्मतया	अनात्मा (इदं) रूपसे
गृहीताः	ग्रहण किए जाते हैं
एते ते आत्मनः	ये सब आप परमात्माके
स्वरूपं न विदुः	स्वरूपको नहीं जानते
स अजः	वे ब्रह्माजी (आपका स्वरूप होनेपर भी)
गुणैः अनुबद्धः	गुणोंसे युक्त होनेसे
अजाया गुणात्	मायाके गुणोंसे
परं ते स्वरूपं	अतीत आपका स्वरूप
न वेद	नहीं जानते ॥३॥

त्वां योगिनो यजन्त्यद्धा महापुरुषमीश्वरम् ।
साध्यात्मं साधिभूतं च साधिदैवं च साधवः ॥ ४ ॥

त्वां योगिनः यजन्ति अद्धा महापुरुषं ईश्वरं स अध्यात्मं स अधिभूतं च स अधिदैवं च साधवः ॥४॥

साधवः योगिनः	उत्तम योगी
स अध्यात्मं	(अपने अन्तःकरणमें) अन्तर्यामी रूपमें
स अधिभूतं च	सम्पूर्ण जगत् रूपमें भी
च स अधिदैवं	तथा (सूर्यादि) अधिदेवताओंके रूपमें भी

त्वां महापुरुषं	आप परमपुरुष तथा	अद्धा यजन्ति	साक्षात् उपासना करते हैं ॥४॥
ईश्वरं	जगन्नियन्ताकी		

त्रय्या च विद्यया केचित् त्वां वै वैतानिका द्विजाः ।
यजन्ते वितते र्यज्ञै र्नानारूपामराख्यया ॥ ५ ॥

त्रय्या च विद्यया केचित् त्वां वै वैतानिका द्विजाः यजन्ते विततैः यज्ञैः नाना रूप अमर आख्यया ॥५॥

केचित्	कोई-कोई	नाना रूप	अनेक रूपोंमें
वैतानिका	कर्मकाण्डी	अमर आख्यया	देवताओंके नामसे
द्विजाः	ब्राह्मण	वै त्वां यजन्ते	निश्चय आपकी ही उपासना करते हैं ॥५॥
त्रय्या विद्यया	त्रयी (वेद) विद्याके द्वारा भी		
विततैः यज्ञैः	बड़े विस्तारवाले यज्ञोंसे		

एके त्वाखिलकर्माणि संन्यस्योपशमं गताः ।
ज्ञानिनो ज्ञानयज्ञेन यजन्ति ज्ञानविग्रहम् ॥ ६ ॥

एके तु अखिल कर्माणि सन्यस्य उपशमं गताः ज्ञानिनः ज्ञान यज्ञेन यजन्ति ज्ञान विग्रहम् ॥६॥

एके ज्ञानिनः तु	कोई ज्ञानी तो	ज्ञान विग्रहं	ज्ञान स्वरूप (आपकी वे)
अखिल कर्माणि	सम्पूर्ण कर्मोंका	ज्ञान यज्ञेन	ज्ञानयज्ञसे
सन्यस्य	त्याग करके	यजन्ति	उपासना करते हैं ॥६॥
उपशमं गताः	शान्त भाव धारण कर लेते हैं,		

अन्ये च संस्कृतात्मानो विधिनाभिहितेन ते ।
यजन्ति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्येकमूर्तिकम् ॥ ७ ॥

अन्ये च संस्कृत आत्मानः विधिना अभिहितेन ते यजन्ति त्वन्मयाः त्वां वै बहुमूर्ति एक मूर्तिकम् ॥७॥

अन्ये	दूसरे
अभिहितेन	(पाञ्चरात्रमें) निर्दिष्ट
विधिना	विधिसे
आत्मानः	अपना (न्यासादि)
संस्कृत	संस्कार करके
त्वन्मयाः	आपका स्वरूप होकर
ते बहुमूर्ति	वे बहुत रूपवाले
च एक मूर्तिकं	होनेपर भी एक ही स्वरूपवाले
वै त्वां यजन्ति	निश्चय आपकी ही उपासना करते हैं ॥७॥

त्वामेवान्ये शिवोक्तेन मार्गेण शिवरूपिणम् ।
बह्वाचार्यविभेदेन भगवन् समुपासते ॥ ८ ॥

त्वां एव अन्ये शिव उक्तेन मार्गेण शिवरूपिणं बहु आचार्य विभेदेन भगवन् समुपासते ॥८॥

भगवन्	भगवन्
शिव उक्तेन	शंकरजी द्वारा उपदिष्ट (तन्त्रोंके)
बहु आचार्य	बहुतसे आचार्योंके
विभेदेन मार्गेण	भेदसे (अनेक) मार्गोंसे
शिवरूपिणं	शिव स्वरूप
त्वां एव	आपकी ही
समुपासते	सविधि उपासना करते हैं ॥८॥

सर्व एव यजन्ति त्वां सर्वदेवमयेश्वरम् ।
येऽप्यन्यदेवताभक्ता यद्यप्यन्यधियः प्रभो ॥ ९ ॥

सर्व एव यजन्ति त्वां सर्वदेवमय ईश्वरं ये अपि अन्य देवता भक्ता यद्यपि अन्य धियः प्रभो ॥९॥

प्रभो	प्रभो !
ये अन्य देवता	जो दूसरे देवताओंके
भक्ता अपि	भक्त भी हैं
यद्यपि	यद्यपि (वे)
अन्य धियः	दूसरेमें चित्त लगाये हैं; किन्तु
सर्व एव	वे सभी
सर्व देवमय	सर्व देवमय
ईश्वरं त्वां	सर्वेश्वर आपकी
यजन्ति	उपासना करते हैं ॥९॥

यथाद्रिप्रभवा नद्यः पर्जन्यापूरिताः प्रभो ।
विशन्ति सर्वतः सिन्धुं तद्वत्त्वां गतयोऽन्ततः ॥१०॥

यथा अद्रि प्रभवा नद्यः पर्जन्य आपूरिताः प्रभो विशन्ति सर्वतः सिन्धुं तद्वत् त्वां गतयः अन्ततः ॥१०॥

प्रभो	प्रभो !	सिन्धुं विशन्ति	समुद्रमें प्रवेश करती हैं
यथा अद्रि	जैसे पर्वतसे	तद्वत् गतयः	उसी प्रकार सब उपासना मार्ग
प्रभवा	निकली	अन्ततः त्वां	अन्तमें आपमें पहुँचते हैं ॥१०॥
पर्जन्य आपूरिताः	वर्षासे भरी गई		
नद्यः सर्वतः	नदियां सब ओरसे आकर		

सत्त्वं रजस्तम इति भवतः प्रकृतेर्गुणाः ।
तेषु हि प्राकृताः प्रोता आब्रह्मस्थावरादयः ॥११॥

सत्त्वं रजः तम इति भवतः प्रकृतेः गुणाः तेषु हि प्राकृताः प्रोताः आब्रह्म स्थावर आदयः ॥११॥

सत्त्वं रजः	सत्त्व, रज,	स्थावर आदयः	(वृक्षादि) अचरों तक सब
तम इति	तम ये	तेषु प्राकृताः	उन गुणोंसे होनेके कारण प्राकृत
भवतः प्रकृतेः	आपकी प्रकृतिके		
गुणाः	गुण हैं	प्रोताः	कहे गये हैं ॥११॥
हि आब्रह्म	क्योंकि ब्रह्मासे लेकर		

तुभ्यं नमस्तेऽस्त्वविषक्तदृष्टये
सर्वात्मने सर्वधियां च साक्षिणे ।
गुणप्रवाहोऽयमविद्यया कृतः
प्रवर्तते देवनृतिर्यगात्मसु ॥१२॥

तुभ्यं नमः ते अस्तु अविषक्त दृष्टये सर्व आत्मने सर्वधियां च साक्षिणे गुणप्रवाहः अयं अविद्यया कृतः प्रवर्तते देव नृतिर्यक् आत्मसु ॥१२॥

सर्व आत्मने	(परन्तु आप) सर्वात्मा
अविषक्त दृष्टये	अनासक्त दृष्टि
च सर्वधियां	तथा सबकी बुद्धियों-
	के
साक्षिणे	साक्षी हो,
अयं अविद्यया	यह अविद्या से
कृतः	उत्पन्न
नृतिर्यक्	मनुष्य, पशु-पक्षी
आत्मसु	स्वरूप
गुणप्रवाहः	गुणोंका प्रवाह रूप जगत्
तुभ्यं प्रवर्तते	आपसे ही प्रवृत्त (उत्पन्न) हुआ है
ते नमः अस्तु	आपको नमस्कार हो ॥१२॥

अग्निर्मुखं तेऽवनिरङ्घ्रिरीक्षणं
सूर्यो नभो नाभिरथो दिशः श्रुतिः ।
द्यौः कं सुरेन्द्रास्तव बाहवोऽर्णवाः
कुक्षिर्मरुत् प्राणबलं प्रकल्पितम् ॥१३॥

अग्निः मुखं ते अवनिः अंघ्रिः ईक्षणं सूर्यः नभः नाभिः अथः दिशः श्रुतिः द्यौः कं सुरेन्द्राः तव बाहवः अर्णवाः कुक्षिः मरुत् प्राणबलं प्रकल्पितम् ॥१३॥

अग्निः ते मुखं	अग्नि आपके मुख हैं,
अवनिः अंघ्रिः	पृथ्वी पैर,
सूर्यः ईक्षणं	सूर्य नेत्र,
नभः नाभिः	आकाश नाभि,
अथः दिशः	तथा दिशामें
श्रुतिः	कान,
द्यौः कं	स्वर्ग मस्तक,
सुरेन्द्राः	इन्द्रादि देवता
तव बाहवः	आपकी भुजाएं,
अर्णवाः कुक्षिः	समुद्र पेट,
मरुत् प्राणबलं	वायु प्राण-शक्ति
प्रकल्पितं	(उपासनाके लिए) कल्पित किये गये हैं ॥१३॥

रोमाणि वृक्षौषधयः शिरोरुहा
मेघाः परस्यास्थिनखानि तेऽद्रयः ।
निमेषणं रात्र्यहनी प्रजापति-
र्मेढ्रस्तु वृष्टिस्तव वीर्यमिष्यते ॥१४॥

रोमाणि वृक्ष औषधयः शिरोरुहाः मेघाः परस्य अस्थि नखानि ते अद्रयः निमेषणं रात्रि अहनी प्रजापतिः मेढ्रः तु वृष्टिः तव वीर्यं इष्यते ॥१४॥

ते परस्य	आप परमपुरुषके
वृक्ष औषधयः	वृक्ष तथा औषधियां (तृणादि)
रोमाणि	रोम हैं,
मेघाः	मेघ
शिरोरुहाः	सिरके केश,
अद्रयः	पर्वत
अस्थि नखानि	हड्डी और नख,
रात्रि अहनी	रात्रि और दिन
निमेषणं	पलकों का गिरना-उठना,
प्रजापतिः मेढ्रः	प्रजापति उपस्थ,
तु वृष्टिः	और वर्षा
तव वीर्यं इष्यते	आपका वीर्य मानी जाती है ॥१४॥

त्वय्यव्ययात्मन् पुरुषे प्रकल्पिता
लोकाः सपाला बहुजीवसंकुलाः ।
यथा जले सञ्जिहते जलौकसो-
ऽप्युदुम्बरे वा मशका मनोमये ॥१५॥

त्वयि अव्यय आत्मन् पुरुषे प्रकल्पिता लोकाः सपाला बहुजीव संकुलाः यथा जले सञ्जिहते जलौकसः अपि उदुम्बरे वा मशकाः मनोमये ॥१५॥

अव्यय आत्मन्	अविनाशी स्वरूप
त्वयि	आप
मनोमये	मनोमय (भावना-मय)
पुरुषे	विराट् पुरुषमें
यथा जले	जैसे जलमें
जलौकसः	जलचर प्राणी
सञ्जिहते	हलचल करते हैं,
अपि वा	अथवा
उदुम्बरे मशकाः	गूलरके फलमें मच्छर
बहुजीव	बहुत प्राणियोंसे
संकुलाः	भरे
सपाला लोकाः	लोकपालोंके साथ सब लोक
प्रकल्पिताः	कल्पित हैं ॥१५॥

यानि यानीह रूपाणि क्रीडनार्थं बिभर्षि हि ।
तैरामृष्टशुचो लोका मुदा गायन्ति ते यशः ॥१६॥

यानि यानि इह रूपाणि क्रीडन अर्थं बिभर्षि हि तैः आमृष्ट शुचः लोका मुदा गायन्ति ते यशः ॥१६॥

क्रीडन अर्थं	क्रीड़ा करनेके लिए	मुदा लोका	प्रसन्न होकर लोग
इह यानि यानि	इस संसारमें जो-जो	तैः ते यशः	उन रूपोंके माध्यम-
रूपाणि बिभर्षि	अवतार (आप) धारण करते हैं,		से आपका यश
हि तानि	क्योंकि उनके द्वारा	गायन्ति	गाते हैं ॥१६॥
आमृष्ट शुचः	शोक पूर्णतः मिट जाता है		

नमः कारणमत्स्याय प्रलयाब्धिचराय च ।
हयशीर्ष्णे नमस्तुभ्यं मधुकैटभमृत्यवे ॥१७॥

नमः कारण मत्स्याय प्रलय अब्धि चराय च हयशीर्ष्णे नमः तुभ्यं मधुकैटभ मृत्यवे ॥१७॥

प्रलय अब्धि	प्रलय-समुद्रमें	मधुकैटभ	मधु-कैटभको
चराय	विचरण करनेवाले	मृत्यवे	मारनेवाले
च कारण	तथा (वेदोद्धारादि) कारणोंसे	तुभ्यं हयशीर्ष्णे	आप हय-शीर्षको
मत्स्याय नमः	मत्स्य रूपधारीको नमस्कार,	नमः	नमस्कार ॥१७॥

अकूपाराय बृहते नमो मन्दरधारिणे ।
क्षित्युद्धारविहाराय नमः सूकरमूर्तये ॥१८॥

अकूपाराय बृहते नमः मन्दर धारिणे क्षिति उद्धार विहाराय नमः शूकरमूर्तये ॥१८॥

मन्दर धारिणे	मन्दराचल धारण करनेवाले	क्षिति उद्धार	पृथ्वीके उद्धारकी
बृहते अकूपाराय	विशाल कच्छपको	विहाराय	क्रीड़ा करनेवाले
नमः	नमस्कार	शूकरमूर्तये	वाराह स्वरूपको
		नमः	नमस्कार ॥१८॥

नमस्तेऽद्भुतसिंहाय साधुलोकभयापह ।
वामनाय नमस्तुभ्यं क्रान्तत्रिभुवनाय च ॥१९॥

नमः ते अद्भुत सिंहाय साधुलोक भय अपह वामनाय नमः तुभ्यं क्रान्त त्रिभुवनाय च ॥१९॥

साधुलोक	सत्पुरुष लोगोंका	**च त्रिभुवनाय**	तथा तीनों लोकों-
भय अपह	भय दूर करनेवाले	**क्रान्त**	को व्याप्त करने-
ते अद्भुत	आप अद्भुत		वाले
सिंहाय नमः	नृसिंहको नमस्कार,	**तुभ्यं वामनाय**	आप वामनको
		नमः	नमस्कार ॥१९॥

नमो भृगूणां पतये दृप्तक्षत्रवनच्छिदे ।
नमस्ते रघुवर्याय रावणान्तकराय च ॥२०॥

नमः भृगूणां पतये दृप्त क्षत्र वनच्छिदे नमः ते रघुवर्याय रावण अन्तकराय च ॥२०॥

दृप्त क्षत्र	गर्विष्ठ क्षत्रियोंरूपी	**च रावण**	तथा रावणको
वनच्छिदे	वनको काट देनेवाले	**अन्तकराय**	मारनेवाले
भृगूणां पतये	भृगु-वंश-पति	**रघुवर्याय**	रघुवंश शिरोमणि
	परशुरामको	**ते नमः**	आपको नमस्कार
नमः	नमस्कार		॥२०॥

नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥२१॥

नमः ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च प्रद्युम्नाय अनिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥२१॥

सात्वतां पतये	भक्तोंके स्वामी	**प्रद्युम्नाय**	(चतुर्व्यूह रूप)
ते वासुदेवाय	आप वासुदेवको		प्रद्युम्नको एवं
नमः	नमस्कार,	**अनिरुद्धाय नमः**	अनिरुद्धको नमस्कार
च सङ्कर्षणाय	तथा सङ्कर्षणको		॥२१॥
नमः	नमस्कार,		

नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानवमोहिने ।
म्लेच्छप्रायक्षत्रहन्त्रे नमस्ते कल्किरूपिणे ॥२२॥

नमः बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानव मोहिने म्लेच्छप्राय क्षत्र हन्त्रे नमः ते कल्किरूपिणे ॥२२॥

दैत्यदानव	दैत्य-दानवोंको	**क्षत्र हन्त्रे**	क्षत्रियोंको मारने-वाले
मोहिने	सम्मोहित करनेवाले	**कल्किरूपिणे**	कल्कि रूपधारी
शुद्धाय बुद्धाय	शुद्ध स्वरूप बुद्धको*	**ते नमः**	आपको नमस्कार ॥२२॥
नमः	नमस्कार		
म्लेच्छप्राय	म्लेच्छप्राय		

भगवज्जीवलोकोऽयं मोहितस्तव मायया ।
अहंममेत्यसद्ग्राहो भ्राम्यते कर्मवर्त्मसु ॥२३॥

भगवत् जीवलोकः अयं मोहितः तव मायया अहं मम इति असत् ग्राहः भ्राम्यते कर्मवर्त्मसु ॥२३॥

भगवत्	भगवन् !	**अहं मम इति**	'मैं-मेरा' इस प्रकार
तव मायया	आपकी मायासे	**असत् ग्राहः**	झूठा आग्रह करके
मोहितः अयं	मोहित यह	**कर्मवर्त्मसु**	कर्मके मार्गमें
जीवलोकः	जीव लोग	**भ्राम्यते**	भटक रहे हैं ॥२३॥

अहं चात्मात्मजागारदारार्थस्वजनादिषु ।
भ्रमामि स्वप्नकल्पेषु मूढः सत्यधिया विभो ॥२४॥

अहं च आत्म आत्मज आगार दारा अर्थ स्वजन आदिषु भ्रमामि स्वप्न कल्पेषु मूढः सत्यधिया विभो ॥२४॥

---

* पुराणोंमें जिस बुद्धावतारका वर्णन है, वह गौतम बुद्ध नहीं हैं। वह बुद्धावतार 'त्रिपुर-दहन' के समय हुआ। उसका वर्णन 'शिवचरित' में है। गौतम बुद्धको 'बुद्धावतार' के रूपमें सर्वप्रथम 'गीत गोविन्द' में महा-कवि जयदेवजीने मान लिया।

विभो	प्रभो !	**अर्थ स्वजन**	धन, सम्बन्धी
अहं च	मैं भी	**आदिषु**	आदिमें
स्वप्नकल्पेषु	स्वप्नके समान	**सत्य धिया**	सत्यत्व बुद्धि करके
आत्म आत्मज	शरीर, पुत्र	**मूढः भ्रमामि**	मूर्ख बना भटक
आगार दारा	घर, स्त्री,		रहा हूँ ॥२४॥

अनित्यानात्मदुःखेषु विपर्ययमतिर्ह्यहम् ।
द्वन्द्वारामस्तमोविष्टो न जाने त्वाऽऽत्मनः प्रियम् ॥२५॥

अनित्य अनात्म दुःखेषु विपर्यय मतिः हि अहं द्वन्द्व आरामः तमः विष्टः न जाने त्वां आत्मनः प्रियम् ॥२५॥

अनित्य अनात्म	नाशवान्, आत्मासे भिन्न,	**द्वन्द्व आरामः**	(सुख-दुःखादि) द्वन्दोंमें सुख माननेवाला
दुःखेषु	दुःखरूप (पदार्थों)में		
विपर्यय मतिः	उलटी बुद्धि रखनेवालामैं	**आत्मनः प्रियं त्वां न जाने**	अपने परम प्रिय आपको नहीं जानता ॥२५॥
तमः विष्टः	अज्ञानमें निमग्न		

यथाबुधो जलं हित्वा प्रतिच्छन्नं तदुद्भवैः ।
अभ्येति मृगतृष्णां वै तद्वत्त्वाहं पराङ्मुखः ॥२६॥

यथा अबुधः जलं हित्वा प्रतिच्छन्नं तत् उद्भवैः अभि एति मृगतृष्णां वै तद्वत् त्वां अहं पराक् मुखः ॥२६॥

यथा अबुधः	जैसे अज्ञानी पुरुष	**अभि एति**	ओर जाता है
तत् उद्भवैः	उसी (जल) से उत्पन्न (काई आदि)	**वै तद्वत्**	निश्चय उसीकी भांति
प्रतिच्छन्नं	से ढके हुए	**अहं त्वां**	मैं आपसे
जलं हित्वा	जलको छोड़कर	**पराक् मुखः**	विमुख हूँ ॥२६॥
मृगतृष्णा	मृगतृष्णा (सूर्य किरणोंमें प्रतीत होते) जलकी		

नोत्सहेऽहं कृपणधीः कामकर्महतं मनः ।
रोद्धुं प्रमाथिभिश्चाक्षैर्ह्रियमाणमितस्ततः ॥२७॥

न उत्सहे अहं कृपणधीः कामकर्म हतं मनः रोद्धुं प्रमाथिभिः च अक्षैः ह्रियमाणं इतः ततः ॥२७॥

अहं कृपणधीः	मैं दीन बुद्धि
कामकर्म	कामना तथा कर्मसे
हतं	पीड़ित
मनः च	मन तथा
प्रमाथिभिः	मथ देनेवाली
अक्षैः इतः ततः	इन्द्रियों द्वारा इधर-उधर
ह्रियमाणं	खींचा जाता हुआ
रोद्धुं न उत्सहे	इनको रोकनेका उत्साह नहीं रखता ॥२७॥

सोऽहं तवाङ्घ्र्युपगतोऽस्म्यसतां दुरापं
तच्चाप्यहं भवदनुग्रह ईश मन्ये ।
पुंसो भवेद् यर्हि संसरणापवर्ग-
स्त्वय्यब्जनाभ सदुपासनया मतिः स्यात् ॥२८॥

सः अहं तव अङ्घ्रि उपगतः अस्मि असतां दुरापं तत् च अपि अहं भवत् अनुग्रह ईश मन्ये पुंसः भवेत् यर्हि संसरण अपवर्गः त्वयि अब्जनाभ सत् उपासनया मतिः स्यात् ॥२८॥

सः अहं	वह मैं
असतां दुरापं	असत्पुरुषोंके लिए दुष्प्राप्य
तव अङ्घ्रि	आपके चरणोंके
उपगतः अस्मि	समीप पहुँच गया हूँ,
तत् च अपि	इसको भी
ईश भवत्	स्वामी ! आपकी
अनुग्रह अहं मन्ये	कृपा मैं मानता हूँ, क्योंकि
पुंसः संसरण	पुरुषके संसारसे
अपवर्गः भवेत्	मोक्षका समय होता है तब
सत् उपासनया	सत्पुरुषोंकी सेवासे
त्वयि मतिः	आपमें बुद्धि
स्यात्	लगती है ॥२८॥

नमो विज्ञानमात्राय सर्वप्रत्ययहेतवे ।
पुरुषेशप्रधानाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥२९॥

नमः विज्ञानमात्राय सर्वप्रत्यय हेतवे पुरुष ईश प्रधानाय ब्रह्मणे अनन्तशक्तये ॥२९॥

सर्वप्रत्यय	समस्त प्रतीतियोंके	**प्रधानाय**	प्रकृति रूप,
हेतवे	कारण,	**अनन्तशक्तये**	अनन्त शक्ति
विज्ञानमात्राय	केवल ज्ञान स्वरूप,	**ब्रह्मणे**	परमब्रह्मको
पुरुष ईश	जीव, ईश्वर,	**नमः**	नमस्कार ॥२९॥

नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च ।
हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो ॥३०॥

नमः ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च हृषीकेश नमः तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो ॥३०॥

प्रभो	प्रभो !	**च हृषीकेश**	तथा (अन्तर्यामी) हृषीकेश
सर्वभूतक्षयाय	सम्पूर्ण प्राणियोंके नाशक (कालरूप)	**तुभ्यं नमः**	आपको नमस्कार
ते वासुदेवाय	आप वासुदेवको	**मां प्रपन्नं**	मुझ शरणागतकी
नमः	नमस्कार,	**पाहि**	रक्षा करो ॥३०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धेऽक्रूरस्तुतिर्नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

अथ एकचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

स्तुवतस्तस्य भगवान् दर्शयित्वा जले वपुः ।
भूयः समाहरत् कृष्णो नटो नाट्यमिवात्मनः ॥१॥

स्तुवतः तस्य भगवान् दर्शयित्वा जले वपुः भूयः सम अहरत् कृष्णः नटः नाट्यं इव आत्मनः ॥१॥

इव नाट्यधरः	जैसे नाटक करने-वाला	जले आत्मनः वपुः	जलमें अपना रूप
		दर्शयित्वा	दिखलाकर
नटः भगवान्	नट हो ऐसे भगवान	भूयः	फिर
कृष्णः तस्य	श्रीकृष्णने उनको	सम अहरत्	छिपा लिया ॥१॥

सोऽपि चान्तर्हितं वीक्ष्य जलादुन्मज्ज्य सत्वरः ।
कृत्वा चावश्यकं सर्वं विस्मितो रथमागमत् ॥ २ ॥

सः अपि च अन्तर्हितं वीक्ष्य जलात् उन्मज्ज्य सत्वरः कृत्वा च आवश्यकं सर्वं विस्मितः रथं आगमत् ॥२॥

सः अपि च	उन (अक्रूर) ने भी	च सर्वं	सब (सन्ध्यादि)
अन्तर्हितं वीक्ष्य	(भगवान्को) तिरोहित देखकर	आवश्यकं	आवश्यक
		कृत्वा विस्मितः	करके चकित होकर
सत्वरः	झटपट	रथं आगमत्	रथपर आ गये
जलात् उन्मज्ज्य	जलसे निकलकर		॥२॥

तमपृच्छद्धृषीकेशः किं ते दृष्टमिहाद्भुतम् ।
भूमौ वियति तोये वा तथा त्वां लक्षया महे ॥ ३ ॥

तं अपृच्छत् हृषीकेशः किं ते दृष्टं इह अद्भुतं भूमौ वियति तोये वा तथा त्वां लक्षया महे ॥३॥

तं हृषीकेशः	उनसे हृषीकेशने	दृष्टं	देखी ?
अपृच्छत्	पूछा—	त्वां तथा	आपको इस प्रकार-
ते इह भूमौ	'आपने यहां पृथ्वी-		का
	पर'	लक्षया महे	हम लक्षित करते
वियति या तोये	आकाशमें या जलमें		हैं ॥३॥
किं अद्भुतं	क्या आश्चर्यकी		
	बात		

अक्रूर उवाच

अद्भुतानीह यावन्ति भूमौ वियति वा जले ।
त्वयि विश्वात्मके तानि किं मेऽदृष्टं विपश्यतः ॥ ४ ॥

अद्भुतानि इह यावन्ति भूमौ वियति वा जले त्वयि विश्व आत्मके तानि किं मे अदृष्टं विपश्यतः ॥४॥

इह यावन्ति	यहां जितने भी	तानि त्वयि	वे सब आप
भूमौ वियति	पृथ्वीपर, आकाशमें,	विश्व आत्मके	विश्व रूपमें हैं,
वा जले	अथवा जलमें	विपश्यतः	(उस आपको) देखते
अद्भुतानि	आश्चर्यजनक		हुए
	(पदार्थ) हैं	मे किं अदृष्टं	मैंने क्या नहीं
			देखा ॥४॥

यत्राद्भुतानि सर्वाणि भूमौ वियति वा जले ।
तं त्वानुपश्यतो ब्रह्मन् किं मे दृष्टमिहाद्भुतम् ॥ ५ ॥

यत्र अद्भुतानि सर्वाणि भूमौ वियति वा जले तं त्वां अनुपश्यतः ब्रह्मन् किं मे दृष्टं इह अद्भुतम् ॥५॥

भूमौ वियति	पृथ्वीपर, आकाशमें,	अनुपश्यतः	साक्षात् देखते हुए
वा जले	अथवा जलमें की	मे इह किं	मैंने यहां क्या
यत्र सर्वाणि	जहां सभी अद्भुत	अद्भुतं	अद्भुत वस्तु
	बातें हैं	दृष्टं	देख ली ॥५॥
तं त्वां ब्रह्मन्	उस आप सर्व-		
	व्यापकको		

श्रीशुक उवाच*

इत्युक्त्वा चोदयामास स्यन्दनं गान्दिनीसुतः ।
मथुरामनयद् रामं कृष्णं चैव दिनात्यये ॥६॥

इतिउक्त्वा चोदयामास स्यन्दनं गान्दिनीसुतः मथुरां अनयत् रामं कृष्णं च एव दिन अत्यये ॥६॥

इतिउक्त्वा	ऐसा कहकर	दिन अत्यये	दिन ढ़लते ढ़लते
गान्दिनीसुतः	गान्दिनी पुत्र अक्रूर ने	रामं कृष्णं च	बलराम तथा श्रीकृष्ण को
स्यन्दनं	रथको	मथुरां अनयत्	मथुरा ले आये ॥६॥
चोदयामास	हाथ दिया		

मार्गे ग्रामजना राजंस्तत्र तत्रोपसंगताः ।
वसुदेवसुतौ वीक्ष्य प्रीता दृष्टिं न चाददुः ॥७॥

मार्गे ग्रामजनाः राजन् तत्र तत्र उपसंगताः वसुदेवसुतौ वीक्ष्य प्रीता दृष्टिं न च अददुः ॥७॥

राजन्	राजन्	वीक्ष्य प्रीता	देखकर प्रसन्न होकर
मार्गे तत्र तत्र	मार्गमें जहाँ तहाँ	दृष्टिं न च	अपनी दृष्टि नहीं
उपसंगताः	समीप आये	अददुः	हटा पाते थे ॥७॥
ग्रामजनाः	ग्रामवासी		
वसुदेवसुतौ	वसुदेवके पूत्रोंको		

तावद् व्रजौकसस्तत्र नन्दगोपादयोऽग्रतः ।
पुरोपवनमासाद्य प्रतीक्षन्तोऽवतस्थिरे ॥८॥

तावत् व्रजौकसः तत्र नन्दगोप आदयः अग्रतः पुरः उपवनं असाद्य प्रतीक्षन्तः अवतस्थिरे ॥८॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तावत् अग्रतः	तब तक पहिले ही	**तत्र पुर उपवनं**	वहाँ नगरके बाहरी बगीचेमें
नन्दगोप आदयः	नन्द गोप आदि	**आसाद्य**	पहुँच करते हुए
व्रजौकसः	व्रजवासी	**प्रतीक्षन्तः अवतस्थिरे**	प्रतीक्षा करते हुए ठहरे थे ॥८॥

तान् समेत्याह भगवानक्रूरं जगदीश्वरः ।
गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रश्रितं प्रहसन्निव ॥९॥

तान् सम एत्य आह भगवान् अक्रूरं जगत् ईश्वरः गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रश्रितं प्रहसन् इव ॥९॥

तान् सम एत्य	उनके समीप पहुँचकर	**गृहीत्वा**	पकड़कर
जगत् ईश्वरः	जगत्के स्वामी	**प्रश्रितं अक्रूरं**	विनम्र अक्रूरसे
भगवान्	भगवानने	**प्रहसन् इव**	हँसते हुए
पाणिना पाणिं	अपने हाथसे हाथ	**आह**	कहा ॥९॥

भवान् प्रविशतामग्रे सहयानः पुरीं गृहम् ।
वयं त्विहावमुच्याथ ततो द्रक्ष्यामहे पुरीम् ॥१०॥

भवान् प्रविशतां अग्रे सहयानः पुरीं गृहं वयं तु इह अवमुच्य अथ ततः द्रक्ष्यामहे पुरीम् ॥१०॥

वयं तु	हम लोगोंको तो	**अग्रे प्रविशतां**	आगे प्रवेश करें
इह अवमुच्य	यहाँ छोड़कर	**अथ ततः**	फिर उसके बाद
भवान् सहयानः	आप रथके साथ	**पुरीं द्रक्ष्यामहे**	(हम) नगरको देखेंगे ॥१०॥
पुरीं गृहं	नगरमें अपने घर		

अक्रूर उवाच—

नाहं भवद्भ्यां रहितः प्रवेक्ष्ये मथुरां प्रभो ।
त्यक्तुं नार्हसि मां नाथ भक्तं ते भक्तवत्सल ॥११॥

न अहं भवद्भ्यां रहितः प्रवेक्ष्ये मथुरां प्रभो त्यक्तुं न अर्हसि मां नाथ भक्तं ते भक्तवत्सल ॥११॥

प्रभो	प्रभो	**नाथ ते भक्तं**	स्वामी ! मैं आपका भक्त हूँ
भवद्भ्यां	आप दोनोंके	**भक्तवत्सल**	भक्तवत्सल !
रहितः	बिना	**मां त्यक्तुं**	(आपको) मुझे छोड़ना
मथुरां	मथुरामें (मैं)	**न अर्हसि**	नहीं चाहिए ॥११॥
न प्रवेक्ष्ये	प्रवेश नहीं करूंगा		

आगच्छ याम गेहान् नः सनाथान् कुर्वधोक्षज ।
सहाग्रजः सगोपालैः सुहृद्भिश्च सुहृत्तम ॥१२॥

आगच्छ याम गेहान् नः सनाथान् कुरु अधोक्षज सह अग्रजः सगोपालैः सुहृद् भिः च सुहृत्तम ॥१२॥

सुहृत्तम	परमश्रेष्ठ	**आगच्छ**	आइये
सह अग्रजः	बड़े भाईके साथ	**गेहान् याम**	हम घर चलें
सगोपालैः	गोपोंके साथ	**अधोक्षज**	अन्तर्यामी प्रभु
च सुहृद् भिः	तथा सब सम्बन्धियों सहित	**नः सनाथान्**	हमें सनाथ
		कुरु	बनाइये ॥१२॥

पुनीहि पादरजसा गृहान् नो गृहमेधिनाम् ।
यच्छौचेनानुतृप्यन्ति पितरः साग्नयः सुराः ॥१३॥

पुनीहि पादरजसा गृहान् नः गृहमेधिनां यत् शौचेन अनु तृप्यन्ति पितरः स अग्नयः सुराः ॥१३॥

पादरजसा	अपनी चरण-रजसे	**पितरः**	पितर और
नः गृहमेधिनां	हम गृहस्थोंके	**स अग्नयः**	अग्निके साथ
गृहान् पुनीहि	घरोंको पवित्र कीजिए	**सुराः तृप्यन्ति**	सब देवता तृप्त हो जाते हैं ॥१३॥
यत् शौचेन	जिनके चरणोदक से		

अवनिज्याङ्घ्रियुगलमासीच्छ्लोक्यो बलिर्महान् ।
ऐश्वर्यमतुलं लेभे गतिं चैकान्तिनां तु या ॥ १४ ॥

अवनिज्य अंघ्रि युगलं आसीत् श्लोक्यः बलिः महान् ऐश्वर्यं अतुलं लेभे गतिं च एकान्तिनां तु या ॥१४॥

अंघ्रि युगलं	(आपके) दोनों चरणोंको	च या तु	तथा जो
अवनिज्य	धोकर	एकान्तिनां	अनन्य भक्तोंकी
बलिः महान्	बलि महान्	अतुलं गतिं	अतुलनीय गति है
श्लोक्यः आसीत्	यशस्वी हो गये	लेभे	उसे भी प्राप्त किया ॥१४॥

आपस्तेऽङ्घ्र्यवनेजन्यस्त्रीँल्लोकाञ्छुचयोऽपुनन् ।
शिरसाधत्त याः शर्वः स्वर्यातः सगरात्मजाः ॥१५॥

आपः ते अंघ्रि अवनेजन्यः त्रीन् लोकान् शुचयः अपुनन् शिरसा आधत्त याः शर्वः स्वर्यातः सगर आत्मजाः ॥१५॥

ते अंघ्रि	आपके चरणोंकी	शिरसा आधत्त	सिरपर धारण करते हैं और
अवनेजन्यः आपः	धोवन-जल रूपा (गंगाजी)	सगर आत्मजाः	राजा सगरके पुत्र (जिसके स्पर्शसे)
त्रीन् लोकान्	तीनों लोकोंको	स्वर्यातः	स्वर्ग चले गये ॥१५॥
शुचयः	पवित्र करनेवाली		
अपुनन्	परम पवित्र है,		
याः शर्वः	जिन्हें शंकरजी		

देवदेव जगन्नाथ पुण्यश्रवणकीर्तन ।
यदूत्तमोत्तमश्लोक नारायण नमोऽस्तु ते ॥१६॥

देवदेव जगन्नाथ पुण्यश्रवण कीर्तन यदूत्तम उत्तम श्लोक नारायण नमः अस्तु ते ॥१६॥

देवदेव	देवदेवेश्वर !	पुण्यश्रवण	(जिनकी लीलाओं का) श्रवण
जगन्नाथ	जगन्नाथ !		

कीर्तन	तथा कीर्तन पवित्र है,	**नारायण**	नारायण
यदूत्तम	यदुवंश शिरोमणि !	**ते नमः अस्तु**	आपको नमस्कार हैं ॥१६॥
उत्तम श्लोक	पवित्र कीर्ति		

श्रीभगवानुवाच—

आयास्ये भवतो गेहमहमार्यसमन्वितः ।
यदुचक्रद्रुहं हत्वा वितदिष्ये सुहृत्प्रियम् ॥१७॥

आयास्ये भवतः गेहं अहं आर्य समन्वितः यदुचक्रद्रुहं हत्वा वितरिष्ये सुहृत् प्रियम् ॥१७॥

यदुचक्रद्रुहं	यदुवंशी मण्डलके द्रोही (कंस) को	**अहं आयास्ये**	मैं आऊंगा,
हत्वा	मारकर	**सुहृत् प्रियं**	सुहृदोंका प्रिय
भवतः गेहं	आपके घर	**वितरिष्ये**	सम्पादन करूँगा ॥१७॥
आर्य समन्वितः	बड़े भाईके साथ		

श्रीशुक उवाच—

एवमुक्तो भगवता सोऽक्रूरो विमना इव ।
पुरीं प्रविष्टः कंसाय कर्मावेद्य गृहं ययौ ॥१८॥

एवं उक्तः भगवता सः अक्रूरः विमना इव पुरीं प्रविष्टः कंसाय कर्म आवेद्य गृहं ययौ ॥१८॥

एवं भगवता	इस प्रकार भगवान के द्वारा	**कंसाय**	कंससे
उक्तः सः अक्रूरः	कहे जानेपर वे अक्रूर	**कर्म आवेद्य**	अपना कर्म सूचित करके
विमना इव	उदाससे होकर	**गृहं ययौ**	अपने घर चले गये ॥१८॥
पुरीं प्रविष्टः	पुरीमें प्रवेश करके		

अथापराह्णे भगवान् कृष्णः संकर्षणान्वितः ।
मथुरां प्राविशद् गोपैर्दिदृक्षुः परिवारितः ॥१६॥

अथ अपराह्णे भगवान् कृष्णः सङ्कर्षण अन्वितः मथुरां प्राविशत् गोपैः दिदृक्षुः परिवारितः ॥१६॥

अथ अपराह्णे	फिर तीसरे पहर	भगवान् कृष्णः	भगवान् श्रीकृष्णने
सङ्कर्षण	बलरामजी	दिदृक्षुः	देखनेकी इच्छासे
अन्वितः	के साथ	मथुरां	मथुरामें
गोपैः	गोप बालकोंको	प्राविशत्	प्रवेश किया ॥१६॥
परिवारितः	साथ लेकर		

ददर्श तां स्फाटिकतुङ्गगोपुर-
द्वारां बृहद्धेमकपाटतोरणाम् ।
ताम्रारकोष्ठां परिखादुरासदा-
मुद्यानरम्योपवनोपशोभिताम् ॥२०॥

ददर्श तां स्फाटिकतुङ्ग गोपुर द्वारां बृहत् हेमकपाट तोरणां ताम्र अर कोष्ठां परिखा दुरासदां उद्यान रम्य उपवन उपशोभितां ॥२०॥

तां	उस	दुरासदां परिखा	दुष्पार खाईसे घिरी
स्फाटिकतुङ्ग	स्फटिकके ऊंचे	उद्यान रम्यां	रमणीय पुष्पवाटिका
गोपुर द्वारां	गोपुर द्वार वाली	उपवन	बगीचों
बृहत् हेमकपाट	स्वर्ण जटित बड़े किवाड़ लगे	उपशोभितां	से सुशोभित
तोरणां	तोरणों (बर्हिद्वार) वाली	ददर्श	(मथुराको) देखा ॥२०॥
ताम्र अर	ताँबेकी कील जड़ी		
कोष्ठां	चहार-दीवारी वाली		

सौवर्णशृङ्गाटकहर्म्यनिष्कुटैः
श्रेणीसभाभिर्भवनैरुपस्कृताम् ।
वैदूर्यवज्रामलनीलविद्रुमै-
र्मुक्ताहरिद्भिर्वलभीषु वेदिषु ॥२१॥

सौवर्ण शृङ्गाटक हर्म्य निष्कुटैः श्रेणी सभाभिः भवनैः उपस्कृतां वैदूर्य वज्र अमल नील विद्रुमैः मुक्ता हरित्भिः वलभीषु वेदिषु ॥२१॥

सौवर्ण	स्वर्ण-सज्जित	वैदूर्य वज्र	लहसनिया, हीरा,
शृङ्गाटक	चौराहे	अमल नील	निर्मल नीलम,
हर्म्य निष्कुटैः	बगीचों युक्त महल,	विद्रुमैः	मूगों,
श्रेणी सभाभिः	कारीगरोंके बैठने के सभा-भवन,	मुक्ता हरित्भिः	मोती, पन्ना जड़ी
भवनैः	(अन्य) भवनोंसे	वलभीषु वेदिषु	छज्जे तथा चबूतरों वाली ॥२१॥
उपस्कृतां	सुसज्जित,		

जुष्टेषु जालामुखरन्ध्रकुट्टिमे-
ष्वाविष्टपारावतबर्हिनादिताम् ।
संसिक्तरथ्यापणमार्गचत्वरां
प्रकीर्णमाल्यांकुरलाजतण्डुलाम् ॥२२॥

जुष्टेषु जाल आमुख रन्ध्र कुट्टिमेषु आविष्ट पारावत बर्हि नादितां संसिक्त रथ्या आपण मार्ग चत्वरां प्रकीर्ण माल्य अंकुर लाज तण्डुलाम् ॥२२॥

कुट्टिमेषु	दीवारोंमें	बर्हि नादितां	मयूरोंकी ध्वनिसे गूंजती,
जाल आमुख	जालीदार खिड़कियां	रथ्या	सड़कों तथा
रन्ध्र	के छिद्रोंमें	आपण मार्ग	बाजारके मार्ग
जुष्टेषु	बैठे हुए	संसिक्त	खींचे हुए
आविष्ट	आवेश युक्त	चत्वरां	चौराहोंपर
पारावत	कबूतरों तथा		

माल्य अंकुर	मालाएँ, अंकुर (जवारे)	प्रकीर्ण	बिखरे हुए हैं (ऐसी पुरी) ॥२२॥
लाज तण्डुलाः	लाजा और अक्षत		

आपूर्णकुम्भैर्दधिचन्दनोक्षितैः
प्रसूनदीपावलिभिः सपल्लवैः ।
सवृन्दरम्भाक्रमुकैः सकेतुभिः
स्वलंकृतद्वारगृहां सपट्टिकैः ॥२३॥

आपूर्ण कुम्भैः दधि चन्दन उक्षितैः प्रसूनदीप अवलिभिः सपल्लवैः सवृन्द रम्भा क्रमुकैः सकेतुभिः स्वलङ्कृत द्वार गृहां सपट्टिकैः ॥२३॥

द्वार गृहां	घरोंके द्वार	सवृन्द रम्भा	फलधार सहित केले के वृक्षोंसे
दधि, चन्दन	दही, चन्दन	सकेतुभिः	झंडे लगे
उक्षितैः	छिड़के	क्रमुकैः	बाँसोंसे
सपल्लवैः	पल्लव सहित	सपट्टिकैः	(स्वागतादि अंकित) पट्टियोंसे
प्रसून दीप	पुष्प, दीपक	स्वलङ्कृतः	भली प्रकार सजे थे ॥२३॥
अवलिभिः	उपहारोंसे युक्त		
आपूर्ण कुम्भैः	जलभरे कलशोंसे		

तां सम्प्रविष्टौ वसुदेवनन्दनौ
वृतौ वयस्यैर्नरदेववर्त्मना ।
द्रष्टुं समीयुस्त्वरिताः पुरस्त्रियो
हर्म्याणि चैवारुरुहुर्नृपोत्सुकाः ॥२४॥

तां सम्प्रविष्टौ वसुदेव नन्दनौ वृतौ वयस्यैः नरदेववर्त्मना द्रष्टुं समीयुः त्वरिताः पुरस्त्रियः हर्म्याणि च एव आरुरुहुः नृप उत्सुकाः ॥२४॥

नृप	राजन् !	वयस्यैः वृतौ	सखाओंसे घिरे हुए
वसुदेव नन्दनौ	वसुदेवजीके दोनों पुत्रों	तां	उस
		नरदेववर्त्मना	पुरीमें राजमार्गसे

सम्प्रविष्टौ	प्रविष्ट हुए तब	**च उत्सुकाः**	और उत्सुक होकर
पुरस्त्रियः	नगरकी नारियाँ	**त्वरिताः एव**	शीघ्रता पूर्वक कही
द्रष्टुं समीयुः	(उन्हें) देखने चारों ओरसे आ गयीं	**हर्म्याणि**	छज्जोंपर
		आरुरुहुः	चढ़ गयीं ॥२४॥

काश्चिद् विपर्यग्धृतवस्त्रभूषणा
विस्मृत्य चैकं युगलेष्वथापराः ।
कृतैकपत्रश्रवणैकनूपुरा
नाङ्क्त्वा द्वितीयं त्वपराश्च लोचनम् ॥२५॥

काश्चित् विपर्यक् धृत वस्त्रभूषणा विस्मृत्य च एकं युगलेषु अथ अपराः कृत एक पत्र श्रवण एक नूपुरा न अङ्क्त्वा द्वितीयं तु अपराः च लोचनम् ॥२५॥

काश्चित्	किसीने	**कृत एक पत्र**	(किसीने) एक ही (कपोल) पर पत्राङ्कन किया था
वस्त्रभूषणा	वस्त्र और आभूषण		
विपर्यक् धृत	उलटे पहिन लिए थे,		
अथ अपराः	और कोई दूसरी	**श्रवण एक नूपुरा**	कोई कानमें एक कुंडल, कोईएक पैर-में ही नूपुर पहिने थी
युगलेषु	जोड़ेसे पहिने जाने-वाले (कुंडलादि) में		
एकं च विस्मृत्य	एकको भूल ही गयी थी (एक ही पहिने थी)	**च अपराः**	तथा दूसरी कोई
		द्वितीयं लोचनं	दूसरे नेत्रमें
		न अङ्क्त्वा	अंजन लगाये ही नहीं थी ॥२५॥

अश्नन्त्य एकास्तदपास्य सोत्सवा
अभ्यज्यमाना अकृतोपमज्जनाः ।
स्वपन्त्य उत्थाय निशम्य निःस्वनं
प्रपाययन्त्योऽर्भमपोह्य मातरः ॥२६॥

अश्नन्ति एकाः तत् अपास्य स उत्सवा अभ्यज्यमाना अकृत उपमज्जनाः स्वपन्ति उत्थाय निशम्य निःस्वनं प्रपाययन्त्यः अभं अपोह्य मातरः ॥२६॥

एकाः अश्नन्ति	एक भोजन कर रही थी	अकृत	किये बिना,
		स्वपन्ति	जो सो रही थी वह
तत् अपास्य	उस (हाथके कौर) को फेंककर	निःस्वनं निशम्य	कोलाहल सुनकर
		उत्थाय	उठकर (वैसी ही)
स उत्सवा	बड़े उत्साहसे	प्रपाययन्त्यः	दूध पिलाती हुई
अभ्यज्यमाना	जो उबटन लगा रही थी वह	मातरः	माताएँ
		अभं अपोह्य	शिशुको छोड़कर (दौड़ आयी थीं) ॥२६॥
उपमज्जनाः	तनिक भी स्नान		

मनांसि तासामरविन्दलोचनः
प्रगल्भलीलाहसितावलोकनैः ।
जहार मत्तद्विरदेन्द्रविक्रमो
दृशां ददच्छ्रीरमणात्मनोत्सवम् ॥२७॥

मनांसि तासां अरविन्द लोचनः प्रगल्भ लीला हसित अवलोकनैः जहार मत्तद्विरदेन्द्र विक्रमः दृशां ददत् श्रीरमण आत्मन उत्सवम् ॥२७॥

मत्तद्विरदेन्द्र	मदमत्त गजराजके समान	हसित	हास्य सहित
		अवलोकनैः	दृष्टिसे
विक्रमः	चालसे चलते हुए	तासां दृशां मनः	उनके चित्त नेत्रोंको
श्रीरमण	रमारमण	उत्सवम् ददत्	आनन्द देते हुए
अरविन्द	कमल-	मनांसि	चित्तोंको
लोचनः	लोचन श्रीकृष्णने	जहार	चुरालिता ॥२७॥
आत्मन लीला	अपना क्रीड़ा पूर्वक		
प्रगल्भ	प्रगल्भ		

दृष्ट्वा मुहुःश्रुतमनुद्रुतचेतसस्तं
तत्प्रेक्षणोत्स्मितसुधोक्षणलब्धमानाः ।

आनन्दमूर्तिमुपगुह्य दृशाऽऽत्मलब्धं
हृष्यत्त्वचो जहुरनन्तमरिन्दमाधिम् ॥२८॥

द्रष्ट्वा मुहुःश्रुतं अनुद्रुत चेतसः तं तत् प्रेक्षण उत् स्मित सुधा उक्षण लब्धमानाः आनन्दमूर्तिम् उपगुह्य दृशा आत्मलब्धं हृष्यत् त्वचः जहुः अनन्त अरिन्दम आधिम् ॥२८॥

अरिन्दम	शत्रुदमनकर्ता परीक्षित !	दृशा आत्मलब्धं	दृष्टिके द्वारा हृदय में प्राप्त
मुहुःश्रुतं	बारबार (उनकी चर्चा) सुननेसे	आनन्दमूर्तिम्	उन आनन्द मूर्तिको
अनुद्रुत चेतसः	व्याकुल (द्रवित) चित्त वाली वे	उपगुह्य	आलिंगन करके
तं दृष्ट्वा	उनको देखकर	हृष्यत् त्वचः	उनको रोमाञ्च हो गया और
तत् स्मित	उनकी मुसकान	अनन्तं आधिं	चिरकालकी विरह व्यथाको
प्रेक्षण	युक्त दृष्टिके	जहुः	छोड़ दिया (दूर हो गयी) ॥२८॥
सुधा उक्षण	अमृत सिञ्चनको		
लब्धमानाः	प्राप्त करके		

प्रासादशिखरारूढाः प्रीत्युत्फुल्लमुखाम्बुजाः ।
अभ्यवर्षन् सौमनस्यैः प्रमदा बलकेशवौ ॥२९॥

प्रासाद शिखर आरूढाः प्रीति उत्फुल्ल मुख अम्बुजाः अभ्यवर्षन् सौमनस्यैः प्रमदा बलकेशवौ ॥२९॥

प्रासाद शिखर आरूढाः	भवनोंकी छतोंपर चढ़ी हुई,	बलकेशवौ	बलराम तथा श्रीकृष्णपर
प्रीति उत्फुल्ल मुख अम्बुजाः	प्रेमसे खिले हुए मुख कमल वाली	सौमनस्यैः	पुष्पोंकी
प्रमदा	नारियां	अभ्यवर्षन्	वर्षा करने लगीं ॥२९॥

दध्यक्षतैः सोदपात्रैः स्रग्गन्धैरभ्युपायनैः ।
तावानर्चुः प्रमुदितास्तत्र तत्र द्विजातयः ॥३०॥

दधि अक्षतैः स उदपात्रैः स्रक् गन्धैः अभि उपायनैः तावाः आनर्चुः प्रमुदिताः तत्र तत्र द्विजातयः ॥३०॥

तत्र तत्र	जहां तहां	**अभि उपायनैः**	तथा उपयुक्त उपहारोंसे
स उदपात्रैः	जल-पात्र लिए	**तावाः**	उन दोनों भाइयोंकी
द्विजातयः	ब्राह्मणोंने	**आनर्चुः**	पूजा की ॥३०॥
दधि अक्षतैः	दही, अक्षत,		
स्रक् गन्धैः	माला, चन्दन,		

ऊचुः पौरा अहो गोप्यस्तपः किमचरन् महत् ।
या ह्येतावनुपश्यन्ति नरलोकमहोत्सवौ ॥३१॥

ऊचुः पौराः अहो गोप्यः तपः किं अचरन् महत् या हि एताः अनुपश्यन्ति नरलोक महोत्सवौ ॥३१॥

पौरा ऊचुः	नगरवासी कहने लगे	**नरलोक**	सम्पूर्ण पृथ्वीके
अहो गोप्यः	'अहो, गोपियोंने	**महोत्सवौ**	परमानन्द दाताओंको
किं महत् तपः	क्या महान तपस्या	**अनुपश्यन्ति**	बराबर देखती हैं ॥३१॥
अचरन्	की है कि		
या हि एताः	जो कि इन दोनों		

रजकं कञ्चिदायान्तं रङ्गकारं गदाग्रजः ।
दृष्ट्वायाचत वासांसि धौतान्यत्युत्तमानि च ॥३२॥

रजकं कञ्चित् आयान्तं रङ्गकारं गद अग्रजः दृष्ट्वा याचत वासांसि धौतानि उत्तमानि च ॥३२॥

गद अग्रजः	गदके बड़े भाई श्रीकृष्णने	**आयान्तं दृष्टवा**	आते देखकर (उससे)
कञ्चित्	किसी	**धौतानि च**	धुले हुए तथा
रङ्गकारं रजकं	रंगरेज-धोबीको	**उत्तमानि**	उत्तम
		वासांसि याचत	वस्त्र मांगे ॥३२॥

देह्यावयोः समुचितान्यङ्ग वासांसि चार्हतोः ।
भविष्यति परं श्रेयो दातुस्ते नात्र संशयः ॥३३॥

देहि आवयोः समुचितानि अङ्ग वासांसि च अर्हतः भविष्यति परं श्रेयः दातुः ते न अत्र संशयः ॥३३॥

अंग अर्हतः	प्रिय, हम तुम्हारे पूज्य भी हैं	वासांसि देहि	वस्त्र दो
		ते दातुः	तुम देनेवालेका
आवयोः	हम लोगोंको	परं श्रेयः	परम कल्याण
समुचितानि	हमारे लिए (अंगोंमें आनेके) योग्य	भविष्यति	होगा,
		अत्र संशयः न	इसमें सन्देह नहीं ॥३३॥

स याचितो भगवता परिपूर्णेन सर्वतः ।
साक्षेपं रुषितः प्राह भृत्यो राज्ञः सुदुर्मदः ॥३४॥

स याचितः भगवता परिपूर्णेन सर्वतः साक्षेपं रुषितः प्राह भृत्यः राज्ञः सुदुर्मदः ॥३४॥

सर्वतः परिपूर्णेन	सब ओरसे परिपूर्ण	राज्ञः भृत्यः	राजसेवक
भगवता	भगवानके द्वारा	रुषितः साक्षेपं	कुपित होकर आक्षेप करता हुआ
याचितः	मांगे जानेपर		
स सुदुर्मदः	वह अत्यन्त घमण्डी	प्राह	बोला ॥३४॥

ईदृशान्येव वासांसि नित्यं गिरिवनेचराः ।
परिधत्त किमुद्वृत्ता राजद्रव्याण्यभीप्सथ ॥३५॥

ईदृशानि एव वासांसि नित्यं गिरि वनेचराः परिधत्त किं उद्वृत्ता राज द्रव्याणि अभीप्सथ ॥३५॥

गिरि वनेचराः	पर्वत और वनोंमें रहनेवालो !	किं	क्या
		ईदृशानि एव	ऐसे ही

वासांसि नित्यं	वस्त्र सदा	राज द्रव्याणि	राजाका धन
परिधत्त	पहिनते हो ?	अभीप्सथ	चाहने लगे हो !
उद्वृत्ता	उद्‌ण्डो !		॥३५॥

यात्राशु बालिशा मैवं प्रार्थ्यं यदि जिजीविषा ।
बध्नन्ति घ्नन्ति लुम्पन्ति दृप्तं राजकुलानि वै ॥३६॥

यात आशु बालिशा मा एवं प्रार्थ्यं यदि जिजीविषा बध्नन्ति घ्नन्ति लुम्पन्ति दृप्तं राजकुलानि वै ॥३६॥

बालिशा	मूर्खो !	वै राजकुलानि	निश्चय राज्य कर्मचारी
आशु यात	शीघ्र चले जाओ,	दृप्तं	उच्छृंखलोंको
यदि जिजीविषा	यदि जीनेकी इच्छा हो तो	बध्नन्ति	बन्दी बना लेते हैं,
मा एवं प्रार्थ्यं	(फिर) ऐसी प्रार्थना मत करना,	घ्नन्ति	मार देते हैं या
		लुम्पन्ति	लूट लेते हैं ॥३६॥

एवं विकत्थमानस्य कुपितो देवकीसुतः ।
रजकस्य कराग्रेण शिरः कायादपातयत् ॥३७॥

एवं विकत्थमानस्य कुपितः देवकीसुतः रजकस्य कर अग्रेण शिरः कायात् अपातयत् ॥३७॥

एवं	इस प्रकार	देवकीसुतः	भगवान देवकी-नन्दनने
विकत्थमानस्य	बकवाद करते		
रजकस्य शिरः	धोबीका सिर	कर अग्रेण	हाथके अगले भागसे
कुपितः	कुपित	कायात्	शरीरसे
		अपातयत्	गिरा दिया ॥३७॥

तस्यानुजीविनः सर्वे वासः कोशान् विसृज्य वै ।
दुद्रुवुः सर्वतो मार्गं वासांसि जगृहेऽच्युतः ॥३८॥

तस्य अनुजीविनः सर्वे वासः कोशान् विसृज्य वै दुद्रुवुः सर्वतः मार्गं वासांसि जगृहे अच्युतः ॥३८॥

तस्य सर्वे	उसके सब	**विसृज्य**	फेंक कर
अनुजीविनः	अधीन जीविका चलानेवाले	**सर्वतः मार्गं**	चारों ओरके मार्गोंसे
वै वासः	निश्चित रूपसे सब वस्त्रों और	**दुद्रुवुः**	भाग गये,
कोशान्	धनको	**अच्युतः**	श्रीकृष्णने
		वासांसि जगृहे	वस्त्र ले लिये ॥३८॥

वसित्वाऽऽत्मप्रिये वस्त्रे कृष्णः संकर्षणस्तथा ।
शेषाण्यादत्त गोपेभ्यो विसृज्य भुवि कानिचित् ॥३९॥

वसित्वा आत्मप्रिये वस्त्रे कृष्णः सङ्कर्षणः तथा शेषाणि आदत्त गोपेभ्यः विसृज्य भुवि कानिचित् ॥३९॥

कृष्णः तथा	श्रीकृष्ण और	**भुवि विसृज्य**	पृथ्वीपर डालकर
सङ्कर्षणः	बलरामने	**शेषाणि**	बचे हुओंको
आत्मप्रिये	अपनी पसन्दके	**गोपेभ्यः**	गोप-बालकोंको
वस्त्रे वसित्वा	वस्त्रोंको पहिनकर	**आदत्त**	दे दिया ॥३९॥
कानिचित्	किन्हींको		

ततस्तु वायकः प्रीतस्तयोर्वेषमकल्पयत् ।
विचित्रवर्णैश्चैलेयैराकल्पैरनुरूपतः ॥४०॥

ततः तु वायकः प्रीतः तयोः वेषं अकल्पयत् विचित्र वर्णैः चैलेयैः आकल्पैः अनुरूपतः ॥४०॥

ततः तु	उसके बाद ही	**विचित्र वर्णैः**	उन अनेक रंगोंके
वायकः प्रीतः	एक दर्जीने प्रसन्न होकर	**चैलेयैः**	रेशमी वस्त्रोंसे
आकल्पैः	(उनके) मापके	**तयोः वेषं**	उनका वेष
अनुरूपतः	(उनके वर्णोंके) अनुकूल	**अकल्पयत्**	सजा दिया ॥४०॥

नानालक्षणवेषाभ्यां कृष्णरामौ विरेजतुः ।
स्वलङ्कृतौ बालगजौ पर्वणीव सितेतरौ ॥४१॥

नाना लक्षण वेषाभ्यां कृष्णरामौ विरेजतुः स्वलङ्कृतौ बालगजौ पर्वणि इव सित इतरौ ॥४१॥

नाना लक्षण	अनेक रंगों एवं ढंगके	**सित इतरौ**	श्वेत और उससे भिन्न (श्याम)
वेषाभ्यां	वेषसे	**बालगजौ**	हाथीके बच्चों
कृष्णरामौ	श्रीकृष्ण और बलराम	**इव**	के समान
पर्वणि	उत्सवके समय	**विरेजतुः**	शोभित हुए ॥४१॥
स्वलङ्कृतौ	सजाये गये		

तस्य प्रसन्नो भगवान् प्रादात् सारूप्यमात्मनः ।
श्रियं च परमां लोके बलैश्वर्यस्मृतीन्द्रियम् ॥४२॥

तस्य प्रसन्नः भगवान् प्रादात् सारूप्यं आत्मनः श्रियं च परमां लोके बल ऐश्वर्य स्मृति इन्द्रियम् ॥४२॥

तस्य प्रसन्नः	उस (दर्जीपर) प्रसन्न होकर	**स्मृति**	स्मरण शक्ति
भगवान्	भगवानने	**इन्द्रियं**	इन्द्रिय शक्ति (तथा मरनेपर)
लोके च	इस लोकमें तो	**आत्मनः**	अपना
परमां श्रियं	परम लक्ष्मी,	**सारूप्यं**	सारूप्य मोक्ष
बल ऐश्वर्य	बल, ऐश्वर्य	**प्रादात्**	प्रदान किया ॥४२॥

ततः सुदाम्नो भवनं मालाकारस्य जग्मतुः ।
तौ दृष्ट्वा स समुत्थाय ननाम शिरसा भुवि ॥४३॥

ततः सुदाम्नः भवनं माला कारस्य जग्मतुः तौ दृष्ट्वा स समुत्थाय ननाम शिरसा भुवि ॥४३॥

ततः सुदाम्नः	फिर सुदामा
माला कारस्य	मालीके
भवनं जग्मतुः	घर गये
तौ दृष्ट्वा	उन दोनों भाइयों-को देखकर
स समुत्थाय	उसने उठकर
भुवि शिरसा	पृथ्वीपर सिर रखकर
ननाम	प्रणाम किया ॥४३॥

तयोरासनमानीय पाद्यं चार्घ्यार्हणादिभिः ।
पूजां सानुगयोश्चक्रे स्रक्ताम्बूलानुलेपनैः ॥४४॥

तयोः आसनं आनीय पाद्यं च अर्घ्यं अर्हण आदिभिः पूजां स अनुगयोः चक्रे स्रक् ताम्बूल अनुलेपनैः ॥४४॥

तयोः आसनं	उनको आसनपर
आनीय	ला (बैठा) कर
पाद्यं अर्घ्यं	पाद्य, अर्घ्य,
स्रक् ताम्बूल	माला, पान,
अनुलेपनैः	चन्दन,
च अर्हण	तथा पूजा-द्रव्य (धूप-दीप)
आदिभिः	आदिसे
स अनुगयोः	उसने अनुचरोंके साथ
पूजां चक्रे	(उनकी) पूजा की ॥४४॥

प्राह नः सार्थकं जन्म पावितं च कुलं प्रभो ।
पितृदेवर्षयो मह्यं तुष्टा ह्यागमनेन वाम् ॥४५॥

प्राह नः सार्थकं जन्म पावितं च कुलं प्रभो पितृदेव ऋषयः मह्यं तुष्टा हि आगमनेन वाम् ॥४५॥

प्राह	बोला—
प्रभो नः जन्म	प्रभो ! मेरा जन्म
सार्थकं च	सार्थक और
कुलं पावितं	कुलको (आपने) पवित्र कर दिया
हि वां	निश्चय आप दोनोंके
आगमनेन	पधारनेसे
मह्यं पितृदेव	मेरे पितर, देवता
ऋषयः	ऋषिगण
तुष्टा	सन्तुष्ट हो गये ॥४५॥

भवन्तौ किल विश्वस्य जगतः कारणं परम् ।
अवतीर्णाविहांशेन क्षेमाय च भवाय च ॥४६॥

भवन्तौ किल विश्वस्य जगतः कारणं परं अवतीर्णौ इह अंशेन क्षेमाय च भवाय च ॥४६॥

किल भवन्तौ	अहो, आप दोनों	**इह अंशेन**	यहां (मथुरामें) अंशों सहित
विश्वस्य	विश्वके	**अवतीर्णौ**	अवतरित हुए हैं ॥४६॥
परं कारणं	परम कारण		
जगतः क्षेमाय	संसारके कल्याणके		
च भवाय च	तथा अभ्युदयके लिए भी		

नहि वां विषमा दृष्टिः सुहृदोर्जगदात्मनोः ।
समयोः सर्वभूतेषु भजन्तं भजतोरपि ॥४७॥

न हि वां विषमा दृष्टिः सुहृदः जगत् आत्मनः समयोः सर्वभूतेषु भजन्तं भजतः अपि ॥४७॥

भजन्तं	भजन करनेवालेसे	**सर्वभूतेषु**	सब प्राणियोंके प्रति
भजतः अपि	प्रेम करते हुए भी	**समयोः**	समान हैं,
हि	क्योंकि	**वां विषमा**	आप दोनोंकी विषम
जगत् आत्मनः	विश्वात्मा	**दृष्टिः न**	दृष्टि नहीं है ॥४७॥
सुहृदः	सर्व सुहृद,		

तावाज्ञापयतं भृत्यं किमहं करवाणि वाम् ।
पुंसोऽत्यनुग्रहो ह्येष भवद्भिर्यन्नियुज्यते ॥४८॥

ताः आज्ञापयतं भृत्यं किं अहं करवाणि वां पुंसः अति अनुग्रहः हि एष भवद्भ्यां यत् नियुज्यते ॥४८॥

ताः भृत्यं	इसलिए इस सेवक-को	**एष अति**	यह आपकी महती
आज्ञापयतं	आज्ञा दीजिए	**अनुग्रहः**	कृपा है
अहं वां	मैं आप दोनोंकी	**यत् भवद्भ्यां**	यदि आपके द्वारा
किं करवाणि	क्या सेवा करूं ?	**नियुज्यते**	(किसी सेवामें) नियुक्त किया जाय ॥४८॥
हि पुंसः	क्योंकि पुरुषपर		

इत्यभिप्रेत्य राजेन्द्र सुदामा प्रीतमानसः ।
शस्तैः सुगन्धैः कुसुमैर्माला विरचिता ददौ ॥४६॥

इति अभिप्रेत्य राजेन्द्र सुदामा प्रीत मानसः शस्तैः सुगन्धैः कुसुमैः माला विरचिता ददौ ॥४६॥

राजेन्द्र	महाराज !	शस्तैः सुगन्धैः	उत्तम सुगन्धित
इति अभिप्रेत्य	इस प्रकार (अपना) अभिप्राय कहकर	कुसुमैः	पुष्पोंसे
		विरचिता	निर्मित
प्रीत मानसः	प्रसन्न चित्त	माला ददौ	माला प्रदान की
सुदामा	सुदामाने		॥४६॥

ताभिः स्वलङ्कृतौ प्रीतौ कृष्णरामौ सहानुगौ ।
प्रणताय प्रपन्नाय ददतुर्वरदौ वरान् ॥५०॥

ताभिः स्वलङ्कृतौ प्रीतौ रामकृष्णौ सह अनुगौ प्रणताय प्रपन्नाय ददतुः वरदौ वरान् ॥५०॥

ताभिः	उन (मालाओं)से	वरदौ प्रीतौ	उन वरदाताने प्रसन्न होकर
सह अनुगौ	अनुचरोंके साथ	प्रणताय	उस विनम्र
रामकृष्णौ	बलराम तथा श्रीकृष्ण	प्रपन्नाय	शरणागतको
स्वलङ्कृतौ	भली-भांति अलंकृत होकर	वरान् ददतुः	वरदान दिये ॥५०॥

सोऽपि वव्रेऽचलां भक्तिं तस्मिन्नेवाखिलात्मनि ।
तद्भक्तेषु च सौहार्दं भूतेषु च दयां पराम् ॥५१॥

सः अपि वव्रे अचलां भक्तिं तस्मिन् एव अखिल आत्मनि तत् भक्तेषु च सौहार्दं भूतेषु च दयां पराम् ॥५१॥

सः अपि	उसने भी	अचलां भक्तिं	अचला भक्ति
तस्मिन् एव	उन्हीं	च तत् भक्तेषु	तथा उनके भक्तोंसे
अखिल आत्मनि	सर्वात्मामें	सौहार्दं	मित्रता

च भूतेषु	और प्राणियोंके प्रति	परां दयां वव्रे	परम दया मांगी ॥५१॥

इति तस्मै वरं दत्त्वा श्रियं चान्वयवर्धिनीम् ।
बलमायुर्यशः कान्तिं निर्जगाम सहाग्रजः ॥५२॥

इति तस्मै वरं दत्त्वा श्रियं च अन्वय वर्धिनीं बलं आयुः यशः कान्तिं निर्जगाम सह अग्रजः ॥५२॥

तस्मै इति वरं	उसको इस प्रकारके वरदान	आयुः यशः	आयु, यश,
		कान्तिं दत्त्वा	कान्ति देकर
च अन्वय	तथा वंश परम्परामें	सह अग्रजः	बड़े भाईके साथ
वर्धिनीं	बढ़नेवाली	निर्जगाम	(वहांसे) निकले
श्रियं बलं	लक्ष्मी, बल,		॥५२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे
पूर्वार्धे पुरप्रवेशो नाम एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥५२॥

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

अथ व्रजन् राजपथेन माधवः
स्त्रियं गृहीताङ्गविलेपभाजनाम् ।
विलोक्य कुब्जां युवतीं वराननां
पप्रच्छ यान्तीं प्रहसन् रसप्रदः ॥ १ ॥

अथ व्रजन् राजपथेन माधवः स्त्रियं गृहीता अङ्ग विलेप भाजनां विलोक्य कुब्जां युवतीं वर आननां पप्रच्छ यान्तीं प्रहसन् रसप्रदः ॥१॥

अथ राजपथेन	फिर राजमार्गसे	युवतीं	युवती
व्रजन्	जाते हुए	वर आननां	सुमुखी
रसप्रदः माधवः	प्रेमरसदाता श्री-कृष्णने	कुब्जां	कुबड़ीको
		यान्तीं विलोक्य	जाती हुई देखकर
अंग विलेप	अंगरागका	प्रहसन् पप्रच्छ	हँसते हुए पूछा ॥१॥
भाजनां	पात्र		
गृहीता	लेकर		

का त्वं वरोर्वेतदु हानुलेपनं
कस्याङ्गने वा कथयस्व साधु नः ।
देह्यावयोरङ्गविलेपमुत्तमं
श्रेयस्ततस्ते नचिराद् भविष्यति ॥ २ ॥

का त्वं वरोरु एतत् उ ह अनुलेपनं कस्य अङ्गने वा कथयस्व साधु नः देहि आवयोः अङ्ग विलेपं उत्तमं श्रेयः ततः ते न चिरात् भविष्यति ॥२॥

वरोरु	'सुन्दरी !	कस्य अङ्गने	किसकी पत्नी हो
त्वं का	तुम कौन हो ?	वा एतत् उ	अथवा यह जो

अनुलेपनं ह	अंगराग है (किसके लिए है ?)	आवयोः देहि	हम लोगोंको दो,
नः साधु	हमको भली प्रकार	ततः ते श्रेयः	इससे तुम्हारा कल्याण
कथयस्व	बतलाओ,	नचिरात्	अविलम्ब
उत्तमं	(यह) उत्तम	भविष्यति	होगा' ॥२॥
अङ्ग विलेपं	अंगराग		

सैरन्ध्र्युवाच

दास्यस्म्यहं सुन्दर कंससम्मता
त्रिवक्रनामा ह्यनुलेपकर्मणि ।
मद्भावितं भोजपतेरतिप्रियं
विना युवां कोऽन्यतमस्तदर्हति ॥ ३ ॥

दासि अस्मि अहं सुन्दर कंस सम्मता त्रिवक्रनामा हि अनुलेप कर्मणि मत् भावितं भोजपतेः अतिप्रियं विना युवां कः अन्यतमः तत् अर्हति ॥३॥

सुन्दर	सुन्दर !	अहं कंस	मैं कंसकी
हि मत् भावितं	क्योंकि मेरा बनाया (अंगराग)	सम्मता	प्रिय
		दासि अस्मि	दासी हूँ
भोजपतेः	भोजराज कंसको	विना युवां	आप दोनोंको छोड़कर
अतिप्रियं	बहुत प्रिय है		
अनुलेप कर्मणि	अंगराग बनानेके कर्मकी	अन्यतमः कः	भला दूसरा कोई कौन
त्रिवक्रनामा	त्रिवक्रा नामकी	तत् अर्हति	इसका अधिकारी है ॥३॥

श्रीशुक उवाच*

रूपपेशलमाधुर्यहसितालापवीक्षितैः ।
धर्षितात्मा ददौ सान्द्रमुभयोरनुलेपनम् ॥ ४ ॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

रूपपेशल माधुर्य हसित आलाप वीक्षितैः धर्षित आत्मा ददौ सान्द्रं उभयोः अनुलेपनम् ॥४॥

रूपपेशल	सौन्दर्य, सौकुमार्य	**धर्षित आत्मा**	उन्मथित चिन्ता (उसने)
माधुर्य	मधुरिमा,	**उभयोः**	दोनों भाइयोंको
हसित आलाप	हास्य, बोलनेके ढंग तथा	**सान्द्रं अनुलेपनं**	गीला अंगराग
वीक्षितैः	देखनेसे	**ददौ**	दे दिया ॥४॥

ततस्तावङ्गरागेण स्ववर्णेतरशोभिना ।
सम्प्राप्तपरभागेन शुशुभातेऽनुरञ्जितौ ॥ ५ ॥

ततः ताः अङ्गरागेण स्ववर्ण इतर शोभिना सम्प्राप्त परभागेन शुशुभाते अनुरञ्जितौ ॥५॥

ततः ताः	तब उस	**अङ्गरागेण**	अंगरागसे
स्ववर्ण इतर	अपने रंगके भिन्न (रंगके)	**अनुरञ्जितौ**	रञ्जित होकर
शोभिना	शोभा देनेवाले	**शुशुभाते**	बहुत शोभित हुए ॥५॥
परभागेन-	शरीरके (कमरसे)		
सम्प्राप्त	ऊपरी भागपर लगे		

प्रसन्नो भगवान् कुब्जां त्रिवक्रां रुचिराननाम् ।
ऋज्वीं कर्तुं मनश्चक्रे दर्शयन् दर्शने फलम् ॥ ६ ॥

प्रसन्नः भगवान् कुब्जां त्रिवक्रां रुचिर आननां ऋज्वीं कर्तुं मनः चक्रे दर्शयन् दर्शने फलम् ॥६॥

प्रसन्नः भगवान्	प्रसन्न होकर भगवान्‌ने	**त्रिवक्रां**	त्रिवक्रा
दर्शने फलं	अपने दर्शनका फल	**कुब्जां**	कूबड़ीको
दर्शयन्	दिखलाते हुए	**ऋज्वीं कर्तुं**	सीधी कर देनेकी
रुचिर आननां	सुमुखी	**मनः चक्रे**	इच्छा की॥६॥

पद्भ्यामाक्रम्य प्रपदे द्व्यंगुल्युत्तानपाणिना ।
प्रगृह्य चुबुकेऽध्यात्ममुदनीनमदच्युतः ॥ ७ ॥

पद्भ्यां आक्रम्य प्रपदे द्वि अंगुल उत्तान पाणिना प्रगृह्य चुबुके अध्यात्मं उदनीनं नमत् अच्युतः ॥७॥

पद्भ्यां प्रपदे	अपने पैरोंसे (उसके) पञ्जे	चुबुके प्रगृह्य	ठोढ़ी पकड़कर
		अध्यात्मम्	शरीरसे
आक्रम्य	दबाकर	उदनीनं	झुकी हुई (कुब्जा) को
द्वि अंगुल	दो अंगुली		
उत्तान	ऊपर उठाये	अच्युतः	श्रीकृष्णने
पाणिना	हाथसे	नमत्	उचका दिया ॥७॥

सा तदर्जुसमानाङ्गी बृहच्छ्रोणिपयोधरा ।
मुकुन्दस्पर्शनात् सद्यो बभूव प्रमदोत्तमा ॥ ८ ॥

सा तत् ऋजु समान अङ्गी बृहत् श्रोणि पयोधरा मुकुन्द स्पर्शनात् सद्यः बभूव प्रमदा उत्तमा ॥८॥

मुकुन्द तत्	मुकुन्दके उस	बृहत् श्रोणि	बड़े नितम्ब एवं
स्पर्शनात्	स्पर्शसे	पयोधरा	कुचों वाली
सा सद्यः	वह तत्काल	प्रमदा उत्तमा	सुन्दरी श्रेष्ठा
ऋजु समान	सीधे समान	बभूव	हो गयी ॥८॥
अङ्गी	अंगवाली		

ततो रूपगुणौदार्यसम्पन्ना प्राह केशवम् ।
उत्तरीयान्तमाकृष्य स्मयन्ती जातहृच्छया ॥ ९ ॥

ततः रूपगुण औदार्य सम्पन्ना प्राह केशवं उत्तरीयान्तं आकृष्य स्मयन्ती जातहृच्छया ॥९॥

ततः रूपगुण	तब रूप, गुण,	जातहृच्छया	मिलनेच्छा उत्पन्न हो जानेसे
औदार्य	उदारतासे		
सम्पन्ना	सम्पन्न होकर	उत्तरीयान्तं	पटुकेका छोर

आकृष्य	खींचकर	केशवं प्राह	श्रीकृष्णसे बोली
स्मयन्ती	मुस्कराती हुई		॥६॥

एहि वीर गृहं यामो न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे ।
त्वयोन्मथितचित्तायाः प्रसीद पुरुषर्षभ ॥१०॥

एहि वीर गृहं यामः न त्वां त्यक्तुं इह उत्सहे त्वया उन्मथित चित्तायाः प्रसीद पुरुष ऋषभ ॥१०॥

वीर एहि	'वीरवर आओ !	पुरुष ऋषभ	पुरुष श्रेष्ठ
गृहं यामः	हम घर चलें,	त्वया उन्मथित	तुम्हारे लिए बेचैन
त्वां इह त्युक्तुं	तुमको यहां छोड़ देनेका	चित्तायाः	चित्त वाली (मुझ) पर
उत्सहे न	(मुझमें) उत्साह नहीं है ।	प्रसीद	प्रसन्न हो जाओ' ॥१०॥

एवं स्त्रिया याच्यमानः कृष्णो रामस्य पश्यतः ।
मुखं वीक्ष्यानुगानां च प्रहसंस्तामुवाच ह ॥११॥

एवं स्त्रिया याच्यमानः कृष्णः रामस्य पश्यतः मुखं वीक्ष्य अनुगानां च प्रहसन् तां उवाच ह ॥११॥

एवं स्त्रिया	इस प्रकार स्त्रीके द्वारा	अनुगानां	अनुचरोंके
रामस्य पश्यतः	बलरामजीके देखते-हुए	मुखं च	मुखोंको भी
याच्यमानः	प्रार्थना किये जाने-पर	प्रहसन्	हँसते हुए
		वीक्ष्य	देखकर
		तां ह उवाच	उससे निश्चयपूर्वक बोले ॥११॥

एष्यामि ते गृहं सुभ्रूः पुंसामाधिविकर्शनम् ।
साधितार्थोऽगृहाणां नः पान्थानां त्वं परायणम् ॥१२॥

एष्यामि ते गृहं सुभ्रूः पुंसां आधि विकर्शनं साधित अर्थः अगृहाणां नः पान्थानां त्वं परायणम् ॥१२॥

सुभ्रूः	सुन्दर भौहों वाली !
पुंसां आधि	पुरुषोंकी मानसिक व्याधि
विकर्शनं	दूर करनेवाले
ते गृहं	तुम्हारे घर
साधित अर्थः	अपना प्रयोजन पूरा करके
एष्यामि	आऊँगा,
त्वं नः अगृहानां	तुम हम गृहहीन
पान्थानां	पथिकोंका
परायणं	आश्रय हो ॥१२॥

विसृज्य माध्व्या वाण्या तां व्रजन् मार्गे वणिक्पथैः ।
नानोपायनताम्बूलस्रग्गन्धैः साग्रजोऽर्चितः ॥१३॥

विसृज्य माध्व्या वाण्या तां व्रजन् मार्गे वणिक् पथैः नाना उपायन ताम्बूल स्रक् गन्धैः साग्रजः अर्चितः ॥१३॥

माध्व्या वाण्या	मधुर वाणीसे
तां विसृज्य	उसे विदा करके,
वणिक् पथैः	बाजारके मार्गमें
व्रजन्	जाते हुए
नाना उपायन	अनेक प्रकारके उपहार,
ताम्बूल स्रक्	पान, माला,
गन्धैः साग्रजः	चन्दनसे बड़े भाईके साथ
अर्चितः	पूजित होते रहे ॥१३॥

तद्दर्शनस्मरक्षोभादात्मानं नाविदन् स्त्रियः ।
विस्रस्तवासःकबरवलयालेख्यमूर्तयः ॥१४॥

तत् दर्शन स्मर क्षोभात आत्मानं न अविदन् स्त्रियः विस्रस्तवासः कबर वलय आलेख्य मूर्तयः ॥१४॥

तत् दर्शन	उनके दर्शनसे
स्मर क्षोभात	कामावेशके कारण
स्त्रियः आत्मानं	स्त्रियां अपने
विस्रस्तवासः	अस्त-व्यस्त वस्त्र,
कबर वलय	जूड़े, कंकणको
न अविदन्	नहीं जान पाती थीं,
आलेख्य	चित्रांकित
मूर्तयः	मूर्तियों जैसी (रह जाती थीं) ॥१४॥

ततः पौरान् पृच्छमानो धनुषः स्थानमच्युतः ।
तस्मिन् प्रविष्टो ददृशे धनुरैन्द्रमिवाद्भुतम् ॥१५॥

ततः पौरान् पृच्छमानः धनुषः स्थानं अच्युतः तस्मिन् प्रविष्टः ददृशे धनुः इन्द्रं इव अद्भुतम् ॥१५॥

ततः अच्युतः	फिर श्रीकृष्णने	इन्द्रं धनुः इव	इन्द्र धनुषकी भांति
पौरान्	नगरवासियोंसे	अद्भुतं	अद्भुत (धनुष)को
धनुषः स्थानं	धनुषका स्थान	ददृशे	देखा ॥१५॥
पृच्छमानः	पूछते हुए		
तस्मिन् प्रविष्टः	उस (स्थान) में प्रवेश करके		

पुरुषैर्बहुभिर्गुप्तमर्चितं परमर्द्धिमत् ।
वार्यमाणो नृभिः कृष्णः प्रसह्य धनुराददे ॥१६॥

पुरुषैः बहुभिः गुप्तं अर्चितं परम ऋद्धिमत् वार्यमाणः नृभिः कृष्णः प्रसह्य धनुः आददे ॥१६॥

परम ऋद्धिमत्	बहुत सम्पत्ति (रत्नादि) लगे,	नृभिः	मनुष्यों (रक्षकों)के
अर्चितं	पूजित,	वार्यमाणः	रोकनेपर भी
बहुभिः पुरुषैः	बहुतसे पुरुषों द्वारा	कृष्णः प्रसह्य	श्रीकृष्णने बलात्कारसे
गुप्तं धनुः	रक्षित धनुषको	आददे	उठा लिया ॥१६॥

करेण वामेन सलीलमुद्धृतं
सज्यं च कृत्वा निमिषेण पश्यताम् ।
नृणां विकृष्य प्रबभञ्ज मध्यतो
यथेक्षुदण्डं मदकर्युरुक्रमः ॥१७॥

करेण वामेन सलीलं उद्धृतं सज्यं च कृत्वा निमिषेण पश्यतां नृणां विकृष्य प्रबभञ्ज मध्यतः यथा इक्षुदण्डं मदकरि उरुक्रमः ॥१७॥

वामेन करेण	बायें हाथसे	**मध्यतः**	बीचसे
सलीलं उद्धृतं	खेलमें उठाये गये	**प्रबभञ्ज**	तोड़ दिया
च सज्यं कृत्वा	तथा (उसे) प्रत्यञ्चायुक्त करके	**यथा उरुक्रमः**	जैसे बहुत पराक्रमवाला
नृणां पश्यतां	(रक्षक) मनुष्योंके देखते हुए	**मद करि**	मतवाला हाथी
निमिषेण	पलभरमें	**इक्षुदण्ड**	ईखके डण्डेको (तोड़ दे) ॥१७॥
विकृष्य	खींचकर		

धनुषो भज्यमानस्य शब्दः खं रोदसी दिशः ।
पूरयामास यं श्रुत्वा कंसस्त्रासमुपागमत् ॥१८॥

धनुषः भज्यमानस्य शब्दः खं रोदसी दिशः पूरयामास यं श्रुत्वा कंसः त्रासं उपागमत् ॥१८॥

धनुषः	धनुषके	**यं श्रुत्वा**	जिसे सुनकर
भज्यमानस्य	टूटनेके	**कंसः**	कंस
शब्दः	शब्दने	**त्रासं उपागमत्**	भयभीत हो गया ॥१८॥
खं रोदसी	आकाश, पृथ्वी		
दिशः	दिशाओंको		
पूरयामास	भर दिया,		

तद्रक्षिणः सानुचराः कुपिता आततायिनः ।
ग्रहीतुकामा आवव्रुह्यतां बध्यतामिति ॥१९॥

तत् रक्षिणः सः अनुचराः कुपिता आततायिनः ग्रहीतुकामा आवव्रुः गृह्यतां बध्यतां इति ॥१९॥

तत् रक्षिणः	उस (धनुष)के रक्षक	**कुपिता**	कुपित होकर
ग्रहीतुकामा	घेरकर	**इति आवव्रुः**	इस प्रकार चिल्लाने लगे
सः अनुचराः	वे (कंसके) सेवक	**गृह्यतां**	'पकड़ लो !
आततायिनः	आक्रमण करनेवाले (आततायी)	**बध्यतां**	बाँध लो !' ॥१९॥

अथ तान् दुरभिप्रायान् विलोक्य बलकेशवौ ।
क्रुद्धौ धन्वन आदाय शकले तांश्च जघ्नतुः ॥२०॥

अथ तान् दुःअभिप्रायान् विलोक्य बलकेशवौ क्रुद्धौ धन्वनि आदाय शकले तान् च जघ्नतुः ॥२०॥

अथ तान्	फिर उनको
दुःअभिप्रायान्	बुरे अभिप्रायवाले
विलोक्य	देखकर
बलकेशवौ	बलराम और श्रीकृष्ण
क्रुद्धौ	क्रोधमें भरकर
धन्वनि शकले	धनुषके टुकड़ोंको
आदाय तान् च	लेकर उनको भी
जघ्नतुः	मार दिया ॥२०॥

बलं च कंसप्रहितं हत्वा शालामुखात्ततः ।
निष्क्रम्य चेरतुर्हृष्टौ निरीक्ष्य पुरसम्पदः ॥२१॥

बलं च कंसप्रहितं हत्वा शाला मुखात् ततः निष्क्रम्य चेरतुः हृष्टौ निरीक्ष्य पुरसम्पदः ॥२१॥

कंसप्रहितं	कंसकी भेजी हुई
बलं च हत्वा	सेनाको भी मारकर
ततः शाला	फिर धनुषशालाके
मुखात्	द्वारसे
निष्क्रम्य	निकलकर
पुरसम्पदः	नगरकी सम्पत्ति
निरीक्ष्य हृष्टौ	देखकर प्रसन्न होकर
चेरतुः	विचरण करने लगे ॥२१॥

तयोस्तदद्भुतं वीर्यं निशाम्य पुरवासिनः ।
तेजः प्रागल्भ्यं रूपं च मेनिरे विबुधोत्तमौ ॥२२॥

तयोः तत् अद्भुतं वीर्यं निशाम्य पुरवासिनः तेजः प्रागल्भ्यं रूपं च मेनिरे विबुध उत्तमौ ॥२२॥

तयोः तत्	उनके उस
अद्भुतं वीर्यं	अदभुत पराक्रम,
तेजः प्रगल्भ्यं	तेज, साहस,
च रूपं निशाम्य	तथा सौन्दर्यको देखकर
पुरवासिनः	नगरवासियोंने (उन्हें)
विबुध उत्तमौ	देवश्रेष्ठ
मेनिरे	मान लिया ॥२२॥

तयोर्विचरतोः स्वैरमादित्योऽस्तमुपेयिवान् ।
कृष्णरामौ वृतौ गोपैः पुराच्छकटमीयतुः ॥२३॥

तयोः विचरतोः स्वैरं आदित्यः अस्तं उपेयिवान् कृष्णरामौ वृतौ गोपैः पुरात् शकटं ईयतुः ॥२३॥

तयोः स्वैरं	उनके स्वच्छन्द	**कृष्णरामौ**	श्रीकृष्ण-बलराम
विचरतोः	विचरण करते हुए	**गोपैः वृतौ**	गोप बालकोंसे घिरे
आदित्यः	सूर्य	**पुरात्**	नगरसे
अस्तं उपेयिवान्	अस्ताचल पहुँच गया (तब)	**शकटं ईयतु**	छकड़ोंके पास आये ॥२३॥

गोप्यो मुकुन्दविगमे विरहातुरा या
आशासताशिष ऋता मधुपुर्यभूवन् ।
सम्पश्यतां पुरुषभूषणगात्रलक्ष्मीं
हित्वेतरान् नु भजतश्चकमेऽयनं श्रीः ॥२४॥

गोप्यः मुकुन्द विगमे विरह आतुरा या आशासत आशिष ऋता मधुपुरि अभूवन् सम्पश्यतां पुरुषभूषण गात्रलक्ष्मीं हित्वा इतरान् नु भजतः चक्रमे अयनं श्रीः ॥२४॥

नु भजतः	निश्चय चाहनेवाले	**पुरुषभूषण**	पुरुषभूषण (श्रीकृष्ण)के
इतरान्	दूसरोंको	**गात्रलक्ष्मीं**	शरीरकी शोभा
हित्वा श्रीः	छोड़कर लक्ष्मीने	**सम्पश्यतां**	देखनेवाले
अयनं चकमे	अपना निवास बनाया	**मधुपुरि**	मथुरावासियोंके लिए
मुकुन्द विगमे	(उन) मुकुन्दके प्रस्थानके समय	**ऋता अभूवन्**	(वे सब) सच हो गयीं ॥२४॥
विरह आतुरा	विरह-व्याकुला		
गोप्यः या	गोपियोंने जो		
आशिष	सम्भावनाएँ		
आशासत	सम्भावित की थीं		

अवनिक्ताङ्घ्रियुगलौ भुक्त्वा क्षीरोपसेचनम् ।
ऊषतुस्तां सुखं रात्रिं ज्ञात्वा कंसचिकीर्षितम् ॥२५॥

अवनिक्त अंघ्रि युगलौ भुक्त्वा क्षीर उपसेचनं ऊषतुः तां सुखं रात्रिं ज्ञात्वा कंस चिकीर्षितम् ॥२५॥

अंघ्रि युगलौ	दोनों चरण	ज्ञात्वा	जानकर
अवनिक्त	धोकर	तां रात्रिं	उस रात
क्षीर उपसेचनं	दूधसे बने पदार्थ (खीर आदि)	सुखं ऊषतुः	सुखपूर्वक सो गये ॥२५॥
भुक्त्वा	खाकर		
कंस चिकीर्षितं	कंसकी (आगे) करनेकी इच्छा		

कंसस्तु धनुषो भङ्गं रक्षिणां स्वबलस्य च ।
वधं निशम्य गोविन्दरामविक्रीडितं परम् ॥२६॥

कंसः तु धनुषः भङ्गं रक्षिणां स्वबलस्य च वधं निशम्य गोविन्द राम विक्रीडितं परम् ॥२६॥

कंसः तु	कंसने तो	रक्षिणां च	रक्षकों तथा
गोविन्द राम	श्रीकृष्ण-बलरामकी	स्वबलस्य	अपनी सेनाका
परम् विक्रीडितं	सहज क्रीड़ामें	वधं निशम्य	मारा जाना सुनकर ॥२६॥
धनुषः भङ्गं	धनुषका टूटना,		

दीर्घप्रजागरो भीतो दुर्निमित्तानि दुर्मतिः ।
बहून्यचष्टोभयथा मृत्योर्दौत्यकराणि च ॥२७॥

दीर्घ प्रजागरः भीतः दुर्निमित्तानि दुर्मतिः बहूनि अचष्ट उभयथा मृत्योः दौत्य कराणि च ॥२७॥

दुर्मतिः भीतः	वह दुर्बुद्धि डर गया,	दीर्घ प्रजागरः	देर तक जागता रह गया,

उभयथा	दोनों (जागते तथा (स्वप्न)में होनेवाले	बहूनि	बहुतसे
		दुर्निमित्तानि	अपशकुन
च मृत्योः	तथा मृत्युकी	अचष्ट	देखने लगा ॥२७॥
दौत्य कराणि	सूचना देनेवाले		

अदर्शनं स्वशिरसः प्रति रूपे च सत्यपि ।
असत्यपि द्वितीये च द्वैरूप्यं ज्योतिषां तथा ॥२८॥

अदर्शनं स्वशिरसः प्रति रूपे च सति अपि असति अपि द्वितीये च द्वैरूप्यं ज्योतिषां तथा ॥२८॥

प्रति रूपे	प्रतिबिम्ब या छायाके	द्वितीये	दूसरी
		असति अपि च	कोई आड़ न होने-पर भी
सति अपि च	पड़नेपर भी		
स्वशिरसः	उसमें अपना सिर	ज्योतिषां द्वैरूप्यं	तारोंका दुहरा रूप दीखता है ॥२८॥
अदर्शनं	नहीं दीखता है		
तथा	और		

छिद्रप्रतीतिश्छायायां प्राणघोषानुपश्रुतिः ।
स्वर्णप्रतीतिर्वृक्षेषु स्वपदानामदर्शनम् ॥२९॥

छिद्रप्रतीतिः छायायां प्राणघोष अनुपश्रुतिः स्वर्णप्रतीतिः वृक्षेषु स्वपदानां अदर्शनम् ॥२९॥

छायायां	अपनी छायामें	स्वर्णप्रतीतिः	सुनहलापन लगता है,
छिद्रप्रतीतिः	छेद लगते हैं,		
प्राणघोष	(कानोंमें अंगुली डालनेपर) प्राणोंकी गूंज	स्वपदानां	अपने पैरोंका चिह्न (रेतमें या भीगे हों तो भूमिपर)
अनुपश्रुतिः	सुनायी नहीं देती,	अदर्शनम्	नहीं दीखते ॥२९॥
वृक्षेषु	वृक्षोंमें		

स्वप्ने प्रेतपरिष्वङ्गः खरयानं विषादनम् ।
यायान्नलदमाल्येकस्तैलाभ्यक्तो दिगम्बरः ॥३०॥

स्वप्ने प्रेतपरिष्वङ्गः खरयानं विष अदनं यायात् अनलद माल्य एकः तैल अभ्यक्तः दिगम्बरः ॥३०॥

स्वप्ने	स्वप्नमें (देखता है कि)	**अनलदमाल्य**	जपा कुसुम (अंगार जैसे पुष्पों)की माला पहिने
प्रेतपरिष्वङ्गः	मेरे लोग आलिंगन कर रहे हैं,	**तैल अभ्यक्तः**	तेल लगाये
खरयानं	गधेपर बैठा है,	**दिगम्बरः**	नग्न
विष अदनं	विष खा रहा है,	**एकः यायात्**	अकेला (कहीं) जा रहा है ॥३०॥

अन्यानि चेत्थंभूतानि स्वप्नजागरितानि च ।
पश्यन् मरणसन्त्रस्तो निद्रां लेभे न चिन्तया ॥३१॥

अन्यानि च इत्थं भूतानि स्वप्न जागरितानि च पश्यन् मरण सन्त्रस्तः निद्रां लेभे न चिन्तया ॥३१॥

इत्थं भूतानि	इसी प्रकारके	**मरण सन्त्रस्तः**	मृत्युसे भयभीत
अन्यानि च	दूसरे भी	**चिन्तया**	चिन्ताके कारण
स्वप्न	स्वप्नमें तथा	**निद्रां न लेभे**	नींद नहीं ले सका ॥३१॥
जागरितानि	जागते हुए (होने-वाले)		
पश्यन्	(अपशकुनोंको) देखकर		

व्युष्टायां निशि कौरव्य सूर्ये चाद्भ्यः समुत्थिते ।
कारयामास वै कंसो मल्लक्रीडामहोत्सवम् ॥३२॥

व्युष्टायां निशि कौरव्य सूर्ये च अद्भ्यः समुत्थिते कारयामास वै कंसः मल्लक्रीडा महोत्सवम् ॥३२॥

कौरव्य	परीक्षित !	**सूर्ये च**	सूर्यके भी
निशि व्युष्टायां	रात्रि व्यतीत होने-पर	**अदभ्यः**	जलसे
		समुत्थिते	ऊपर उठ आनेपर

वै कंसः	निश्चय करके कंसने	**महोत्सवं**	महोत्सव
मल्लक्रीडा	पहलवानोंके खेल (कुश्ती)का	**कारयामास**	करवाया ॥३२॥

आनर्चुः पुरुषा रंगं तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे ।
मञ्चाश्चालङ्कृताः स्रग्भिः पताकाचैलतोरणैः ॥३३॥

आनर्चुः पुरुषा रंगं तूर्य भेर्यः च जघ्निरे मञ्चाः च अलंकृताः स्रक्भिः पताका चैल तोरणैः ॥३३॥

पुरुषा रंगं	राजसेवकोंने अखाड़ेको	**स्रक्भिः**	मालाओंसे
		पताका चैल	पताका तथा रेशमी
आनर्चुः	भलीभांति सजाया,	**तोरणैः**	वन्दनवारोंसे
तूर्य च भेर्यः	तुरही और नगाड़े	**मञ्चाः च**	मञ्च भी
जघ्निरे	बजाये जाने लगे,	**अलंकृताः**	सजाये गये ॥३३॥

तेषु पौरा जानपदा ब्रह्मक्षत्रपुरोगमाः ।
यथोपजोषं विविशू राजानश्च कृतासनाः ॥३४॥

तेषु पौरा जानपदा ब्रह्म क्षत्र पुरः अगमाः यथा उपजोषं विविशू राजानः च कृत आसनाः ॥३४॥

तेषु पौरा	उन (मंचों) पर नगरवासी	**यथा उपजोषं**	यथा स्थान
		च राजानः	तथा (सामन्त) राजा लोग
जानपदा	दूसरे ग्रामोंके आये लोग	**कृत आसनाः**	अपने सिंहासन रखवाकर
ब्रह्म क्षत्र	(जिनमें) ब्राह्मण, क्षत्रिय	**विविशू**	बैठ गये ॥३४॥
पुरः अगमाः	पहिले आये थे		

कंसः परिवृतोऽमात्यै राजमञ्च उपाविशत् ।
मण्डलेश्वरमध्यस्थो हृदयेन विदूयता ॥३५॥

कंसः परिवृतः अमात्यैः राजमञ्च उपाविशत् मण्डलेश्वर मध्यस्थः हृदयेन विदूयता ॥३५॥

विदूयता	बहुत व्यथित	**मध्यस्थः**	बीचमें
हृदयेन	चित्तसे	**कंसः**	कंस
अमात्यैः	मन्त्रियोंसे	**राजमञ्च**	राज-सिंहासनपर
परिवृतः	घिरा हुआ	**उपाविशत्**	आकर बैठ गया
मण्डलेश्वर	सामन्त राजाओंके		॥३५॥

वाद्यमानेषु तूर्येषु मल्लतालोत्तरेषु च ।
मल्लाः स्वलङ्कृता दृप्ताः सोपाध्यायाः समाविशन् ॥३६॥

वाद्यमानेषु तूर्येषु मल्लताल उत्तरेषु च मल्लाः स्वलङ्कृता दृप्ताः स उपाध्यायाः समाविशन् ॥३६॥

मल्लताल	मल्लोंके ताल ठोंकनेके	**मल्लाः च**	पहलवान भी
उत्तरेषु च	उपरान्त ही	**स उपाध्यायाः**	अपने उस्तादोंके साथ
तूर्येषु	तुरहियोंके	**समाविशन्**	आकर बैठ गये
वाद्यमानेषु	बजाये जानेपर		॥३६॥
दृप्ताः	गर्विष्ठ		
स्वलङ्कृता	सजे-धजे		

चाणूरो मुष्टिकः कूटः शलस्तोशल एव च ।
त आसेदुरुपस्थानं वल्गुवाद्यप्रहर्षिताः ॥३७॥

चाणूरः मुष्टिकः कूटः शलः तोशल एव च त आसेदुः उरुपस्थानं वल्गुवाद्य प्रहर्षिताः ॥३७॥

वल्गुवाद्य	बाजोंकी मधुर ध्वनिसे	**शलः च तोशल**	शल, तोशल
प्रहर्षिताः	हर्षित होकर	**एव उरुपस्थानं**	भी अखाड़ेके समीप
त चाणूरः	वे चाणूर	**आसेदुः**	आकर बैठ गये
मुष्टिकः कूटः	मुष्टिक, कूट		॥३७॥

नन्दगोपादयो गोपा भोजराजसमाहुताः ।
निवेदितोपायनास्ते एकस्मिन् मञ्च आविशन् ॥३८॥

नन्दगोप आदयः गोपा भोजराज समाहुताः निवेदित उपायनाः ते एकस्मिन् मञ्च आविशन् ॥३८॥

नन्दगोप	नन्द गोप	**उपायनाः**	उपहार
आदयः गोपा	आदि सब गोप	**निवेदित**	निवेदन करके
भोजराज	भोजराज कंसके द्वारा	**ते एकस्मिन्**	वे सब एक ही
		मञ्च आविशन्	मञ्चपर बैठ गये ॥३८॥
समाहुताः	बुलवाये जानेपर		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे मल्लरंगोपवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

अथ कृष्णश्च रामश्च कृतशौचौ परन्तप ।
मल्लदुन्दुभिनिर्घोषं श्रुत्वा द्रष्टुमुपेयतुः ॥ १ ॥

अथ कृष्णः च रामः च कृतशौचौ परन्तप मल्लदुन्दुभि निर्घोषं श्रुत्वा द्रष्टुं उपेयतुः ॥१॥

परन्तप	शत्रुतापन परीक्षित !	**कृष्ण च रामः च**	श्रीकृष्ण तथा बलरामजी भी
अथ कृतशौचौ	फिर स्नानादि करके	**द्रष्टुं उपेयतुः**	देखने उसके पास आ गये ॥१॥
मल्लदुन्दुभि	मल्लशालाके नगाड़ोंका		
निर्घोषं श्रुत्वा	तुमुलनाद सुनकर		

रङ्गद्वारं समासाद्य तस्मिन् नागमवस्थितम् ।
अपश्यत् कुवलयापीडं कृष्णोऽम्बष्ठप्रचोदितम् ॥ २ ॥

रङ्ग द्वारं सम आसाद्य तस्मिन् नागं अवस्थितं अपश्यत् कुवलयापीडं कृष्णः अम्बष्ठ प्रचोदितम् ॥२॥

रङ्ग द्वारं	मल्लशालाके	**नागं**	हाथी
द्वारं सम	द्वारके समीप	**कुवलयापीडं**	कुवलयापीडको
आसाद्य	पहुँचकर	**तस्मिन्**	उस द्वारमें
कृष्णः	श्रीकृष्णने	**अवस्थितं**	खड़ा
अम्बष्ठ	महावत द्वारा	**अपश्यत्**	देखा ॥२॥
प्रचोदितं	प्रेरित		

बद्ध्वा परिकरं शौरिः समुह्य कुटिलालकान् ।
उवाच हस्तिपं वाचा मेघनादगभीरया ॥ ३ ॥

बद्ध्वा परिकरं शौरिः समुह्य कुटिल अलकान् उवाच हस्तिपं वाचा मेघनाद गभीरया ॥३॥

परिकरं बद्ध्वा	कमर कसकर,	**गभीरया**	गम्भीर
कुटिल अलकान्	घुंघराले केशोंको	**वाचा शौरिः**	वाणीसे श्रीकृष्ण
समुह्य	समेटकर	**हस्तिपं उवाच**	महावतसे बोले
मेघनाद	मेघ-गर्जनके समान		॥३॥

अम्बष्ठाम्बष्ठ मार्गं नौ देह्यपक्रम माचिरम् ।
नो चेत् सकुञ्जरं त्वाद्य नयामि यमसादनम् ॥ ४ ॥

अम्बष्ठ अम्बष्ठ मार्गं नौ देहि अपक्रम माचिरं नो चेत् सकुञ्जरं त्व अद्य नयामि यमसादनम् ॥४॥

अम्बष्ठ	'महावत !	**नो चेत्**	नहीं तो
अम्बष्ठ	अरे महावत !	**सकुञ्जरं**	हाथीके साथ
नौ मार्गं देहि	हम दोनोंको रास्ता दे,	**त्व अद्य**	तुझे आज
		यमसादनं	यमराजके घर
अपक्रम	दूर हट जा,	**नयामि**	भेजता हूँ' ॥४॥
माचिरं	देर मत कर !		

एवं निर्भर्त्सितोऽम्बष्ठः कुपितः कोपितं गजम् ।
चोदयामास कृष्णाय कालान्तकयमोपमम् ॥ ५ ॥

एवं निर्भर्त्सितः अम्बष्ठः कुपितः कोपितं गजं चोदयामास कृष्णाय काल अन्तक यम उपमम् ॥५॥

एवं निर्भर्त्सितः	इस प्रकार डांटे जानेपर	**गजं कोपितं**	क्रुद्ध करके हाथी-को
कुपितः अम्बष्ठः	क्रुद्ध महावतने	**कृष्णाय**	श्रीकृष्णकी ओर
काल अन्तक यम उपमं	काल, मृत्यु तथा यमराजके समान	**चोदयामास**	प्रेरित किया ॥५॥

करीन्द्रस्तमभिद्रुत्य करेण तरसाग्रहीत् ।
कराद् विगलितः सोऽमुंनिहत्याङ्घ्रिष्वलीयत ॥ ६ ॥

करि इन्द्रः तं अभिद्रुत्य करेण तरसा अग्रहीत् करात् विगलितः सः अमुं निहत्य अङ्घ्रिषु अलीयत ॥६॥

करि इन्द्रः	गजेन्द्रने	विगलितः	सरक कर
तरसा	उनकी ओर	अमुं निहत्य	उस (हाथी)को (घूसा) मारकर
अभिद्रुत्य	वेगसे दौड़कर		
तं करेण	उनको सूंड़से	अङ्घ्रिषु	(उसके) पैरोंके बीचमें
अग्रहीत्	पकड़ लिया,		
सः करात्	वे सूंड़से	अलीयत	छिप गये ॥६॥

संक्रुद्धस्तमचक्षाणो घ्राणदृष्टिः स केशवम् ।
परामृशत् पुष्करेण स प्रसह्य विनिर्गतः ॥ ७ ॥

संक्रुद्धः तं अचक्षाणः घ्राणदृष्टिः स केशवं परामृशत् पुष्करेण स प्रसह्य विनिर्गतः ॥७॥

तं अचक्षाणः	उनको (सामने) न देखकर	केशवं परामृशत्	श्रीकृष्णको छू लिया; किन्तु
संक्रुद्धः	क्रोधमें भरकर	स प्रसह्य	वे बलपूर्वक
घ्राणदृष्टिः	सूंघकर ढूंढ़ता हुआ	विनिर्गतः	बाहर निकल गये ॥७॥
स पुष्करेण	उसने सूंड़से		

पुच्छे प्रगृह्यातिबलं धनुषः पञ्चविंशतिम् ।
विचकर्ष यथा नागं सुपर्ण इव लीलया ॥ ८ ॥

पुच्छे प्रगृह्य अतिबलं धनुषः पञ्चविंशतिम् विचकर्ष यथा नागं सुपर्ण इव लीलया ॥८॥

यथा नागं	जैसे सर्पको	अतिबलं	उस अत्यन्त बलवान (हाथी)की
सुपर्ण इव	गरुड़के समान		

पुच्छे प्रगृह्य	पूंछ पकड़कर	धनुषः	धनुष (सौ हाथ)
लीलया	खेलमें (उसे)	विचकर्ष	खींचते ले गये ॥८॥
पञ्चविंशतिम्	पच्चीस		

स पर्यावर्तमानेन सव्यदक्षिणतोऽच्युतः ।
बभ्राम भ्राम्यमाणेन गोवत्सेनेव बालकः ॥ ९ ॥

स पर्यावर्तमानेन सव्य दक्षिणतः अच्युतः बभ्राम भ्राम्यमाणेन गोवत्सेन इव बालकः ॥९॥

बालकः	बालक द्वारा	सव्य दक्षिणतः	बायें-दाहिने
भ्राम्यमाणेन	घुमाये जाते हुए	पर्यावर्तमानेन	घुमाया जाता हुआ
गोवत्सेन इव	गायके बछड़ेके समान	स बभ्राम	वह घूमता रहा ॥९॥
अच्युतः	श्रीकृष्ण द्वारा		

ततोऽभिमुखमभ्येत्य पाणिनाऽऽहत्य वारणम् ।
प्राद्रवन् पातयामास स्पृश्यमानः पदे पदे ॥१०॥

ततः अभिमुखं अभिएत्य पाणिना आहत्य वारणं प्राद्रवन् पातयामास स्पृश्यमानः पदे पदे ॥१०॥

ततः अभिमुखं	फिर सामने	पदे पदे	पद-पदपर
अभि एत्य	समीप आकर	स्पृश्यमानः	छू जानेके ढंगसे
वारणं	हाथीको	पातयामास	गिराते हुएसे
पाणिना आहत्य	घूसेसे मारकर	प्राद्रवन्	दौड़ने लगे ॥१०॥

स धावन् क्रीडया भूमौ पतित्वा सहसोत्थितः ।
तं मत्वा पतितं क्रुद्धो दन्ताभ्यां सोऽहनत्क्षितिम् ॥११॥

स धावन् क्रीडया भूमौ पतित्वा सहसा उत्थितः तं मत्वा पतितं क्रुद्धः दन्ताभ्यां सः अहनत् क्षितिम् ॥११॥

स धावन्	वे दौड़ते हुए
क्रीडया भूमौ	खेलमें पृथ्वीपर
पतित्वा	गिरकर
सहसा उत्थितः	अचानक उठ गये,
तं पतितं मत्वा	उन्हें गिरा हुआ मानकर
क्रुद्धः	क्रोधमें भरा
सः दन्ताभ्यां	उसने अपने दांतोंसे
क्षितिं अहनत्	पृथ्वीको मारा ॥११॥

स्वविक्रमे प्रतिहते कुञ्जरेन्द्रोऽत्यमर्षितः ।
चोद्यमानो महामात्रैः कृष्णमभ्यद्रवद् रुषा ॥१२॥

स्वविक्रमे प्रतिहते कुञ्जर इन्द्रः अति अमर्षितः चोद्यमानः महामात्रैः कृष्णं अभि अद्रवत् रुषा ॥१२॥

स्वविक्रमे	अपने पराक्रमके
प्रतिहते	व्यर्थ हो जानेपर
कुञ्जर इन्द्रः	गजेन्द्र
अति अमर्षितः	बहुत चिढ़ गया,
महामात्रैः	महावतों द्वारा
चोद्यमानः	प्रेरित होकर
रुषा कृष्णं	क्रोधसे श्रीकृष्णकी
अभि अद्रवत्	ओर झपटा ॥१२॥

तमापतन्तमासाद्य भगवान् मधुसूदनः ।
निगृह्य पाणिना हस्तं पातयामास भूतले ॥१३॥

तं आपतन्तं आसाद्य भगवान् मधुसूदनः निगृह्य पाणिना हस्तं पातयामास भूतले ॥१३॥

तं आपतन्तं	उस अपनी ओर झपटतेके
आसाद्य	समीप जाकर
भगवान्	भगवान
मधुसूदनः	मधुसूदनने
पाणिना हस्तं	हाथसे सूंड़
निगृह्य	जोरसे पकड़कर
भूतले	(उसे) पृथ्वीपर
पातयामास	गिरा दिया ॥१३॥

पतितस्य पदाऽऽक्रम्य मृगेन्द्र इव लीलया ।
दन्तमुत्पाट्य तेनेभं हस्तिपांश्चाहनद्धरिः ॥१४॥

पतितस्य पदा आक्रम्य मृगेन्द्र इव लीलया दन्तं उत्पाट्य तेन इभं हस्तिपान् च अहनत् हरिः ॥१४॥

पतितस्य	गिरे हुएको	हरिः	श्री कृष्णने
मृगेन्द्र इव	सिंहके समान	तेन इभं	उसीसे हाथीको
पदा आक्रम्य	पैरसे दबाकर	च हस्तिपान्	तथा महावतोंको
लीलया	खेलमें	अहनत्	मार दिया ॥१४॥
दन्तं उत्पाटच	(उसके) दांत उखाड़कर		

मृतकं द्विपमुत्सृज्य दन्तपाणिः समाविशत् ।
अंसन्यस्तविषाणोऽसृङ्मदबिन्दुभिरङ्कितः ।
विरूढस्वेदकणिकावदनाम्बुरुहो बभौ ॥१५॥

मृतकं द्विपं उत् सृज्य दन्तपाणिः समाविशत् अंसन्यस्त विषाणः असृक् मदबिन्दुभिः अङ्कितः विरूढ स्वेदकणिका वदन अम्बुरुहः बभौ ॥१५॥

मृतकं द्विपं	मरे हाथीको	असृक्	रक्त तथा
उत्सृज्य	छोड़कर	मदबिन्दुभिः	गजमदके बिन्दुओंसे
दन्तपाणिः	हाथमें (उसका) दांत लिए	अङ्कितः	चिह्नित
समाविशत्	साथियोंके साथ (अखाड़ेमें) प्रविष्ट हुए	स्वेदकणिका	पसीनेकी नन्ही बूंदोंके
विषाणः	हाथी दांत	विरूढ	आ जानेसे
अंसन्यस्त	कन्धेपर रखे	वदन अम्बुरुहः	उनका कमलमुख
		बभौ	शोभित हो रहा था ॥१५॥

वृतौ गोपैः कतिपयैर्बलदेवजनार्दनौ ।
रङ्गं विवशतू राजन् गजदन्तवरायुधौ ॥१६॥

वृतौ गोपैः कतिपयैः बलदेव जनार्दनौ रङ्गं विवशतू राजन् गजदन्त वर आयुधौ ॥१६॥

राजन्	राजन् !	गोपैः वृतौ	गोपोंसे घिरे हुए
कतिपयैः	कुछ थोड़े	गजदन्त	हाथीके दांतोंका

वर आयुधौ	उत्तम आयुध लिए	**रंगं विवशतू**	मल्लशालामें प्रविष्ट हुए ॥१६॥
बलदेव	बलराम-		
जनार्दनौ	श्रीकृष्ण		

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः
स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां
शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां
तत्त्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो
रङ्गं गतः साग्रजः ॥१७॥

मल्लानां अशनिः नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरः मूर्तिमान् गोपानां स्वजनः असतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः मृत्युः भोजपतेः विराट् अविदुषां तत्त्वं परं योगिनां वृष्णीनां परदेवता इति विदितः रङ्गं गतः साग्रजः ॥१७॥

साग्रज	बड़े भाईके साथ	**शिशुः**	अपने बालक,
रंगं गतः	मल्लशालामें पहुँचने-पर (श्रीकृष्ण)	**भोजपतेः मृत्युः**	भोजराज कंसको अपनी मृत्यु,
मल्लानां	पहलवानोंको	**अविदुषां विराट्**	अज्ञानियोंको विराट् पुरुष,
अशनिः	वज्रके समान	**योगिनां**	योगियोंको
नृणां नरवरः	(सामान्य) पुरुषोंको पुरुष श्रेष्ठ,	**परं तत्त्वं**	परमतत्त्व तथा
स्त्रीणां	स्त्रियोंको	**वृष्णीनां**	वृष्णि-वंशी यादवोंको
मूर्तिमान् स्मरः	मूर्तिमान कामदेव,	**परदेवता**	परमाराध्य देव
गोपानां स्वजनः	गोपोंको निजजन,	**इति विदितः**	इस प्रकार प्रतीत हुए ॥१७॥
क्षितिभुजां	राजाओंको		
असतां शास्ता	दुष्टोंके दण्डदाता,		
स्वपित्रोः	अपने माता-पिता (देवकी-वसुदेव) को		

हतं कुवलयापीडं दृष्ट्वा तावपि दुर्जयौ ।
कंसो मनस्व्यपि तदा भृशमुद्विविजे नृप ॥१८॥

हतं कुवलयापीडं दृष्ट्वा ताः अपि दुर्जयौ कंसः मनस्वि अपि तदा भृशं उद्विविजे नृप ॥१८॥

नृप	राजन् !	दुर्जयौ	दुर्जय
कुवलयापीडं	कुवलया पीड़ हाथी-को	दृष्ट्वा	देखकर
		मनस्वि अपि	मनस्वी होनेपर भी
हतं	मारा गया तथा	कंसः तदा	कंस उस समय
ताः अपि	उन दोनों भाइयों-को भी	भृशं उद्विविजे	बहुत उद्विग्न हो गया ॥१८॥

तौ रेजतू रङ्गगतौ महाभुजौ
विचित्रवेषाभरणस्रगम्बरौ ।
यथा नटावुत्तमवेषधारिणौ
मनः क्षिपन्तौ प्रभया निरीक्षताम् ॥१९॥

तौ रेजतू रङ्गगतौ महाभुजौ विचित्रवेषम् आभरण स्रक् अम्बरौ यथा नटाः उत्तमवेश धारिणौ मनः क्षिपन्तौ प्रभया निरीक्षताम् ॥१९॥

रंगगतौ तौ	रंगशालामें आये वे दोनों भाई	निरीक्षतां	दर्शन करने-वालोंका
यथा उत्तमवेश	जैसे उत्तम वेश	प्रभया	अपनी कान्तिसे
धारिणौ नटाः	धारण किये दो नट हों,	मनः क्षिपन्तौ	मन आकर्षित करते हुए
विचित्रवेष	अद्भुत वेश	रेजतूः	सुशोभित हुए ॥१९॥
आभरण	आभूषण		
स्रक् अम्बरौ	माला, वस्त्रधारी		
महाभुजौ	विशाल बाहु		

निरीक्ष्य तावुत्तमपूरुषौ जना
मञ्चस्थिता नागरराष्ट्रका नृप ।
प्रहर्षवेगोत्कलितेक्षणाननाः
पपुर्न तृप्ता नयनैस्तदाननम् ॥२०॥

निरीक्ष्य ताः उत्तमपुरुषौ जना मञ्चस्थिता नागरराष्ट्रका नृप प्रहर्षवेग उत्कलित ईक्षण आननाः पपुः न तृप्ता नयनैः तत् आननम् ॥२०॥

नृप	राजन् !	**प्रहर्षवेग**	अत्यन्त हर्षावेशसे
मञ्चस्थिता	मञ्चपर बैठे	**उत्कलित**	प्रोत्फुल्ल
नागरराष्ट्रका	नगर तथा देशके	**ईक्षण आननाः**	नेत्रों और मुखवाले
जना	लोग	**तत् आननं**	उनके मुखोंको
ताः	उन	**न तृप्ता**	अतृप्त भावसे
उत्तमपुरुषौ	पुरुषोत्तमोंको	**नयनैः पपुः**	नेत्रों द्वारा पीने लगे ॥२०॥
निरीक्ष्य	देखकर		

पिबन्त इव चक्षुर्भ्यां लिहन्त इव जिह्वया ।
जिघ्रन्त इव नासाभ्यां श्लिष्यन्त इव बाहुभिः ॥२१॥

पिबन्त इव चक्षुः भ्यां लिहन्त इव जिह्वया जिघ्रन्त इव नासाभ्यां श्लिष्यन्त इव बाहुभिः ॥२१॥

चक्षुः भ्यां	(मानो वे) नेत्रोंसे	**जिघ्रन्त इव**	सूंघ-से रहे हों
पिबन्त इव	पी-से रहे हों,	**बाहुभिः**	भुजाओंसे
जिह्वया	जीभसे	**श्लिष्यन्त इव**	आलिंगन-से कर रहे हों ॥२१॥
लिहन्त इव	चाट-से रहे हों		
नासाभ्यां	नासिकासे		

ऊचुः परस्परं ते वै यथादृष्टं यथाश्रुतम् ।
तद्रूपगुणमाधुर्यप्रागल्भ्यस्मारिता इव ॥२२॥

ऊचुः परस्परं ते वै यथा दृष्टं यथा श्रुतं तत् रूपगुण माधुर्य प्रागल्भ्य स्मारिता इव ॥२२॥

तत् रूपगुण माधुर्य प्रागल्भ्य स्मारिता इव	उनका सौन्दर्य, गुण, मधुरिमा, निर्भयता (उन्हें) स्मरण करा दी गई हो इस प्रकार	वै यथा दृष्टं यथा श्रुतम् ते परस्परं ऊचुः	निश्चय जैसा देखा था और जैसा सुना था वैसा वे परस्पर कहने लगे ॥२२॥

एतौ भगवतः साक्षाद्धरेर्नारायणस्य हि ।
अवतीर्णाविहांशेन वसुदेवस्य वेश्मनि ॥२३॥

एतौ भगवतः साक्षात् हरेः नारायणस्य हि अवतीर्णाः इह अंशेन वसुदेवस्य वेश्मनि ॥२३॥

हि एतौ सक्षात् भगवतः हरेः नारायणस्य अंशेन इह	क्योंकि ये दोनों भाई साक्षात् भगवान श्रीहरि नारायणके अंशसे यहां	वसुदेवस्य वेश्मनि अवतीर्णाः	वसुदेवजीके घरमें अवतरित हुए हैं ॥२३॥

एष वै किलः देवक्यां जातो नीतश्च गोकुलम् ।
कालमेतं वसन् गूढो ववृधे नन्दवेश्मनि ॥२४॥

एष वै किलः देवक्यां जातः नीतः च गोकुलं कालं एतं वसन् गूढः ववृधे नन्दवेश्मनि ॥२४॥

वै किलः एष	निश्चय अरे ये (कृष्ण)	एतं कालं नन्दवेश्मनि गूढः वसन् ववृधे	इस समय तक नन्दजीके घरमें छिपकर रहते हुए बड़े हुए हैं ॥२४॥
देवक्यां जातः	देवकीसे उत्पन्न होकर		
च गोकुलं नीतः	तथा गोकुल ले जाये जाकर		

पूतनानेन नीतान्तं चक्रवातश्च दानवः ।
अर्जुनौ गुह्यकः केशी धेनुकोऽन्ये च तद्विधाः ॥२५॥

पूतना अनेन नीत अन्तं चक्रवातः च दानवः अर्जुनौ गुह्यकः केशी धेनुकः अन्ये च तत् विधाः ॥२५॥

अनेन	इनके द्वारा	**केशी धेनुकः**	केशी, धेनुकासुप
पूतना च	पूतना तथा	**च तत् विधाः**	तथा इसी प्रकारके
दानवः चक्रवातः	दानव तृणावर्त,	**अन्ये अन्तं नीत**	दूसरे अन्तिम गति- को पहुँचा दिये गये ॥२५॥
अर्जुनौ	यमलार्जुन,		
गुह्यकः	यक्ष शंखचूड़		

गावः सपाला एतेन दावाग्नेः परिमोचिताः।
कालियो दमितः सर्प इन्द्रश्च विमदः कृतः ॥२६॥

गावः सपालाः एतेन दावाग्नेः परिमोचिताः कालियः दमितः सर्पः इन्द्रः च विमदः कृतः ॥२६॥

एतेन	इन्हींके द्वारा	**कालियः सर्पः**	कालिय नागका
सपालाः गावः	गोपालकोंके साथ गायें	**दमितः**	दमन हुआ
		च इन्द्रः	तथा इन्द्र
दावाग्नेः	दावाग्निसे	**विमदः कृतः**	गर्वहीन किये गये ॥२६॥
परिमोचिताः	घिरी हुई छुड़ायी गयीं,		

सप्ताहमेकहस्तेन धृतोऽद्रिप्रवरोऽमुना ।
वर्षवाताशनिभ्यश्च परित्रातं च गोकुलम् ॥२७॥

सप्ताहं एकहस्तेन धृतः अद्रिप्रवरः अमुना वर्षवात अशनिभ्यः च परित्रातं च गोकुलम् ॥२७॥

अमुना	इन्होंने	**च वर्षवात**	तथा वर्षा, आंधी,
एकहस्तेन	एक हाथसे	**अशनिभ्यः**	वज्रपातसे
अद्रिप्रवरः	गिरिराज गोवर्धन- को	**गोकुलं**	गोकुलकी
		परित्रातं च	रक्षा भी की ॥२७॥
सप्ताहं धृतः	एक सप्ताह धारण किया		

गोप्योऽस्य नित्यमुदितहसितप्रेक्षणं मुखम् ।
पश्यन्तो विविधांस्तापांस्तरन्ति स्माश्रमं मुदा ॥२८॥

गोप्यः अस्य नित्य मुदित हसितप्रेक्षणं मुखं पश्यन्तः विविधान् तापान् तरन्ति सु अश्रमम् मुदा ॥२८॥

अस्य नित्य	इनके सदा	**गोप्यः मुदा**	गोपियां आनन्दपूर्वक
मुदित	आनन्दित	**अश्रमं**	बिना परिश्रमके
हसितप्रेक्षणं	मुस्कान सहित देखनेवाले	**विविधान्**	अनेक प्रकारके
मुखं पश्यन्तः	श्रीमुखको देखती हुई	**तापान् तरन्ति**	संतापोंको पार कर जाती हैं ॥२८॥

वदन्त्यनेन वंशोऽयं यदोः सुबहुविश्रुतः ।
श्रियं यशो महत्त्वं च लप्स्यते परिरक्षितः ॥२९॥

वदन्ति अनेन वंशः अयं यदोः सुबहुविश्रुतः श्रियं यशः महत्त्वं च लप्स्यते परिरक्षितः ॥२९॥

सुबहु विश्रुतः	अत्यन्त प्रख्यात	**परिरक्षितः**	रक्षित होकर
अयं यदोः वंशः	यह यदु-वंश	**श्रियं यशः**	लक्ष्मी, यश
वदन्ति	कहते हैं कि	**च महत्त्वं**	तथा महत्त्व
अनेन	इनके द्वारा	**लप्स्यते**	प्राप्त करेगा ॥२९॥

अयं चास्याग्रजः श्रीमान् रामः कमललोचनः ।
प्रलम्बो निहतो येन वत्सको ये बकादयः ॥३०॥

अयं च अस्य अग्रजः श्रीमान् रामः कमललोचनः प्रलम्बः निहतः येन वत्सकः ये बक आदयः ॥३०॥

अयं अस्य च	ये इनके ही	**श्रीमान् रामः**	श्रीमान् बलरामजी हैं,
अग्रजः	बड़े भाई	**येन प्रलम्बः**	(हमने सुना है कि) जिन्होंने प्रलम्बासुर
कमललोचनः	कमल-लोचन		

वत्सकः बक	बत्सासुर, बकासुर	निहतः	उनको मारा है
आदयः ये	आदि जो थे		॥३०॥

जनेष्वेवं ब्रुवाणेषु तूर्येषु निनदत्सु च ।
कृष्णरामौ समाभाष्य चाणूरो वाक्यमब्रवीत् ॥३१॥

जनेषु एवं ब्रुवाणेषु तूर्येषु निनदत्सु च कृष्णरामौ सम आभाष्य चाणूरः वाक्यं अब्रवीत् ॥३१॥

जनेषु	लोगोंके	कृष्णरामौ	श्रीकृष्ण-बलरामको
एवं ब्रुवाणेषु	इस प्रकार कहते समय	सम आभाष्य	सम्बोधित करके
		चाणूरः	चाणूर
च तूर्येषु	तथा तुरहियोंके	वाक्यं अब्रवीत्	यह बात बोला
निनदत्सु	जोरसे बजते समय		॥३१॥

हे नन्दसूनो हे राम भवन्तौ वीरसंमतौ ।
नियुद्धकुशलौ श्रुत्वा राज्ञाऽऽहूतौ दिदृक्षुणा ॥३२॥

हे नन्दसूनो हे राम भवन्तौ वीर सम्मतौ नियुद्धकुशलौ श्रुत्वा राज्ञा आहूतौ दिदृक्षुणा ॥३२॥

हे नन्दसूनो	हे नन्दनन्दन !	श्रुत्वा दिदृक्षुणा	सुनकर देखनेकी इच्छावाले
हे राम	हे बलराम !	राज्ञा आहूतौ	राजा द्वारा बुलाये गये हों ॥३२॥
भवन्तौ	तुम दोनों		
वीर सम्मतौ	वीरोंके आदरणीय और		
नियुद्धकुशलौ	कुश्ती लड़नेमें निपुण हो		

प्रियं राज्ञः प्रकुर्वन्त्यः श्रेयो विन्दन्ति वै प्रजाः ।
मनसा कर्मणा वाचा विपरीतमतोऽन्यथा ॥३३॥

प्रियं राज्ञः प्रकुर्वन्त्यः श्रेयः विन्दन्ति वै प्रजाः मनसा कर्मणा वाचा विपरीतं अतः अन्यथा ॥३३॥

कर्मणा मनसा	कर्मसे, मनसे,	**श्रेयः विन्दन्ति**	मंगल पाती हैं
वाचा राज्ञः	वाणीसे राजाका	**अतः अन्यथा**	इससे उलटा (करने-पर)
प्रियं	प्रिय		
प्रकुर्वन्त्यः	प्रिय करती हुई	**विपरीतं**	उलटा (फल होता है) ॥३३॥
प्रजाः वै	प्रजा निश्चय		

नित्यं प्रमुदिता गोपा वत्सपाला यथा स्फुटम् ।
वनेषु मल्लयुद्धेन क्रीडन्तश्चारयन्ति गाः ॥३४॥

नित्यं प्रमुदिता गोपा वत्सपाल यथा स्फुटं वनेषु मल्लयुद्धेन क्रीडन्तः चारयन्ति गाः ॥३४॥

यथा स्फुटं	जैसाकि स्पष्ट है कि	**मल्लयुद्धेन**	कुश्ती लड़नेका
वत्सपाल	बछड़े चरानेसे लेकर	**क्रीडन्तः**	खेल खेलते हुए
गोपा	गोप लोग	**गाः चारयन्ति**	गाय चराते हैं ॥३४॥
नित्यं प्रमुदिता	सदा प्रसन्नतासे		
वनेषु	वनमें		

तस्माद् राज्ञः प्रियं यूयं वयं च करवाम हे ।
भूतानि नः प्रसीदन्ति सर्वभूतमयो नृपः ॥३५॥

तस्मात् राज्ञः प्रियं यूयं वयं च करवाम हे भूतानि नः प्रसीदन्ति सर्वभूतमयः नृपः ॥३५॥

तस्मात्	इसलिए	**प्रसीदन्ति**	प्रसन्न होंगे; (क्योंकि)
राज्ञः प्रियं	राजाका प्रिय	**नृपः सर्वभूतमयः**	राजा सब प्राणिमय होता है ॥३५॥
यूयं च वयं	तुम और हम		
करवाम हे	करें (इससे)		
नः भूतानि	हमपर सब प्राणी		

तन्निशम्योचुवीत् कृष्णो देशकालोचितं वचः ।
नियुद्धमात्मनोऽभीष्टं मन्यमानोऽभिनन्द्य च ॥३६॥

तत् निशम्य अब्रवीत् कृष्णः देशकाल उचितं वचः नियुद्ध आत्मनः अभीष्टं मन्यमानः अभिनन्द्य च ॥३६॥

देश काल	देश-कालके	आत्मनः	अपने लिए भी
उचितं वचः	उचित वचनको जाननेवाले	अभीष्टं	अभीष्ट
		मन्यमानः	मानते हुए
कृष्णः	श्रीकृष्ण	अभिनन्द्य च	उनकी प्रशंसा करके ही
तत् निशम्य	उस (बात)को सुनकर	अब्रवीत्	बोले ॥३६॥
नियुद्धं	कुश्तीको		

प्रजा भोजपतेरस्य वयं चापि वनेचराः ।
करवाम प्रियं नित्यं तन्नः परमनुग्रहः ॥३७॥

प्रजा भोजपतेः अस्य वयं च अपि वनेचराः करवाम प्रियं नित्यं तत् नः परम् अनुग्रहः ॥३७॥

अस्य भोजपतेः	इन भोजराज कंस-की	करवाम	करते हैं
		तत् नः	यह तो हमपर (उनकी)
वयं वनेचराः	हम वनवासी		
च अपि प्रजा	भी प्रजा हैं,	परम् अनुग्रहः	महती कृपा है ॥३७॥
नित्यं प्रियं	(हमतो) सदा (उनका) प्रिय ही		

बाला वयं तुल्यबलैः क्रीडिष्यामो यथोचितम् ।
भवेन्नियुद्धं माधर्मः स्पृशेन्मल्ल सभासदः ॥३८॥

बाला वयं तुल्यबलैः क्रीडिष्यामः यथा उचितं भवेत् नियुद्धं मा अधर्मः स्पृशेत् मल्ल सभासदः ॥३८॥

वयं बाला	हम बालक हैं (अतः)	यथा उचितं	यथोचित रूपसे
		क्रीडिष्यामः	खेल करेंगे,
तुल्यबलैः	समान बलवालोंके साथ	भवेत् नियुद्धं	कुश्ती तो हों; किन्तु

मल्ल सभासदः	मल्ल सभाके सदस्योंको	**अधर्मः**	(अन्यायके समर्थनका) अधर्म
		स्पृशेत् मा	स्पर्श न करे ॥३८॥

चाणूर उवाच

न बालो न किशोरस्त्वं बलश्च बलिनां वरः ।
लीलयेभो हतो येन सहस्रद्विपसत्त्वभृत् ॥३९॥

न बालः न किशोरः त्वं बलः च बलिनां वरः लीलया इभः हतः येन सहस्रद्विप सत्त्वभृत् ॥३९॥

सहस्रद्विप	एक सहस्र हाथियों के*	**त्वं न बालः**	वह तुम न बालक हो
		न किशोरः	न युवक
सत्त्वभृत्	बल धारण करने वाले	**च बलः**	और बलराम भी
		बलिनां वरः	बलवानोंमें श्रेष्ठ हैं ॥३९॥
इभः येन	हाथीको जिसने		
लीलया हतः	खेलमें मार दिया		

तस्माद् भवद्भ्यां बलिभिर्योद्धव्यं नानयोऽत्र वै ।
मयि विक्रम वार्ष्णेय बलेन सह मुष्टिकः ॥४०॥

तस्मात् भवद्भ्यां बलिभिः योद्धव्यं न अनयोः अत्र वै मयि विक्रम वार्ष्णेय बलेन सह मुष्टिकः ॥४०॥

तस्मात्	इसलिए	**वार्ष्णेय**	कृष्ण
भवद्भ्यां	तुम दोनोंको	**मयि**	(तुम) मुझसे और
बलिभिः	बलवानोंसे	**बलेन**	बलराम
योद्धव्यं	युद्ध करना काहिए	**मुष्टिकः सह**	मुष्टिकके साथ
अत्र वै	इसमें निश्चय	**विक्रम**	पराक्रम दिखाते हैं ॥४०॥
अनयोः न	अन्याय नहीं है,		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे कुवलयापीडवधो नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

---

*जैसे आजकल 'अश्वशक्ति' में शक्ति की माप प्रचलित है वैसे ही उस समय शक्ति की माप 'गज शक्ति' में होती थी ।

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

एवं चर्चितसङ्कल्पो भगवान् मधुसूदनः ।
आससादाथ चाणूरं मुष्टिकं रोहिणीसुतः ॥ १ ॥

एवं चर्चित सङ्कल्पः भगवान् मधुसूदनः आससाद अथ चाणूरं मुष्टिकं रोहिणीसुतः ॥१॥

एवं	इस प्रकार	**अथ चाणूरं**	फिर चाणूरसे और
चर्चित संङ्कल्पः	निश्चयकी चर्चा हो जानेपर	**रोहिणीसुतः**	रोहिणी-नन्दन बलरामजी
भगवान्	भगवान	**मुष्टिकं**	मुष्टिकसे
मधुसूदनः	मधुसूदन	**आससाद**	भिड़ गये ॥१॥

हस्ताभ्यां हस्तयोर्बद्ध्वा पद्भ्यामेव च पादयोः ।
विचकर्षतुरन्योन्यं प्रसह्य विजिगीषया ॥ २ ॥

हस्ताभ्यां हस्तयोः बद्ध्वा पद्भ्यां एव च पादयोः विचकर्षतुः अन्यः अन्यं प्रसह्य विजिगीषया ॥२॥

हस्ताभ्यां	हाथोंसे	**अन्यः अन्यं**	एक दूसरेको
हस्तयोः	हाथोंको	**विजिगीषया**	जीतनेकी इच्छासे
च पद्भ्यां एव	तथा पैरोंसे ही	**प्रसह्य**	बलपूर्वक
पादयोः बद्ध्वा	पैरोंको लपेटकर	**विचकर्षतुः**	खींचने लगे ॥२॥

अरत्नी द्वे अरत्निभ्यां जानुभ्यां चैव जानुनी ।
शिरः शीर्ष्णोरसोरस्तावन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ ३ ॥

अरत्नी द्वे अरत्निभ्यां जानुभ्यां च एव जानुनी शिरः शीर्ष्णोः रसोः रस्ताः अन्यः अन्यं अभिजघ्नतुः ॥३॥

अरत्नी द्वे	दोनों पञ्जे	रसोः रस्ताः	छातीसे छातीको
अरत्नीभ्यां	पञ्जोंसे	अन्यः अन्यं	एक दूसरेको
च जानुभ्यां एव	तथा घुटनोंसे ही	अभिजघ्नतु	बारबार मारने लगे ॥३॥
जानुनी	घुटनोंको		
शिरः शीर्ष्णोः	माथेसे माथेको		

परिभ्रामणविक्षेपपरिरम्भावपातनैः ।
उत्सर्पणापसर्पणैश्चान्योन्यं प्रत्यरुन्धताम् ॥ ४ ॥

परिभ्रामण विक्षेप परिरम्भ अवपातनैः उत्सर्पण अपसर्पणैः च अन्यः अन्यं प्रति अरुन्धताम् ॥४॥

अन्यः अन्यं	एक दूसरेको	उत्सर्पण	छोड़कर हट जाते,
परिभ्रामण	घुमाते,	अपसर्पणैः	पीछे हटते
विक्षेप	ढकेलते	प्रति अरुन्धतां	(इस प्रकार) प्रतिद्वन्दीको रोकते थे ॥४॥
परिरम्भ	छातीसे दबाते,		
अवपातनैः	नीचे गिरादेते		

उत्थापनैरुन्नयनैश्चालनैः स्थापनैरपि ।
परस्परं जिगीषन्तावपचक्रतुरात्मनः ॥ ५ ॥

उत्थापनैः उन्नयनैः चालनैः स्थापनैः अपि परस्परं जिगीषन्ताः अपचक्रतुः आत्मनः ॥५॥

उत्थापनैः	उठाकर खड़ा करते,	परस्परं	एक दूसरेको
उन्नयनैः	ऊपर उठा लेते,	जिगीषन्ताः	जीतनेका प्रयत्न हुए
चालनैः	धक्का देते,	आत्मनः	शरीरको
स्थापनैः अपि	(दबाकर) स्थिर करके भी	अपचक्रतुः	मरोड़ते ॥५॥

तद् बलाबलवद्युद्धं समेताः सर्वयोषितः ।
ऊचूः परस्परं राजन् सानुकम्पा वरूथशः ॥ ६ ॥

तत् बल अबलवत् युद्धं समेताः सर्वयोषितः ऊचूः परस्परं राजन् सानुकम्पा वरूथशः ॥६॥

राजन्	राजन्	सर्वयोषितः	सब स्त्रियाँ
तत् बल	उस बलवानों और	वरूथशः	टोलियाँ बँटकर
अबलवत्	दुर्बलोंको	सानुकम्पा	करुणावश
युद्धं	कुश्तीको	परस्परं ऊचूः	आपसमें कहने लगीं
समेताः	आयी हुई		॥६॥

महानयं बताधर्म एषां राजसभासदाम् ।
ये बलाबलवद्युद्धं राज्ञोऽन्विच्छन्ति पश्यतः ॥ ७ ॥

महान् अयं बत अधर्म एषां राजसभासदां ये बल अबलवत् युद्धं राज्ञः अन्विच्छन्ति पश्यतः ॥७॥

बत एषां	अरे इन	बल अबलवत्	बलवान और दुर्बलों के
राज सभासदां	राजसभाके सदस्यों का	युद्धं	युद्धका
अयं महान्	यह बड़ा भारी	राज्ञः	राजाके
अधर्म	अधर्म है	अन्विच्छन्ति	साथ अनुमोदन
ये पश्यतः	देखते हुए		करते हैं ॥७॥

क्व वज्रसारसर्वाङ्गौ मल्लौ शैलेन्द्रसन्निभौ ।
क्व चातिसुकुमाराङ्गौ किशोरौ नाप्तयौवनौ ॥ ८ ॥

क्व वज्रसार सर्व अङ्गौ मल्लौ शैलेन्द्र सन्निभौ क्व च अति सुकुमार अङ्गौ किशोरौ न आप्त यौवनौ ॥८॥

क्व वज्रसार	कहाँ तो लोहसार (फौलाद) के समान	**क्व**	कहाँ
		न आप्त यौवनौ	जवानी भी न पाये
सर्व अङ्गौ	सब अंगों वाले	**अति सुकुमार**	अत्यन्त सुकुमार
शैलेन्द्र सन्निभौ	महापर्वत जैसे	**अङ्गौ किशोरौ**	अंगों वाले ये दोनों किशोर ॥८॥
मल्लौ	ये दोनों (कंसके) पहलवान और		

धर्मव्यतिक्रमो ह्यस्य समाजस्य ध्रुवं भवेत् ।
यत्राधर्मः समुत्तिष्ठेन्न स्थेयं तत्र कर्हिचित् ॥ ९ ॥

धर्मः व्यतिक्रमः हि अस्य समाजस्य ध्रुवं भवेत् यत्र अधर्मः सम उत्तिष्ठेत् न स्थेयं तत्र कर्हिचित् ॥९॥

अस्य समाजस्य	इस पूरे समाजको	**अधर्मः**	अधर्म
ध्रुवं	निश्चय	**सम उत्तिष्ठेत्**	ठीक ठीक उठ खड़ा हो (होने लगे)
धर्मः व्यतिक्रमः	धर्मोल्लंघन (का पाप)	**तत्र कर्हिचित्**	वहाँ कभी भी
भवेत्	होगा	**स्थेयं न**	ठहरना नहीं चाहिए ॥९॥
हि यत्र	क्योंकि जहाँ		

न सभां प्रविशेत् प्राज्ञः सभ्यदोषाननुस्मरन् ।
अब्रुवन् विब्रुवन्नज्ञो नरः किल्बिषमश्नुते ॥१०॥

न सभां प्रविशेत् प्राज्ञः सभ्यदोषान् अनुस्मरन् अब्रुवन् विब्रुवन् अज्ञः नरः किल्बिषं अश्नुते ॥१०॥

प्राज्ञः	बुद्धिमानको	**प्रविशेत्**	प्रवेश करना चाहिए (क्योंकि)
सभ्यदोषान्	सभासदोंके दोषोंको	**अब्रुवन्**	(वहाँ उनके दोष)
अनुस्मरन्	स्मरण करके	**विब्रुवन**	बतला देनेसे*
सभां न	सभा में नहीं		

---

* जानते हुए न बतलाना या अनजान बनजाना तो दोष है ही, 'यत अधर्म कृतः स्थानं सूचक स्मापि तद् भवेत्' के अनुसार अधर्म सूचित करना भी पाप है ।

अज्ञः	अनजान बनजानेसे (तीनों प्रकार)	नरः किल्बिषं	मनुष्य पाप (का फल)
		अश्नुते	भोगता है ॥१०॥

वल्गतः शत्रुमभितः कृष्णस्य वदनाम्बुजम् ।
वीक्ष्यतां श्रमवार्युप्तं पद्मकोशमिवाम्बुभिः ॥११॥

वल्गतः शत्रुं अभितः कृष्णस्य वदनाम्बुजं वीक्ष्यतां श्रमवारि उप्तं पद्मकोशं इव अम्बुभिः ॥११॥

शत्रुं अभितः	शत्रुके चारों ओर	पद्मकोशं इव	कमल पुष्पके समान
वल्गतः	उछलते हुए	कृष्णस्य	श्रीकृष्णका
श्रमवारि उप्तं	पसीनेसे भरा हुआ	वदनाम्बुजं	मुखकमल
अम्बुभिः	जलकी बूदों सहित	वीक्ष्यतां	देखो ॥११॥

किं न पश्यत रामस्य मुखमाताम्रलोचनम् ।
मुष्टिकं प्रति सामर्षं हाससंरम्भशोभितम् ॥१२॥

किं न पश्यत रामस्य मुखं आताम्र लोचनं मुष्टिकं प्रति स अमर्षं हास संरम्भ शोभितम् ॥१२॥

मुष्टिकं प्रति	मुष्टिकके प्रति	शोभितं	सुशोभित
स अमर्ष	क्रोध युक्त (होनेसे)	किं रामस्य	क्या बलरामजीका
आताम्र लोचनं	लाल नेत्रों वाला	मुखं न पश्यत	मुख नहीं देखती हो ॥१२॥
हास संरम्भ	हास्यके आवेगसे		

पुण्या बत व्रजभुवो यदयं नृलिङ्ग-
गूढः पुराणपुरुषो वनचित्रमाल्यः ।
गाः पालयन् सहबलः क्वणयंश्च वेणुं
विक्रीडयाञ्चति गिरित्ररमार्चिताङ्घ्रिः ॥१३॥

पुण्या बत व्रजभुवः यत् अयं नृलिङ्ग गूढः पुराणपुरुषः वनचित्र माल्यः गाः पालयन् सहबलः क्वणयन् च वेणुं विक्रीडया अञ्चति गिरित्र रमा अर्चित अंघ्रिः ॥१३॥

बत व्रजभुवः	अहो, व्रजभूमि
पुण्या	(निश्चय) पवित्र है
यत् अयं	क्योंकि ये
गिरित्र रमा	शिव और लक्ष्मी द्वारा
अर्चित अंघ्रिः	पूजित होने वाले श्रीचरण
पुराणपुरुषः	सनातन पुरुष
नृलिङ्ग गूढः	मनुष्य वेशमें छिपे
वनचित्र	वनके अनेक प्रकार
माल्यः	के पुष्पोंकी माला धारण करके
गाः पालयन्	गो- पालन करते हुए
च वेणुं क्वणयन्	तथा बंशी बजाते हुए
सहबलः	बलरामजीके साथ
विक्रीडया	खेलते हुए (वहां)
अञ्चति	विचरण करते हैं ॥१३॥

गोप्यस्तपः किमचरन् यदमुष्य रूपं
लावण्यसारमसमोर्ध्वमनन्यसिद्धम् ।
दृग्भिः पिबन्त्यनुसवाभिनवं दुराप-
मेकान्तधाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य ॥१४॥

गोप्यः तपः किं अचरन् यत् अमुष्य रूपं लावण्यसारं असम उर्ध्वं अनन्य सिद्धं दृग्भिः पिबन्ति अनुसवं अभिनवं दुरापं एकान्त धाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य ॥१४॥

गोप्य किं तपः	गोपियोंने क्या तपस्या
अचरन्	की है
असम उर्ध्वं	न किसी समान या अधिक
अनन्य सिद्धं	एकमात्र इन्हींमें विद्यमान
लावण्यसारं	सौन्दर्यके सार रूप
अभिनवं	नित्य नूतन,
यशसः श्रिय	सुयश, लक्ष्मी,

ऐश्वरस्य	ऐश्वर्यके	रूपं अनुभवं	रूपको प्रत्येक दिन
एकान्त धाम	एकमात्र आश्रय	दृग्भिः पिबन्ति	नेत्रोंसे पीती हैं ॥१४॥
दुरापं	दुष्प्राप्य		
यत् अमुष्य	जो इनके		

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप-
प्रेंखेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥१५॥

या दोहने अवहनने मथन उपलेप प्रेङ्खेङ्खन अर्भरुदित उक्षण मार्जन आदौ गायन्ति च एनं अनुरक्त धियः अश्रुकण्ठ्यः धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रम चित्तयानाः ॥१५॥

दोहने अवहनने	(दूध) दुहते (धान) कूटते,	च अश्रुकण्ठ्यः	तथा अश्रु गद्गद कण्ठसे
मथन उपलेप	(दही) मथते, (घर) लीपते,	एनं गायन्ति	इनकी लीला गाती हैं
प्रेङ्खेङ्खन	झूला झूलते	उरुक्रम	अनन्त पराक्रम (श्रीकृष्ण) का
अर्भरुदित	बच्चेके रोनेपर (उसे चुप कराते)	चित्तयानाः	अपने चित्तको वाहन बना देने वाली
उक्षण	उसे उबटन लगाते	व्रजस्त्रिय	वे व्रजकी स्त्रियां
मार्जन आदौ	झाड़ू लगाते आदि के समय	धन्या	धन्य हैं ॥१५॥
अनुरक्त धियः	आसक्त चित्तसे		

प्रातर्व्रजाद् व्रजत आवितश्च सायं
गोभिः समं क्वणयतोऽस्य निशम्य वेणुम्
निर्गम्य तूर्णमबलाः पथि भूरिपुण्याः
पश्यन्ति सस्मितमुखं सदयावलोकम् ॥१६॥

प्रातः व्रजात् व्रजत आविशतः च सायं गोभिः समं क्वणयतः अस्य निशम्य वेणुं निर्गम्य तूर्णं अबलाः पथि भूरिपुण्याः पश्यन्ति सस्मितमुखं सदय अवलोकम् ॥१६॥

गोभिः समं	गायोंके साथ	**अबलाः**	व्रजस्त्रियां
प्रातः व्रजात्	सवेरे व्रजसे	**तूर्णं पथि**	शीघ्र रास्तेपर
व्रजत	(वन) जाते समय	**निर्गम्य**	निकलकर
च सायं	तणा सायंकाल	**अस्य**	इनका
आविशतः	लौटकर आते हुए	**सदय अवलोकं**	दया दृष्टियुक्त
क्वणयतः	बजाते हुए	**सास्मितमुखं**	मुस्कराता श्रीमुख
वेणुं निशम्य	वंशी ध्वनि सुनकर	**पश्यन्ति**	देखती हैं ॥१६॥
भूरिपुण्याः	बहुत पुण्यवती		

एवं प्रभाषमाणासु स्त्रीषु योगेश्वरो हरिः ।
शत्रुं हन्तुं मनश्चक्रे भगवान् भरतर्षभ ॥१७॥

एवं प्रभाषमाणासु स्त्रीषु योगेश्वरः हरिः शत्रुं हन्तुं मनः चक्रे भगवान् भरत ऋषभ ॥१७॥

भरत ऋषभ	भरत-वंशमें श्रेष्ठ परीक्षित !	**भगवान्**	भगवान
		योगेश्वरः	योगेश्वर
एवं स्त्रीषु	इस प्रकार स्त्रियोंके	**हरिः**	श्रीहरिने
प्रभाषमाणासु	परस्पर चर्चा करते समय ही	**शत्रुं हन्तुं**	शत्रुको मार देनेका
		मनः चक्रे	मन किया ॥१७॥

सभयाः स्त्रीगिरः श्रुत्वा पुत्रस्नेहशुचाऽऽतुरौ ।
पितरायेन्वतप्यतां पुत्रयोरबुधौ बलम् ॥१८॥

सभयाः स्त्रीगिरः श्रुत्वा पुत्रस्नेह शुचा आतुरौ पितराः अनुतप्येतां पुत्रयोः अबुधौ बलम् ॥१८॥

सभयाः	भययुक्त	**पुत्रयोः बलं**	अपने पुत्रोंका बल
स्त्रीगिरः श्रुत्वा	स्त्रियोंकी बात सुनकर	**अबुधौ**	न जानने वाले
		पितराः	माता-पिता

पुत्रस्नेह	पुत्रके स्नेहसे	अनुतप्येतां	संतप्त होने लगे
शुचा आतुरौ	शोक व्याकुल		॥१८॥

तैस्तैर्नियुद्धविधिभिर्विविधैरच्युतेतरौ ।
युयुधाते यथान्योन्यं तथैव बलमुष्टिकौ ॥१९॥

तैः तैः नियुद्ध विधिभिः विविधैः अच्युत इतरौ युयुधाते यथा अन्यः अन्यं तथा एव बलमुष्टिकौ ॥१९॥

तैः तैः विविधैः	उन-उन अनेक प्रकारकी	यथा अन्यः अन्यं	जैसे परस्पर एक दूसरेसे
नियुद्धविधिभिः	कुश्तीकी विधियों (दाव-पेच) से	तथा एव	इसी प्रकार
अच्युत इतरौ	श्रीकृष्ण तथा दूसरा (चाणूर)	बलमुष्टिकौ	बलराम तथा मुष्टिक
		युयुधाते	मल्ल युद्ध करते रहे ॥१९॥

भगवद्गात्रनिष्पातैर्वज्रनिष्पेषनिष्ठुरैः ।
चाणूरो भज्यमानाङ्गो मुहुर्ग्लानिमवाप ह ॥२०॥

भगवत् गात्र निष्पातैः वज्र निष्पेष निष्ठुरैः चाणूरः भज्यमान अङ्गः मुहुः ग्लानिं अवाप ह ॥२०॥

वज्र निष्पेष	वज्रसे पीस देनेके समान	अङ्गः	अंगों वाला
निष्ठुरैः	कठोर	चाणूरःह	चाणूरतो
भगवत् गात्र	भगवानके शरीरकी	मुहुः ग्लानिं	बार-बार मूर्छित प्राय दशाको
निष्पातैः	टक्कराहटोंसे	अवाप	प्राप्त हुआ ॥२०॥
भज्यमान	टूटते से		

स श्येनवेग उत्पत्य मुष्टीकृत्य करावुभौ ।
भगवन्तं वासुदेवं क्रुद्धो वक्षस्यबाधत ॥२१॥

स श्येनवेग उत्पत्य मुष्टी कृत्य कराः उभौ भगवन्तं वासुदेवं क्रुद्धः वक्षसि अबाधत ॥२१॥

स क्रुद्धः	उसने क्रोधपूर्वक	**भगवन्तं**	भगवान्
श्येनवेग	बाजकी गतिसे	**वासुदेवं**	वासुदेवके
उत्पत्य	उछलकर	**वक्षसि**	छाती पर
उभौ कराः	दोनों हाथोंकी	**अबाधत**	चोट की ॥२१॥
मुष्टी कृत्य	मुट्ठी बांधकर		

नाचलत्तत्प्रहारेण मालाहत इव द्विपः ।
बाह्वोर्निगृह्य चाणूरं बहुशो भ्रामयन् हरिः ॥२२॥

न अचलत् तत् प्रहारेण मालाहत इव द्विपः बाह्वोः निगृह्य चाणूरं बहुशः भ्रामयन् हरिः ॥२२॥

तत् प्रहारेण	उस प्रहारसे	**हरिः**	(फिर) श्रीकृष्णने
मालाहत	मालासे मारे गये	**बाह्वोः निगृह्य**	दोनों हाथ पकड़कर
द्विपः इव	हाथीके समान	**चाणूरं बहुशा**	चाणूरको बहुत बार
अचलत् न	(श्रीकृष्ण) हिले भी नहीं	**भ्रामयन्**	घुमाया ॥२२॥

भूपृष्ठे पोथयामास तरसा क्षीणजीवितम् ।
विस्रस्ताकल्पकेशस्रगिन्द्रध्वज इवापतत् ॥२३॥

भूपृष्ठे पोथयामास तरसा क्षीण जीवितं विस्रस्त आकल्प केश स्रक् इन्द्रध्वज इव अपतत् ॥२३॥

तरसा	(घुमानेके) वेगसे	**विस्रस्त**	अस्तव्यस्त हो गई थी,
क्षीण जीवितं	जीवन क्षय हुए (मरे) को	**इन्द्रध्वज**	इन्द्रपूजाके लिए स्थापित बड़े झंडे
भूपृष्ठे	पृथ्वीके ऊपर	**इव अपतत्**	के समान गिर पड़ा ॥२३॥
पोथयामास	पटक दिया,		
आकल्प	(उसकी) वेश-भूषा		
केश स्रक्	केश और माला		

तथैव मुष्टिकः पूर्वं स्वमुष्ट्याभिहतेन वै ।
बलभद्रेण बलिना तलेनाभिहतो भृशम् ॥२४॥

तथा एव मुष्टिकः पूर्वं स्वमुष्ट्या अभिहतेन वै बलभद्रेण बलिना तलेन अभिहतः भृशम् ॥२४॥

तथा एव वै	इसीप्रकार निश्चय	बलिना	बलवान
पूर्वं मुष्टिकः	पहिले मुष्टिक द्वारा	बलभद्रेण	बलरामजी द्वारा
स्व मुष्ट्या	(उसके) अपने घूसे से	तलेन भृशं अभिहतः	थप्पड़की जोरकी मार पड़नेसे ॥२४॥
अभिहतेन	चोट खाये हुये		

प्रवेपितः स रुधिरमुद्वमन् मुखतोऽर्दितः ।
व्यसुः पपातोर्व्युपस्थे वाताहत इवाङ्घ्रिपः ॥२५॥

प्रवेपितः स रुधिरं उद्वमन् मुखतः अर्दितः व्यसुः पपात उर्वि उपस्थे वात आहत इव अंघ्रिप ॥२५॥

स प्रवेपितः	वह डगमगाकर	व्यसुः	निष्प्राण होकर
अर्दितः	घायल होकर	वात आहत	आँधीके मारे
मुखतः रुधिरं	मुखसे रक्त	अंघ्रिपः इव	वृक्षके समान
उद्वमन्	उगलता	पपात	गिरपड़ा ॥२५॥
उर्वि उपस्थे	पृथ्वीके ऊपर		

ततः कूटमनुप्राप्तं रामः प्रहरतां वरः ।
अवधील्लीलया राजन् सावज्ञं वाम मुष्टिना ॥२६॥

ततः कूटं अनुप्राप्तं रामः प्रहरतां वरः अवधत् लीलया राजन् स अवज्ञं वाम् मुष्टिना ॥२६॥

राजन्	राजन् !	कूटं	कूटको
ततः अनुप्राप्तं	फिर उसके पीछे आये	प्रहरतां वरः	प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ

रामः	बलरामजीने	वाम मुष्टिना	बायें घूसेसे
लीलया	खेलमें	अवधत्	मार दिया ॥२६॥
स अवज्ञं	उपेक्षा पूर्वक		

तर्ह्येव हि शलः कृष्णपदापहतशीर्षकः ।
द्विधा विदीर्णस्तोशलक उभावपि निपेततुः ॥२७॥

तर्हि एव हि शलः कृष्णपदा अपहत शीर्षकः द्विधा विदीर्णः तोशलक उभाः अपि निपेततुः ॥२७॥

तर्हि एव हि	उस समय ही	द्विधा विदीर्णः	चीरकर दो टुकड़े किया गया
कृष्णपदा	श्रीकृष्णके पैर (कीठोकर) से	तोशलक	तोशल
अपहत शीर्षकः	सिर फटजानेसे	उभाः अपि	दोनों ही
शलः	शल और	निपेततुः	गिर पड़े ॥२७॥

चाणूरे मुष्टिके कूटे शले तोशलके हते ।
शेषाः प्रदुद्रुवुर्मल्लाः सर्वे प्राणपरीप्सवः ॥२८॥

चाणूरे मुष्टिके कूटे शले तोशलके हते शेषाः प्रदुद्रुवुः मल्लाः सर्वे प्राण परीप्सवः ॥२८॥

चाणूरे मुष्टिके	चाणूर, मुष्टिक,	शेषाः	बचे हुए
कूटे शले	कूट, शल,	सर्वे मल्लाः	सब पहलवान
तोशलके हते	तोशलके मारे-जाने पर	प्रदुद्रुवुः	भाग खड़े हुए ॥२८॥
प्राण परीप्सवः	प्राण-रक्षा चाहने वाले		

गोपान् वयस्यानाकृष्य तैः संसृज्य विजह्रतुः ।
वाद्यमानेषु तूर्येषु वल्गन्तौ रुतनूपुरौ ॥२९॥

गोपान् वयस्यान आकृष्य तैः संसृज्य विजह्रतुः वाद्यमानेषु तूर्येषु वल्गन्तौ रुतनूपुरौ ॥२९॥

वयस्यान	समवयस्क	**तूर्येषु**	तुरहियोंके साथ
गोपान्	गोप-बालकोंकी	**रुतनूपुरौ**	नूपुरोंकी झंकार
आकृष्य	खींचकर	**संसृज्य**	मिलाकर
तैः	उनके साथ	**विजह्रतुः**	(कुश्तीका खेल) खेलने लगे ॥२९॥
वल्गन्तौ	उछलते हुए		
वाद्यमानेषु	बजती हुई		

जनाः प्रजहृषुः सर्वे कर्मणा रामकृष्णयोः ।
ऋते कंसं विप्रमुख्याः साधवः साधुसाध्विति ॥३०॥

जनाः प्रजहृषुः सर्वे कर्मणा रामकृष्णयोः ऋते कंसं विप्रमुख्याः साधवः साधु साधु इति ॥३०॥

ऋते कंसं	कंसको छोड़कर	**रामकृष्णयोः**	बलराम-श्रीकृष्णके
विप्रमुख्याः	जिनमें ब्राह्मण प्रमुख थे	**कर्मणा**	कर्मसे
		साधु साधु	'धन्य है, धन्य है'
सर्वे साधवः	सब सत्पुरुष	**इति प्रजहृषुः**	ऐसा कहते बहुत प्रसन्न हुए ॥३०॥
जनाः	लोग		

हतेषु मल्लवर्येषु विद्रुतेषु च भोजराट् ।
न्यवारयत् स्वतूर्याणि वाक्यं चेदमुवाच ह ॥३१॥

हतेषु मल्लवर्येषु विद्रुतेषु च भोजराट् न्यवारयत् स्वतूर्याणि वाक्यं च इदं उवाच ह ॥३१॥

मल्लवर्येषु	श्रेष्ठ पहलवानोंके	**न्यवारयत्**	(बजानेसे) रोक दिया
हतेषु	मारेजाने पर		
च विद्रुतेषु	अथवा भाग जाने पर	**च ह इदं वाक्यं**	तथा निश्चय यह बात भी
भोजराट्	भोजराज कंसने	**उवाच**	बोला ॥३१॥
स्वतूर्याणि	अपनी तुरहियोंको		

निःसारयत दुर्वृत्तौ वसुदेवात्मजौ पुरात् ।
धनं हरत गोपानां नन्दं बध्नीत दुर्मतिम् ॥३२॥

निःसारयत दुर्वृत्तौ वसुदेव आत्मजौ पुरात् धनं हरत गोपानां नन्दं बध्नीत दुर्मतिम् ॥३०॥

दुर्वृत्तौ	दुश्चरित्र	गोपानां	गोपोंका
वसुदेव	वसुदेवके (इन)	धनं हरत	सब धन छीन लो,
आत्मजौ	पुत्रोंको	दुर्मति नन्दं	दुर्बुद्धि नन्दको
पुरात्	नगरसे	बध्नीत	बन्दी कर लो ॥३२॥
निःसारयत	निकाल दो,		

वसुदेवस्तु दुर्मेधा हन्यतामाश्वसत्तमः ।
उग्रसेनः पिता चापि सानुगः परपक्षगः ॥३३॥

वसुदेवः तु दुर्मेधा हन्यतां आशु असत्तमः उग्रसेनः पिता च अपि स अनुगः परपक्षगः ॥३३॥

असत्तमः	अत्यन्त दुष्ट	अपि	को भी
दुर्मेधा	दुर्बुद्धि	स अनुगः	उनके अनुचरोंके साथ
वसुदेवः तु	वसुदेवको तो	आशु हन्यतां	शीघ्र मार दो' ॥३३॥
च परपक्षगः	तथा शत्रुपक्षमें गये (मिले)		
पिता उग्रसेनः	मेरे पिता उग्रसेन		

एवं विकत्थमाने वै कंसे प्रकुपितोऽव्ययः ।
लघिम्नोत्पत्य तरसा मञ्चमुत्तुङ्गमारुहत् ॥३४॥

एवं विकत्थमाने वै कंसे प्रकुपितः अव्ययः लघिम्नः उत्पत्य तरसा मञ्चं उत्तुङ्गम् आरुहत् ॥३४॥

वै एवं	निश्चय इस प्रकार	कंसे	कंसपर
विकत्थमाने	बकवाद करते	अव्ययः	अविनाशी श्रीकृष्ण

प्रकुपितः	अत्यन्त कुपित होकर	उत्तुङ्गम मञ्चं	उसके बहुत ऊँचे मंचपर
तरसा लधिम्नः	वेगसे फुर्तीसे	आरुहत	चढ़गये ।।३४।।
उन्त्पत्य	कूदकर		

तमाविशन्तमालोक्य मृत्युमात्मन आसनात् ।
मनस्वी सहसोत्थाय जगृहे सोऽसिचर्मणी ।।३५।।

तं आविशन्तं आलोक्य मृत्युं आत्मन आसनात् मनस्वी सहसा उत्थाय जगृहे सः असि चर्मणी ।।३५।।

सः मनस्वी	उस साहसीने	सहसा	झटपट
तं आत्मन मृत्युं	उन अपनी मृत्यु रूप (श्रीकृष्ण)को	आसनात्	आसनसे
		उत्थाय	उठकर
आविशन्तं	सम्मुख आया	असि चर्मणि	तलवार-ढाल
आलोक्य	देखकर	जगृहे	उठा ली ।।३५।।

तं खड्गपाणिं विचरन्तमाशु
श्येनं यथा दक्षिणसव्यमम्बरे ।
समग्रहीद् दुर्विषहोग्रतेजा
यथोरगं तार्क्ष्यसुतः प्रसह्य ।।३६।।

तं खड्ग पाणिं विचरन्तं आशु श्येनं यथा दक्षिण सव्यं अम्बरे सम अग्रहीत् दुर्विषह उग्रतेजा यथा उरगं तार्क्ष्यसुतः प्रसह्य ।।३६।।

तं खड्ग पाणिं	उसे हाथमें तलवार लेकर	दक्षिण सव्यं	दाहिने-बायें (पैंतरा लेकर)
यथा अम्बरे	जैसे आकाशमें	आशु विचरन्तं	वेगसे घूमते हुए
श्येनं	बाज हो	यथा उग्रतेजा	जैसे उग्रतेज वाले

तार्क्ष्यसुतः	तार्क्ष्य-नन्दन गरुड़	सम् अग्रहीत्	भली प्रकार पकड़
उरगं	सर्पको (पकड़े)		लिया ॥३६॥
प्रसह्य	बलपूर्वक		

प्रगृह्य केशेषु चलत्किरीटं
निपात्य रङ्गोपरि तुङ्गमञ्चात् ।
तस्योपरिष्टात् स्वयमब्जनाभः
पपात् विश्वाश्रय आत्मतन्त्रः ॥३७॥

प्रगृह्य केशेषु चलत् किरीटं निपात्य रङ्ग उपरि तुङ्गमञ्चात् तस्य उपरिष्टात् स्वयं अब्जनाभः पपात् विश्व आश्रय आत्मतन्त्रः ॥३७॥

केशेषु प्रगृह्य	बाल पकड़कर	विश्व आश्रय	विश्वाधार
चलत् किरीटं	मुकुट गिरते हुएको	आत्मतन्त्रः	परम स्वतन्त्र
तुङ्गमञ्चात्	ऊँचे मञ्चसे	अब्जनाभः	कमलनाभ भगवान
रङ्ग उपरि	अखाड़ेके ऊपर	स्वयं पपात्	स्वयं कूद पड़े
निपात्य	पटककर		॥३७॥
तस्य उपरिष्टात्	उसके ऊपर		

तं सम्परेतं विचकर्ष भूमौ
हरिर्यथेभं जगतो विपश्यतः ।
हाहेति शब्दः सुमहांस्तदाभू-
दुदीरितः सर्वजनैर्नरेन्द्र ॥३८॥

तं सम्परेतं विचकर्ष भूमौ हरिः यथा इभं जगतः विपश्यतः हा हा इति शब्दः सुमहान् तदा अभूत् उदीरितः सर्वजनैः नरेन्द्र ॥३८॥

नरेन्द्र	महाराज !	जगतः	संसार (सब) के
सम्परेतं तं	मरे हुए उसको	विपश्यतः	देखते हुए
यथा इभं हरिः	जैसे हाथीको सिंह (घसीटे)	भूमौ विचकर्ष	पृथ्वीपर घसीटने लगे,

तदा सर्वजनैः	उस समय सब लोगोंके द्वारा	**हा हा इति**	'हाय ! हाय !' इस प्रकारका
उदीरितः	उच्च स्वरमें बोला गया	**सुमहान्**	बहुत बड़ा
		शब्दः अभूत्	शब्द हुआ ॥३८॥

स नित्यदोद्विग्नधिया तमीश्वरं
पिबन् वदन् वा विचरन् स्वपञ्छ्वसन् ।
ददर्श चक्रायुधमग्रतो यत-
स्तदेव रूपं दुरवापमाप ॥३९॥

स नित्यता उद्विग्नधिया तं ईश्वरं पिबन् वदन् वा विचरन् स्वपन् श्वसन् ददर्श चक्र आयुधं अग्रतः यतः तत् एव रूपं दुरवापं आप ॥३९॥

स नित्यदा	वह सर्वदा	**चक्र आयुधं**	चक्र आयुध लिए
उद्विग्नधिया	उद्विग्न चित्त	**अग्रतः ददर्श**	अपने सामने ही देखता था
पिबन् वदन्	पीते, बोलते,	**तत् एव दुरवापं**	उसी दुष्प्राप्य
विचरन्	चलते	**रूपं आप**	रूपको प्राप्त हुआ ॥३९॥
वा स्वपन्	अथवा सोते,		
श्वसन्	श्वास लेते हुए,		
यतः तं ईश्वरं	क्योंकि उन्हीं परमेश्वरको		

तस्यानुजा भ्रातरोऽष्टौ कङ्कन्यग्रोधकादयः ।
अभ्यधावन्नभिक्रुद्धा भ्रातुर्निर्वेशकारिणः ॥४०॥

तस्य अनुजा भ्रातरः अष्टौ कङ्कन्यग्रोधक आदयः अभि अधावन् अभि क्रुद्धा भ्रातुः निर्वेश कारिणः ॥४०॥

तस्य अष्टौ	उसके आठो	**आदयः**	आदि
अनुजा भ्रातरः	छोटे भाई	**अभिक्रुद्धाः**	अत्यन्त कुपित होकर
कङ्कन्यग्रोधक	कङ्क, न्यग्रोध,		

भ्रातुः निर्वेश कारिणः	भाईका बदला लेनेके लिए	अभि अधावन्	श्रीकृष्णकी ओर दौड़े ॥४०॥

तथातिरभसांस्तांस्तु संयत्तान् रोहिणीसुतः ।
अहन् परिघमुद्यम्य पशूनिव मृगाधिपः ॥४१॥

तथा अति रभसान् तान् तु संयत्तान् रोहिणीसुतः अहन् परिघं उद्यम्य पशून् इव मृग अधिपः ॥४१॥

तथा	इस प्रकार	परिघं उद्यम्य	(हाथी दाँतका वही) डंडा उठाकर
संयत्तान्	तैयार होकर	पशून्	पशुओंको
अति रभसान्	बहुत वेग वाले	मृग अधिपः इव	मृगराजके समान
तान् तु	उन्हें तो	अहन्	मार दिया ॥४१॥
रोहिणीसुतः	रोहिणी-नन्दन बलरामजीने		

नेदुर्दुन्दुभयो व्योम्नि ब्रह्मेशाद्या विभूतयः ।
पुष्पैः किरन्तस्तं प्रीताः शशंसुर्ननृतुः स्त्रियः ॥४२॥

नेदुः दुन्दुभयः व्योम्नि ब्रह्म ईश आद्याः विभूतयः पुष्पैः किरन्तः तं प्रीताः शशंसुः ननृतुः स्त्रियः ॥४२॥

व्योम्नि	आकाशमें	पुष्पैः किरन्तः	पुष्प वर्षा करते हुए
दुन्दुभयः नेदुः	दुन्दुभियां बजने लगीं,	शशंसुः	प्रशंसा करने लगे
ब्रह्म ईश आद्याः	ब्रह्मा शिव आदि	स्त्रियः ननृतुः	देव-स्त्रियां नाचने लगीं ॥४२॥
विभूतयः	(भगवानकी) विभूतियां		

तेषां स्त्रियो महाराज सुहृन्मरणदुःखिताः ।
तत्राभीयुर्विनिघ्नन्त्यः शीर्षण्यश्रुविलोचनाः ॥४३॥

तेषां स्त्रियः महाराज सुहृत् मरण दुःखिताः तत्र अभीयुः विनिघ्ननन्त्यः शीर्षाणि अश्रु विलोचनाः ॥४३॥

महाराज	महाराज !	दुःखिताः	दुःखी होकर
तेषां स्त्रियः	उन (कंसादि)की स्त्रियां	शीर्षाणि	सिरको
		विनिघ्नन्त्यः	पीटती हुई
सुहृत् मरण	अपने प्रिय सम्बन्धी की मृत्युसे	अश्रु विलोचनाः	नेत्रोंसे आंसू बहाती
		तत्र अभीयुः	वहां आयीं ॥४३॥

शयानान् वीरशय्यायां पतीनालिङ्ग्य शोचतीः ।
विलेपुः सुस्वरं नार्यो विसृजन्त्यो मुहुः शुचः ॥४४॥

शयानान् वीरशय्यायां पतीन् आलिङ्ग्य शोचतीः विलेपुः सुस्वरं नार्यः विसृजन्त्यः मुहुः शुचः ॥४४॥

वीरशय्यायां	वीर-शय्या (युद्ध-स्थली)में	नार्यः	स्त्रियां
		मुहुः शुचः	बार-बार आंसू
शयानान्	सोये हुए	विसृजन्त्यः	बहाती हुई
पतीन् आलिंग्य	पतियोंका आलिंगन करके	सुस्वरं विलेपुः	उच्च स्वरसे विलाप करने लगीं ॥४४॥
शोचतीः	शोक करती हुई		

॥नार्य उवाच॥*

हा नाथ प्रिय धर्मज्ञ करुणानाथवत्सल ।
त्वया हतेन निहता वयं ते सगृहप्रजाः ॥४५॥

हा नाथ प्रिय धर्मज्ञ करुण अनाथवत्सल त्वया हतेन निहता वयं ते सगृह प्रजाः ॥४५॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

हा नाथ	हा स्वामी
प्रिय धर्मज्ञ	प्रिय ! धर्मज्ञ !
करुण	दयालु !
अनाथवत्सल	अनाथ वत्सल !
त्वया हतेन	आपके मारे-जानेसे
सगृह प्रजाः	घर और सन्तानके साथ
वयं निहता	हम सब मारी गयीं ॥४५॥

त्वया विरहिता पत्या पुरीयं पुरुषर्षभ ।
न शोभते वयमिव निवृत्तोत्सवमङ्गला ॥४६॥

त्वया विरहिता पत्या पुरी अयं पुरुषर्षभ न शोभते वयं इव निवृत्त उत्सवमङ्गला ॥४६॥

त्वया पत्या	आप स्वामीसे
विरहिता	रहित होकर
पुरुषर्षभ	पुरुषश्रेष्ठ !
अयं पुरी	यह नगरी
वयं इव	हमारी भांति
उत्सवमङ्गला	मंगलोत्सवोंके
निवृत्त	बन्द हो जानेसे
शोभते न	शोभित नहीं होती ॥४६॥

अनागसां त्वं भूतानां कृतवान् द्रोहमुल्बणम् ।
तेनेमां भो दशां नीतो भूतध्रुक् को लभते शम् ॥४७॥

अनागसां त्वं भूतानां कृतवान् द्रोहं उल्बणं तेन इमां भो दशां नीतः भूतध्रुक् कः लभते शम् ॥४७॥

भो त्वं	हे (स्वामी) आपने
अनागसां	निरपराध
भूतानां	प्राणियोंसे
उल्बणं द्रोहं	घोर द्रोह
कृतवान्	करलिया था
तेन इमां दशां	उसीके द्वारा इस दशाको
नीतः	पहुँचाये गये
भूतध्रुक्	प्राणियोंसे द्रोह करने वाला
कः शं लभेत	कौन शक्ति पा सकता है ॥४७॥

सर्वेषामिह भूतानामेष हि प्रभवाप्ययः ।
गोप्ता च तदवध्यायी न क्वचित् सुखमेधते ॥४८॥

सर्वेषां इह भूतानां एष हि प्रभव अप्ययः गोप्ता च तत् अवध्यायी न क्वचित् सुखं एधते ॥४८॥

इह सर्वेषां	इस संसारमें सभी	तत् अवध्यायी	उनकी अवज्ञा सोचने वाला
भूतानां	प्राणियोंकी	क्वचित् सुखं	कभी सुखसे
प्रभव अप्ययः	उत्पत्ति-विनाश करने वाले	न एधते	नहीं बढ़ (रह) पाता ॥४८॥
च गोप्ता	तथा रक्षक		
हि एष	क्योंकि ये (श्रीकृष्ण ही) है		

श्रीशुक उवाच

राजयोषित आश्वास्य भगवांल्लोकभावनः ।
यामाहुर्लौकिकीं संस्थां हतानां समकारयत् ॥४९॥

राजयोषित आश्वास्य भगवान् लोकभावनः यां आहुः लौकिकीं संस्थां हतानां समकारयत् ॥४९॥

लोकभावनः	लोकरक्षक	यां लौकिकीं	जिसे लोकमें
भगवान्	भगवानने	संस्थां	अन्त्येष्टि
राजयोषित	रानियोंको	आहुः	कहा गया है
आश्वास्य	आश्वासन देकर	समकारयत्	उसे भली प्रकार करवाया ॥४९॥
हतानां	मारे हुओंका		

मातरं पितरं चैव मोचयित्वाथ बन्धनात् ।
कृष्णरामौ ववन्दाते शिरसाऽऽस्पृश्य पादयोः ॥५०॥

मातरं पितरं च एव मोचययित्वा अथ बन्धनात् कृष्णरामौ ववन्दाते शिरसा आस्पृश्य पादयोः ॥५०॥

अथ मातरं च	फिर माता और	कृष्णरामौ	श्रीकृष्ण-बलरामने
पितरं	पिताको	शिरसा पादयोः	सिरसे उनके चरण
बन्धनात्	बन्धनसे	आस्पृश्य	स्पर्श करके
मोचयित्वा	छुड़ाकर	ववन्दाते	वन्दना की ॥५०॥

देवकी वसुदेवश्च विज्ञाय जगदीश्वरौ ।
कृतसंवन्दनौ पुत्रौ सस्वजाते न शङ्कितौ ॥५१॥

देवकी वसुदेवः च विज्ञाय जगदीश्वरौ कृत संवन्दनौ पुत्रौ सस्वजाते न शङ्कितौ ॥५१॥

देवकी च	देवकी तथा	संवन्दनौ	प्रणाम
वसुदेवः	वसुदेवने	कृत	करनेपर भी
जगदीश्वरौ	जगदीश्वर	शङ्कितौ	शंका हो जानेसे
विज्ञाय	जानकर	सस्वजाते न	हृदयसे नहीं लगाया
पुत्रौ	पुत्रोंके		॥५१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे कंसवधो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥५१॥

अथ पंचचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

पितरावुपलब्धार्थौ विदित्वा पुरुषोत्तमः ।
मा भूदिति निजां मायां ततान जनमोहिनीम् ॥ १ ॥

पितरः उपलब्ध अर्थौ विदित्वा पुरुषोत्तमः मा भूत् इति निजां मायां ततान जनमोहिनीम् ॥१॥

पितरः	माता-पिता (मेरे)	**इति मा भूत्**	ऐसा न होवे (यह सोचकर)
अर्थौ	परमार्थ स्वरूपको		
उपलब्ध	जान गये हैं	**जनमोहिनीं**	भक्तोंको मोहित करने वाली*
पुरुषोत्तमः	पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ने	**मायां ततान**	माया फैलायी ॥१॥
विदित्वा	यह जानकर		

उवाच पितरावेत्य साग्रजः सात्वतर्षभः ।
प्रश्रयावनतः प्रोणन्नम्ब तातेति सादरम् ॥ २ ॥

उवाच पितराः एत्य स अग्रजः सात्वत ऋषभः प्रश्रय अवनतः प्रीणन् अम्ब तात इति सादरम् ॥२॥

स अग्रजः	बड़े भाईके साथ	**सात्वत ऋषभः**	सात्वत-वंशमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण
पितराः एत्य	माता-पिताके पास आकर	**प्रश्रय अवनतः**	विनम्रतासे झुककर

---

* वैष्णवाचार्य तीन प्रकारकी माया मानते हैं ।
१—सामान्य या विमुखजन मोहिनी । संसार में भटकाने वाली ।
२—स्वजन (भक्तजन) मोहिनी । लीला-सहायिका ।
३—स्व (स्वयं श्रीकृष्णको) मोहनी । श्रीराधा ।

प्रीणन्	प्रसन्न करते हुए		पूर्वक सम्बोधन
अम्ब तात	'मां ! पिताजी'		करके
इति सादरं	इस प्रकार आदर	**उवाच**	बोले ॥२॥

श्रीभगवानुवाच*

नास्मत्तो युवयोस्तात नित्योत्कण्ठितयोरपि ।
बाल्यपौगण्डकैशोराः पुत्राभ्यामभवन् क्वचित् ॥ ३ ॥

न अस्मत्तः युवयोः तात नित्य उत्कण्ठितयोः अपि बाल्य पौगण्ड कैशोराः पुत्राभ्यां अभवन् क्वचित् ॥३॥

तात युवयोः	पिताजी ! आप दोनोंके	**बाल्य पौगण्ड कैशोराः**	शैशव, पौगण्ड और किशोरावस्थाका सुख
नित्य	सदा		
उत्कण्ठितयोः	समुत्सुक रहने	**क्वचित् न**	कभी नहीं
अपि	पर भी	**अभवन्**	हुआ ॥३॥
अस्मत्तः	हम दोनों पुत्रोंके		
पुत्राभ्यां	द्वारा (हमारी)		

न लब्धो दैवहतयोर्वासो नौ भवदन्तिके ।
यां बालाः पितृगेहस्था विन्दन्ते लालिता मुदम् ॥ ४ ॥

न लब्धः दैवहतयोः वासः नौ भवत् अन्तिके यां बालाः पितृगेहस्था विन्दन्ते लालिता मुदम् ॥४॥

दैवहतयोः	दैवके मारे	**बालाः लालिता**	बालक लाड़-प्यार का
नौ भवत्	हम दोनों आपके		
अन्तिके	समीप	**यां मुदं**	जो आनन्द
वासः	निवास तथा	**विन्दन्ते**	पाते हैं
पितृगेहस्था	पिताके घर रहने वाले	**न लब्धः**	(हमने) नहीं पाया ॥४॥

* यह उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

सर्वार्थसम्भवो देहो जनितः पोषितो यतः ।
न तयोर्याति निर्वेशं पित्रोर्मर्त्यः शतायुषा ।। ५ ।।

सर्व अर्थ सम्भवः देहः जनितः पोषितः यतः न तयोः याति निर्वेशं पित्रोः मर्त्यः शत आयुषा ।।५।।

सर्व अर्थ	समस्त पुरुषार्थोंको	**मर्त्यः शत**	मनुष्य अपनी सौ
सम्भवः देहः	उत्पन्न करने वाला शरीर	**आयुषा**	वर्षकी आयुमें भी
		तयोः याति	उन माता-पिताका
यतः जनितः	जिनसे उत्पन्न हुआ और	**निर्वेशं**	बदला
		न याति	नहीं दे पाता ।।५।।
पोषितः	पालन किया गया		

यस्तयोरात्मजः कल्प आत्मना च धनेन च ।
वृत्तिं न दद्यात्तं प्रेत्य स्वमांसं खादयन्ति हि ।। ६ ।।

यः तयोः आत्मजः कल्प आत्मना च धनेन च वृत्तिं न दद्यात् तं प्रेत्य स्वमासं खादयन्ति हि ।।६।।

यः आत्मजः	जो पुत्र	**न दद्यात्**	नहीं देता
कल्प	समर्थ होकर	**तं प्रेत्य**	उसे मरनेपर
आत्मना	अपने शरीरसे	**हि स्वमांसं**	निश्चय (यमदूत) उसीका मांस
च धनेन च	तथा धनसे भी		
तयोः वृत्तिं	उनको जीविका	**खादयन्ति**	खिलाते हैं ।।६।।

मातरं पितरं वृद्धं भार्यां साध्वीं सुतं शिशुम् ।
गुरुं विप्रं प्रपन्नं च कल्पोऽबिभ्रच्छ्वसन् मृतः ।। ७ ।।

मातरं पितरं वृद्धं भार्यां साध्वीं सुतं शिशुं गुरुं विप्रं प्रपन्नं च कल्पः अबिभ्रन् श्वसन् मृतः ।।७।।

वृद्धं मातरं पितरं	बूढ़े माता-पिताको	**शिशुं सुतं**	शिशु पुत्रको
साध्वीं भार्यां	सती पत्नीको	**गुरुं विप्रं**	गुरु, ब्राह्मण

च प्रपन्नं	तथा शरणागतको	श्वसन् मृतः	श्वास लेता हुआभी मरेके समान है
कल्पः	समर्थ होने पर भी		
अबिभ्रत्	पालन न करने वाला		

तन्नावकल्पयोः कंसान्नित्यमुद्विग्नचेतसोः ।
मोघमेते व्यतिक्रान्ता दिवसा वामनर्चतोः ॥ ८ ॥

तत् नः अकल्पयोः कंसात् नित्यं उद्विग्न चेतसोः मोघं एते व्यतिक्रान्ता दिवसा वां अनर्चतोः ॥८॥

तत् नः	सो हम	एते दिवसा	इतने दिन
अकल्पयोः	असमर्थों	वां अनर्चतोः	आप दोनोंकी सेवा किए बिना
कंसात्	कंससे	मोघं व्यतिक्रान्ता	व्यर्थ बीत गये
नित्यं उद्विग्न	सदा उद्विग्न		॥८॥
चेतसोः	चित्त वालोंका		

श्रीशुक उवाच

तत् क्षन्तुमर्हथस्तात मातर्नौ परतन्त्रयोः ।
अकुर्वतोर्वां शुश्रूषां क्लिष्टयोर्दुर्हृदा भृशम् ॥ ९ ॥

तत् क्षन्तुं अर्हथः तात मातः नौ परतन्त्रयोः अकुर्वतोः वां शुश्रूषां क्लिष्टयोः दुर्हृदा भृशम् ॥९॥

तात मातः	पिताजी ! माताजी	क्लिष्टयोः	कष्ट पाते हुए
तत् क्षन्तु अर्हथः	इसलिए (आपको हमें) क्षमाकर देना चाहिए	वां शुश्रूषां	आप दोनोंकी सेवा
		नौ परतन्त्रयोः	हम परतन्त्रोंसे
		अकुर्वतोः	नहीं की जा सकी ॥९॥
दुर्हृदा भृशं	दुष्ट चित्त (कंस) के द्वारा अत्यन्त		

इति मायामनुष्यस्य हरेर्विश्वात्मनो गिरा ।
मोहितावङ्कमारोप्य परिष्वज्यापतुर्मुदम् ॥१०॥

इति मायामनुष्यस्य हरेः विश्वात्मनः गिरा मोहिताः अङ्कं आरोप्य परिष्वज्य आपतुः मुदम् ॥१०॥

इति	इस प्रकार	**अङ्कं आरोप्य**	(उनको) गोदमें बैठाकर
मायामनुष्यस्य	मायासे मनुष्य बने	**परिष्वज्य**	आलिंगन करके
विश्वात्मनः	विश्वात्मा	**मुदं आपतुः**	(उन दोनोंने) बड़ा आनन्द पाया ॥१०॥
हरेः गिरा	श्रीहरिकी वाणीसे		
मोहिताः	मोहित होकर		

सिञ्चन्तावश्रुधाराभिः स्नेहपाशेन चावृतौ ।
न किञ्चिदूचतू राजन् बाष्पकण्ठौ विमोहितौ ॥११॥

सिञ्चन्ताः अश्रुधाराभिः स्नेहपाशेन च आवृतौ न किञ्चित् ऊचतू राजन् बाष्पकण्ठौ विमोहितौ ॥११॥

राजन्	राजन् !	**सिञ्चन्ताः**	उनको भिगाते हुए
स्नेहपाशेन च	स्नेहके पाशमे	**बाष्पकण्ठौ**	आंसूसे गला भर जानेसे
आवृतौ	भली प्रकार बँधकर	**किञ्चित्**	कुछ भी
विमोहितौ	अत्यन्त मोहित होकर	**न ऊचतू**	नहीं बोले ॥११॥
अश्रुधाराभिः	आंसूकी धारासे		

एवमाश्वास्य पितरौ भगवान् देवकीसुतः ।
मातामहं तूग्रसेनं यदूनामकरोन्नृपम् ॥१२॥

एवं आश्वास्य पितरौ भगवान् देवकीसुतः मातामहं तु उग्रसेनं यदूनां अकरोत् नृपम् ॥१२॥

भगवान्	भगवान	**मातामहं**	अपने नाना
देवकीसुतः	देवकी-नन्दनने	**उग्रसेनं तु**	उग्रसेनको तो
एवं पितरौ	इस प्रकार माता-पिताको	**यदूनां नृप**	यदुवंशियोंका नरेश
आश्वास्य	समझाकर	**अकरोत्**	बना दिया ॥१२॥

आह चास्मान् महाराज प्रजाश्चाज्ञप्तुमर्हसि ।
ययातिशापाद् यदुभिर्नासितव्यं नृपासने ॥१३॥

आह च अस्मान् महाराज प्रजाः च आज्ञप्तुं अर्हसि ययाति शापात् यदुभिः न आसितव्यं नृप आसने ॥१३॥

आह च	कहा भी	**ययाति शापात्**	यायातिके शापसे
महाराज	'महाराज !	**यदुभिः**	यदुवंशियोंको
अस्मान् प्रजाः	हम प्रजाजनोंको	**नृप आसने**	राजसिंहासनपर
च	भी	**न आसितव्यं**	नहीं बैठना चाहिए
आज्ञप्तुं अर्हसि	आपको आज्ञा देना चाहिए, क्योंकि		॥१३॥*

मयि भृत्य उपासीने भवतो विबुधादयः ।
बलिं हरन्त्यवनताः किमुतान्ये नराधिपाः ॥१४॥

मयि भृत्य उप आसीने भवतः विबुध आदयः बलिं हरन्ति अवनताः किं उत अन्ये नराधिपाः ॥१४॥

भवतः मयि भृत्य	आपके सेवक मेरे	**बलिं हरन्ति**	उपहार देंगे
उप आसीने	समीप बैठनेपर	**उत अन्ये**	फिर दूसरे
विबुध आदयः	देवतादि भी	**नराधिपाः किं**	राजाओंकी तो
अवनताः	झुककर		बात ही क्या ॥१४॥

सर्वान् स्वाञ्ज्ञातिसम्बन्धान् दिग्भ्यः कंसभयागतान् ।
यदुवृष्ण्यन्धकमधुदाशार्हकुकुरादिकान् ॥१५॥

सर्वान् स्वज्ञाति सम्बन्धान् दिक्भ्यः कंस भयात् गतान् यदुवृष्णि अन्धक मधुदाशार्ह कुकुर आदिकान् ॥१५॥

---

*महाराज उग्रसेन भी यदुवंशी ही हैं, किन्तु उनके पूर्व पुरुषोंने यह मर्यादा नहीं मानी तो वे इसके अपवाद हो गये ।

कंस भयात्	कंसके डरसे
दिक्भ्यः गतान्	अनेक दिशाओंमें चले गये
सर्वान्	सब
स्वज्ञाति	अपनी जातिके
सम्बन्धान्	सम्बन्धियों
यदुवृष्णि अन्धक	यादव, वृष्णि, अन्धक
मधुदाशार्ह	मधु, दाशार्ह,
कुकुर आदिकान्	कुकुर आदि वंश के लोगोंको ॥१५॥

सभाजितान् समाश्वास्य विदेशावासकर्शितान् ।
न्यवासयत् स्वगेहेषु वित्तैः संतर्प्य विश्वकृत् ॥१६॥

सभाजितान् सम आश्वास्य विदेश आवास कर्शितान् न्यवासयत् स्वगेहेषु वित्तैः संतर्प्य विश्वकृत् ॥१६॥

विदेश आवास	विदेशमें रहनेसे
कर्शितान्	दुःखी लोगोंको
सम आश्वास्य	भली प्रकार आश्वासन देकर
सभाजितान्	आदर देकर
वित्तैःसन्तर्प्य	धनसे सन्तुष्ट करके
विश्वकृत्	विश्वकर्ता श्रीकृष्ण ने
स्वगेहेषु	उनके अपने घरोंमें
न्यवासयत्	बसाया ॥१६॥

कृष्णसंकर्षणभुजैर्गुप्ता लब्धमनोरथाः ।
गृहेषु रेमिरे सिद्धाः कृष्णरामगतज्वराः ॥१७॥

कृष्णसङ्कर्षण भुजैः गुप्ता लब्ध मनोरथाः गृहेषु रेमिरे सिद्धाः कृष्णराम गतज्वराः ॥१७॥

कृष्ण सङ्कर्षण	श्रीकृष्ण-बलरामकी
भुजैः गुप्ता	भुजाओंसे रक्षित
गृहेषु	घरोंमें
कृष्णराम	श्रीकृष्ण-बलराम द्वारा
लब्ध मनोरथाः	सब अभिलाषाएं प्राप्त करके
गतज्वराः	निश्चिन्त होकर
सिद्धाः रेमिरे	सफल मनोरथ बिहार करने लगे ॥१७॥

वीक्षन्तोऽहरहः प्रीता मुकुन्दवदनाम्बुजम् ।
नित्यं प्रमुदितं श्रीमत् सदयस्मितवीक्षणम् ॥१८॥

वीक्षन्तः अहः अहः प्रीता मुकुन्द वदनाम्बुजं नित्यं प्रमुदितं श्रीमत् सदय स्मित वीक्षणम् ॥१८॥

सदय स्मित	दयापूर्ण मुसकानसे युक्त	मुकुन्द	मुकुन्दके
		वदनाम्बुजं	मुख-कमलको
वीक्षणं	दृष्टि वाले	अहः अहः	प्रतिदिना
नित्यं प्रमुदितं	नित्य प्रसन्न	वीक्षन्तः प्रीता	देखते हुए आनन्दित ॥१८॥
श्रीमत्	शोभासम्पन्न		

तत्र प्रवयसोऽप्यासन् युवानोऽतिबलौजसः ।
पिबन्तोऽक्षैर्मुकुन्दस्य मुखाम्बुजसुधां मुहुः ॥१९॥

तत्र प्रवयसः अपि आसन् युवानः अतिबल ओजसः पिबन्तः अक्षैः मुकुन्दस्य मुखाम्बुज सुधां मुहुः ॥१९॥

अक्षैः	नेत्रों द्वारा	अतिबल	अत्यन्त बलवान
मुकुन्दस्य	मुकुन्दके	ओजसः	ओजस्वी (स्फूर्तिमान)
मुखाम्बुज	मुख-कमलके		
सुधां मुहुः	अमृतको बारबार	युवानः आसन्	जवान हो गये ॥१९॥
पिबन्तः	पीनेके से		
तत्रप्रवयसःअपि	वहाँके वृद्ध भी		

अथ नन्दं समासाद्य भगवान् देवकीसुतः ।
संकर्षणश्च राजेन्द्र परिष्वज्येदमूचतुः ॥२०॥

अथ नन्दं सम आसाद्य भगवान् देवकीसुतः सङ्कर्षणः च राजेन्द्र परिष्वज्य इदं ऊचतुः ॥२०॥

राजेन्द्र	महाराज !	च सङ्कर्षणः	तथा बलरामजी
अथ नन्दं	फिर नन्दजीके	परिष्वज्य	(उनका) आलिंगन करके
समभ्यागत्य	समीप पहुँचकर		
भगवान्	भगवान्	इदं ऊचतुः	यह बोले ॥२०॥
देवकीसुतः	देवकी-नन्दन		

पितर्युवाभ्यां स्निग्धाभ्यां पोषितौ लालितौ भृशम् ।
पित्रोरभ्यधिका प्रीतिरात्मजेष्वात्मनोऽपि हि ॥२१॥

पितः युवाभ्यां स्निग्धाभ्यां पोषितौ लालितौ भृशं पित्रोः अभ्यधिका प्रीतिः आत्मजेषु आत्मनः अपि हि ॥२१॥

पितः युवाभ्यां	पिताजी ! आप दोनोंने	अपि	भी
		आत्मजेषु	पुत्रपर
भृशं स्निग्धाभ्यां	अत्यन्त प्रेमसे	अभ्यधिका	अत्यन्त अधिक
लालितौ पोषितौ	(हमारा) लालन-पालन किया है,	पित्रोः प्रीतिः	माता-पिताका प्रेम होता है ॥२१॥
हि आत्मनः	क्योंकि अपनेशरीरसे		

स पिता सा च जननी यौ पुष्णीतां स्वपुत्रवत् ।
शिशून् बन्धुभिरुत्सृष्टानकल्पैः पोषरक्षणे ॥२२॥

स पिता सा च जननी यौ पुष्णीतां स्वपुत्रवत् शिशून् बन्धुभिः उत्सृष्टान् अकल्पैः पोषरक्षणे ॥२२॥

पोषरक्षणे	पोषण-रक्षणमें	स्वपुत्रवत्	अपने पुत्रके समान
अकल्पैः	असमर्थ	पुष्णीतां	पालन करते हैं
बन्धुभिः	सम्बन्धियों द्वारा	स पिता	वही पिता
उत्सृष्टान्	त्यागे हुए	च सा जननी	और वही माता हैं ॥२२॥
शिशून् यौ	शिशुओंको जो		

यात यूयं व्रजं तात वयं च स्नेहदुःखितान् ।
ज्ञातीन् वो द्रष्टुमेष्यामो विधाय सुहृदां सुखम् ॥२३॥

यात यूयं व्रजं तात वयं च स्नेह दुःखितान् ज्ञातीन् वः द्रष्टुं एष्यामः विधाय सुहृदां सुखम् ॥२३॥

तात यूयं	पिताजी ! आप लोग	**विधाय**	व्यवस्था करके
		स्नेह दुःखितान्	अपने स्नेहसे दुःखी
व्रजं यात	ब्रज जावें	**वः ज्ञातीन्**	आप जातिके लोगों के
वयं च	हम दोनों भी		
सुहृदां सुखं	(यहाँके) सम्बन्धियोंके सुखकी	**द्रष्टुं एष्यामः**	देखने आवेंगे ॥२३॥

एवं सान्त्वय्य भगवान् नन्दं सव्रजमच्युतः ।
वासोऽलङ्कारकुप्याद्यैरर्हयामास सादरम् ॥२४॥

एवं सान्त्वय्य भगवान् नन्दं सव्रजं अच्युतः वासः अलङ्कार कुप्याद्यैः अर्हयामास सादरम् ॥२४॥

सव्रजं	व्रजवासियोंके साथ	**सादरं**	आदर पूर्वक
एवं नन्द	इस प्रकार नन्दजी को	**वासः अलङ्कार**	वस्त्र आभूषण
		कुप्याद्यैः	बर्तन आदि देकर
सान्त्वय्य	समझाकर	**अर्हयामास**	(उनका) सत्कार किया ॥२४॥
भगवान् अच्युतः	भगवान् श्रीकृष्णने		

इत्युक्तस्तौ परिष्वज्य नन्दः प्रणयविह्वलः ।
पूरयन्नश्रुभिर्नेत्रे सह गोपैर्व्रजं ययौ ॥२५॥

इति उक्तः तौ परिष्वज्य नन्दः प्रणय विह्वलः पूरयन् अश्रुभि नेत्रे सह गोपैः व्रजं ययौ ॥२५॥

इति उक्तः	ऐसा कहनेपर	**अश्रुभि नेत्रे**	आंसुओंसे नेत्र
तौ परिष्वज्य	उन दोनों भाइयों का आलिंगन करके	**पूरयन्**	भरते हुए (आंसू बहाते)
प्रणय विह्वलः	प्रेमसे व्याकुल	**गोपैः सह**	गोपोंके साथ
नन्दः	नन्दजी	**व्रजं ययौ**	व्रज गये ॥१५॥

अथ शूरसुतो राजन् पुत्रयोः समकारयत् ।
पुरोधसा ब्राह्मणैश्च यथावद् द्विजसंस्कृतिम् ॥२६॥

अथ शूरसुतः राजन् पुत्रयोः समकारयत् पुरोधसा ब्राह्मणैः च यथावत् द्विजसंस्कृतिम् ॥२६॥

राजन्	राजन्	पुत्रयोः	अपने दोनों पुत्रोंका
अथ शूरसुतः	फिर शूरनन्दन वासुदेवजीने	यथावत्	विधिपूर्वक
पुरोधसा	पुरोहित	द्विजसंस्कृतिं	द्विजाति संस्कार (यज्ञोपवीत)
च ब्राह्मणैः	तथा अन्य ब्राह्मणों द्वारा	समकारयत्	सम्पन्न करवाया ॥२६॥

तेभ्योऽदाद् दक्षिणा गावो रुक्ममालाः स्वलंकृताः ।
स्वलंकृतेभ्यः सम्पूज्य सवत्साः क्षौममालिनीमः ॥२७॥

तेभ्यः अदात् दक्षिणा गावः रुक्ममालाः स्वलंकृताः स्वलंकृतेभ्यः सम्पूज्य सवत्साः क्षौममालिनीः ॥२७॥

तेभ्यः	उन	रुक्ममालाः	सोनेकी मालाएँ तथा
स्वलंकृतेभ्यः	भली प्रकार अलंकृत (ब्राह्मणों को)	क्षौममालिनीः	रेशमी वस्त्रोंकी मालाएँ पहिने
सवत्साः	बछड़ोंके साथ	गावः सम्पूज्य	गायोंकी पूजा करके
स्वलंकृताः	अच्छी प्रकार आभूषिता	दक्षिणा अदात्	दक्षिणामें दीं ॥२७॥

याः कृष्णरामजन्मर्क्षे मनोदत्ता महामतिः ।
ताश्चाददादनुस्मृत्य कंसेनाधर्मतो हृताः ॥२८॥

याः कृष्णराम जन्म अर्क्षे मनः दत्ता महामतिः ताः च अदात् अनुस्मृत्य कंसे न अधर्मतः हृताः ॥२८॥

महामतिः	महामति (वसुदेव जी) ने	अनुस्मृत्य	पीछे उनका स्मरण करके
कृष्णराम	श्रीकृष्ण-बलरामके	ताः च अदात्	उनको भी दे दिया,
जन्म अर्क्षे	जन्म-नक्षत्रोंमें	कंसे न	कंसके द्वारा
याः मनः दत्ता	जो(गायें) मानसिक संकल्पसे दी थीं,	अधर्मतः	अधर्म पूर्वक
		हृताः	वे छीन ली गयी थीं ॥२८॥

ततश्च लब्धसंस्कारौ द्विजत्वं प्राप्य सुव्रतौ ।
गर्गाद् यदुकुलाचार्याद् गायत्रं व्रतमास्थितौ ॥२९॥

ततः च लब्धसंस्कारौ द्विजत्वं प्राप्य सुव्रतौ गर्गात् यदुकुल आचार्यात् गायत्रं व्रतं आस्थितौ ॥२९॥

ततः च	उसके पश्चात् तो	द्विजत्वं प्राप्य	द्विजत्व पाकर
यदुकुल	यदुकुलके	सुव्रतौ	उत्तम (ब्रह्मचर्य) व्रतवाले दोनोंभाई
आचार्यात्	आचार्य		
गर्गात्	गर्गाचार्यसे	गायत्रं व्रतं	गायत्री-जपके नियमपर
लब्धसंस्कारौ	यज्ञोपवीत संस्कार पाकर	आस्थितौ	दृढ़तासे स्थित हुए

प्रभवौ सर्वविद्यानां सर्वज्ञौ जगदीश्वरौ ।
नान्यसिद्धामलज्ञानं गूहमानौ नरेहितैः ॥३०॥

प्रभवौ सर्वविद्यानां सर्वज्ञौ जगदीश्वरौ न अन्यसिद्ध अमलज्ञानं गूहमानौ नर ईहितैः ॥३०॥

सर्वविद्यानां	(दोनों भाई) समस्त विद्याओंको	अमलज्ञानं न	निर्मल ज्ञान नहीं है
प्रभवौ	उत्पन्न करने वाले	नर ईहितैः	(वेतो) मनुष्यके समान चेष्टाओंसे
सर्वज्ञौ	सर्वज्ञ	गूहमानौ	अपनेको छिपाये हैं ॥३०॥
जगदीश्वरौ	जगतके स्वामी		
अन्यसिद्ध	दूसरेकी सहायतासे प्राप्त (उनका)		

अथो गुरुकुले वासमिच्छन्तावुपजग्मतुः ।
काश्यं सांदीपनिं नाम ह्यवन्तीपुरवासिनम् ॥३१॥

अथो गुरुकुले वासं इच्छन्ताः उपजग्मतुः काश्यं सांदीपनिं नाम हि अवन्तीपुर वासिनम् ॥३१॥

हि	क्योंकि	वासिनं	निवासी
अथो गुरुकुले	फिर गुरुकुल में	काश्यं	काश्य-गोत्री
वासं इच्छन्ताः	निवासकी इच्छा करते थे,	सांदीपनि नाम	सांदीपन नाम मुनिके
अवन्तीपुर	उज्जैन-	उपजग्मतुः	समीप गये ॥३१॥

यथोपसाद्य तौ दान्तौ गुरौ वृत्तिमनिन्दिताम् ।
ग्राहयन्तावुपेतौ स्म भक्त्या देवमिवादृतौ ॥३२॥

यथा उपसाद्य तौ दान्तौ गुरौ वृत्तिं अनिन्दितां ग्राहयन्ताः उपेतौ स्म भक्त्या देवं इव आदृतौ ॥३२॥

यथा उपसाद्य	विधिपूर्वक वहाँ पहुँचकर	ग्राहयन्ताः	(संसारको) ग्रहण कराते हुए
तौ दान्तौ	वे दोनों भाई इन्द्रियोंको संयमित करके	भक्त्या	भक्तिपूर्वक
		देवं इव	इष्ट देवके समान
अनिन्दितां	प्रशंसनीय	आदृतौ	आदर करते हुए
गुरौ वृत्तिं	गुरु-सेवाका व्रत	उपेतौ स्म	(गुरुके) समीप रहने लगे ॥३२॥

तयोर्द्विजवरस्तुष्टः शुद्धभावानुवृत्तिभिः ।
प्रोवाच वेदानखिलान् साङ्गोपनिषदो गुरुः ॥३३॥

तयोः द्विजवरः तुष्टः शुद्ध भाव अनुवृत्तिभिः प्रोवाच वेदान् अखिलान् स अङ्ग उपनिषदः गुरुः ॥३३॥

तयोः	उन दोनों भाइयों के	**गुरुः**	गुरुदेवने
		स अङ्ग	अंगों और
शुद्धभाव	शुद्धभाव तथा	**उपनिषदः**	उपनिषदोंके साथ*
अनुवृत्तिभिः	सेवासे	**अखिलान्**	सम्पूर्ण वेदोंका
तुष्टः	सन्तुष्ट होकर	**प्रोवाच**	प्रवचन किया (पढ़ाया) ॥३३॥
द्विजवरः	ब्राह्मण श्रेष्ठ		

सरहस्यं धनुर्वेदं धर्मान् न्यायपथांस्तथा ।
तथा चान्वीक्षिकीं विद्यां राजनीतिं च षड्विधाम् ॥३४॥

सरहस्यं धनुर्वेदं धर्मान् न्यायपथान् तथा तथा च आन्वीक्षिकीं विद्यां राजनीतिं च षड्विधां ॥३४॥

सरहस्यं	रहस्य (मन्त्र तथा देवताज्ञान) के साथ	**विद्यां च षड्विधां**	शास्त्र एवं ६ प्रकार (सन्धि, विग्रह, मान, आसन, द्वैध आश्रय) की
धनुर्वेदं	धनुर्वेदको		
धर्मान्	धर्मशास्त्र (मीमांसा)		
तथा न्यायपथान्	और न्यायशास्त्र (तर्क पद्धति)	**राजनीतिं**	राजनीतिको (पढ़ाया) ॥३४॥
तथा च	ऐसे ही		
आन्वीक्षिकीं	आध्यात्म		

सर्वं नरवरश्रेष्ठौ सर्वविद्याप्रवर्तकौ ।
सकृन्निगदमात्रेण तौ संजगृहतुर्नृप ॥३५॥

सर्वंनरवर श्रेष्ठौ सर्वविद्या प्रवर्तकौ सकृत् निगदमात्रेण तौ सञ्जगृहतुः नृप ॥३५॥

---

*वेदों, उपनिषदों तथा वेदाङ्गोंका विवरण 'हमारे धर्म-ग्रन्थ' नामक पुस्तकमें दिया गया है ।

नृप	राजन् !	सकृत्	केवल एक बार
तौ	वे दोनों भाई	निगदमात्रेण	कहने (उच्चारण) मात्रसे
नरवरश्रेष्ठौ	उत्तम पुरुषोंमें भी पुरुषोत्तम	सर्वं सञ्जगृहतुः	सब भली प्रकार सीख लिया ॥३५॥
सर्वविद्या	समस्त विद्याओंके		
प्रवर्तकौ	प्रवर्तक (आद्याचार्य) हैं (अतः)		

अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्या संयतौ तावतीः कलाः ।
गुरुदक्षिणयाऽऽचार्यं छन्दयामासतुर्नृप ॥३६॥

अहः रात्रैः चतुःषष्ट्या संयत्तौ तावतीः कलाः गुरुदक्षिणया आचार्यं छन्दयामासतुः नृप ॥३६॥

नृप	राजन् !	संयत्तौ	भली प्रकार ग्रहण करके
चतुःषष्ट्या	चौंसठ	आचार्यं	आचार्यसे
अहः रात्रैः	दिन-रातमें	गुरुदक्षिणया	गुरुदक्षिणा
तावतीः कलाः	उतनी ही (चौंसठ) कलाएँ*	छन्दयामासतुः	मांगनेकी प्रार्थना की ॥३६॥

---

* चौंसठ कलाएं—१-संगीत २-वाद्य ३-नृत्य ४-नाट्य ५-चित्रकारी ६-कशीदाकारी ७-पुष्परचना ८-शय्या-सज्जा ९-अंग-रंजन १०-मणिजड़ना ११-शय्या-निर्माण (पत्रादिसे) १२-जल-बन्धन १३-सिद्धिदर्शन १४-माल्य-ग्रन्थन १५-पुष्पाभरण १६-वस्त्राभरण निर्माण १७-पुष्प शृंगार १८-कर्णपत्र १९-गन्ध-निर्माण २०-इन्द्रजाल २१-बहुरूपधारण २२-हाथ की फुर्ती २३-भोजन-निर्माण २४-पेय-निर्माण २५-सूची कर्म २६-कठपुतली नचाना २७-पहेली २८-मूर्ति-निर्माण २९-कूटनीति ३०-शीघ्रपठन ३१-नाट्य रचना ३२-कविता ३३-बेंत आदि बनाना ३४-दरी गलीचा बुनना ३५-बढ़ई का काम ३६-गृह निर्माण ३७-रत्न परीक्षा ३८-स्वर्ण बनाना ३९-रत्न-रंजन ४०-वृक्ष-चिकित्सा ४१-खान पहचानना ४२-पशु-पक्षी लड़ाना ४३-पक्षि-ध्वनि ४४-उच्चाटन ४५-केश-सज्जा ४६-मनकी बात बताना ४७-मलेच्छ काव्य-

द्विजस्तयोस्तं महिमानमद्भुतं
संलक्ष्य राजन्नतिमानुषीं मतिम् ।
सम्मन्त्र्य पत्न्या स महार्णवे मृतं
बालं प्रभासे वरयाम्बभूव ह ॥३७॥

द्विजः तयोः तं महिमानं अद्भुतं संलक्ष्य राजन् अतिमानुषीं मतिं सम्मत्र्य पत्न्या स महार्णवे मृतं बालं प्रभासे वरयान् बभूव ह ॥३७॥

तयोः तं	उन दोनों भाइयों की वह	पत्न्या सम्मन्त्र्य	पत्नीसे सलाह करके
अद्भुतं	आश्चर्य जनक	प्रभासे	प्रभास तीर्थमें
महिमानं	महिमा वाली	महार्णवे	महासागरमें
अतिमानुषीं	अतिमानवी	मृतं बालं	डूबकर मरे पुत्रको
मतिं संलक्ष्य	बुद्धि पहिचानकर	ह वरयान् बभूव	अहो वरदान रूपसे मांगा ॥३७॥
स द्विजः	उन विप्रवरने		

तथेत्यथारुह्य महारथौ रथं
प्रभासमासाद्य दुरन्तविक्रमौ ।
वेलामुपव्रज्य निषीदतुः क्षणं
सिन्धुर्विदित्वार्हणमाहरत्तयोः ॥३८॥

तथा इति अथ आरुह्य महारथौ रथं प्रभासं आसाद्य दुरन्त विक्रमौ वेलां उपव्रज्य निषीदतुः क्षणं सिन्धुः निदित्वा अर्हणं आहरत् तयोः ॥३८॥

तथा इति	'अच्छा' ऐसा कहकर	दुरन्त विक्रमौ	अनन्त पराक्रम वे
		महारथौ	महारथी

ज्ञान ४८-भिन्न भाषा ४९-शकुन ज्ञान ५०-मातृका यन्त्र निर्माण ५१-रत्न-छेदन ५२-संकेत भाषा निर्माण ५३-मनोव्यूह ५४-आविष्कार ५५-छल ५६-कोषज्ञान ५७-छन्द ज्ञान ५८-वस्त्र गूहन ५९-जुआ ६०-आकर्षण ६१-बाल क्रीड़ा ६२-मन्त्र विद्या ६३-विजय विद्या ६४-वेताल सिद्धि ।

अथ रथं आरुह्य	फिर रथपर चढ़कर	सिन्धुः विदित्वा	(उनको आया) जानकर समुद्र
प्रभासं आसाद्य	प्रभास पहुँचकर	तयोः अर्हणं	उनके लिए पूजा-सामग्री
वेलां उपव्रज्य	समुद्रतटके समीप जाकर	आहरत्	ले आया ॥३८॥
क्षणं निषीदतुः	क्षणभर बैठकर		

तमाह भगवानाशु गुरुपुत्रः प्रदीयताम् ।
योऽसाविह त्वया ग्रस्तो बालको महतोर्मिणा ॥३९॥

तं आह भगवान् आशु गुरुपुत्रः प्रदीयतां यः असाः इह त्वया ग्रस्तः बालकः महत् उर्मिणा ॥३९॥

भगवान्	भगवानने	ग्रस्तः	निगल लिया था
तं आह	उससे कहा	असाः गुरुपुत्रः	वह हमारे गुरुका पुत्र
इह त्वया	यहाँ तुमने	आशु	शीघ्र
महत् उर्मिणा	अपनी बड़ी लहर से	प्रदीयतां	(हमको) दे दो ॥३९॥
यः बालकः	जो बालक		

समुद्र उवाच

नैवाहार्षमहं देव दैत्यः पञ्चजनो महान् ।
अन्तर्जलचरः कृष्ण शङ्खरूपधरोऽसुरः ॥४०॥

न एव अहार्षं अहं देव दैत्यः पञ्चजनः महान् अन्तः जलचरः कृष्ण शङ्खरूप धरः असुरः ॥४०॥

देव कृष्ण	देव ! कृष्ण !	शङ्खरूप धरः	शंखरूप धारण करके
अहं न एव	मैंने नहीं ही	महान् असुरः	वह महा असुर
अहार्षं	हरण किया है,	अन्तः जलचरः	(मेरे) जलके भीतर घूमता है ॥४०॥
पञ्चजनः दैत्यः	पञ्चजन नामका दैत्य		

श्रीशुक उवाच*

आस्ते तेनाहृतो नूनं तच्छ्रुत्वा सत्वरं प्रभुः ।
जलमाविश्य तं हत्वा नापश्यदुदरेऽर्भकम् ॥४१॥

आस्ते तेन आहृतः नूनं तत् श्रुत्वा सत्वरं प्रभुः जलं आविश्य तं हत्वा न अपश्यत् उदरे अर्भकम् ॥४१॥

आस्ते	'अब भी है,	जलं आविश्य	जलमें प्रवेश करके
नूनं तेन	अवश्य उसीने	तं हत्वा	उसे मारकर
आहृतः	हरण किया होगा'	उदरे अर्भकं	(उसके) बेटमें
तत् श्रुत्वा	यह सुनकर		बच्चेको
प्रभुः	समर्थ श्रीकृष्णने	न अपश्यत्	नहीं देखा ॥४१॥
सत्वरं	शीघ्रता पूर्वक		

तदङ्गप्रभवं शंखमादाय रथमागमत् ।
ततः संयमनीं नाम यमस्य दयितां पुरीम् ॥४२॥

तत् अङ्ग प्रभवं शंखं आदाय रथं आगमत् ततः संयमनीं नाम यमस्य दयितां पुरीम् ॥४२॥

तत् अङ्ग	उसके शरीरसे	ततः यमस्य	फिर यमराजकी
प्रभवं शंखं	उत्पन्न शंखको	दयितां पुरीं	प्यारी पुरी
आदाय	लेकर	संयमनीं नाम	संयमिनी नामकी
रथं आगमत्	रथपर लौट आये,		में ॥४२॥

गत्वा जनार्दनः शङ्खं प्रदध्मौ सहलायुधः ।
शङ्खनिर्ह्रादमाकर्ण्य प्रजासंयमनो यमः ॥४३॥

गत्वा जनार्दनः शंखं प्रदध्मौ सहलायुधः शंख निर्ह्रादं आकर्ण्य प्रजा संयमनः यमः ॥४३॥

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

सहलायुधः	बलरामजीके साथ	आकर्ण्य	सुनकर
जनार्दन गत्वा	श्रीकृष्णने जाकर	प्रजा संयमनः	प्रजाका शासन करने वाले
शंखं प्रदध्मौ	शंख बजाया		
शंख निर्ह्रादं	शंखका तुमुल घोष	यमः	यमराजने ॥४३॥

तयोः सपर्यां महतीं चक्रे भक्त्युपबृंहिताम् ।
उवाचावनतः कृष्णं सर्वभूताशयालयम् ।
लीलामनुष्य हे विष्णो युवयोः करवाम किम् ॥४४॥

तयोः सपर्यां महतीं चक्रे भक्ति उपबृंहितां उवाच अवनतः कृष्णं सर्वभूत आशय आलयं लीला मनुष्य हे विष्णो युवयोः करवाम किम् ॥४४॥

भक्ति उपबृंहितां	भक्ति पूर्वक	लीला मनुष्य	'लीलाके लिए मनुष्य बने
तयोः महतीं	उन दोनों भाइयों की महती	हे विष्णो	हे विष्णु भगवान !
सपर्यां चक्रे	पूजा की	युवयोः	आप दोनोंकी
अवनतः	(फिर) नम्रतासे झुककर	किं करवाम	हम क्या सेवा करें ॥४४॥
कृष्णं उवाच	श्रीकृष्णसे बोले–		

श्रीभगवानुवाच

गुरुपुत्रमिहानीतं निजकर्मनिबन्धनम् ।
आनयस्व महाराज मच्छासनपुरस्कृतः ॥४५॥

गुरुपुत्रं इह आनीतं निजकर्म निबन्धनं आनयस्व महाराज मत् शासन पुरः कृतः ॥४५॥

महाराज	महाराज !	इह आनीतं	यहाँ लाया गया है,
निजकर्म	अपने कर्म	मत् शासन	(अब) मेरी आज्ञा को
निबन्धनं	बन्धनसे बँधा		
गुरुपुत्रं	(हमारे) गुरु पुत्रको	पुरः कृतः	प्रथम मानकर
		आनयस्व	ले आइये ॥४५॥

श्रीशुक उवाच*

तथेति तेनोपानीतं गुरुपुत्रं यदूत्तमौ ।
दत्त्वा स्वगुरवे भूयो वृणीष्वेति तमूचतुः ॥४६॥

तथा इति तेन उप आनीतं गुरुपुत्रं यदु उत्तमौ दत्त्वा स्वगुरवे भूयः वृणीष्व इति तं ऊचतुः ॥४६॥

तथा इति	'अच्छा' इस प्रकार (कहकर)	यदुउत्तमौ	वे यादव श्रेष्ठ
तेन उप आनीतं	उन (यमराज) के द्वारा पास लाये	भूयः वृणीष्व इति तं	'फिर कुछ मांग लें' ऐसा कहनेपर उनसे
गुरुपुत्रं	गुरुपुत्रको	ऊचतुः	बोले ॥४६॥
स्वगुरवे दत्त्वा	अपने गुरुको देकर		

श्रीगुरुरुवाच

सम्यक् सम्पादितो वत्स भवद्भ्यां गुरुनिष्क्रयः ।
को नु युष्मद्विधगुरोः कामानामवशिष्यते ॥४७॥

सम्यक् सम्पादितः वत्स भवत्भ्यां गुरु निष्क्रयः कः नु युष्मत् विध गुरोः कामानां अवशिष्यते ॥४७॥

वत्स भवत्भ्यां	वत्स ! तुम लोगों द्वारा		जैसोंके
गुरु निष्क्रयः	गुरु-दक्षिणा	गुरोः कः	गुरुकी कौनसी
सम्यक्	भली प्रकार	कामानां	कामनाएँ
सम्पादितः	पूर्णकर दी गयी,	अवशिष्यते	बची रह सकती हैं ॥४७॥
नु युष्मत् विध	भला तुम्हारे		

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

गच्छतं स्वगृहं वीरौ कीर्तिर्वामस्तु पावनी ।
छन्दांस्ययातयामानि भवन्त्विह परत्र च ॥४८॥

गच्छतं स्वगृहं वीरौ कीर्तिः वां अस्तु पावनी छन्दांसि अयात यामानि भवन्तु इह परत्र च ॥४८॥

वीरौ स्वगृहं	वीरो ! अपने घर	यामानि	पढ़ेके समान
गच्छतं	पधारो,	इह च	इस लोकमें तथा
वां पावनी	तुम दोनोंकी पवित्र	परत्र	परलोकमें भी
कीर्तिः अस्तु	कीर्ति हो,	भवन्तु	(कण्ठस्थ) होवें
छन्दांसि	वेद		॥४८॥
अयात	अभी तत्काल		

श्रीशुक उवाच*

गुरुणैवमनुज्ञातौ रथेनानिलरंहसा ।
आयातौ स्वपुरं तात पर्जन्यनिनदेन वै ॥४९॥

गुरुणा एवं अनुज्ञातौ रथेन अनिल रंहसा आयातौ स्वपुरं तात पर्जन्य निनदेन वै ॥४९॥

तात	प्रिय परीक्षित !	निनदेन	ध्वनि करने वाले
गुरुणा एवं	गुरुके द्वारा इस	अनिल	वायुके समान
	प्रकार	रंहसा	वेग वाले
वै अनुज्ञातौ	निश्चित अनुमति	रथेन स्वपुरं	रथसे अपने नगर
	प्राप्त होनेपर	आयातौ	(दोनों भाई) आ
पर्जन्य	मेघगर्जन जैसी		गये ॥४९॥

समनन्दन् प्रजाः सर्वा दृष्ट्वा रामजनार्दनौ ।
अपश्यन्त्यो बहूनहानि नष्टलब्धधना इव ॥५०॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

समनन्दन् प्रजाः सर्वा दृष्ट्वा रामजनार्दनौ अपश्यन्तः बहु अहानि नष्टलब्ध धना इव ॥५०॥

राम जनार्दनौ	बलराम-श्रीकृष्णको	नष्ट	खोये
दृष्ट्वा	देखकर	लब्धधना	धनके फिर मिलनेके
बहु अहानि	बहु दिनोंसे	इव समनन्दन्	समान बहुत प्रसन्न हुई ॥५०॥
अपश्यन्तः	न देखने वाली		
सर्वा प्रजाः	सब प्रजा		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे गुरुपुत्रानयनं नाम पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

वृष्णीनां प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा ।
शिष्यो बृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः ॥ १ ॥

वृष्णीनां प्रवरः मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा शिष्यः बृहस्पतेः साक्षात् उद्धवः बुद्धिसत्तमः ॥१॥

बुद्धिसत्तमः	बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ	बृहस्पतेः	(देवगुरु) बृहस्पतिके
उद्धवः	उद्धवजी	साक्षात् शिष्यः	साक्षात् शिष्य
वृष्णीनां	यदुवंशियोंमें	कृष्णस्य दयितः	श्रीकृष्णके प्रिय
प्रवरः	श्रेष्ठ,	मन्त्री	मन्त्री थे ॥१॥

तमाह भगवान् प्रेष्ठं भक्तमेकान्तिनं क्वचित् ।
गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रपन्नार्तिहरो हरिः ॥ २ ॥

तं आह भगवान् प्रेष्ठं भक्तं एकान्तिनं क्वचित् गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रपन्न आर्ति हरः हरिः ॥२॥

तं एकान्तिनं	उन अनन्य	गृहीत्वा	पकड़कर
प्रेष्ठं भक्तं	प्रिय भक्तसे	प्रपन्न आर्ति	शरणागतके संकट
क्वचित्	कभी	हरः हरिः	हर्ता श्रीहरि
पाणिना	अपने हाथसे	आह	बोले ॥२॥
पाणिं	उनका हाथ		

श्री भगवानुवाच*

गच्छोद्धव व्रजं सौम्य पित्रोर्नो प्रीतिमावह ।
गोपीनां मद्वियोगार्धिं मत्संदेशैर्विमोचय ॥ ३ ॥

गच्छ उद्धव व्रजं सौम्य पित्रोः नः प्रीतिं आवह गोपीनां मत् वियोग आर्धिं मत् संदेशैः विमोचय ॥३॥

सौम्य उद्धव	सौम्य उद्धव !	मत् संदेशैः	मेरे संदेशसे
व्रजं गच्छ	व्रज चले जाओ,	गोपीनां	गोपियोंकी
नः पित्रोः	हमारे माता-पिता को	मत् वियोग आर्धिं विमोचय	मेरे वियोगकी व्यथा दूर करो ॥३॥
प्रीतिं आवह	प्रसन्नता प्रदान करो,		

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः ।
मामेव दयितं प्रेष्ठमात्मानं मनसा गताः ।
ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान् बिभर्म्यहम् ॥ ४ ॥

ताः मत् मनस्का मत् प्राणा मत् अर्थे त्यक्त दैहिकाः मां एव दयितं प्रेष्ठं आत्मानं मनसा गताः ये त्यक्त लोक धर्माः च मत् अर्थे तान् बिभर्मि अहम् ॥४॥

ताः मत्	वे मुझमें		सम्बन्धियोंको
मनस्का	मन लगाये हैं,	त्यक्त	छोड़ रखा है,
मत् प्राणा	मैं ही उनका जीवन हूँ,	मां दयितं	मुझ अत्यन्त
मत् अर्थे	मेरे लिए	प्रेष्ठं	प्रियतममें
दैहिकाः	दैहिक (पति-पुत्रादि)	एव मनसा	ही मनसे
		आत्मानं गताः	अपनेको प्रविष्ट कर रखा है,

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

ये मत् अर्थे	जो मेरे लिए	त्यक्त तान्	छोड़तेहैं उनका
लोक च	इस लोक और	अहं बिभर्मि	धारण-पोषण मैं
धर्माः	धर्मोंको		करता हूँ ॥४॥

मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठं दूरस्थे गोकुलस्त्रियः ।
स्मरन्त्योऽङ्ग विमुह्यन्ति विरहौत्कण्ठ्यविह्वलाः ॥५॥

मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठं दूरस्थे गोकुल स्त्रियः स्मरन्त्यः अङ्ग विमुह्यन्ति विरह औत्कण्ठ्य विह्वलाः ॥५॥

अङ्ग	प्रिय उद्धव !	औत्कण्ठ्य	मिलनोत्कण्ठासे
प्रेयसां प्रेष्ठं	प्रियोंसे भी प्रियतम	विह्वलाः	व्याकुल
मयि दूरस्थे	मेरे दूर रहनेसे	स्मरन्त्यः	(मेरा)स्मरण करके
ताः गोकुल	वे व्रजकी	विमुह्यन्ति	बार-बार मूछित
स्त्रियः	स्त्रियां		हो जाती हैं ॥५॥

धारयन्त्यतिकृच्छ्रेण प्रायः प्राणान् कथञ्चन ।
प्रत्यागमनसन्देशैर्बल्लव्यो मे मदात्मिकाः ॥ ६ ॥

धारयन्ति अति कृच्छ्रेण प्रायः प्राणान् कथञ्चन प्रत्यागमन संदेशैः बल्लव्यः मे मत् आत्मिकाः ॥६॥

मत् आत्मिकाः	मुझमें चित्त लगाये	कृच्छ्रेण	कष्टसे
बल्लव्यः	गोपियां	कथञ्चन	किसी प्रकार
मे प्रत्यागमन	मेरे लौट आनेके	प्राणान्	प्राण
सन्देशैः	संदेशसे	धारयन्ति	धारण किये हैं ॥६॥
प्रायः अति	प्रायः अत्यन्त		

श्रीशुक उवाच

इत्युक्त उद्धवो राजन् संदेशं भर्तुरादृतः ।
आदाय रथमारुह्य प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ ७ ॥

इति उक्तः उद्धवः राजन् संदेशं भर्तुः आदृतः आदाय रथं आरुह्य प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥७॥

राजन्	राजन् !	रथं आरुह्य	रथपर चढ़कर
इति उक्तः	ऐसा कहनेपर	उद्धवः	उद्धवजीने
भर्तुः संदेशं	अपने स्वामीका संदेश	नन्दगोकुलं	नन्द-व्रजको
		प्रययौ	प्रस्थान
आदृतः आदाय	आदर पूर्वक लेकर		किया ॥७॥

प्राप्तो नन्दव्रजं श्रीमान् निम्लोचति विभावसौ ।
छन्नयानः प्रविशतां पशूनां खुररेणुभिः ॥ ८ ॥

प्राप्तः नन्दव्रजं श्रीमान् निम्लोचति विभावसौ छन्नयानः प्रविशतां पशूनां खुररेणुभिः ॥८॥

श्रीमान्	शोभा सम्पन्न (उद्धव)	पशूनां	पशुओंके
		खुररेणुभिः	खुरोंसे उड़ती धूलिसे
विभावसौ	सूर्यके	छन्नयानः	ढके रथसे
निम्लोचति	अस्त होते समय	नन्दव्रजं	नन्दव्रज
प्रविशतां	(व्रजमें) लौटते	प्राप्तः	पहुँचे ॥८॥

वासितार्थेऽभियुध्यद्भिर्नादितं शुष्मिभिर्वृषैः ।
धावन्तीभिश्च वात्साभिरूधोभारैः स्ववत्सकान् ॥९॥

वासिता अर्थे अभियुध्यद्भिः नादितं शुष्मिभिः वृषैः धावन्तीभिः च वात्साभिः उधोभारैः स्ववत्सकान् ॥९॥

वासिता अर्थे	ऋतुमती गायोंके लिए	च स्ववत्सकान्	तथा अपने बछड़ों की ओर
शुष्मिभिः वृषैः	मतवाले सांडोंके	उधोभारैः	अयानों भारसे दबी
अभियुध्यद्भिः	चारों ओर लड़ते हुए	धावन्तीभिः	दौड़ती हुई
		वात्साभिः	नव प्रसूता गायों से युक्त ॥९॥
नादितं	हुंकड़नेसे गूंजते		

इतस्ततो विलंघद्भिर्गोवत्सैर्मण्डितं सितैः ।
गोदोहशब्दाभिरवं वेणूनां निःस्वनेन च ॥१०॥

इतः ततः विलङ्घत्भिः गोवत्सैः मण्डितं सितैः गोदोहशब्द अभिरवं वेणूनां निःस्वनेन च ॥१०॥

इतः ततः	इधर-उधर	च वेणूनां	तथा वंशियोंकी
सितैः गोवत्सैः	श्वेत बछड़ोंके	निःस्वनेन	उच्च ध्वनिसे
विलङ्घत्भिः	कूदनेसे	अभिरवं	चारों ओर गूंजते
मण्डितं	सुशोभित,		(व्रजमें) ॥१०॥
गोदोहशब्द	गोदोहनकी ध्वनि		

गायन्तीभिश्च कर्माणि शुभानि बलकृष्णयोः ।
स्वलंकृताभिर्गोपीभिर्गोपैश्च सुविराजितम् ॥११॥

गायन्तीभिः च कर्माणि शुभानि बलकृष्णयोः स्वलंकृताभिः च गोपीभिः गोपैः च सुविराजितम् ॥११॥

बलकृष्णयोः	बलराम-श्रीकृष्णके	गोपीभिः च	गोपियों द्वारा तथा
शुभानि	मंगलमय	गोपैः च	गोपों द्वारा भी
कर्माणि	कर्मोंको	सुविराजितं	अत्यन्त सुशोभित
गायन्तीभिः	गाती हुई		॥११॥
स्वलङ्कृताभिः	भली प्रकार आभूषिता		

अग्न्यर्कातिथिगोविप्रपितृदेवार्चनान्वितैः ।
धूपदीपैश्च माल्यैश्च गोपावासैर्मनोरमम् ॥१२॥

अग्नि अर्क अतिथि गो विप्र पितृ देव अर्चन अन्वितैः धूप दीपैः च माल्यैः च गोप आवासैः मनोरमम् ॥१२॥

अग्नि अर्क	अग्नि, सूर्य,
अतिथि गो	अतिथि गाय,
विप्र पितृ	ब्राह्मण, पितर,
देव	देवताओंकी
अर्चन	पूजासे
अन्वितैः	युक्त
धूप च दीपैः	धूप तथा दीपक
च माल्यैः	और मालाओंसे
मनोरमं	मनोहर
गोप	गोप
आवासैः	गृहोंसे युक्त ॥१२॥

सर्वतः पुष्पितवनं द्विजालिकुलनादितम् ।
हंसकारण्डवाकीर्णैः पद्मषण्डैश्च मण्डितम् ॥१३॥

सर्वतः पुष्पितवनं द्विज अलिकुल नादितं हंस कारण्डव आकीर्णैः पद्मषण्डैः च मण्डितम् ॥१३॥

सर्वतः	चारों ओर
पुष्पितवनं	फूला हुआ वन
द्विज	पक्षियों तथा
अलिकुल	भ्रमर झुण्डोंके
नादितं	शब्दसे गूंज रहा था,
हंस	हंस,
कारण्डव	बत्तक आदिसे
आकीर्णैः	भरा हुआ
च	तथा
पद्मषण्डैः	कमल पुष्पोंसे
मण्डितं	सुशोभित था ॥१३॥

तमागतं समागम्य कृष्णस्यानुचरं प्रियम् ।
नन्दः प्रीतः परिष्वज्य वासुदेवधियाऽऽर्चयत् ॥१४॥

तं आगतं सम आगम्य कृष्णस्य अनुचरं प्रियं नन्दः प्रीतः परिष्वज्य वासुदेवधिया आर्चयत् ॥१४॥

तं कृष्णस्य	उन श्रीकृष्णके
प्रियं अनुचरं	प्रिय सेवकके
आगतं	आनेपर
प्रीतः	प्रसन्न होकर
नन्दः	नन्दजीने
सम आगम्य	समीप आकर
परिष्वज्य	आलिंगन करके
वासुदेवधिया	श्रीकृष्णके समान ही समझकर
आर्चयत्	(उनका) सत्कार किया ॥१४॥

भोजितं परमान्नेन संविष्टं कशिपौ सुखम् ।
गतश्रमं पर्यपृच्छत् पादसंवाहनादिभिः ॥१५॥

भोजितं परम अन्नेन संविष्टं कशिपौ सुखं गतश्रमं पर्यपृच्छत् पाद-संवाहन आदिभिः ॥१५॥

परम अन्नेन	उत्तम अन्नका	पादसंवाहन	पैर दबाना
भोजितं	भोजन कराके	आदिभिः	आदिके द्वारा
कशिपौ	पलंगपर	गतश्रमं	थकावट दूर होनेपर
सुखं	सुख पूर्वक	पर्यपृच्छत्	भली प्रकार पूछा
संविष्टं	बैठ जानेपर		॥१५॥

नन्द उवाच*

कच्चिदङ्ग महाभाग सखा नः शूरनन्दनः ।
आस्ते कुशल्यपत्याद्यैर्युक्तो मुक्तः सुहृद्वृतः ॥१६॥

कच्चित् अङ्ग महाभाग सखा नः शूरनन्दनः आस्ते कुशलि अपत्य आद्यैः युक्तः मुक्तः सुहृत् वृतः ॥१६॥

महाभाग अङ्ग	महाभाग प्रिय उद्धव !	अपत्य आद्यैः	पुत्रादि सहित
		सुहृत् वृतः	सुहृदयोंसे घिरे
नः सखा	हमारे सखा	कच्चित्	कहीं
शूरनन्दनः	शूर-नन्दन वसुदेवजी	कुशलि आस्ते	कुशलसे तो हैं ॥१६॥
मुक्तः	बन्धनसे छूटकर		

दिष्ट्या कंसो हतः पापः सानुगः स्वेन पाप्मना ।
साधूनां धर्मशीलानां यदूनां द्वेष्टि यः सदा ॥१७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

दिष्ट्या कंसः हतः पापः सानुगः स्वेन पाप्मना साधूनां धर्मशीलानां यदूनां द्वेष्टि यः सदा ॥१७॥

दिष्ट्या	सौभाग्यकी बात है कि	सदा द्वेष्टि	सदा द्वेष रखता था (वह)
यः	जो	पापः कंसः	पापी कंस
धर्मशीलानां	धर्माचरण करने-वाले	स्वेन पाप्मना	अपने ही पापसे
साधूनां	सत्पुरुष	सानुगः	अनुयायियोंके साथ
यदूनां	यदुवंशियोंसे	हतः	मारा गया ॥१७॥

अपि स्मरति न कृष्णो मातरं सुहृदः सखीन् ।
गोपान् व्रजं चात्मनाथं गावो वृन्दावनं गिरिम् ॥१८॥

अपि स्मरति नः कृष्णः मातरं सुहृदः सखीनः गोपान् व्रजं च आत्मनाथं गावः वृन्दावनं गिरिम् ॥१८॥

अपि कृष्णः	क्या श्रीकृष्ण	गोपान्	गोपोंको,
नः	मुझे,	च व्रजं	तथा व्रजको,
मातरं	अपनी माताको,	गावः वृन्दावनं	गायोंको, वृन्दावनको
सुहृदः सखीन्	प्रिय सखाओंको,	गिरिं स्मरति	गिरिराज गोवर्धन-को स्मरण करते हैं ॥१८॥
आत्मनाथं	जिनके वही स्वामी हैं उन		

अप्यायस्यति गोविन्दः स्वजनान् सकृदीक्षितुम् ।
तर्हि द्रक्ष्याम तद्वक्त्रं सुनसं सुस्मितेक्षणम् ॥१९॥

अपि आयास्यति गोविन्दः स्वजनान् सकृत् ईक्षितुं तर्हि द्रक्ष्यामः तत् वक्त्रं सुनसं सुस्मित ईक्षणम् ॥१९॥

स्वजनान्	अपने लोगोंको	अपि गोविन्दः	क्या गोविन्द
सकृत	एक बार	आयास्यति	यहां आवेंगे ?
ईक्षितुं	देखनेके लिए	तर्हि सुनसं	उस समय उत्तम

	नासिका वाला,	तत् वक्त्रं	उनका मुख
सुस्मित	मुस्कराती हुई	द्रक्ष्यामः	हम देख सकेंगे
ईक्षणं	दृष्टिवाला		॥१६॥

दावाग्नेर्वातवर्षाच्च वृषसर्पाच्च रक्षिताः ।
दुरत्ययेभ्यो मृत्युभ्यः कृष्णेन सुमहात्मना ॥२०॥

दावाग्नेः वात वर्षात् च वृष सर्पात् च रक्षिताः दुरत्ययेभ्यः मृत्युभ्यः कृष्णेन सुमहात्मना ॥२०॥

सुमहात्मना	उत्कृष्ट महात्मा	सर्पात्	अघासुर
कृष्णेन	श्रीकृष्णने	च	तथा
दावाग्नेः	दावाग्निसे,	दुरत्ययेभ्यः	अत्यन्त दुष्पार
वात	तृणावर्त,	मृत्युभ्यः	मृत्युओंसे (हमारी)
वर्षात्	(इन्द्रकी) वर्षा,	रक्षिताः	(बार-बार) रक्षा की
वृष	वृषभासुर,		है ॥२०॥

स्मरतां कृष्णवीर्याणि लीलापाङ्गनिरीक्षितम् ।
हसितं भाषितं चाङ्ग सर्वा नः शिथिलाः क्रियाः ॥२१॥

स्मरतां कृष्ण वीर्याणि लीला अपाङ्ग निरीक्षितं हसितं भाषितं च अङ्ग सर्वा नः शिथिलाः क्रियाः ॥२१॥

अङ्ग	प्रिय उद्धव !	स्मरतां	स्मरण करते रहने-
कृष्ण	श्रीकृष्णका		वाले
वीर्याणि	पराक्रम	नः	हम लोगोंकी
च लीला	तथा लीला पूर्वक	सर्वाः क्रियाः	सब क्रियाएँ
अपाङ्ग	तिरछी	शिथिलाः	ढीली पड़ गयी
निरीक्षितं	चितवन,		हैं ॥२१॥
हसितं भाषितं	हँसना, बोलना		

सरिच्छैलवनोद्देशान् मुकुन्दपदभूषितान् ।
आक्रीडानीक्षमाणानां मनो याति तदात्मताम् ॥२२॥

सरित् शैल वन उद्देशान् मुकुन्द पद भूषितान् आक्रीडान् ईक्षमाणानां मनः याति तत् आत्मताम् ॥२२॥

मुकुन्द	श्रीकृष्णके	आक्रीडान्	खेलनेके स्थानों
पद	चरणों (चिह्नों) से		तथा खिलौनोंके
भूषितान्	अलंकृत	ईक्षमाणानां	देखनेसे
सरित् शैल	नदी, पर्वत	मनः	(हमारा) मन
वन	उन वनोंको	तत् आत्मतां	उनमें तन्मय
उद्देशान्	जहां जाते थे	याति	हो जाता है ॥२२॥

मन्ये कृष्णं च रामं च प्राप्ताविह सुरोत्तमौ ।
सुराणां महदर्थाय गर्गस्य वचनं यथा ॥२३॥

मन्ये कृष्णं च रामं च प्राप्ताः इह सुर उत्तमौ सुराणां महत् अर्थाय गर्गस्य वचनं यथा ॥२३॥

यथा	जैसा कि	अर्थाय	प्रयोजनसे
गर्गस्य वचनं	गर्गजीने कहा था	इह	इस लोकमें
कृष्णं च	श्रीकृष्ण और	प्राप्ताः	अवतीर्ण
रामं च	बलरामको भी	सुर उत्तमौ	देव-श्रेष्ठ
सुराणां	देवताओंके	मन्ये	मानता हूँ ॥२३॥
महत्	(किसी) महान्		

कंसं नागायुतप्राणं मल्लौ गजपतिं तथा ।
अवधिष्टां लीलयैव पशूनिव मृगाधिपः ॥२४॥

कंसं नाग अयुत प्राणं मल्लौ गजपतिं तथा अवधिष्टां लीलया इव पशून् इव मृगाधिपः ॥२४॥

पशून्	पशुओंको	नाग अयुत	दस सहस्र हाथियों-
मृगाधिपः	सिंहके		की
इव	समान	प्राणं	शक्तिवाले

कंसं	कंसको,	लीलया इव	खेलकी भाँति
मल्लौ	पहलवानोंको	अवधिष्टां	मार दिया ॥२४॥
तथा गजपतिं	तथा गजराज कुवलयापीडको		

तालत्रयं महासारं धनुर्यष्टिमिवेभराट् ।
बभञ्जैकेन हस्तेन सप्ताहमदधाद् गिरिम् ॥२५॥

तालत्रयं महासारं धनुः यष्टिं इव इभराट् बभञ्ज एकेन हस्तेन सप्ताहं अदधात् गिरिम् ॥२५॥

तालत्रयं	तीन ताल (दो सौ हाथ) के	इव	समान
महासारं	बहुत दृढ़	बभञ्ज	तोड़ दिया और
धनुः	धनुषको	एकेन हस्तेन	एक ही हाथसे
इभराट्	गजराज (जैसे)	गिरिं	पर्वतको
यष्टिं	छड़ीको (तोड़े) के	सप्ताहं	सात दिन तक
		अदधात्	उठाये रखा ॥२५॥

प्रलम्बो धेनुकोऽरिष्टस्तृणावर्तो बकादयः ।
दैत्याः सुरासुरजितो हता येनेह लीलया ॥२६॥

प्रलम्बः धेनुकः अरिष्टः तृणावर्तः बक आदयः दैत्याः सुरअसुर जितः हता येन इह लीलया ॥२६॥

सुर असुर जितः	देवता-असुर सबको जीतनेवाले	बक आदयः	बक आदि दैत्योंको
प्रलम्बः	प्रलम्ब,	दैत्याः	
धेनुकः अरिष्टः	धेनुक, अरिष्ट	येन इह	जिन्होंने इस व्रजमें
तृणावर्तः	तृणावर्त	लीलया हता	खेल-खेलमें मार दिया ॥२६॥

श्रीशुक उवाच

इति संस्मृत्य संस्मृत्य नन्दः कृष्णानुरक्तधीः ।
अत्युत्कण्ठोऽभवत्तूष्णीं प्रेमप्रसरविह्वलः ॥२७॥

इति संस्मृत्य संस्मृत्य नन्दः कृष्ण अनुरक्तधीः अति उत्कण्ठः अभवत् तूष्णीं प्रेमप्रसर विह्वलः ॥२७॥

कृष्ण	श्रीकृष्णमें	**प्रेमप्रसर**	प्रेमके प्रसारसे
अनुरक्तधीः	अनुरक्त चित्त	**विह्वलः**	व्याकुल होकर
नन्दः	नन्दजी	**अति उत्कण्ठः**	तीव्र उत्कण्ठासे
इति	इस प्रकार	**तूष्णीं अभवत्**	चुप हो गये ॥२७॥
संस्मृत्य संस्मृत्य	बार-बार स्मरण करनेसे		

यशोदा वर्ण्यमानानि पुत्रस्य चरितानि च ।
शृण्वन्त्यश्रूण्यवास्राक्षीत् स्नेहस्नुतपयोधरा ॥२८॥

यशोदा वर्ण्यमानानि पुत्रस्य चरितानि च शृण्वन्ति अश्रूणि अवास्राक्षीत् स्नेह स्नुत पयोधराः ॥२८॥

पुत्रस्य	पुत्रके	**स्नेह**	स्नेहसे
वर्ण्यमानानि	वर्णन किये जाते	**स्नुत पयोधरा**	टपकते स्तनोंवाली वाली
चरितानि	चरितोंको		
शृण्वन्ति	सुनती हुई	**अश्रूणि**	आंसू
यशोदा च	यशोदाजी भी	**अवास्राक्षीत्**	बहाने लगीं ॥२८॥

तयोरित्थं भगवति कृष्णे नन्दयशोदयोः ।
वीक्ष्यानुरागं परमं नन्दमाहोद्धवो मुदा ॥२९॥

तयोः इत्थं भगवति कृष्णे नन्दयशोदयोः वीक्ष्य अनुरागं परमं नन्दं आह उद्धवः मुदा ॥२९॥

तयोः	उन	**वीक्ष्य**	देखकर
नन्दयशोदयोः	नन्द-यशोदाका	**मुदा**	प्रसन्न होकर
भगवति	भगवान	**उद्धवः**	उद्धव
कृष्णे	श्रीकृष्णमें	**नन्दं आह**	नन्दजीसे बोले ॥२९॥
परमं अनुरागं	परम प्रेम		

उद्धव उवाच

युवां श्लाघ्यतमौ नूनं देहिनामिह मानद ।
नारायणेऽखिलगुरौ यत् कृता मतिरीदृशी ॥३०॥

युवां श्लाघ्यतमौ नूनं देहिनां इह मानद नारायणे अखिलगुरौ यत् कृता मतिः ईदृशी ॥३०॥

मानद	मानद !	श्लाघ्यतमौ	परम प्रशंशनीय हैं,
इह देहिनां	इस संसारमें सब शरीर धारियोंके लिए	यत्	क्योंकि
		अखिलगुरौ	सम्पूर्ण विश्वके गुरु
		नारायणे	श्रीनारायणमें
युवां	आप दोनों	ईदृशी मतिः	ऐसी बुद्धि
नूनं	निश्चय	कृता	लगा दी है ॥३०॥

एतौ हि विश्वस्य च बीजयोनी
रामो मुकुन्दः पुरुषः प्रधानम् ।
अन्वीय भूतेषु विलक्षणस्य
ज्ञानस्य चेशात इमौ पुराणौ ॥३१॥

एतौ हि विश्वस्य च बीजयोनी रामः मुकुन्दः पुरुषः प्रधानं अनु ईय भूतेषु विलक्षणस्य ज्ञानस्य च ईशात इमौ पुराणौ ॥३१॥

हि एतौ	क्योंकि ये ही दोनों भाई	बीजयोनी	सर्जनामें
		अनु ईय	प्रबिष्ट होकर
रामः मुकुन्दः	बलराम और श्रीकृष्ण	इमौ पुराणौ	ये दोनों पुराण पुरुष
प्रधानं पुरुषः	प्रधान और पुरुष रूपसे	ज्ञानस्य च	ज्ञान स्वरूप जीव का भी
विश्वस्य	सारे संसारके	ईशात्	संचालन करते हैं ॥३१॥
विलक्षणस्य	नाना प्रकारके		
भूतेषु	प्राणियोंमें		

यस्मिञ्जनः प्राणवियोगकाले
क्षणं समावेश्य मनोऽविशुद्धम् ।
निर्हृत्य कर्माशयमाशु याति
परां गतिं ब्रह्ममयोऽर्कवर्णः ॥३२॥

यस्मिन् जनः प्राणवियोगकाले क्षणं सम आवेश्य मनः अविशुद्ध निर्हृत्य कर्माशयं आशु याति परां गतिः ब्रह्ममयः अर्कवर्णः ॥३२॥

प्राणवियोगकाले	प्राण जाते समय	निर्हृत्य	त्यागकर
जनः यस्मिन्	मनुष्य जिनमें	अर्कवर्णः	ज्योतिर्मय
अविशुद्धं मनः	शुद्ध मनको	ब्रह्ममयः	ब्रह्मस्वरूप
क्षणं	क्षण भरको	परां गतिं	परमगतिको
सम आवेश्य	भली भांति लगाकर	आशु याति	शीघ्र प्राप्तकर लेता है ॥३२॥
कर्माशयं	कर्मवासनाओंको		

तस्मिन् भवन्तावखिलात्महेतौ
नारायणे कारणमर्त्यमूर्तौ ।
भावं विधत्तां नितरां महात्मन्
किं वावशिष्टं युवयोः सुकृत्यम् ॥३३॥

तस्मिन् भवन्ताः अखिल आत्महेतौ वारायणे कारण मत्य मूर्तौ भावं विधत्तां नितरां महात्मन् किं वा अवशिष्टं युवयोः सुकृत्यम् ॥३३॥

तस्मिन्	उन्हीं	आत्महेतौ	अपने कारण
कारण	(पृथ्वी-भार-हरण) कारणसे	नारायणे	नारायणमें
मत्यमूर्तौ	मनुष्य रूपधारी	महात्मन्	आप महात्माओंने
अखिल	सबके	नितरां	प्रगाढ़
		भावं विधत्तां	प्रेमभाव किया है (फिर)

युवयोः	आप दोनोंका	अवशिष्टं	बचा रह गया
वा किं सुकृत्यं	भला कौन-सा पुण्य करना		॥३३॥

आगमिष्यत्यदीर्घेण कालेन व्रजमच्युतः ।
प्रियं विधास्यते पित्रोर्भगवान् सात्वतां पतिः ॥३४॥

आगमिष्यति अदीर्घेण कालेन व्रजं अच्युतः प्रियं विधास्यते पित्रोः भगवान् सात्वतां पतिः ॥३४॥

सात्वतां पतिः	यादवोंके स्वामी	पित्रोः	माता-पिताको
भगवान् अच्युतः	भगवान अच्युत	प्रियं विधास्यते	प्रसन्न करेंगे ॥३४॥
अदीर्घेण कालेन	अल्प समयमें		
व्रजं आगमिष्यति	व्रजमें आवेंगे और		

हत्वा कंसं रङ्गमध्ये प्रतीपं सर्वसात्वताम् ।
यादाह वः समागत्य कृष्णः सत्यं करोति तत् ॥३५॥

हत्वा कंसं रङ्गमध्ये प्रतीपं सर्व सात्वतां यत् आह वः सम आगत्य कृष्णः सत्यं करोति तत् ॥३५॥

सर्व सात्वतां	सम्पूर्ण यदुवंशियों के		आकर
प्रतीपं कंसं	विरोधी कंसको	वः यत् आह	आप लोगोंसे जो कहा था
हत्वा	मारकर	कृष्णः तत्	श्रीकृष्ण उसे
रङ्गमध्ये	रंगशालाके बीचमें	सत्यं करोति	सत्य करेंगे ॥३५॥
सम आगत्य	आपके समीप		

मा खिद्यतं महाभागौ द्रक्ष्यथः कृष्णमन्तिके ।
अन्तर्हृदि स भूतानामास्ते ज्योतिरिवैधसि ॥३६॥

मा खिद्यतं महाभागौ द्रक्ष्यथः कृष्णं अन्तिके अन्तर्हृदि स भूतानां आस्ते ज्योतिः इव एधसि ॥३६॥

महाभागौ	आप दोनों महाभाग	एधसि	ईंधनमें
		ज्योतिः इव	अग्निके समान
खिद्यतं मा	खेद मत करें,	स भूतानां	वे सब प्राणियोंके
कृष्णं	श्रीकृष्णको	अन्तर्हृदि	हृदयके भीतर
अन्तिके	अपने समीप ही	आस्ते	उपस्थित हैं
द्रक्ष्यथः	देखेंगे,		॥३६॥

न ह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियो वास्त्यमानिनः ।
नोत्तमो नाधमो नापि समानस्यासमोऽपि वा ॥३७॥

न हि अस्य अस्ति प्रियः कश्चित् न अप्रियः वा आस्ति मानिनः न उत्तमः न अधमः न अपि समानस्य असमः अपि वा ॥३७॥

हि अस्य	क्योंकि इनका		जाने वाला हैं,
कश्चित्	कोई भी	न अधमः अपि	न छोटा ही,
न प्रियः अस्ति	न प्रिय है,	समानस्य वा	सबमें समानको अथवा (कोई)
वा न	अथवा न	असमः अपि न	विषम भी नहीं है
अप्रियः अस्ति	अप्रिय ही है,		॥३७॥
न उत्तमः मानिनः	न उत्तम माना		

न माता न पिता तस्य न भार्या न सुतादयः ।
नात्मीयो न परश्चापि न देहो जन्म एव च ॥३८॥

न माता न पिता तस्य न भार्या न सुत आदयः न आत्मीयः न परः च अपि न देहः जन्म एव च ॥३८॥

तस्य न माता	उनकी कोई माता	च न परः	और न पराया,
न पिता	न पिता	न देहः	(उनका) न शरीर
न भार्या	न पत्नी	जन्म एव च	अथवा जन्म ही है
न सुत आदयः	न पुत्रादि,		॥३८॥
न आत्मीयः	न (कोई) अपना है		

न चास्य कर्म वा लोके सदसन्मिश्रयोनिषु ।
क्रीडार्थः सोऽपि साधूनां परित्राणाय कल्पते ॥३९॥

न च अस्य कर्म वा लोके सत् असत् मिश्र योनिषु क्रीडा अर्थः सः अपि साधूनां परित्राणाय कल्पते ॥३९॥

अस्य लोके	इनका इस लोकमें	योनिषु	योनियोंमें
कर्म च	कोई कर्म भी	साधूनां	सत्पुरुषोंकी
न	नहीं है; किन्तु	परित्राणाय	रक्षाके लिए एवं
सत्	उत्तम (देवादि)	क्रीडा अर्थः	खेलके लिए
असत्	अधम (पशु आदि)	कल्पते	(अवतार) कल्पित
मिश्र	मिश्रित (मनुष्य)		कर लेते हैं ॥३९॥

सत्त्वं रजस्तम इति भजते निर्गुणो गुणान् ।
क्रीडन्नतीतोऽत्र गुणैः सृजत्यवति हन्त्यजः ॥४०॥

सत्त्वं रजः तम इति भजते निर्गुणः गुणान् क्रीडन् अतीतः अत्र गुणैः सृजति अवति हन्ति अजः ॥४०॥

निर्गुणः अजः	निर्गुण, अजन्मा (वे)	भजते	स्वीकार करके
अतीतः	(गुणोंसे) अतीत (अस्पृष्ट) रहते	अत्र	यहां (उन)
सत्त्वं रजः	सत्व, रज,	गुणैः	गुणोंके द्वारा
तम इति	तम इन	सृजति	सृष्टि करते
गुणान्	गुणोंको	अवति	पालन करते तथा
		हन्ति	संहार करते हैं ॥४०॥

यथा भ्रमरिकादृष्ट्या भ्राम्यतीव महीयते ।
चित्ते कर्तरि तत्रात्मा कर्तेवाहंधिया स्मृतः ॥४१॥

यथा भ्रमरिका दृष्ट्या भ्राम्यति इव महि ईयते चित्ते कर्तरि तत्र आत्मा कर्ता इव अहंधिया स्मृतः ॥४१॥

यथा	जैसे	चित्ते कर्तरि	चित्तके कर्ता होने-
भ्रमरिका	वेगसे चक्कर लगाने-		पर भी
	वालेकी	अहंधिया	अहंकार बुद्धिसे
दृष्टया	दृष्टिमें	तत्र आत्मा	वहां आत्मा
महि	पृथ्वी	कर्ता इव	कर्ताके समान
भ्राम्यति इव	घूमती-सी	स्मृतः	कहा जाता है
ईयते	लगती है (वैसे ही)		॥४१॥

युवयोरेव नैवायमात्मजो भगवान् हरिः ।
सर्वेषामात्मजो ह्यात्मा पिता माता स ईश्वरः ॥४२॥

युवयोः एव न एव अयं आत्मजः भगवान् हरिः सर्वेषां आत्मजः हि आत्मा पिता माता स ईश्वरः ॥४२॥

अयं भगवान्	ये भगवान्	ईश्वरः	सर्वेश्वर
हरिः	श्रीहरि	सर्वेषां	सभीके
युवयोः एव	आप दोनोंके ही	आत्मा	आत्मा
आत्मजः न	पुत्र नहीं	पिता माता	पिता और माता
एव	ही हैं,		हैं ॥४२॥
हि स	क्योंकि वे		

दृष्टं श्रुतं भूतभवद् भविष्यत्
स्थास्नुश्चरिष्णुर्महदल्पकं च ।
विनाच्युताद् वस्तु तरां न वाच्यं
स एव सर्वं परमार्थभूतः ॥४३॥

दृष्टं श्रुतं भूत भवत् भविष्यत् स्थास्नुः चरिष्णुः महत् अल्पकं च विना अच्युतात् वस्तु तरां न वाच्यं स एव सर्वं परमार्थभूतः ॥४३॥

दृष्टं श्रुतं	देखी-सुनी,	स्थास्नुः	स्थावर-
भूत भवत्	भूत, वर्तमान,	चरिष्णुः	जंगम,
भविष्यत्	भविष्यकी	च महत्	तथा बड़ी या

अल्पकं	छोटी	स सर्वं एव	वही सर्वरूप ही
वस्तु तरां	कोई भी वस्तु	परमार्थभूतः	परमार्थ स्वरूप
विना अच्युतात्	अच्युतको छोड़कर		हैं ॥४३॥
वाच्यं न	कहने योग्य नहीं है,		

श्रीशुक उवाच*

एवं निशा सा ब्रुवतोर्व्यतीता
नन्दस्य कृष्णानुचरस्य राजन् ।
गोप्यः समुत्थाय निरूप्य दीपान्
वास्तून् समभ्यर्च्य दधीन्यमन्थन् ॥४४॥

एवं निशा सा ब्रुवतः व्यतीता नन्दस्य कृष्ण अनुचरस्य राजन् गोप्यः समुत्थाय निरूप्य दीपान् वास्तून् सम् अभ्यर्च्य दधीन् न्यमन्थन् ॥४४॥

राजन्	राजन्	समुत्थाय	उठकर
एवं	इस प्रकार	दीपान् निरूप्य	दीपक जलाकर
सा निशा	वह रात्रि	वास्तून्	वास्तुदेवका (देहली-
नन्दस्य	नन्दजी और		पर)
कृष्ण	श्रीकृष्णके	सम् अभ्यर्च्य	भली प्रकार पूजन
अनुचरस्य	सेवक उद्धवकी		करके
ब्रुवतः	बातचीतमें	दधीन्	दहीको
व्यतीता	बीत गयी (फिर)	न्यमन्थन्	मथना प्रारम्भ
गोप्यः	गोपियोंने		किया ॥४४॥

ता दीपदीप्तैर्मणिभिर्विरेजू
रज्जूर्विकर्षद्भुजकङ्कणस्रजः ।

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

चलन्नितम्बस्तनहारकुण्डल-
त्विषत्कपोलारुणकुङ्कुमाननाः ॥४५॥

ताः दीप दीप्तैः मणिभिः विरेजू रज्जूः विकर्षत् भुज कङ्कण स्रजः चलत् नितम्ब स्तन हार कुण्डल अन्वित कपोल अरुण कुङ्कुम आननाः ॥४५॥

रज्जूः विकर्षत्	रस्सी खींचती	कुंकुम	कुंकुम लगनेसे
भुज	भुजाओंके कारण	अरुण	लाल
कङ्कण स्रजः	कंकण, माला,	आननाः	मुखोंवाली
नितम्ब	नितम्ब,	ताः	वे गोपियां
स्तन, हार	स्तन, हार	दीप दीप्तैः	दीपकसे चमकती
चलत्	हिलते हुए,	मणिभिः	मणियोंसे
कुण्डल अन्वित	कुण्डल युक्त	विरेजुः	अत्यन्त शोभित हुईं ॥४५॥
कपोल	कपोल		

उद्गायतीनामरविन्दलोचनं
व्रजाङ्गनानां दिवमस्पृशद् ध्वनिः ।
दध्नश्च निर्मन्थनशब्दमिश्रितो
निरस्यते येन दिशाममङ्गलम् ॥४६॥

उद्गायतीनां अरविन्दलोचनं व्रजाङ्गनानां दिवं अस्पृशत् ध्वनिः दध्नः च निर्मन्थन शब्द मिश्रितः निरस्यते येन दिशां अमङ्गलम् ॥४६॥

अरविन्दलोचनं	कमल-लोचन श्रीकृष्णके चरित	ध्वनिः	शब्द
येन दिशां	जिससे दिशाओंके	दध्नः निर्मन्थन	दही मथनेके
अमङ्गलं	अशुभ	शब्द मिश्रितः	शब्दसे मिलकर
निरस्यते	दूर हो जाते हैं	च	तो
उद्गायतीनां	गाती हुई	दिवं अस्पृशत्	स्वर्गको छूने लगा ॥४६॥
व्रजाङ्ग नानां	व्रजकी गोपियोंका		

भगवत्युदिते सूर्ये नन्दद्वारि व्रजौकसः ।
दृष्ट्वा रथं शातकौम्भं कस्यायमिति चाब्रुवन् ॥४७॥

भगवति उदिते सूर्ये नन्दद्वारि व्रजौकसः दृष्ट्वा रथं शातकौम्भं कस्य अयं इति च अब्रुवन् ॥४७॥

भगवति	भगवान	रथं दृष्ट्वा	देखकर
सूर्ये उदिते	सूर्यके उदय हो जानेपर	व्रजौकसः	व्रजवासी
		कस्य अयं	यह किसका है
नन्दद्वारि	नन्दजीके द्वारपर	इति च	इस प्रकार
शातकौम्भं	स्वर्ण मण्डित	अब्रुवन्	कहने लगे ॥४७॥

अक्रूर आगतः किं वा यः कंसस्यार्थसाधकः ।
येन नीतो मधुपुरीं कृष्णः कमललोचनः ॥४८॥

अक्रूरः आगतः किं वा यः कंसस्य अर्थ साधकः येन नीतः मधुपुरीं कृष्णः कमललोचनः ॥४८॥

किं अक्रूरः	क्या अक्रूर	येन	जो
आगतः	(फिर) आ गया ?	कमललोचनः	कमल-नयन
यः कंसस्य	जो कंसका	कृष्णः	श्रीकृष्णको
अर्थ साधकः	प्रयोजन सिद्ध करने वाला था,	मधुपुरीं नीतः	मथुरा ले गया ॥४८॥

किं साधयिष्यत्यस्माभिर्भर्तुः प्रेतस्य निष्कृतिम् ।
इति स्त्रीणां वदन्तीनामुद्धवोऽगात् कृताह्निकः ॥४९॥

किं साधयिष्यति अस्माभिः भर्तुः प्रेतस्य निष्कृतिं इति स्त्रीणां वदन्तीनां उद्धवः अगात् कृत आह्निकः ॥४९॥

किं अस्माभिः	क्या हम लोगोंसे	प्रेतस्य भर्तुः	मरे हुए अपने स्वामीका

निष्कृतिं	बदला	**वदन्तीनां**	कहते हुए ही
साधयिष्यति	सिद्ध करेगा (हमारे मांससे उसे पिण्ड देगा)	**कृत आह्निकः**	दैनन्दिन (सन्ध्यादि) करके
इति स्त्रीणां	इस प्रकार स्त्रियोंके	**उद्धवः अगात्**	उद्धव आ गये ॥४६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे
पूर्वार्धे नन्दशोकापनयनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

तं वीक्ष्य कृष्णानुचरं व्रजस्त्रियः
प्रलम्बबाहुं नवकञ्जलोचनम् ।
पीताम्बरं पुष्करमालिनं लस-
न्मुखारविन्दं मणिमृष्टकुण्डलम् ॥१॥

तं वीक्ष्य कृष्ण अनुचरं व्रजस्त्रियः प्रलम्ब बाहुं नवकञ्ज लोचनं पीताम्बरं पुष्करमालिनं लसत् मुखारविन्दं मणिमृष्ट कुण्डलम् ॥१॥

प्रलम्ब	आजानु लम्बी	कुण्डलं लसत्	कुण्डलोंसे शोभित
बाहुं	भुजावाले,	मुखारविन्दं	कमल-मुख
नवकञ्ज	नवीन कमलके	तं	उन
	समान	कृष्ण अनुचरं	श्रीकृष्ण-सेवकको
लोचनं	नेत्रोंवाले	वीक्ष्य	देखकर
पीताम्बरं	पीताम्बरधारी	व्रजस्त्रियः	व्रजकी स्त्रियां
पुष्करमालिनं	कमल माली		(परस्पर बोलीं)
मणिमृष्ट	चमकते मणियोंके		॥१॥

शुचिस्मिताः कोऽयमपीच्यदर्शनः
कुतश्च कस्याच्युतवेषभूषणः ।
इति स्म सर्वाः परिवव्रुरुत्सुका-
स्तमुत्तमश्लोकपदाम्बुजाश्रयम् ॥२॥

शुचिस्मिताः कः अयं अपीच्य दर्शनः कुतः च कस्य अच्युत वेष भूषणः इति स्म सर्वाः परिवव्रुः उत्सुकाः तं उत्तमश्लोक पदाम्बुज आश्रयम् ॥२॥

सर्वाः	वे सब	कस्य	किसके दूत हैं ?
शुचिस्मिताः	पवित्र मुसुकान वाली	इति उत्सुकाः स्म	इस प्रकार उत्सुक होकर
अपीच्य दर्शनः	देखनेमें परम सुन्दर	तं उत्तमश्लोक	उन पवित्र कीर्ति (भगवान) के
अयं कः	ये कौन हैं ?	पदाम्बुज	चरण-कमलोंके
कुतः च	कहाँसे आये हैं ?	आश्रयं जनं	आश्रित भक्तिको
अच्युत	श्रीकृष्णके समान	परिवव्रुः	घेरकर खड़ी हो गयीं ॥२॥
वेश-भूषणः	वेष-भूषा वाले		

तं प्रश्रयेणावनताः सुसत्कृतं
सव्रीडहासेक्षणसूनृतादिभिः ।
रहस्यपृच्छन्नुपविष्टमासने
विज्ञाय सन्देशहरं रमापतेः ॥ ३ ॥

तं प्रश्रयेण अवनताः सुसत्कृतं सव्रीडहास ईक्षण सूनृत आदिभिः रहसि अपृच्छन्नुपविष्टं आसने विज्ञाय सन्देशहरं रमापतेः ॥३॥

तं रमापतेः	उनको लक्ष्मीनाथ श्रीकृष्णका	ईक्षण	चितवन तथा
सन्देशहरं	सन्देश लाने वाला	सूनृत आदिभिः	मधुरवाणी आदिसे
विज्ञाय	जानकर	सुसत्कृतं	अच्छी प्रकार सत्कार किये गये से
प्रश्रयेण	विनम्रतासे	रहसि उपविष्टं	एकान्तमें बैठेसे
अवनताः	झुककर	अपृच्छन्	पूछा ॥३॥
सव्रीडहास	लज्जापूर्ण हंसी,		

गोप्य ऊचुः*

जानीमस्त्वां यदुपतेः पार्षदं समुपागतम् ।
भर्त्रेह प्रेषितः पित्रोर्भवान् प्रियचिकीर्षया ॥ ४ ॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोमें नहीं है ।

जानीमः त्वां यदुपतेः पार्षदं समुपागतं भर्त्रा इह प्रेषितः पित्रोः भवान् प्रियचिकीर्षया ॥४॥

जानीमः	हम जानती हैं कि	प्रियचिकीर्षया	प्रसन्न करनेकी इच्छासे
भवान्	आप	त्वां प्रेषितः	आपको भेजा है,
यदुपतेः	श्रीयदुनाथके	समुपागतं	(अतः उनके)
पार्षदं	पार्षद (सेवक) हैं		समीप आये
भर्त्रा इह	आपके स्वामीने यहाँ		हैं ॥४॥
पित्रोः	माता-पिताको		

अन्यथा गोव्रजे तस्य स्मरणीयं न चक्ष्महे ।
स्नेहानुबन्धो बन्धनां मुनेरपि सुदुस्त्यजः ॥ ५ ॥

अन्यथा गोव्रजे तस्य स्मरणीयं न चक्ष्महे स्नेहः अनुबन्धः बन्धूनां मुनेः अपि सुदुस्त्यजः ॥५॥

अन्यथा तस्य	अन्यथा उनका	बन्धूनां	अपने सम्बन्धियों के
गोव्रजे	(इस) गायोंके गोष्ठमें	स्नेहः अनुबन्धः	स्नेहका दृढ़ बन्धन
स्मरणीयं	कोई स्मरण करने योग्य	सुदुस्त्यजः	छोड़ना कठिन होता है ॥५॥
न चक्ष्महे	नहीं दिखाई देता,		
मुनेः अपि	मुनियोंके लिए भी		

अन्येष्वर्थकृता मैत्री यावदर्थविडम्बनम् ।
पुम्भिः स्त्रीषु कृता यद्वत् सुमनस्स्विव षट्पदैः ॥ ६ ॥

अन्येषु अर्थकृता मैत्री यावत् अर्थं विडम्बनं पुम्भिः स्त्रीषु कृता यद्वत् सुमनः सु इव षट्पदैः ॥६॥

अन्येषु	दूसरोंसे तो		गयी है,
अर्थकृता	प्रयोजनवश की	यावत् अर्थं	जबतक प्रयोजन है

मैत्री विडम्बनं	मित्रताका स्वांग होता है,	**स्त्रीषु कृता**	स्त्रियोंसे की गयी
सुमनः सु	पुष्पोंसे	**पुम्भिः**	पुरुषोंकी (मित्रता)
षट्पदैः इव	भ्रमरोंके समान		है ॥६॥

निस्स्वं त्यजन्ति गणिका अकल्पं नृपतिं प्रजाः ।
अधीतविद्या आचार्यमृत्विजो दत्तदक्षिणम् ॥ ७ ॥

निः स्वं त्यजन्ति गणिका अकल्पं नृपतिं प्रजाः अधीतविद्या आचार्यं ऋत्विजः दत्त दक्षिणम् ॥७॥

निःस्वं गणिका	धनहीनको वेश्या,	**आचार्यं**	आचार्यको
अकल्पं नृपतिं	(रक्षामें) असमर्थ राजाको	**ऋत्विजः**	यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण
प्रजाः	प्रजा	**दत्त दक्षिणम्**	दक्षिणा दे चुके यजमानको
अधीतविद्या	विद्याध्ययन करके (शिष्य)	**त्यजन्ति**	छोड़ देते हैं ॥७॥

खगा वीतफलं वृक्षं भुक्त्वा चातिथयो गृहम् ।
दग्धं मृगास्तथारण्यं जारो भुक्त्वा रतां स्त्रियम् ॥ ८ ॥

खगा वीतफलं वृक्षं भुक्त्वा च अतिथयः गृहं दग्धं मृगाः तथा अरण्यं जारः भुक्त्वा रतां स्त्रियम् ॥८॥

वीतफलं	फल समाप्त हो जानेपर	**मृगाः**	मृगगण और
वृक्षं खगा	वृक्षको पक्षी,	**जारः**	जार-पुरुषको
च भुक्त्वा	तथा भोजन करके	**भुक्त्वा**	भोग करके
गृहं अतिथयः	घरको अतिथिगण,	**रतां स्त्रियं**	अनुरागिणी स्त्री को (त्याग देता है)
तथा दग्धं अरण्यं	तथा जले वनको		॥८॥

श्रीशुकउवाच*

इति गोप्यो हि गोविन्दे गतवाक्कायमानसाः ।
कृष्णदूते व्रजं याते उद्धवे त्यक्तलौकिकाः ॥ ९ ॥

इति गोप्यः हि गोविन्दे गत वाक् काय मानसाः कृष्णदूते व्रजं याते उद्धवे त्यक्त लौकिकाः ॥९॥

हि गोप्यः	क्योंकि गोपियाँ	उद्धवे	उद्धवके
गोविन्दे	गोविन्दमें	व्रजं याते	ब्रजमें आनेपर
वाक् काय	वाणी शरीर,	त्यक्त लौकिकाः	लौकिक (घरके) कामोंको छोड़कर
मानसाः	मनसे	इति	इस प्रकार (चर्चा में लग गयीं) ॥९॥
गत	तन्मय थीं		
कृष्णदूते	श्रीकृष्णके दूत		

गायन्त्यः प्रियकर्माणि रुदत्यश्च गतह्रियः ।
तस्य संस्मृत्य संस्मृत्य यानि कैशोरबाल्ययोः ॥१०॥

गायन्त्यः प्रिय कर्माणि रुदन्त्यः च गतह्रियः तस्य संस्मृत्य संस्मृत्य यानि कैशोर बाल्ययोः ॥१०॥

तस्य प्रिय	उन प्रियतमके	गायन्त्यः	गाती हुई
कैशोर बाल्ययोः	किशोरावस्था तथा बचपनके	च गतह्रियः	तथा लज्जा रहित होकर
यानि कर्माणि	जो कर्म हैं	रुदन्त्यः	रोने लगीं ॥१०॥
संस्मृत्य संस्मृत्य	उनको बारबार स्मरण करके		

काचिन्मधुकरं दृष्ट्वा ध्यायन्ती कृष्णसङ्गमम् ।
प्रियप्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वेदमब्रवीत् ॥११॥

काचित् मधुकरं दृष्ट्वा ध्यायन्ती कृष्ण सङ्गमं प्रिय प्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वा इवं अब्रवीत् ॥११॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

काचित्	कोई एक
कृष्णसङ्गमं	श्रीकृष्ण-समागम का
ध्यायन्ती	ध्यान करती हुई
मधुकरं दृष्ट्वा	भौंरेको देखकर (उसे)
प्रिय प्रस्थापितं	प्रियतमका भेजा
दूतं कल्पयित्वा	दूत मानकर
इदं अब्रवीत्	यह बोली ॥११॥

गोप्युवाच

मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्याः
कुचविलुलितमालाकुङ्कुमश्मश्रुभिर्नः ।
बहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं
यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥१२॥

मधुप कितवबन्धो मा स्पृश अंङ्घ्रि सपत्न्याः कुच विलुलित माला कुङ्कुम श्मश्रुभिः नः वहतु मधुपतिः तत् मानिनीनां प्रसादं यदु सदसि विडम्ब्यं यस्य दूतः त्वं ईदृक् ॥१२॥

कितवबन्धो	दूर्तके मित्र
मधुप	भ्रमर !
सपत्न्याः	सौतके
कुच विलुलित माला कुङ्कुम	स्तनोंपर हिलती मालामें लगे कुंकुम लगी
श्मश्रुभिः	दाढ़ीसे
नः अंङ्घ्रि	हमारे पैर
मा स्पृश	मत छू,
तत् मानिनीनां	उन मानिनियोंका
प्रसादं	प्रसाद जो
यदु सदसि	यादवोंकी सभामें
विडम्ब्यं	उपहास योग्य है
मदुपतिः वहतु	यदुनाथ ही धारण करें,
मस्य दूतः	जिनका दूत
त्वं ईदृक्	तू ऐसा (क्षणिक प्रेम वाला) है ॥१२॥

सकृदधरसुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वा
सुमनस इव सद्यस्तत्यजेऽस्मान् भवादृक्

परिचरित कथं तत्पादपद्मं तु पद्मा
ह्यपि बत हृतचेता उत्तमश्लोकजल्पैः ॥१३॥

सकृत् अधर सुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वा सुमनस इव सद्यः तत्यजे अस्मान् भवादृक् परिचरित कथं तत् पादपद्मं तु पद्मा हि अपि बत हृत चेता उत्तमश्लोक जल्पैः ॥१३॥

स्वां मोहिनीं	अपना मादक		कमलोंकी तो
अधर सुधां	अधरामृत	पद्मा कथं	लक्ष्मी कैसे
सकृत् पाययित्वा	केवल एक वार पिलाकर	परिचरित	सेवा करती है
		उत्तमश्लोक	(उन) पुण्यकीर्ति की
सुमनस	पुष्पोंकी		
भवादृक्	तुम्हारे समान	जल्पैः	(चटकीली) बातोंने
अस्मान् तत्यजे	(उसने) हम सबको त्याग दिया,	अपि बत	सम्भवतः
		हृत चेता	उसका चित्त चुरा लिया होगा ॥१३॥
तत्पादपद्मं तु	उसके चरण-		

किमिह बहु षडङ्घ्रे गायसि त्वं यदूना-
मधिपतिमगृहाणामग्रतो नः पुराणम् ।
विजयसखसखीनां गीयतां तत्प्रसङ्गः
क्षपितकुचरुजस्ते कल्पयन्तीष्टमिष्टाः ॥१४॥

किं इह बहु षडङ्घ्रे गायसि त्वं यदूनां अधिपतिं अगृहाणां अग्रतः नः पुराणं विजयसख सखीनां गीयतां तत् प्रसङ्गः क्षपित कुचरुजः ते कल्पयन्ति इष्टं इष्टाः ॥१४॥

षडङ्घ्रे	भ्रमर !	बहु किं गायसि	बहुत वर्णन क्यों करता है,
नः अगृहाणां	हम भवनहीना (वनवासियों)के	पुराणं	पुराण-पुरुष
अग्रतः इह	आगे यहाँ	विजयसख	अर्जुनके सखाका
यदूनां अधिपतिं	यदुनाथका	प्रसङ्गः	चरित्

तत् सखीनां	उनकी सखियोंको		आराधिता
गीयतां	सुनाओ	ते इष्टं	तेरा अभीष्ट
क्षपित कुचरुजः	वे हृदय-रोग रहिता	कल्पयन्ति	प्रदान करेंगी ॥१४॥
इष्टाः	(चाटुकारी से)		

दिवि भुवि च रसायां काः स्त्रियस्तन्दुरापाः
कपटरुचिरहासभ्रूविजृम्भस्य याः स्युः ।
चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं का
अपि च कृपणपक्षे ह्युत्तमश्लोकशब्दः ॥१५॥

दिवि भुवि च रसायां काः स्त्रियः तत् दुरापाः कपटरुचिर हास भ्रू विजृम्भस्य याः स्युः चरणरज उपास्ते यस्य भूतिः वयं का अपि च कृपण पक्षे हि उत्तमश्लोक शब्दः ॥१५॥

दिवि भुवि	स्वर्ग, पृथ्वी,	भूतिः उपास्ते	लक्ष्मी उपासना
च रसायां	तथा पातालमें		करती हैं
याः काः स्त्रियः	ऐसी कौनसी स्त्री	वयं का	(उनके लिए) हम
	है जो		क्या होती हैं,
कपटरुचिर	कपटपूर्ण सुन्दर	अपि च	किन्तु
हास	मुसकान तथा	हि उत्तमश्लोक	क्योंकि (वे) उत्तम-
भ्रू विजृम्भस्य	भौंह मटकाने वाले		श्लोक
तत् दुरापाः स्युः	उनके लिए	शब्दः	उपाधिधारी हैं,
	दुष्प्राप्य हो,	कृपण पक्षे	दीनोंपर दयाके
यस्य चरणरज	जिनके पद-रजकी		पक्षमें है ॥१५॥

विसृज शिरसि पादं वेद्म्यहं चाटुकारै-
रनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात् ।
स्वकृत इह विसृष्टापत्यपत्यन्यलोका
व्यसृजदकृतचेताः किं नु संधेयमस्मिन् ॥१६॥

विसृज शिरसि पादं वेद्मि अहं चाटुकारैः अनुनय विदुषः ते अभि एत्य दौत्यैः मुकुन्दात् स्वकृत इह विसृष्ट अपत्य पति अन्य लोका व्यसृजत् अकृत चेताः किं नु सन्धेयं अस्मिन् ॥१६॥

शिरसि पादं	पैर परसे (अपना) सिर	अपत्य पति	पुत्र-पति,
		अन्य लोका	दूसरे सब लोक
विसृज	हटा ले,	विसृष्ट	(जिन्होंने) त्याग दिये
मुकुन्दात्	मुकुन्दके		
दौत्यैः अभि एत्य	पाससे दूतका काम करने आये	इह व्यसृजत्	उन्हें यहाँ छोड़ दिया
ते अनुनय विदुषः	तुझ अनुनय-विनय करनेमें चतुरकी	अकृत चेताः	उस अकृतज्ञ चित्तसे
		अस्मिन् नु किं	इस विषयमें भला क्या
चाटुकारैः	चापलूसीको		
अहं वेद्मि	मैं समझती हूँ,	सन्धेयं	सन्धि करने योग्य है ॥१६॥
स्वकृत	अपने लिए		

मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्यधे लुब्धधर्मा
स्त्रियमकृत विरूपां स्त्रीजितः कामयानाम् ।
बलिमपि बलिमत्त्वावेष्टयद् ध्वाङ्क्षवद् य-
स्तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथार्थः ॥१७॥

मृगयुः इव कपीन्द्रं विव्यधे लुब्धधर्मा स्त्रियं अकृत विरूपां स्त्रीजितः कामयानां बलिं अपि बलिं मत्वा वेष्टयत् ध्वांक्षवत् यः तत् अलं असित सख्यैः दुस्त्यजः तत् कथा अर्थः ॥१७॥

लुब्धधर्मा	व्याधके समान क्रूर होकर	विव्यधे	बींध दिया,
		स्त्रीजितः	स्त्री (सीता) के वशमें होकर
कपीन्द्रं	वानरराज बालि को	कामयानां	(उनको) चाहने वाली
मृगयुः इव	अखेट पशुकी भाँति	स्त्रियं	स्त्री शूर्पणखाको

विरूपां अकृत	कुरूपा बना दिया,	तत् असित	अतः (इन) कालोंकी
बलि अपि	दैत्यराज बलिको भी	सख्यैः	मित्रतासे
बलि मत्वा	पूजा-ग्रहण करके भी	अलं	बहुत होगया, किन्तु
ध्वांक्षवत्	कौएके समान (कुटिल) होकर	तत् कथा अर्थः	उसकी कथा (चर्चा) से प्रयोजन
वेष्टयत्	बांध लिया	दुस्त्यजः	छूटना बहुत कठिन है ॥१७॥

यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्
सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः ।
सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना
बहव इह विहङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति ॥१८॥

यत् अनुचरित लीला कर्णपीयूष विप्रुट् सकृत् अदन विधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः सपदि गृह कुटुम्बं दीनं उत्सृज्य दीना बहव इह विहङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति ॥१८॥

यत् अनुचरित	जिनकी की हुई	दीनं गृह कुटुम्बं	दुःखी घर-परिवारको
लीला	लीला रूपी	सपदि उत्सृज्य	तत्काल त्यागकर
कर्णपीयूष	कर्णामृतकी	बहव दीना	बहुतसे बेचारे
विप्रुट्	बूँद मात्रको	विहङ्गा इव	पक्षियोंके समान
सकृत् अदन	एक ही बार पीनेसे	इह भिक्षुचर्यां	इस संसारमें भिखारी वृत्तिसे
विधूतद्वन्द्वधर्मा	सब (सुख-दुःखादि) द्वन्द्व धर्मोंसे छूटे	चरन्ति	घूमते हैं ॥१८॥
विनष्टाः	(लोकसे) नष्ट हुए		

वयमृतमिव जिह्मव्याहृतं श्रद्दधानाः
कुलिकरुतमिवाज्ञाः कृष्णवध्वो हरिण्यः ।

ददृशुरसकृदेतत्तन्नखस्पर्शतीव्र-
स्मररुज उपमन्त्रिन् भण्यतामन्यवार्ता ॥१६॥

वयं ऋतं इव जिह्मव्याहृतं श्रद्दधानाः कुलिकरुतं इव अज्ञाः कृष्णवध्वः हरिण्यः ददृशुः असकृत् एतत् तत् नखस्पर्श तीव्र स्मररुज उपमन्त्रिन् भण्यतां अन्यवार्ता ॥१६॥

अज्ञाः	अनजान	श्रद्दधानाः	श्रद्धा करके
कृष्णवध्वः	काले मृगकी पत्नी	नखस्पर्श	(उनके) नख-स्पर्शसे
हरिण्यः	हरिणियां	तीव्र एतत्	बढ़े इस
कुलिकरुतं	व्याधके शब्दके	स्मररुज	काम-रोगको
इव	समान	असकृत् ददृशुः	निरन्तर देखती हैं
तत्	उनकी	उपमन्त्रिन्	अतः हे दूत !
जिह्मव्याहृतं	कपटपूर्ण बातोंको	अन्यवार्ता	कोई दूसरी बात
ऋतं इव	सत्यकी भांति	भण्यतां	करो ॥१६॥

प्रियसख पुनरागाः प्रेयसा प्रेषितः किं
वरय किमनुरुन्धे माननीयोऽसि मेऽङ्ग ।
नयसि कथमिहास्मान् दुस्त्यजद्वन्द्वपार्श्वं
सततमुरसि सौम्य श्रीर्वधूः साकमास्ते ॥२०॥

प्रिय सख पुनः आगाः प्रेयसा प्रेषितः किं वरय किं अनुरुन्धे माननीयः असि मे अङ्ग नयसि कथं इह अस्मान् दुस्त्यज द्वन्द्व पार्श्वं सततं उरसि सौम्य श्रीः वधूः साकं आस्ते ॥२०॥

प्रिय सख	प्रियके सखा !	अंग मे	प्रिय (तुम) हमारे
पुनः आगाः	फिर लौट आये ?	माननीयः असि	सम्मान्य हो
किं	क्या (हमारे)	वरय किं	मांगो, क्या
प्रेयसा	प्रियतमने	अनुरुन्धे	चाहते हो ?
प्रेषितः	भेजा है ?	द्वन्द्व	जिनका सामीप्य

दुस्त्यजः	त्यागना बहुत कठिन है	सौम्य	सौम्य !
इह अस्मान्	यहांसे हम लोगोंको	उरसि	(वे) वक्षपर अपनी
पार्श्वं	(उनके) समीप	श्रीः वधूः	पत्नी लक्ष्मीको
कथं नयसि	कैसे ले जाओगे ?	सततं साकं	निरन्तर साथ लिए
		आस्ते	रहते हैं ॥२०॥

अपि बत मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनाऽऽस्ते
स्मरति स पितृगेहान् सौम्य बन्धूंश्च गोपान् ।
क्वचिदपि स कथा नः किङ्करीणां गृणीते
भुजमगुरुसुगन्धं मूर्ध्न्यधास्यत् कदा नु ॥२१॥

अपि बत मधुपुर्यां आर्यपुत्रः अधुना आस्ते स्मरति स पितृगेहान् सौम्य बन्धून् च गोपान् क्वचित् अपि स कथा नः किङ्करीणां गृणीते भुजं अगुरु सुगन्धं मूर्ध्नि धास्यत् कदा नु ॥२१॥

सौम्य	सौम्य !	क्वचित् अपि	कभी क्या
आर्यपुत्रः	आर्य-पुत्र (श्रीकृष्ण चन्द्र)	नः किङ्करीणां कथा स गृणीते	हम दासियोंकी चर्चा वे करते हैं ?
अपि बत	अहो	अगुरु	अगुरुकी
अधुना	इस समय	सुगन्धं	सुगन्धवाली
मधुपुर्यां आस्ते	मथुरामें ही तो हैं ?	भुजं	(अपनी) भुजाको
स	वे	नु कदा	भला कब
पितृगेहान्	अपने पिताके घरको	मूर्ध्नि	(हमारे) मस्तकपर
च बन्धून्	तथा सम्बन्धियोंको	धास्यत्	रखेंगे ॥२१॥
स्मरति	स्मरण करते हैं ?		

श्रीशुक उवाच

अथोद्धवो निशम्यैवं कृष्णदर्शनलालसाः ।
सान्त्वयन् प्रियसन्देशैर्गोपीरिदमभाषत ॥२२॥

अथ उद्धवः निशम्य एवं कृष्णदर्शन लालसाः सान्त्वयन् प्रिय सन्देशैः गोपीः इदं अभाषत ॥२२॥

अथ उद्धवः	तब उद्धवने	प्रिय	(उनके) प्रियतमके
एवं	इस प्रकारकी	सन्देशैः	सन्देशसे
कृष्णदर्शन	श्रीकृष्ण-दर्शनकी	सान्त्वयन्	सान्त्वना देते हुए
लालसाः	लालसा	गोपीः इदं	गोपियोंसे यह
निशम्य	सुनकर	अभाषत	बोले ॥२२॥

उद्धव उवाच

अहो यूयं स्म पूर्णार्था भवत्यो लोकपूजिताः ।
वासुदेवे भगवति यासामित्यर्पितं मनः ॥२३॥

अहो यूयं स्म पूर्ण अर्था भवत्यः लोक पूजिताः वासुदेवे भगवति यासां इति अर्पितं मनः ॥२३॥

भगवति	भगवान	पूर्ण अर्था स्म	सम्पूर्ण कृतार्थ हो,
वासुदेवे	वासुदेवमें	भवत्यः	आप सब
यासां इति	जिनका इस प्रकार	लोक	सम्पूर्ण लोकोंमें
मनः अर्पितं	मन समर्पित है,	पूजिताः	पूजित हो ॥२३॥
अहो यूयं	अहो, आप सब तो		

दानव्रततपोहोमजपस्वाध्यायसंयमैः ।
श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते ॥२४॥

दान व्रत तपः होम जप स्वाधाय संयमैः श्रेयः भिः विविधैः च अन्यैः कृष्णे भक्तिः हि साध्यते ॥२४॥

हि दान व्रत	क्योंकि दान, व्रत,	विविधैः	प्रकारके
तपः होम	तप, हवन,	श्रेयः भिः	उत्तम कर्मोंसे
जप स्वाधाय	जप, वेदपाठ,	कृष्णे भक्तिः	श्रीकृष्णमें भक्ति
संयमैः च	संयम तथा	साध्यते	सिद्ध की जाती है ॥२४॥
अन्यैः	दूसरे अनेक		

भगवत्युत्तमश्लोके भवतीभिरनुत्तमा ।
भक्तिः प्रवर्तिता दिष्ट्या मुनीनामपि दुर्लभा ॥२५॥

भगवति उत्तमश्लोके भवतीभिः अनुत्तमा भक्तिः प्रवर्तिता दिष्ट्या मुनीनां अपि दुर्लभा ॥२५॥

दिष्ट्या	सौभाग्यवश	**उत्तमश्लोके**	उत्तम-श्लोकमें
मुनीनां अपि	मुनियोंके लिए भी	**भक्तिः**	भक्तिका
दुर्लभा	दुर्लभ	**प्रवर्तिता**	प्रचार किया है ॥२५॥
भगवति	भगवान		

दिष्ट्या पुत्रान् पतीन् देहान् स्वजनान् भवनानि च ।
हित्वावृणीत यूयं यत् कृष्णाख्यं पुरुषं परम् ॥२६॥

दिष्ट्या पुत्रान् पतीन् देहान् स्वजनान् भवनानि च हित्वा आवृणीत यूयं यत् कृष्ण आख्यं पुरुषं परम् ॥२६॥

दिष्ट्या	सौभाग्यवश	**हित्वा**	त्यागकर
यत् यूयं	जो आप सबने	**कृष्ण आख्यं**	श्रीकृष्ण नामके
पुत्रान् पतीन्	पुत्रों, पति,	**परं पुरुषं**	परम पुरुषको
देहान्	अपने शरीर,	**आवृणीत**	पूर्णतः वरण किया (अपनाया) है ॥२६॥
स्वजनान्	अपने सम्बन्धियों		
च भवनानि	तथा घरोंको		

सर्वात्मभावोऽधिकृतो भवतीनामधोक्षजे ।
विरहेण महाभागा महान् मेऽनुग्रहः कृतः ॥२७॥

सर्वात्मभावः अधिकृतः भवतीनां अधोक्षजे विरहेण महाभागा महान् मे अनुग्रहः कृतः ॥२७॥

महाभागा	महाभागाओ !	**अधिकृतः**	प्राप्त कर लिया है,
भवतीनां	आप लोगों द्वारा	**मे**	मुझपर (उसे
विरहेण	वियोगके द्वारा	**महान्**	दिखाकर) भारी
अधोक्षजे	भगवान हृषीकेशमें	**अनुग्रहः**	(आपने) अनुग्रह
सर्वात्मभावः	सर्वात्मभाव	**कृतः**	किया है ॥२७॥

श्रूयतां प्रियसन्देशो भवतीनां सुखावहः ।
यमादायागतो भद्रा अहं भर्तुः रहस्करः ॥२८॥

श्रूयतां प्रियसन्देशः भवतीनां सुख आवहः यं आदाय आगतः भद्रा अहं भर्तुः रहस्करः ॥२८॥

भद्रा	कल्याणियो !	**यं आदाय**	जिसे लेकर
भवतीनां	आप सबके लिए	**अहं भर्तुः**	मैं आपके स्वामीका
सुख आवहः	सुख देने वाला	**रहस्करः**	गुप्त कार्य करने वाला
प्रियसन्देशः	प्रियका सन्देश		
श्रूयतां	सुनें	**आगतः**	आया हूँ ॥२८॥

श्रीभगवानुवाच

भवतीनां वियोगो मे नहि सर्वात्मना क्वचित् ।
यथा भूतानि भूतेषु खं वाय्वग्निर्जलं मही ।
तथाहं च मनःप्राणभूतेन्द्रियगुणाश्रयः ॥२९॥

भवतीनां वियोगः मे न हि सर्वात्मना क्वचित् यथा भूतानि भूतेषु खं वायुः अग्निः जलं मही तथा अहं च मनः प्राण भूत इन्द्रिय गुण आश्रयः ॥२९॥

मे सर्वात्मना	मुझ सबकी आत्मासे	**मही**	पृथ्वी (ये)
भवतीनां	तुम सबका	**भूतानि**	पञ्चभूत (व्याप्त हैं)
क्वचित् वियोगः	कभी वियोग	**तथा अहं च**	वैसेही मैं भी
न हि	नहीं हो सकता, क्योंकि	**मनः प्राण भूत, इन्द्रिय**	मन, प्राण, पञ्चभूत, इन्द्रियों और
यथा भूतेषु	जैसे प्राणियोंमें		
खं वायुः	आकाश, वायु,	**गुण आश्रयः**	गुणोंका आश्रयः हूँ ॥२९॥
अग्निः जलं	अग्नि, जल		

आत्मन्येवात्मनाऽऽत्मानं सृजे हन्म्यनुपालये ।
आत्ममायानुभावेन भूतेन्द्रियगुणात्मना ॥३०॥

आत्मनि एव आत्मना आत्मानं सृजे हन्मि अनुपालये आत्ममाया अनुभावेन भूत इन्द्रिय गुण आत्मना ॥३०॥

आत्मनि एव	अपनेमें ही	आत्मानं	अपने
आत्ममाया	अपनी मायाके		(विश्वरूप) की
अनुभावेन	प्रभावसे	सृजे हन्मि	सृष्टि करता हूँ,
भूत इन्द्रिय	भूत, इन्द्रिय,		मारता हूँ
आत्मना	स्वरूप	अनुपालये	तथा पालन करता
गुण आत्मना	गुण स्वरूप		हूँ ॥३०॥

आत्मा ज्ञानमयः शुद्धो व्यतिरिक्तोऽगुणान्वयः ।
सुषुप्तिस्वप्नजाग्द्भिर्मायावृत्तिभिरीयते ॥३१॥

आत्मा ज्ञानमयः शुद्धः व्यतिरिक्तः गुण अन्वयः सुषुप्ति स्वप्न जाग्रत्भिः माया वृत्तिभि ईयते ॥३१॥

आत्मा ज्ञानमयः	आत्मा ज्ञानमय,	जाग्रत्भिः	जागरण इन
शुद्धः	शुद्ध	माया	मायाकी
गुण अन्वयः	गुणोंमें व्याप्त होने पर भी	वृत्तिभिः	वृत्तियोंसे
		ईयते	(उनमें एक रस रहने से) जाना
व्यतिरिक्तः	उनसे पृथक है,		जाता है ॥३१॥
सुषुप्ति	सुषुप्ति		
स्वप्न	स्वप्न		

येनेन्द्रियार्थान् ध्यायेत मृषा स्वप्नवदुत्थितः ।
तन्निरुन्ध्यादिन्द्रियाणि विनिद्रः प्रत्यपद्यत ॥३२॥

येन इन्द्रिय अर्थान् ध्यायेत मृषा स्वप्नवत् उत्थितः तत् निरुन्ध्यात् इन्द्रियाणि विनिद्रः प्रति अपद्यत ॥३२॥

स्वप्नवत्	स्वप्नके समान
मृषा	झूठे
इन्द्रिय अर्थान्	इन्द्रियोंके विषय को
येन	जिस (मन) से
ध्यायेत	ध्यान करता है,
उत्थितः	जागकर (सावधान होकर)
तत्	उस (मन) का तथा
इन्द्रियाणि	इन्द्रियोंका
निरुन्ध्यात्	निरोध करे
विनिद्रः	तब निद्राहीन (ज्ञान स्वरूप)
प्रति अपद्यत	स्थितिको प्राप्त करता है ॥३२॥

एतदन्तः समाम्नायो योगः सांख्यं मनीषिणाम् ।
त्यागस्तपो दमः सत्यं समुद्रान्ता इवापगाः ॥३३॥

एतत् अन्तः सम आम्नायः योगः सांख्यं मनीषिणां त्यागः तपः दमः सत्यं समुद्र अन्ता इव आपगाः ॥३३॥

आपगाः	नदियोंके
समुद्र	समुद्रमें
अन्ता इव	मिलनेके समान
मनीषिणां	मनस्वी पुरुषोंके
सम आम्नायः	वेदाभ्यास,
योगः सांख्यं	योग तथा सांख्य,
त्यागः तपः	त्याग, तपस्या,
दमः	इन्द्रिय दमन,
सत्यं	सत्य (आदि धर्मों) का
एतत् अन्तः	यही पर्यवसान है ॥३३॥

यत् त्वहं भवतीनां वै दूरे वर्ते प्रियो दृशाम् ।
मनसः संनिकर्षार्थं मदनुध्यानकाम्यया ॥३४॥

यत् तु अहं भवतीनां वै दूरे वर्ते प्रियः दृशां मनसः सन्निकर्ष अर्थं मत् अनुध्यान काम्यया ॥३४॥

यत् तु अहं	जो कि मैं
भवतीनां	तुम लोगोंका
प्रियः	प्रियतम
दृशां दूरे	दृष्टिसे दूर
वर्ते	रहता हूँ,
मत् अनुध्यान	मेरा निरन्तर ध्यान हो
काम्यया	इस इच्छासे

मनसः	मनकी	अर्थं	निकटताके लिए
सन्निकर्षं	अत्यन्त		है ॥३४॥

यथा दूरचरे प्रेष्ठे मन आविश्य वर्तते ।
स्त्रीणां च न तथा चेतः संनिकृष्टेऽक्षिगोचरे ॥३५॥

यथा दूरचरे प्रेष्ठे मन आविश्य वर्तते स्त्रीणां च न तथा चेतः सन्निकृष्टे अक्षिगोचरे ॥३५॥

स्त्रीणां च	स्त्रियोंका तो	अक्षिगोचरे	नेत्रोंके सम्मुख
यथा दूरचरे	जैसे दूर रहनेवाले	सन्निकृष्टे	अत्यन्त समीप रहने
प्रेष्ठे	प्रियतममें		पर
मन आविश्य	मन प्रवेश किये	चेतः न	चित्त नहीं रहता
वर्तते	रहता है		॥३५॥
तथा	वैसे		

मय्यावेश्य मनः कृत्स्नं विमुक्ताशेषवृत्ति यत् ।
अनुस्मरन्त्यो मां नित्यमचिरान्मामुपैष्यथ ॥३६॥

मयि आवेश्य मनः कृत्स्नं विमुक्त अशेष वृत्ति यत् अनुस्मरन्त्यः मां नित्यं अचिरात् मां उपैष्यथ ॥३६॥

अशेष वृत्ति	सम्पूर्ण वृत्तियाँ	अनुस्मरन्त्यः	बार-बार स्मरण
यत् विमुक्त	क्योंकि छूट गयी हैं,		करती हुई
कृत्स्नं मनः	सम्पूर्ण मनको	अचिरात्	अविलम्ब
मयि आवेश्य	मुझमें प्रविष्ट करके	मां उपैष्यथ	मुझे पा लोगी ॥३६॥
नित्यं मां	सदा मेरा		

या मया क्रीडता रात्र्यां वनेऽस्मिन् व्रज आस्थिताः ।
अलब्धरासाः कल्याण्यो माऽऽपुर्मद्वीर्यचिन्तया ॥३७॥

या मया क्रीडता रात्र्यां वने अस्मिन् व्रज आस्थिताः अलब्धरासाः कल्याण्यः मा आपुः मत् वीर्यचिन्तया ॥३७॥

कल्याण्यः	हे कल्याणियो !	अलब्धरासाः	रासमें नहीं आ सकी थीं
अस्मिन् व्रज	इस व्रजमें	मत्	वे मेरे
आस्थिताः	रहते हुए	वीर्यचिन्तया	पराक्रमके ध्यानसे
वने	वनमें	मा आपुः	मुझे प्राप्त हो गयी थीं ॥३७॥
मया रात्र्यां	मेरे रात्रिमें		
क्रीडता	क्रीडाके समय		
या	जो		

श्रीशुक उवाच

एवं प्रियतमादिष्टमाकर्ण्य व्रजयोषितः ।
ता ऊचुरुद्धवं प्रीतास्तत्सन्देशागतस्मृतीः ॥३८॥

एवं प्रियतम आदिष्टं आकर्ण्य व्रजयोषितः ता ऊचुः उद्धवं प्रीताः तत् सन्देश आगत स्मृतिः ॥३८॥

एवं	इस प्रकार	आगत स्मृतिः	स्मृति लौट आनेसे
प्रियतम	अपने परम प्रियका	प्रीताः	प्रसन्न होकर
आदिष्टं	आदेश	ता व्रजयोषितः	वे व्रजस्त्रियां
आकर्ण्य	सुनकर	उद्धवं ऊचुः	उद्धवसे बोलीं ॥३८॥
तत् सन्देश	उनके सन्देशसे		

गोप्य ऊचुः

दिष्ट्याहितो हतः कंसो यदूनां सानुगोऽघकृत् ।
दिष्ट्याऽऽप्तैर्लब्धसर्वार्थैः कुशल्यास्तेऽच्युतोऽधुना ॥३९॥

दिष्ट्या अहितः हतः कंसः यदूनां सानुगः अघकृत् दिष्ट्या आप्तैः लब्ध सर्वअर्थैः कुशली आस्ते अच्युतः अधुना ॥३९॥

यदूनां	यदुवंशियोंका	दिष्ट्या अहितः	सौभाग्यसे शत्रु
अघकृत्	अपराध करनेवाला	कंसः सानुगः	कंस अनुचरोंके साथ

हतः	मारा गया,	अधुना	इस समय
दिष्ट्या	सौभाग्यकी बात है कि	अच्युतः	श्रीकृष्णचन्द्र
		कुशली आस्ते	कुशलपूर्वक हैं ॥३६॥
आप्तैः	गुरुजनोंके साथ		
लब्ध सर्वअर्थैः	सब धन-धान्य प्राप्त करके		

कच्चिद् गदाग्रजः सौम्य करोति पुरयोषिताम् ।
प्रीतिं नः स्निग्धसव्रीडहासोदारेक्षणार्चितः ॥४०॥

कच्चित् गद अग्रजः सौम्य करोति पुर योषितां प्रीतिं नः स्निग्ध सव्रीडहास उदार ईक्षण अर्चितः ॥४०॥

सौम्य	सौम्य !	अर्चितः	पूजित होकर (जैसे हमसे करते थे)
कच्चित्	क्या		
गद अग्रजः	गदके बड़े भाई (श्रीकृष्ण)	पुर योषितां	नगरकी नारियोंसे (वैसी)
नः स्निग्ध	हमारी प्रेमपूर्ण	प्रीतिं करोति	प्रीति करते हैं ॥४०॥
सव्रीडहास	लज्जा पूर्ण हंसी,		
उदार ईक्षण	मनोहर चितवनसे		

कथं रतिविशेषज्ञः प्रियश्च वरयोषिताम् ।
नानुबध्येत तद्वाक्यैर्विभ्रमैश्चानुभाजितः ॥४१॥

कथं रति विशेषज्ञः प्रियः च वर योषितां न अनुबध्येत तत् वाक्यैः विभ्रमैः च अनुभाजितः ॥४१॥

रति विशेषज्ञः	रति चतुर	अनुभाजितः	बराबर सत्कृत होकर
च वर योषितां	तथा श्रेष्ठ स्त्रियोंके		
प्रियः	प्रिय	कथं न	कैसे नहीं
तत् वाक्यैः	उनके वचनों	अनुबध्येत	बँध जायँगे ॥४१॥
च विभ्रमैः	तथा हाव-भावसे		

अपि स्मरति नः साधो गोविन्दः प्रस्तुते क्वचित् ।
गोष्ठीमध्ये पुरस्त्रीणां ग्राम्याः स्वैरकथान्तरे ॥४२॥

अपि स्मरति नः साधो गोविन्दः प्रस्तुते क्वचित् गोष्ठीमध्ये पुर स्त्रीणां ग्राम्याः स्वैरकथा अन्तरे ॥४२॥

साधो	साधो !	क्वचित्	कभी
पुरस्त्रीणां	नगरकी स्त्रियोंकी	गोविन्दः	गोविन्द
गोष्ठीमध्ये	गोष्ठीके बीचमें	नः	हम
प्रस्तुते	चलनेवाली	ग्राम्याः	गांव वालियोंको
स्वैरकथा	स्वच्छन्द चर्चाके	अपि स्मरति	भी स्मरण करते हैं ॥४२॥
अन्तरे	मध्यमें		

ताः किं निशाः स्मरति यासु तदा प्रियाभि-
वृन्दावने कुमुदकुन्दशशाङ्करम्ये ।
रेमे क्वणच्चरणनूपुररासगोष्ठ्या-
मस्माभिरीडितमनोज्ञकथः कदाचित् ॥४३॥

ताः किं निशाः स्मरति यासु तदा प्रियाभिः वृन्दावने कुमुद कुन्द शशाङ्क रम्ये रेमे क्वणत् चरणनूपुर रास गोष्ठ्यां अस्माभिः ईडित मनोज्ञ कथः कदाचित् ॥४३॥

किं कदाचित्	क्या कभी	मनोज्ञ	उनकी मनमोहिनी
ताः निशाः	उन रात्रियोंको	कथः	लीलाओंके
स्मरति	स्मरण करते हैं	ईडित	गानसे स्तुत
यासु तदा	जिनमें उस समय	प्रियाभिः	प्रियतमाके साथ
कुमुद	कुमुदिनी	चरणनूपुर	चरणोंके नूपुर
कुन्द	कुन्द तथा	क्वणत्	बजाते हुए
शशाङ्क	पूर्ण चन्द्रसे	रास गोष्ठ्यां	रास-मण्डलीमें
रम्ये	रमणीय	रेमे	विहार किया था ॥४३॥
वृन्दावने	वृन्दावनमें		
अस्माभिः	हम लोगों द्वारा		

अप्येष्यतीह दाशार्हस्तप्ताः स्वकृतया शुचा ।
संजीवयन् नु नो गात्रैर्यथेन्द्रो वनमम्बुदैः ॥४४॥

अपि एष्यति इह दाशार्हः तप्ताः स्वकृतया शुचा सञ्जीवयन् नु नः गात्रैः यथा इन्द्रः वनं अम्बुदैः ॥४४॥

स्वकृतया	अपने लिए	वनं	वनोंको
शुचा तप्ताः	शोक-सन्तप्त होती	इन्द्रः	इन्द्र (जिलाते हैं)
नः	हम सबको	दाशार्हः	श्रीकृष्णचन्द्र
गात्रैः	अपने शरीरसे	इह	यहां
नु सञ्जीवयन्	पुनर्जीवित करते हुए	अपि एष्यति	क्या आवेंगे ॥४४॥
यथा अम्बुदैः	जैसे मेघोंसे		

कस्मात् कृष्ण इहायाति प्राप्तराज्यो हताहितः ।
नरेन्द्रकन्या उद्वाह्य प्रीतः सर्वसुहृद्वृतः ॥४५॥

कस्मात् कृष्ण इह आयाति प्राप्तराज्यः हत अहितः नरेन्द्रकन्या उद्वाह्य प्रीतः सर्वसुहृत् वृतः ॥४५॥

कृष्ण कस्मात्	श्रीकृष्ण किस लिए	उद्वाह्य	विवाह करके
इह आयाति	यहां आवेंगे ?	सर्वसुहृत्	सब सम्बन्धियोंके
हत अहितः	शत्रु मारा गया,	वृतः प्रीतः	साथ आनन्दसे
प्राप्तराज्यः	राज्य मिल गया,		रहेंगे ॥४५॥
नरेन्द्रकन्या	राजकन्याओंसे		

किमस्माभिर्वनौकोभिरन्याभिर्वा महात्मनः ।
श्रीपतेराप्तकामस्य क्रियेतार्थः कृतात्मनः ॥४६॥

किं अस्माभिः वनौकोभिः अन्याभिः वा महात्मनः श्रीपतेः आप्तकामस्य क्रियेत अर्थः कृत आत्मनः ॥४६॥

महात्मनः	महात्मा	वनौकोभिः	वनवासिनियोंसे
आप्तकामस्य	परिपूर्ण काम	वा अन्याभिः	अथवा दूसरी
कृत आत्मनः	कृतकृत्य स्वरूप		किसीसे
श्रीपतेः	श्रीपतिको	किं अर्थः क्रियेत	क्या प्रयोजन है
अस्माभिः	हम		॥४६॥

परं सौख्यं हि नैराश्यं स्वैरिण्यप्याह पिङ्गला ।
तज्जानतीनां नः कृष्णे तथाप्याशा दुरत्यया ॥४७॥

परं सौख्यं हि नैराश्यं स्वैरिणि अपि आह पिङ्गला तत् जानतीनां नः कृष्णे तथा अपि आशा दुः अत्यया ॥४७॥

हि	क्योंकि	नैराश्यं	निराश हो जाना ही है'
स्वैरिणि	स्वेच्छा चारिणी (वेश्या)	तत् जानतीनां	यह जानती हुई भी
अपि	होनेपर भी	नः	हमारी
पिङ्गला	पिंगलाने	कृष्णे	श्रीकृष्णके प्रति
आह	कहा था	तथा अपि	फिर भी
परं सौख्यं	परम सुख	दुः अत्यया	दुरन्त
		आशा	आशा है ॥४७॥

कः उत्सहेत सन्त्यक्तुमुत्तमश्लोकसंविदम् ।
अनिच्छतोऽपि यस्य श्रीरङ्गान्न च्यवते क्वचित् ॥४८॥

कः उत्सहेत सन्त्यक्तुं उत्तमश्लोक संविदं अनिच्छतः अपि यस्य श्रीः अङ्गात् न च्यवते क्वचित् ॥४८॥

उत्तमश्लोक	पुण्यकीर्ति श्रीकृष्णकी	अनिच्छतः	(जिनके) न चाहने-पर
संविदं	चर्चाको	अपि	भी
सन्त्यक्तुं	सर्वथा छोड़ देनेका	यस्य	जिनके
कः उत्सहेत	कौन उत्साह कर सकता है	अङ्गात्	शरीर (वक्ष) से
		श्रीः क्वचित्	लक्ष्मी कभी
		च्यवते न	हटती नहीं हैं ॥४८॥

सरिच्छैलवनोद्देशा गावो वेणुरवा इमे ।
संकर्षणसहायेन कृष्णेनाचरिताः प्रभो ॥४९॥

सरित् शैल वन उद्देशा गावः वेणुरवा इमे सङ्कर्षण सहायेन कृष्णेन आचरिताः प्रभो ॥४९॥

प्रभो	प्रभो !	सरित् शैल	नदी, पर्वत,
सङ्कर्षण	बलरामजी	वन उद्देशा	वनके विशेष स्थान,
सहायेन	के साथ	गावः इमे	गायें और यह
कृष्णेन	श्रीकृष्ण द्वारा	वेणुरवा	वंशी ध्वनि ॥४६॥
आचरिताः	सेवित		

पुनः पुनः स्मारयन्ति नन्दगोपसुतं बत ।
श्रीनिकेतैस्तत्पदकैर्विस्मर्तुं नैव शक्नुमः ॥५०॥

पुनः पुनः स्मारयन्ति नन्दगोपसुतं बत श्रीनिकेतैः तत् पदकैः विस्मर्तुं न एव शक्नुमः ॥५०॥

बत	अहो	तत् पदकैः	उनके नन्हे चरणोंको
नन्दगोपसुतं	गोप नन्दनन्दनको	विस्मर्तुं	भूल जानेमें हम
पुनः पुनः	बार-बार	न एव शक्नुमः	नहीं ही समर्थ हैं
स्मारयन्ति	स्मरण कराते हैं,		॥५०॥
श्रीनिकेतैः	लक्ष्मी-निवास		

गत्या ललितयोदारहासलीलावलोकनैः ।
माध्व्या गिरा हृतधियः कथं तं विस्मरामहे ॥५१॥

गत्या ललितया उदारहास लीला अवलोकनैः माध्व्या गिरा हृतधियः कथं तं विस्मरामहे ॥५१॥

ललितया	सुन्दर	गिरा	वाणीसे
गत्या	चाल,	हृतधियः	हमारा चित्त चुरा
उदारहास	उन्मुक्त हंसी,		लिया गया है
लीला	लीला पूर्वक	तं कथं	उनको (हम) कैसे
अवलोकनैः	देखने	विस्मरामहे	भूल सकती हैं
माध्व्या	तथा उनकी मीठी		॥५१॥

हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन ।
मग्नमुद्धर गोविन्द गोकुलं वृजिनार्णवात् ॥५२॥

हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथ आर्तिनाशन मग्नं उद्धर गोविन्द गोकुलं वृजिन अर्णवात् ॥५२॥

हे नाथ	हे स्वामी !	गोविन्द	गोविन्द !
हे रमानाथ	हे लक्ष्मीकान्त !	वृजिन अर्णवात्	दुःख-सागरमें
व्रजनाथ	व्रजनाथ !	मग्नं गोकुलं	डूबे व्रजको
आर्तिनाशन	संकटहारी !	उद्धर	निकालो ॥५२॥

श्रीशुक उवाच

ततस्ताः कृष्णसंदेशैर्व्यपेतविरहज्वराः ।
उद्धवं पूजयाञ्चक्रुर्ज्ञात्वाऽऽत्मानमधोक्षजम् ॥५३॥

ततः ताः कृष्ण सन्देशैः व्यपेत विरहज्वराः उद्धवं पूजयान् चक्रुः ज्ञात्वा आत्मानं अधोक्षजम् ॥५३॥

ततः	फिर	अधोक्षजं	श्रीकृष्णको
कृष्ण	श्रीकृष्णके	आत्मानं	सबका आत्मा
सन्देशैः	सन्देशसे	ज्ञात्वा	जानकर
विरहज्वराः	वियोग जन्य तापके	उद्धवं	उद्धवका
व्यपेत	दूर हो जानेपर	पूजयान् चक्रुः	सत्कार किया ॥५३॥

उवास कतिचिन्मासान् गोपीनां विनुदञ्छुचः ।
कृष्णलीलाकथां गायन् रमयामास गोकुलम् ॥५४॥

उवास कतिचित् मासान् गोपीनां विनुदन् शुचः कृष्णलीला कथां गायन् रमयामास गोकुलम् ॥५४॥

गोपीनां शुचः	गोपियोंका शोक	कृष्णलीला	श्रीकृष्ण-लीलाकी
विनुदन्	दूर करते हुए	कथां गायन्	कथाएँ कह कहकर
कतिचित्	(उद्धव) कुछ	गोकुलं	व्रजको
मासान्	महीने (व्रजमें)	रमयामास	आनन्दित करते
उवास	बसे रहे,		रहे ॥५४॥

यावन्त्यहानि नन्दस्य व्रजेऽवात्सीत् स उद्धवः ।
व्रजौकसां क्षणप्रायाण्यासन् कृष्णस्य वार्तया ॥५५॥

यावन्ति अहानि नन्दस्य व्रजे अवात्सीत् स उद्धवः व्रजौकसां क्षण-प्रायान् आसन् कृष्णस्य वार्तया ॥५५॥

स उद्धवः	वे उद्धव	व्रजौकसां	ब्रजवासियोंके लिए
यावन्ति अहानि	जितने दिन	क्षणप्रायान्	(वे दिन) एक क्षण
नन्दस्य व्रजे	नन्द-ब्रजमें		के समान
अवात्सीत्	बसे रहे	आसन्	हो गये ॥५५॥
कृष्णस्य वार्तया	श्रीकृष्णकी चर्चामें		

सरिद्वनगिरिद्रोणीर्वीक्षन् कुसुमितान् द्रुमान् ।
कृष्णं संस्मारयन् रेमे हरिदासो व्रजौकसाम् ॥५६॥

सरित् वन गिरिद्रोणीः वीक्षन् कुसुमितान् द्रुमान् कृष्णं संस्मारयन् रेमे हरिदासः व्रजौकसाम् ॥५६॥

हरिदासः	श्रीहरिके सेवक उद्धव	व्रजौकसां	ब्रजवासियोंको
सरित् वन	नदी, वन,	कृष्णं	श्रीकृष्णका
गिरिद्रोणीः	पर्वतकी तलहटीमें	संस्मारयन्	स्मरण कराते हुए
कुसुमितान्	पुष्पित	रेमे	आनन्द मनाते रहे
द्रुमान् वीक्षन्	वृक्षोंको देखते हुए		॥५६॥

दृष्ट्वैवमादि गोपीनां कृष्णावेशात्मविक्लवम् ।
उद्धवः परमप्रीतस्ता नमस्यन्निदं जगौ ॥५७॥

दृष्ट्वा एवं आदि गोपीनां कृष्ण आवेश आत्मविक्लवं उद्धवः परमप्रीतः ता नमस्यन् इदं जगौ ॥५७॥

गोपीनां आदि	गोपियों आदिका	आत्म विक्लवं	चित्तकी व्याकुलता
एवं कृष्ण	इस प्रकार श्रीकृष्ण	दृष्ट्वा	देखकर
आवेश	के आवेशमें	परमप्रीतः	अत्यन्त प्रसन्न

उद्धवः	उद्धवजी	इदं जगौ	यह बोले ॥५७॥
ता नमस्यन्	उनको नमस्कार करते हुए		

उद्धव उवाच*

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो
गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः ।
वाञ्छन्ति यद् भवभियो मुनयो वयं च
किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य ॥५८॥

एताः परं तनुभृतः भुवि गोपवध्वः गोविन्द एव निखिल आत्मनि रूढभावाः वाञ्छन्ति यत् भवभियः मुनयः वयं च किं ब्रह्मजन्मभिः अनन्त कथा रसस्य ॥५८॥

निखिल आत्मनि	सर्वात्मा	यत् वाञ्छन्ति	जिस (प्रेम)को चाहते हैं,
गोविन्द एव	गोविन्दमें ही	अनन्त कथा	(सचमुच) अनन्त श्रीहरिकी कथाके
रूढभावाः	आरूढ़ प्रेमा	रसस्य	रसके सम्मुख
एताः गोपवध्वः	ये गोपांगनाएँ	ब्रह्मजन्मभिः	वैदिक (शौल्क सावित्र-यज्ञोपवीत जन्म, याज्ञिक) जन्मोंकी
भुवि तनुभृतः	पृथ्वीके शरीर धारियोंमें	किं	क्या आवश्यकता ॥५८॥
परं	सर्वश्रेष्ठ हैं,		
भवभियः	संसारके भयसे		
मुनयः च वयं	मुनिगण और हम भी		

क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः
कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः ।

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षा-
च्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः ॥५९॥

क्व इमाः स्त्रियः वनचरीः व्यभिचार दुष्टाः कृष्णे क्व च एष परमात्मनि रूढभावः ननु ईश्वरः अनुभजतः अविदुषः अपि साक्षात् श्रेयः तनोति अगदराज इव उपयुक्तः ॥५९॥

क्व इमाः	कहां तो ये	अपि अनुभजतः	के भी निरन्तर भजन करनेपर
व्यभिचार दुष्टाः	व्यभिचार-दूषिता	उपयुक्तः	उपयोग किये गये (अनजानमें)
वनचरीः स्त्रियः	वनवासिनी स्त्रियाँ	अगदराज इव	अमृतके समान
च क्व	और कहाँ	साक्षात् ईश्वरः	साक्षात् ईश्वर (स्वयं)
परमात्मनि कृष्णे	परमात्मा श्रीकृष्णमें (इरका)	श्रेयः तनोति	कल्याण कर देतेहैं ॥५९॥
रूढभावाः ननु अविदुषः	सुदृढ़ प्रेम, निश्चय अज्ञानी		

नायंश्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः ।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ-
लब्धाशिषां य उदगाद् व्रजवल्लवीनाम् ॥६०॥

न आयं श्रियः अङ्ग उ नितान्त रतेः प्रसादः स्वः योषितां नलिनगन्ध रुचां कुतः अन्याः रास उत्सवे अस्य भुजदण्ड गृहीत कण्ठ लब्ध आशिषां यः उदगात् व्रजवल्लवीनाम् ॥६०॥

रास उत्सवे	रासोत्सवके समय	व्रजवल्लवीनां	व्रजकी गोपियोंके साथ
अस्य भुजदण्ड	इन (श्रीकृष्ण)के भुजदण्डोंसे	यः उदगात्	जो गाते रहे
गृहीत कण्ठ	कण्ठ पकड़ी गयी	अयं प्रसादः	यह प्रसाद
लब्ध आशिषां	पूर्ण काम हुई	उ नितान्त	उनको सर्वदा

अङ्ग रतेः	अंगमें ही रहने वाली	स्वः योषितां न	स्वर्गकी देवियोंको भी नहीं मिला
श्रियः	लक्ष्मीको भी तथा	अन्याः कुतः	फिर दूसरियोंको कहांसे मिलेगा ॥६०॥
नलिनगन्ध रुचां	कमल जैसी गन्ध वाली शोभा शालिनी		

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥६१॥

आसां अहो चरणरेणु जुषां अहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्म लता औषधीनां या दुस्त्यजं स्वजनं आर्यपथं च हित्वा भेजुः मुकुन्द पदवीं श्रुतिभिः विमृग्याम् ॥६१॥

या दुस्त्यजं	जिन्होंने दुस्त्याज्य	भेजुः	अपना लिया,
स्वजनं	अपने सम्बन्धियों	अहो आसां	अहो इनकी
च आर्यपथं	तथा श्रेष्ठ (कुलीनताके) मार्गको	चरणरेणु जुषां	चरण-रजपाने वाला
		वृन्दावने	वृन्दावनमें
हित्वा	त्यागकर	गुल्म लता	झाड़ी, लता,
श्रुतिभिः	श्रुतियों द्वारा	औषधीनां	तृणोंमेंसे
विमृग्यां	ढूढ़े जाने वाले	अहं किमपि	मैं कोई
मुकुन्द पदवीं	मुकुन्द (प्राप्ति)के मार्गको	स्यां	हो जाऊं ॥६१॥

या वै श्रियार्चितमजादिभिराप्तकामै-
र्योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम् ।
कृष्णस्य तद् भगवतश्चरणारविन्दं
न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम् ॥६२॥

या वै श्रिया अर्चितं अज आदिभिः आप्तकामैः योगेश्वरैः अपि यदा आत्मनि रासगोष्ठ्यां कृष्णस्य तत् भगवतः चरणारविन्दं न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम् ॥६२॥

वै या	निश्चय जिनकी	**चरणारविन्दं**	चरण-कमलोंको
श्रिया अज	लक्ष्मी तथा ब्रह्मा	**यदा**	जब
आदिभिः	आदि	**रासगोष्ठ्यां**	रास-मण्डलमें
आप्तकामैः	आप्तकाम	**स्तनेषु न्यस्तं**	स्तनोंपर रखे गये (तो उन्हें)
योगेश्वरैः अपि	योगेश्वरों द्वारा भी		
आत्मनि अर्चितं	हृदयमें पूजा होती है,	**परिरभ्य**	आलिंगन करके
तत् भगवतः	उन भगवान	**तापं विजहुः**	विरह-व्यथा दूर की थी ॥६२॥
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके		

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥६३॥

वन्दे नन्दव्रज स्त्रीणां पादरेणुं अभीक्ष्णशः यासां हरिकथा उद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥६३॥

यासां	जिनका	**स्त्रीणां**	स्त्रियोंकी
हरिकथा	श्रीहरिकी कथाका	**पादरेणुं**	चरणरजकी
उद्गीतं	उच्च स्वरका गान	**अभीक्ष्णशः**	निरन्तर
भुवनत्रयं	त्रिलोकीको	**वन्दे**	वन्दना करता हूँ ॥६३॥
पुनाति	पवित्र करता है		
नन्दव्रज	उन नन्द-व्रजकी		

श्रीशुक उवाच

अथ गोपीरनुज्ञाप्य यशोदां नन्दमेव च ।
गोपानामन्त्र्य दाशार्हो यास्यन्नारुरुहे रथम् ॥६४॥

अथ गोपीः अनुज्ञाप्य यशोदां नन्दं एव च गोपान् आमन्त्र्य दाशार्हः यास्यन् आरुरुहे रथम् ॥६४॥

अथ गोपीः	फिर गोपियोंसे	**आमन्त्र्य**	पूछकर
च यशोदां	तथा यशोदाजीसे	**दाशार्हः**	उद्धव
नन्दं एव	नन्दजीसे भी	**यास्यन्**	जानेके लिए
अनुज्ञाप्य	अनुमति लेकर	**रथं आरुरुहे**	रथपर चढ़े
गोपान्	गोपोंसे		॥६४॥

तं निर्गतं समासाद्य नानोपायनपाणयः ।
नन्दादयोऽनुरागेण प्रावोचन्नश्रुलोचनाः ॥६५॥

तं निर्गतं सम आसाद्य नाना उपायनपाणयः नन्द आदयः अनुरागेण प्रावोचन् अश्रुलोचनाः ॥६५॥

तं निर्गतं	उनके (व्रजसे बाहर) निकलनेपर	**सम आसाद्य**	समीप आकर
		अनुरागेण	प्रेमके कारण
उपायनपाणयः	हाथोंमें उपहार लिए	**अश्रुलोचनाः**	नेत्रोंमें आंसू भरे
		प्रावोचन्	बोले ॥६५॥
नन्द आदयः	नन्द आदि		

मनसो वृत्तयो नः स्युः कृष्णपादाम्बुजाश्रयाः ।
वाचोऽभिधायिनीर्नाम्नां कायस्तत्प्रह्वणादिषु ॥६६॥

मनसः वृत्तयः नः स्युः कृष्ण पादाम्बुज आश्रयाः वाचः अभिधायिनीः नाम्नां कायः तत् प्रह्वण आदिषु ॥६६॥

नः मनसः	हमारे मनकी	**नाम्नां**	उनके नामोंको
वृत्तयः	वृत्तियां	**अभिधायिनी**	बोलनेवाली तथा
कृष्ण	श्रीकृष्णके	**कायः तत्**	तथा शरीर उनको
पादाम्बुज	चरण-कमलोंमें	**प्रह्वण**	प्रणाम
आश्रयाः	लगी रहें,	**आदिषु स्युः**	आदि करनेवाला हो
वाचः	(हमारी) वाणी		॥६६॥

कर्मभिर्भ्राम्यमाणानां यत्र क्वापीश्वरेच्छया ।
मङ्गलाचरितैर्दानैः रतिर्नः कृष्ण ईश्वरे ॥६७॥

कर्मभिः भ्राम्यमाणानां यत्र क्व अपि ईश्वर इच्छया मङ्गल आचरितैः दानैः रतिः नः कृष्ण ईश्वरे ॥६७॥

ईश्वर इच्छया	ईश्वरकी इच्छासे	**आचरितैः**	कर्म तथा
कर्मभिः	कर्मोंके द्वारा	**दानैः**	दानके फलसे
भ्राम्यमाणानां	घुमाये जाते हुए	**कृष्ण**	श्रीकृष्ण
यत्र	जहां	**ईश्वरे**	भगवानमें
क्व अपि	कहीं भी (जन्म हो)	**नः रतिः**	हमारी प्रीति हो
मंगल	शुभ		॥६७॥

एवं सभाजितो गोपैः कृष्णभक्त्या नराधिप ।
उद्धवः पुनरागच्छन्मथुरां कृष्णपालिताम् ॥६८॥

एवं सभाजितः गोपैः कृष्ण भक्त्या नर अधिप उद्धवः पुनः आगच्छत् मथुरां कृष्ण पालिताम् ॥६८॥

नर अधिप	राजन् !	**उद्धवः**	उद्धव
एवं	इस प्रकार	**कृष्ण**	श्रीकृष्ण द्वारा
कृष्ण	श्रीकृष्णकी	**पालितां**	रक्षित
भक्त्या	भक्तिसे	**मथुरां**	मथुरामें
गोपैः	गोपों द्वारा	**पुनः आगच्छत्**	फिर आ गये ॥६८॥
सभाजितः	सत्कृत होकर		

कृष्णाय प्रणिपत्याह भक्त्युद्रेकं व्रजौकसाम् ।
वसुदेवाय रामाय राज्ञे चोपायनान्यदात् ॥६९॥

कृष्णाय प्रणिपत्य आह भक्ति उद्रेकं व्रजौकसां वसुदेवाय रामाय राज्ञे च उपायनानि अदात् ॥६९॥

प्रणिपत्य	प्रणाम करके	वसुदेवाय	वसुदेवजीको,
व्रजौकसां	व्रजवासियोंकी	रामाय	बलरामजीको;
भक्ति उद्रेकं	भक्तिकी अधिकता	राज्ञे	राजा उग्रसेनको
कृष्णाय आह	श्रीकृष्णसे कही	उपायनानि	उपहार
च	तथा	अदात्	दिये ॥६६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे उद्धवप्रतियाने सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

अथ अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

अथ विज्ञाय भगवान् सर्वात्मा सर्वदर्शनः ।
सैरन्ध्र्याः कामतप्तायाः प्रियमिच्छन् गृहं ययौ ॥१॥

अथ विज्ञाय भगवान् सर्व आत्मा सर्व दर्शनः सैरन्ध्र्या काम तप्तायाः प्रियं इच्छन् गृहं ययौ ॥१॥

अथ सर्व	फिर सर्व	तप्तायाः	संतप्त
आत्मा	स्वरूप	सैरन्ध्र्याः	कुब्जाका
सर्व दर्शनः	सर्वज्ञ	प्रियं	प्रिय करनेकी
भगवान्	भगवान्	इच्छन्	इच्छासे
काम	अपनी चाहसे	गृहं ययौ	उसके घर गये ॥१॥

महार्होपस्करैराढ्यं कामोपायोपबृंहितम् ।
मुक्तादामपताकाभिर्वितानशयनासनैः ।
धूपैः सुरभिभिर्दीपैः स्रग्गन्धैरपि मण्डितम् ॥२॥

महा अर्ह उपस्करैः आढ्यं काम उपायैः उपबृंहितं मुक्तादाम पताकाभिः वितान शयन आसनैः धूपैः सुरभिभिः दीपैः स्रक् गन्धैः अपि मण्डितम् ॥२॥

महा अर्ह	(वह घर) बहुमूल्य	उपबृंहितं	भरा हुआ था,
उपस्करैः	सामग्रियोंसे	मुक्तादाम	मोतीकी झालरों,
आढ्यं	सम्पन्न था,	पताकाभिः	झंड़ियोंसे
काम	कामोत्तेजक	वितान शयन	मण्डप, शय्या,
उपायैः	साधनोंसे	आसनैः	आसनों,

धूपैः	धूप,	गन्धैः	सुगन्धसे
सुरभिभिः	सुगन्धि (इत्रादि) से	अपि मण्डितम्	भी सज्जित था
दीपैः स्रक्	दीपक, मालाकी		॥२॥

गृहं तमायान्तमवेक्ष्य साऽऽसनात्
सद्यः समुत्थाय हि जातसम्भ्रमा ।
यथोपसंगम्य सखीभिरच्युतं
सभाजयामास सदासनादिभिः ॥३॥

गृहं तं आयान्तं अवेक्ष्य सा आसनात् सद्यः समुत्थाय हि जात सम्भ्रमा यथा उपसङ्गम्य सखीभिः अच्युतं सभाजयामास सह आसन आदिभिः ॥३॥

तं	उनको (अपने)	सखीभिः	सखियोंके साथ
गृहं आयान्तं	घर आते	यथा	किसी प्रकार
अवेक्ष्य	देखकर	उपसङ्गम्य	समीप जाकर
सा आसनात्	वह आसनसे	सह आसन	साथ बैठाने
सद्यः समुत्थाय	तुरन्त उठकर	आदिभिः	आदिके द्वारा
हि सम्भ्रमा	क्योंकि अकुलाहट	अच्युतं	श्रीकृष्णका
जात	उत्पन्न हो गयी,	सभाजयामास	सत्कार किया ॥३॥

तथोद्धवः साधु तयाभिपूजितो
न्यषीददुर्व्यामभिमृश्य चासनम् ।
कृष्णोऽपि तूर्णं शयनं महाधनं
विवेश लोकाचरितान्यनुव्रतः ॥४॥

तथा उद्धवः साधु तया अभिपूजितः न्यषीदत् उर्व्यां अभिमृश्य च आसनं कृष्णः अपि तूर्णं शयनं महाधनं विवेश लोक आचरितानि अनुव्रतः ॥४॥

तथा उद्धवः	इसी प्रकार उद्धव	लोक	लोगोंके
साधु तया	भली प्रकार	आचरितानि	आचरणका
अभिपूजितः	सत्कृत होकर	अनुव्रतः	अनुकरण करते हुए
आसनं च	आसनको भी	महाधनं	महामूल्यवान
अभिमृश्य	स्पर्श करके	शयनं	शयन-कक्षमें
उर्व्यां न्यषीदत्	पृथ्वीपर बैठ गये,	तूर्णं विवेश	शीघ्र प्रविष्ट हो
कृष्णः अपि	श्रीकृष्ण भी		गये ॥४॥

सा मज्जनालेपदुकूलभूषण-
स्रग्गन्धताम्बूलसुधासवादिभिः ।
प्रसाधितात्मोपससार माधवं
सव्रीडलीलोत्स्मितविभ्रमेक्षितैः ॥५॥

सा मज्जन आलेप दुकूलभूषण स्रक् गन्ध ताम्बूल सुधासव आदिभिः प्रसाधित आत्म उपससार माधवं सव्रीडलील उत्स्मित विभ्रम इक्षितैः ॥५॥

मज्जन आलेप	स्नान, अंगराग,	सा सव्रीड	वह लज्जा युक्त
दुकूलभूषण	वस्त्र, आभूषण,	लील	क्रीड़ासे
स्रक् गन्ध	माला, चन्दन,	उत्स्मित	व्यक्त मुसकान तथा
ताम्बूल	पान,	विभ्रम	तिरछी
सुधासव	सुधासव	ईक्षितैः	चितवनसे देखती
आदिभिः	आदिसे	माधवं	श्रीकृष्णके
आत्म	अपना	उपससार	समीप गयी ॥५॥
प्रसाधित	शृंगार करके		

आहूय कान्तां नवसङ्गमह्रिया
विशङ्कितां कङ्कणभूषिते करे ।
प्रगृह्य शय्यामधिवेश्य रामया
रेमेऽनुलेपार्पणपुण्यलेशया ॥६॥

आहूय कान्तां नवसङ्गम ह्रिया विशङ्कितां कङ्कण भूषिते करे
प्रगृह्य शय्यां अधिवेश्य रामया रेमे अनुलेपन अर्पण पुण्य लेशया ॥६॥

नव सङ्गम	नवीन समागमकी
ह्रिया	लज्जासे
विशङ्कितां	आशंकित
कातां आहूय	सुन्दरीको समीप बुलाकर
कङ्कण भूषिते	कङ्कणसे आभूषित
करे प्रगृह्य	हाथ पकड़कर
शय्यां	शय्या पर
अधिवेश्म	लिटाकर
अनुलेपन अर्पण	अंगराग दानका
पुण्य लेशया	पुण्य प्राप्ता
रामया रेमे	उस सुन्दरीके साथ रमण किया ॥६॥

सानङ्गतप्तकुचयोरुरसस्तथाक्ष्णो-
र्जिघ्रन्त्यनन्तचरणेन रुजो मृजन्ती ।
दोर्भ्यां स्तनान्तरगतं परिरभ्य कान्त-
मानन्दमूर्तिमजहादतिदीर्घतापम् ॥७॥

सा अनङ्ग तप्त कुचयोः उरसः तथा अक्ष्णोः जिघ्रन्ति अनन्त चरणेन रुजः मृजन्ती दोर्भ्यां स्तन अन्तरगतं परिरभ्य कान्तं आनन्दमूर्ति अजहात् अतिदीर्घतापम् ॥७॥

सा	उसने
अनङ्ग तप्त	कामसंतप्त
कुचयोः	स्तनोंपर
तथा अक्ष्णोः	तथा नेत्रोंपर
उरसः जिघ्रन्ति	रखकर सूंघकर
अनन्त चरणेन	अनन्त श्रीकृष्णके चरणोंसे
रुजः मृजन्ती	हृदय रोग दूर करती हुई
स्तन अन्तरगतं	स्तनोंके मध्यमें आये
आनन्दमूर्ति	आनन्द विग्रह
कान्तं दोर्भ्यां	प्रियतम को भुजाओंसे
परिरभ्य	आलिंगन करके
अतिदीर्घतापं	बहुत दीर्घकालका संताप
अजहात्	त्याग दिया ॥७॥

सैवं कैवल्यनाथं तं प्राप्य दुष्प्रापमीश्वरम् ।
अङ्गरागार्पणेनाहो दुर्भगेदमयाचत ॥८॥

सा एवं कैवल्यनाथं तं प्राप्य दुष्प्रापं ईश्वरं अंगराग अर्पणेन अहो दुर्भगा इदं अयाचत ॥८॥

एवं	इस प्रकार	दुष्प्रापं	दुष्प्राप्य
अङ्गराग	अंगराग	ईश्वरं	परमेश्वरको
अर्पणेन	अर्पण करनेसे	प्राप्य	पाकर
तं	उन	सा दुर्भगा	उस दुर्भाग्याने
कैवल्यनाथं	कैवल्य-मोक्षके स्वामी	अहो इदं	अहो यह
		अयाचत	मांगा ॥८॥

आहोष्यतामिह प्रेष्ठ दिनानि कतिचिन्मया ।
रमस्व नोत्सहे त्यक्तुं संगं तेऽम्बुरुहेक्षण ॥९॥

आहोष्यतां इह प्रेष्ठ दिनानि कतिचित् मया रमस्व न उत्सहे त्यक्तुं सङ्गं ते अम्बुरुह ईक्षण ॥९॥

प्रेष्ठ	प्रियतम !	रमस्व	विहार करें,
अम्बुरुह ईक्षण	कमल-लोचन !	ते सङ्गं	आपका साथ
इह कतिचित्	यहां कुछ	त्यक्तुं	छोड़नेका
दिनानि	दिन	उत्सहे	उत्साह (मुझमें)
आहोष्यतां	निवास करें और	न	नहीं है' ॥९॥
मया	मेरे साथ		

तस्यै कामवरं दत्त्वा मानयित्वा च मानदः ।
सहोद्धवेन सर्वेशः स्वधामागमदृद्धिमत् ॥१०॥

तस्यै कामवरं दत्त्वा मानयित्वा च मानदः सह उद्धवेन सर्व ईशः स्वधाम आगमत् अर्चितः ॥१०॥

मानदः	(सबको) सम्मान देनेवाले	कामवरं	इच्छानुसार वरदान
		दत्त्वा च	देकर तथा
सर्व ईशः	सर्वेशने	मानयित्वा	उसका सम्मान
तस्यै	उसको		करके

अर्चितः	पूजित होकर	**स्वधाम**	अपने भवन
सह उद्धवेन	उद्धवके साथ	**आगमत्**	चले गये ॥१०॥

दुराराध्यं समाराध्यं विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् ।
यो वृणीते मनोग्राह्यमसत्वात् कुमनीष्यसौ ॥११॥

दुःआराध्यं सम आराध्य विष्णुं सर्व ईश्वर ईश्वरं यः वृणीते मनः ग्राह्यं असत्त्वात् कुमनीषि असौ ॥११॥

दुः आराध्यं	जिनको प्रसन्न करना कठिन है	**आराध्य**	प्रसन्न करके
सर्व	सब	**यः मनः**	जो मनकी
ईश्वर	लोकपालोंके भी	**ग्राह्यं**	कामनाको
ईश्वरं	स्वामी	**वृणीते**	मांगता है
विष्णुं	उन भगवान विष्णु-को	**असत्त्वात्**	(उन कामनाओंके) असत् होनेसे
सम	भली प्रकार	**असौ**	यह
		कुमनीषि	दुर्बुद्धि है ॥११॥

अक्रूरभवनं कृष्णः सहरामोद्धवः प्रभुः ।
किंचिच्चिकीर्षयन् प्रागादक्रूरप्रियकाम्यया ॥१२॥

अक्रूरभवनं कृष्णः सह राम उद्धवः प्रभुः किञ्चित् चिकीर्षयन् प्रागात् अक्रूर प्रिय काम्यया ॥१२॥

प्रभुः कृष्णः	समर्थ श्रीकृष्ण	**काम्यया**	करनेकी इच्छासे
किञ्चित्	कुछ	**राम**	बलरामजी और
चिकीर्षयन्	करनेकी इच्छा करके	**उद्धवः सह**	उद्धवके साथ
अक्रूर प्रिय	अक्रूरको प्रसन्न	**अक्रूरभवनं**	अक्रूरके भवन
		प्रागात्	पहुँचे ॥१२॥

स तान् नरवरश्रेष्ठानाराद् वीक्ष्य स्वबान्धवान् ।
प्रत्युत्थाय प्रमुदितः परिष्वज्याभ्यनन्दत ॥१३॥

स तान् नरवर श्रेष्ठान् आरात् वीक्ष्य स्वबान्धवान् प्रति उत्थाय प्रमुदितः परिष्वज्य अभिनन्दत ॥१३॥

नरवर	श्रेष्ठ पुरुषोंमें भी	प्रति	उनके लिए
श्रेष्ठान्	श्रेष्ठ	उत्थाय	उठकर खड़े होकर
स्वबान्धवान्	अपने सम्बन्धी	परिष्वज्य	आलिंगन करके
तान्	उनको	च	तथा
आरात् वीक्ष्य	समीप आया देखकर	अभिनन्दत	अभिवादन करके ॥१३॥
स प्रमुदितः	वे बहुत प्रसन्न होकर		

ननाम कृष्णं रामं च स तैरप्यभिवादितः ।
पूजयामास विधिवत् कृतासनपरिग्रहान् ॥१४॥

ननाम कृष्णं रामं च सः तैः अपि अभिवादितः पूजयामास विधिवत् कृत आसन परिग्रहान् ॥१४॥

कृष्णं च	श्रीकृष्ण तथा	अभिवादितः	अभिवन्दित होकर
रामं	बलरामको	आसन	आसन
ननाम	प्रणाम किया	परिग्रहान् कृत	स्वीकार कर लेनेपर
तैः अपि	उनके द्वारा भी	विधिवत्	विधिपूर्वक (उनकी)
सः	वे	पूजयामास	पूजा की ॥१४॥

पादावनेजनीरापो धारयञ्छिरसा नृप ।
अर्हणेनाम्बरैर्दिव्यैर्गन्धस्रग्भूषणोत्तमैः ॥१५॥

पाद अवनेजनीः आपः धारयन् शिरसा नृप अर्हणेन अम्बरैः दिव्यैः गन्ध स्रक् भूषण उत्तमैः ॥१५॥

नृप	राजन् !	दिव्यैः अम्बरैः	दिव्य वस्त्रों,
पाद अवनेजनीः	चरण-प्रक्षालनका	गन्ध स्रक्	चन्दन, माला,
आपः	जल	भूषण उत्तमैः	उत्तम आभूषण आदि
शिरसा	मस्तकपर	अर्हणेन	पूजा द्रव्योंसे ॥१५॥
धारयन्	चढ़ाकर		

अर्चित्वा शिरसाऽऽनम्य पादावङ्कगतौ मृजन् ।
प्रश्रयावनतोऽक्रूरः कृष्णरामावभाषत ॥१६॥

अर्चित्वा शिरसा आनम्य पादाः अङ्कगतौ मृजन् प्रश्रय अवनतः अक्रूरः कृष्ण रामाः अभाषत ॥१६॥

अर्चित्वा	पूजन करके	**अक्रूरः**	अक्रूरजी
शिरसा आनम्य	मस्तक झुकाकर	**कृष्ण**	श्रीकृष्ण तथा
पादाः	चरणोंको	**रामाः**	बलरामसे
अङ्कगतौ	गोदमें लेकर	**अभाषत**	बोले ॥१६॥
मृजन्	दबाते हुए		

श्रीशुक उवाच*

दिष्ट्या पापो हतः कंसः सानुगो वामिदं कुलम् ।
भवद्भ्यामुद्धृतं कृच्छ्राद् दुरन्ताच्च समेधितम् ॥१७॥

दिष्ट्या पापः हतः कंसः सानुगः वां इदं कुलं भवद्भ्यां उद्धृतं कृच्छ्रात् दुरन्तात् च समेधितम् ॥१७॥

दिष्ट्या	सौभाग्यवश	**दुरन्तात्**	दुष्पार
सानुगः	अनुचरोंके साथ	**कृच्छ्रात**	संकटसे
पापः	पापी	**उद्धृतं**	उबार लिया गया
कंसः हतः	कंस मारा गया	**च**	तथा
वां भवद्भ्यां	आप दोनों द्वारा	**समेधितं**	समृद्ध किया गया
इदं कुलं	यह कुल		॥१७॥

युवां प्रधानपुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ ।
भवद्भ्यां न विना किंचित् परमस्ति न चापरम् ॥१८॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

युवां प्रधान पुरुषौ जगत् हेतुः जगन्मयौ भवद्भ्यां न विना किञ्चित् परं अस्ति न च अपरम् ॥१८॥

युवां	आप दोनों	भवद्भ्यां	आप दोनोंसे
जगत् हेतुः	जगतके कारण	विना किञ्चित्	अतिरिक्त कुछ
जगन्मयः	जगन्मय	न परं अस्ति	न कारण है
प्रधान	प्रधान और	च न अपरं	और न कार्य है
पुरुषौ	पुरुष हैं		॥१८॥

आत्मसृष्टमिदं विश्वमन्वाविश्य स्वशक्तिभिः ।
ईयते बहुधा ब्रह्मन् श्रुतप्रत्यक्षगोचरम् ॥१९॥

आत्मसृष्टं इदं विश्वं अनु आविश्य स्वशक्तिभिः ईयते बहुधा ब्रह्मन् श्रुत प्रत्यक्ष गोचरम् ॥१९॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मस्वरूप (आप)	प्रत्यक्ष	प्रत्यक्ष
आत्मसृष्टं	अपने बनाये हुए	गोचरं	इन्द्रियोंसे दीखने-
इदं विश्वं	इस संसारमें		वाले
स्वशक्तिभिः	अपनी (मायादि)	बहुधा	अनेक रूपोंमें
	शक्तियोंसे	ईयते	प्रतीत हो रहे हैं
अनु आविश्य	फिरसे प्रवेश करके		॥१९॥
श्रुत	सुने (स्वर्गादि और)		

यथा हि भूतेषु चराचरेषु
महादयो योनिषु भान्ति नाना ।
एवं भवान् केवल आत्मयोनि-
ष्वात्माऽऽत्मतन्त्रो बहुधा विभाति ॥२०॥

यथा हि भूतेषु चर अचरेषु महि आदयः योनिषु भान्ति नाना एवं भवान् केवल आत्मयोनिषु आत्मा आत्मतन्त्रः बहुधा विभाति ॥२०॥

हि यथा	क्योंकि जैसे	भूतेषु	प्राणि-पदार्थोंकी
चर अचरेषु	जंगम-स्थावर	योनिषु	योनियोंमें

महि आदयः	पृथ्वी आदि (पञ्चभूत)	आत्मतन्त्रः	स्वतन्त्र
		आत्मा	आत्मा
नाना भान्ति	अनेक रूप प्रतीत होतेहैं	आत्मयोनिषु	अपनी ही (बनाई) योनियोंमें
एवं भवान्	इसी प्रकार आप	बहुधा विभाति	अनेक रूप भासते हैं
केवल	एकमात्र		॥२०॥

सृजस्यथो लुम्पसि पासि विश्वं
रजस्तमः सत्वगुणैः स्वशक्तिभिः ।
न बध्यसे तद्गुणकर्मभिर्वा
ज्ञानात्मनस्ते क्व च बन्धहेतुः ॥२१॥

सृजसि अथो लुम्पसि पासि विश्वं रजः तमः सत्त्वगुणैः स्वशक्तिभिः न बध्यसे तत् गुण कर्मभिः वा ज्ञानात्मनः ते क्वचच बन्धहेतुः ॥२१॥

रजः तमः	रजोगुण, तमोगुण	पासि	पालन करते हैं,
सत्वगुणैः	सत्त्व गुण वाली (ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु रूपा)	तत् गुण	उनके गुणों
		वा कर्मभिः	अथवा कर्मोंसे
		बध्यसे न	बँधते नहीं,
स्वशक्तिभिः	अपनी शक्तियोंके द्वारा	ते ज्ञानात्मनः	आप ज्ञान स्वरूपके लिए
विश्वं सृजसि	विश्वको बनाते हैं	बन्धहेतुः	बन्धनका कारण
अथो लुम्पसि	फिर नष्ट कर देते हैं या	क्वचच	कहांसे होगा ॥२१॥

देहाद्युपाधेरनिरूपितत्वाद्
भवो न साक्षान्न भिदाऽऽत्मनः स्यात् ।
अतो न बन्धस्तव नैव मोक्षः
स्यातां निकामस्त्वयि नोऽविवेकः ॥२२॥

देह आदि उपाधेः अनिरूपित त्वात् भवः न साक्षात् न भिदा आत्मनः स्यात् अतः न बन्धः तव न एव मोक्षः स्यातां निकामः त्वयि नः अविवेकः ॥२२॥

देह आदि	शरीर आदि	अतः तव	अतः आपका
उपाधेः	उपाधियोंसे	न बन्धः	न बन्धन है
अनिरूपित	निरूपण न होनेके	न मोक्षः एव	न मोक्ष ही है
त्वात्	कारण	त्वयि निकामः	आप निष्काममें
आत्मनः	जीवमें भी	स्यातां	(इनको) मानना
साक्षात्	साक्षात्	नः अविवेकः	हमरी विचारहीनता
भवः न	जन्म नहीं है,		है ॥२२॥
न भिदा स्यात्	न भेद है,		

त्वयोदितोऽयं जगतो हिताय
यदा यदा वेदपथः पुराणः ।
बाध्येत पाखण्डपथैरसद्भि-
स्तदा भवान् सत्त्वगुणं बिभर्ति ॥२३॥

त्वया उदितः अयं जगतः हिताय यदा यदा वेदपथः पुराणः बाध्येत पाखण्डपथैः असद्भिः तदा भवान् सत्वगुणं बिभर्ति ॥२३॥

जगतः हिताय	संसारके कल्याणके लिए	असद्भिः	दुष्टोंके द्वारा
त्वया उदितः	आपसे प्रकट	बाध्येत	क्षतिग्रस्त होता है
अयं पुराणः	यह सनातन	तदा भवान्	तब तब आप
वेदपथः	वैदिक-मार्ग	सत्वगुणं	शुद्ध सत्त्वगुण (मय शरीर)
यदा यदा	जब-जब	बिभर्ति	धारण करते हैं ॥२३॥
पाखण्डपथैः	पाखण्ड-मार्गी		

स त्वं प्रभोऽद्य वसुदेवगृहेऽवतीर्णः
स्वांशेन भारमपनेतुमिहासि भूमेः ।

अक्षौहिणीशतवधेन सुरेतरांश-
राज्ञाममुष्य च कुलस्य यशो वितन्वन् ॥२४॥

स त्वं प्रभो अद्य वसुदेवगृहे अवतीर्णः स्व अंशेन भारं अपनेतुं इह असि भूमेः अक्षौहिणी शत वधेन सुरेतर अंश राज्ञां अमुष्य च कुलस्य यशः वितन्वन् ॥२४॥

प्रभो	प्रभो !	भूमेः भारं	पृथ्वीका भार
स त्वं अद्य	वही आप इस समय	अपनेतुं	दूर करनेके लिए
स्व अंशेन	अपने अंशके साथ	च अमुष्य	तथा इस
सुरेतर अंश	असुरोंके अंशसे (उत्पन्न)	कुलस्य	यदु कुलका
		यशः वितन्वन्	यश विस्तार करने के लिए
राज्ञां	राजाओंकी		
शत	सैकड़ों	इह वसुदेवगृहे	यहां वसुदेवजीके घर
अक्षौहिणी	अक्षौहिणी (सेना कर)	अवतीर्णः असि	अवतीर्ण हुए हैं ॥२४॥
वधेन	संहार करके		

अद्येश नो वसतयः खलु भूरिभागा
यः सर्वदेवपितृभूतनृदेवमूर्तिः ।
यत्पादशौचसलिलं त्रिजगत् पुनाति
स त्वं जगद्गुरुरधोक्षज याः प्रविष्टः ॥२५॥

अद्य ईश नः वसतयः खलु भूरि भागा यः सर्वदेव पितृभूत नृदेव मूर्तिः यत् पादशौच सलिलं त्रिजगत् पुनाति स त्वं जगत् गुरुः अधोक्षज याः प्रविष्टः ॥२५॥

यः सर्वदेव	जो सब देवताओं,	सलिलं	जल (गंगा रूपमें)
पितृभूत	पितरों, प्राणियों,	त्रिजगत्	तीनों लोकोंको
नृदेव मूर्तिः	ब्राह्मणोंके स्वरूप हैं,	पुनाति	पवित्र करता है
यत् पादशौच	जिनका चरणोदक	स त्वं	वह आप

जगत गुरुः	जगत् गुरु	वसतयः	निवास
अधोक्षज	हृषीकेश	खलु	अहो,
याः प्रविष्टाः	जिसमें पधारे	भूरि भागा	महाभाग्यवान हो गया ॥२५॥
ईश	स्वामी		
अद्य नः	आज हमारा		

कः पण्डितस्त्वदपरं शरणं समीयाद्
भक्तप्रियादृतगिरः सुहृदः कृतज्ञात् ।
सर्वान् ददाति सुहृदो भजतोऽभिकामा-
नात्मानमप्युपचयापचयौ न यस्य ॥२६॥

कः पण्डितः त्वत् अपरं शरणं समीयात् भक्तप्रिय आदृतगिरः सुहृदः कृतज्ञात् सर्वान् ददाति सुहृदः भजतः अभिकामान् आत्मानं अपि उपचय अपचयौ न यस्य ॥२६॥

भक्तप्रियः	भक्त-वत्सल	भजतः	भजन करने वालेकी
आदृतगिरः	उस (भक्त)की बात का आदर करने वाले	सुहृदः	आप सुहृद
		सर्वान्	समस्त
		अभिकामान्	अभिलाषाएँ तथा
सुहृदः कृतज्ञात्	सुहृद कृतज्ञ	यस्य उपचय	जिसकी वृद्धिया
त्वत् अपरं	आपसे भिन्न	अपचयौ न	क्षति नहीं होती ऐसे
कः शरणं	किसकी शरण	आत्मानं अपि	अपने आपको भी
पण्डितः	कोई विद्वान	ददाति	प्रदान करते हैं ॥२६॥
समीयात्	जायगा ।		

दिष्ट्या जनार्दन भवानिह नः प्रतीतो
योगेश्वरैरपि दुरापगतिः सुरेशैः ।
छिन्ध्याशु नः सुतकलत्रधनाप्तगेह-
देहादिमोहरशनां भवदीयमायाम् ॥२७॥

दिष्ट्या जनार्दन भवान् इह नः प्रतीतः योगेश्वरैः अपि दुराप गतिः सुरेशैः छिन्धि आशु नः सुत कलत्र धन आप्त गेह देह आदि मोह रशनां भवदीय मायाम् ॥२७॥

जनार्दन	जनार्दन !
दिष्ट्या	सौभाग्यवश
सुरेशैः	सुरेश्वरों तथा
योगेश्वरैः अपि	योगेश्वरों द्वारा भी
दुराप गतिः	दुष्प्राप्य स्वरूप
भवान्	आप
इह नः	यहां हमारे
प्रतीतः	सम्मुख हैं,
नः सुत कलत्र	हमारी पुत्र, स्त्री
धन आप्त	धन, गुरुजन,
गेह देह आदि	घर, शरीरादि
मोह रशनां	मोह रूपी रस्सीकी
भवदीय मायां	अपनी मायाको
आशु छिन्धि	शीघ्र काट दीजिए

॥२७॥

श्रीशुक उवाच

इत्यर्चितः संस्तुतश्च भक्तेन भगवान् हरिः ।
अक्रूरं सस्मितं प्राह गीर्भिः सम्मोहयन्निव ॥२८॥

इति अर्चितः संस्तुतः च भक्तेन भगवान् हरिः अक्रूरं सस्मितं प्राह गीर्भिः सम्मोहयन् इव ॥२८॥

इति	इस प्रकार
भक्तेन	अपने भक्त द्वारा
अर्चितः च	पूजित तथा
संस्तुतः	स्तुति किये जानेपर
भगवान्	भगवान्
हरिः सस्मितं	श्रीहरि मुस्कराते हुए
गीर्भिः	अपनी वाणीसे
सम्मोहयन् इव	मोहित करते हुए से
अक्रूरं प्राह	अक्रूरसे बोले

॥२८॥

श्रीभगवानुवाच

त्वं नो गुरुः पितृव्यश्च श्लाघ्यो बन्धुश्च नित्यदा ।
वयं तु रक्ष्याः पोष्याश्च अनुकम्प्याः प्रजा हि वः ॥२९॥

त्वं नः गुरुः पितृव्यः च श्लाघ्यः बन्धुः च नित्यदा वयं तु रक्ष्याः पोष्याः च अनुकम्प्याः प्रजा हि वः ॥२९॥

त्वं नः गुरुः	आप हमारे गुरु
च पितृव्यः	तथा चाचा,
च नित्यदा	और नित्य
श्लाघ्यः	प्रशंसनीय

बन्धुः	स्वजन हैं	रक्ष्याः	रक्षणीय
हि वयं तु	क्योंकि हम तो	च पोष्याः	और पोषणीय
वः प्रजा	आपकी सन्तान हैं		हैं ॥२६॥

भवद्विधा महाभागा निषेव्या अर्हसत्तमाः ।
श्रेयस्कामैर्नृभिर्नित्यं देवाः स्वार्था न साधवः ॥३०॥

भवत् विधा महाभागा निषेव्या अर्हसत्तमाः श्रेयः कामैः नृभिः नित्यं देवाः स्वार्था न साधवः ॥३०॥

श्रेयः कामैः	अपना कल्याण चाहनेवाले	निषेव्या	सेवनीय हैं
		देवाः	देवता तो
नृभिः नित्यं	मनुष्यों द्वारा सदा	स्वार्था	स्वार्थी होते हैं;
भवत् विधा	आप जैसे	साधवः	किन्तु सत्पुरुष
महाभागा	महाभाग	न	नहीं ॥३०॥
अर्हसत्तमाः	परम पूजनीय		

नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥३१॥

न हि अम्मयानि तीर्थानि न देवा मृत् शिलामयाः ते पुनन्तिः उरुकालेन दर्शनात् एव साधवः ॥३१॥

हि	क्योंकि	उरुकालेन	बहुत समयमें
अम्मयानि	जलमय ही	पुनन्तिः	पवित्र करते हैं;
तीर्थानि न	तीर्थ नहीं होते,		किन्तु
मृत्	मिट्टी या	साधवः	सत्पुरुष
शिलामयः	पत्थर रूप ही	दर्शनात् एव	दर्शन मात्रसे
देवा न	देवता नहीं होते,		(पवित्र कर देते
ते	वे तो		हैं) ॥३१॥

स भवान् सुहृदां वै नः श्रेयाञ्छ्रेयश्चिकीर्षया ।
जिज्ञासार्थं पाण्डवानां गच्छस्व त्वं गजाह्वयम् ॥३२॥

स भवान् सुहृदां वै नः श्रेयान् श्रेयः चिकीर्षया जिज्ञासार्थं पाण्डवानां गच्छस्व त्वं गजाह्वयम् ॥३२॥

स भवान्	वह आप	श्रेयः	कल्याण करनेकी
नः सुहृदां	हमारे सुहृदोंमें	चिकीर्षया	इच्छासे
वै	निश्चय	जिज्ञासार्थं	उनका समाचार जाननेके लिए
श्रेयान्	सर्वश्रेष्ठ हैं,		
त्वं	अतः आप	गजाह्वयं	हस्तिनापुर
पाण्डवानां	पाण्डवोंका	गच्छस्व	जाइये ॥३२॥

पितर्युपरते बालाः सह मात्रा सुदुःखिताः ।
आनीताः स्वपुरं राज्ञा वसन्त इति शुश्रुम ॥३३॥

पितरि उपरते बालाः सह मात्राः सुदुःखिताः आनीताः स्वपुरं राज्ञा वसन्त इति शुश्रुम ॥३३॥

पितरि	पिताके	राज्ञा	राजा धृतराष्ट्र द्वारा
उपरते	मर जानेपर	स्वपुरं	अपने नगरमें
सुदुःखिताः	अत्यन्त दुःखी	आनीताः	लाये गये
बालाः	वे बालक	वसन्त इति	वहीं रहते हैं ऐसा
सह मात्राः	माताके साथ	शुश्रुम	हम सुनते हैं ॥३३॥

तेषु राजाम्बिकापुत्रो भ्रातृपुत्रेषु दीनधीः ।
समो न वर्तते नूनं दुष्पुत्रवशगोऽन्धदृक् ॥३४॥

तेषु राजा अम्बिका पुत्रः भ्रातृ पुत्रेषु दीनधीः समः न वर्तते नूनं दुष्पुत्र वशगः अन्धदृक् ॥३४॥

अन्धदृक्	दृष्टिसे अन्धा	दीनधीः	दीन (हीन) बुद्धि होनेसे
दुष्पुत्र	अपने दुष्ट पुत्र (दुर्योधन) के	तेषु भ्रातृ	उन भाईके
वशगः राजा	वशमें हुआ राजा	पुत्रेषु	पुत्रोंके साथ
अम्बिका	अम्बिका	नूनं समः	निश्चय समानताका
पुत्रः	पुत्र धृतराष्ट्र	वर्तते न	व्यवहार नहीं करते ॥३४॥

गच्छ जानीहि तद्वृत्तमधुना साध्वसाधु वा ।
विज्ञाय तद् विधास्यामो यथा शं सुहृदां भवेत् ॥३५॥

गच्छ जानीहि तत् वृत्तं अधुना साधु असाधु वा विज्ञाय तत् विधास्यामः यथा शं सुहृदां भवेत् ॥३५॥

तत् गच्छ	अतः जाइये	**तत्**	हम वैसा
तत् अधुना	उनकी इस समय	**विधास्यामः**	प्रबन्ध करेंगे
साधु वा	अच्छी अथवा	**यथा**	जिससे (हमारे उन)
असाधु	बुरी	**सुहृदां**	सुहृदोंको
वृत्तं जानीहि	स्थितिका पता लगाइये	**शं भवेत्**	सुख प्राप्त हो ॥३५॥
विज्ञाय	उसे जानकर		

श्रीशुक उवाच*

इत्यक्रूरं समादिश्य भगवान् हरिरीश्वरः ।
सङ्कर्षणोद्धवाभ्यां वै ततः स्वभवनं ययौ ॥३६॥

इति अक्रूरं समादिश्य भगवान् हरिः ईश्वरः सङ्कर्षण उद्धवाभ्यां वै ततः स्वभवनं ययौ ॥३६॥

वै भगवान्	निश्चय भगवान	**ततः संकर्षण**	फिर बलरामजी
हरिः	श्रीहरि	**उद्धवाभ्यां**	और उद्धवके साथ
ईश्वरः	सर्वेश्वर हैं, वे	**स्वभवनं**	अपने भवन
अक्रूरं इति	अक्रूरको इस प्रकार	**ययौ**	चले गये ॥३६॥
समादिश्य	पूरा आदेश देकर		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अथ एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

स गत्वा हस्तिनपुरं पौरवेन्द्रयशोऽङ्कितम् ।
ददर्श तत्राम्बिकेयं सभीष्मं विदुरं पृथाम् ॥१॥

स गत्वा हास्तिनपुरं पौरवेन्द्र यशः अङ्कितं ददर्श तत्र अम्बिकेयं सभीष्मं विदुरं पृथाम् ॥१॥

पौरवेन्द्र	पुरुवंशी राजाओंके	अम्बिकेयं	अम्बिका-पुत्र धृतराष्ट्रके
यशः अंकितं	यशसे चिह्नित	सभीष्मं	साथ भीष्म
हास्तिनपुरं	हस्तिनापुरमें	विदुरं	विदुर तथा
गत्वा स	जाकर वे (अक्रूर) जी	पृथां	कुन्तीसे
		ददर्श	मिले ॥१॥

सहपुत्रं च बाह्लीकं भारद्वाजं सगौतमम् ।
कर्णं सुयोधनं द्रौणिं पाण्डवान् सुहृदोऽपरान् ॥२॥

सहपुत्रं च बाह्लीकं भारद्वाजं सगौतमं कर्णं सुयोधनं द्रौणिं पाण्डवान् सुहृदः अपरान् ॥२॥

बाह्लीकं	बाह्लीकसे	द्रौणिं	द्रौण-पुत्र, अश्वत्थामा
सहपुत्रं	उनके पुत्र सोमदत्त के साथ,	पाण्डवान्	पाण्डवों
भारद्वाजं	द्रोणाचार्यसे	च अपरान्	तथा दूसरे
सगौतमं	कृपाचार्यके साथ,	सुहृदः	सुहृदोंसे ॥३॥
कर्णं सुयोधनं	कर्ण, दुर्योधन,		

यथावदुपसंगम्य बन्धुभिर्गान्दिनीसुतः ।
सम्पृष्टस्तैः सुहृद्वार्तां स्वयं चापृच्छदव्ययम् ॥३॥

यथावत् उपसंगम्य बन्धुभिः गान्दिनीसुतः सम्पृष्टः तैः सुहृत् वार्तां स्वयं च अपृच्छत् अव्ययम् ॥३॥

गान्दिनीसुतः	गान्दिनी-नन्दन अक्रूरजी	**सुहृत वार्तां**	सुहृदोंका समाचार
बन्धुभिः	सम्बन्धियोंसे	**सम्पृष्टः**	पूछे जानेपर
यथावत्	यथा योग्य	**स्वयं च**	स्वयं भी (उनसे)
उपसंगम्य	मिलकर	**अव्ययं**	कुशल (सम्पन्नता)
तैः	उनके द्वारा	**अपृच्छत्**	पूछी ॥३॥

उवास कतिचिन्मासान् राज्ञो वृत्तविवित्सया ।
दुष्प्रजस्याल्पसारस्य खलच्छन्दानुवर्तिनः ॥४॥

उवास कतिचित् मासान् राज्ञः वृत्त विवित्सया दुष्प्रजस्य अल्प सारस्य खलः छन्द अनुवर्तिनः ॥४॥

खलः	दुष्ट मन्त्रियोंकी	**वृत्त**	प्रवृत्ति
छन्द	सलाहके	**विवित्सया**	जाननेके लिए
अनुवर्तिनः	पीछे चलनेवाले	**कतिचित्**	कुछ
दुष्प्रजस्य	दुष्ट पुत्रोंवाले	**मासान्**	महीने
अल्प सारस्य	अल्प वीर्य	**उवास**	वहां बसे रहे ॥४॥
राज्ञः	राजा धृतराष्ट्रकी		

तेज ओजो बलं वीर्यं प्रश्रयादींश्च सद्गुणान् ।
प्रजानुरागं पार्थेषु न सहद्भिश्चिकीर्षितम् ॥५॥

तेजः ओजः बलं वीर्यं प्रश्रय आदीन् च सद्गुणान् प्रजा अनुरागं पार्थेषु न सहद्भिः चिकीर्षितम् ॥५॥

पार्थेषु	पाण्डवोंका	**बलं वीर्यं**	बल, शूरता,
तेजः ओजः	तेज, स्फूर्ति,	**प्रश्रय आदीन्**	विनम्रता आदि

सद्गुणान्	उत्तम गुणोंको,	चिकीर्षितं	क्या करना चाहते हैं
च प्रजा	तथा प्रजाके (उनके		(यह जाननेके लिए)
अनुरागं	प्रति) प्रेम को		॥५॥
न सहद्भिः	सहन न करने वाले (धृतराष्ट्र, दुर्योधनादि)		

कृतं च धार्तराष्ट्रैर्यद् गरदानाद्यपेशलम् ।
आचख्यौ सर्वमेवास्मै पृथा विदुर एव च ॥ ६ ॥

कृतं च धार्तराष्ट्रैः यत् गरदान आदि अपेशलं आचख्यौ सर्वं एव अस्मै पृथा विदुर एव च ॥६॥

धार्तराष्ट्रैः	धृतराष्ट्रके पुत्रोंने	पृथा च	कुन्ती तथा
यत् गरदान	जो विष देना	विदुर एव च	विदुरने भी
आदि अपेशलं	आदि निष्ठुरता	आचख्यौ	पूरी तरह बतलायी
कृतं च	की थी		॥६॥
अस्मै सर्वं एव	इनसे वह सभी		

पृथा तु भ्रातरं प्राप्तमक्रूरमुपसृत्य तम् ।
उवाच जन्मनिलयं स्मरन्त्यश्रुकलेक्षणा ॥ ७ ॥

पृथा तु भ्रातरं प्राप्तं अक्रूरं उपसृत्य तं उवाच जन्मनिलयं स्मरन्ती अश्रुकल ईक्षणा ॥७॥

भ्रातरं अक्रूरं	भाई अक्रूरके	स्मरन्ती	स्मरण करती हुई
प्राप्तं	आने पर	अश्रुकल	अश्रु
पृथा तु	कुन्तीजी तो	ईक्षणा	नेत्रोंमें भरकर
तं उपसृत्य	उनके समीप जाकर	उवाच	बोलीं ॥७॥
जन्मनिलयं	अपने जन्म-स्थानको		

श्रीभगवानुवाच

अपि स्मरन्ति नः सौम्य पितरौ भ्रातरश्च मे ।
भगिन्यो भ्रातृपुत्राश्च जामयः सख्य एव च ॥ ८ ॥

अपि स्मरन्ति नः सौम्य पितरौ भ्रातरः च मे भगिन्यः भ्रातृपुत्राः च जामयः सख्य एव च ॥८॥

सौम्य	सौम्य !	च जामयः	तथा कुलकी स्त्रियां
मे पितरौ	हमारे माता-पिता,	च सख्यः एव	और सखियाँभी
भ्रातरः	भाई	अपि नः	क्या हमें
भगिन्यः	बहिनें	स्मरन्ति	स्मरण करती हैं
च भ्रातृपुत्राः	एवं भतीजे,		॥८॥

भ्रात्रेयो भगवान् कृष्णः शरण्यो भक्तवत्सलः ।
पैतृष्वसेयान् स्मरति रामश्चाम्बुरुहेक्षणः ॥ ९ ॥

भ्रात्रेयः भगवान् कृष्णः शरण्यः भक्तवत्सलः पैतृष्वसेयान् स्मरति रामः च अम्बुरुह ईक्षणः ॥९॥

शरण्यः	शरणागत-वत्सल	रामः	बलराम
भक्तवत्सलः	भक्त-स्नेही	पैतृष्वसेयान्	अपनी बुआके पुत्रोंको
भ्रात्रेयः	भ्रातृपुत्र	स्मरति	स्मरण करते हैं ॥९॥
भगवान् कृष्णः	भगवान श्रीकृष्ण		
च अम्बुरुह ईक्षणः	तथा कमल लोचन		

सापत्नमध्ये शोचन्तीं वृकाणां हरिणीमिव ।
सान्त्वयिष्यति मां वाक्यैः पितृहीनांश्च बालकान् ॥१०॥

सापत्नमध्ये शोचन्तीं वृकाणां हरिणीं इव सान्त्वयिष्यति मां वाक्यैः पितृहीनान् च बालकान् ॥१०॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

वृकाणां	भेड़ियों (के बीच)में	मां च	मुझे तथा
हरिणीं इव	हरिणीकी भांति	पितृहीनान्	पिताहीन
सापत्नमध्ये	शत्रुओंके बीचमें (घिरी)	बालकान् च	बालकोंको भी
		वाक्यैः	अपने वचनोंसे
शोचन्तीं	चिन्तिता	सान्त्वयिष्यति	समझावेंगे ॥१०॥

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन ।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द शिशुभिश्चावसीदतीम् ॥११॥

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्व आत्मन् विश्वभावन प्रपन्नां पाहि गोविन्द शिशुभिः च अवसीदतीम् ॥११॥

महायोगिन्	योगेश्वर	शिशुभिः	बालकोंके साथ
कृष्ण	कृष्ण !	अवसीदतीं	कष्ट पाती हुई
विश्व आत्मन्	विश्वात्मा	प्रपन्नां	शरणागता
कृष्ण	कृष्ण !	मा च पाहि	मेरी भी रक्षा करो ॥११॥
विश्वभावन	विश्व-रक्षक		
गोविन्द	गोविन्द !		

नान्यत्तव पदाम्भोजात् पश्यामि शरणं नृणाम् ।
बिभ्यतां मृत्युसंसारादीश्वरस्यापवर्गिकात् ॥१२॥

न अन्यत् तव पद अम्भोजात् पश्यामि शरणं नृणां बिभ्यतां मृत्यु संसारात् ईश्वरस्य अपवर्गिकात् ॥१२॥

मृत्यु संसारात्	मृत्यु रूप संसारसे	पद अम्भोजात्	चरण-कमलोंके
बिभ्यतां नृणां	डरे हुए मनुष्योंके लिए	अन्यत्	अतिरिक्त
		शरणं न	आश्रय नहीं
तव ईश्वरस्य	तुम सर्वेश्वर	पश्यामि	देखती हूँ ॥१२॥
अपवर्गिकात्	मोक्षदाताके		

नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परमात्मने ।
योगेश्वराय योगाय त्वामहं शरणं गता ॥१३॥

नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परमात्मने योगेश्वराय योगाय त्वां अहं शरणं गता ॥१३॥

शुद्धाय ब्रह्मणे	शुद्ध ब्रह्म,	कृष्णाय नमः	श्रीकृष्णको नमस्कार
परमात्मने	परमात्मा,		
योगेश्वराय	योगेश्वर	अहं त्वां	मैं तुम्हारी
योगाय	योग स्वरूप	शरणं गता	शरण आयीहूँ ॥१३॥

श्रीशुक उवाच

इत्यनुस्मृत्य स्वजनं कृष्णं च जगदीश्वरम् ।
प्रारुदद् दुःखिता राजन् भवतां प्रपितामही ॥१४॥

इति अनुस्मृत्य स्वजनं कृष्णं च जगदीश्वरं प्रारुदत् दुःखिता राजन् भवतां प्रपितामही ॥१४॥

राजन्	राजन् !	कृष्णं	श्रीकृष्णका
भवतां	आपकी	अनुस्मृत्य	स्मरण करके
प्रपितामही	प्रपितामही कुन्ती	प्रारुदत्	उच्च-स्वरसे रोने लगीं ॥१४॥
इति स्वजनं	इस प्रकार आत्मीयों		
च जगदीश्वरं	तथा जगदीश्वर		

समदुःखसुखोऽक्रूरो विदुरश्च महायशाः ।
सान्त्वयामासतुः कुन्तीं तत्पुत्रोत्पत्तिहेतुभिः ॥१५॥

सम दुःख सुखः अक्रूरः विदुरः च महायशाः सान्त्वयामासतुः कुन्तीं तत् पुत्र उत्पत्ति हेतुभिः ॥१५॥

सम दुःख सुखः	दुःख-सुखमें समान रहने वाले	उत्पत्ति	उत्पत्तिका
		हेतुभिः	कारण बतलाकर
अक्रूरः च	अक्रूर तथा	कुन्तीं	कुन्तीजीको
महायशाः	महान यशस्वी	सान्त्वया-	
विदुरः	विदुरने	मासतुः	समझा दिया ॥१५॥
तत् पुत्र	उनके पुत्रोंकी		

यास्यन् राजानमभ्येत्य विषमं पुत्रलालसम् ।
अवदत् सुहृदां मध्ये बन्धुभिः सौहृदोदितम् ॥१६॥

यास्यन् राजानं अभि एत्य विषमं पुत्रलालसं अवदत् सुहृदां मध्ये बन्धुभिः सौहृद उदितम् ॥१६॥

यास्यन्	जाते समय	सुहृदां मध्ये	सुहृदोंके बीचमें बैठे
पुत्रलालसं	पुत्रवत्सल,	राजानं	राजा धृतराष्ट्रसे
विषमं	विषम व्यवहार करने वाले	सौहृद उदितं	सौहार्द्रपूर्ण बात
		अवदत्	बोले ॥१६॥

अक्रूर उवाच

भो भो वैचित्रवीर्य त्वं कुरूणां कीर्तिवर्धन ।
भ्रातर्युपरते पाण्डावधुनाऽऽसनमास्थितः ॥१७॥

भो भो वैचित्रवीर्य त्वं कुरूणां कीर्तिवर्धन भ्रातः उपरते पाण्डौ अधुना आसनं आस्थितः ॥१७॥

भो भो	हे, हे	भ्रातः पाण्डौ	भाई पाण्डुके
वैचित्रवीर्य	विचित्रवीर्यनन्दन !	उपरते	मरजाने पर
त्वं कुरूणां	आप कौरवोंकी	अधुना	इस समय
कीर्तिवर्धन	कीर्तिको बढ़ाने वालेहैं,	आसनं	सिंहासन पर विराजमानहैं ॥१७॥
		आस्थितः	

धर्मेण पालयन्नुर्वीं प्रजाः शीलेन रञ्जयन् ।
वर्तमानः समः स्वेषु श्रेयः कीर्तिमवाप्स्यसि ॥१८॥

धर्मेण पालयन् उर्वीं प्रजाः शीलेन रञ्जयन् वर्तमानः समः स्वेषु श्रेयः कीर्तिं अवाप्स्यसि ॥१८॥

धर्मेण	धर्मपूर्वक	प्रजाः रञ्जयन्	प्रजाको प्रसन्न रखते हुए,
उर्वीं पालयन्	पृथ्वीका पालन करते हुए	स्वेषु समः	अपनोंसे समानताका
शीलेन	अपने सदाचारसे	वर्तमानः	व्यवहार करते हुए

श्रेयः कीर्ति	(आप) कल्याण तथा सुयश	अवाप्स्यसि	प्राप्त करेंगे ॥१८॥

अन्यथा त्वाचरँल्लोके गर्हितो यास्यसे तमः ।
तस्मात् समत्वे वर्तस्व पाण्डवेष्वात्मजेषु च ॥१९॥

अन्यथा तु आचरन् लोके गर्हितः यास्यते तमः तस्मात् समत्वे वर्तस्व पाण्डवेषु आत्मजेषु च ॥१९॥

अन्यथा तु	इससे उलटा तो	तस्मात्	इसलिए
आचरन्	करनेपर	पाण्डवेषु	पाण्डुपुत्रोंसे
लोके	लोकमें	च	तथा
गर्हितः	निन्दित होंगे	आत्मजेषु	अपने पुत्रोंसे
तमः	(और मरकर) नरकमें	समत्वे	समानताका
		वर्तस्व	वर्ताव करो ॥१९॥
यास्यसि	जाओगे		

नेह चात्यन्तसंवासः कर्हिचित् केनचित् सह ।
राजन् स्वेनापि देहेन किमु जायात्मजादिभिः ॥२०॥

न इह च अत्यन्त संवासः कर्हिचित् केनचित् सह राजन् स्वेन अपि देहेन किमु जाया आत्मज आदिभिः ॥२०॥

राजन् इह	राजन् इस लोकमें	अपि	साथ भी,
कर्हिचित्	कभी भी	जाया आत्मज	स्त्री, पुत्र,
केनचित् सह	किसीके भी साथ	आदिभिः	आदिके साथ तो
अत्यन्त	बहुत समय तक		फिर
संवासः	साथ रहना	किमु	क्या (रहेगा) ॥२०॥
न च	नहीं ही होता,		
स्वेन देहेन	अपने शरीरके		

एकः प्रसूयते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥२१॥

एकः प्रसूयते जन्तुः एक एव प्रलीयते एकः अनुभुङ्क्ते सुकृतं एक एव च दुष्कृतम् ॥२१॥

जन्तुः एकः	जीव अकेला ही	च एक एव	तथा अकेला ही
प्रसूयते	उत्पन्न होता है,	दुष्कृतं	पापोंको
एक एव	अकेला ही	अनुभुङ्क्ते	पीछे भोगता है
प्रलीयते	मर जाता है,		॥२१॥
एकः सुकृतं	अकेला पुण्योंको		

अधर्मोपचितं वित्तं हरन्त्यन्येऽल्पमेधसः ।
सम्भोजनीयापदेशैर्जलानीव जलौकसः ॥२२॥

अधर्म उपचितं वित्तं हरन्ति अन्ये अल्पमेधसः सम्भोजनीय अपदेशैः जलानि इव जलौकसः ॥२२॥

अल्पमेधसः	अल्प बुद्धिवालेका	जलौकसः	जलचरों द्वारा
अधर्म	अधर्मसे	जलानि	पानीपर (अधि-
उपचितं	एकत्र किया		कार) के
वित्तं	धन	इव	समान
सम्भोजनीय	'हम पोषण योग्य हैं'	हरन्ति	हरण कर लेते हैं
अपदेशैः	इस बहानेसे		॥२२॥
अन्ये	दूसरे		

पुष्णाति यानधर्मेण स्वबुद्धचा तमपण्डितम् ।
तेऽकृतार्थं प्रहिण्वन्ति प्राणा रायः सुतादयः ॥२३॥

पुष्णाति यान् अधर्मेण स्वबुद्ध्या तं अपण्डितं ते अकृत अर्थं प्रहिण्वन्ति प्राणा रायः सुत आदयः ॥२३॥

यानि	जिनको	रायः	धन,
अधर्मेण	अधर्म पूर्वक	सुत आदयः	पुत्रादि
स्वबुद्ध्या	अपनी बुद्धिसे	तं अपण्डितं	उस अज्ञानीको
पुष्णाति	पोषित करता है	अकृत अर्थं	असन्तुष्ट ही
ते प्राणा	वे प्राण,	प्रहिण्वन्ति	त्याग देते हैं ॥२३॥

स्वयं किल्बिषमादाय तैस्त्यक्तो नार्थकोविदः ।
असिद्धार्थो विशत्यन्धं स्वधर्मविमुखस्तमः ॥२४॥

स्वयं किल्बिषं आदाय तैः त्यक्तः न अर्थ कोविदः असिद्ध अर्थः विशति अन्धं स्वधर्म विमुखः तमः ॥२४॥

तैः	उनके द्वारा	स्वयं किल्बिषं	स्वयं (अपने) पाप
त्यक्तः	त्यागा गया,	आदाय	(साथ) लेकर
न अर्थ	अपना ठीक स्वार्थ न	असिद्ध अर्थः	विफल मनोरथ
कोविदः	जाननेवाला	अन्धं तमः	घोर नरकमें
स्वधर्म	अपने धर्मसे	विशति	प्रवेश करता है
विमुखः	विमुख		॥२४॥

तस्माल्लोकमिमं राजन् स्वप्नमायामनोरथम् ।
वीक्ष्यायम्यात्मनाऽऽत्मानं समः शान्तो भव प्रभो ॥२५॥

तस्मात् लोकं इमं राजन् स्वप्नमाया मनोरथं वीक्ष्या यम्य आत्माना आत्मानं समः शान्तः भव प्रभो ॥२५॥

प्रभो राजन्	प्रभो ! राजन् !	आत्माना	अपनी बुद्धिसे
तस्मात्	इसलिए	आत्मानं यम्य	मनको संयमित
इमं लोकं	इस लोकको		करके
स्वप्नमाया	स्वप्न, माया, या	समः शान्तः	समान चित्त, शान्त
मनोरथं	मनो-राज्य जैसा	भव	हो जाइये ॥२५॥
वीक्ष्या	देखकर		

धृतराष्ट्र उवाच

यथा वदति कल्याणीं वाचं दानपते भवान् ।
तथानया न तृप्यामि मर्त्यः प्राप्य यथामृतम् ॥२६॥

यथा वदति कल्याणीं वाचं दानपते भवान् तथा अनया न तृप्यामि मर्त्यः प्राप्य यथा अमृतं ॥२६॥

दानपते	दानाध्यक्षजी !	मर्त्यः	मरणशील प्राणी
यथा भवान्	जैसे आप	अमृतं प्राप्य	अमृत पाकर (तृप्त नहीं होता)
कल्याणीं	कल्याण कारिणी	तृप्यामि	मैं तृप्त
वाचं	वाणी	न	नहीं हो रहा हूँ
वदति	बोल रहे हैं		॥२६॥
तथा अनया	वैसे ही इससे		
यथा	जैसे		

तथापि सूनृता सौम्य हृदि न स्थीयते चले ।
पुत्रानुरागविषमे विद्युत् सौदामनी यथा ॥२७॥

तथा अपि सूनृता सौम्य हृदि न स्थीयते चले पुत्र अनुराग विषमे विद्युत् सौदामनी यथा ॥२७॥

सौम्य	सौम्य !	हृदि	हृदयमें
तथा अपि	ऐसा होनेपर भी	यथा	जैसे
सूनृता	(आपकी) उत्तम प्रिय शिक्षा	सौदामनी विद्युत्	मेघ-मालाकी बिजली हो,
पुत्र अनुराग	पुत्रके प्रेमसे	स्थीयते न	ठहरती नहीं है
विषमे चले	विषम तथा चंचल		॥२७॥

ईश्वरस्य विधिं को नु विधुनोत्यन्यथा पुमान् ।
भूमेर्भारावताराय योऽवतीर्णो यदोः कुले ॥२८॥

ईश्वरस्य विधिं कः नु विधुनोति अन्यथा पुमान् भूमेः भार अवताराय यः अवतीर्णः यदोः कुले ॥२८॥

यः यदोः कुले	जो यदुकुलमें	अवताराय	उतारनेके लिए
भूमेः भार	पृथ्वीका भार	अवतीर्णः	अवतरित हुए हैं,

नु कः पुमान्	भला कौन पुरुष	अन्यथा	उलटा
ईश्वरस्य	उन ईश्वरके	विधुनोति	कर दे सकता है
विधिं	विधानको		॥२८॥

यो दुर्विमर्शपथया निजमाययेदं
सृष्ट्वा गुणान् विभजते तदनुप्रविष्टः ।
तस्मै नमो दुरवबोधविहारतन्त्र-
संसारचक्रगतये परमेश्वराय ॥२९॥

यः दुर्विमर्श पथया निजमायया इदं सृष्ट्वा गुणान् विभजते तत् अनुप्रविष्टः तस्मै नमः दुरवबोध विहार तन्त्र संसार चक्र गतये परमेश्वराय ॥२९॥

यः दुर्विमर्श	जो अचिन्त्य	गुणान्	गुणोंका
पथया	गतिवाली	विभजते	विभाजन करते हैं
निजमायया	अपनी माया द्वारा	दुरवबोध	अगम्य
इदं संसार	इस संसार	विहार तन्त्र	लीला विस्तार
चक्र	चक्रको	गतये	करनेवाले
सृष्ट्वा	बनाकर	तस्मै	उन
तत्	फिर	परमेश्वराय	परमेश्वरको
अनुप्रविष्टः	उसमें प्रवेश करके	नमः	नमस्कार ॥२९॥

श्रीशुक उवाच

इत्यभिप्रेत्य नृपतेरभिप्रायं स यादवः ।
सुहृद्भिः समनुज्ञातः पुनर्यदुपुरीमगात् ॥३०॥

इति अभिप्रेत्य नृपतेः अभिप्रायं स यादवः सुहृद्भिः समनुज्ञातः पुनः यदुपुरीं अगात् ॥३०॥

इति	इस प्रकार	अभिप्रायं	अभिप्राय
नृपतेः	राजा धृतराष्ट्रका	अभिप्रेत्य	समझकर

स यादवः	वे यदुवंशी अक्रूरजी	पुनः	फिर
सुहृद्भिः	सुहृदोंसे	यदुपुरीं	यादवपुरी (मथुरा)
समनुज्ञातः	भली प्रकार अनुमति लेकर	अगात्	लौट आये ॥३०॥

शशंस रामकृष्णाभ्यां धृतराष्ट्रविचेष्टितम् ।
पाण्डवान् प्रति कौरव्य यदर्थं प्रेषितः स्वयम् ॥३१॥

शशंस रामकृष्णाभ्यां धृतराष्ट्र विचेष्टितं पाण्डवान् प्रति कौरव्य यत् अर्थं प्रेषितः स्वयम् ॥३१॥

कौरव्य	कुरुश्रेष्ठ परीक्षित् !	धृतराष्ट्र	धृतराष्ट्रका
यत् अर्थं	जिस प्रयोजनसे	विचेष्टितं	विषम व्यवहार
स्वयं	स्वयं	राम-	बलराम तथा
प्रेषितः	भेजे गये थे वह	कृष्णाभ्यां	श्रीकृष्णसे
पाण्डवान् प्रति	पाण्डवोंके साथ	शशंस	बतला दिया ॥३१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

॥ इति दशम स्कन्धः पूर्वार्धः समाप्तः ॥

हरि ॐ तत्सत्